

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Harvard Univ. April 1983 C.H.U.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

11295

RT-0956

9

भवन की पत्रिका 'भारती' से सम्बन्धित

नवरी १९८३ Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

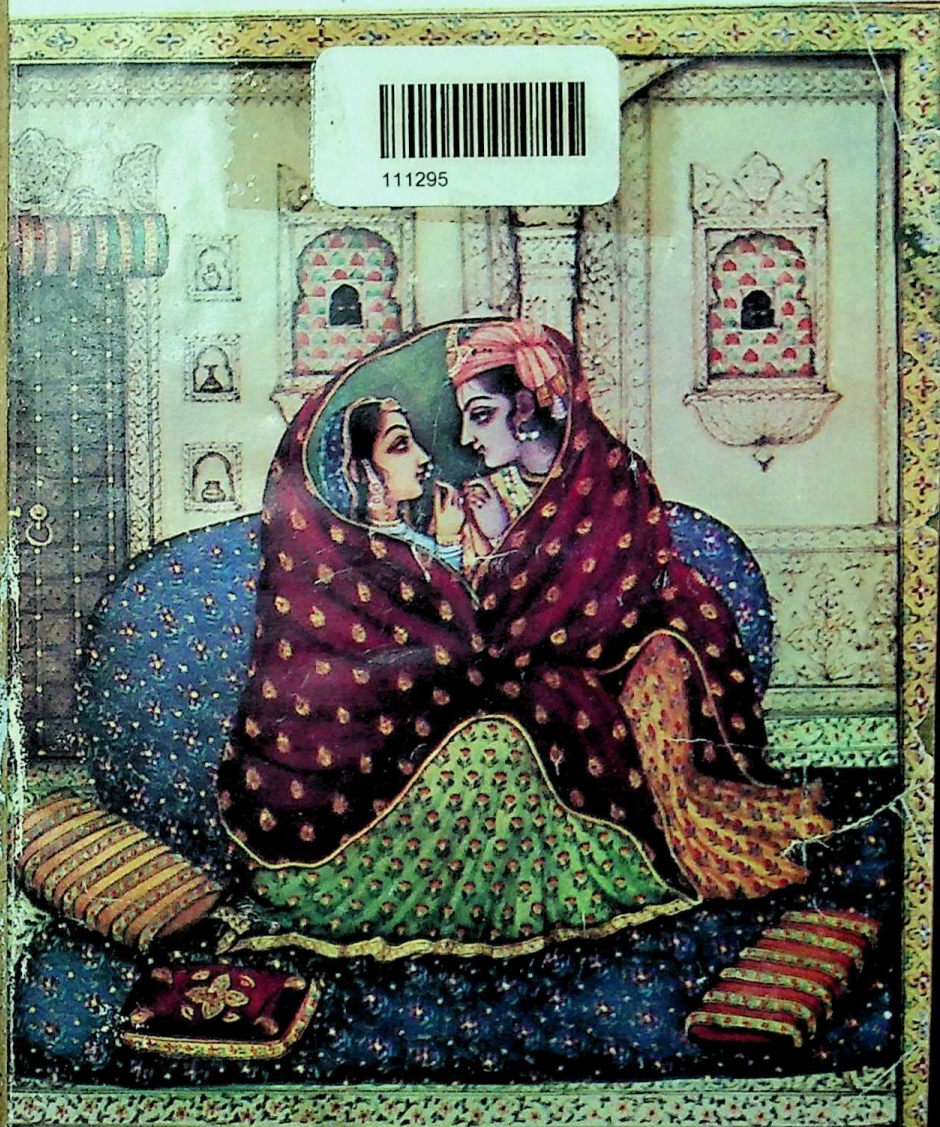
ल्य रु. २.७५ से प्राप्त संख्या 43
प्राप्ति दिनांक 4-2-83

नवनीत

हिन्दी डाइजैस्ट



111295



उपयोग करें
प्रेलिम स्टेपल फाइबर
और
साथ में



मजबूत, टिकाऊ, विश्वसनीय
पूरक धागे

Grasilene

दि ग्वालियर रेयान सिल्क (मन्यू.) विविंग कं. लिमिटेड
(स्टेपल फाइबर विभाग)

तार : GRASIM

टे. नं : ३८८२८८

11,25,51,101 श्रेष्ठ उपहार!

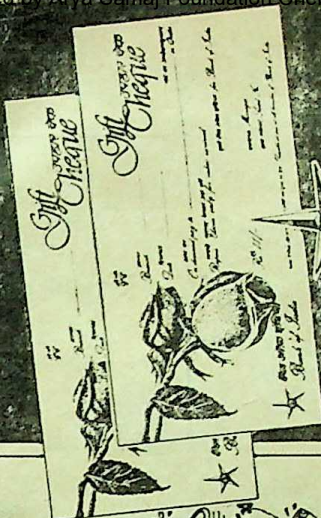
111295

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनचाही खरीद कर पाए-

दिल्ली में चुभावते ओर साथ ही साथ
*रु. 11, रु. 25, रु. 51, ओर रु. 101 की
गुणवत्तियों में उपलब्ध-

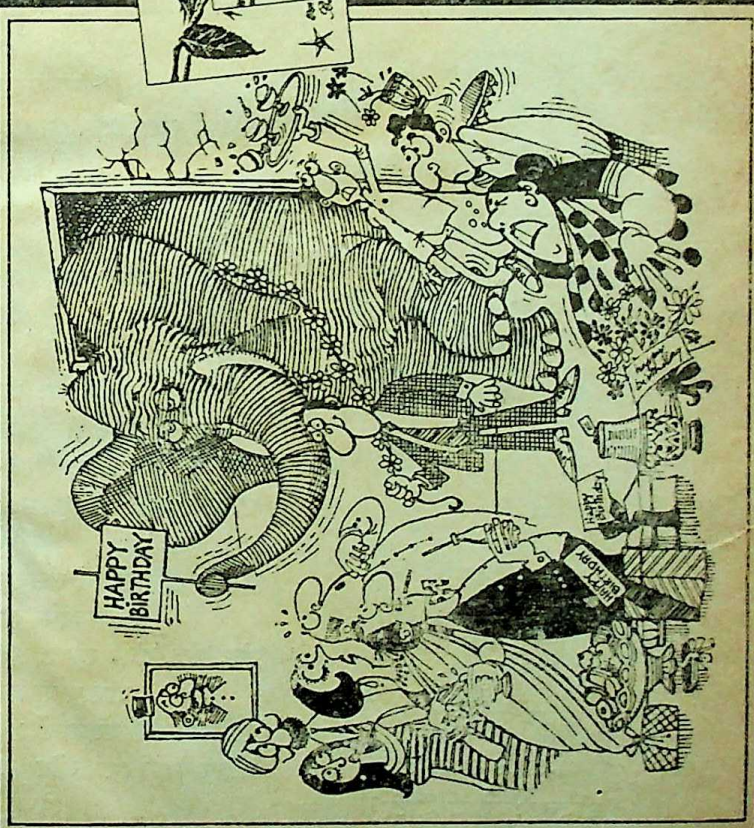
बैंक ऑफ इंडिया के उपहार चेक
बैंक की सभी गहरी ओर कम्पाई शाखाओं में
उपलब्ध हैं और भारतभर की किसी भी
शाखा में भुनाए जा सकते हैं-



बैंक ऑफ इंडिया
(भारत सरकार का उपकार)

उपहार टिकट

हम अवसर के उपयुक्त उपहार-



नवनीत

संस्थापक

कन्हैयालाल मुंशी श्रीगोपाल नेवटिया
भारती : स्था. १९५६ नवनीत : स्था. १९५२

*

संपादक

वीरेन्द्रकुमार जैन

सह-संपादक

गिरिजाशंकर त्रिवेदी

उप-संपादक

रामलाल शुक्ल

*

संयोजक

शान्तिलाल तोलाट

*

प्रकाशक

सु. रामकृष्णन

*

आवरण-चित्र

शिशिर उष्मा

[सौजन्य : वजाज आटो]

कार्यालय : भारतीय विद्या भवन

वर्ष : ३२; अंक : १

वृद्ध महाशय

म. म. गोपीनाथ कविराज
सार्थकता की तलाश (कविता)

डॉ. सुशीला गुप्ता

विज्ञान और समाज

मुरली मनोहर जोशी

समीक्षा पोद्दार और लाड

परिव्राजक (उपन्यास अंश)

कैलाशनाथ ओझा

आचार्य हजारीप्रसाद का हास्य-विनोद

गौरीशंकर गुप्त

आदर्श (कविता) बाबूलाल कदम

प्रार्थना

निरन्तर विकास ही शाश्वत यौवन है

श्रीअरविन्द

आचार्य विनोबा भावे

सु. रामकृष्णन्

साहित्य के सांचे में संस्कृति की ढलाई

डॉ. विद्यानिवास मिश्र

परम्परा और इतिहास-बोध

निर्मल वर्मा

समाज-परिवर्तन में लेखक की भूमिका

वीरेन्द्रकुमार जैन

तंत्र, मंत्र, यंत्रों का शास्त्रीय विवेचन

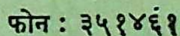
दीवान रामचन्द्र कपूर

गान्धियल गार्सिया मार्खेज हंसकुमार

जीवन का एक और नाम

विष्णु प्रभाकर

नलिनी मलानी, ठाकोर राणा, सांकला ।
६७



म. म. पण्डित गोपीनाथ कविराज की सत्संग-कथा



वृद्ध महाशय

इ महापुरुष का नाम मुझे ज्ञात नहीं है। जिस समय इनका साक्षात्कार हुआ, ये वृद्ध शरीर थे। उसी के आधार पर इनका यह नाम दिया गया है।

१९१८ ई. के आसपास जब मैं नियम से संध्या समय गंगा दर्शन के निमित्त दशाश्वमेध घाट पर जाया करता था उसी समय एक दिन ग्रीष्म ऋतु में अपने एक मित्र के साथ में टहलते-टहलते अहिल्या घाट पहुंच गया। वहां एक स्थान पर बैठ कर गंगा के वक्षस्थल पर खेलती हुई तरंगों का दृश्य देखने लगा। हम लोगों के पास ही पड़ी चौकी पर एक सौम्य तथा शांत मूर्ति वृद्ध बैठे थे। देखते ही जान पड़ा कि ये कोई अंतर्दर्शी अनुभूति संपन्न तेजस्वी महापुरुष हैं। परिचय के बाद अल्प समय में ही उनसे घनिष्ठता हो गयी।

सत्संग वार्ता के क्रम में अपना दृष्टि-कोण बताते हुए इन्होंने कहा, 'आज कल लोग जिस प्रकार तत्त्व की व्याख्या करते हैं, उससे कोई विशेष फल नहीं होता क्योंकि श्रोता अंग्रेजी पढ़े-लिखे नये संस्कारों में युक्त होते हैं। बिना कुछ नये ढंग से समझाये उनसे सहानुभूति पाने की आशा

नवनीत

नहीं है। अतएव समय के प्रभाव से सभी विषयों को समझाने के लिए प्रणाली में कुछ परिवर्तन करना आवश्यक हो गया है। मैं भी बहुधा वही करता हूं, परंतु इससे तत्त्व का स्वरूप नहीं बदलता।'

ये महाशय गृहस्थ थे और सफेद पोशाक पहनते थे। अतः सर्वत्र साधु रूप में परिचित नहीं थे, परंतु थे महाज्ञानी। मेरे मित्र के प्रश्न करने पर तथा साधन तत्त्व के संबंध में इन्होंने जो बातें बतायीं वे मुझे इतनी अच्छी लगीं कि कुछ दिनों बाद उनका विवरण काशी से प्रकाशित 'उत्तरा' पत्रिका में तथा सुप्रसिद्ध 'कल्याण' मासिक (गोरखपुर) में छपा था। उसका सारांश इस प्रकार है :

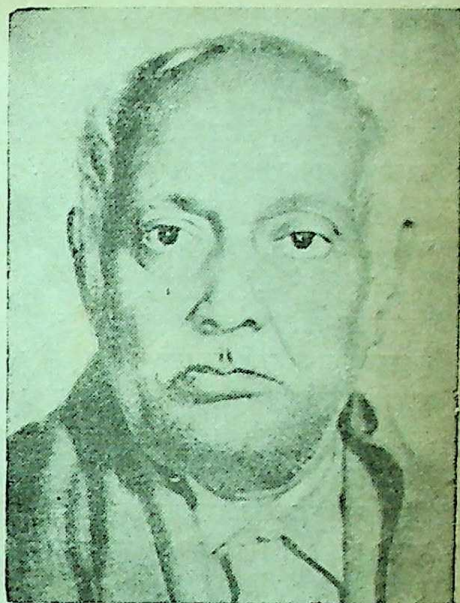
१-संसार में जितने धार्मिक संप्रदाय हैं सबके मूल प्रवर्तक एक ही हैं। देश, काल तथा अधिकारी भेद से विभिन्न मार्ग प्रवृत्त हुए हैं, यह ध्यान रखो। ईसाई धर्म के अक्षम स्वर्ग तथा अक्षम नरक बिल्कुल ही बौद्धधर्म से मिलते हैं परंतु उसमें एक विशेषता है। बुद्धदेव जन्मांतर मानते थे तथा इसका रहस्य वे समझा भी गये हैं। जिन देशों में उनके धर्म का प्रचार हुआ

जनवरी

है, वे देश जन्मांतर के तत्त्व को ग्रहण करने के अधिकारी थे । परंतु महात्मा ईसा ने जिन देशों में प्रचार किया, वे देश इस तत्त्व को समझने में समर्थ नहीं थे । इसलिए उनको उपदेश देने के समय उन्हें इस विलक्षणता की रक्षा करनी पड़ी है । परंतु विचार करने पर शाश्वत स्वर्ग और नरक बौद्धधर्म के ही सिद्धांत हैं । इसे कुछ स्पष्ट करता हूं ।

बौद्धधर्म में कहा गया है कि मानव जन्म की प्राप्ति ही स्वर्ग स्वरूप है तथा तिर्यक् योनि की प्राप्ति नरक स्वरूप । मानव जन्म अत्यंत दुर्लभ है । एक बार इसके प्राप्त होने पर पुनः प्राप्त होने की आशा नहीं रहती । जो एक बार मनुष्य का जन्म पा गया, उसने अनंत स्वर्ग की प्राप्ति कर ली, यह कहा जा सकता है । मृत्यु के पश्चात् यदि कर्मवश किसी का मानव योनि में पुनरागमन न हो तो यह भी कहा जा सकता है कि वह नरक में चला गया और क्योंकि अति दीर्घ काल तक मनुष्येतर योनियों में भ्रमण करना पड़ता है इसीलिए वह काल दीर्घ नरक-भोगावस्था कहा जाता है ।

लिखा है कि एक बार बुद्धदेव ने किसी भिक्षु को उपदेश देते समय कहा था कि उछलती हुई तरंगों से उद्वेलित किसी समुद्र में एक कछुआ और एक छेद वाला चक्र बहा जा रहा था । वे दोनों एक के बाद दूसरी तरंग में प्रवाहित होते थे । कछुए का सिर जल के नीचे था । वह सौ वर्षों में केवल एक बार क्षण भर के लिए



पण्डित गोपीनाथ कविराज

सिर ऊपर उठाता था । वह अनंत समुद्र में विचरण करता था और चक्र भी उसके साथ ही घूमता था । यदि पूछा जाय कि क्या ऐसा भी योग कभी आ सकता है कि कछुए का सिर चक्र के छिद्र से निकलकर ऊपर उठ जाय ? कछुआ तो सौ वर्षों में एक ही बार क्षण भर के लिए सिर ऊंचा करता है । इस प्रकार का योग करोड़ों वर्षों में कभी-कभी आयेगा या नहीं, इसमें संदेह ही है । वैसे ही यहां मनुष्य होना भी अत्यंत कठिन है ।

२-सृष्टि तत्त्व के मूल में रहती है—वासना, कामना और इच्छा । प्रलयावस्था

में केवल एक तत्त्व अपने स्वरूप में रहता है—वह है ब्रह्म, जो परम अणुस्वरूप है। वह कौन-सी अवस्था है ? यह कहा नहीं जा सकता और चिंतन भी नहीं किया जा सकता। मनु कहते हैं, 'प्रसुप्तमिव सर्वतः'

यहां एक 'इव' शब्द से उन्होंने काम चला लिया है। उसका केवल आभास मात्र दिखलाने की चेष्टा की है। उसे ठीक-ठीक समझाया नहीं जा सकता परंतु शास्त्रानुसार कहा जाता है कि उस समय एक ही था। वह बिंदु रूप था। फिर वासना के ताप से यही बिंदु फटकर दो खंडवाला हो गया—एक बिंदु और दूसरा नाद। बिंदु स्फुल्लिंग के समान है और नाद मानो ईंधन है। उसी एक स्फुल्लिंग से हजारों स्फुल्लिंगों की उत्पत्ति होती है। एक ही बहु होता है। नाद ही प्रकृति है। यह नाद क्रमशः शून्य में आक्रमण करके बढ़ता रहता है। यही सृष्टि अथवा बहु होना (मल्टीप्लीकेशन) है। यह जो मूल बिंदु है उसमें नाद (शक्ति) सृष्टि के पूर्व अव्यक्त (अस्फुट) अवस्था में रहता है। उस समय शक्ति और शक्तिमान में भेद नहीं रहता।

सृष्टि के मूल में है इच्छा। एक दृष्टांत लो। कुम्हार ने घटादि बनाने के लिए कुलाल चक्र को घुमा दिया। थोड़ी-सी मिट्टी का पिंड है और उस पर उसने हाथ लगा रखा है। कैसा आश्चर्य है ! हाथ हिलता नहीं और कुम्हार की इच्छा के अनुसार कभी घड़ा, कभी सकोरा और

कभी हांडी तैयार हो जाती है। इच्छा से ही सब होता है। उपादान तो नित्य ही है सत् अथवा सत्ता, कालचक्र घूम ही रहा है, अब केवल इच्छा ही उत्पत्ति की एकमात्र नियामक है।

यह बात याद रखनी चाहिए कि इच्छा ही बीज है। जो इच्छा करोगे वही होगा। निश्चय ही होगा। आज नहीं तो कल। इच्छा का नाश नहीं होता। एक बार जो इच्छा की गयी, तत्काल वह अनंत में चित्रित हो गयी। समय आने पर फूटकर बाहर निकल आयेगी। मान लो तुम्हें आज घास खाने की इच्छा हुई अतएव तुम्हें एक ऐसा शरीर धारण करना पड़ेगा जिससे घास खाने की इच्छा पूर्ण हो सकती है। ऐसा शरीर धारण किये बिना वह इच्छा अतृप्त रह जायेगी। जिस प्रकार की इच्छा होती है शरीर भी उसी प्रकार का धारण करना पड़ता है, चाहे वह देव शरीर हो, मानव शरीर हो या तिर्यक् शरीर। शरीर धारण किये बिना काम नहीं चल सकता। एक कथा है :

एक बार बुद्धदेव का एक अंत्यज भक्त अत्यंत भक्तिपूर्वक गुरुदेव के लिए सूअर का मांस तैयार करके उनके आगमन की प्रतीक्षा में बैठा था। सारा दिन बीत गया, संध्या हो गयी परंतु गुरुदेव नहीं आये। संध्या के समय एक कुत्ते ने आकर उस मांस में, जो भगवान् के लिए यत्नपूर्वक रखा गया था, मुंह डाल दिया तथा उसमें से कुछ खा भी लिया। भक्त ने देखते ही

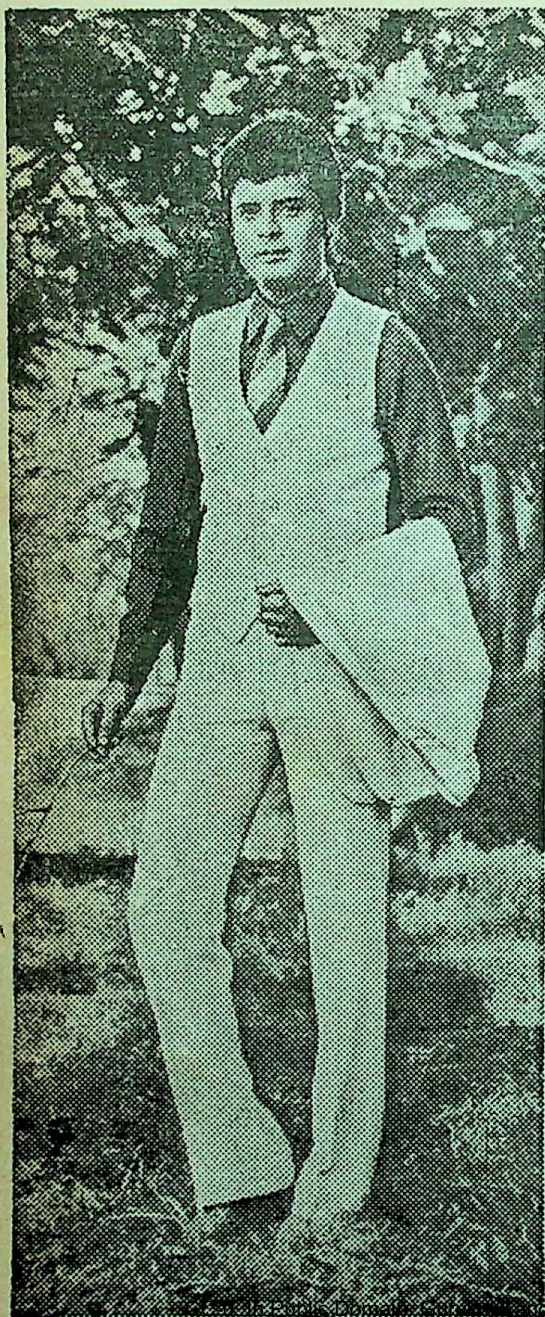
कुत्ते को भगा दिया । परंतु उस दिन बुद्धदेव नहीं पधारे । दूसरे दिन उसने आकर बुद्धदेव से सब अन्त कथा और यह भी प्रकट किया कि आपके न पधारने से मेरे हृदय में बड़ा ही दुःख हुआ था । बुद्धदेव ने कहा, 'मैं तो कल गया था और मैंने तुम्हारे भोग को ग्रहण भी किया था । तुम मुझे पहचान नहीं सके । कल क्या तुमने एक कुत्ता नहीं देखा ? मैं ही कुत्ते का शरीर धारण करके गया था । तुमने मेरे लिए जिस प्रकार का भोग रखा था, उसके अनुरूप देह धारण करके ही मैं गया था ।' अतएव समझना चाहिए कि सब शरीरों में सब प्रकार के भोग नहीं हो सकते ।

इच्छा की तृप्ति बिना मुक्ति नहीं होती । जब तक एक भी वासना अतृप्त रहेगी, तब तक मुक्ति असंभव है । प्राचीन इतिहास में मानसरोवर के निकट रहने वाले एक सिद्धावस्था के समीप पहुंचे हुए योगी के पुनः राजा होने का विवरण तुम्हें ज्ञात है क्या ? अतः शास्त्रकार सर्वत्र यही उपदेश देते हैं कि 'काम का त्याग करो, इच्छा छोड़ो । वासना दूर करो, तभी मुक्ति प्राप्त करोगे और सृष्टिचक्र से बाहर जा सकोगे ।'

इच्छा की तृप्ति किस प्रकार होती है ? तंत्र मार्ग कहता है कि तृप्ति भोग में है । उपदेश मुनते ही वासना का त्याग हो जाना कलियुग में अत्यंत कठिन है । इस युग में तो भोग करके ही काम का नाश करना होगा । परंतु इसमें सिद्ध गुरु की

आवश्यकता है । नहीं तो भोग करते-करते प्राणी बंधन में जकड़ता जायेगा अर्थात् यदि चाभी हाथ में हो तो प्रवृत्ति के द्वारा ही प्रवृत्ति की निवृत्ति की जा सकती है । वह चाभी है सदगुरु । वैदिक मार्ग में भी यही भाव है—पहले कर्म फिर त्याग और ज्ञान । कर्मकांड में तो कामना का अंत ही नहीं होता । परंतु उसमें भी इस प्रकार के उपाय रख गये हैं, जिनसे कामना की निवृत्ति हो जाती है । ऐसी आहुति भी तो है, 'ॐ भूः स्वाहा, ॐ भुवः स्वाहा, ॐ स्वः स्वाहा ।' भू आदि त्रिलोक, जिनमें काम्य फलों का भोग होता है, सब भस्म हो जायें । क्या यह ज्ञानी की बात नहीं है । कर्म के साथ-साथ कर्म त्याग का भी संकेत दिया गया है । किंतु आजकल न वैसे कर्म ही होते हैं न वैसे गुरु ही हैं ।

इसके बाद वृद्ध महाशय ने प्रणव और व्याहृति की व्याख्या की । प्रणव के तीन व्यक्त अवयव हैं—अ, उ और म । इनमें से 'अकार' को छोड़ दो, क्योंकि वह तो सभी वर्गों की आद्या प्रकृति है । शेष 'उ' और 'म' विंदु और नाद वाचक हैं । भू प्रभृति सात व्याहृतियां नाद से प्रकट हुए प्रसिद्ध सप्तलोक हैं । विंदु और नाद की भी लोकों में गणना करने से कुल नौ लोक होते हैं । नवम लोक सत्य लोक है, वह अक्षय है, अव्यय है । विंदु, नाद और सत्यलोक—इनका नाश नहीं होता । शेष छह नश्वर हैं । भूलोक की सृष्टि सर्वप्रथम होती है । यह ब्रह्मांड की नाभि है । यही



ताज़गी की एक लहर!

जियाजी सूटिंग, शर्टिंग और कॉटन प्रिंट्स आजकल मिलने वाले आम कपड़ों से बिल्कुल भिन्न हैं। जियाजी यानी सही सूटिंग, शर्टिंग और कॉटन प्रिंट्स की तलाश में देर तक भटकने के बाद एक ताज़गी की लहर। आप अपने आपको कुछ और ज्यादा पसंद करने लगेंगे।

क्योंकि जियाजी सूटिंग, शर्टिंग और कॉटन प्रिंट्स विशेष आपके लिए ही तो बनाए गये हैं। जियाजी आस पास बिसरे सुनेपन में ताज़गी भर देते हैं।



जियाजी
सूटिंग-शर्टिंग
कॉटन प्रिंट्स



जियाजीराव कॉटन मिल्स लिमिटेड,
बिलावतपुर, न्यालियर (म.प्र.)

कर्मभूमि है। भुवलोक में सूर्य और ग्रहादि स्थित हैं। स्वःलोक में नक्षत्रादि की स्थिति है। भूलोक कहने से केवल इसी पृथ्वी का बोध नहीं होता। इस प्रकार की असंख्य पृथिव्यां इस ब्रह्मांड में हैं। सबका समावेश भूलोक अथवा भूमंडल में है। महलोक पितामह-मातामह प्रभृति का वासस्थान है। जनलोक में गोत्र-प्रवर्तक निवास करते हैं। तपोलोक में तपस्वियों का निवास है।

यह अत्यंत उष्ण स्थान है। यहां एक अत्यंत विशाल सूर्य है। उसी का ताप और तेज भुवलोक के समस्त सूर्यों को प्राप्त होता है। ये उसी ताप और प्रकाश से तप्त तथा प्रकाशमान होते हैं। परंतु जिस प्रकार एक सूर्य-रश्मि के पृथ्वी पर आने पर लू उत्पन्न हो जाती है तथा वही चंद्रमा पर पड़कर स्निग्ध चांदनी के रूप में चमकने लगती है, उसी प्रकार तपोलोक के सूर्य भुवलोक में ताप उत्पन्न करते हैं।

किंतु सत्यलोक में अत्यंत स्निग्ध और स्वच्छ ज्योत्स्ना के रूप में किरण प्रदान करते हैं। यह अत्यंत आश्चर्य की बात है।

अंग्रेजी में जिसे 'सोलर सिस्टम' कहते हैं उसे कुछ अंश में सम्मिलित 'भूः' और 'भुवलोक' के रूप में माना जा सकता है—'सूर्य आत्मा जगतस्तस्युषश्च'

समय के प्रभाव से अब हम ऐसी बातें नहीं मानते। बाह्य जगत का आत्मा जिस



प्रकार सूर्य है उसी प्रकार इस शरीर रूपी जगत का आत्मा भी देखने में ठीक सूर्य के समान ही है। परंतु विचार करके देखो, जहां यह शरीर जगत स्वरूप है, वहां इसका आत्मा किस प्रकार सूर्य हो सकता है। बाहर देखकर भीतर ताकने पर वैसा ही देखने में आता है।

अंत में इन महापुरुष ने प्राण प्रतिष्ठा के संबंध में कहा, 'वस्तुतः हृदय से देवता को बाहर निकालकर बाह्य मूर्ति में स्थापित किया जाता है। इसी का नाम प्राण प्रतिष्ठा है। पश्चात् मस्तक में अपने साथ अभेद प्रतिष्ठा करनी पड़ती है। बड़ा ही गंभीर तत्त्व है। भूतशुद्धि अत्यंत कठिन कार्य है। जिसकी भूतशुद्धि हो गयी, उसके लिए समाधि में फिर बाकी ही क्या रहा?' □

डा. सुशीला गुप्ता की प्रासंगिक कविता



सार्थकता की तलाश

हम अपना गणतंत्र दिवस मनाने जा रहे हैं—

हमारे देश के गणतंत्र दिवस की खुशियां और मजबूरियां,

मजबूरियां उदास — खुशियां रंगीन,

एक ओर मुट्ठी भर दाना न जुटा पाने की मासूमियत भरी बेवसी

तो दूसरी ओर पार्टी-समारोहों में

तरल अर्थांश ढालने की होड़ !

यही वैषम्य आज के दिन का कांपता अर्थ है ।

वह जो बौना बन गया है सबके सामने

घुटने टेक उसने अपनी ऊंचाई आधी कर ली है ।

वह इंसान की ऊंचाइयां नापने का यत्न करे ?

कैसे करे ?

शीशे की दीवारों के बीच खड़ा करके लोग उसके ऊपर

पत्थर ताने खड़े हैं ।

जानते हैं क्यों ?

क्योंकि ऊंचा इंसान बनने के लिए आज के युग में

जो रास्ता अब्धियार करना चाहिये,

उधर उसे जाना नहीं आता ।

अथवा यों कहें, इस रास्ते पर जाने से वह इंकार करता है ।

आसान रास्ते उसे बड़े कठिन लगते हैं ।

उसकी कठिन डगर ही उसके जीवन की सबसे बड़ी विडंबना है ।

ऊंचा बनना क्या इतना आसान है ?

बेबस, मजबूर, सिसकती, दम-तोड़ती मानवता की जिंदा लाश को

अपना मंच बनाकर अपनी ऊंचाई नापने का

खूबसूरत नुस्खा उसके पास नहीं है।

नहीं बनना उसे ऊंचा इंसान।

वह अदना-सा इंसान ही बना रहे तो हर्ज क्या है !

जरूरत पड़े तो किसी के जलते हुए तलवे के नीचे

अपनी हथेली रख दे —

पर उसकी यह जुरंत लोंग बर्दाश्त नहीं कर पाते।

उसके मकान की कुंडी खटखटाते हैं दिन-दहाड़े।

... और जब वह बाहर लपकता है पूछते हुए 'क्या बात है, बेटे ?'

तो उसके सीने में गोलियों का निशाना लगाते हैं।

क्योंकि आज जब सारी योग्यता की कसौटी 'इम्प्लुएंस' है,

उसे 'इम्प्लुएंस' लगाना नहीं आता।

फिर — जिंदा लाश ढोनेवाली उन तमाम जिंदगानियों की

सच्चाई उजागर करने के लिए क्या करे वह ?

क्या वह कलम का श्रमिक बन सकेगा ?

लेखनी का वजन उठा पायेगा ?

काश वह उठा पाता !

गणतंत्र दिवस की महान् सांस्कृतिक धरोहर के बीच से

अपने खास दिन के खोखलेपन की झुंझलाहट में

उसे कुछ सार्थकता मिल जाती !

उसे इसी सार्थकता की तो तलाश है।

—११, कृष्णकुंज, वाच्छा गांधी रोड, गामदेवी, बंबई-४००००७



सीढ़ी तो इसलिये बनी थी कि ऊपर चढ़ने वाला अपना पहला पांव

उतनी देर तक रख सके, जितनी देर में दूसरा पांव आगे उठ जाये।

सीढ़ी का कोई डंडा आराम करने के लिए नहीं बनाया गया था।

—थामस हक्सले



MUCH-AWAITED BOOK NOW ON SALE !
TO BE READ, RE-READ AND PRESERVED !

Srimad Bhagavatam

By

KAMALA SUBRAMANIAM

With A Foreword

By

GHANSHYAMDAS BIRLA

(Printed on Superior Map Litho Paper, Royal Octavo Size,
pp. 672, Full cloth bound with an attractive jacket.)

Price Rs. 110 00

The *Bhagavatam* has been aptly described as the spiritual butter churned out of the ocean of the Veda Milk for the benefit of those "who are pure in heart, free from malice and envy, and are keen to hear it." Dry philosophy seldom appeals to the human mind. But in the *Bhagavatam* even the most abstruse philosophic truths are put across by means of stories and legends. This is the secret of its popularity among all classes of people.

Available from :

Bharatiya Vidya Bhavan

Kulapati K. M. Munshi Marg,

Bombay-400 007

And its Kendras.

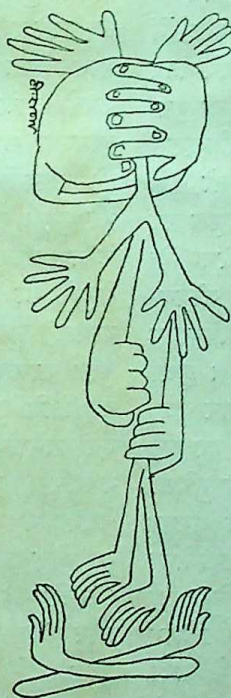
वि
इसक
अनुभ
हुआ
मुना
निक
और
पृथक्
जैसी
चित
रहती
नहीं
निक
समा
पर
होती
सिद्ध
में ग
आज
की
और
के फ
सकत

मुरली मनोहर जोशी का सामयिक लेख



विज्ञान और समाज

विज्ञान ने मानव समाज के विकास को सदा प्रभावित किया है किंतु इसकी महत्वपूर्ण भूमिका का व्यापक अनुभव तो इस शताब्दि के प्रारंभ में ही हुआ। वैसे तो अभी भी अनेक बार यह सुना जा सकता है कि वैज्ञानिक आत्म-केंद्रित होता है और समाज जीवन से पृथक्-पदमपत्र इवाम्भुसा-जैसी भावमुद्रा में उसका चित्तन एवं गवेषणाएं चलती रहती हैं। किंतु यह यथार्थ नहीं है। विज्ञान और वैज्ञानिक की सामाजिकता एवं समाज के साथ उसके संबंधों पर आज जितनी चर्चाएं होती हैं वह इस तथ्य को सिद्ध कर सकती हैं कि दोनों में गहरी आत्मीयता है। आज कोई वैज्ञानिक समाज की उपेक्षा नहीं कर सकता और कोई समाज विज्ञान के बिना जीवित नहीं रह सकता।



इसलिए विज्ञान और समाज, इन दोनों के संबंधों को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में समझने का प्रयत्न करना जरूरी है।

विज्ञान मानव समाज को बहुविध प्रभावित करता रहा है। किंतु इस प्रक्रिया के दो ऐसे महत्वपूर्ण रूप हैं जो सहज बोधगम्य हैं। इनमें से एक तो है प्रविधि या तकनीकी ज्ञान के विकास का समाज पर प्रभाव तथा दूसरा है प्रकृति के नियमों के उत्तरोत्तर यथार्थ ज्ञान का मानवीय चित्तन पर प्रभाव। जहां पहली प्रक्रिया का अभिज्ञान सर्वसामान्य को भी होता रहता है वहां दूसरी का परिचय तो बौद्धिक क्षेत्र में ही प्राप्त होना संभव हुआ करता है। मानव समाज के विकास का अध्ययन इस तथ्य को भली-भांति उजागर कर देता है।

इतिहास के शैशव में भी विज्ञान था भले ही

वह शिशु ही था, भले ही उसकी गति-विधियों का व्याप छोटा था। तब मात्र खेती के उपकरणों में छोटे से सुधार द्वारा भी क्रांतिकारी सामाजिक परिवर्तन हो जाया करते थे। किसानों के हल की आकृति में सुधार होने पर खेतों के आकार में परिवर्तन तथा ग्रामीण जीवन में उससे हुए बदलाव की गाथा अब सर्वविदित है। घोड़ा एक अत्यंत उपयोगी पशु है। अति प्राचीनकाल से उसका महत्व जीवन में स्वीकार किया गया था। किंतु घोड़े की उपयोगिता तो तब बढ़ सकी जब रकाव का आविष्कार हुआ। ध्यान दीजिए, देखने में तो रकाव बहुत छोटा-सा आविष्कार था परंतु इसका परिणाम तो बहुत दूर-गामी हुआ। आप जानना चाहेंगे कि इसमें समाज पर प्रभाव डालने जैसी तो कुछ बात नहीं दिखाई देती, पर इतिहास का सिंहावलोकन करने पर पता चलेगा कि यूरोप में सामंती अर्थव्यवस्था एवं जीवन-प्रणाली का विकास इस एक आविष्कार ने बहुत द्रुतगति से कर दिखाया। हुआ यह कि जब रकाव का आविष्कार हुआ तब अश्वारोही की पकड़ घोड़े पर बढ़ गयी, उसे अस्त्र-संचालन में अधिक सुविधा होने लगी, उसकी मार करने की क्षमता बढ़ गयी, और इस प्रकार अश्वारोही सेना का प्रभाव बढ़ गया। किंतु इस सेना का लालन-पालन करने के लिए बड़े खेत और खलिहानों की आवश्यकता पड़ने लगी और सामंती प्रथा का बीजारोपण हो

गया। कालांतर में कृषि और वाणिज्य भी इससे प्रभावित हुए और एक नयी जीवन-पद्धति का ही विकास हो गया। तो देखा आपने कि किस प्रकार मानवीय विकास के प्रारंभ से ही विज्ञान समाज को प्रभावित करता रहा है।

और चक्र या पहिये का आविष्कार तो इससे भी अधिक क्रांतिकारी सिद्ध हुआ। कुम्हार का चाक आज भले ही वचकाना प्रतीत होता होगा पर संपूर्ण मृत्तिका-शिल्प का उद्गम तो वहीं से हुआ। इतना ही नहीं तो कुम्हार या कुंभकार के कुंभ निर्माण से ही तो दर्शनशास्त्र को भी प्रतीक मिले। मानव समाज को अन्न-संग्रह एवं संरक्षण करने के लिए जो वर्तन मिले उससे कृषि-व्यवस्था को बल मिला। कमोबेश ऐसे ही परिवर्तन पहिए के आविष्कार द्वारा भी हुए। आखिर बैलगाड़ी ने यातायात के नये आयाम प्रस्तुत किये और विभिन्न समूहों को निकट आने की प्रेरणा दी-यात्राएं सुलभ बनीं, आवागमन बढ़ा, और सामाजिक संपर्क के मार्ग प्रशस्त हुए। विभिन्न समूहों में विचार-विनिमय एवं सामाजिक संसर्ग में वृद्धि हुई तथा वैचारिक आदान-प्रदान से सामाजिक चेतना में अभिवृद्धि हुई। कालांतर में यही चेतना जब व्यापक हुई तब सामूहिक संस्कृति की धारा का स्रोत फूट निकला और अपेक्षाकृत जड़ या स्थिर समूह गति-शील होने लगे। नये-नये समुदायों में परस्पर संबंध स्थापित होने लगे और एक

गहरी आत्मीयता का विकास होने लगा । नये समाज की रूपरेखा उभरने लगी । यह था एक छोटे से आविष्कार का प्रभाव ।

अब यह सर्वविदित है कि वैज्ञानिक आविष्कार ने समाज-जीवन के लगभग सभी अंगों को प्रभावित किया है । साहित्य, दर्शन, कला, संस्कृति, राजनीति, अर्थ-नीति कोई भी तो हो इससे अछूता नहीं रहा है । आखिर पश्चिम की दुनिया में जो आज असंतोष, अशांति और जीवन के अर्थ की तलाश में भटकते हुए सहस्रों मानवों को जैसा संक्रास उत्पन्न हो रहा है वह क्या इस तथ्य को इंगित नहीं करता कि जीवन-मूल्यों के प्रति गहरी शंकाएं जन्म ले चुकी हैं । कृषि प्रधान जीवन-प्रणाली को औद्योगिक क्रांति ने रूपांतरित कर दिया और अब औद्योगिक जीवन-पद्धति को स्वचालित यंत्रों ने बुरी तरह झकझोर दिया ।

बताया गया था कि जब यंत्र युग आयेगा तब मानव श्रम का मात्र आर्थिक उपभोग के लिए उपयोग नहीं किया जायेगा किंतु उसे सांस्कृतिक गतिविधियों की ओर प्रभावित किया जायेगा । आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति तो यंत्रों द्वारा होती रहेगी और मानव-समाज दार्शनिक-आध्यात्मिक उत्थान की ओर कला, साहित्य, संस्कृति के सोपानों पर चढ़कर अग्रसर होता रहेगा । इस प्रणाली में यंत्र द्वारा मानव-श्रम को विस्थापित करने की

बात की गयी थी । पर कालांतर में जब इलेक्ट्रॉनिक का विकास हुआ तब टैक्ना-लॉजी तथा इलेक्ट्रॉनिकी मिलकर टैक्नोट्रॉनी बन गयी । पश्चिम में तो उत्पादन की गति आकाश छूने लगी । परिणामतः एक सर्वथा नवीन जीवन-प्रणाली का विकास होने लग गया । अर्थतंत्र पर नये-नये दबाव उत्पन्न हो गये । जो उत्पादन हो रहा है उसकी खपत भी तो अनिवार्य है अतः मानव के उपभोग की दर भी उसी हिसाब से बढ़नी चाहिए । कार का जो मॉडल आज नया है वह साल भर में पुराना हो जाता है । कपड़ों के फैशन तो शायद छह महीनों में बदलते जा रहे हैं और टूथपेस्ट जैसी चीजें तो शायद एक सप्ताह बाद ही पुरानी हो जाती हैं । हर चीज जो आज है वह कल बदल रही है । मानों स्थिरता, टिकाऊपन, निरंतरता का स्थान अस्थिरता, परिवर्तन एवं क्षण-भंगुरता ने ले लिया हो ।

प्रश्न उठता है कि इस अस्थिर, क्षण-भंगुर, परिवर्तनशील पार्थिव जगत में कोई वस्तु शाश्वत क्यों हो ? फिर नैतिकता ही चिरंतन क्यों रहे ? फिर मानवीय संबंधों के पुराने आधार ही क्यों बने रहें ? तो जन्म होता है एक ऐसे समाज का, जिसमें केवल वर्तमान केवल यही क्षण, यही वस यही एक क्षण महत्वपूर्ण समझा जाता है—शेष तो अर्थहीन हो जाता है । साहित्य में भी तो इस विधा के दर्शन होने लगते हैं और दर्शन भी तो इससे अछूता

नहीं रहता । कौन जानता है कि जिस दिन त्रिध्रुवी वाल्व का आविष्कार हुआ था उसी दिन वैज्ञानिक ने दुनिया में एक सर्वथा नवीन समाज का शिलान्यास कर दिया था ।

अब आप कहेंगे कि यह तो प्रविधि के अवलम्बन से होने वाले परिवर्तन हैं । इसमें सीधे विज्ञान का हाथ कहां है ? विज्ञान की सैद्धांतिक गवेषणाओं से सीधे समाज पर क्या परिणाम हो सकते हैं ? भला आइंस्टाइन के सापेक्षता सिद्धांत का समाज पर क्या प्रभाव पड़ा ? निश्चय ही ऐसे प्रश्नों का सरल उत्तर देना कठिन होता है । इसका कारण है कि विज्ञान की प्रत्येक उपलब्धि को प्रविधि के रूप में प्रयोग करना सदा सर्वदा संभव नहीं होता । कुछ ऐसे भी परिणाम होते हैं जो समाज को शनैः-शनैः परंतु निश्चित रूप से प्रभावित करते रहते हैं और उसका अनुभव लंबे अंतराल के पश्चात् हुआ करता है । आइये, प्रश्न के इस पहलू पर भी कुछ चर्चा करें ।

समाज व्यक्तियों के समूह से ही तो बनता है अतः सामाजिक प्राणी के रूप में व्यक्ति को कैसा व्यवहार करना चाहिये, इसका ज्ञान कौन करायेंगा ? विज्ञान इस संबंध में भी हमारी सहायता करता है । आज 'सामाजिक-जीव विज्ञान' जैसे विषयों पर चिंतन हो रहा है । किसी व्यक्ति के व्यवहार किन-किन कारणों से निर्धारित होते हैं । क्या वह केवल वंश

परंपरा से प्रभावित होकर अपना कार्य व्यापार चलाता है या केवल परिवेश से ही प्रभावित होता है ? क्या मानवीय व्यवहार कुछ विशेष परिस्थितियों में विशेष उत्तेजनाओं द्वारा ही संचालित होता है, या वह अवचेतन मन की कुछ प्रक्रियाओं से भी परिचालित होता है ? विज्ञान मानव शरीर की संरचना एवं जैव क्रियाओं का अध्ययन कर रहा है । आज यह संभव हो सका है कि मानवीय व्यवहारों का सूक्ष्म अध्ययन किया जा सके । आनुवंशिक प्रभाव, परिवेश के परिणाम, सामूहिकता की प्रेरणाएं इत्यादि जितने भी कारण व्यक्ति के व्यवहार की व्याख्या कर सकते हैं उन सबका विवेचन विज्ञान कर रहा है । इस प्रकार अपने को और अधिक अच्छी तरह समझाने के लिए मार्ग प्रशस्त हो रहे हैं । एक अधिक स्वस्थ समाज का निर्माण करने के लिए यह बहुत महत्वपूर्ण पग है ।

प्रश्न यह भी उठता है कि यह सब तो संपन्न देशों की ही चर्चा है । विज्ञान विकासशील देशों के समाज-जीवन को किस प्रकार प्रभावित करेगा ? जहां दो जून रोटी की की ही समस्या मुंह बाये खड़ी हो वहां इन ऊंची बातों का क्या अर्थ ? यह निर्विवाद है कि विज्ञान एवं उसके उपकरणों के समक्ष यह सबसे गंभीर चुनौती है । परंतु विज्ञान इस दिशा में भी सक्रिय है । मानव जीवन के स्तर का उन्नयन जिन तत्त्वों पर आधारित है उन सबका पोषण करने में

विज्ञान पूर्ण रूप से सहायक है। इन देशों की मुख्य समस्याएं हैं भोजन-वस्त्र का अभाव, ऊर्जा के स्रोतों की कमी, भारी जनसंख्या एवं अशिक्षा इत्यादि। इन देशों के लिए विज्ञान का सैद्धांतिक पक्ष गौण है और प्रविधिक पक्ष महत्वपूर्ण। विज्ञान एवं प्रविधि इन देशों में केवल बौद्धिक विलास अथवा उद्योग-तंत्र की अनिवार्यता के कारण उपयोगी नहीं होते प्रत्युत जनसेवा के उपकरण के रूप में समाज को प्रभावित करते हैं। जनसंख्या नियंत्रण, शिक्षा-प्रसार, अधिक कृषि उत्पादन, इन सब क्षेत्रों में वैज्ञानिक सदा समाज की सेवा के लिए उपलब्ध हैं।

विज्ञान का समाज पर प्रभाव एक अन्य रूप में भी द्रष्टव्य है। वह है एक दृष्टिकोण के विकास की चेष्टा। परंपरा, रूढ़ि, अंधविश्वास, कठमुल्लापन, यह सब स्वस्थ समाज के विकास में बाधक है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण मस्तिष्क के इस कूड़े-कचरे को साफ करता है। सत्य को अंगीकार करने, सत्य का अनुसंधान करने की प्रवृत्ति, तर्क, प्रमाण एवं अनुभव की साक्षी पर ही निष्कर्षों की स्थापना की शिक्षा समाज पर वैज्ञानिकता का प्रभाव छोड़ती जाती है। निश्चय ही आज के मानव समाज में पहले की अपेक्षा इन तत्त्वों का प्रभाव अधिक परिलक्षित होता है।

राजनीति भी विज्ञान से अछूती नहीं है। परमाणु अस्त्रों की राजनीति तो जग-

जाहिर है पर अब दो देशों के परस्पर संबंधों में उनकी वैज्ञानिक विकास की अवस्था भी महत्वपूर्ण भूमिका निवाह रही है। विकसित विज्ञान वाला छोटा देश भी बड़े-बड़े देशों के समकक्ष अंतर्राष्ट्रीय महत्व रखता है। अतुलित प्राकृतिक साधनों से संपन्न, पर वैज्ञानिक शिक्षा में दुर्बल देश अन्यो के आश्रित होने पर विवश हो जाते हैं। अतः अंतर्राष्ट्रीय राजनीति भी विज्ञान से प्रभावित रहती है।

यह कहा जा सकता है कि क्या विज्ञान ही समाज को प्रभावित करता है और समाज का विज्ञान पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता? यह बहुत जटिल प्रश्न है और इसका उत्तर सरल नहीं है। समाज का प्रभाव भी विज्ञान पर पड़ता ही है। वैज्ञानिक हवा में तो रहता नहीं? वह एक समाज से जुड़ा हुआ है और एक समाज उसका विकास होता है। विज्ञान सार्वभौमिक होते हुए भी वैज्ञानिक देश-काल से बंधा हुआ रहता ही है। उसकी एषणाएं, प्रेरणाएं और आकांक्षाएं परिवेश से प्रभावित होती ही हैं। अतः समाज की स्थिति से प्रभावित हुए विना वैज्ञानिक भी नहीं रहता। उदाहरण के लिए द्वितीय विश्व-युद्ध के एक प्रसंग पर विचार करें। जर्मनी में वैज्ञानिकों का बड़ा भारी समुदाय था और इन मूर्धन्य वैज्ञानिकों में अच्छी संख्या यहूदियों की भी थी। हिटलर की नीति के परिणाम स्वरूप अनेक वैज्ञानिकों को जर्मनी छोड़ना पड़ा। यह सभी

हिंदी डाइजेस्ट

बोध कथा

कामनाओं का जाल

नोबल-पुरस्कार-विजेता जर्मन साहित्यकार हरमन हैस ने एक बड़ी मीठी और आदमी के अंतरमन के सूक्ष्म भावों को उद्घाटित करने वाली लघुकथा लिखी है। एक रात भगवान ने सपने में प्रकट होकर हैस से कहा—‘तुम अपनी प्रसन्नता के लिए मुझसे कुछ भी मांग सकते हो। बोलो, क्या मांगते हो?’

‘मैं एक बड़ा मकान चाहता हूँ, अपने सभी पड़ोसियों के मकानों से बड़ा मकान।’

‘ठीक है, ऐसा हो जायेगा,’ भगवान ने कहा। ‘कुछ और चाहिए?’

‘मेरे मकान में एक बड़ा बगीचा हो जिसमें खूब पेड़-पौधे हों। ऐसा बड़ा बगीचा जैसा मेरे किसी पड़ोसी के पास न हो।’

‘ठीक है, हो जायेगा। और कुछ?’

‘मेरी ये इच्छाएं अभी इसी वक्त पूरी हो जायें।’

‘चलो, यह भी हो जायेगा। कुछ और?’

‘आप जब देने के मूड में ही हैं, तो कृपया एक अंतिम इच्छा और पूरी कर दें।’

‘बोलो, क्या चाहते हो?’

‘मेरी अंतिम इच्छा यह है कि मेरे बगीचे के पेड़ों पर मेरे सब पड़ोसी लटके दिखायी दें। इससे मुझे बड़ी खुशी होगी।’

हैस ने कथा के अंत में लिखा है कि जागने पर मुझे बड़ी हैरानी और घबराहट हुई। मैं अपने को बड़ा धार्मिक और चरित्रवान मानता था, मगर मेरे अंदर ऐसी-ऐसी इच्छाएं भरी पड़ी हैं!

प्रस्तुति : हंस

को ज्ञात था कि जर्मन वैज्ञानिक एक संहारक अस्त्र का निर्माण कर रहे हैं। अतः इन वैज्ञानिकों ने अमेरिका को विवश किया कि भयानक विनाश से विश्व को बचाने के लिए यह आवश्यक है कि उचित रोकथाम की जाय। विज्ञान के आविष्कारों की एक नयी ही शृंखला ने इस घटना से जन्म लिया। विज्ञान और समाज इस प्रकार परस्पर जुड़े हुए हैं कि इनको पृथक करना संभव नहीं। प्राचीन भारत में तो विज्ञान

जीवन का अंग ही बन गया था। आज कहने में यह बात अटपटी लगती है पर प्राचीन भारतीय जीवन-पद्धति वैज्ञानिक थी। सृष्टि के रहस्यों को समझकर मानव एवं प्रकृति में साम्य बनाये रखकर ही विज्ञान अपने सामाजिक दायित्व का निर्वाह कर सकता है और यही मानव समाज की विज्ञान से अपेक्षा है।

—भौतिकी विभाग, इलाहाबाद विश्व-विद्यालय, इलाहाबाद, उ. प्र.



समीक्षा तीन नयी किताबों की



‘तन्त्र-विद्या’ : श्री करणीदान सेठिया;
प्रकाशक : सेठिया ब्रदर्स ९, आरमेनियन
स्ट्रीट, कलकत्ता-७००००१, पृष्ठ : २४८;
मूल्य : १००)

भारतीय वाङ्मय में तन्त्रशास्त्र का स्थान और महत्व दोनों ही असाधारण हैं। अथर्ववेद स्वयं तन्त्रमय है। कालान्तर में यह महान् शास्त्र अपने विपुल विषय विस्तार की दृष्टि से निगम परम्परा से पृथक् होते हुए, आगम परम्परा के रूप में स्वतंत्र रूप से विकसित होता, रहा। कालक्रम में यह शैव, शाक्त, सौर, गाणपत्य, वैष्णव, जैन, बौद्ध आदि अनेक सम्प्रदायों की परम्पराओं से जुड़ता हुआ वाम और दक्षिण प्रभृति स्वरूप भेदों से भिद्य हो उठता है। वैसे तो विश्व की कोई भी आदिम एवं सांस्कृतिक सभ्यता ऐसी नहीं है, जहां तन्त्र की कोई न कोई विशिष्ट परम्परा प्राप्त न होती हो। भारतीय संस्कृति की पहचान ही विश्व में निगम और आगम संस्कृति के रूप में सर्वप्रसिद्ध है। निगम जहां वेद हैं, आगम तन्त्र हैं। यजुर्वेद का तो प्रसिद्ध कथन है-‘तन्त्रायिणे नमः’। यजुर्वेद का यह महावाक्य भारतीय संस्कृति के तन्त्रमय एवं मन्त्रमय स्वरूप को ही अभिव्यक्त करता है।

श्री करणीदान सेठिया का यह ग्रंथ

तन्त्र विद्या का एक श्रेष्ठ समुच्चय ग्रंथ है। विद्वान् लेखक ने ग्रंथ को प्रयोग संकेद्रित करते हुए तन्त्र की प्रायः बहुविध सामग्री का संकलन किया है। वे चाहे वैदिक साधना के प्रयोग हों या शाक्त, शैव, वैष्णव, गाणपत्य, जैन एवं बौद्ध, यहां तक कि कुछ प्रयोग यहूदी और इस्लाम संस्कृति की तन्त्र परम्पराओं के भी दिये गये हैं। मनुष्य, पशु-पक्षी-तन्त्र के साथ-साथ, शान्ति, स्थम्भन, उच्चाटन, कल्प, वश्य, विद्वेषण, मारण आदि तंत्रों के भी अनेकविध प्रयोग पुस्तक में विद्यमान हैं, जो आचार्य सेठिया के गंभीर, मनन, चिन्तन, शोध और अनुशीलन के परिचायक हैं। वज्रयान, सहजयान और मंत्रयान की साधना भूमि अत्यंत गुह्य रही है, वह तंत्र साहित्य का एक ऐसा युग था, जिसमें शैव, शाक्त, जैन, बौद्ध आदि सभी तान्त्रिक परम्पराएं एकाकार हो उठी थीं।

विद्वानों ने उस साहित्य का सैद्धान्तिक विवेचन तो समय-समय पर किया है, पर उन गुह्य एवं परम रहस्यमय प्रयोगों का विश्व आज भी यथावत् रहस्यमय ही बना हुआ है। आचार्य सेठिया ने इसी प्रकार के परम रहस्यमय प्रयोगों का उद्घाटन ‘तंत्र-विद्या’ में किया है। इसके लिए लेखक ने मंदिरों, मठों, उपाश्रयों

वैयक्तिक संग्रहालयों से सम्पर्क स्थापित किये हैं। कितनी ही छिपी हुई पुरानी फड़ें, ताड़पत्रांकित सामग्री, यहां तक कि बड़े-बड़े तान्त्रिकों से भी अमूल्य सामग्री प्राप्त की गयी है। देवी, यक्षिणी, वीर, परी, पीर, जिब्राइल, प्रेत, पिशाच, पुतली, मूठ आदि की विचित्र और रहस्यमय साधनाएं जहां ग्रंथ को पूर्णता प्रदान करती हैं, वहीं वैज्ञानिक दृष्टि से वह समाजशास्त्रीय पक्ष को भी सामने लाकर खड़ा कर देती हैं।

फलतः ग्रंथ सर्वसाधारण के लिए न होकर कुछ विशेष प्रकार के वर्ग तक ही सीमित हो जाता है। ग्रंथ को पढ़ने के पश्चात् सामाजिकता के पक्ष की दृष्टि से भी कदापि आंखें नहीं मूंदी जा सकतीं। कहीं विषय की अपनी सीमाएं भी लेखक को पराधीन बना देती हैं, यही सत्य तंत्र के इस परिशीलनकर्ता के साथ भी इस ग्रंथ के संदर्भ में है। आचार्य सेठिया ने इसे प्रयोग प्रधान ग्रंथ के रूप में प्रस्तुत किया है। प्रयोग प्रधान होते हुए भी ग्रंथ में सैद्धान्तिक निर्वचन का अभाव सर्वत्र खटकता है।

इस युग में महर्षिकल्प स्वर्गीय शिवचन्द्र विद्यार्णव ने अपने सुप्रसिद्ध 'ग्रंथ-तंत्र तत्त्व' के माध्यम से आज के आधुनिक शिक्षित वर्ग का ध्यान सर्वप्रथम आकर्षित किया। कालान्तर में सर जान जार्ज उडरफ ने इस शास्त्र पर अनेक ग्रंथों की रचना कर इसे लोकप्रिय बनाने का कार्य किया।

हमारे वर्तमान युग के आचार्य अभिनव गुप्त स्वर्गीय गोपीनाथजी कविराज ने अपने गंभीर निर्वचन द्वारा इस महान् शास्त्र को पुनः वही प्राचीन प्रतिष्ठा एवं गरिमा प्रदान की जो १९ वीं शती के अंत तक पहुंचते-पहुंचते क्षीणप्राय हो चुकी थी। लगता है, इस ग्रंथ के विद्वान लेखक ने तंत्र को प्रयोग सुलभ बनाने का पुनः एक श्रेष्ठ प्रयास किया है। —वासुदेव पोद्दार

०००

'गवाह गैरहाजिर'; लेखक : चन्द्रकिशोर जायसवाल; प्रकाशक : सरस्वती प्रेस, २/४३ अन्सारी रोड, नयी दिल्ली-२; पृष्ठ संख्या १७६; मूल्य : चालीस रुपये।

एक ताजा हवा के झोंके की तरह, व्यंग्याभिव्यंजना के सशक्त रचनाकार चन्द्रकिशोर जायसवाल का यह प्रथम लघु उपन्यास पहले चकित करके फिर अपने आप में विभोर कर देता है।

आज के भारत के विगड़ते-बिखरते परिवार का खाका, यह उपन्यास मुख्यतः वृद्ध किशुन साह, उसके छोटे बेटे रामशरण, पतोहू तिनटंगावाली के छोटे-से परिवार के माध्यम से खींचता है, बिहार के एक अनजाने-से कस्बे कठौतिया के घर-मुहल्लों के बीच, और मानव मन की अनगिनत भूलभुलैयाओं में घुमा लाता है।

कहने को 'गवाह गैरहाजिर' की कथा-वस्तु संक्षिप्त है—एक छोटे देहाती व्यापारी किशुन साह ने अपनी जायदाद का बंटवारा अपने तीन बेटों के बीच कर दिया है और

वयं सबसे छोटे बेटे रामशरण के साथ रहने लगता है। अनजाने ही किशुन साह परिवार से लगभग त्यक्त बूढ़ों की जमात में शामिल हो जाता है। उसे अपने बुढ़ापे की छाया दिनोंदिन लंबी और भयावनी दिखाई देने लगती है। छोटी-छोटी घटनाओं में घटती जिदगी के पल-पल बीतते हेस्से को वह भोगता और भुगतता है, अपने इस परिवार के साधारण किन्तु जीवंत सदस्यों के माध्यम से। फिर एक ऐसा बिंदु आता है, जब वह ऊब जाता है अपने आप से। अपने अस्तित्व को व्यक्त और प्रमाणित करने के लिए किशुन साह कुछ अकल्पनीय तरीके आजमाने के लिए विवश हो जाता है, और फिर इन सबसे भी ऊबकर वह सब कुछ छोड़कर चला जाता चाहता है बाबा वरुणेश्वर की धारण में परन्तु मानव-मन की विवशता यहां भी उसका साथ नहीं छोड़ती।

उपन्यास की इस कथावस्तु को चन्द्र-केशोर जायसवाल ने कुशल चित्तेरे की तरह अद्भुत-अनुभूत बारीकियों से संवारा है। ग्रामीण परिवेश में बुढ़ापे की समस्या, नयी पीढ़ी का बूढ़ों के साथ व्यवहार और मनोभाव, बूढ़ों के अपने अहं और छिनते अधिकार की रक्षा के प्रयत्न, संयुक्त परिवार में इन सबों से उत्पन्न तीखे-मीठे प्रसंग इन सबों का चित्रण बहुत ही प्रभावशाली है।

उपन्यास की भाषा सजीव, लोकपूर्ण एवं अभिव्यंजनात्मक है। लेखक ने बड़ी

बड़ी बातों को चुभते वाक्यखंडों से पैना और असरदार बनाया है। जो वर्णन विस्तार चाहता है, उसे मुहावरों और प्रवण शब्दावलियों से संक्षिप्त करके भाषा पर अपने अनोखे अधिकार का परिचय दिया है—

‘इस झगड़े से ढेर सारे लोगों के पाप धुल गये और ढेर सारे कपूत, जिनका खुद भी अपने कपूत होने का विश्वास जड़-बढ़ हो चुका था, अब डंके की चोट पर अपने को सपूत घोषित करने के लिए कुलबुलाने लगे। जिन्होंने कभी अतीत में बाप को बुरा भला कहा था, डांट-डपट की थी, मरने पर मुंह में आग तक न देने की भारी धमकी दे डाली थी और भरने से पहले ही हाथ-पैर तुड़वा देने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध हो चुके थे, उन सबने अपने को तत्काल मन ही मन पाप-मुक्त घोषित कर दिया। जिन्हें भविष्य में अपने बाप से उलझने का संदेह था, बाप को डांटने की जरूरत महसूस हो रही थी, विवेकी और दूरदर्शी की तरह जो हर स्थिति के लिए पहले से तैयार हो जाना चाहते थे, उन सबने अपने-अपने मन में सीमाएं निर्धारित कर लीं। उस दिन ढेर सारे कपूत अकस्मात् सपूत हो गये और हृत्भाग्य पिता अकस्मात् भाग्यवान् !’

ये और ऐसा ही वाक्यावलियां इस उपन्यास की झगड़-झाड़ प्रभावान बनाती हैं। व्यंग्य को भावना और परिस्थिति (शेषांश पृष्ठ २१ पर)

वैदिक उपन्यास 'काश्यपायन' का एक पर्व

परिव्राजक

कैलाशनाथ ओझा



[संदर्भ कथा : ऋषि असित देवल का शिष्य परिव्राजक देवक उत्तरापथ से दक्षिण पथ में आकर कावेरी-तट पर स्थित एक गांव में वृवू पणि का अतिथि बनता है। वह उसका पुत्री सोमा की शल्य-क्रिया द्वारा चिकित्सा करता है। सोमा के स्वस्थ होते ही वह कपाटपुरम् की यात्रा करता है। कपाटपुरम् में महर्षि अगस्त्य एवं लोपामुद्रा का आश्रम है।

कपाटपुरम् । उत्तरापथ एवं दक्षिणापथ की संस्कृतियों का संगमस्थल । यहां उत्तरापथ के वणिकों, पणियों, शिल्पियों तथा नेत्रदल मक्कलों की अलग-अलग बस्तियां थीं । चौड़ी सड़कों, इष्टिका निर्मित अट्टालिकाओं, दीघिकाओं तथा स्नानागारों से नागरिकों की संपन्नता तथा सुरुचि का पता लगता था । नगर में अंदणर जाति के लोगों को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था । ये लोग यज्ञ, पूजा एवं अध्यापन-वृत्ति द्वारा अपनी जीविका निर्वाह करते थे । शासन अरशर जाति के लोगों के हाथ में था । अरशर मुख्यतः आयुधजीवी थे और कई गणों में विभाजित थे ।

कपाटपुरम् में शिव, कोट्टुवाई, मुरुगन एवं मायोत नामक देवताओं के विशाल मंदिर थे । अगस्त्य ऋषि के प्रभाव से इन मंदिरों में वेद मंत्रों से हवन होता था ।

दक्षिणापथ के अंदणर तथा उत्तरापथ ऋषि एवं ब्राह्मण परस्पर सहयोगपूर्वक पूजा-विधान का निर्णय करते थे । वैदिक संस्कृत अधिकांश अंदणरों की समझ आने लगी थी, उसी प्रकार ऋषि भी तेन मोलि भाषा को समझने लगे थे ।

कपाटपुरम् पत्तन का सौवीर, एवं पुहोर से तो संबंध था ही, दक्षिण समुद्र के कई पत्तनों से भी व्यावसायिक संबंध था । वर्तमान कन्याकुमारी अंतरीय के दक्षिणी हिस्से में 'कुमरि' नामक एक भू-खंड था, जहां 'कुमरि' नामक एक नदी भी थी । इस प्रदेश से प्रवाल प्राप्त होता था । इसके अतिरिक्त कावेरिपत्तन नामक एक सामुद्रिक पत्तन भी था (ये सारे भू-भाग समुद्र-मग्न हो गये) ।

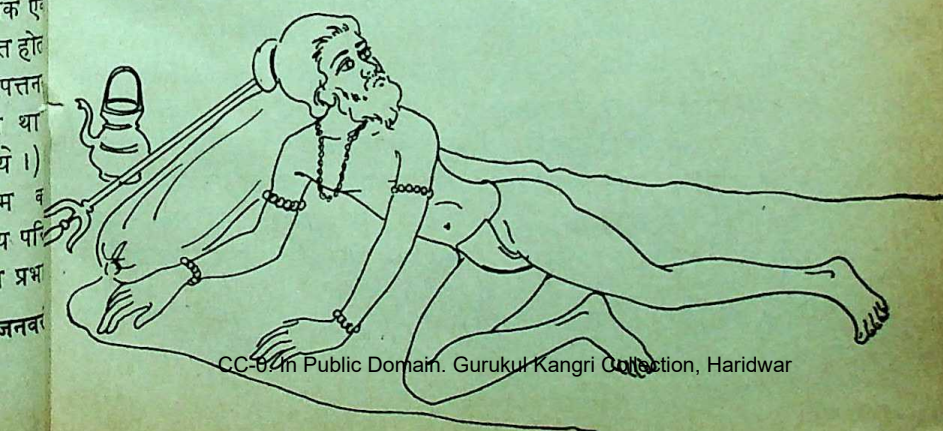
देवक इन दिनों अगस्त्याश्रम का अतिथि था । अगस्त्याश्रम की भव्य परिधि एवं उद्देश्य से देवक अत्यंत प्रभाव

वित हुआ था। आश्रम में योग-साधना के अतिरिक्त धनुर्विद्या की भी शिक्षा दी जाती थी। अगस्त्य ऋषि धनुर्विद्या के सर्वोच्च ज्ञाता थे। आश्रम में विभिन्न क्षेत्रों से लाये गये पशु-पक्षी का एक विराट संग्रह था। अगस्त्य ऋषि जानवरों की प्रकृति एवं पहचान के विशेषज्ञ थे। कपाट-पुरम् की व्यावसायिक समृद्धि के कारण आश्रम की प्रत्येक योजना बिना किसी विलंब के पूरी हो जाती थी।

एक दिन देवक अगस्त्य ऋषि की कुटिया में बैठा वार्त्तालाप कर रहा था। अगस्त्य-पत्नी लोपामुद्रा, आश्रम के कार्य में, कुटिया से बाहर व्यस्त थीं। 'तुमने मेरे व्यक्तिगत जीवन के बारे में पूछा है। तुम्हारी जिज्ञासा विशुद्ध है। तुम आचार्य असित देवल जैसे ऋषि की छत्र-छाया में शिक्षित हुए हो। तुम्हारी जिज्ञासा वेदगर्भा है'-ऋषि अगस्त्य ने अपनी श्वेत दाढ़ी को सहलाते हुए स्मित की मुद्रा में कहा।

'मुझे उत्तराखंड के ऋषि मैत्रावरुण कहते हैं। मेरे पिता मित्र एवं वरुण देव-

ताओं के उपासक थे। किंतु ब्राह्मणत्व के अभाव में उन्हें ऋषि-पद नहीं मिला था। जन्मना ब्राह्मण होते हुए भी उन्होंने ब्राह्म-चर्या का अवलंबन लिया था। वे योग



तथा औषधियों के ज्ञाता थे । आखेट करना उन्हें अच्छा लगता था । वे जानवरों के तत्त्वज्ञ थे । यज्ञ, पूजा-पाठ आदि में उनकी कोई विशेष रुचि नहीं थी । हमारा मूल स्थान उत्तराखंड में सरस्वती के तट पर था । उन्होंने विधिवत विवाह किया था । किंतु मेरे जन्म के बाद । पाणिगृहीता पत्नी से वसिष्ठ का जन्म हुआ । तुम्हें मालूम होगा कि मैं वसिष्ठ का अग्रज हूँ ।

‘एक दिन मेरे पिता, आखेट करते हुए, हिमवत के अरण्य में चले गये तथा वराह-दंत से घायल हो गये । एक किरात-कुमारी द्वारा उनकी प्राण-रक्षा हुई । उसके सौंदर्य से मेरे पितृदेव इस प्रकार प्रभावित हुए कि उसका नाम उन्होंने उर्वशी रख दिया । पितृदेव किरात-परिवेश में कुछ दिनों तक रहे और उर्वशी से उनका संबंध हो गया । उसने मुझे अपने गर्भ में धारण किया । मेरे जन्म के समय उर्वशी को किरात-नियम के अनुसार दंडित होना पड़ा । उसने मेरे पिता के स्थान का पता अपने बाप को दे दिया । किरातों ने उर्वशी को अपनी देवी के सामने बांधकर पत्थरों के आघात से मार डाला । उसके बाप मुझे एक मिट्टी के पात्र में रखकर मेरे पिता के स्थान पर पहुंचा गये । इसीलिये मुझे ‘कुंभज’ कहा जाने लगा । पितृदेव से मैंने शिक्षा प्राप्त की । कई द्राव्य चरणों में भी रहा । काश्यप ऋषियों ने मुझे वेद की शिक्षा भी दी । ऋग्वेद के कई मंत्रों का मैं द्रष्टा भी बना ।

‘मेरा जन्म रहस्मय ढंग से हुआ था और मेरी माता का वृत्तांत किसी को भी ज्ञात नहीं था । आर्यजनों ने मुझे प्रारंभ में उचित स्थान नहीं दिया । मेरे अनुज वसिष्ठ को पुरुषों ने अपना पुरोहित बना लिया मैं सरस्वती-तट पर ही बहुत दिनों तक योगाभ्यास करता रहा । इस बीच सरस्वती की तट-भूमि पर नागों का प्रभाव बढ़ लगा । वे हिमवत की तराई में, किरातों द्वारा आक्रांत हो, सरस्वती तट की ओर भागने लगे । भोगवती में उन्होंने अपने राजधानी बनायी । नागों के आ जाने के बाद भी मैं अपने आश्रम में टिका रहा । भाषा सीखने की क्षमता, मेरी सामान्य से अधिक रही है । मेरे पितृदेव नागों और किरातों की भाषाओं से परिचित थे । पहले से ही नागों की भाषा जानता था नागों से घुलते-मिलते विलंब नहीं हुआ ।

‘नागराज अर्क से मेरी मित्रता हुई मैं आये दिन भोगवती के राजप्रासाद का सम्मानित अतिथि रहने लगा । नाग जाति के स्त्री-पुरुष बड़े सुंदर होते हैं । उनकी वस्त्राभूषण की रुचि सौवीर एवं दक्षिणापथ के असुरों से भी बढ़-चढ़ कर है मेरा उपयोग वे कृषि एवं पशु विशेषज्ञ तथा चिकित्सक के रूप में करते थे ।

‘नागराज अर्क की कन्या लोपामुद्रा मेरी शिष्या बनी । मैंने उसे वैदिक संस्कृत की शिक्षा दी । निरुक्त एवं आयुर्वेद से भी उसे परिचित कराया । धनुर्विद्या भी उसने सीखी । वेद-मंत्र उसे कंठस्थ होने लगे ।

और वह स्वयं कई मंत्रों की द्रष्टा बनी ।

‘लोपामुद्रा के साथ मेरा संबंध अत्यंत वनिष्ठ हो उठा था । अब वह युवती हो चली थी । नागराज ने उसके विवाह के लिए नागजातीय रीति से व्यवस्था करने का निश्चय किया ।

‘शरद ऋतु की मधु मंत्र-स्ताता यामिनी थी । ज्योत्स्ना अपना वैभव उंडेल रही थी । मैं भोगवती राजप्रासाद की अतिथि-शाला वाले उद्यान में एक पुष्पित हरसिंगार के नीचे बैठकर प्रकृति के उदार सौंदर्य का मधु-पान कर रहा था ! लोपामुद्रा मेरे शुष्क जीवन में पावस बनकर आयी थी । शरद का वैभव पावस का दान था । मैं विचार-मग्न था । उसी समय लोपामुद्रा मेरे निकट आयी । स्वर्णतार-खचित श्वेत कौपेय वस्त्र में वह साक्षात् शारदीया ज्योत्स्ना की जीवंत मूर्ति लग रही थी ।

‘क्या सोच रहे हैं, आचार्य ?’—लोपामुद्रा ने पूछा ।

‘योग और भोग के बीच समन्वय की स्थापना कर रहा हूँ । तुम इधर कैसे आ गयीं ?’—मैंने पूछा ।

‘योग को अकेले देखकर भोग को दया आ गयी और उसने मुझे यहां आने की प्रेरणा दी ।’—लोपामुद्रा ने सूक्ष्म व्यंग्य करते हुए कहा ।

‘योग और भोग ! तो क्या तुम भोग को योग से श्रेष्ठ मानती हो ?’—मैंने पूछा ।

‘मैं इन सूक्ष्म विषयों को क्या जानूँ ? नाग जाति स्थूल एवं यथार्थ को जानती

है । वर्तमान ही उसके लिए सर्वस्व है । कार्य-कारण का संबंध बैठाने बिना नाग जाति किसी भी तत्व पर विश्वास नहीं करती । सृष्टि का जनक भोग है । यह ज्योत्स्ना निशा । नीले आकाश में असंख्य ज्योति-पिंडों की प्रकाश-यात्रा । हरसिंगार के फूलों की मादक सुगंध । आप और मैं । मैं तो सर्वत्र भोग ही भोग देख रही हूँ । इसी भोग को आप आनंद कहते हैं । भोग के ऊर्ध्वीकरण से आनंद प्रसूत होता है, आप ही ने एक दिन बताया था । पुरुष या ब्रह्म अनंत भोग की अनंत सामग्री का समन्वित रूप है । उसकी जय-यात्रा अनंत है, शाश्वत है । भोग ही एक दिन योग में परिणत होगा । सृष्टि की समस्त प्रक्रिया स्थूल द्वारा अपने कारण रूप का संधान है । स्थूल जब सूक्ष्मावस्था में पहुंचेगा, समस्त जीव-समष्टि अपने ज्योति-मय अद्वैत स्वरूप को पहचान लेगी । अतः भोग के बाहर योग का अस्तित्व है ही नहीं ।’—लोपामुद्रा ने कहा ।

‘मैं एक टक उसकी रूप-सुधा का पान करता रहा । तर्क की क्षमता समाप्त हो चुकी थी ।

‘उसने पुनः कहा, ‘आचार्य, अपूर्व ज्योत्स्ना है । हरसिंगार की सुगंध से पवन मतवाला हो उठा है । प्रकृति का अंग-प्रत्यंग सृष्टि की प्रथम सुहागरात का स्मरण कर रहा है । आप ही ने तो बताया था—किसी शरद की मदभरी ज्योत्स्ना ने प्रथम मानव शिशु को अपने

अंक में उतारा होगा। मैंने आपके निर्देशानुसार उपा की उपासना की है। इस उपासना में अपूर्व शक्ति है। अक्षय यौवन एवं नित्य नवरूप की उपलब्धि का आभास मुझे मिलने लगा है। मेरे रूप और यौवन के सूक्ष्म धरातल तक पहुंचने की किसमें क्षमता है? जो योगारूढ़ है। मेरा परिणय उसी के साथ होगा जो मेरे असीम सौंदर्य एवं अक्षय यौवन की आनंद-सरिता में मज्जन कर सके। मैं अपनी मादकता से स्वयं आकुल हूं। वासना-विद्ध भोगी के लिए मैं विष तुल्य हूं। किंतु योगी मुझे प्राप्त कर अमृतत्व की उपलब्धि करेगा। मैं भोग और योग का समन्वित रूप हूं। मेरे भीतर प्रकृति और पुरुष एकाकार हो चुके हैं। इस स्वरूप के शिल्पी आप हैं। आप ही इसे भोगने के अधिकारी भी हैं...' लोपामुद्रा ने भावावेश में कहा।

‘तो क्या तुम मुझे योग-भ्रष्ट करना चाहती हो?’—मैंने पूछा।

‘नहीं। बात ऐसी नहीं। आपने योग की शिक्षा देते समय मैत्री, करुणा, मुदिता एवं उपेक्षा की चर्चा की थी। इन सूक्ष्म मनोभावों को व्यापनशील बनाने तथा ध्यान एवं धारणा में लाने की प्रक्रिया भी आपने मुझे बताया थी। आज समस्त सृष्टि को मैत्री और करुणा से प्लावित करना है। विकास की प्रक्रिया जहां कहीं भी अवरुद्ध हो चुकी है उसे मुक्त कर पुनः गतिशील करना है : व्यष्टि-योग समष्टि

को योगारूढ़ किये बिना पूर्णत्व प्राप्त नहीं कर सकता। मैंने इसी साधना के लिए आपको अपना निश्चय किया है।’

‘मुझे साधना से नीचे न उतारो—’ ससंकोच कहा।

‘मैं आपकी साधना का पुरस्कार हूँ...’ लोपामुद्रा ने कहा।

‘मुझे कुछ समय दो। पर एक बात नागराज अर्क तो तुम्हारे विवाह की कर रहे थे। वे किसी नाग कुमार से तुम्हारा विवाह करेंगे।’ मैंने कहा।

‘मैंने पिताजी को सारी बातें बताई हैं। वे प्रस्तुत हैं। किंतु नाग रीति से मेरा वरण करना पड़ेगा।’

‘आचार्य, आप लोपामुद्रा को अपवना सकते हैं। किंतु नाग रीति के अनुसार पहले उसका हरण करना पड़ेगा। इसकी व्यवस्था कर दी है। आप तैयार हैं। तेजस्वी हैं। मेरी कन्या के उपयुक्त हैं।’ नागराज अर्क ने सहसा वृक्ष के पीछे से सामने आते हुए कहा।

‘और यह तुम्हारा महर्षि अगस्त्य चोरों की तरह लोपामुद्रा का हरण भाग चला। उन दिनों वसिष्ठ का आश्रम विपाशा के तट पर था। मैं लोपामुद्रा लिये वहीं जाने लगा। रास्ते में अथर्व का आश्रम था। उसके बाद त्रित्सुओं का आश्रम था। मैं कुछ दिनों तक त्रित्सुओं राजा गांधी का अतिथि रहा। मैंने गांधी को सारी बातें बता दी—साथ-ही-साथ

प्रानके सामने मैंने लोक-कल्याण तथा
 नाना कार्यिकरण की एक योजना रखी । मेरा
 माने वैश्य असुरों, किरातों, नागों तथा दक्षिणा-
 थ के निवासियों को वेदास्त्व करना था ।
 धीराज के परामर्श से मैंने लोपामुद्रा
 ने भरद्वाज के आश्रम में रख दिया ।
 रद्वाज की उदारता से मैं प्रभावित
 आ । उसके बाद अकेले ही भरतों के
 जनपद की ओर चल पड़ा । मेरे अनुज
 सिष्ठ मुझे देखकर अत्यंत प्रसन्न हुए ।
 राजा दिवोदास से मेरा परिचय हुआ ।
 ने भी एक आश्रम की स्थापना की ।
 राजकीय सहयोग के कारण मेरा यश बढ़
 आला । सप्तसिंधु के राजाओं एवं सामंतों
 पुत्र मेरे आश्रम में व्रतचारी बनने लगे ।
 दास और विश्वरथ भी मेरे शिष्य बने ।
 'उन्हीं दिनों भरतों और त्रित्सुओं ने
 शंवर के आयसी दुर्गों पर आक्रमण किया ।
 विश्वरथ को शंवर ने पकड़ लिया । शंवर
 की पुत्री के साथ विश्वरथ का प्रेम हुआ ।
 शंवर के पराजित होने के बाद विश्वरथ
 शंवर की पुत्री के साथ भरतों के जनपद
 आये । इसी बीच लोपामुद्रा भी मेरे
 आश्रम में आ चुकी थी । लोपामुद्रा के सह-
 योग से विश्वरथ एवं शंवर-कन्या का
 विवाह-संस्कार संपन्न हुआ ।
 'सिष्ठ ने मेरे एवं लोपामुद्रा के विवाह-
 संबंध का विरोध किया । उनके अनुसार
 वर्ण एवं जाति के पृथक् अस्तित्व के आधार
 ही समाज टिक सकता है । मैं भरतों
 के जनपद से विदर्भ की ओर चल पड़ा ।

विदर्भ राजा ने मेरा समुचित सत्कार
 किया ।

'तब तक लोपामुद्रा के साथ मेरा शारी-
 रिक संबंध नहीं हुआ था । हम दोनों पृथक्
 कक्षों में रहते थे । उस समय की मानसिक
 अवस्था का वर्णन मेरे एक मंत्र में है :
 नदस्य मा रुधतः काम आगन्निता आजातो
 अमृतः कुतश्चित् ।

लोपामुद्रा वृषणं नीरिणाति धीरमधीरा
 घयति श्वसन्तं ॥

(ऋक् ४।१।३९)

(रोकते हुए भी मुझे यहां-वहां या
 कहीं से काम-भाव आ गया । अधीर लोपा-
 मुद्रा पति को चाहती है वह अधीरा सांस
 लेती हुई धीर को चुंबन करती है ।)

'मधुक्रतु प्रकृति के अंग-प्रत्यंग पर
 अपनी विजय-वैजयंती को फहरा रही
 थी । टेसू और अनार खिल गये थे । शाल-
 वन में पवन मतवाला होकर मचल रहा
 था । मैंने लोपामुद्रा से भोग की याचना
 की । उसने बताया कि भोग के पूर्व भोग
 की सामग्री का संग्रह करना आवश्यक
 होगा । वह अकिंचन स्तर पर मेरा आम-
 त्रण स्वीकार नहीं कर सकी ।

'विदर्भराज के परामर्श से धन की
 याचना के लिए मैंने मणिमती (मधुमती=
 मधुपुरी=मथुरा) की यात्रा की । वहां का
 अमुर राजा इल्वल अत्यंत संपन्न था । वह
 ब्राह्मणों की मदद करता था । ब्राह्मणों द्वारा
 वह वेद-विरोधी कर्म संपादित कराता
 था । किंतु इल्वल ब्राह्मणों तथा ऋषियों

का बहुत बड़ा शत्रु था। मैंने इल्वल से साक्षात्कार किया तथा अपन को व्रात्य घोषित किया। पर असुर-पुरोहित ने मुझे पहचान लिया और उसने इल्वल को सावधान कर दिया।

‘रात्रि का समय था। मैं इल्वल की अतिथिशाला में सो रहा था। अचानक दरवाजे पर पदचाप सुनाई पड़ा। मैं सावधान हो गया। कक्ष में दीप जल रहा था। एक अत्यंत सुंदरी असुर तरुणी ने कक्ष में प्रवेश किया। उसके हाथ में मधु-भांड था तथा दो मधु-पात्र। लज्जा का मोहक अभिनय करती हुई वह पर्यंक के एक किनारे बैठ गयी। वस्त्र के नाम पर उसकी कटि में एक कौषेय कौपीन था। उन्नत उरोजों पर एक झीना-सा आवरण। फूलों और स्वर्णालंकारों से वह सजी-धजी थी।

‘तुम कौन हो?’—मैंने सशंकित स्वर में पूछा।

‘अतिथि, तुम तो बड़े ही निष्ठुर हो।

क्या आर्य पुरुष अपनी सुंदरियों का इस प्रकार स्वागत करते हैं?’

‘तुम सुंदरी हो इसमें जरा भी संदे नहीं। किंतु परिचय तो चाहिये ही।’—मैंने कहा।

‘मैं मणिमती की सर्वश्रेष्ठ सुंदरी क्लोम हूं। असुरराज इल्वल के आदेश से अतिथि के मनोरंजन के लिए आयी हूं।’

‘मैं विचार मग्न हो गया। असुर राज पुरियों के षड्यंत्रों के बारे में मुझे ज्ञा था। कहीं क्लोमा विष-कन्या तो नहीं है? असुर पुरोहित ने शायद मेरा परिचय दे दिया है और इल्वल ने मुझे मार डालने के लिए ही इस विषकन्या को नियुक्त किया है।

‘इसी बीच एक और घटना हुई। इल्वल के छोटे भाई वातापी ने सुरा के नशे में तलमलाते हुए, मेरे कक्ष में प्रवेश किया।

—आचार्यपल्ली, हैदरपाड़ा, पो० एवित यासल, जिला—जलपाईगुड़ी (प. बं.)

संसार का बंधन

एक व्यक्ति ने अपनी परछाई से पीछा छुड़ाने के लिए उसे कहीं गहरे में गाड़ देना का निश्चय किया, उसके लिए उसने खूब लंबा-चौड़ा, गहरा गड्ढा खोदा और तब उसने अपनी परछाई को देखकर मन-ही-मन बड़ा प्रसन्न हुआ। उस व्यक्ति को लगा कि अब उसका काम बन जायेगा।

बस उसने ईंट-पत्थर और मिट्टी से अच्छी तरह गड्ढे को भर दिया, किंतु उसने आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब उसने देखा कि उसकी परछाई गड्ढे की अपनी सतह पर फिर भी मौजूद है।

इसी प्रकार आत्मज्ञान हुए बिना संसार के बंधन से छुटकारा पाना संभव नहीं है।

—महर्षि राम



(पृष्ठ २१ का शेषांश)

की विचित्रताओं में व्यक्त करना लेखक की सिद्धहस्तता का परिचय देता है। हमें आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि 'गवाह गैरहाज़िर' से प्रारंभ उपन्यासों की अपनी रचना-यात्रा को लेखक और भी मोहक और आकर्षक बनायेगा। 'नक़वेसर कागा ले भागा' देकर चन्द्रकिशोर जायसवाल ने जो आकांक्षाएं पाठकों में जगायी थीं उन्हें 'गवाह गैरहाज़िर' में बहुत कुछ पूर्ण किया है। 'गवाह गैरहाज़िर' एक चरित्र-प्रधान उपन्यास है, जिसके माध्यम से पाठकों का एक नवोन्मेष पूर्ण जैलीकार से परिचय होगा।

०००

'नर्मदा का नरम कंकर' (काव्य संग्रह); रचयिता : युवाचार्य विद्यासागर मुनि; प्रकाशक : सुभाष कपूरचन्द जैन, दी श्री ब्रदर्स, जवाहर रोड, अमरावती, पृष्ठ संख्या : १०६, मूल्य : २५ रुपये।

एक अकिंचन मुनि के वीतरागी भाव को साधना की हिलोरो के बीच रह कर स्पर्श करता हुआ 'नर्मदा का नरम कंकर' हिन्दी कविता को एक कन्नडभाषी युवक की अनोखी देन है। इसके भाव और भाषा में जो अलगदृष्टि कहीं-कहीं दिखाई देता है, वह उन स्वाभाविक उर्मियों का आवेग है, जो अध्यात्म की अरूपी चेतना से टकराकर बार-बार फेनोज्ज्वल लहरों की तरह पाठक को झकझोरता और चकित करता है।

अध्यात्म, विद्यासागर मुनि की जीवन यात्रा का पथथेय है। इसलिए 'नर्मदा का नरम कंकर' नर्मदा-जल के वर्षण से नरम होते कंकर की तरह एक पत्थर की निर्ममता का संवाहक होते हुए भी चेतन रस से आप्लावित है।

'तभी गहराई में गुप्त / लुप्त / सुप्त माया की सत्ता, ज्वर सूचक यंत्रगत पारद रेखा सम !

उपयोग केन्द्र से / यौगिक परिधि में / मन वचन तन के वितान में / चढ़ती फैलती देख

पुरुष ने योग-निग्रह संकोच किया / सूक्ष्मीकरण विधान से !'

'नर्मदा का नरम कंकर' समेत सभी पैंतीस काव्यानुभव एक योगी कवि के अनुभव की विभिन्न मुद्राएं हैं। हिन्दी काव्य-जगत के लिए अध्यात्म नया नहीं, किंतु 'नर्मदा का नरम कंकर' तन-मन के चेतनागत अनुभवों को एकाकार कर देने की क्षमता से सजीव है। परम्परागत विचारों और सिद्धान्तों को इस अपरिग्रही युवा कवि ने अपने अनुभव के निकष पर कस कर और उन्हें नया विस्तार देकर काव्य को एक नया आयाम दिया है।

जैन युवाचार्य विद्यासागर मुनि की यह काव्य-रचना आधुनिक जीवन की उपलब्धियों और विरोधाभासों के बीच डूबते-उतरते भावुक मन के लिए अनुभावक का काम करेगी। —दर्शन लाड



आचार्य हजारीप्रसाद का हास्य-विनोद



गौरीशंकर गुप्त

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी आज नहीं हैं, किंतु उनका हास्य-विनोद, व्यंग्य-अट्टहास और उनके कहकहे भुलाये नहीं भूलते। हर बात पर ठहाका लगाना, हंसना और हंसाना उनके स्वभाव का वैशिष्ट्य था। ऐसे ही कुछ प्रसंग यहां प्रस्तुत हैं।

एक बार द्विवेदीजी आचार्य क्षिति-मोहन सेन के साथ टीकमगढ़ पहुंचे। बेलों से पेड़ लदे पड़े थे। उदर विकारों को नष्ट करने की विलक्षण क्षमता फल में है, ऐसा ज्ञात होते ही आचार्य सेन ने एक बोरा बेल साथ ले लिया। सार-संभाल का भार द्विवेदीजी पर था। वे उससे मुक्ति का मार्ग खोजने लगे।

सहसा द्विवेदीजी को एक युक्ति सूझी। आचार्यद्वय तांगे पर चल रहे थे। बेलों का बोरा द्विवेदीजी के चरणों के निकट था। उन्होंने उसमें से चुपके-चुपके एक बेल निकाला और उसे सड़क पर लुढ़का दिया। देखते-देखते बेल आंखों से ओझल हो गया। फिर क्या था! स्टेशन पहुंचते-पहुंचते सिर्फ दो-चार बेल रह गये।

आचार्य सेन की हैरानी स्वाभाविक थी। उन्होंने पूछा—‘हजारीप्रसाद ! बेल कहा गये?’

द्विवेदीजी निर्दोष भाव से बोले—‘बेल का स्वभाव लुढ़कना है। लगता है, तांगे की गति के साथ वे भी लुढ़कते रहे

और मार्ग से भटक गये !’

०००

पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने प्रसंगवश एक बार द्विवेदीजी को लिख दिया कि ‘इलाहाबाद से आगे के निवासी शुद्ध हिंदी लिख ही नहीं सकते। यह बनारस वालों की शक्ति के बाहर है।’

द्विवेदीजी यद्यपि चतुर्वेदी के अनुज की उम्र के थे और उनका गुरुवत् सम्मान करते थे, तथापि चतुर्वेदीजी की यह बात उनको लग गयी और उन्होंने इसका बड़ा ही मार्मिक उत्तर उनको दिया। उन्होंने लिखा—‘आज भले ही कोई बनारस की उपेक्षा करे, पर अस्सी साल पहले जब पश्चिमी जिलों के माता-पिताओं को अपने बच्चे के लिए नाम की तलाश होती थी, तब वे बनारस की ही शरण लेते थे।’

द्विवेदीजी उन दिनों वाराणसी में ही निवास कर रहे थे और चूंकि चतुर्वेदीजी का नाम बनारस से संबद्ध है, अतः द्विवेदीजी के उत्तर से चतुर्वेदीजी का निरुत्तर

हो जाना स्वाभाविक था ।

०००

एक प्रसंग राष्ट्रपति-भवन का है । वहाँ आचार्यद्वय—काका साहेब कालेलकर तथा हजारीप्रसादजी बातें कर रहे थे । प्रसंग आ गया चाय का । द्विवेदीजी बोले—‘चाय की चर्चा प्राचीन ग्रंथों में भी मिलती है । इतना ही नहीं, बल्कि प्राचीन काल में चाय के लिए युद्ध भी हुआ था ।’

काका साहेब ने पूछा—‘इसका प्रमाण?’ उत्तर मिला—‘अष्टाध्यायी का ‘चायेऽपि द्वंदः’ प्रत्यक्ष प्रमाण है । इस पर दोनों विद्वान् मुक्तकण्ठ से अट्टहास करने लगे ।

बगल के कक्ष में ही बैठे राजेंद्र बाबू सरकारी फाइलों पर हस्ताक्षर कर रहे थे । उन्होंने अप्रत्यक्ष रूप से आचार्यद्वय की वार्ता सुनी थी । कुछ समय बाद जब द्विवेदीजी राजेंद्र बाबू से मिले, तब उन्होंने बहुत गंभीरता से उनसे जिज्ञासा की—‘द्विवेदीजी ! क्या सचमुच प्राचीन काल में चाय के लिए युद्ध हुआ था?’ द्विवेदीजी बोले—‘महर्षि पतंजलि की ‘अष्टाध्यायी’ के ‘चायेऽपि द्वंदः’ इस सूत्र का शब्दार्थ यह किया जा सकता है कि चाय के कारण द्वंद अर्थात् युद्ध हुआ था ।’

द्विवेदीजी की इस व्याख्या को सुनकर राजेंद्र बाबू मुस्करा उठे और उन्होंने द्विवेदीजी की खोज की प्रशंसा करते हुए उसे अद्भुत बताया ।

०००

एक-दो प्रसंग राष्ट्रकवि मैथिलीशर-

१९८३



आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

शरणजी से संबद्ध हैं । उन दिनों मैथिली-शरणजी राष्ट्रपति राजेंद्र बाबू द्वारा राज्य सभा के मनोनीत सदस्य के रूप में दिल्ली में नार्थ एवेन्यू में रहते थे ।

एक बार द्विवेदीजी और मैथिली-शरणजी की भेट हुई । ‘नार्थ एवेन्यू’ में रक्त-मुखी पुष्प की शोभा देखकर द्विवेदीजी का कवि हृदय मुग्ध हो गया और वे बोल उठे—

‘रक्तमुखी की छांह में
करें एम. पी. वास ।’

ददा मैथिलीशरणजी कब चुकने वाले थे ! उनकी पंक्ति थी—

‘चार मास की वृत्ति में

हिंदी डाइजेस्ट

काटें बारह मास ।’

०००

दूसरी नोकझोंक-विनोद-वार्त्ता भी अविस्मरणीय है । एक बार मैथिली-शरणजी ने द्विवेदीजी से प्रश्न किया—‘पंडितजी ! आप कहां के निवासी हैं ?’

उत्तर मिला—‘बलिया के ।’

मैथिलीशरणजी बोले—‘सुना है कि वहां के लोग गंवार होते हैं ।’

द्विवेदीजी ने नहले पर दहला जड़ा । बोले—‘बलिया के लोग गंवार शायद हों, पर चिरगंवार नहीं होते ।’

सभी जानते हैं कि चिरगंवार मैथिली-शरणजी की जन्म तथा साधनाभूमि रही है । अतः द्विवेदीजी की इस उक्ति से वातावरण अत्यंत सरस हो उठा ।

०००

दूसरों को अपने हास्य-विनोद से आनंदित करने वाले द्विवेदीजी एक बार स्वयं हंसी के पात्र बन गये थे ।

प्रसंग ‘शांतिनिकेतन’ का है । गर्मी के दिन थे ।

द्विवेदीजी पार्क में पड़ी एक बेंच पर बैठकर कुछ पढ़ रहे थे । सूर्यास्त होने ही वाला था । द्विवेदीजी ने कुरता उतारा और कंधे पर रखा लिया । धोती भी उन्होंने घुटने से ऊपर जांघों तक कर ली और फिर वे पढ़ने लगे ।

गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर अपने नियमानुसार अपने पार्षदों सहित घूमते हुए उधर आ पहुंचे । द्विवेदीजी स्वाध्याय में

आदर्श

अपने लिए

जो आदर्श हमने रचे हैं

उनमें पदचिह्न नहीं

सिर्फ पद बचे हैं !

—बाबूलाल कदम

तल्लीन थे । गुरुदेव द्विवेदीजी के पीछे खड़े हो गये और उनके कंधे पर हाथ रखकर बोले—‘द्विवेदीजी ! यह पढ़ने का समय नहीं है ।’

द्विवेदीजी तुरंत हड़बड़ाहट में खड़े हो गये और उन्होंने अपनी धोती नीची कर ली । तब तक रवि बाबू आगे बढ़ चुके थे । कलागुरु नंदलाल बोस मंडली में सबसे पीछे थे । उनसे द्विवेदीजी का सामना हुआ तो वे बोले—‘द्विवेदीजी ! आप घबरा क्यों गये ? इस देश में संस्कृत पढ़े हुए पुरुष और अंग्रेजी पढ़ी हुई स्त्री को सदा अर्द्धनग्न रहने का अधिकार है ।’

कलागुरु नंदलाल बोस की इस उक्ति का और उस समय लगे ठहाके का स्मरण कर द्विवेदीजी भावविभोर हो जाया करते थे । ऐसे थे वे दिन और ऐसे थे वे लोग, जिनकी स्मृतियां ही अब शेष हैं !

—राष्ट्रपिता प्रकाशन,

ए. २।५, कामेश्वर महादेव,
गायघाट, वाराणसी-२२१००१



आ नो भद्रः क्रतवो यन्तु विश्वतः

भवन की पत्रिका 'भारती' से समन्वित

नवनीत

मनुष्य के नवोत्थान का सूचक;
जीवन, साहित्य और संस्कृति का मासिक

प्रार्थना

यास्ते प्रजा अमृतस्य
परास्मिन् धामन्वृतस्य ।
मूर्धा नाभा सोम वेन
आभूषन्तीः सोम वेद ॥

हे सोम, उच्च स्थान पर रहनेवाली, सत्यामृतयुक्त,
तुम्हारी पूजा करनेवाली यह प्रजा निज-निज गृह
में उच्च स्थान पर विराजे ।

— ऋग्वेद १, ४३; ९

श्रीअरविन्द ने कहा था

निरन्तर विकास ही शाश्वत यौवन है



यौवन इस बात पर निर्भर नहीं है कि हम कितने छोटे हैं, बल्कि इस पर कि हममें विकसित होने की क्षमता और प्रगति करने की योग्यता कितनी है। विकसित होने का अर्थ है अपनी अंतर्निहित शक्तियाँ, अपनी क्षमताएं बढ़ाना; प्रगति करने का अर्थ है अब तक अधिकृत योग्यताओं को बिना रुके निरन्तर पूर्णता की ओर ले जाना। जरा (बुढ़ापा) आयु बड़ी हो जाने से नहीं आती, बल्कि विकसित होने और प्रगति करने की अयोग्यता के कारण अथवा विकसित होना और प्रगति करना अस्वीकार कर देने के कारण आती है। मैंने बीस वर्ष की आयु के वृद्ध और सत्तर वर्ष के युवक देखे हैं। ज्यों ही मनुष्य जीवन में स्थित हो जाने और पुराने प्रयासों की कमाई खाने की इच्छा करता है, ज्यों ही मनुष्य यह सोचने लगता है कि उसे जो कुछ करना था वह उसे कर चुका और जो कुछ उसे प्राप्त करना था वह प्राप्त कर चुका, संक्षेप में, ज्यों ही मनुष्य प्रगति करना, पूर्णता के मार्ग पर अग्रसर होना बंद कर देता है, त्यों ही उसका पीछे हटना, बूढ़ा होना निश्चित हो जाता है।

शरीर के विषय में भी मनुष्य यह जान सकता है कि उसकी क्षमताओं की वृद्धि और उसके विकास की कोई सीमा नहीं, वरन् कि मनुष्य इसकी असली पद्धति और सच्चे कारण ढूँढ़ निकाले। यहां हम जो बहुत-से परीक्षण करना चाहते हैं उन्हीं में से एक यह शारीरिक विकास भी है और हम मानव-जाति की सामूहिक धारणा को निर्मूल कर संसार को यह दिखा देना चाहते हैं कि मनुष्य में कल्पनातीत संभावनाएं निहित हैं।

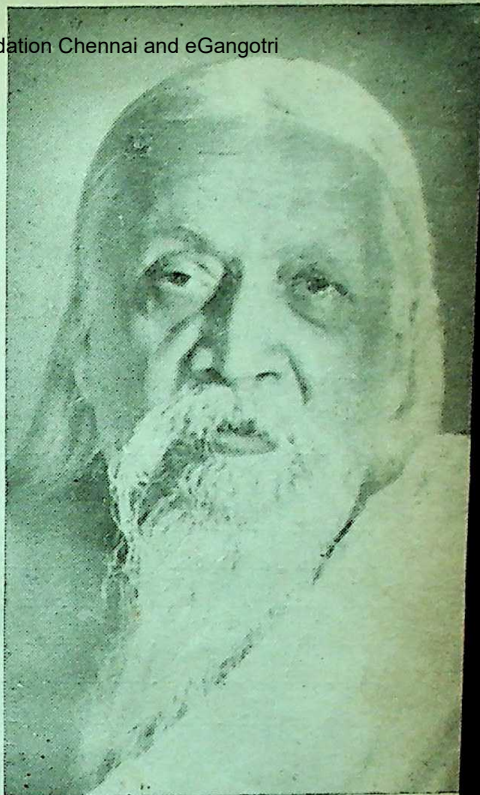
(२ फरवरी, १९४९)

०००

एक चीज के बारे में तुम निश्चित हो सकते हो—तुम्हारा भविष्य तुम्हारे ही हाथों में है। तुम वही आदमी बनोगे जो तुम बनना चाहते हो। तुम्हारा आदर्श और तुम्हारी अभीप्सा जितने ऊंचे होंगे, तुम्हारी सिद्धि भी उतनी ही ऊंची होगी। लेकिन तुम्हें दृढ़ निश्चय रखना चाहिये और अपने जीवन के सच्चे लक्ष्य को कभी न भूलना चाहिये।

(२-४-१९६३)

०००



युवा होने का अर्थ है भविष्य में जीना ।

युवा होने का अर्थ है हमें जो कुछ होना चाहिये वह बनने के लिए, हम जो कुछ हैं उसे छोड़ने के लिए हमेशा तैयार रहना ।

युवा होने का अर्थ है कभी यह न स्वीकार करना कि कोई चीज़ सुधारी नहीं जा सकती ।

(२८-३-१९६७)

०००

केवल वही वर्ष जो व्यर्थ में बिताये जाते हैं तुम्हें बूढ़ा बनाते हैं ।

जिस वर्ष में कोई प्रगति नहीं की गयी, चेतना में कोई वृद्धि नहीं हुई, पूर्णता की ओर कोई अगला कदम नहीं उठाया गया वह वर्ष व्यर्थ में बिताया गया ।

अपने जीवन को अपने आप से कुछ उच्चतर और विशालतर वस्तु को चरितार्थ करने पर एकाग्र करो तो तुम्हें बीतते हुए वर्षों का भार कभी न लगेगा ।

(२१-२-१९५८)

०००

तुम जितने वर्ष जिये हो उनकी संख्या तुम्हें बूढ़ा नहीं बनाती । तुम बूढ़े तब होते हो जब प्रगति करना बंद कर दो ।

जैसे ही तुम्हें लगे कि तुम्हें जो कुछ करना था वह कर चुके, जैसे ही तुम अनुभव करो कि तुम्हें जो कुछ जानना था वह जान चुके, जैसे ही तुम बैठकर अपने परिश्रम का फल भोगना चाहो और यह सोचो कि तुम जीवन में काफी कुछ कर चुके तो तुम एकदम बूढ़े हो जाते हो और तुम्हारा क्षय शुरू हो जाता है ।

इसके विपरीत, जब तुम्हें यह विश्वास हो कि जो जानना बाकी है उसकी तुलना में तुम जो जानते हो वह कुछ भी नहीं है, जब तुम्हें लगे कि तुमने जो कुछ किया है वह जो कुछ

(शेषांश पृष्ठ ६४ पर)

सु. रामकृष्णन् का व्यक्तित्व-साक्षात्कारी लेख



आचार्य विनोबा भावे

अपनी इस पुण्य-पावन प्राचीन भूमि में हमें अपने जीवनकाल में नभोमंडल में एक दूसरे तेजस्वी ज्योतिपुंज का दर्शन करने का सौभाग्य मिला ।

आचार्य विनोबा भावे ने १७ नवंबर १९८२ को दीपावली के पवित्र दिवस पर अपनी नश्वर देह का त्याग कर दिया । वे संत, विद्वान्, ईश्वर के भक्त, नीति के मूर्तिमंत प्रतीक, आशा के ज्योतिर्धर और देश-विदेश के अनेक लोगों के लिए सांत्वना-स्थल थे ।

पंडित जवाहरलाल नेहरू गांधीजी के

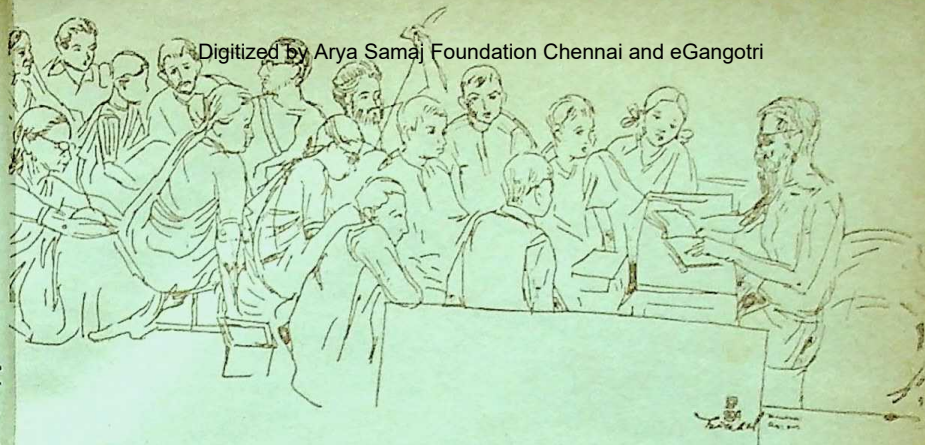
राजनीतिक उत्तराधिकारी थे । सरदार वल्लभभाई पटेल गांधीजी की सभी प्रवृत्तियों के आयोजक थे । राजाजी गांधीजी की अंतरात्मा के संरक्षक थे । जयप्रकाश नारायण गांधीजी की सामाजिक प्रवृत्तियों के थर्मामीटर थे, तो विनोबाजी महात्मा गांधी के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी थे ।

विनोबाजी का मूल नाम विनायक था । १९१७ में बाइस वर्ष की उम्र में विनायक ने गांधीजी को अपना लिया, तबसे उनका नाम विनोबा हो गया । यवा विनायक में गांधीजी को एक भावी संत के दर्शन हुए । उन्होंने तुरंत ही विनोबाजी के भाग्य-शाली पिता श्री नरहरि शंभूराव भावे को यह बात बता दी । जानोबा, तुकोबा, गोरोबा आदि महाराष्ट्र के संतों की परंपरा के अनुसार उनका नाम रख दिया गया ।

११ सितंबर १८९५ के दिन महाराष्ट्र के कुलाबा जिले के एक गांव में विनोबाजी का जन्म हुआ था ।

विनोबाजी स्वभाव से धार्मिक थे । भारत की स्वतंत्रता के लिए गांधीजी द्वारा शुरू किये गये 'निःशस्त्र धर्मयुद्ध' में जुड़ गये । संत अत्याचार अथवा अन्याय नहीं





कार
वृ-
जी
श
यों
मा

क
का
में
र।
य-
वे
वा,
रं-
या

हा-
में

।
रा

जुड़
ही

करते, उसी प्रकार वे अत्याचार अथवा
अन्याय को वर्दाश भी नहीं करते। ऐसा
करना उन्हें धर्म के विरुद्ध और ईश्वर की
इच्छा के प्रतिकूल लगता है।

महात्मा गांधी की तरह विनोबा भावे
अपने समय से बहुत आगे थे। भूदान,
संपत्तिदान, जीवनदान और अन्य आंदो-
लनों में गांधीजी की राष्ट्रनिर्माण की
प्रवृत्ति के स्वाभाविक विस्तार रूप थे।
इस क्रांतिकारी अहिंसक विचारधारा का
ज्यों-ज्यों प्रसार होता जायेगा, वैसे-वैसे
लोभ और मोह की ओर तेजी से बढ़ते जा-
रहे इस संसार के लिए वह अधिक से
अधिक उपयोगी और स्वीकार योग्य
बनती जायेगी।

हम विनोबाजी के इतने नजदीक हैं कि
इतिहास में उनके स्थान और भावी पीढ़ी
में उनके होने वाले प्रभाव का आज
मूल्यांकन नहीं कर सकते।

भारतवर्ष की नवजागृति काल के
विनोबाजी ज्ञानी संत थे। उनकी तेजस्वी
बुद्धि, अथक परिश्रम और विशाल पांडित्य
सिद्धांत था। जेल के दिनों में उनके दिये

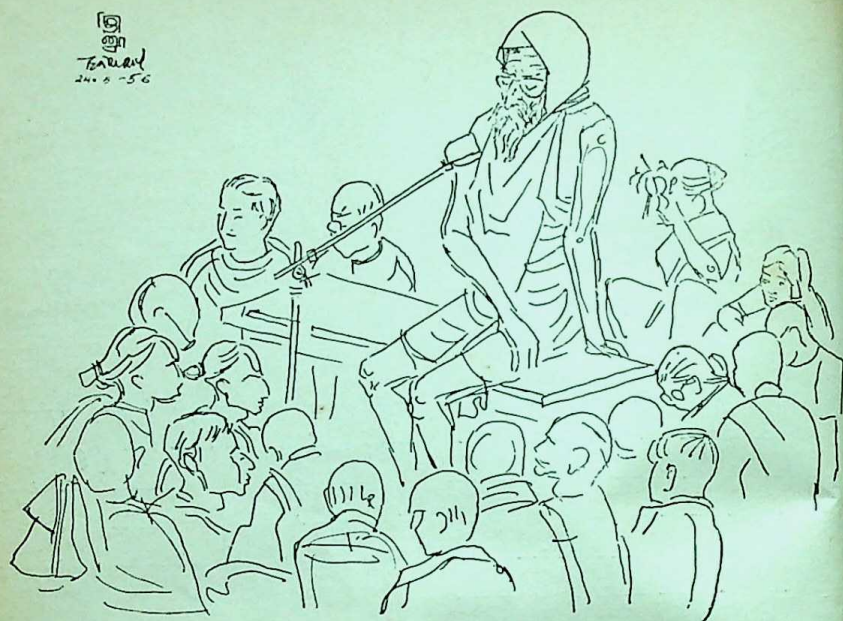
गये गीता पर प्रवचन प्रेरक, मौलिक,
भव्य और तेजस्विता से भरे हुए हैं।

भगवद्गीता में भगवान ने 'धर्म
संस्थापनाय' युगे-युगे अवतार लेने का
वचन दिया है, इस वचन की पूर्ति के रूप





 24. 6 - 56



में भारतभूमि में संतों की परंपरा चलती रहती है, जो अधर्म को अलग रखता है।

धर्मगुरुओं के अमर और अनंत तारामंडल में विनोबाजी का स्थान है। अभय संत पुरुष का सबसे बड़ा लक्षण है। मानव मात्र को सबसे बड़ा भय मृत्यु का होता है। विनोबाजी मृत्यु के भय को जीत गये थे। इस पृथ्वी पर उनकी जीवन-यात्रा-अंतिम दिनों में औषध ही नहीं, परंतु आहार और पानी का त्याग करने की उनकी भीष्म प्रतिज्ञा 'जीर्ण वस्त्रों का त्याग करके आत्मा नये वस्त्र धारण करती है'—उनके ऐसे विश्वास का प्रमाण है। आत्मा अमर है। इस अवसर पर प्रत्येक भक्त के कान में जिसका खयाल गूंजता रहता है, वह भगवद्गीता के दो

श्लोकों में स्मरण हो आता है :

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्
उभौ तौ न बिजानीतौ नायं हन्ति न हन्यते।

—जो यह जानते हैं कि आत्मा नाशवान है अथवा आत्मा मर जाती है, वे कुछ अधर्म नहीं जानते। आत्मा कभी नहीं मरती भूमि और न उसका नाश होना संभव है। नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।

—शस्त्र उसे छेद नहीं सकते, आग उसे जला नहीं सकती, जल उसे भिगा नहीं सकता और वायु उसे सुखा नहीं सकती।

विनोबाजी नैतिक भावना के मूर्तिमय प्रतीक थे। उनके समस्त जीवन में नीति और आध्यात्मिकता की दैवी किर फैलती रही है, इसलिए उन्होंने दीपावली

के दिन जीवनलोला को समेट लिया, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। उनका देह-विलय एक ज्योति का सर्वज्योति के उद्गम स्थल के रूप महाज्योति में विलय होने के समान है।

जीवन को पवित्र करने के लिए तीर्थ-स्थान के दर्शन के लिए जाना चाहिये, परंतु हमारे पूर्वजों ने यात्रा-स्थान के विकल्प देकर यात्रा के कष्टों से हमें बचा लिया है। कई बार तीर्थ हमारे पास आ जाते हैं और हमारा उद्धार करते हैं। ऐसे पवित्र स्त्री-पुरुष स्थान-स्थान पर परिभ्रमण करते हुए हमारी आत्मा की क्षुधा को तृप्त करते रहते हैं।

भूदान आंदोलन में विनोबाजी की पद-यात्रा अब इतिहास की घटना बन गयी है। गांधीजी की 'ट्रस्टीशिप' की विचारधारा को व्यवहार में विनियोग करने वाली यह घटना थी।

कांचीपीठ के आचार्य अपने संन्यस्त-धर्म का पालन करते हुए इस पवित्र भूमि पर अनेक बार परिभ्रमण कर चुके हैं। १९५६ में इन दोनों महान परि-त्राजकों का तमिलनाडु में कांचीपुरम् में प्रभु की कृपा से मिलन हुआ—विराट से विराट का मिलन।

प्रभु का सेवक और जनता का सेवक दोनों ही एक हैं। दोनों ही अपने जीवन को आदि से अंत तक यज्ञ रूप में देखते हैं। वे जब जनसेवा करते हैं, तब प्रभुसेवा करते होते हैं। समस्त संसार में परमात्मा व्याप्त



है (ईशावास्य मिदं सर्वम्)। इसीलिए कहा है कि किसी का धन मत लो।
मा गृधः कस्यस्विद्धनम्। विनोबाजी ने इस व्रत का जीवन भर पालन किया।

‘जय जगत’ उनका सूत्र था। विश्व-कल्याण उनका ध्येय था। संत मरते नहीं हैं। उनके संदेश को सभी स्मरण करते हैं। विश्व-बंधुत्व के वेद-संदेश की प्रतिध्वनि विनोबाजी के जीवन में से सुनाई देती है।

समानी व आकूतिः सामान हृदमानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।

—हमारी आकांक्षा एक हो, हमारा हृदय एक हो। हमारा मन एक हो, जिससे विश्व-बंधुत्व की भावना का विकास हो।

प्लेटो के शब्दों में कहें, तो यह हमारा बहुत बड़ा सद्भाग्य है कि हम विनोबाजी के जीवनकाल में जन्मे और जिये।

डॉ. विद्यानिवास मिश्र का सांस्कृतिक लेख



साहित्य के सांचे में संस्कृति की ढलाई

प्रत्येक संस्कृति की सर्वश्रेष्ठ अभिव्यंजना साहित्य में होती है, दूसरे शब्दों में संस्कृति को पहचानने की कई आंखें हैं, कलाएं हैं, दर्शन हैं, आचार-पद्धति है, हमारी अपनी शब्दावली में धर्म है, इतिहास-पुराण हैं, इतिहास-पुरुष है, परंतु साहित्य वाली आंख कुछ ज्यादा स्पष्ट देखती है और देखने में एक विशेषता होती है वह अपने को अपनी बनायी संस्कृति में देखती है, संस्कृति का जो चित्र साहित्य में मिलता है, वह संस्कृति के मूल प्रयोजन मूल्यों के सर्जन की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के उद्देश्य से चित्रित मिलता है। वह चित्र ऐसा होता है जो पढ़ने वाले को तो उस चित्र की प्रक्रिया का साक्षी-दार बनाता ही है, एक उसके भीतर के चित्रकार को रचनाकार को भी उभार देता है, इतना ही नहीं उसकी सर्जक आंख खोल देता है।

बड़े बड़बोलेपन से मैंने बात शुरू कर दी, साहित्य को मैंने विराट् संस्कृति-पुरुष का मन बना डाला, शायद यह मेरा पक्षपात समझा जाय, पर मैं कुछ उदाहरणों से अपनी बात अधिक स्पष्ट कर सकूंगा। ये उदाहरण मैं भारतीय संदर्भ

नवनीत

से ही लूंगा। भारत के सांस्कृतिक इतिहास की एक तो सर्वाधिक सामग्री साहित्य में ही सुरक्षित है, दूसरे भारतीय संस्कृति का पर्याय ही वाक् है। भारतीय विचार मानते हैं समस्त कलाओं और समस्त विद्याओं को एक सूत्र में बांधने का वाक् करती है। वाक् ही के माध्यम से लोग एक दूसरे से सबसे अधिक जुड़ते जुड़ते ही नहीं वाक् में ही पहचानते हैं यह जुड़ना कितना आवश्यक है, कितना सार्थक है और कितना इसके बिना जीवन व्यर्थ है। यह जुड़ना ऐसा होता है कि इस जीवन भर बिछुड़ा नहीं जा सकता। वेदों में कई सूक्त वाक् से संबद्ध हैं। वाक् ही भुवन की नाभि कहा गया है, एक सूक्त बहुत महत्व का है, उसका भी एक और अधिक सटीक है—

उत त्वं सख्ये स्थिरपीतमाहुर्न

हिन्वन्यपि वाजिनेषु

अन्धेवा चरति माययैष वाचं शुश्रूष

अफलामपुष्पाम्

यदि वाणी सख्य भाव से (जुड़ने भाव से) प्रेरित न हो तो वह केवल झंझाल की गरु है, वह दिखती तो है, चला भी दिखती है, पिन्हाती भी दिखती है, मुद्रा अ

वह दूध नहीं देती, वह कामधेनु नहीं होती, वह फलहीन पुष्पहीन मायाजाल होकर रह जाती है। सही वाग्धेनु की यही पहचान है कि वह इंद्रजाल की रचना नहीं होती, वह साक्षात्कार किया गया जीवन होती है, उसका दूध भी साधारण नहीं होता, रचनाकार और पाठक दोनों के जीवन-रस का सार होता है। भारतीय संस्कृति ने इस चराचर व्यापी सख्य को सबसे अधिक महत्व दिया, प्राणी-प्राणी के बीच, प्राण-प्राण के बीच, जीवन-जीवन के बीच। दर्शन में यही बात जीवात्मा और परमात्मा के रूप में दो सुपणों के रूपक के द्वारा कही गयी, दोनों एक ही वृक्ष पर बैठे हैं, एक फल खाता है, दूसरा देखता रहता है और उसका देखना ही फल को पूरा खाना हो जाता है, क्योंकि उसके देखने से ही खाने वाले का खाना भी संपन्न होता है। ललित कलाएं आपको यही बात हज़ारों-हज़ारों हंस मिथुनों या कल्पवल्लियों के माध्यम से बतलाती हैं, जहाँ फूल पक्षी एक दूसरे में गुंथे हुए हैं मालाबद्ध रूप में। नृत्य में यही बात दृष्टि, मुद्रा और चारी के योग द्वारा की जाती है। पुराणों में यही बात अनेक कामबिद्ध

पात्रों के माध्यम से की जाती है। साहित्य में यही बात जब की जाती है तो एक अपूर्व रूपांतर हो जाता है। वहाँ सुख की पहचान अपने सुख से नहीं होती, किसी ऐसे दूसरे को सुखी देखने से होती है, जिसने अपनापन छीन लिया है और जो अब इतना अपना हो गया है, कि स्वयं व्यक्ति ही उसे अपना बनाकर अपने लिए पराया हो गया है। 'तत्सुखसुखित्वं' ही सख्य की सबसे बड़ी परिभाषा है। कालिदास का

प्रसिद्ध श्लोक मैं बार बार दुहराता हूँ—

मधु द्विरेफः कुसुमेकपात्रे पपौ

प्रियां स्वामनुवर्तमानः।

शृंगेपा च स्पर्शनिमीलिताक्षीं मृगीम कण्ठयत कृष्णसारः।

यह काम के आविर्भाव के समय

का चित्र है, वसंत का चित्र है।

भौरा जिस फूल पर बैठा हुआ है, उसकी रसभरी कटोरी में से जब तक अपनी सहचरी को मकरंद माधुरी पिला नहीं लेता, तब तक स्वयं नहीं चखता। मृग अपनी सींग से मृगी को खुजलाता है, उसकी सींग जैसी कठोर वस्तु का स्पर्श विश्वास की गहनता के कारण ऐसा लगता है जैसे वह सींग छूते ही रोम-रोम पिघल कर रस बन गया हो और मृगी उस रस में



सिक्त निर्भर हो गयी हो, उसकी आंखें न खुलती हों। भारतीय साहित्य ने सख्य को जिस काम के रूप में देखा है, वह व्यष्टि जीव की जैव अपेक्षा मात्र नहीं है, वह संपूर्ण जीवन की एकाकारता की उदग्र उत्कंठा है। इसलिए कामदशा का अंत मृत्यु में होता है, यह मृत्यु व्यक्ति के काम की मृत्यु होती है, उस पराकाष्ठा पर पहुंचकर जिसे पाने की चाह की थी, उसका पाना भूल जाता है, व्यक्ति की चाह मर जाती है वह केवल चाह रह जाती है, संपूर्ण चाह हो जाती है। इसीलिए साहित्य ने संयोग से अधिक विरह को अधिक महत्व दिया क्योंकि—

‘संगे सैव तथैका त्रिभुवनमपि तन्मयं विरहे’

संग में तो वह केवल एक है, और विरह में त्रिभुवन वही वही है, विरह में पहचान और गहरी हो जाती है, तब जीवन मात्र के लिए पर्युत्सुकता जग जाती है, ऊपर से उन्माद की स्थिति लगती है, पर भीतर से प्यार की सचाई का साक्षात्कार होता रहता है। जब उर्वशी के विरह में पुरुषवा पागल होकर घूम रहा है तो उसे कभी कोयल में उर्वशी दिखती है, कभी मोर के नृत्य में, कभी नदी में, कभी लता में, कभी विद्युत् में और वास्तविकता यही है कि यही उर्वशी अधिक प्रामाणिक सत्य है। जब माधव के विरह में राधा माधव बनकर राधा के लिए तड़प उठती है, तब जाकर राधा का माधव के लिए प्यार महा-भाव बनता है, वास्तविक प्यार बनता है।

नवनीत

भारतीय संस्कृति में सत्य की बात सत्य के अन्वेषण की बात शास्त्रों में ऊँ स्वर से की गयी है, पर जब साहित्य सचाई के बारे में कुछ कहना चाहता है तो उसने राम जैसे सत्य के साक्षात् प्रतिमा को चीरकर यह बात कही है। राम सीता का छल से परित्याग किया, वह राम जो एक बात कह देते हैं तो उ बदलते नहीं, ‘रामो द्विर्नाभिभाषते’।

राम की सखी वनदेवता वासंती उन छल को चीरकर पूछती है—

त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयं
त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमङ्गे
इत्यादिभिः प्रियशतैरनुहृद्य मुग्धां
तामेव शान्तमथवा किमिहोत्तरेण

—‘तुम मेरी प्राण, तुम मेरा दूसरा हृदय तुम मेरे आंखों की रोशनी, तुम मेरे अं में अमृत, जाने ऐसे कितनी मीठी-मी बातों से तुमने मेरी उस भोली सीता भुलावा दिया, और उसे ही, जाने दो आ की बात क्या कहूं?’

इतना कहते-कहते वासंती मूर्च्छित हो जाती है, सत्य की तलाश खराद पर न आरे पर राम को चढ़ा देती है और राम का लोकरंजन रूपी मिथ्याचार एक अपराधी के रूप में सामने आ जाता है। राम उत्तररामचरित में ऐसे विलख उ हैं कि लगता है कोई व्यक्ति अपनी सच को खोकर फिर से उसे पाना चाहता पर पा नहीं सकता और जब सीता शक्तियों के द्वारा उनके हाथों सौंपी जा

जन

हैं तो राम को लगता है नहीं, यह सच नहीं है, यह सुख भी एक छल है छलिया राम के साथ, क्योंकि तब जो मिलना होता है वह जिस लोक के लिए छोड़ा था, उसकी प्रेरणा से नहीं, लोक के रंजन के लिए किया गया परित्याग एक बड़े झूठ के रूप में ऐसा बेनकाब हो जाता है कि मिलन एक चिरे हुए राम का एक चिरी हुई सीता से होता है, राम का सीता से मिलन होकर नहीं होता। पूरा नाटक बस एक बात रेखांकित करता है कि सचाई प्यारे एक होती है, तुम उसे धोखा नहीं दे सकते, राम, तुम्हारी सचाई श्री राजा राम नहीं, एक पत्नीव्रत राम, सीताराम उसे तुमने क्यों नहीं साधा ?

सत्य की एक दूसरी पहचान महा-भारत के युधिष्ठिर में मिलती है, सत्य कितना अकरुण होता है और कितना करुण। एक भाई के बाद दूसरा भाई गिरता है, युधिष्ठिर उसके पतन की मीमांसा करते हैं, पर पीछे मुड़कर नहीं देखते, ऊपर चढ़ते चले जाते हैं और वे ही युधिष्ठिर नरक में ले जाये जाते हैं, अपने एक झूठ के लिए तो देखते हैं नरक में उनके भाई-बंधु तड़प रहे हैं और कहते हैं तुम आये हो तो एक मुरझित बयार आ गयी है, तुम रुको। ये ही युधिष्ठिर कहते हैं, मुझे स्वर्ग नहीं चाहिए, मैं यहीं रहूंगा। मेरी उपस्थिति से इतने लोगों को राहत मिलेगी। युधिष्ठिर एक जगह निर्मम हैं, जहां यात्रा है, दूसरी जगह करुण हैं, जहां

गंतव्य है। सत्य की दार्शनिक मीमांसा में जो बात नहीं आ सकती थी वह युधिष्ठिर के चरित में सहज में आ जाती है।

अंत में एक उदाहरण और लूंगा। भारतीय संस्कृति निष्काम कर्मयोग को महत्व देती है, जिसमें इच्छाओं की आहुति देते हुए कर्म का यज्ञ किया जाना अभीष्ट होता है, जिसमें पूरा जीवन सोमरस निचोड़ने के लिए एक निरंतर पेराई हो जाता है। उसके उपदेष्टा हैं श्रीकृष्ण। श्रीमद्भगवद्गीता में उसका बहुत ही गंभीर विवेचन है और वह दर्शन भी है, साहित्य भी है परंतु उसका पूर्ण साहित्यिक परिस्फुटन श्रीमद्भागवत में मिलता है। यदुकुल आपस में मद में चूर होकर लड़ते-लड़ते नष्ट हो चुका है। बलराम ने योगी की तरह प्राणायाम करके ब्रह्म-रंध्य से प्राण निकाल लिये हैं। उद्धव श्रीकृष्ण से ज्ञान लेकर चले जा चुके हैं। श्रीकृष्ण ने अपने सारथि को समझा दिया है कि द्वारका डूबने जा रही है, अजुन आते होंगे, बच्चों को लेकर, स्त्रियों को लेकर, उनके साथ मथुरा चले जाओ। अब अकेले दायें पैर के ऊपर बायां पैर किये अधलेटे पेड़ के तने पर टिके हुए हैं। निषाद आता है, अंग्रेजों में लाल-लाल पैर दिखता है, उसे लगता है कोई चक्का है, तीर चला देता है, पास आता है तो सिर धुनने लगता है, श्रीकृष्ण कहते हैं, 'तीर निकाल लो, तुम्हें मैं दिव्य धाम देता हूँ' (शेष पृष्ठ ५९ पर)

प्रसिद्ध कथाकार और चिन्तक निर्मल वर्मा का लेख



परम्परा और इतिहास-बोध

आज के आधुनिक मनुष्य को इतिहास और समय के नियमों-कानूनों का जितना ज्ञान है, उतना शायद पहले किसी युग में प्राप्त नहीं था। असली अर्थ में वह ऐतिहासिक 'मनुष्य' है। एक तरह से इतिहास-बोध ही आधुनिकता का पर्याय मान लिया जाता है। मध्यकालीन संस्कृति में धर्म का जो केन्द्रीय स्थान था उसने धीरे-धीरे पीछे हटते हुए अपनी जगह इतिहास को समर्पित कर दी है। मनुष्य प्रकृति के परिवेश में नहीं, इतिहास के सन्दर्भ में जीता है—इस सन्दर्भ में हर घटना पिछली घटना से नयी है, जो अब हो रहा है, वह पहले कभी नहीं हुआ। मनुष्य के क्रमिक विकास का यह बोध प्राचीन यूनानियों के लिए उतना ही अजनबी और पराया था जितना भारतीय मनीषियों के लिए—वे समय को विकास के रूप में नहीं, 'चक्र' के रूप में देखते थे, जहां हर घटना गुजरी हुई घटना की याद दिलाती है—स्मृति, जिसकी परतें जमती हुई परम्परा को जन्म देती हैं। पहले 'परम्परा' मनुष्य के भीतर थी, जो उसकी जीवन-मर्यादा को अनुशासित करती थी, अब इतिहास मनुष्य के भविष्य को निर्धारित करता है और पर-

म्परा खोजने के लिए उसे पीछे की ओर देखना पड़ता है।

किंतु यदि यह बात सच है कि इतिहास का जो प्रभुत्व आज हमारे जीवन में है, वह पहले कभी नहीं था, वहां यह बात भी उतनी ही सत्य है, कि मनुष्य आज जितना समय और इतिहास से व्रस्त है, उतना पहले किसी युग में नहीं था। उन्नीसवीं शती में सार्वभौमिक सत्ता से सम्पन्न जो मदमाता इतिहास-बोध मनुष्य की प्रगति और मुक्ति का सन्देश लाया था, वह हमारे समय तक आते-आते अपनी ही क्रूर पैराडी में प्रतिध्वनित-सा होता है, भविष्य को निर्धारित करनेवाले नियम, कानून, फार्मूले अब भी हैं किन्तु उन पर बीसवीं शताब्दी के रक्त और यातना और मोहभंग की इतनी गंहरी काई जम चुकी है कि वे भविष्य के बन्द तालों में कहीं फिट नहीं हो पाते। कैसा है यह वैज्ञानिक, तर्कशील, गौरवपूर्ण इतिहास-बोध, जिसने आज मनुष्य को स्वयं अपने ही भविष्य के प्रति इतना अरक्षित, आतंकित और अनाश्वस्त बनाकर छोड़ दिया है?

यह नहीं कि हम मानव-भविष्य के बारे में जानते नहीं, आज के आधुनिक मनुष्य ने

नवनीत

४४

जनवरी

इतिहास-बोध से उत्प्रेरित होकर भविष्य के बारे में जो परिकल्पनाएं और सम्भावनाएं आविष्कृत की हैं, उनके आधार पर 'भविष्य-शास्त्र' (फ्यूचरोलॉजी) की पूरी एक रसायनशाला निर्मित की जा सकती है। किन्तु इस भविष्य का वर्तमान की विभीषिका से कोई सम्बन्ध नहीं, बल्कि यूं कहें वर्तमान की विभीषिका से वचने के लिए ही इस 'ऐतिहासिक भविष्य' का निर्माण किया गया है—वह चाहे वर्गहीन

और पुरातत्व संग्रहालयों में सुरक्षित रखते हैं। इतिहास-बोध जो एक समय में मनुष्य के अतीत को उसकी नियति से जोड़ता था—जिसके परिप्रेक्ष्य में यहूदी मसीहाओं और ईसाई चर्च ने मानव की नैतिक मर्यादाएं निर्धारित की थीं—जिसके मर्म को आंकने के लिए स्वयं मार्क्स ने अतीत की शृंखलाओं को जोड़ा था, वह एक ऐसी स्वायत्त सत्ता में बदल गया है—मनुष्य की नियति और नैतिकता से ऊपर—



समाज का स्वप्न हो या कम्प्यूटर-निर्धारित 'रोबो' का यन्त्रलोक, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता।

हम समय में नहीं, एक काल्पनिक समय में जीते हैं—और विचित्र बात यह है कि इसमें मनुष्य की मृत्यु को देशनिकाला दे दिया गया है क्योंकि स्वयं अपनी मृत्यु से भयभीत होकर हमने भविष्य-लोक में शरण ली है। मृत्यु अगर है तो अतीत में—एक मृत अतीत में—जिसे हम म्यूजियम

एक ईष्यालु देवता (जैलस गाँड)—जिसकी असीम बुभुक्षा को तृप्त करने के लिए मनुष्य एक के बाद दूसरी क्रांति करता है, किन्तु हर क्रांति उसे मुक्त करने के बजाय अपने लौह-पाश में और भी अधिक जकड़ लेती है; जिस भविष्य-निर्माण के लिए वह क्रांति करता है, वह उसके वर्तमान को और भी अधिक कुत्सित और दयनीय बनाकर छोड़ देती है।

हिटलर ने जर्मन राइख के 'हजार वर्ष

के भविष्य' का स्वप्न देखा था, स्वयं सोवियत क्रान्ति ने एक 'नये मनुष्य' का निर्माण करने का गर्वपूर्ण दावा किया था। आज दोनों का हृश् हमारे सामने है। मनुष्य ने जिस दिन 'ऐतिहासिक अनिवार्यता' को मनुष्य की नियति के साथ जोड़ दिया था, उसी दिन मार्क्स का यह विश्वास झूठा पड़ गया कि मनुष्य अपना इतिहास स्वयं बनाता है, उल्टे इतिहास को यह अमानुषिक स्वायत्त (फ्रेंकेस्टाइन) शक्ति प्राप्त हो गयी कि वह खुद मनुष्य की नियति को अनुशासित कर सके।

यह आधुनिक युग की विचित्र विडम्बना मानी जायेगी कि एक तरफ आज का मनुष्य 'इतिहास-बोध' से आक्रान्त है, दूसरी तरफ मृत अतीत और काल्पनिक भविष्य के बीच स्वयं इतिहास की जीवन्त धारा सूख गयी है। जिस तरह नदी में डूबता आदमी पानी से रिश्ता नहीं जोड़ पाता उसी तरह इतिहास में डूबा मनुष्य समय का मर्म नहीं जान सकता। वह इतिहास से सन्नस्त हो सकता है किन्तु उसे अपने जीवन और मृत्यु का साक्षी नहीं बना सकता; वह इतिहास जो इस धरती पर मनुष्य का साक्षी न बन सके उसका क्या अर्थ रह जाता है? यही कारण है कि आज इतिहास-बोध आधुनिक मनुष्य का ठूँठा अन्धविश्वास बनकर रह गया है जिसके पास वह भविष्य का अर्थ टटोलने नहीं, वर्तमान से छुटकारा पाने जाता है।

किंतु क्या हम वर्तमान से छुटकारा पा

सकते हैं? समय की धारा में क्या वर्तमान ही ऐसा स्थिर बिन्दु नहीं है जहां मनुष्य अपनी नश्वरता के बावजूद या उसके कारण ही इतिहास में अपनी सम्पूर्ण नियति से साक्षात् करता है? यद्यपि यह नियति उसके व्यक्तिगत अतीत से सम्बन्ध रखती है किन्तु उसके साथ वह मनुष्य के समग्र भविष्य को भी आलोकित करती है जिसमें दूसरे लोगों की नियति भी जुड़ी है। भविष्य किसी काल्पनिक 'युटोपिया' में स्थिर नहीं है वह वास्तव में मनुष्य के उन अवशेषों में रहता है जिसे हर व्यक्ति अपनी मृत्यु के बाद छोड़ जाता है—उसकी स्मृति और स्वप्न। हम जिसे मानवता का भविष्य कहते हैं वह इतिहास में जीने-वाले व्यक्ति का अतीत है जो उसकी मृत्यु के बाद भी बचा रहता है—जिससे परंपरा बनती है। हम इस अद्भुत निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि भविष्य का बोध हमें कहीं आनेवाले समय में नहीं पीछे गुजर जाने वाले अतीत में उपलब्ध होता है। हजारी-प्रसादजी ने इतिहास का बोध प्रकृति की नैसर्गिक लय से प्राप्त किया था—पश्चिम के इतिहास-आतंक से नहीं, इसीलिए वह व्यक्ति की मृत्यु को झरा हुआ पत्ता मानते थे जो खुद मिट्टी में मिल नये वृक्ष में अंकुरित होता है। क्या पत्ते का भविष्य वृक्ष नहीं है जो स्वयं पत्ते की मरी हुई स्मृति से विकसित हुआ है?

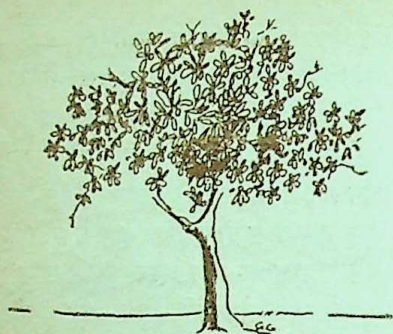
स्मृति की यह विशेषता है कि वह अपने पीछे कोई पद-चिह्न नहीं छोड़ जाती-

वह स्वयं पद-चिह्न बन जाती है। परम्परा का मतलब इन पद-चिह्नों पर चलकर उस वर्तमान को परिभाषित करना है जहाँ मनुष्य आज जीवित है। हम चलते पीछे की तरफ हैं किन्तु पहुँचते वहाँ हैं जहाँ हम आज इस क्षण में हैं। परंपरा इस अर्थ में विगत की खोज नहीं विगत के भविष्य का अन्वेषण है। हम पीछे की ओर चलते हुए आगे की तरफ बढ़ते हैं और तब हमें पता चलता है कि 'आगे' और 'पीछे' का ऐतिहासिकबोध स्वयं अपने में छलना है—समय की दृष्टि से जो आगे हो, जरूरी नहीं वह विगत की कसौटी बन सके; उल्टे जो बीत चुका है वह एक नैतिक मर्यादा के रूप में एक स्वप्न की तरफ मनुष्य के आगे-आगे चलता है। दो हजार वर्ष पूर्व सूली पर चढ़े हुए ईसा या उससे भी पहले बोधिवृक्ष के नीचे बैठे सिद्धार्थ ने जो 'सत्य' उपलब्ध किया था वह क्षण मनुष्य के भीतर आज भी मौजूद है—या यूँ कहें, वह सत्य जो ऐतिहासिक समय की गणना में दो हजार वर्ष पुराना है उसे मानव-सत्य बनने में शायद अगले दो हजार वर्ष भी कम पड़ेंगे। ऐतिहासिक समय उत्तरोत्तर आगे बढ़ता हुआ खुद मनुष्य के अपने अर्जित किये हुए सत्त्यों के सामने छोटा पड़ता जाता है—स्वयं अपनी 'प्रगति' को नापने के लिए उसे पीछे मुड़कर देखना पड़ता है।

मनुष्य अपना इतिहास खुद बनाता है, किन्तु वह 'कच्चा माल' जिससे इतिहास बनता है, वह अनुभव-राशि जिसकी मिट्टी

से वह अपना भविष्य गढ़ता है कहीं और नहीं उसके अतीत-बोध में सन्निहित है। 'भविष्य हमें कुछ नहीं देता, खुद हमें उसका निर्माण करने के लिए अपना सर्वस्व, अपना जीवन तक देना पड़ता है। किन्तु हम कुछ दे सकें, इसके लिए जरूरी है कि हमारे पास कुछ हो और हमारे पास कोई दूसरा जीवन, कोई सृजन-रस नहीं है सिवा अतीत के उन खजानों के जिन्हें हमने अपने भीतर आत्मसात् करके नये रूप में सजित किया है। मनुष्य की आत्मा की जरूरतों में अतीत की जरूरत सबसे अधिक शक्तिशाली है,' ये शब्द सिमोन वेल के हैं, किन्तु परम्परा और मनुष्य के भविष्य के बारे में क्या आचार्य हजारी-प्रसादजी की आत्मा इन शब्दों में नहीं झलकती ?

किन्तु अतीत का बोध अतीत के प्रति सम्मोहन या नास्टाल्जिया से बहुत भिन्न है। विगत के प्रति सम्मोहन उसी समय उत्पन्न होता है, जब हम परम्परा से विगलित हो जाते हैं। नास्टाल्जिया हमेशा उन चीजों से होता है जो हमसे टूटकर दूर छिटक गयी हों; स्मृति में हम उसे खोजते हैं, जो हमारे भीतर पहले से ही मौजूद है। परम्परा का रिश्ता स्मृति से है नास्टाल्जिया से नहीं। वास्तव में भविष्य के प्रति दास-भाव और अतीत के प्रति सम्मोहन ऊपर से अलग दीखने पर भी एकसिक्के के दो पहलू हैं। भविष्य के प्रति समर्पण इसलिए प्रगतिशील नहीं हो जाता कि



उसके पास इतिहास की कसौटी है, अतीत के प्रति लगाव इसलिए गौरवपूर्ण नहीं हो जाता कि उसे परंपरा का कवच प्राप्त है। दोनों के मूल में एक ही अभिशाप है—मनुष्य का स्वयं अपनी आत्मा और समय से निर्वासन। इस आत्म-निर्वासन का यह परिणाम है कि हम कभी भविष्य में अपनी मुक्ति खोजते हैं, कभी अतीत में अपनी खोयी हुई महिमा और गौरव को पाने का स्वप्न देखते हैं।

मनुष्य का आत्म-निर्वासन विशेष रूप से आधुनिक बोध की देन है। यूरोप में आधुनिकता का आन्दोलन एक ऐसे खंडित काल-बोध से उत्पन्न हुआ था जिसमें मनुष्य का इतिहास-बोध और परम्परा दो स्वतन्त्र इकाइयों में विभाजित हो गयी थीं। यह नहीं कि आधुनिक यूरोपीय मनुष्य अपनी परम्परा के प्रति सचेत नहीं था—किन्तु अब वह बाहर की चीज़ थी, जिसे वह स्वीकार कर सकता था या ठुकरा सकता था। इतिहास-बोध के बीच यह अनोखा अन्तर्विरोध है कि मनुष्य की

स्वतन्त्रता ही उसे अतीत-बोध से विच्छिन्न कर देती है; परम्परा अब जीने की मर्यादा नहीं, एक खोया हुआ समय है, कहीं अतीत में जमा हुआ खजाना, जिसे मनुष्य अपनी ऐतिहासिक चेतना से उपलब्ध करता है। दूसरे शब्दों में कहें तो 'ऐतिहासिक समय' मनुष्य के समूचे समय को हथियाने की, कालोनाइज करने की चेष्टा करता है, उसे अपनी अहं-केन्द्रित इमेज में ढालना चाहता है। जिस तरह पिकासो विभिन्न जातीय परम्पराओं का रस खींच कर अपने 'विज्ञान' को पोषित करते हैं, कुछ-कुछ उसी तरह पश्चिम का ऐतिहासिक समय अपने को केन्द्र मानकर न केवल यूरोप के अतीत को बल्कि गैर-यूरोपीय एशियाई और अफ्रीकी संस्कृतियों की परम्परा को अपने 'औपनिवेशिक प्रभामण्डल' में खींच लेता है। पश्चिम का ऐतिहासिक समय धीरे-धीरे समूची मानव जाति के समय-बोध को शोषित करने लगता है।

यदि आज भारतीय मनीषा इतिहास और अतीत के दो मृत खण्डों में विभाजित दिखायी देती है तो हमें इसका कारण सीधा पश्चिम के उस अहं-केन्द्रित इतिहास-बोध में दिखायी देगा जिसने पिछले दो सौ वर्षों में भारतीय मनुष्य को उसके अतीत और परम्परा से उन्मूलित किया है। उसे दो कितना बड़ा व्यंग्य है कि जिन यूरोपीय का इतिहासकारों और पुरातत्व के पण्डितों ने अपने अनुवादों, खोजों और खुदाइयों

से भारतवासी को अपनी विशिष्ट परम्परा से परिचित कराया, उसी सभ्यता ने उस सामाजिक संरचना के तन्तुजाल को भी नष्ट किया, जिसमें मनुष्य अपनी परम्परा में सांस लेता था, अपने पावन अतीत को अपने वर्तमान में जीता था। किसी जाति के मिथक और विश्वास उनकी जीवन-प्रणाली उसके आत्मीय संसार से जुड़कर ही जीवन्त हो पाते हैं, एक की अभिव्यक्ति दूसरे के द्वारा होती है। मनुष्य जीने की प्रक्रिया में अपने विश्वासों को उद्धाटित करता है उन विश्वासों के द्वारा जीने की प्रणाली मर्यादित करता है, ऐसी संस्कृति में इतिहास का समय एक अधुण्ण धाम से परम्परा के कालातीत बोध से जुड़ा होता है। मनुष्य एक साथ दो काल-प्रदेशों में जीता है और ये दोनों एक-दूसरे से अलग

नहीं हैं। एक-दूसरे के समानांतर भी नहीं हैं—दोनों एक-दूसरे से उलझे हैं—इस उलझाव में ही एक जाति की आत्मा अपना आकार ग्रहण करती है। जे पश्चिम के इतिहास-बोध ने इस 'आत्मा' के तन्तुजाल को छिन्न-भिन्न कर दिया, उसे दो फांकों में खण्डित कर दिया। मनुष्य की मिथक-संसार और उसकी जीवन-प्रणाली दो मृत कटघरों में विभाजित हो गये। दोनों के बीच घाव की खरोच अब

भी मौजूद है। नायपाल ने भारतीय संस्कृति को 'घायल संस्कृति' माना है; काश वह इस घाव के पीछे इतिहास के उस अस्त्र को भी देख पाते जिसका लोहा अब भी उसकी लहलुहान आत्मा के भीतर गड़ा है।

संभव है, हर जाति को देर-सवेर ऐतिहासिक-बोध प्राप्त करने का मूल्य चुकाना पड़ता है। हम अपनी परम्परा के प्रति उसी समय सचेत होते हैं जब उसे खो देते हैं। स्वयं को जानना ही आदि-

पाप बन जाता है, जो हमें परम्परा और अतीत-बोध के 'गार्डन आफ ईडन' से निष्कासित कर देता है। किन्तु यह आत्म-बोध क्या खुद अपने में छलना नहीं है? हम अपने को जानकर अपने अतीत से विच्छिन्न होते हैं और फिर विच्छिन्नता खुद अपने को

जानने में बाधा बन जाती है। वास्तव में हम सभ्यता के आत्मबोध में नहीं, उसके अहं-केन्द्रित अलगाव में जीते हैं। इस अहं-केन्द्रित ऐतिहासिक-बोध का इससे बढ़कर प्रमाण क्या हो सकता है कि जिन रेड-इंडियंस की सभ्यता को सफेद जातियों ने इतनी निर्ममता से उन्मूलित किया, उन्हीं के तीर-कमान, वेश-भूषा, देवी-देवताओं की मूर्तियां आज अमेरिका के संग्रहालयों में बड़े गर्व से प्रदर्शित की



जाती हैं। यह है मानवीय परंपरा के प्रति आधुनिक इतिहास-बोध का वर्तव्य। इसी आक्रामक इतिहास-बोध का प्रमाण—ब्रिल-कुल विपरीत रूप में—हमें एक दूसरी समाज-न्यवस्था में मिलता है, जहां वर्तमान में जीने वाले लेखकों की आत्मा पर ताला लगाकर टालस्टाय और पुष्किन की गौरवपूर्ण परंपरा के दरवाजे खोले गये हैं। हम यह भूल जाते हैं कि जिस प्रकार आज का लेखक परंपरा से प्रेरणा पाकर नया सत्य खोजता है, उसी तरह परंपरा भी आज के लेखक के भीतर ही अपना सत्य उद्घाटित करती है। जब हम 'इतिहास-बोध' के नाम पर सोल्ज्-नित्शिन् जैसे लेखक को देशनिकाला देते हैं तो यह ध्यान नहीं आता कि उसके साथ-साथ हम टालस्टाय और दोस्तोयव्ह्स्की की परम्परा को भी देश निकाला दे रहे हैं। पुराने लेखकों की पुस्तकों को लाखों की संख्या में छापकर साहित्य-परंपरा का संरक्षण नहीं होता। उसका सत्य आज के लेखक की मुक्त वाणी में संरक्षित होता है—ऐसा सत्य जिसके लिए वह किसी से नहीं डरता, 'लोक से भी नहीं, वेद से भी नहीं, गुरु से भी नहीं।' (ये शब्द सोल्ज्-नित्शिन् के नहीं, हजारीप्रसाद द्विवेदी के हैं)।

मनुष्य-नियति की यह पीड़ित विडंबना है कि जब वह सम्पूर्ण रूप से आत्मनिर्वासित हो जाता है, तब संपूर्ण रूप से मुक्त भी हो जाता है। अतीत और भविष्य के

वारे में उसके सब भ्रम और लगाव जाते हैं। इतिहास मानो एक हाथ उसका सर्वस्व छीनकर दूसरे हाथ से निरीह, नंगी, अंधेरे में ठिठुरती हुई स्त्रिता दे देता है। यह ऐतिहासिक-बोध अभिशाप है कि मनुष्य अपने को खो देता है, किंतु उसका वरदान भी यही है। वह सब कुछ खोने के बाद भी सब कुछ पा सकता है। वह पाना समय में होता किंतु जो चीज पायी जाती है, वह समय की सीमाओं का अतिक्रमण लेती है। क्या कला का मूल सत्य भी नहीं है? वह अपने में ठहरी हुई सत्य को उन्मेषित कर देती है, जिसे हम परंपरा कहते हैं, किंतु वह अपने भीतर समय स्थगित भी कर लेती है, जिसे हम इतिहास कहते हैं। इसलिए परंपरा और इतिहास, जिन्हें हम दो विरोधी तत्त्व माना आये थे—एक शाश्वत, दूसरा नश्वर कलाकार उन्हें अपनी स्वतंत्र चेतना बिंदु पर एकीकृत कर लेता है; कला शाश्वत वर्तमान में जीती है। कला यह मर्म मनुष्य-जीवन का सत्य भी सकता है, ऐसा हजारीप्रसादजी सोचते हैं। इस सत्य को वह मनुष्य के भीतर अनामी देवता की तरह पाते थे। देवता की कोई बनी-बनायी मूर्ति नहीं मनुष्य उसे अपनी परंपरा से खोद बाहर निकालता है; बाहर जो चीज है वह मूर्ति नहीं, मनुष्य की स्मृति है, अपने पंख समय में खोलती है, समय

अब
सलव
उससे
बैंज
उसे
सत्य
खुलत
मे
सबसे
भारत
चेतन
जाती
की
पिछ
होती

के
गया
पुत्र
में
उदा
भी,
थप
को
नय
दोस
दी

ज

अब और आज है और उसकी खुलती हुई सलबटों में देवता का जो बिंब निकलता है, उससे वह कभी संतुष्ट नहीं होता। वाल्टर बैंजामिन के शब्दों में कहें तो 'कोई मूर्ति उसे संतुष्ट नहीं करती, क्योंकि देवता का सत्य स्मृति में नहीं, उसकी अनवरत खुलती सलबटों में छिपा रहता है।'

मेरे विचार में हजारीप्रसादजी की यह सबसे महत्वपूर्ण देन थी—एक आधुनिक भारतीय किस दुर्गम रास्ते से अपनी खंडित चेतना का अतिक्रमण कर सकता है, अपनी जातीय स्मृति की सलबटों से उस देवता की मूर्ति निकाल सकता है, जिस पर पिछले दो सौ वर्षों से इतिहास की गर्द जमा होती गयी है, जो मूर्ति भी है और आईना

भी, जिसमें आधुनिक भारतीय अपने से साक्षात्कार करता है।

वे सही अर्थ में आधुनिक थे, क्योंकि वे अतीत की सब छलनाओं और इतिहास की मरीचिकाओं से मुक्त थे—वे सही अर्थ में हिंदू भी थे—ऐसे ब्राह्मण—जिन्होंने हिंदुत्व की बहुविध प्रेरणाओं से मनुष्य का सत्व निचोड़ा था। आधुनिकता और हिंदुत्व—इन दोनों के मेल से वे प्रामाणिक अर्थ में भारतीय बने थे। उनकी दृष्टि में 'भारतीयता' वर्तमान के पासपोर्ट पर कोई बनी-बनायी विरासत नहीं थी, जिसे हम अतीत से पा लेते हैं—वह एक ऐसा मूल्य थी, जिसे हर पीढ़ी को अपने समय में अर्जित करना पड़ता है।



छोटा कोई नहीं

सितंबर, १९७२ की घटना है। कार्यालय के अधिकारियों के साथ मनमुटाव के कारण, मेरा स्थानांतरण श्रीनगर (कश्मीर) से एकाएक कलकत्ता कर दिया गया। तुरंत आदेश निकला और अग्रिम यात्रा-भत्ता भी मुझे थमा दिया गया।

मैं हक्का-बक्का रह गया। घर में पिताजी अत्यधिक रुग्णावस्था में थे। इकलौता पुत्र होने के कारण, उनकी देखभाल करने वाला, वृद्धा मां के सिवा, घर में कोई न था। मैं चिंताग्रस्त-सा, कार्यालय में बैठा था, कि एक बीस-बाईस वर्षीय युवा पत्रकार ने मेरी उदासी का कारण पूछा। इस 'मामूली पत्रकार' को मैंने कभी लिफ्ट नहीं दी थी। फिर भी, अन्यमनस्कता से, मैंने अपनी चिंता का कारण उसे बताया। युवक ने मेरा कंधा थपथपाकर कहा, 'सब ठीक हो जायेगा।' मैंने अविश्वास, खीझ और उपेक्षापूर्वक युवक को देखा। युवक चला गया।

डेढ़ घंटे बाद, वह युवक लौटा, तो उसके हाथों में मेरा तबादला रह करने वाला, नया आदेश-पत्र था! मुझे बाद में ज्ञात हुआ, कि वह पत्रकार तो मेरे बाँस का गहरा दोस्त था। युवक की कृपा से, मैं आज तक अपने घर में हूँ। उस युवक ने मुझे नयी शिक्षा दी : संसार में कोई व्यक्ति छोटा नहीं; कोई व्यक्ति फिजूल नहीं। —शिव रंना



२६ अक्टूबर १९८२ को भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा आयोजित साहित्यकार-सम्मेलन में पठित वीरेन्द्रकुमार जैन का आलेख



समाज-परिवर्तन में लेखक की भूमिका

सृष्टि में परिवर्तन की प्रक्रिया दो स्तरों पर समानान्तर चलती है। पहला स्तर है प्रकृति, जिसमें एक अन्तर्निहित नियम-विधान के अनुसार, क्रमबद्ध पर्याय के रूप में अवस्थाओं का परिवर्तन जारी रहता है। इसमें उत्थान और पतन, उन्नयन और अवनयन क्रमशः प्रकट होते दिखायी पड़ते हैं। प्रकृति में यह प्रक्रिया अवचेतन रूप से और स्वयम्भू भावेन चलती है। परिवर्तन की प्रक्रिया का दूसरा स्तर है पुरुष, जिसका प्रकटीकरण मनुष्य के रूप में दिखायी पड़ता है। मनुष्य कृत परिवर्तन सचेतन होता है : उसमें उच्च से उच्चतर विकास का संकल्प और संचेतना होती है। मनुष्य की चेतना ऊर्ध्वमुखी होती है, उसमें निरन्तर एक अभीप्सा होती है, महत् से महत्तर जगत के निर्माण के लिए। वह जगत-जीवन को अपनी महदाकांक्षा, स्वप्न और विज्ञान के अनुसार, अपनी हर इच्छा की पूर्ति के योग्य संवादी (हार्मोनियस) और सुन्दर बनाना चाहता है।

नवनीत

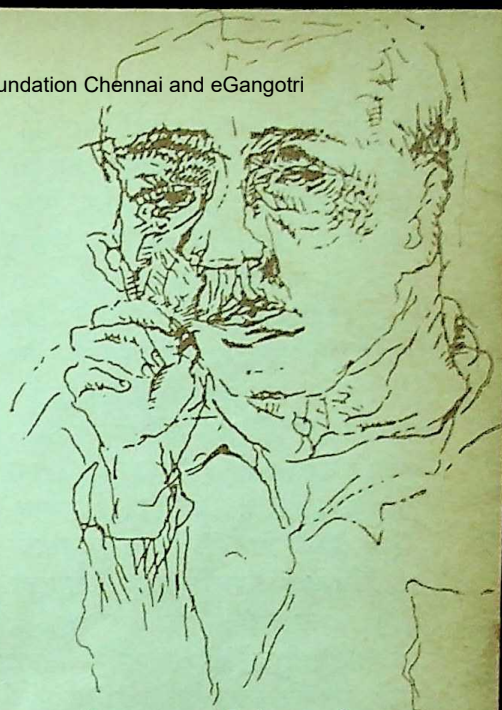
पुरुष या मनुष्य कृत इस परिवर्तन वही हम विकास, प्रगति, क्रान्ति, अन्तिम क्रान्ति आदि संज्ञाओं से अभिहित कर रहे हैं। दरअसल कोई विकास-प्रगति क्रान्ति जैसी चीज़ है भी या नहीं, इसके बारे में विचारकों के बीच कई मतान्तर दिखायी पड़ते हैं। परिवर्तन की प्रक्रिया एक साइकिल या चक्र के रूप में चलती है। प्रकृति में वह अवचेतन और धीमी होती है। पुरुष को चूँकि बुद्धि और प्रज्ञा वरदान प्राप्त है, इस कारण मनुष्य प्रकृति पर अपनी प्रभुता स्थापित कर, उसे अपने मनचाहे रूपों में तेज़ी से बदलने का प्रयत्न प्रचण्ड पराक्रम और पुरुषार्थ करता है। विकास-प्रगति एक सापेक्ष संज्ञा है। उच्च से उच्चतर ज्ञान-विज्ञानात्मक चेतना और रूपान्तरण के उत्कर्ष को देखते हुए—विकास-प्रगति का स्पष्ट प्रमाण मिलता है। ज्ञान-विज्ञान से जाने हुए हजारों लाखों वर्षों के इतिहास से यह बेशक प्रत्यक्ष होता है, कि अपनी आदिम अवस्था से आगे बढ़कर मनुष्य ने आज जगत और

५२

जनव

जीवन को कहीं से कहीं पहुंचा दिया है । आत्मज्ञान और अन्य ज्ञान-विज्ञानों की अपेक्षा भी विकास-प्रगति प्रमाणित होती है । लेकिन जब हम देखते हैं कि राग-द्वेष, वैर-विरोध, हिंसा-हत्या, शोषण-दलन, संघर्ष-युद्ध की आदिम बर्बर वृत्तियां आज भी मनुष्य में ज्यों की त्यों सक्रिय दिखाई पड़ती हैं, तो विकास-प्रगति पर प्रश्न-चिन्ह लग जाता है । जहां तक इतिहास की गति है, इसके परिप्रेक्ष्य में तो सभी क्षेत्रों में—यानी धर्म, अध्यात्म, विज्ञान, कला-सर्जना सभी में उच्चतर उपलब्धियां साफ लक्षित होती हैं । वैसे यह एक अंतहीन विवाद है । पर इतना तो स्पष्ट है ही कि सृष्टि में विकास-प्रगतिशील परिवर्तन की एक साइकिल चलती हुई साफ दिखायी पड़ती है ।

विज्ञान द्वारा प्रकृति की छुपी शक्तियों का नित-नवीन उद्घाटन करके मनुष्य ने आश्चर्यजनक भौतिक विश्व का विराट् निर्माण तो किया ही है । सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो मनुष्य में एक साइकिल के रूप में उच्च से उच्चतर चेतना-स्तरों का अनावरण भी दिखायी पड़ता है । मनुष्य ने प्रकृति पर अपनी प्रभुता कायम कर ली है । लेकिन यह प्रभुता एक दानवीय अहंकार और बलात्कार का रूप ले रही है । विज्ञानतः भी प्रकृति का एक नैसर्गिक नियम-विधान है । मनुष्य यदि प्रकृति के उस नियम-विधान की तरतमता और संवादिता में रह कर, चेतनागत और



रेखांकन : नलिनी मलानी

वस्तुगत विकास का समन्वय साधे, तो शायद एक दिन उसका मुपरमैन का स्वप्न भी सिद्ध हो सकता है ।

यह समन्वय भावात्मक स्तर पर ही संभव है । यानी साहित्य और कला के स्तर पर ही इस हार्मनी को उपलब्ध किया जा सकता है । हमारे यहां कहा गया है, कि परम सत्ता या परब्रह्म की पहली मूर्त अभिव्यक्ति नाद में होती है । नाद, विदु और कला की क्रमिक व्यंजना द्वारा ही मूर्त जगत अवतरित होता है । और नाद-विदु-कला की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति मनुष्य में ही पायी जाती है । और इस नाद का मूर्त रूप है शब्द । और शब्द से ही साहित्य

की सृष्टि होती है। शब्द को ही हमारे यहां ब्रह्म कहा गया है। तो साहित्यकार जो शब्द का स्वामी होता है, उसी का योगदान विश्व या समाज के परिवर्तन में सब से अधिक कारगर होता है।

हर अक्षर और हर शब्द मंत्र की शक्ति रखता है। उसके उच्चार मात्र से सृष्टि में परिवर्तन की लहरें दौड़ने लगती हैं। शब्द के द्वारा ही मनुष्य के तमाम ज्ञान-विज्ञान और सर्जन व्यक्त हुए हैं। इस तरह यह तो स्वतः प्रमाणित है कि जगत, जीवन और समाज में अभीष्ट या अनिष्ट परिवर्तन लाने में वाक् ने, शब्द ने, साहित्य ने ही सबसे बड़ी भूमिका अदा की है। इतिहास में जितने भी अवतार या पैगंबर आये, उन्होंने अपनी वाणी से ही अपने समय और समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन उपस्थित किये हैं। मध्य युग में परदेशी राजसत्ता के सर्वस्वहारी दमन और पीड़न से जब हमारी जाति मृतप्राय हो गयी थी, तब संत कवियों की वाणी ने ही उसे नवीन संजीवनी-शक्ति से अनुप्राणित करके, एक महान नवोत्थान और अति-क्रांति घटित की थी। हमारे समयों में भी शब्द-ब्रह्म के उच्चार द्वारा ही महानतम क्रांतियां हुई, युगांतर घटित हुए।

परम ज्ञानियों ने शब्द द्वारा ही मनुष्य को आत्मज्ञान और विश्वज्ञान के उच्च से उच्चतर शिखरों पर चढ़ाया। और विनाश का तांडव रचने में भी शब्द ही सदा कारगर हुआ। हमारा सरोकार यहां साहित्य

नवनीत

से है, जो कि लिखित और सर्जित शब्द होता है। फ्रेंच क्रांति के आदि स्वप्न-द्रष्टा और सर्जक थे वाल्टेयर और रूसो, और उस काल के तमाम रूसी कवि। और फिर नेपोलियन ने अपने प्रचंड शब्दोच्चार से ही फ्रेंच क्रांति को साम्राज्यवादी मोड़ दे दिया। हिटलर ने अपने शब्द से ही संसार को युद्ध की सर्वनाशी आग में झों दिया। रूसी क्रांति के आद्य स्वप्न-द्रष्टा और सर्जक थे टॉलस्टॉय, गोर्की, दोस्तोव्स्की, मार्क्स, लेनिन, और तमाम अराजकवादी लेखक। उन्नीसवीं सदी के फ्रेंच प्राकृतवादी (नेचुरलिस्ट) लेखकों ने काम और यौन प्रवृत्तियों का उन्मुक्त चित्र करके स्त्री-पुरुष के कामिक संबंधों व उच्छृंखल स्वैराचार की हद तक स्वच्छ बना दिया। लेकिन वह पाखंडी धार्मिक नैतिक आचारवाद की ही एक छोरगा प्रतिक्रिया थी। काम और यौन के क्षेत्र में हुई यह क्रांति आगे ही बढ़ती गयी है और अतिभोगवाद के छोर पर पहुंचकर यही काम अब अपने को अतिक्रांति कर आत्मकाम और परमकाम होने को विकसित हो गया है।

सारे विश्व-इतिहास के तमाम साहित्यिक क्षेत्रों में साहित्य द्वारा सर्जित जगत् वाले इन क्रांतिकारी परिवर्तनों के सैकड़ उदाहरण मौजूद हैं, जिनको दुहराना यहाँ अनावश्यक है।

लेखक जहां एक ओर अपने समय और समाज की सारी विषमताओं, विसंगतियों

और भीषण यथार्थ को, अपनी स्वभावगत वैश्विक संवेदना से आत्मसात् करके उसका अपने सर्जन में एक समग्र साक्षात्कार करता-कराता है : वहीं वह एक मांगलिक परिवर्तन का स्वप्न भी रचता है।

कला के लिए कलावादी साहित्यकारों का मानना है कि अपने समय के यथार्थ जीवन, और मानवीय संबंधों की उलझनों और विसंगतियों के सचोट चित्रण तक ही साहित्य का इलाका परिमित है। साहित्यकार कोई नैतिक या धार्मिक उपदेशक नहीं हो सकता। रास्ता दिखाना उसका काम नहीं। लेकिन इतिहास साक्षी है, कि आज तक जिन साहित्यकारों ने अमर और कालजयी साहित्य की रचना की है, उन्होंने अपने समय के पार तक देखा है, उन्होंने कुरूप यथार्थ का भेदन करके एक सुंदर संवादी सृष्टि का सपना, आशा और विश्वास मनुष्य को दिया है। उन्होंने अभेद्य अंधकार में भी प्रकाश के नये रास्ते खोले हैं। ऐसे ही साहित्यकार पैगंबरों की श्रेणी में प्रतिष्ठित हुए हैं।

कर्मक्षेत्र में जितने परिवर्तन आते हैं उनके पीछे शब्द-स्वामी साहित्यकार की सर्जना का ही सबसे बड़ा योगदान होता है। शब्द आदि स्रोत है, कर्म उसी का प्रवाह या परिणाम है। इसी से मैं मानता हूँ, कि समाज-परिवर्तन में साहित्यकार की भूमिका शब्द की ही हो सकती है, कर्म की नहीं। यदि वह कर्मक्षेत्र में आयेगा, तो उसके

तमाम तात्कालिक उलझावों और प्रपंचों में फँसकर अपनी आद्य-दर्शन, पार-दर्शन और तटस्थ समग्र दर्शन की प्रज्ञात्मक दृष्टि खो बैठेगा। साहित्यकार मूलतः विधाता है, स्वप्न-द्रष्टा है, क्रांत-द्रष्टा है। वह विश्वंभर जगन्नियंता का प्रतिनिधि है। वह अपने शब्द की मांत्रिक शक्ति से ही सृष्टि का, समाज का नया गर्भाधान कर देता है। लेकिन विधाता के बाद आते हैं—विश्वकर्मा। ये कर्मक्षेत्र में विधाता के विधान और स्वप्न को मूर्त करने का प्रचंड पराक्रम, संघर्ष और पुरुषार्थ करते हैं।

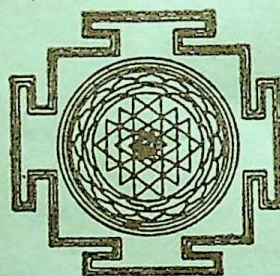
इसी से फलश्रुति में कहना चाहता हूँ, कि समाज-परिवर्तन में साहित्यकार की भूमिका एक मंत्र-द्रष्टा शब्दकार, ऋचाकार, रचनाकार की ही हो सकती है। समग्र और अखंड विश्व तथा उसके अनहदनाद से जुड़े रहकर ही, साहित्यकार समाज में कोई मांगलिक परिवर्तन ला सकता है। जो साहित्यकार अपने सर्व-संवेदी शब्द से अपने समय और समाज में कोई अतिक्रांतिकारी परिवर्तन घटित करने की क्षमता नहीं रखता, उसे मैं साहित्यकार नहीं मानता। वह केवल शब्द और कला का बाजीगर होता है। वह एक विच्छिन्न, खंडित, अवचेतन के अंधेरों में भटकता आत्महारा व्यक्ति मात्र होता है : वह विश्वंभर और विधाता नहीं हो सकता। जो कि साहित्यकार को होना ही पड़ेगा। यही उसके होने की एकमात्र कृतार्थता और नियति है।



दीवान रामचन्द्र कपूर का तंत्र-वैज्ञानिक लेख

तंत्र, मंत्र, यंत्रों का शास्त्रीय विवेचन

भारतीय वाङ्मय में वेदों, उपनिषदों स्मृतियों तथा दर्शनों के उपरांत, तंत्रों की मान्यता है। इसका एक विशाल साहित्य व दर्शन है इसलिए लोग इसे पंचम वेद की संज्ञा देते हैं। धार्मिक दृष्टि से इसकी भी संज्ञा शास्त्र की है। ग्रंथ व शास्त्र में भेद यह है कि समस्त शास्त्र मानव समाज के अभ्युदय के साधन के साथ-साथ निःश्रेयस अर्थात् दुःखों की अत्यंत निवृत्ति का भी उपाय बताते हैं जबकि ग्रंथ अभ्युदय तथा अभीष्ट सिद्धि से संबंध रखते हैं। तंत्रों में भी अभ्युदय के साथ-साथ साधक के लिए मुक्ति का भी मार्ग-दर्शन है। समस्त शास्त्रों में अभ्युदय, अभीष्ट सिद्धि तथा निःश्रेयस प्राप्ति के लिए तीन मार्गों का उल्लेख है। १-ज्ञान, २-कर्म तथा ३-तीसरा मार्ग उपासना का है। इन तीनों मार्गों में से मनुष्य अपनी क्षमता के अनुसार किसी भी मार्ग का अवलंबन कर अभीष्ट सिद्धि को प्राप्त कर सकता है। कलिकाल में उपासना मार्ग अपेक्षा-कृत अधिक सरल साध्य माना गया है।



इसलिए ऋषियों ने इस मार्ग के लिए तंत्रों की रचना की जो ज्ञान व कर्मकांड से अछूता नहीं है।

तंत्र शास्त्र के आदि प्रवर्तक स्वयं भगवान शिव हैं जिन्होंने कैलाश पर्वत पर भगवती पार्वती को प्रश्नोत्तर रूप में दीक्षित किया था और जिसका प्रचार व प्रसार गणेशजी ने किया। तंत्रों का आदि स्रोत हिमालय होने के कारण कश्मीर, तिब्बत आदि पहाड़ी परिसर में पहिले सीमित रहा है। आज कश्मीर में जो 'कौल' अल्ल के लोग हैं उनके पूर्वज शैव तान्त्रिक थे।

तंत्र की मुख्य दो शाखाएं हैं। एक शैव दूसरी शाक्त। शिव शक्तिमान तथा उसकी माया शक्ति है। शैवोपासना के अंतर्गत शिव, विष्णु, सूर्य, गणेश व भैरव आदि देव हैं। शाक्त अर्थात् शक्ति की उपास्य १२ महाविद्याएं हैं। महाकाली, तारा, षोडशी, भुवनेश्वरी, छिन्नमस्ता, त्रिपुरभैरवी, धूमावली, वगुलामुखी, मातंगी, कमलात्मिका लक्ष्मी, कुमारिका, और दुर्गा। तंत्रों में इनकी उपा-

सना की विधि व विधान निहित है। ये ढामर, यामल तथा शिवसूत्रों में उल्लिखित हैं। देवियों की उपासना का विस्तृत विधान शाक्त प्रमोद ग्रंथ में भी है। अस्तु तंत्रों का उद्देश्य है देवोपासना तथा क्रिया विशेष द्वारा अपने में शक्ति का संपादन करना तथा उसके द्वारा विनिष्ट उद्देश्य व सिद्धि की प्राप्ति करना।

भौतिक शक्तियां स्वयं में जड़ हैं और उनका प्रभाव तभी अभीष्ट होता है जब उनमें चेतना भाव हो। शक्ति स्वयं के प्रयोजन के लिए नहीं होती, उसका प्रयोजन परार्थ होता है। योग सूत्र में कहा गया है कि 'भोगापवर्गार्थं दृष्यम्'। यह जो कुछ भी दीख रहा है सब जीव के कर्मों के भोग के लिए तथा अपवर्ग के लिए है। अपवर्ग अर्थात् मुक्ति। अग्नि, विद्युत, प्रकाश आदि भौतिक शक्तियां जीव के लिए तभी प्रभावकारी होती हैं जब जीव को उसकी प्रयोग विधि ज्ञात हो। अग्नि स्वयं को नहीं जलाती। वह जलाई जाती है। इसी प्रकार दैव संप्रदाएं भी जीव के उद्धार व मुक्ति के लिए हैं यदि इनके उपयोग की विधि ज्ञात हो। ऐसी विधियों का वर्णन तंत्रों में है।

भारतीय तंत्रों का दार्शनिक दृष्टिकोण

शिवोक्त आद्य महानिर्वाण तंत्र का दर्शन सांख्यानुरित है। साथ ही उसमें अद्वैतवाद प्रतिपादित है। सृष्टि क्रम के बारे में वहां कहा गया है कि पहले केवल शुद्ध निर्लेप निराकार एक ब्रह्म

था। उसने इच्छा की कि 'एकोऽहं बहु-स्याम्' अर्थात् मैं एक से अनेक हो जाऊं। तब इस संकल्प के साथ ही उसकी माया ने, जो उसी में निहित थी, नाना विवर्त रूप धारण कर लिया जो यह सृष्टि है। इसका सांख्य स्वरूप यह है कि मूल में चेतन (पुरुष) और उसकी शक्ति (जड़ प्रकृति) सत-रज-तम की साम्यावस्था में स्थित थी। उसमें सहसा क्षोभ हुआ और जड़ प्रकृति की साम्यावस्था भंग हो गयी। तब गुणों की विषमता के कारण नाना रूप रंग की यह सृष्टि हुई। गुणों की असंतुलित अवस्था में सर्वप्रथम बुद्धि तत्त्व की उत्पत्ति हुई। इसने प्रकृति में निर्धारित नियमों का सृजन किया। इसी निर्धारित नियम के अधीन प्रकृति में उत्पत्ति, स्थिति



त्रय का क्रम है। बुद्धि के उपरांत अहं-कार की उत्पत्ति हुई अर्थात् द्वैतभावना की। द्वैतभावना कार्यों का प्रेरक है। उपरांत पंचतन्मात्राएं अर्थात् शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श शक्तियों का उदय हुआ, उपरांत मन आया। पांच-पांच ज्ञान व कर्मेन्द्रियां हुई। पांच महाभूत हुए। यही मानव के जन्म का भी क्रम है। कहा गया है कि 'यथा तिष्ठन्ति ब्रह्मांडे तथा तिष्ठन्ति कलेबरे।'

प्रकृति जड़ है, वह स्वयं कोई कार्य नहीं कर सकती। उसकी साम्यावस्था जब तक भंग न हो तब तक कोई कार्य नहीं हो सकता। जल भाप रूप में तभी परिवर्तित हो सकता है जब उस पर बाहर से दूसरी शक्ति अग्नि का प्रभाव पड़े। जल भाप रूप में परिवर्तित हो जाता है फिर भी वह जल ही है, अग्नि में भी कोई परिवर्तन नहीं होता। जल का रूपांतर मात्र होता है। इसी प्रकार असंग ईश्वर की यह प्रेरणा कि मैं एक से अनेक हो जाऊं प्रकृति में क्षोभ का कारण है। बिना प्रेरणा या संकल्प के कोई कार्य नहीं होता। ब्रह्म की वही मूल प्रेरणा वा संकल्प समस्त प्राणियों में विद्यमान है। प्राणी प्राणी रहता है पर प्रकृति में रूपांतर हो रहा है। इस सिद्धांत के अनुसार मानव समाज का समस्त कार्य, सभ्यता व संस्कृति उसकी कल्पना, संकल्प, विचारों के आधार पर है। संकल्प या विचार बिना शब्दों के हो नहीं सकते। मनुष्य कोई भी संकल्प या कल्पना या

विचार करे तत्क्षण उसमें अज्ञात रूप के त्रिविषयात्मक शक्ति उत्पन्न हो जाती है अर्थात् १-काल, २-दिक्, ३-आकाश अंक काल का द्योतक है, रेखा दिशा का तथा शब्द आकाश का। कोई भी घटना इन तीनों भावना के बिना हो ही नहीं सकती। इसलिए किसी भी संकल्प को कार्यकारी बनाने के लिए इन तीनों शक्तियों का अध्ययन आवश्यक है। तंत्रों में इन तीनों को ही सिद्धि का माध्यम माना गया है।

(इस संबंध में धर्मयुग के ता. २५ नवंबर १९७७ के अंक में पृष्ठ २४ पर मेरा लेख पढ़ने से स्थिति स्पष्ट हो जायेगी)। वैयाकरणों तथा तांत्रिक लोग शब्द को ही ब्रह्म मानते हैं। इसलिए वहां सिद्धि के लिए मंत्रों का अतिवाह महत्व है।

तांत्रिकों के सिद्धि के दो मार्ग हैं। एक उधोम्नाय दूसरा अधोम्नाय। उधोम्नाय देवी-देवताओं की उपासना है अधोम्नाय में प्रेतादिकों की सिद्धि। अधोम्नाय निकृष्ट मार्ग है गौरी इसमें कुछ लौकिक सिद्धियां प्राप्त हो जाती हैं पर अंत बड़ा कष्टप्रद होता है। अधोम्नाय वाले पंचमकारी या कापालिक कहे जाते हैं। पंच मकार हैं—मांस, मदिरा, मत्स्य, मैथुन, तथा मुद्रा। उधोम्नाय ग्रंथों में इन पांच मकारों की दूसरी आध्यात्मिक व्याख्या की गयी है पर अधोम्नाय साधक इसके लौकिक अर्थ लेकर उपरोक्त

पंच मकार का सेवन करते हैं।

देव वा देवियां सब अंतरिक्ष की अदृष्ट शक्तियां हैं अर्थात् निराकार हैं। इन्हें साकार रूप दिये बिना उपासना संभव नहीं, इसलिए तंत्रों में साकारोपासना के

लिए मूर्ति, चित्र तथा यंत्रों के निर्माण की व्यवस्था है। यंत्र का अर्थ है जिस पर किसी का आह्वान किया जाये। इसलिए तांत्रिक उपासना में यंत्रों का भी महत्व है। मंत्र और यंत्र मिलकर तंत्र होता है।



(पृष्ठ ४३ का शेषांश)

वह कहता है, 'मेरे अपराध ऐसे हैं कि मेरी निष्कृति नहीं।'।

श्रीकृष्ण कहते हैं, 'तुमने अपराध किया ही नहीं। तुम तो मेरी निष्कृति हो। मेरी इस नरदेह की निष्कृति हो, यदुवंशों के उन्मत्त रक्त की अंतिम बूंद इस देह में जब तक रहती, तब तक मेरी निष्कृति नहीं थी। मैं ही अगर अपने कुल के, अपनी जाति के और अपनी संपूर्ण निष्काम कर्मसाधना को निष्कृति पाये बिना जाऊंगा तो मेरी गीता पर विश्वास कौन करेगा? मैं अगर अपनी पेराई अंत तक निश्चल भाव से नहीं होने दूंगा तो कौन इस जीवन को सवन निचाड़ने की प्रक्रिया बनाने पर तैयार होगा, कौन 'हे राम' कहते हुए अधिक की गोली शेलने को तैयार होगा? निपाद तुमने मेरा काम किया है, तुम मुझे अकेले छोड़ कर जाओ। मैं अपने यदुकुल रक्त को रिसती धार अकेले देखूंगा और यह संदेश छोड़ जाऊंगा कि कर्म की गति ऐसी ही गहन होती है और कोई भी किसी को मुक्त नहीं करता। आदमी अपने से मुक्त होता है, अपनी पेराई के द्वारा मुक्त होता

है। अपने को ऐसे ही आविद्ध रूप में निरुद्वेगभाव से देखते हुए बूंद-बूंद रिसते देखते हुए मुक्त होता है। देह में रहत हुए देह का अभिमान छोड़ता है।'।

मैं अधिक उदाहरण नहीं दूंगा क्योंकि भारतीय संस्कृति की कोई एक पहचान तो है नहीं, न भारतीय साहित्य ही कोई ऐसा छोटा है, पर साहित्य के विद्यार्थी से इतना आग्रह जरूर करूंगा कि साहित्य को आप पढ़ें तो इस दृष्टि से भी पढ़ें कि आपकी समूची अस्मिता (जो आपको आपकी संस्कृति से मिली है) कितनी मथी जा रही है, कितने आप लाचार किये जा रहे हैं कि कटघरे में खड़े होकर जवाब दें कि आप इस योग्य हैं कि अपने को 'अमृतस्य पुत्राः', अमृत की संतान कहें। जब तक आप यही लाचारी महसूस नहीं करेंगे तब तक न आप साहित्य को पहचानेंगे न उसके माध्यम से अपनी उस ढलाई की प्रक्रिया को जो आपको आपके पूर्व पुरुषों को आंच में डाल कर की जाती रही है। वह ढलाई की प्रक्रिया ही तो संस्कृति है।

—पी-१ गोपाल कुंज,
बाग मुजफ्फर खां, आगरा



१९८२ के साहित्य के नोबल-पुरस्कार विजेता गब्रियल गार्सिया मार्खेज



हंसकुमार द्वारा प्रस्तुत

‘१९८२ के साहित्य के नोबल पुरस्कार विजेता गब्रियल गार्सिया मार्खेज की लेखन शैली में अति यथार्थ और कल्पना का मनोरम मिश्रण है। एक महाद्वीप के जनजीवन के सारे संघर्ष और यथार्थ उनकी रचनाओं में बड़ी खूबी से प्रतिबिंबित होते दिखायी पड़ते हैं,’ यह अंश है उस वाचन-पत्र का, जो नोबल पुरस्कार समिति ने पुरस्कार की घोषणा करते समय प्रकाशित किया था।

पाब्लो नेरूदा, मिगुएल एंजेल् अस्तूरिआस और गब्रियल मिस्ताल के बाद गब्रियल गार्सिया मार्खेज चौथे लातानी साहित्यकार हैं, जिन्हें साहित्य का नोबल पुरस्कार जीतने का सम्मान प्राप्त हुआ है।

पास्तरनक, मिलोज़ आदि की भांति मार्खेज भी एक निर्वासित लेखक हैं। वे कहते हैं, ‘मैं पिछले २५ वर्षों से कोलंबिया से बाहर रह रहा हूँ, और इस दृष्टि से कह सकता हूँ कि मैं सदा से निर्वासित रहा हूँ। किंतु, मेरा निर्वासन राजनैतिक नहीं साहित्यिक कारणों से हुआ है। और इस निर्वासन से मुझे काफ़ी लाभ हुआ है। उससे मेरा लेखन तो विकसित हुआ ही है, मुझे अन्य देशों को जानने-समझने में भी सहायता मिली है, और यह समझ भी मेरे साहित्यिक विकास में अत्यधिक

सहायक हुई है।’

कोलंबिया से निर्वासित होकर मार्खेज कुछ दिनों तक पेरिस और स्पेन में रहे लेकिन अब स्थायी रूप से आकर मैक्सिको में बस गये हैं। अपने देश से बाहर रहते हुए भी वे अपने देश में मानव-अधिकारों की रक्षा के लिए संघर्ष करते रहते हैं। ‘अपने टाइपराइटर से, जो मेरा एक मात्र हथियार है।’

हेमिंग्वे : मार्खेज के साहित्यिक गुरु

पिछले ३५ वर्षों से मार्खेज हेमिंग्वे को अपना साहित्यिक गुरु स्वीकार करते चले आ रहे हैं। हेमिंग्वे से उनकी सर्वप्रथम भेंट १९५० में पेरिस में तब हुई थी, जब उन्होंने हेमिंग्वे को एक सड़क पर जाते देखा था। अपने साहित्यिक गुरु को अपने सामने देखकर उन्होंने ‘माओस्ट्रो’ कहकर

भावाज्ञ दी। हेमिंग्वे ने रुककर तरुण
माखेज से कुछ देर तक बातें कर, उसे श्रेष्ठ
साहित्यिक लेखन करते रहने के लिए प्रेरित
किया।

हेमिंग्वे के अलावा, फॉकनर दूसरे
लेखक हैं, जिन्होंने उनके लेखन को आत्यं-
तिक रूप से प्रभावित किया है। 'फॉकनर
की प्रेरणा का संबंध मेरे लेखन की आत्मा-
न है, जबकि हेमिंग्वे का प्रभाव मेरी लेखन-
शैली और लेखन-विज्ञान पर देखा जा
सकता है।' वे कहते हैं।

हेमिंग्वे की भांति माखेज
भी एक लंबे समय तक पत्रकार
रहे हैं और वे साहित्यकार के
लिए पत्रकारिता के महत्त्व
को स्वीकार करते हैं।

हेमिंग्वे की भांति, पत्रकारिता
उनके लिए 'प्रथम प्रेम' है,
और साहित्य 'दूसरा प्रेम'।
तुलनात्मक, फिल्म-समीक्षक
रूप में उन्होंने लेखन के

क्षेत्र में काफ़ी कुछ सीखा है। लेखन
अपनी जिस अतिथयार्थवाद की
शैली के लिए वे विख्यात हैं, उसका
पाठ सर्वप्रथम उन्होंने पत्रकारिता की
पाठशाला में ही सीखा था। पत्रकारिता
संलग्न रहकर उन्होंने यह कीमती सबक
सीखा कि 'यद्यपि इतिहास का आधार
तीत है, तथापि उसका निर्माण भविष्य
होता है।'

हेमिंग्वे जिस प्रकार अपने जीवन-काल

में एक 'लेजेंड' बन गये थे, उसी प्रकार
माखेज भी अपने जीवन-काल में उनसे भी
कहीं अधिक सशक्त और व्यापक आधार
वाले 'लेजेंड' बन गये हैं।

समृद्ध लेखन

१९२८ में कोलंबिया के एक छोटे से
नगर अराकटाका में जन्मे गाब्रियल माखेज
कहते हैं कि 'जन्म से लेकर आज तक
मेरे जीवन में ऐसा कुछ घटित नहीं हुआ,
जिसे मैं रोचक कह सकूँ।' इस मामूम
स्वीकारोक्ति के बावजूद, यह एक हकीकत

है कि उनका लेखन जीवन के
नानाविध अनुभवों से समृद्ध
है। प्रत्येक वाक्य में एक
पारदर्शी चमक है, और वह
संवेगी, बहुआयामी और
बहुअर्थी है। जीवन के विभिन्न
रंग-रूपों, रसों, गंधों, स्पर्शों
और मानवीय ऊष्माओं से
पूर्ण उनका लेखन इस बात का
प्रमाण है कि उन्होंने विवि-



धता और गहराई से पूर्ण जीवन जीकर उसे
अपनी रचनाओं में इस प्रकार प्रति-
विम्बित किया है कि उन्हें पढ़ते समय पाठक
को लगता है कि वह स्वयं अपने ही जीवन
के मर्मों को उद्घटित होते हुए देख रहा
है, और अपनी ही वासनाओं, कामनाओं,
भीतियों, आशंकाओं, लड़ाइयों, आदि की
कहानी पढ़ रहा है।

अपने समृद्ध और बहुआयामी लेखन
के कारण ही माखेज पाठकों के अलावा

हिंदी डाइजेस्ट

शीर्षस्थ लेखकों के भी प्रिय लेखक हैं; इसी कारण से उन्हें 'लेखकों का लेखक' भी कहा जाता है। नोबल पुरस्कार के एक अन्य नामी उम्मीदवार ग्राहम ग्रीन मार्खेज के प्रशंसकों में अग्रणी हैं। वे मार्खेज को एक विलक्षण लेखक मानते हैं, और कहते हैं कि वे अकेले लेखक हैं, जिनमें जीवन की यथार्थवादी, तात्त्विक और काल्पनिक समझ है।

नोबल पुरस्कार समिति ने मार्खेज के लिए पुरस्कार की घोषणा करते समय, जो वाचन-पत्र जारी किया था, उसमें उनके लेखन के बारे में कहा गया है, 'गान्त्रियल गार्सिया मार्खेज की लेखन-शैली में अति यथार्थ और कल्पना का मनोरम मिश्रण है। एक महाद्वीप के जनजीवन के सारे संघर्ष और यथार्थ उनकी रचनाओं में प्रतिबिम्बित होते दिखायी पड़ते हैं।'।

अतियथार्थवादी (सररियलिस्ट) होते हुए भी, उनका लेखन बड़ा काव्यमय है। इस बात का पता उनके लोकप्रिय उपन्यास 'वन हंड्रेड ईयर्स ऑफ सालिटचूड' को पढ़कर आसानी से लग जाता है। इस उपन्यास की कहानी द. अमरीका के जंगलों में कुछ आविष्कारों द्वारा एक नया नगर बसाये जाने के प्रयासों से संबंधित है, और 'द टाइम्स' के साहित्य समीक्षक के अनुसार, 'यह उपन्यास जंगल जैसा सघन, तथा ज्ञान, हास्य, काव्य और घटनाओं से पूर्ण है, विस्मयजनक होने के साथ-साथ विचारोत्तेजक भी। कविता जैसा सहज

प्रवाह है उसके लेखन में।'।

घटनाएं उपन्यासकार मार्खेज के एक साधन मात्र हैं, उनके चारों अतियथार्थवाद (सररियलिज्म) कल्पनाओं का ताना-बाना बुनकर ऐसे क्षुद्र जगत् की सृष्टि करना, जो हम परिचित जगत् की सीमाओं का अतिक्रमण कर, हमारे जगत् से बृहत्तर जगत् प्रस्तुत करता है।

ढाँचे की बुनियाद

अपने इस उपन्यास में मार्कोंदो नाम जिस अपक्षयी नगर को पेश किया है, वास्तव में उसी अराकटाका नामक का ही काल्पनिक रूप है, जिसमें एक टेलीग्राफ आपरेटर के घर में उनका जन्म हुआ था। कुल मिलाकर १६ वर्षों के, एक नम तथा कच्चे से घर में बने वाले इस परिवार में। 'मेरे जीवन के आठ वर्ष इसी शहर में अपने दादा-दादी के घर में बीते। ये मेरे निर्माणात्मक थे, क्योंकि मैं अपने परिवेश के प्रति संवेदनशील था।'।

मार्खेज के सहयोगी लातीनी मारियो बर्गस लोसा ने एक स्थान लिखा है, 'बागोता में मार्खेज ने जो नियां लिखीं, वे उन कहानियों से भिन्न हैं, जो उन्होंने वर्षों बाद बागोता अपनी मां के साथ अराकटाका में आने बाद लिखीं, 'क्योंकि वापस अराकटाने आने पर मैंने पाया कि जिस नगर में जीवन दिया था, वह मरणोन्मुख

मुझे इससे बड़ा आधात पहुंचा, और मैंने वहां आकर निश्चय किया कि जिस यथार्थता के दर्शन मैंने किये हैं, और जिसकी अनुभूति मुझे एक स्तब्धकारी ढंग से हुई है, उसे बदलने की जरूरत है, और अपनी कलम का प्रयोग इस बदलाव को आने के लिए ही करूंगा। इस अनुभूति ने मेरी आंखें खोल दीं, और निपट एक व्यक्ति की भांति जो मुझे ठीक लगेगा, वही लिखूंगा मैं, बिना इस बात की परवाह किये कि मेरे लेखन से कौन नाराज होता है। न तो मेरी कोई संस्था है, न कोई संगठन। और मैं अपना सही पाठक उन लोगों को मानता हूँ, जिन्हें मेरी बात ठीक लगती है।'

‘लीफ स्टॉर्म’ नामक अपने लघु-उपन्यास में एक बूढ़े कर्नल की जिद्दी मानवीयता के मुकाबले में माकोदो के क्रमिक नाश का दिल दहला देने वाला चित्रण कर, माखेज ने प्रतिबद्ध लेखन की अपनी नयी यात्रा आरंभ की।

इसके बाद आया ‘ऑटम ऑफ द ट्रिआर्क’ नामक उनका सशक्त उपन्यास, जो लेखन में उन्होंने तानाशाही को तार-तार करके पेज किया है। इसे पढ़कर तानाशाहों को प्रति भय और जुगुप्सा तो जागृत होती है, उसके सड़े हुए अंतर्भाग के घृणास्पद स्वप्न करने वाले दर्शन भी होते हैं।

यहां ‘सालिटचूड’ में जीवन और आशा का आकाशवाणी किया गया है, वहां ‘पेट्रिआर्क’ एक तानाशाह के आतंकमय अंतिम दिनों को



माखेज माखेज

बड़े ही प्रभावोत्पादक ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

जीवन की आनंदपूर्ण स्वीकृति

माखेज आजकल एक अनुपम प्रेम-कथा लिखने में व्यस्त हैं। उनका कहना है कि उनकी प्रेम-कथा अब तक लिखी गयी प्रेमकथाओं से सर्वथा भिन्न होगी, क्योंकि उसके पात्रों को किसी अप्रिय या शर्मनाक स्थिति का सामना नहीं करना पड़ेगा। उसके सभी पात्र आनंदी पात्र होंगे, जिनका आनंद पाठकों को भी आनंदित करेगा। वे कहते हैं:

‘आनंद की भावना को लोगों ने इस कदर भुला दिया है कि अब उसकी बात भी उन्हें बड़ी अजीब लगती है। मैं आनंद को पुनः जीवन में प्रतिष्ठित देखना चाहता

हिंदी डाइजेस्ट

हैं। जीवन की आनंदपूर्ण स्वीकृति चाहिये। हम वेदना और दुख को जितनी आसानी से स्वीकार कर लेते हैं, उतनी आसानी से आनंद और आशा को नहीं कर पाते।

अपनी रचनाओं में मार्खेज यद्यपि खुले रूप से प्रतिबद्ध नहीं दिखायी देते, तथापि वे वर्षों से प्रगतिशील आंदोलन के ज्वरदस्त समर्थक रहे हैं। सात वर्ष तक उन्होंने इस क्रसम का पालन किया कि जब तक चिली में प्रजातंत्र स्थापित नहीं हो जाता, वे कोई उपन्यास या कहानी नहीं लिखेंगे।

अमरीका को वे सारे लातीनी अमरीका का 'महानतम शत्रु' मानते हैं। अपने उपन्यास 'ऑटम आफ द पैट्रिआर्क' में उन्होंने एक आततायी लातीनी अमरीकी तानाशाह का चित्रण किया है।

अमरीकी राष्ट्रपति रीगन के चुनाव से

पूर्व, उनकी कृतियों के अंग्रेजी अनुअमरीका में प्रकाशित और वितरित होते थे।

लेकिन रीगन के चुनाव के उन्होंने अपनी रचनाओं को अमरीका प्रकाशित और वितरित करने की मति प्रदान कर दी है, क्योंकि वे रीगन लोकतंत्र का सबसे घोर शत्रु मानते और यह भी मानते हैं कि वे अपनी रचनाओं के माध्यम से अमरीका में रीगन विरोधी जनमत तैयार कर सकेंगे। उन विचार है कि अपने 'राजनीतिक उपन्यास' 'ऑटम ऑफ द पैट्रिआर्क' में उन्होंने संत्रासों को उद्घाटित किया है, वे अमरीकी को, विश्व के अन्य साधारण पाठक की भांति कुछ सोचने पर अवमजबूर करेंगे।

(पृष्ठ ३५ का शेषांश)

करना बाकी है उसका केवल आरंभ बिंदु है, जब तुम भविष्य को प्राप्त करने योग्य संभावनाओं से भरे चमकते सूर्य के रूप में देखो तब तुम युवा हो। तुमने धरती पर जितने वर्ष बिताये हों, तुम युवा और भावी कल की उपलब्धियों से समृद्ध हो।

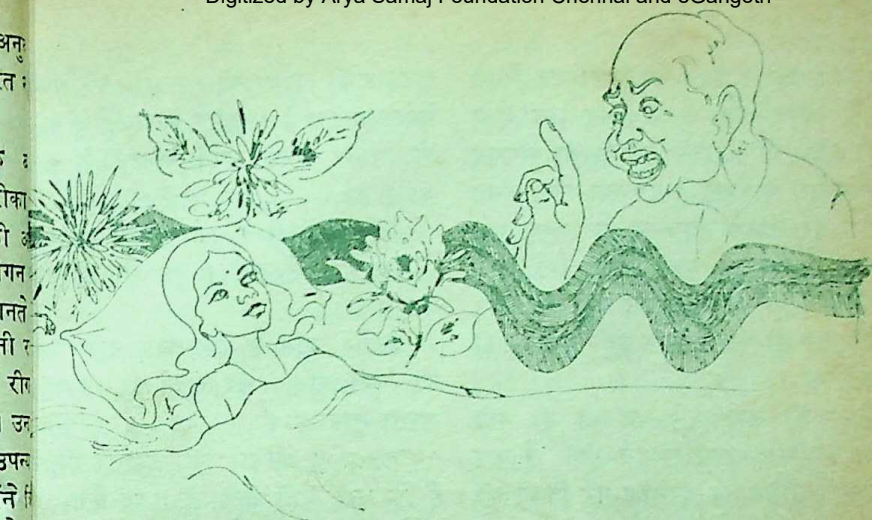
और अगर तुम नहीं चाहते कि तुम्हारा शरीर तुम्हें धोखा दे तो व्यस्तता से उत्तेजना में अपनी शक्ति नष्ट करने से बचो। तुम जो भी करो शांत, स्थिर प्रकृतिस्थ होकर करो। शांति और नीरवता में अधिकतम शक्ति है।

(२१-२-१९७०)

०००

सुखी और सार्थक जीवन के लिए आवश्यक तत्व हैं निष्कपटता, विनय, अध्ययन और प्रगति के लिए कभी न बुझने वाली प्यास। और सबसे बढ़कर तुम्हें प्रगति संचालित करने के लिए असीम संभावना के बारे में विश्वास होना चाहिये। प्रगति ही यौवन है। सौ वर्ष के अवस्था में भी तुम युवक हो सकते हो।

(१४-१-१९७०)



हिन्दी के यशस्वी कथाकार विष्णु प्रभाकर की कहानी



जीवन का एक और नाम

पापा ! किवाड़ खोल दो और प्रकाश को आने दो ।' सुमिता ने अपने पिता से कहा ।

उसी क्षण द्वार खुला और अनंत काका उसके सामने थे, सदा की तरह मुस्कराते-हँसते, 'मैंने सुन लिया था । तुमने 'हा, 'प्रकाश' । और प्रकाश तुम्हारे ध्यान में है ।'

सचमुच शीतकाल की ढेर सारी धूप नौ वर्षों में भर गयी थी । मर्मतिक पीड़ा के बावजूद सुमिता अंदर तक खिल आयी,

बोली, 'अनंत काका, जब भी मैं कुछ चाहती हूँ तुम उसे ले आते हो । तुम क्या भगवान हो ?'

अनंत काका शरारत से खिलखिलाये, 'तो तुम भगवान को मानती हो ?'

'नहीं,' सुमिता ने सहज भाव से कहा, 'मैं नहीं मानती ।'

'लेकिन मैं मानता हूँ । कितनी सुंदर, कितनी मोहक है यह धूप । यही क्या भगवान नहीं है ।'

सुमिता ने उस क्षण जैसे पोर-पोर में

हिंदी डाइजेस्ट

समाये दर्द से अपने को मुक्त कर लिया हो। अनंत काका के आने पर प्रायः ऐसा ही होता था। उनसे सुमिता का परिचय अस्पताल में रहते ही हो गया था। कैंसर के दूसरे घातक आक्रमण के कारण उसे चलने-फिरने में बहुत कष्ट होने लगा था। हड्डियों में प्रवेश कर गया था कैंसर और धरती पर उसकी छुट्टी समाप्त हो गयी थी।

उसकी आयु २५ वर्ष की भी नहीं थी। कैसी त्रासद स्थिति होती है जब खिलते यौवन की दहलीज पर किसी को मृत्यु-दंड सुना दिया जाये।

‘नहीं, नहीं, यह मृत्यु-दंड नहीं है।’ यह अनंत काका ने कहा था उसके पिता से, ‘मृत्यु तो मुक्तिदाता है, सबसे स्नेहिल मित्र। अपने असली घर हम जितनी खुशी-खुशी जा सकें उतना ही अच्छा है।’

फिर भी पिता का मन कसक-कसक उठता। वे जानते थे कि सुमिता के जीवन की लौ किसी भी क्षण बुझ सकती है पर सुमिता को अभी तक किसी ने नहीं बताया था। डाक्टर कहते थे, अंतिम क्षण तक प्रयत्न करना हमारा धर्म और कर्म दोनों हैं। रोगी को आतंकित करके उसके अंतिम क्षणों को और त्रासद नहीं बनाना चाहिये।

उनको वैसी ही शिक्षा मिली थी, विवश थे वे, लेकिन अनंत काका का तर्क था, ‘डाक्टर मृत्यु से डरते हैं। सुमिता को यह जानना बहुत आवश्यक है कि अब उसकी छुट्टियां समाप्त हो गयी हैं। उसे

खुशी-खुशी यहां की मधुर स्मृति लेकर लौटना है। कबीर के शब्दों में कर ली तो श्रृंगार करके अपने साजन के घर च जाना है ...’

‘लेकिन’ पिता ने तर्क करना चाहा, ‘न, न, तर्क नहीं। मुझ पर छोड़ो यह भार।’

उन्होंने सुमि से इस तरह बात की, ‘क्यों, सुमि ! घर चलने को मन करता तुम्हारा।’

‘करता है, काका। पर डाक्टर कहते हैं कि अभी नहीं जाना है। दर्द कम जाये तभी जा सकूंगी। उनको विश्वास कि मैं बहुत जल्दी चलने-फिरने लायक जाऊंगी लेकिन, वह मुस्करायी, ‘मैं जानूँ हूँ यह सब झूठ है।’

अनंत काका एक क्षण झिझके। फिर वे खिलखिला पड़े, ‘यह जानना बहुत अच्छा बात है। धरती पर हम सब सीमित सृष्टि के लिए आते हैं। कुछ देर तक रहते रहे हैं कुछ जल्दी चले जाते हैं।’

‘मैं जल्दी जाना चाहती हूँ।’
‘कहां?’

‘अपने असली घर।’

‘अहा !’ काका ने विजय गर्व से कहा, ‘तो तुम ईश्वर को मानने लगीं।’

‘प्रकाश अगर ईश्वर है तो उसे मानना सही में मुझे कोई आपत्ति नहीं है। प्रकाश ही एक और नाम है सौंदर्य।’

‘अहा ! तुम तो बहुत कुछ जानती होती प्रकाश, सौंदर्य, ईश्वर उसी एक सत्ता

अंश हैं हम सब । अंश भी ईश्वर ही है ।
तो उस ईश्वर ने तुम्हारी याचिका स्वीकार
कर ली है । बहुत जल्दी तुम अपने असली
घर चली जाओगी ।

एक क्षण स्तब्ध सुमिता ने अनंत काका
की ओर देखा । एक रहस्यमय मुस्कान
सलक आयी थी उनके मुख पर । सुमिता
ने अनुभव किया कि उसके आसपास
सब कुछ तरल ज्योतिर्मय हो आया है ।
अंतर में एक ज्वार-सा उमड़ा, फिर उसने
आंखें बंद कर लीं । उतनी देर काका उसे
एक टक देखते खड़े रहे, मुस्कराते रहे ।

फिर सुमिता ने आंखें खोलीं और काका
के मुख पर गड़ा दीं । मुस्करायी, 'अब मैं
जान गयी हूं तो कितना अच्छा लग रहा
है । शेष बचे जीवन के प्रत्येक क्षण का
मैं आनंद लेना चाहती हूं । आप मेरी मदद
करेंगे न ?'

काका ने अत्यंत स्नेह से उसका हाथ
सम्भवा दिया, 'तभी तो हम आज घर चल
रहे हैं ।'

फिर एकदम चहक उठे, 'मैंने तुम्हारा
कमरा तैयार कर दिया है देखोगी तो
नाच उठोगी ।'

घर तक की वह यात्रा बहुत सुखद
से कहीं थी । इसलिये नहीं कि वह उस मार्ग
' को फिर कभी नहीं देख सकेगी बल्कि
मानसलिये कि एंबुलेंस जब भी हिलती उसका
अंग-अंग टीस उठता । फिर भी काका की
अस्थिति उसे यह सब सह पाने की शक्ति
ती होती थी ।

सप्ता १९८३

जनव

अनंत काका को उसने पहली बार
तब देखा था जब वह हड्डियों का एक्स रे
कराने तीमारपुर गयी थी । वे भी उसी
एंबुलेंस से लौटे थे । सुमिता के पिता ने
पूछा था, 'आपको भी कैंसर है ?'

'डाक्टर कहते हैं तो होगा ही ।'

'आपके परिवार के लोग . . . !'

'परिवार', काका हंसे थे, 'पत्नी तो
बहुत जल्दी अपने घर चली गयी थी ।
बेटा बंगलोर में इंजीनियर है । बेटी यहीं
है । वह और दामाद बारी-बारी आते
हैं दोनों । आप नहीं जानते, मेरी बेटी का
घर आपके घर के बहुत पास है ।'

संयोग देखिये उसी दिन सुमिता के
साइड रूम में दूसरी शैया खाली हुई और
जिद करके अनंत काका उस पर आ गये ।
यद्यपि दो हफ्ते से अधिक वे साथ नहीं
रह सके लेकिन लगा ऐसा जैसे वे युग-युग
से जुड़े रहे हों ।

घर पहुंचने पर भड़िया पहियों वाली
कुर्सी ले आये । सुमिता बोली, 'क्या मैं
पैदल नहीं चल सकती ? मैं सब कुछ को
छूकर देखना चाहती हूं ।'

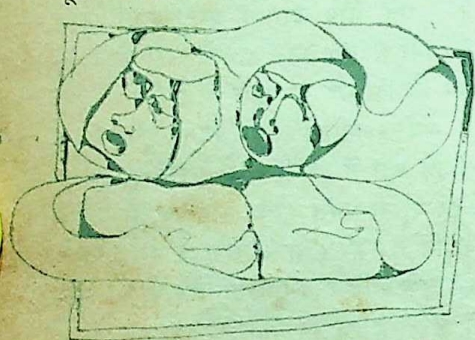
अपर्णा भाभी ने स्नेह भरे स्वर में कहा,
पैदल चलने में कष्ट होगा आपको, जीजी !
आप पहले ही . . .'

अनंत काका ने टोक दिया, 'नहीं, नहीं,
कष्ट कैसा ? सुमिता पैदल चलेगी ।'

और उन्होंने सुमिता को सहारा देते
हुए चलाना भी शुरू कर दिया । एक
तरह से वह सुमिता को उठाकर ले जाने

जैसा था। अपर्णा भाभी और भइया भी सहभागी थे उस यात्रा में। कमरे में पहुंच कर सुमिता गद्गद् हो आयी बोली, 'कितना अच्छा लगा।'।

दूसरे ही क्षण उसने पाया कि जिस कमरे में वह पहुंची है वह तो भइया का है। पूरे मकान में वही एक कमरा है जहां शीतकाल में धूप आती है। खिल उठी वह, 'कैसी प्यारी धूप है? और वे गुलाब के फूल। कौन लाया?'



अपर्णा भाभी ने धीरे से कहा, 'सब कुछ अनंत काका ने किया है। देखो तो तुम्हें जो रंग प्रिय है वैसे ही परदे लगाये हैं सब कहीं।'।

बाहर से आते हुए काका ने आदेश जारी किया, 'बस बस, अब तुम्हें लेटना होगा। एक घंटे बाद नर्स आकर इंजेक्शन लगा जायेगी। दवा का चार्ट मेरे पास है। मेरा घर दो कदम पर है। आता रहूंगा। अस्पताल से छुट्टी ले ली है पंद्रह दिन के लिए।'।

सुमिता ने काका को पास बुलाकर पूछ लिया, 'वे बाहर पिंजरे में जो मुनिया

चिड़िया है आप लाये हैं?'

'मुझे उनका गाना बहुत-बहुत अच्छा लगता है।'।

'और मुझे भी।'।

अनंत काका बड़े जोर से हंसे, 'ले तुमने, हम दोनों की रुचियां कितनी सम हैं। तभी तो अचानक हम मिल गये... ओ हां! दूध लिया तुमने...'

'नहीं तो...!'

'अभी लो, इंजेक्शन से पहले...'

सुमिता तब तक न जाने कहां पहुंच गयी थी जैसे कुछ याद आ गया हो, बोली 'काका! मृत्यु कैसे आती है?'

कैंसर में शरीर छीजता है, मस्तिष्क उर्वर होता है। इसलिये जब-तब सवाल पूछ लेना उसका स्वभाव बन गया था। इसलिये काका ने सहज भाव में उत्तर दिया, 'एक गहरी शांत नींद जब आंख खुलती है तो हम नये घर पहुंच चुके होते हैं। बहुत सुखद अनुभव होती है इस प्रक्रिया में।'।

'जिसे आप भगवान कहते हैं, वे देते हैं तब?'

'भगवान तो सब कहीं हैं। वे अब हमारे साथ मौजूद हैं, सूरज के प्रकाश, धूप, मुनिया के संगीत में, गुलाब की सुगंध, मनुष्य के कर्म में सब कहीं वही तो हैं।'

'काका! फिर लोग मरने से क्यों हैं?'

'क्योंकि उन्हें शरीर और प्राणों का मोह हो जाता है। उन्हें छोड़ते हैं सुमिता'

होता है ।'

‘शायद तभी इंजेक्शन लगाने की जरूरत होती है । मैं नहीं लगवाऊंगी इंजेक्शन ।’

‘शाबास ! बहुत अच्छा विचार है लेकिन ...’

‘लेकिन क्या ...’

‘इंजेक्शन दवा नहीं है । वह तो बस दर्द को सहने में हमारी सहायता करता है । जब तक नींद न आ जाये हमें दर्द को सहना है और वचे हुए हर क्षण को आनंद में जीना है ।’

तभी सुमिता ने करवट लेनी चाही कि चीख निकल गयी उसकी । अपना दूध ला रही थी । उसे रखकर दौड़ी । काका की सहायता से उसने सुमिता का मुंह खिड़की की ओर कर दिया जिससे वह उस पार के नीम को देख सके ।

कई क्षण देखती रही सुमिता । फिर बोली, ‘नीम का धीरे-धीरे झूलना कितना अच्छा लगता है—जैसे मैं झूल रही हूं । मैं क्यों, काका ! क्या मैं झूल नहीं सकती ?’

‘क्यों नहीं झूल सकती ।’

और सचमुच दूसरे दिन दोपहर की काश धूप में नीम में बड़ा-सा झूला डाला गया । उसमें छोटा पलंग बिछाकर सुमिता को उस पर लिटा दिया । उसकी तीन से ढसखियां उसे देखने आयी थीं । वे धीरे-धीरे उसे झूलाने लगीं । वे उसी के साथ पाणों विभिन्न विषयों पर शोध कर रही थीं । उन्हें सुमिता का विषय था, ‘भारत में लोकायत



धर्म का उद्भव और विकास’ ।

एक सखि बोल उठी, ‘अब तू जल्दी से ठीक हो जा न । तेरे शोध प्रबंध की सभी राह देख रहे हैं ।’

दूसरी बोली, ‘मैं तो पक्की ईश्वरवादी हूं, पर तेरा प्रारूप देखकर चकित रह गयी । अब जल्दी से लिख डाल । शायद मैं भी ईश्वर की सत्ता से इंकार कर दूं ।’

सुमिता बोली धीरे-से मुस्कराकर, ‘और शायद मैं उसकी सत्ता स्वीकार कर लूं ।’

अनंत काका न जाने कब आकर वहां खड़े हो गये थे । बड़े जोर से हंसे, ‘तुम्हारी बात सुनकर मुझे खलील जिब्रान की कहानी याद आ गयी । दो धर्मगुरु—नास्तिक और आस्तिक एक बार बाजार में मिल गये । घोर शास्त्रार्थ हुआ दोनों में । लेकिन जब आस्तिक गुरु घर पहुंचे तो

मंदिर की मूर्तियां उठाकर सड़क पर फेंक दीं, कहा, 'मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी थी। तू तो कहीं है ही नहीं।'।

जो नास्तिक थे उन्होंने अपने घर में मंदिर बनाया और उसमें प्रभु की मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा की यह कहते हुए, 'मैं भ्रम में था, मेरे प्रभु, तुम तो ब्रह्मांड में सब कहीं हो।'।

अपने-अपने तथाकथित सत्य पर कुंडली मारकर बैठ जाने वाले सिद्धांतवादियों की यही स्थिति होती है पर हम तो ठहरे सत्य के खोजी और सत्य स्वयं ईश्वर है। हमें कोई डर नहीं है।

सुमिता ने अब अंदर आने की इच्छा प्रकट की। कई क्षण मौन लेटी रही। उसके बाद अपनी सखि से बोली, 'अंजलि! जो काम किया है वह सब तुम्हारे लिए उपयोगी हो सकता है। तुम उसे ले जाओ। मुझे कोई भ्रम नहीं है। मैं जा रही हूँ।'।

सखियां स्तब्ध हो आयीं, पर वह उसी सहज भाव से कहती रही, 'रूमा! तुम मेरी सारी किताबें ले लेना। तुम्हें पढ़ने का बहुत शौक है न और, बृन्दा! तुम्हारी बहन की दृष्टि चली गयी है। मैंने अपनी आंखें दान कर दी हैं। मुझे आशा है वे तुम्हारी बहन को दृष्टि दे सकेंगी। डाक्टर से कह दिया है मैंने।'।

सखियों को लगा कि वे अब और अधिक वहां खड़ी न रह सकेंगी, लेकिन अनंत काका अभी यहीं थे। उतफुल्ल स्वर में बोल उठे, 'शाबाश, सुमि। तुम्हारी

वसीयत मैंने लिख ली है। ऐसा ही होगा लेकिन अब तुम थोड़ा-सा सो लो।'।

'नहीं, काका, मैंने भाभी से चाय तो बर लिए कहा है। हम सब एक साथ बैठकर चाय पियेंगे।'।

और उसके कहते न कहते चाय का भाभी आ गयी थी। कई क्षण वे पीते रहे और मेरे पा चुहुलबाजी करते रहे। लौटते समय का ही उसकी सहेलियों को छोड़ने बाहर का आये। बोले, 'वह किसी भी क्षण चहुल आ सकती है। बचे हुए प्रत्येक क्षण को हमें आनंदमय बनाना है। सो कल आना ही ठीक भूलना। जो उसे प्रिय है वही उपहार लाना। वह जो दे निःसंकोच ले लेना। और एक बात याद रखना कि मृत्यु जीवन ही एक और नाम है।'।

यही बात उन्होंने सुमिता के पिता तब कही थी जब उन्होंने उनसे बड़े कस्बे में कहा था, 'अनंत बाबू! मेरी के शेष जीवन को प्रकाश से भरने लिए आप अपने को खपा रहे हैं, पर भी तो उसी रोग'... एकदम चिढ़ उठे अनंत काका, 'उसी को भूलने के तो मैं यह सब कर रहा हूँ। किता आनंद मिलता है मुझे सुमिता के पास पर। अपना रोग याद ही नहीं रहता देखा, हूँ न स्वार्थी...'।

और वे खिलखिला पड़े। सुमिता पिता इस विचित्र व्यक्ति को देखते रह गये, क्या मृत्यु इतनी प्यारी भी सकती है?

रीग

अनंत काका जब सुमि के पास लौटे तो वह अपने भइया से कह रही थी, 'आपको दौरे पर जाना है तो जाइये। मेरे लिए रुकेंगे तो मुझे दुख होगा। और भाभीजी आप भी कालेज जायें। काका हैं और मेरे पास। उनके रहते मुझे कोई कष्ट नहीं हो सकता।' काका ने गंभीर होने का नाटक करते

हुए कहा, 'चलो एक व्यक्ति ने तो सराहा है हमें। हम अपनी पीठ अपने हाथों आप ही ठोके लेते हैं।' और पीठ ठोकने का अभिनय इतनी खूबी से किया कि सभी खिलखिला पड़े। सुमिता ने पूछा, 'काका। क्या आपने कभी नाटक में अभिनय किया है?'

काका बोले, 'जीवन स्वयं एक बड़ा नाटक है। हर क्षण अभिनय करते हैं हम... अच्छा। दवा ली तुमने? नहीं। मुझे ही देनी होगी।' सुमिता मुस्करायी, 'सच, काका। आपके हाथ से ली दवा मीठी लगती है।' काका शरारत से हंसे, 'तो मान गयीं तुम कि मैं जादू करना भी जानता हूं। अरे हां, आज तो बदन अंगोछना है तुम्हारा। तुम्हारी भाभी कालेज से लौटकर कर देगी यह काम।' पीड़ा जब बहुत बढ़ जाती तो सुमिता आंखें बंद करके लेट जाती। शरीर अब धीरे-धीरे चेतना का साथ देने से इंकार करता जा रहा था या चेतना विराट चेतना में अपने को समा देने को आतुर

हो उठी थी। जब मन और प्राण शरीर का मोह छोड़कर चैत्य पुरुष से मिश्रता साध लेते हैं तो विकास के मार्ग खुल जाते हैं। ऐसे समय अनंत काका उसके सिर पर हाथ फेरते रहते या देश-देश का संगीत सुनाने लगते। उस संध्या को जब सुमिता के पिता बाहर से लौटे तो कमरा खींच संगीत से ध्वनित-प्रतिध्वनित हो रहा था। सुमिता और अनंत काका दोनों नेत्र मूंदे कहीं खो गये थे। उसके समाप्त होने पर उनकी भीगी पलकें ऊपर उठीं। काका बोले, 'अहा! संगीत भी कितनी शांति देता है। और यह मृत्यु भी ऐसी ही शांति देती है।' सुमिता ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह न जाने क्यों अनंत काका के मुख को देखे जा रही थी। काका ने पूछा, 'क्या देख रही हो मेरे चेहरे पर?'

सुमिता बोली, 'आपका चेहरा मुझे लक्ष्मण के कार्टून जैसा लग रहा है।' काका हंसे, 'तब तो मेरी कीमत बढ़ गयी।' 'हां, सो तो है। कार्टून बड़े अर्थ-गर्भित होते हैं।' 'और चुटीले भी।' बात विनोद में खो गयी पर उन्हें यह समझते देर न लगी कि सुमिता की दृष्टि विकृत हो चली है। अब वह अधिकतर मौन आंखें बंद किये लेटी रहती है। काका के आने पर ही बोलती है। कभी लिलि के (शेषांश पृष्ठ ८६ पर)

जन १९८३

प्रसिद्ध कला-इतिहासकार कपिला वात्स्यायन का लेख



असम की मूर्तिकला का चिरन्तन सौंदर्य

असम के आम्ब्री क्षेत्र में सन १९६९ और १९७१ के बीच गोहाटी विश्वविद्यालय के नृविज्ञान-विभाग ने जो कीमती उत्खनन-कार्य किया, उसके परिणामस्वरूप प्रस्तर तथा मिट्टी की अनेक ऐसी नृत्य-मूर्तियां प्राप्त हुईं, जो असम की मूर्तिकला के अधूरे इतिहास में कुछ और नये पृष्ठ जोड़ती हैं।

संगीत नाटक अकादमी द्वारा प्रकाशित अपनी पुस्तक 'क्लैसिकल इंडियन डांस इन लिटरेचर एंड द आर्ट्स' (साहित्य और कलाओं में शास्त्रीय भारतीय नृत्य) में मैंने इन तीन या चार पृथक् कोटियों में विभाजित नृत्य-कला से संबंधित मूर्ति-कला-विषयक प्रमाणों के परीक्षण का प्रयास किया था। (१) शालभंजिका मोटिफ, (२) 'उड़ते हुए विद्याधर' मोटिफ, (३) शोभायात्राओं, प्रदर्शनों आदि से संबंधित दृश्यों में नृत्य-संचलन के उदाहरण और विशिष्ट नर्तकों की मूर्तियां, और (४) नृत्य करते हुए देवताओं की मूर्तियां, जिन्हें साधारण तौर पर 'नृत्य-मूर्तियां' कहा जाता है।

दुर्भाग्य से इस पुस्तक में असम की नृत्यमूर्तियों का समावेश नहीं हो पाया था। इसके दो कारण थे। पहला—इस विषय पर पर्याप्त प्रकाशित सामग्री उप-

नवनीत

लब्ध नहीं थी, और दूसरा—१९३८ तक, जब पुस्तक प्रकाशित हुई थी, असम में आम्ब्री तथा उसके निकट के स्थानों पर वह उत्खनन नहीं हुआ था, जिसके परिणामस्वरूप वहां की अनेक प्राचीन प्रस्तर-मूर्तियां और मृण्मूर्तियां प्रकाश में आयीं। इन मूर्तियों के अध्ययन से मेरे इस दावे की पुष्टि ही हुई कि किसी एक निश्चित काल में सारे भारत की मूर्तिशैलियों में एक समानता दिखायी पड़ती है, तथा विशेष रूप से ग्यारहवीं सदी के काल में प्रत्येक शैली की अपनी प्रादेशिक विशिष्टता स्पष्ट दिखायी देती है।

इस लेख का विषय है—असम, और विशेष रूप से आम्ब्री क्षेत्र में प्राप्त, उपरोक्त मोटिफ की मूर्तियां।

लेख की शुरुआत मैं शालभंजिका मोटिफ से करूंगी। भारतीय मूर्तिकला के पूरे परिसर में शालभंजिका मोटिफ की

मूर्तियां द्वारों पर, दीवारगीरों और जंगलों पर अंकित मिलती हैं। मेरे मत के अनुसार, उर्वरता-पूजापद्धति की अभिव्यक्ति के रूप में समझे जाने वाले इस मोटिफ की मूर्तियों की स्थितियां और चालें, तत्त्वीय दृष्टि से नाट्यशास्त्र तथा अन्य ग्रंथों में वर्णित स्थितियों और चालों के अनुकूल ही हैं। नाट्यशास्त्र में एक पांव की चालों से निर्मित स्थितियों को 'भौमिचारी' और दोनों पांवों की ऐसी चालों को, जिनमें नर्तक या नर्तकी को जमीन से ऊपर उठना पड़ता है, 'आकाशिकी-चारी' कहा जाता है।

०००

भारतीय मूर्तिकार अत्यंत प्राचीन काल से ही अपनी मूर्तियों में विभिन्न चालों के प्रतिमानों का प्रचुरता से उपयोग करते चले आ रहे हैं। शालभंजिका मोटिफ की मूर्तियां हमें सांची के अतिरिक्त, उड़ीसा की रानीगुंफा गुफाओं, मथुरा, भरहुत, भुवनेश्वर, कोणार्क तथा खजुराहो आदि स्थानों में भी देखने को मिल जाती हैं। असम में, प्रारंभिक काल की मूर्तियां यद्यपि इस मोटिफ की नहीं हैं, तथापि आम्ब्री और गोहाटी के अनेक स्थानों में

१९८३



प्राप्त मूर्तियां इसी मोटिफ की हैं। आम्ब्री और गोहाटी को शालभंजिकाओं और द्वारपालिकाओं की गंगा और यमुना की पुरोगामी मूर्तियां तेजपुर के दाह-परवतिया के शिव मंदिर में स्थित हैं। इन्हें देखकर, अनायास, गुप्तकाल की जंभ मूर्तियों और ऐलोरा गुफा की मूर्तियों की याद आ जाती है। इन सब मूर्तियों में नियंत्रित गति का सातत्य दिखायी देता है। दाह-परवतिया की दोनों मूर्तियों में एक पांव में समपद है, और दूसरे पांव में थोड़ा कुंचित। सब मूर्तियों में कुंचित पांव की जानु किंचित झुकी है। अभंग भी सुस्पष्ट

७३

हिंदी डाइजेस्ट

है । न नुकीली रेखाएं हैं, न नुकीले कोण ।

देवगढ़, बेसनगर, गंगा और ऐलोरा की सब जंभ मूर्तियों में इस समानता के अतिरिक्त कि उन सबमें गर्दन का झुकाव नहीं है, और भी समानताएं हैं : समान आभूषण, समान वस्त्र-विन्यास और टखनों तक जाने वाला समान पारदर्शी घाघरा । हां, केश-विन्यास में कहीं-कहीं विभिन्नता अवश्य दिखायी देती है । गणों तथा गौण पात्रों के बीच का अंतर भी सब मूर्तियों में समान नहीं है ।

किंतु ग्यारहवीं सदी की ये मूर्तियां इन प्राचीन मूर्तियों से बहुत भिन्न हैं । गोहाटी संग्रहालय में रखी तीन मूर्तियों में प्रवहमान घुमावों के स्थान पर सुनिश्चित रेखाएं दिखायी पड़ती हैं । ऐसा ही परि-संहत निरूपण भुवनेश्वर, खजुराहो और राजस्थान की शालभंजिकाओं में भी दिखायी पड़ता है । लेकिन, इन मूर्तियों की प्रादेशिक विशिष्टता उन्हें खजुराहो या भुवनेश्वर की मूर्तियों से पृथक् भी करती है ।

दारंग जिले की मूर्ति समपद स्थिति में दोनों पांवों से खड़ी है । नितंब का एक ओर को झुकाव और, घड़-प्रतिमा का विपरीत दिशा में झुकाव स्पष्ट रूप से अंकित है । असम की किसी भी प्रारंभिक मूर्ति में हमें दोलहस्त के दर्शन नहीं होते, किन्तु यहां दोलहस्त को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है । मूर्ति के वक्ष गोलाकार और पूर्णरूपेण विकसित हैं,

और, ग्रीवा अंचित है । इसे शालभंजिका मोटिफ का एक आदर्श उदाहरण तो नहीं माना जा सकता, तथापि यह उस मोटिफ का एक शैलीदार रूप तो है ही ।

एक मूर्ति में जिस द्वारपालिका का अंकन देखने को मिलता है, वह स्वस्तिक चारों स्थिति में खड़ी है । उसके एक पांव समपद है, और दूसरे में कुंचित । एक हाथ में खड्ग है, और दूसरे में दर्पण । दर्पण को पकड़ने की शैली खजुराहो या भुवनेश्वर की दर्पण पकड़ने की शैलियों से भिन्न है । उसके सर पर जो मुकुट है, वह असम की शालभंजिका मोटिफ की एक विशेषता है । बाद में, अहोम-काल में यह मुकुट राज-मुकुट में परिवर्तित होकर शिरोवस्त्र का एक अंग बन गया । तो, इस प्रकार हमने देखा कि यद्यपि चाल सिद्धांत और पारंपरिक थीम की दृष्टि से असम की शालभंजिकाएं अन्य स्थानों की शालभंजिकाओं से भिन्न नहीं हैं, तथापि निरूपण की दृष्टि से वे थोड़ा भिन्न अवसर लगती हैं ।

गोहाटी में हमें 'आलस्य-कन्या' की तीसरा उदाहरण भी देखने को मिलता है जो शालभंजिका मोटिफ का एक आदर्श चित्रण है । यहां हमें गतिविधि अधिक मात्रा में देखने को मिलती है, और आभूषणों की संख्या भी अधिक है । तीनों ही क्रम में आती हैं, और तीनों में स्थिति समपद स्थिति से गतिशील स्वस्तिक चक्र तक का क्रमिक विकास देखने को मिलता है ।

मौलिक
ने नहीं है। दाह-परवतिया में गंगा जमना की
मोटिफ आकृतियों द्वारा जो प्रवृत्ति आरंभ हुई थी,
उसी की निरंतरता हमें इन तीनों में, जो
अंकन नवीं और दसवीं सदियों की समकालीन
चारी प्रवृत्तियों से भी संबंधित हैं, दिखायी
पांव में पड़ती है। उनका संबंध दारंग जिले के
क हाथ तेजपुर मंदिर में पायी जाने वाली मूर्तियों
दर्पण से भी स्पष्ट दिखायी देता है।

०००

भुवने
म भिन्न ईसा से एक सदी पूर्व के काल से
असम भारतीय मूर्तिकला में विद्याधर या गंधर्व
विशेष मोटिफ का प्रचलन आरंभ हुआ। उदय-
मुकुट गिरि और खांडगिरि की रानीगंगा गुफाओं
शिरो में हमें इस मोटिफ के सबसे पहले उदाहरण
देखने को मिलते हैं। क्रमशः यह मोटिफ
लाल न केवल भारतीय मूर्तिकला के पूर्व
एशिया के देशों का एक व्यापक अंग बन
गया। असम में हमें इस मोटिफ के अधिक
तथा उदाहरण देखने को नहीं मिलते, पर
गोहाटी में पायी गयी एक सुंदर मूर्ति इस
मोटिफ का एक अच्छा नमूना है। इसकी
अवस्था अनेक विशेषताएं इसे राजीव लोचन मंदिर
या और खजुराहो के वृश्चिक-करण मोटिफ
लता है के अत्यंत निकट लाती हैं। उड़नेवाली
आद आकृतियों के इस मोटिफ की मूल प्रेरणा
अधि उसके मूर्तिकारों को नाट्यशास्त्र में वर्णित
आर वृश्चिक-करणों से प्राप्त हुई होगी, ऐसा
नो ए हमारा विश्वास है। भारतीय मूर्तिकला की
में स्थि अनेक शैलियां इस मोटिफ की विशिष्ट-
क चा ताओं-अंदर मुड़ा हुआ एक पांव, जिसका
मिल घुटना भी झुका है, और दूसरा पांव आगे-

पीछे या दायें-बायें स्वतंत्रता से घूम सकती
है, भली भांति परिचित हैं। गोहाटी की
मूर्ति में यह विशिष्टता स्पष्ट देखने को
मिलती है। सर के विशेष साज को छोड़
दिया जाय, जो असम की मूर्तिकला का
एक आवश्यक अंग है, तो यह मूर्ति भारत
में अन्यत्र पायी जाने वाली इस मोटिफ की
अन्य मूर्तियों से भिन्न नहीं लगती।

शालभंजिका और विद्याधर मोटिफों
के प्रचलन से स्पष्ट है कि असम की नवीं
और दसवीं सदियों की मूर्तियों और उस
काल की भारत के अन्य क्षेत्रों की मूर्तियों
में पर्याप्त साम्यता है।

०००

यद्यपि इन दोनों मोटिफों की एक
महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि उनमें
नाट्यशास्त्र-परंपरा के कतिपय संचलन
प्रतिमानों का पूरा निर्वाह किया गया है,
तथापि अधिक महत्त्वपूर्ण वे मूर्तियां हैं,
जो स्वाभाविक रूप से नृत्य-मूर्तियां
हैं। ऐसी अनेक मूर्तियां असम में उपलब्ध
हैं। तेजपुर नगर के ध्वंसावशेषों में कुछ
ऐसे फलक मिले हैं, जिनमें आयताकार
ढांचों में नर्तकों की जोड़ी को मुरली-वादक
या ढोलकिये के साथ दिखाया गया है।
ऐसे पांच फलकों में नर्तकों की मुद्राएं एक-
सी हैं। उसके एक पांव में समपद है,
और दूसरे में कुंचित। पांव और घुटने
क्षिप्त स्थिति में हैं। एक बांह उठी है,
और दूसरी लता-हस्त स्थिति में सामने
आयी है। असम के अलावा, ऐसे आयता-



कार ढांचोंवाले फलक राजस्थान ही में मिलते हैं।

गोहाटी से प्राप्त एक अन्य फलक (दसवीं सदी) भी बहुत महत्वपूर्ण है। यद्यपि यह अत्यंत कटी-फटी अवस्था में मिला है, तथापि इस अवस्था में भी उसे देखने से इस बात का पता चल जाता है कि उसमें नृत्य और संगीत के एक गत्यात्मक दृश्य-क्रम को बांधने का प्रयास किया गया है। फलक में तीन आकृतियाँ हैं। बीच में नर्तक है। उसके एक ओर है ढोल-किया, और दूसरी ओर वादक या संगीत निर्देशक। ढोलकिया का ढोल अलिंग्य शैली का है, और किंचित् अभंग है। नर्तक पृष्ठस्वस्तिक स्थिति में है, और त्रिक

नवनीत

अवस्था में तिरछा हो रहा है। ऐसी अनेक और मूर्तियाँ भारत के अन्य भागों में भी उपलब्ध हैं, विशेष रूप से केरल और ग्वालियर के सास-बहू मंदिर में। यदि यह फलक खंडित अवस्था में प्राप्त हुआ होता, तो उसका महत्त्व इलाहाबाद में स्थित पृष्ठस्वस्तिक स्थिति वाली मूर्ति के समान होता।

इस फलक की रचना से स्पष्ट है कि फिर अन्य स्थानों के समान, असम में भी जो नृत्य-शैली प्रचलित थी, उसकी गत्यात्मक शब्दावली अर्धमंडली, स्वस्तिक, पृष्ठस्वस्तिक उरोमंडल हस्तों, और लता-हस्तों पर आधारित है। तेजपुर और गोहाटी में प्राप्त मूर्तियाँ इस बात का प्रमाण हैं कि कम से कम दसवीं सदी तक नृत्य की किसी ऐसी चाल को नहीं पहचाना जा सकता, जिसका संबंध मणिपुरी या सत्र-नृत्य से, जिसमें घुटनों की क्षिप्र स्थिति दिखायी देती है, जोड़ा जा सके। और

आम्ब्री में प्राप्त दो मृण्मूर्तियाँ भी काफी महत्वपूर्ण हैं। इनमें से एक है एक नर्तकी की खंडित धड़-प्रतिमा। आम्ब्री उत्खनन संबंधी अपनी रपट में श्री एस. के. धावलीकर इस मूर्ति के बारे में कहते हैं : 'यदि यह मूर्ति खंडित होती, तो भारतीय कला की सर्वोत्तम आकृतियों में से एक होती। मूर्तिकार की प्रवीणता का प्रमाण उसके संवेदी प्रतिरूपण से मिलता है। विलासमय वक्ष और तनु कटि नर्तकी की ऐंद्रिय गोलाइयों को

और अधिक उभारती है। यह आकृति
संभवतः किसी अप्सरा की है, और शैली
की दृष्टि से उसका संबंध कोणार्क के सूर्य-
मंदिर की सुर-सुंदरियों से स्थापित किया
जा सकता है। इसका निर्माण काल ८ वीं
शताब्दी से १० वीं सदी के बीच होना चाहिये।

भले ही इस मूर्ति का संबंध कोणार्क
की सुर-सुंदरियों से स्थापित न हो सके,
है कि फिर भी इसमें कोई संदेह नहीं है कि उनके
जो निर्माता एक प्रवीण शिल्पी होने के अलावा
आत्मक उत्कृष्ट कलाकार भी थे। यह शायद एक-
मात्र मृण्मूर्ति है, जिसका गोलाकार सौंदर्य
लता-अप्रतिम है। अर्धमंडली में प्रतिसमता और
और संतुलन का एक अन्य उदाहरण है—एक
तक अन्य मृण्मूर्ति। इस मूर्ति का प्रतिरूपण
तो एकदम निर्दोष और श्रेष्ठ है। मूर्तिकार ने
पहले नर्तक के गत्यात्मक संचलन के एक क्षण को
गोपुरी बड़ी वारीकी और खूबी के साथ प्रस्तर में
क्षिप्त कैंद किया है। असम की मूर्तिकला
के। और नृत्य-कला की विकासमान परंपरा
को समझने के लिए इस पूर्णतया संतुलित
क है, और बखूबी तराशी गयी मूर्ति का
अध्ययन बेहद जरूरी है। इसके अंकन की
में समता यदि की जा सकती है तो हर्षगिरि
के बारे में (राजस्थान) के विख्यात नृत्य-फलक के
हट न मुख्य नर्तक के अंकन से। मूर्तिकला-
प्रेमियों के लिए इस असाधारण मृण्मूर्ति
को बेहतर ढंग से समझना जरूरी है।

नुमालीगढ़ के नृत्य करते हुए शिव की
मूर्ति में भी इसी प्रकार के संचलन के
एक क्षण को कैंद करने का प्रयास किया



गया है। गोलाघाट के त्रिपुरारि
शिव की मूर्ति के ऊर्ध्वजानु संचलन और
ऊर्जनवाञ्छार गोहाटी के बेल पर नृत्य
करते हुए चंद्रशेखर शिव के ऊर्ध्वजानु
संचलन में भी काफ़ी सादृश्य है।

आम्ब्री के नटराज के भी ऊर्ध्वजानु
संचलन को अंकित किया गया है। आम्ब्री
में मिली विष्णु, सूर्य, गंगा और यमुना की
मूर्तियां भी यही कहानी कहती दिखाई
देती हैं।

०००

अब हम आते हैं नृत्य करते गणों और
देवताओं की मूर्तियों पर। ऐसी अधिक
मूर्तियां उपलब्ध नहीं हैं, फिर भी जो

हिंदी डाइजेस्ट

उपलब्ध हैं, उनके अध्ययन के आधार पर यह मत अवश्य व्यक्त किया जा सकता है कि इनके मूर्तिकारों की समझ, नज़र और पकड़ उपरोक्त तीनों कोटियों के मूर्तिकारों की समझ, नज़र और पकड़ से भिन्न नहीं है।

शिव गण के चित्रण में संचलन के जिन सिद्धांतों का पालन किया गया है, उन्हीं का पालन अन्य आकृतियों के चित्रण में भी किया गया था। शिव गण के चित्रण में एक निश्चित आसन को अभिग्रहित किया गया है, जबकि नृत्य करते हुए गणपति की नृत्य-मुद्रा अत्यंत गतिशील और सशक्त है। एक पांव समपद में है, और एक कुंचित में; पांव क्षिप्त में हैं। एक बांह उरोमंडल में है, और दूसरी स्पष्ट रूप से करी-हस्त में। यह मूर्ति नियंत्रित प्रतिसमता और आदर्श संतुलन के साथ गति और हर्षातिरेक को बड़े मनोरम ढंग से प्रस्तुत और अभिव्यक्त करती है। कामाख्या मंदिर की दीवारों पर वाहन पर नृत्य करते गणेश की नृत्य-मुद्रा भारत कला भवन, वाराणसी के विख्यात नृत्य करते गणेश की नृत्य-मुद्रा जैसी सहज और कलात्मक न होती हुई भी, उससे काफ़ी मिलती है। वैसे, वाराणसी के नृत्य करते गणेश के अधिक निकट आते हैं बारपू-खुंदीर, होलेश्वर, तेजपुर के नृत्य करते गणेश।

०००

इस प्रकार हम पाते हैं कि छठी और

नवनीत

बारहवीं सदियों के बीच के काल में असम में मूर्तिकला और वास्तुकला की परंपराओं का जो सतत विकास हुआ, व नृत्य इस काल में देश के अन्य भागों में चल रही समांतर प्रवृत्तियों से कई दिलचस्प तरीके से जुड़ा है। तो भी इन साम्यताओं के बावजूद, असम की मूर्तिकला का अपना विशिष्ट असमिया स्वभाव है, जिसकी परिणति दाह-परवतिया की आकृतियों से आरंभ होकर कामाख्या की प्रादेशिक शैली में होती है। ऊपर हमने जिन मोटिफों पर विचार किया है, उनके अतिरिक्त अन्य मोटिफों पर विचार करने पर भी हम इस निष्कर्ष पर पहुंचेंगे, इसमें संदेह नहीं।

कामाख्या-काल के बाद का काल, असम की मूर्तिकला के विकास की कथा का और आगे बढ़ाता है, किंतु विकास-क्रम का यह अंश पहले अंशों से सर्वथा भिन्न है, क्योंकि सत्रहवीं और अठारहवीं सदियों में असली मूर्तिकला में अनेक ऐसे स्थानीय रूपभेदों का समावेश हो गया था, जिनका देश के अन्य भागों में प्रचलित प्रवृत्तियों कोई संबंध नहीं था। इनमें से एक मूर्ति विशेष रूप से रोचक है। इसके नृत्य-दृश्यों में तीन नर्तकों को दिखाया गया है। तीनों ही स्वस्तिक मुद्रा में हैं। अर्धमंडलीय स्थान ऊर्ध्व-मुद्रा ने ले लिया है, जिसमें सब आकृतियों की दैर्घ्यवृद्धि हो गयी है। केंद्र के नर्तक का संभवतः कर्कट-हस्त है जबकि शेष दोनों को एक हाथ के अल्पांश में देखा जा सकता है। और अंत में

अठाहरवीं सदी की एक असाधारण अस-
मिया मूर्ति का उल्लेख विशेष रूप से इस-
लिए आवश्यक है कि उसमें आनुष्ठानिक
नृत्य का चित्रण है। ऐसी अन्य कोई मूर्ति
नहीं है, जिसमें त्रिशूलादि के साथ इस
प्रकार आनुष्ठानिक नृत्य अंकित किया
गया हो। इस मूर्ति के विषय में सर्जनात्मक
साहित्य अथवा वर्णनात्मक साहित्य द्वारा
कुछ जाने बिना, अंतिम निष्कर्ष निकालना
उचित नहीं होगा।

एक बात तो निश्चित है। और वह यह
कि जिन काल की ये मूर्तियां हैं, उन कालों
में समाज के विभिन्न वर्गों में नृत्य की परं-
परा अवश्य अक्षुण्ण रही होगी, अन्यथा
मूर्तिकारों के लिए मात्र कल्पना से नृत्य-
मूर्तियों का सर्जन करना संभव न होता।
यद्यपि शंकरदेव काल से पहले के असम में
नृत्य और नाटक का कोई क्रमबद्ध इतिहास
नहीं मिलता, तथापि ऐसे अनेक प्रमाण
उपलब्ध हैं, जिनसे पता चलता है कि
असम के विभिन्न मंदिरों में देवदासियों की
परंपरा मौजूद थी। नवीं सदी के एक ताम्र-
पट्ट पर मंदिरों को समर्पित नारियों का
उल्लेख है। तेजपुर स्थित हातकेश्वर के
मंदिर को देवदासियों को उपहार में देने
का उल्लेख भी मिलता है। डॉक्टर पी. सी.

चौधरी तथा डॉक्टर बी. के. काकती जैसे
विद्वानों ने हमारा ध्यान इस बात की ओर
आकर्षित किया है कि मंदिरों को समर्पित
नारियों के लिए 'दुलाहरिगण' शब्द का
प्रयोग होता था।

अहोम शासन-काल में शिव और विष्णु
मंदिरों में पूजा की विधियों और उन्हें
भूदान दिये जाने का उल्लेख मिलता है।

'हस्तमुक्तावली', 'गीत गोविंद' और
'चित्र भागवत' जैसी साहित्यिक कृतियों
के अध्ययन से मंदिरों, पुजारियों और
देवदासी-परंपरा के बारे में अनेक महत्व
पूर्ण तथ्य उपलब्ध होते हैं। लेकिन, 'हस्त-
मुक्तावली' को छोड़कर अन्य कोई कृति
नृत्य के तकनीकी पहलुओं पर कोई प्रकाश
नहीं डालती। लेकिन इस विषय में और
खोज किये बिना किसी अंतिम परिणाम पर
नहीं पहुंचा जा सकता। हो सकता है,
असम के विद्वान एक दिन साहित्यिक शोध
करके असम की नृत्य-परंपरा के इतिहास
की पुनर्रचना करें, उस नृत्य-परंपरा को,
जिसे हम देवघनी परंपरा या ओज-पल्ली
या सत्र परंपरा के नाम से भी जानते हैं।
('नेशनल सेंटर फॉर द परफॉर्मिंग आर्ट्स'
क्वार्टरली जर्नल, सितंबर १९८१ में प्रका-
शित लेख का सरल-संक्षिप्त रूपांतर।)



कहते हैं कि चूंवन पाप है, अगर गैर कानूनी होता तो वकील करने न देते, अगर
पवित्र न होता तो पंडित स्वयं न करते, अगर सुशील न होता तो लज्जाशील नारी
स्वीकार न करती, अगर सस्ता न होता तो गरीबों को मिलता ही कहाँ ?

—राबर्ट वेंसन



परलोक-विद्या के क्षेत्र में एक अपूर्व नवीन
आविष्कार का सूचक, गोपीचंद पंजवानी का लेख



परलोकगत आत्माओं के साथ अब सीधा वार्तालाप संभव है

तथागत बुद्ध के पास जब एक स्त्री यह निवेदन लेकर पहुंची कि वे उसके मृत बच्चे को पुनर्जीवित कर दें, तब भगवान बुद्ध ने उससे एक ऐसे घर से राई के कुछ दाने ले आने के लिए कहा जिस घर में कभी किसी की मृत्यु न हुई हो। तात्पर्य यह कि जितना पुराना इतिहास मनुष्य जीवन का है, उतना ही पुराना इतिहास मृत्यु का भी है। हर युग में हर मानव को चाहे, वह कितना ही धनवान, पराक्रमी या बुद्धिमान क्यों न रह चुका हो, काल का ग्रास होना पड़ा है। जिस वस्तु का निर्माण हुआ है, उसका विनाश पूर्व-निश्चित है। हर जीव की मृत्यु भी अवश्य-भावी है। इसी कारण मृत्यु के रहस्य को समझने की जिज्ञासा सदैव मनुष्य के मन में पनपती रही है। चाहे वह मनुष्य इस शताब्दि का हो अथवा वह कठोप-निषद् में वर्णित नचिकेता रहा हो।

उसी भांति हर युग में, इस जीवन की सीमा को जो पार कर चुके हों, ऐसे व्यक्तियों के साथ येनकेन प्रकारेण संबंध

स्थापित करने के प्रयत्न भी होते रहे। श्रीमद्भागवत में एक घटना का वर्णन जिसके कथनानुसार श्रीकृष्ण अपने संदीपन ऋषि के वच्चों को मृत्युलोक वापिस ले आये थे। अर्थात् पृथ्वीवासी का संपर्क मृत्युलोक से था। परंतु ऐसी घटना पर यूँ ही विश्वास नहीं सकते। यह विज्ञान का युग है। किसी कथन की पुष्टि हेतु हम प्रमाण चाहते

पिछले कई वर्षों से हम ऐसे व्यक्ति के बारे में सुनते आये हैं जो 'मीडियम' के नाम से जाने जाते हैं। 'मीडियम' व्यक्ति हैं जो प्रगाढ़ तंद्रा में आ जाते। कोई मृतात्मा उनके मस्तिष्क का निवृण कर लेती है और उसके द्वारा अपनी इच्छाएं अन्य व्यक्तियों पर व्यक्त करती है। इस भांति वह अपने किसी स्वतक इच्छित संदेश भी पहुंचाती है। विश्व में ऐसे 'माध्यम' व्यक्ति, जो विज्ञानीय हों, अत्यंत न्यून संख्या में उपलब्ध

आपसे यदि कोई यह कहे कि आप तो अब आत्माओं के साथ बातचीत

रहे हैं
वर्णन
अपने
पुलो
रीवा
परंतु
नहीं
किसी
वाहते
व्यक्ति
मीडि
डियम
जाने
का नि
रा अ
स्त क
मी स्
है।
ो विश
पलब्ध
आप
चचित
जन

सकते हैं, तो संभव है कि आप उस वक्ता के मस्तिष्क की स्थिति पर संदेह व्यक्त करें ! परंतु यह वृत्तांत उतना ही सत्य है जितना कई वर्ष पूर्व टेलीफोन के विषय में था । आप तनिक सोचिये तो, इसके कितने लाभ मनुष्य जाति के लिए हो सकते हैं । मान लीजिये कि किसी धनाढ्य व्यक्ति की (जिसने अपने धन के विषय में किसी को कुछ नहीं बताया था) अचानक मृत्यु हो जाती है । तब आप उसकी परलोकगत आत्मा के साथ संपर्क करके उससे जो चाहें पूछ सकते हैं । और यह संभव हुआ है उस उपकरण से जिसका आविष्कार अमेरिका के कुछ शोधकर्ताओं ने किया है ।

हमारे समाज के प्रबुद्ध व्यक्तियों में एक फ्रैशन-सा हो गया है कि यदि कोई व्यक्ति मृत्योपरांत जीवन की निरंतरता के विषय में बात करे तो उसका मजाक उड़ाया जाय । वे व्यक्ति यह मान ही नहीं सकते कि मृत्यु के पश्चात् भी यह जीवन किसी अन्य स्तर पर अथवा किसी अन्य आयाम में विद्यमान रहता है । परंतु यही लोग, जब कोई उनकी ओर नहीं देख रहा होता, तब किसी ज्योतिषी या किसी मांत्रिक की दहलीज पर एड़ियां रगड़ते फिरते हैं । यही हैं वे लोग, जो मृत्योपरांत जीवन की निरंतरता और अस्तित्व के विषय में प्रमाण मांगते हैं । ऐसे संदेही व्यक्तियों के

संतोष के लिए और इस आशय से भी कि परलोकगत आत्माओं के साथ, द्वि-मार्गीय विश्वसनीय संपर्क प्रस्थापित हो सके, श्रीयुत जॉर्ज डब्ल्यू. मीक और उनके अन्वेषक साथियों ने अमरीका के 'मेटा-साइंस फाउंडेशन' में एक विद्युत-चुंबकीय आकाशिक उपकरण बनाया है, जिसका उन्होंने नाम रखा है, 'स्पिरिकोम' Spiricom (स्पिरिट कम्यूनिकेशन का संक्षेप)। यह उपकरण उन्होंने कैसे बनाया, शोधकार्य के अंतर्गत उन्हें किन-किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, उन्हें कितनी निष्फलता और किस सीमा तक सफलता प्राप्त हुई, इसका पूरा विवरण उन्होंने 'स्पिरिकोम मेन्युअल' में दिया है जो अप्रैल १९८२ में अमरीका से प्रकाशित हुआ है और जो अब पूना स्थित 'लाइफ-वियॉड' फाउंडेशन रिसर्च सेंटर से उपलब्ध है।

केलिफोर्निया (अमरीका) में प्रथम सन १९५६ में, दो व्यक्तियों (अटीला नामक फोटोग्राफर और रेमंड बेलेस नामक लेखक) के सहयोग से एक बार कुछ 'रिकार्डिंग' (चुंबकीय टेप पर) करने के पश्चात् पुनः उस 'टेप' को चलाके देखा गया तब उन्हें लगा कि कुछ ऐसी आवाजें भी उस टेप पर अंकित हो गयी थीं, जो वहां नहीं होनी चाहिये थीं। इससे उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि वे आवाजें किसी अशरीरी जीव की थीं। इस दिशा में अन्य कई लोग भी प्रयत्नशील रहे। उनमें से

नवनीत

एक थे जर्मनी के डॉ. कॉन्स्टेंटिन रॉदिव, एक मनोवैज्ञानिक चिकित्सक थे और की दार्शनिक दृष्टि के विषय पर भी पुस्तकें लिख चुके थे। उन्होंने लगभग ७०,००० वाक्यांशों में मानव मन के अंशरीरी जीवों के रिकार्ड किये हैं। परंतु वे आवाजें रिकार्ड करने के बावजूद प्राचीन पहले तो वे इन रिकार्डिंग्स का कोई भी 'ट्रैडिशन' नहीं निकाल पाये। परंतु संयोगवश डॉ. रॉदिव अनेक भाषाएं जानते थे जिनमें स्वीडिश, जर्मन, रशियन, लात्वियन, स्पेनिश, फ्रेंच व अंग्रेजी भाषाएं थीं। उन्होंने हजारों वाक्यांशों का अर्थ वे इन भाषाओं में लिखा जिसे थोड़ा-थोड़ा निकाल लेते थे, फिर उससे जेष्ठ इसका कुछ पूरा अर्थ नहीं निकलता था। संपर्क इसका भेद १९८१ में खुला जब डॉ. मीक की टीम को किसी मृतात्मा ने बताया कि इसका कारण यह था कि जब कोई मृत प्रयोगकर्ता मृतात्माओं के विश्व और पृथ्वी के मध्य संपर्क स्थापित कर लेता था तो कई मृतात्माएं (जो मृत्यु से पूर्व इस पृथ्वी पर भिन्न-भिन्न देशों में रहती थीं) एक ही समय उस संपर्क के द्वारा अपनी बात पृथ्वीवासियों तक पहुंचाना चाहती थीं, जिसका परिणाम ऐसी रिकार्डिंग होता था। इसकी तुलना आप इसके साथ कर सकते हैं कि जैसे भिन्न-भिन्न भाषी लोग एक ही 'माइक्रोफोन' का, एक ही समय उपयोग करना चाह रहे हों।

‘स्पिरिकोम’ मेन्युअल में लेखकों परलोकगत आत्माओं से संपर्क स्थापित करने की दिशा में किये गये अपने प्रयोगों

दिवा,

की आरंभिक रूपरेखा (मार्क-१ से मार्क-४) देते हुए यह बताया है कि अब उन्हें सामान्य रूप से काफी सीमा तक द्वि-मार्गीय संपर्क स्थापित करने में सफलता प्राप्त हुई है। और प्रयोगों के अंतर्गत 'टेप' किये गये वार्तालापों का 'केसेट-टेप' भी अब उपलब्ध है।

'स्पिरिकोम' की सफलता में शोधकर्ताओं को जो अत्याधिक योगदान प्राप्त हुआ वह था एक परलोकगत आत्मा का जिसने उन्हें बताया कि उसका नाम जॉर्ज जेफ्रीज म्यूलर था। इस आत्मा का पहला संपर्क शोधकर्ताओं के साथ २२ सितंबर १९८० में हुआ।

उस आत्मा ने उन्हें बताया कि उसकी मृत्यु १९६७ में हुई थी। उसने अपने पृथ्वी-जीवन की कई घटनाएँ, उपलब्धियाँ, परिचितों के विषय में, उसका सामाजिक सुरक्षा क्रमांक इत्यादि बातें बतायीं। जब यह अन्वेषक गुट उन-उन स्थानों पर गया और उन सभी लोगों से मिला जिनके विषय में डॉ. म्यूलर की आत्मा ने संदर्भ दिया था, तो उन्होंने पाया कि उस मृतात्मा की बतायी हुई सब बातें सत्य थीं। अपने गत जीवन में डॉ. म्यूलर 'इलेक्ट्रोनिक्स' के विषय पर एक पुस्तक लिख चुके थे और उन्हें संगीत विद्या सीखने का भी शौक था। इस आत्मा ने, अन्वेषकों को, 'स्पिरिकोम' को संपूर्ण (उचित रूप से कार्यान्वित करने में) आवश्यक सुझाव भी दिये।

'स्पिरिकोम' को सफलता की सीमा तक लाने की दस वर्ष की अवधि के पश्चात् शोधकर्ता निम्नलिखित तथ्यों पर पहुँचे :

१-द्वि-मार्गीय वार्तालाप मृतक व्यक्तियों की मदद से ही संभव है।

२-इस वार्तालाप को अंकित करने के लिए प्रायोगिक फ्रीक्वेंसी १२०० एम. एच. जेड. से अधिक होनी आवश्यक है।

३-इस उपकरण को सरल बनाने की दिशा में और प्रयोग आवश्यक हैं।

४-सीधे-ध्वनि-संदेश अंकित 'टेप' से यह मालूम हुआ है कि 'माध्यमों' के द्वारा किसी विशेष प्रक्रिया से 'उच्चस्तरीय' संपर्क भी संभव है।

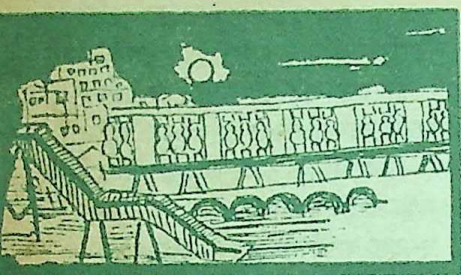
५-द्वि-मार्गीय संपर्क के लिए उपकरण के चालक की मानसिक-शक्ति का कितना योगदान है, इस विषय में भी और शोध आवश्यक है।

'स्पिरिकोम' का आविष्कार करने में जो कुछ समय, धन खर्च हुआ व प्रयत्न किये गये, हो सकता है कुछ लोगों को यह व्यर्थ ही महसूस हो। परंतु, 'स्पिरिकोम' से मनुष्य जाति को क्या लाभ हो सकते हैं, अन्वेषकों ने यह भी बताया है।

'स्पिरिकोम' के लाभ

१-इससे, मृत्यु-पश्चात् जीवन की निरंतरता का एक निर्विवाद प्रमाण प्रस्तुत किया जा सका है।

२-मनुष्य की व्यक्तिगत-चेतना मृत्यु के बाद भी विद्यमान रहती है और रोग-रहित स्थिति में कार्यान्वित रहती है, यह



मनुष्यों के लिए आनंदायक वृत्तांत है।

३-‘दो’ की बात जानकर मनुष्यों के मन से ‘मृत्यु’ का भय दूर हो सकता है।

४-हमारी संस्कृति ने ‘मृत्यु’ के विषय पर जो अवरोध (Taboos) लगा रखे हैं, उन्हें दूर किया जा सकता है।

५-वे धार्मिक सिद्धांत जिनका कोई उपयोग नहीं, दूर किये जा सकते हैं।

६-मृत्योपरान्त निरंतरता (Continuity) का ज्ञान होने पर मनुष्य अपने शरीर को अपने दिमाग से नियंत्रण में कर सकता है।

७-‘धर्म’ और ‘विज्ञान’ के क्षेत्रों में ‘स्पिरिकोम’ वांछनीय परिवर्तन कर सकता है।

८-विश्व में हर वस्तु में एकता का अनुभव हम कर सकते हैं।

९-जब ‘कारण-स्तर’ व ‘मन-स्तर’ पर विद्यमान आत्माओं से संपर्क होगा तब उनके संग्रहीत ज्ञान का उपयोग हम पृथ्वीवासी लोगों की उन्नति और ऐश्वर्य के लिए कर सकते हैं।

इन सब बातों को देखते हुए हम का निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि ‘स्पिरिकोम’ की सफलता का ज्ञान अधिक से अधिक वैज्ञानिकों और अभियांत्रिकों को दिया जाये, ताकि वे भी इस उपकरण पर अधिक शोध करके उससे प्राप्त लाभों को मनुष्य जाति के लिए उपलब्ध करा सकें।

-६-बी, ‘अलमोड़ा’, अणुशक्तिनगर
बंबई-४०००९१



एडिसन और माचिस बेचनेवाला

अंग्रेजी के प्रसिद्ध साहित्यकार जोजफ एडिसन जिस गली में रहते थे, उस गली में एक माचिस बेचनेवाला आया करता था। उसकी आवाज़ इतनी ऊंची और तेज़ थी कि एडिसन भन्ना उठते और काम छोड़कर बैठ जाते। परेशान होकर एक दिन एडिसन उसे बुलाकर दो पौंड दिये और कहा-‘यह रकम लो और कृपा करके आगे से इस गली में फिर कभी न आना।’

माचिसवाला फिर न आने का वादा करके रकम लेकर चला गया और उसी सचमुच उस दिन से उस गली में आना छोड़ दिया। ... लेकिन चार दिन बाद ही उस गली में दूसरे बहुत से माचिस बेचनेवालों का हुजूम इकट्ठा हो गया, जो गला फाड़-फाड़कर माचिस बेचने लगे। एडिसन महोदय तुरंत ही सारा माजरा समझ गये। बेचारे भीतर ही भीतर कसमसा कर रह गये।



-सुरेंद्र श्रीवास्तव



कासनी कुहासे,
ज्ञान-चक्षु प्यासे ।
आंखों में जाला,
अधरों पर हाला,
आंधियां उकरे,
प्रश्न खड़े घेरे
मन चाहे उत्तर पाऊंगी कहां से ?

टीसती दरारें,
उगती दीवारें
टूटते झरोखे,
नियति के टहोके,
मुंह लगे अंधेरे ज्योति के पिपासे ।

छंदबद्ध जीवन,
छल भरे समर्पण,
भैरवी निशाएं,
शंखिनी दिशाएं,
चौराहे पर हैं नित नये तमाशे !

आवरण घनेरा,
आरसी अंधेरा,
ज्ञान टोहता है,
प्राण मोहता है,
यौवन का नशतर, रूप को तराशे ।

सांस सर्पिणी-सी,
आयु गर्भिणी-सी,
नेह चुका सारा,
देह थका-हारा,
फूट नहीं पाते, मोह के बताशे !

०००

मोह के बताशे



प्रभा ठाकुर

५-ए, आशा कॉलोनी, जुहू-तारा रोड, बंबई-४९

(पृष्ठ ७१ का शेषांश)

फूलों की मांग करती है। कभी किसी सखि से बात करने को मन कर आता है। काका से वह मृत्यु और अज्ञात संसार के बारे में पूछ बैठती है। उस दिन बोली, 'आज मेरे कपड़े बदल दो। मुझे वह सूट पहनाओ जो मैंने अभी सिलवाया था। सफेद लिलि के फूल मेरे विस्तर पर रख दो। बाहर चंदन की बत्ती जला दो। और, पापा ! आप मेरी चिंता न करें। आप चिंतित रहेंगे तो मैं कैसे शांति पा सकूंगी। मैं आपको प्रसन्न देखना चाहती हूँ। मैं बहुत खुश हूँ। नये-नये लोकों की यात्रा करूंगी। और हां, पापा, मेरा शरीर मैडीकल कालेज को दे देना। विद्यार्थियों के काम आयेगा।'।

फिर वह चुप हो गयी। चेतनावस्था में उसकी यह अंतिम वसीयत थी। अगले पूरे दिन वह प्रायः मौन ही रही। कभी-कभी कोई सखि या कोई रिश्तेदार आता तो वह आंखें खोलकर देखती, कुशल मंगल पूछती और कहती, 'अद्भुत शांति है मेरे चारों ओर। बस ऐसा लगता है कि सो जाऊँ गहरी शांत नींद में।'।

अनंत काका ने सहज भाव से कहा, 'सो जाओ, बेटी। ऐसी प्यारी नींद हरेक को कहाँ मिलती है !'

'यह क्या है मेरे पैरों पर ... अहा, मेरा प्रिय शाल। आप इतने अच्छे क्यों हैं, काका। लेकिन क्या यह सब भी मोह ही नहीं है ... अहा ! मुनिया गा रही हैं।

नवनीत

इसे आप अपने पास रखिये, काका।'।

'हां, हां, रखूंगा। सब कुछ सहेजकर रखूंगा।'।

'काका ! ऐसा लगता है कि गाड़ी हरी झंडी दिखा दी है गाड़ी रवाना हो वाली है ... पापा !'

'हां, बेटी।'।

'परसों मेरे सब मित्रों-सखियों को बुलाकर पार्टी देना। मेरे जन्मदिन नहीं दे सके थे न। वैसी ही शानदार पार्टी होनी चाहिये। अच्छा, पापा, अनंत का मेरे भइया-भाभी, आप सबको मेरी राम ! गाड़ी ने सीटी दे दी है ... निमरने से जग डरे मेरे मन आनंद ...'

धीरे-धीरे ये शब्द धीमी फुसफुसाहट में बदल गये। रात भर वह गहरी नींद सोती रही, शांत स्तब्ध कर देने वाली नींद। सवेरे पांच बजे कई बार पुकार पर उसने आंखें खोलीं, देखा, फिर हाथ जोड़े और फिर तीन हिचकियां लीं। नब्बे शतदल कमल की तरह खिलते चले गये फिर आधे मुंद गये। धरती पर उसकी छुट्टी सचमुच समाप्त हो गयी !

अनंत काका ने उसके सिर पर हाथ रखे। एक क्षण देखते रहे फिर वही शांत उड़ाकर बाहर चले गये यह कहते हुए 'एक आंसू नहीं टपकना चाहिये। बस बनकर उसकी विकास-यात्रा की यात्रा बन जायेगा वह। हो सकता है मां मृत्यु उसे संवार-सजाकर फिर कर्मक्षेत्र में

दे या फिर वह विराट चेतना में लीन हो जाये ।'

नेत्रदान, शरीरदान, सब कुछ हुआ पर अनंत काका फिर कहीं नहीं दिखाई दिये । अगले दिन उनके दामाद ने आकर बताया कि वे अभी वापस अस्पताल चले गये थे । वही साइड रूम में बैड नं. २ पर सोते-सोते किसी समय उनका प्राणांत हो गया । अपूर्व शांति है उनके मुखमंडल पर जैसे गहरी नींद में सो रहे हों । नर्स कह रही थी कि सोने से पूर्व वे बहुत देर तक तन्मय विभोर धीमे स्वर में गाते रहे -

कर ले शृंगार चतुर अलबेली
साजन के घर जाना होगा ।
फिर नर्स की ओर देख कर बोले,
क्यों डरते हो उससे भाई
देखो तो उस मुख का मोद
हंसने से जो हुआ गुलाबी
दमक रहा है जो सबिनोद
(-अरविंद)

और फिर मुस्कराते हुए उन्होंने नेत्र मंद लिये । सवेरे जब नर्स उनके पास गयी तो उनकी उस लोक की यात्रा आरंभ हो चुकी थी । -८१८, कुंडेवालान,
अजमेरीगेट, दिल्ली-११०००६



अंचाइयों के फेर में मत पड़ो

किसी गांव के किनारे एक तालाब था । तालाब से थोड़ी दूर पर एक टीला था जिस पर जहां-तहां झाड़-झंखाड़ के अलावा और कुछ न था । दिन में वहां गिद्ध बैठते और रात में वहां गीदड़ रोते थे ।

तालाब की छटा कुछ और ही थी ।

उसमें दूर-दूर का पानी बहकर आता था । भोर के साथ तालाब के सुनहरे पानी में कमल खिल उठते और रात को पानी की आकाश जैसी गहराइयों में चांद-सितारे झिलझिलाते ।

टीला सोचता कि कहां नालियों से जीवन प्राप्त करने वाला क्षुद्र तालाब और कहां मैं, जिसे भगवान ने इतना सुदृढ़ और अंचा बनाया है ।

और तालाब यह सोचता कि कैसा महान है यह टीला, काश मुझमें उसकी जैसी अंचाइयां होतीं ।

एक दिन इस तरह की बात सुनकर हवा वहां ठिठककर रुक गयी और कहने लगी कि अंचाइयों के फेर में न पड़ो, तालाब ! भूलो मत कि जिस तरह हर तरफ से बहता हुआ पानी तुम्हारे पास आता है, उसी तरह ज्ञान भी उन्हीं को प्राप्त होता है जो दिल व दिमाग खुला रखते हैं, और दम्भी व्यक्ति उसी प्रकार विद्या-बुद्धि से वंचित रह जाते हैं, जिस प्रकार टीले का उभार जीवन से ।

-डा. गोपालप्रसाद 'वंशी



दर्शन लाड का ज्योतिष-दार्शनिक लेख



ज्योतिष और कर्म-सिद्धान्त

कर्मसिद्धांत और ज्योतिष शास्त्र यदि तत्त्वतः देखा जाये तो एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। यदि आपका विश्वास ज्योतिष शास्त्र पर है तो शब्दशः स्वीकार न करते हुए भी आपने कर्मसिद्धांत पर विश्वास कर लिया।

‘ज्योतिष’ शब्द, आकाश के ज्योतिमान ग्रह-नक्षत्रों और तारिकाओं को प्रतिबिंबित करता है। कर्मसिद्धांत इस बात को प्रतिपादित करता है कि जन्म-जन्मांतरों से संचित कर्म भाग्य बनकर इस जन्म में आपको अच्छा या बुरा फल देते हैं। हम कार्यसिद्धांत और ज्योतिष का अभिन्न संबंध स्थापित करते हुए इस बात को स्वीकृत करके इस तथ्य को मान्य करते हैं कि जो भी अच्छा या बुरा कर्मफल हमें इस जन्म में भोगना होगा उसे आकाश के ग्रह-नक्षत्र अपने द्वारा व्यक्त करेंगे। तो क्या हमारे भाग्य का निर्णय आकाश के ग्रह-नक्षत्र करते हैं? क्या सर्वशक्तिमान कोई ऐसा सत्ता इन ग्रहों और नक्षत्रों को हमारे भाग्यविधाता बनने का अधिकार देती है? क्या पृथ्वी पर बसने वाले करोड़ों मानवों के भाग्यनियंता ये नौ-दस या ग्यारह ही ग्रह हैं? क्या यह सीधी ताना-

शाही नहीं है? क्या ग्रह-नक्षत्रों की भविष्य नियंत्रक शक्ति स्वीकार करके मनुष्य अपने आपको इन भाग्यविधाताओं की कठपुतली समझने से इनकार कर सकता है? यदि ऐसा है तो फिर मनुष्य का अनान्य धर्म-पुरुषार्थ किसलिए? मानवजाति की सर्वोत्तम और जगत को स्वर्ण बनाने की कल्पना फिर कोई क्यों और कैसे करेगा?

ये वे सरल प्रश्न हैं जो आधुनिक मनुष्य के मन में सहज रूप से उठ सकते हैं। इन प्रश्नों का शास्त्र से आसिद्धांतानुसार तर्कसम्मत समाधान ही लेख का मूल विषय है।

आजकल आम तौर पर बुद्धिजीवियों द्वारा यह मंतव्य प्रकट किया जाता है कि ‘आपका राशि भविष्य’ जैसे कॉलम पत्रिकाओं और अखबारों से हटा दिये जायें चाहिए क्योंकि ये व्यक्ति को भ्रमित करनेवाली निष्क्रियता की ओर प्रेरित करते हैं। लेकिन यह मंतव्य कितना ऊपरी है यह इससे सिद्ध होता है कि महत्वपूर्ण पत्रिकाएं ज्योतिष-संबंधी स्तंभ के बिना अधूरी मानी जाती हैं। तथाकथित प्रगतिशील अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओं में भी ज्योतिष विषयक कॉलम अनिवार्य रूप से

नवनीत

८८

जन १९८८

पाठक-पाठिकाओं की रुचि को प्रदर्शित करता है। अपने भविष्य के प्रति जिज्ञासा के कोई विरला ही वच पाता है, ठीक उसी तरह जिस तरह अपनी प्रशंसा सुनने की इच्छा का दमन छोटे से छोटा या बड़े से बड़ा कोई व्यक्ति नहीं कर सकता। अपने की भविष्य को बारीकियों के साथ जानने की के मूच्छा हर किसी में समान रूप से देखी जाती है। जिन बुद्धिजीवियों का सामूहिक चर सर्वतन्त्र ज्योतिष-संबंधी विश्वासों को का मनाने का विरोधी है वे ही बुद्धिजीवी जाति व्यक्तिगत रूप से अपनी राशि का मासिक, वनारंशिक या साप्ताहिक भविष्य देखने के करे लिए तेजी से पत्र-पत्रिकाओं के पन्ने पलटते तक मारे जाते हैं।

तै है। इससे सिद्ध होता है कि अपने भविष्य पत्र से अवगत होने की इच्छा मानव-स्वभाव का ही अंग है। ज्योतिषशास्त्र-संबंधी अनु-पत्र-प्रसूत सिद्धांत, मनुष्य के स्वभाव के बुद्धिबिस अंग को तुष्ट और पुष्ट करने के लिए जाता है। प्रणीत किये गये हैं।

पहले इस भविष्य को हमें उस भूत-हटा काल में ढूंढने का प्रयत्न करना होगा। जिसके आधार पर हमारा भाग्य निर्मित है। लेकिन है। भाग्य में विश्वास न करने वाला इस कोई भी व्यक्ति इस बात से इनकार नहीं कर सकता कि जन्म से पहले कोई भी पत्र-पत्रिका अपने माता-पिता और जन्मस्थान या जन्म-समय का चुनाव नहीं कर सकता। जिसे जहां, जिस माता के उदर से, से जिस समय उत्पन्न होना होता है, वहीं वह



उत्पन्न होता है और पहली बार दिन का उजाला या रात का अंधेरा देखता है। वह व्यक्ति जिस क्षण माता की कुक्षि से निःसृत होकर पृथ्वी के वातावरण का स्पर्श करता है वही उसकी जन्म लग्न-कुंडली के लग्न का वह बिंदु होता है जहां से उसकी जीवनयात्रा प्रारंभ होती है। जन्म समयानुसार लग्न निश्चित होने का अर्थ होता है उसकी लग्न-राशि का निश्चित होना। राशि का शाब्दिक अर्थ समूह होता है, पाश्चात्य ज्योतिषी इसे 'साइन' या चिह्न के नाम से जानते हैं। ये राशियां या चिह्न बारह हैं जिनके नाम क्रमशः मेष, वृषभ, मिथुन, कर्क, सिंह,

कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुंभ और मीन हैं। बारह राशियाँ खगोल चक्र के वे बारह भाग हैं जो हमारे दृश्य और अदृश्य आकाश को पूर्ण करते हैं। व्यक्ति के जन्म-समय पर पूर्व क्षितिज पर जिस राशि का उदय हो रहा होता है वही उस व्यक्ति विशेष की लग्न राशि होती है और उस समय चंद्रमा जिस राशि में भ्रमण कर रहा होता है उसकी जन्म राशि कहलाती है। अपना भविष्य पत्र-पत्रिकाओं में देखने के लिए लोग इसी जन्म राशि का सहारा लेते हैं। हर राशि में सवा दो नक्षत्रों का समावेश होता है और इस तरह सत्ताईस नक्षत्र मिलकर बारह राशियों का निर्माण करते हैं। नक्षत्रानुसार ध्वनि-सिद्धांत के आधार पर हर नक्षत्र के चार चरणों के चार प्रतिनिधि अक्षर होते हैं जिनसे शुरू करने पर व्यक्ति का जन्म नाम निश्चित होता है। उदाहरणार्थ जिस व्यक्ति के जन्म-समय में चंद्रमा, मेष राशि में भरणी यानी दूसरे नक्षत्र के पहले चरण में स्थित है उसका नाम 'ली' अक्षर से प्रारंभ होगा—चाहे वह लीला हो या लीलाधर। इसी प्रकार सत्ताईस नक्षत्रों के एक सौ आठ चरणों के अनुसार प्रारंभिक अक्षरों का सिद्धांतानुसार नियमन किया गया है। मुमरनी के एक सौ आठ दानों का संबंध इन नक्षत्र-चरणों से है, जिनमें सारा खगोल-वृत्त समा जाता है।

राशि का अर्थ 'समूह' इसलिए होता है कि एक राशि में जो सवा दो नक्षत्र समाये

हैं वे कई ताराओं का समूह हैं और उन निश्चित आकार हैं। जैसे मृगशीर्ष नक्षत्र ताराओं का आकार मृग के सींगों के समान है। नक्षत्रों के नामों का आधार उन आकार ही हैं, यही बात राशियों के सम्बन्ध में भी सिद्ध होती है।

यह ज्योतिष-ज्ञान का सामान्य और प्रारंभिक विवरण, कर्म-सिद्धांत का ज्योतिष से संबंध सिद्ध करने के लिए आवश्यक है। वैसे ज्योतिष विद्या अथाह है और उसका पार पाने के लिए एक जीवन की अवधि पर्याप्त नहीं, परंतु सत्य की कसौटी पर परखी हुई अनुभव रत्नों की जो विशाल राशि हमें उपलब्ध है उसके आधार पर इस संबंध की सत्यता को परख सकते हैं।

पहले हमने देखा कि कोई व्यक्ति अपने जन्म का समय, स्थान और माता-पिता का चुनाव नहीं कर सकता। यह भाग्य का निर्देश है और इस पर किसी का वश नहीं है। अब जन्म से लेकर मृत्यु तक यह प्रासंगिक किन-किन परिस्थितियों से गुजरेगा और जानने के लिए हमें उन ग्रहों और राशियों का सहारा लेना होगा जो उस समय आकाश में साक्षियों की तरह उपस्थित हैं। प्राणी जैसा भाग्य पिछले जन्म से लेकर आया है वह उस तत्कालीन आकाश लग्न नक्षत्र से हमें जानना होगा जिसका नाम 'जन्मकुंडली' है। जन्मकुंडली यह दिखाती है कि पूर्वी क्षितिज पर उस समय कौन-बुध, राशि उदित हो रही थी और उसके क्रमशः बारहों राशियों में कौन-कौन

नवनीत

ग्रह कहां-कहां भ्रमण कर रहे हैं ।
 इस जन्मकुंडली का आधार वे बारह
 भाव हैं जिनमें कालपुरुष सिर से लेकर
 पैर तक गोलाकार लेटा है । पहला भाव
 व्यक्ति के व्यक्तित्व को निर्देशित करता है,
 दूसरा भाव परिवार और उसकी सामा-
 जिक स्थिति तथा वाणी को। तीसरा भाव
 'सहज' कहलाता है जिसका अर्थ है सहजन्म
 वाले भाई और बहन; यही भाव
 व्यक्ति की पुरुषार्थ शक्ति को भी निर्देशित
 करता है। चौथा भाव मूलतः माता, पृथ्वी,
 वाहन और घर की स्थिति का निर्देशक
 है। पांचवां भाव संतान, विद्या-बुद्धि और
 विद्यापूर्व-पुण्य का निदर्शक है तो छठा भाव
 रोग, शत्रु, रोग और ऋण की स्थिति का ।
 सातवां भाव पत्नी या पति, विवाह और
 सहयोगियों की स्थिति और अवस्था, आठवां
 भाव जीवन की अवधि दुःख, पाप और
 पुनर्जन्म की स्थिति का निरूपक है । नवां
 भाव धर्म, भाग्य, गुरु और आस्था का
 प्रसूचक है तो दसवां भाव पितृ, व्यवसाय,
 कर्म और अधिकार का । ग्यारहवां भाव
 लाभ और मित्रों का मुख्य रूप से निदर्शक
 है जबकि बारहवां भाव हानि, व्यय और
 क्षति का ।

इन बारह भावों में बारह राशियां, जन्म
 का लग्न राशि के क्रमानुसार कुंडली में देखी
 जाती हैं । इन्हीं बारह राशियों में प्राचीन
 विद्वान् भारतीय मान्यतानुसार सूर्य, चंद्र, मंगल,
 बुध, वृहस्पति, शुक्र और शनि ये सात ग्रह
 और राहु और केतु ये दो पातबिंदु कहीं न

कहीं स्थित होते हैं । आधुनिक खोजों के
 आधार पर नेपच्यून, प्लूटो और हर्षल
 ये तीन और ग्रह जन्मकुंडली में शामिल
 कर लिये गये हैं जिनका प्रभाव-निरूपण
 ज्योतिषी अपनी मान्यतानुसार करते हैं ।

नौ ग्रह (जिनमें राहु-केतु सम्मिलित
 हैं), बारह राशियां, सत्ताईस नक्षत्र, जो
 फैले हुए हैं जन्मकुंडली के उन बारह
 भावों में जिनका संक्षेप में निरूपण किया
 जा चुका है । जन्म-जन्मांतरों की शृंखला
 की एक कड़ी यह वर्तमान मानव जो कुछ
 निर्धारित करके आया है वह इस जीवन
 में पूरा करेगा साथ ही यह इसी जन्म में
 अपने भविष्य का भी निर्माण करेगा ।
 इसकी सामाजिक, आर्थिक परिस्थिति,
 इसका परिवार, इसका कार्यक्षेत्र, इसका
 पुरुषार्थ, इसकी बुद्धि और प्रतिभा, इसके
 जीवन साथी, इसकी आस्था सभी कुछ
 पहले से निरूपित हैं उस अदृष्ट की
 अंधेरी कंदराओं में जिसका नाम 'भाग्य'
 या 'होतहार' है । आकाश के ये ज्योतिमान
 यात्री, बारह राशियों में भ्रमण करनेवाले
 ये ग्रह, अदृष्ट की इन्हीं अंधेरी कंदराओं
 पर प्रकाश डालते हैं, अपनी स्थिति के
 माध्यम से ।

जातक, ज्योतिष की भाषा का यह
 शब्द, उसी व्यक्ति विशेष के लिए प्रयुक्त
 होता है जिसका, जन्मकुंडली और अन्य
 कुंडलियों के माध्यम से (ये कुंडलियां
 जन्मकुंडली का ही विस्तार हैं) भविष्य
 निरूपण किया जाता है । ग्रहों का राशियों

में भ्रमण, उनकी वक्री और मार्गी गति, उनके स्वामित्व वाली राशियों और भावों की स्थिति को देख-परख और गहराई में जाकर जातक के विषय में कोई मत स्थिर किया जाता है।

इस लेख के प्रारंभ में कई प्रश्नों का उल्लेख है जिनमें ग्रहों की सर्वशक्तिमत्ता के बारे में भी प्रश्न हैं। उत्तर हमें ज्योतिष के इन्हीं विवरणों में खोजना होगा। जो कुछ इन में निरूपित किया गया है वह आकाश की स्थिति दर्पण की तरह बताता है। वही व्यक्ति की जन्मकुंडली है। ग्रह जो भी शुभ और अशुभ निर्देश करते हैं वह व्यक्ति-विशेष के गुण-दोषों का खाका है। जो गुण हैं उनका सही उपयोग और जो दोष हैं उनकी निवृत्ति, जो पुरुषार्थ प्राप्त है उसे पूर्णता की सीमा तक पहुंचाना, और जो भाग्य उपलब्ध है उसे पुरुषार्थ के बल पर आदर्श की स्थिति तक ले जाने की शक्ति लेकर मानव धरती पर आता है।



कर्म या भाग्य से ज्योतिष का सुसंबंध भय और आशंकाओं का या तिरस्कार का भी कारण नहीं होना चाहिए। ग्रह, प्रकृति के नियमों के अनुरूप भ्रम करते हैं तो मानव को भी प्रकृति के रहस्य से अपना मेल बैठाना चाहिये और जो

को अभिशाप न समझ कर वरदान समझना चाहिये। ज्योतिष, ज्ञान के साथ-साथ विज्ञान भी है इस तथ्य आंखें न मूंदकर प्रबुद्ध को मनुष्य के इस अनुभव-नवनीत का लो उठाना चाहिये।

गणित और फलित इन भागों में मुख्य रूप से विभक्त ज्योतिष शास्त्र गणित-विज्ञान का चमत्कार जगह-जगह दर्शाता है। प्राचीनकाल ही ज्योतिष का समावेश वेद के प्रारंभिक अंग के रूप में होता रहा है और ज्योतिष को वेदों का चक्षु बताया गया है। चक्षु मनुष्य को उपलब्ध है, बस, स्थिर करने की आवश्यकता है।

—१०५, सुंदरनगर, कालीना, बंबई—



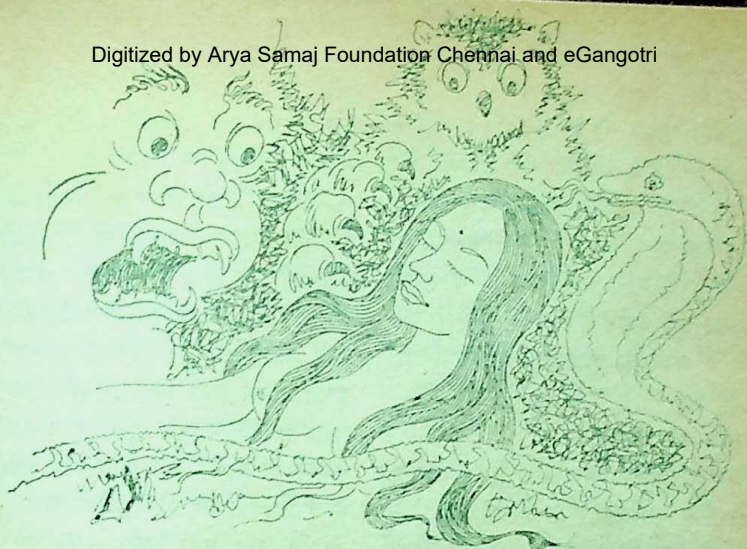
निर्बल व्यक्ति के राह का रोड़ा, बलवान के लिए आगे बढ़ने की सीढ़ी का देता है।

०००

अंधा देख नहीं सकता, इसलिये अगर कोई कुत्ता भी उसे राह दिखाए तो प्रसन्नता होती है। परंतु अकल के अंधे को राह दिखाने की हिम्मत किस में है!



—एस. बट



मृत्यु के रहस्य का उद्घाटन करने वाला
माइकेल वेरिन का एक वैज्ञानिक लेख



कितना आकर्षक है मौत का चेहरा

०००

मौत के बहुत निकट आये बहुत से लोगों के लिए यह अलौकिक अनुभव बड़ा
क्रांतिकारी सिद्ध हुआ है। उसने उन्हें निर्भय बनाकर जीवन और मृत्यु के प्रति
उनके सारे दृष्टिकोण को ही बदलकर रख दिया।

०००

आजकल पश्चिम में Resurrection (मृतोत्थान) नाम की एक फिल्म
बड़ी लोकप्रिय हो रही है। फिल्म में एक
स्त्री (जिसकी सशक्त भूमिका अभिनेत्री
एलीन वस्टीन ने की है) एक शल्यक्रिया
के दौरान 'मरकर' फिर जीवित हो जाती
है। इतना ही नहीं, पुनर्जीवित होने के

बाद, उसमें लोगों का इलाज करने की
चमत्कारिक शक्ति भी अपने आप आ
जाती है।

फिल्म की यह अलौकिक घटना तो
दर्शकों को चकित-स्तब्ध करती ही है,
स्त्री की मौत का जो चित्रण किया गया है,
वह भी कम विस्मयजनक नहीं है, वह

१९८३

९३

हिंदी डाइजेस्ट

दर्शकों को, हाल ही में प्रकाशित 'Life After Life' (जीवन के बाद जीवन) की याद भी दिला देता है, कारण इस अत्यंत लोकप्रिय पुस्तक में मौत की निकटता का अनुभव करने वाले व्यक्तियों ने भी मौत का वैसा ही वर्णन किया है, जैसा इस फिल्म में मौत के दृश्य में चित्रित किया गया है।

अनुभवों की समानता

मौत से आंखें मिलाकर, पुनः जीवित हुए अनेक व्यक्तियों ने मौत के जिस आकर्षक चेहरे के दर्शन किये हैं, वह उनके विभिन्न स्थानों और परिस्थितियों में दिये गये वर्णनों के अनुसार, काफ़ी समानता रखते हैं।

उन्नीसवीं सदी में गुस्ताव दोरे नामक एक कलाकार ने दांते की 'डिवाइन कॉमेडी' के स्वर्ग वाले अध्याय को पढ़कर, मौत के जिस चेहरे को अंकित किया था, वह आधुनिक काल के इन व्यक्तियों द्वारा 'देखे' गये और वर्णित चेहरे से, आश्चर्यजनक रूप से समान है।

अमरीका के कार्नेकिटिकट विश्व-विद्यालय से संबंधित कुछ शोधकर्ताओं ने 'द इंटरनेशनल एसोसिएशन फॉर नियर-डैथ स्टडीज' नामक एक परा-मनोविज्ञान संबंधी शोध-संस्था की स्थापना की है। यह संस्था उन अनुभवों का विशद और गहन वैज्ञानिक अध्ययन करेगी, जो मौत के निकट आये व्यक्तियों को प्राप्त हुए थे। इस संस्था के एक निदेशक आजकल

नवनीत

इस संस्था की गाथाएं यूरोप के प्रत्येक देश में खोलने में व्यस्त हैं।

जॉन ऑडेट नामक इन निदेशक मंत्रालयों का कहना है कि अब तक मौत हमारे मौजूदगी को पास से अनुभव करने कवर्गों सभी व्यक्तियों ने स्वीकार किया है ऐसे उन्हें अपने पार्थिव शरीर का परिवर्तन करते समय बड़ी शांति, निश्चितता अचुके सहजता का अनुभव हुआ था। शरीर छोड़ने के बाद, उन्हें लगा जैसे एक सुनहले में तैरते चले जा रहे हैं, और एक सुनहले ज्योति उन्हें बड़ी सुखद गरमाहट प्रदान कर रही है। यह भी कि चारों ओर और उनकी विनशर्त स्वीकृति का अनुभव और प्रीतिकर वातावरण व्याप्त है। इस किसी ज्योति-पुरुष या ज्योति-मुंज 'उपस्थिति' का भास भी होता था। बी हुई जिंदगी का सहज सिंहावलोकन संभव था।

अनुभव के अंत में, इन व्यक्तियों अपने आप को एक लोकोत्तर, सौंद मंडल में पाया, जहां उनकी भेंट परिचितों की आत्माओं और परलोक मार्ग-दर्शकों से हुई, जिन्होंने इन व्यक्तियों को सूचित किया कि उन्हें पुनः पृथ्वी जाकर, पुनर्जीवित होना होगा।

... और, आंखें खुलने पर उन्हें सचमुच अपने को पृथ्वी पर, पुनर्जीवित पाया।

चिकित्सीय समाज-शास्त्र में एम. की डिग्री प्राप्त, ऑडेट का कहना है

के प्रत्ये

‘मौत को निकट से अनुभव करने वाले एक मनुष्य को ऐसे अनुभव नहीं होते । मौत हमारे अध्ययन से पता चला है कि विभिन्न वर्गों के १५ से ६० प्रतिशत लोगों को मौत है ऐसे अनुभव हुए हैं । जेप या तो अचेत-परिवर्तनस्थिति में थे, या अपने अनुभवों को भूल जाता अचुके थे !’

गरीब और, जिन लोगों को सचमुच ऐसे अनुभव हुए हैं, उनमें से प्रत्येक का कहना यह है कि ‘इस अनुभव के बाद मुझे विश्वास हो गया कि मृत्यु के बाद भी जीवन है और मृत्यु से भय व्यर्थ है ।’

समनुरूप प्रतिमान

इस संस्था ने अपना शोध-कार्य १९७० में आरंभ किया था । डॉक्टर लाइफ (जीवन के बाद जीवन) लेखक मानस-रोग-विशेषज्ञ डॉ. रेमंड डी के सहायक थे । इस पुस्तक में मृत्यु के निकटता से देखने वाले ५० व्यक्तियों के अनुभवों का वर्णन है । १९७५ में प्रकाशित इस अत्यंत लोकप्रिय पुस्तक का अनुवाद ३० भाषाओं में हो चुका है ।

जिन दिनों यह पुस्तक लिखी गयी थी, वहीं दिनों डॉक्टर एलिजबेथ कुबलर-रांस भी शिकागो विश्वविद्यालय में मृत्यु पर शोध कर रही थीं । ‘लाइफ डॉक्टर लाइफ’ के प्रकाशक ने इस विषय उनकी रुचि देखकर उन्हें इस पुस्तक का प्रूफ भेजकर उसकी भूमिका लिखने को कहा । भूमिका भेजते समय डॉ. एलिजबेथ कुबलर-रांस ने लिखा, ‘मुझे

इस पुस्तक को शब्दशः लिखने में कोई कठिनाई न होती ।’ बाद में दोनों ने मिलकर इस विषय पर नये सिरों से शोध-कार्य आरंभ किया, जिसकी परिणति डॉ. रिंग की पुस्तक ‘लाइफ एट डैथ’ (मृत्यु के क्षणों में जीवन) और ‘द इंटरनेशनल एसोसियेशन फॉर नियर-डैथ स्टडीज़’ के रूप में हुई ।

‘अपने प्रयोगों से हमें एक विचित्र तथ्य का पता चला है’, डॉक्टर कहते हैं, ‘और वह तथ्य यह है कि मृत्यु का कारण कुछ भी रहा हो, इससे होने वाले अनुभवों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, वे अपरिवर्तनशील ही रहते हैं । ये अनुभव सब कालों में एक समान रहे हैं । इतिहास साक्षी है कि मृत्यु के द्वार पर खड़े हुए सब व्यक्तियों के अनुभवों में एक समनुरूप प्रतिमान मौजूद है । प्लेटो कृत ‘डॉयलास’ में इन अनुभवों का वर्णन मिलता है । ‘द तिब्बतन बुक ऑफ डैड’ तो ऐसे अनुभव-वर्णनों से भरी पड़ी है । यूरोप के मध्ययुगीन इतिहास में छठी सदी में जन्मे साल्वियस नामक एक मठवासी का उल्लेख है, जो मरकर दुबारा जीवित हो गया था । पुनर्जीवित होने पर उसने जो अनुभव अपने साथियों को सुनाये, वे आधुनिक शोधकर्ताओं द्वारा संग्रहीत अनुभवों से बहुत मिलते थे ।

इस संस्था द्वारा प्रकाशित एक न्यूज-लैटर से पता चलता है कि ‘मृत्यु के बाद जीवन’ विषय में लोगों की रुचि निरंतर

हिंदी डाइजेस्ट

बढ़ रही है। इस संस्था के समान एक और संस्था का जन्म पिछले दिनों कैलिफोर्निया में हुआ है। यह नयी संस्था विश्व के ऐसे सभी व्यक्तियों से संपर्क करने की इच्छुक है, जो एक बार मौत का चेहरा देख चुके हैं।

आध्यात्मिक आयाम

ऑडेट ने अपने प्रयोगों को एक सर्वथा नयी दिशा देकर यह जानने का प्रयास भी किया है कि क्या मृत्यु के अनुभव के बाद जीवन बदल जाता है। अपने इन प्रयासों के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि, 'मृत्यु का अनुभव कर लेने के बाद, आदमी जो नया जन्म लेता है, वह उसके पुराने जन्म से बिल्कुल भिन्न होता है। भिन्नता की यात्रा उसके अनुभव की गहनता पर निर्भर करती है। जो व्यक्ति अपने शरीर का परित्याग करने के बाद पुनः कुछ सेकंडों या मिनटों के बाद, उसी शरीर में वापस लौट आया हो, उसका मौत का अनुभव अधिक व्यापक और गहरा नहीं होगा। इसके विपरीत, मौत की सुरंग से गुजरने वाले के अनुभव अधिक विस्तीर्ण और गहरे-गंभीर होंगे।'

प्रयोगों से हमें यह भी पता चला है कि गहन-गंभीर अनुभवों ने उन अनुभवों में से गुजरने वाले व्यक्तियों को चार ढंग से प्रभावित किया है :

१-मृत्यु के बाद जीवन में उनका

विश्वास दृढ़ हो गया।

२-मृत्यु के प्रति उनका भय बिल्कुल समाप्त हो गया।

३-उनका धार्मिक दृष्टिकोण पूर्वापेक्ष अधिक उदार और सहनशील हो गया।

४-वे पहले से अधिक मानवतावादी बन गये, और अपने संगी-साथियों के पहले से अधिक प्रेम करने लगे। प्रेम करने समय उन्हें न उसके प्रतिदान की अपेक्षा रहती है, न किसी परिणाम की। सारा मानव-जाति अब उनका परिवार बन गयी है, ऐसा परिवार, जिसके प्रत्येक सदस्य से वे वैसा ही प्रेम करते हैं, जैसा कि अपने परिवार के सदस्यों से।

संक्षेप में, उनके जीवन को, इन अनुभवों के पश्चात्, एक नया आयाम प्राप्त हुआ है—आध्यात्मिक आयाम।

ऑडेट आगे कहते हैं, 'यह कहना एक अनुभव करने वाले हर व्यक्ति के प्रति घोर अन्याय होगा कि उनके अनुभव उन्माद या मतिभ्रम के परिणाम हैं। हां, 'मृत्यु के बाद जीवन है', इस कथन में तब तक गैर-जिम्मेवाराता माना रहूंगा, जब तक भावी प्रयोगों से यह कथन विज्ञान की कसौटी पर खरा न उतरा जाये। तब तक प्रत्येक व्यक्ति इन अनुभवों से अपने-अपने निष्कर्ष निकालने के लिए स्वतंत्र है।'

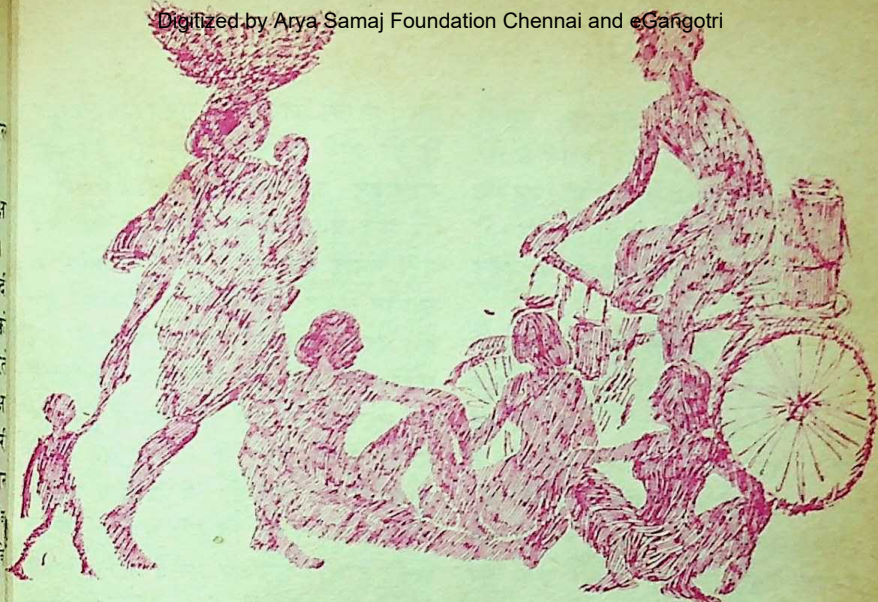
('टाइम्स ऑफ इंडिया' से साभार)

अधिकांश नवयुवकों के दोनों कान अपने ही ज्ञान से भरे रहते हैं।

विलकु
पूर्वापि
गया ।
वतावा
मयों क
म कर
अपे
। सार
ार क
प्रत्ये
जैसा

न अ
म प्रा
हना ए
के प्रा
अनुभ
म है

कथन
मान
ह क
न उ
इन अ
काल
सामा
-अ



एक छुपी प्रतिभा ऋताश्री की कहानी
'नवनीत' में ही पहली बार प्रकाशित



खोज रही हूँ, कहां हो तुम ...

आज उसने बस से सफर करने का निश्चय किया था । बहुत दूर जाना नहीं था, यही कोई पांच-छह मील का फासला था शहर जाने के लिए । कार से जाते वक्त कोई दिशा, कोई सड़क, इधर-उधर की दृश्यावली परिचित नहीं हो पाती थी और उसकी कई बार इच्छा होती थी कि वह श्रीमंत भाव को त्यागकर एक साधारण स्त्री की तरह बस में आये-जाये । यों वह देखने-भालने में बहुत साधा-

रण ही थी परंतु कार की पिछली सीट पर बैठते ही उसका आंखें मूंदकर सोफे से सिर टिका लेना उसके अपने लिए और अन्यो की दृष्टि में भी एक असाधारण का अहं बन जाता था । आज की शाम भी अपने परिवर्तित रंगों में उसे आमंत्रण-सा दे रही थी कि वह एक अलग मनोभाव में जिये और सुख पाये ।

जब वह क्यू में खड़ी हुई तो आसपास से आने वाली पसीने की गंध से उसक

दिमाग भन्ना उठा । अनायास उसका रुमाल नाक पर चला गया जिसमें से सेंट की हल्की-हल्की खुशबू आ रही थी । वह सेंट इस्तेमाल करने की शुरू से ही शौकीन रही थी, पर आज वह शौक जरूरत में बदल गया था ।

बस आ गयी थी और वह उसमें खिड़की वाली सीट लेना चाहती थी ताकि बाहर की सारी दुनिया देख सके । ज्यों ही वह बस में चढ़ी उसने लपककर खिड़की के निकट बैठने को तत्पर एक प्रौढ़ स्त्री को थोड़ा धकेलकर सीट ले ली । स्त्री ने उसे घूरकर देखा, पर वह अपनी फुर्ती पर प्रसन्न मुंह फेरकर बैठ गयी । बस के ठीक सामने एक पानवाले की दूकान थी और उस पर बड़े ऊंचे स्वरों में ट्रांजिस्टर बज रहा था । रिकार्डिंग के इस शोरगुल वाले तरीके से उसे खास नफ़रत थी, पर आज उसे वह अच्छा लग रहा था, वह उसकी मनपसंद का एक पुराना फिल्मी गाना था । वह भी अनजाने उसी धुन को गुन-गुनाने लगी कि बस झटका देकर आगे बढ़ गयी । स्वर हवा में तैरता मंद होता जा रहा था कि अगले नुक्कड़ पर भी वही गाना बजने के कारण वह उसे पूरा सुन सकी ।

उसके घर से शहर तक का यह इलाका काफी बसा हुआ किंतु अपेक्षाकृत शांत था । उसमें सभी बंगले या तो लोगों ने स्वयं अपने रहने की दृष्टि से बनाये थे, या फिर उन्हें आधुनिक सुविधाओं से सज्जित

कर किराया काफी बढ़ा रखा था । शहर से दूर होने के कारण यों भी बहुत-सा कोलाहल जो छोटे-छोटे तीज-त्यौहारों पर हिंदू जनता किया करती है यहां पर नहीं सुनाई देता था । इधर तो शहर से सामान लेकर आते लोग या मेले-पर्व पर झुंड बनाये गांववाले प्रायः दीख जाते थे । सवेरे-शाम दूध की वाल्टियां साइकिलों पर लटकाये टन-टन घंटी बजाते दूधवाले सरपट दौड़ते रहते थे । आज वह खुली आंखों से देख रही थी कि सामान्य जीवन की इस धरती पर कितनी धूल है, कूड़ा कर्कट है और उस पर चलने वाले कदम कितने कोमल कठोर हैं । कभी एक बच्चे को बगल में दबाए एक की उंगली पकड़े और सिर पर एक टोकरी सामान का बोझ लिये गांव की कोई औरत उसकी दृष्टि में झांक जाती । कभी ऊंची धोती, कोरी कमीज और पगड़ पहने किसान लोग बतियाते गुज़र जाते । कहीं-कहीं अपने बंगलों की सामने वाली सड़क पर सुंदर पहरावे में मेकअप किये दर्शनीय पत्नियां अपने पतियों के इंतज़ार में टहलती दीख जातीं । ऐसे माहौलवाले कितने ही घरों में उसका अंतरंग परिचय था और वह जानती थी कि इस बाहरी रंग-रोगन से सजी ज़िंदगी अंदर से कितनी खोखली और विचारहीन है ।

स्टेशन वाले बस स्टॉप पर बस ज्यादा समय ठहरी थी । उस स्टॉप के ठीक सामने एक छोटा-सा उजड़ा मैदान था जिसमें

एक बहुत बड़ा पीपल का पेड़ खड़ा था । उसी की छांव में कुछ खानाबदोश स्त्रियां अपने-अपने चूल्हे जला रही थीं । उसे याद आया कि जब वह अपने पति के साथ इस शहर में पहली बार आयी थी तो स्टेशन से सटे एक बड़े होटल में वे लोग ठहरे थे । उस समय वह बीमार थी, उसका भोजन बंद कर दिया गया था । उस समय वह दिन का अधिकांश समय खिड़की पर बैठकर इन लोगों को खाते-पकाते सतृण्ण देखने में बिताया करती थी । हाथों से थपककर उनकी गोल-गोल मोटी रोटी जब तवे पर पड़ती तो उसकी अनादि भूख जाग उठती । उसकी इच्छा होती इन्हीं की थाली में से उठाकर एक रोटी वह अपने हाथ पर रख ले और नमक मिर्च से खाये । पास में ही चीथड़ों में लिपट सोये उनके बच्चे उसके मन में प्रश्नों के तूफान उठा देते थे ! ये यों ही पलकर 'मनुष्य' बनेंगे ? क्या इन्हें जीवन की द्वंद्वात्मक स्थिति का अपने में अहसास नहीं है ? क्या शिक्षा-संस्कृति-सभ्यता इनके लिए नहीं जन्मी थी ? ... नहीं ... नहीं ... । पर उसे लगता कहीं इनकी भी एक सभ्यता है, एक संस्कृति है जो इन्हें सदियों से बेलगाड़ियों पर सारी गृहस्थी लादे इधर-उधर नगर-ग्राम जीवन के सुनसान मैदानों में इसी तरह जीवन यापन करने की डोरी में बांधे हुए हैं; लोहे के औजार बनाते ये स्त्री-पुरुष-बच्चे स्वयं में एक सभ्यता हैं—विषदंतहीन . . . ! कभी-कभी उसकी

इच्छा होती थी कि इन्हीं के सुख-संतोष की परिभाषा उसके अंदर भी अपना वास बना ले । वह तो सदा मुंदर बंगलों में रही थी परंतु उसके मन में एक चिर अभाव का, अथाह पीड़ा का भाव निरंतर मुलगता रहता था । वह क्यों था ? कहां से हुआ था इस पीड़ा का जन्म . . . ? आज भी इसका उत्तर वह नहीं खोज पायी है ।

सहसा उसके विचारों की शृंखला टूटी । वस ने एक जोर का झटका दिया था । सबके सिर टकरा गये और वस रुक गयी थी साथ ही उसकी सांस भी . . . क्या कोई नीचे आ गया . . . ? एक कोलाहल-सा उठा . . . 'बच गया बड़ा भाग्यवान था !' सुनकर उसने राहत की सांस ली । सामने पश्चिम का आकाश था जिस पर सिंदूरी रंग बिखरा पड़ रहा था । कुछ ही देर में यह आलोक धीरे कालिमा में घुल जायेगा, उसने सोचा । फिर नहीं रहेगा कोई रंग धरती-आसमान पर ... सब अंधियारे की गोद में अदेखा, अजाना बनकर रह जायेगा जैसा उसका जीवन ... ! वह भूल गयी है वह कौन-सा काल था जब आनंद का आलोक लेकर उसने अपनी यात्रा शुरू की थी उसकी अंजुली फूलों से भरी थी । उसकी स्वप्निल आंखों में प्रभाती के रंग झिलमिलाते थे . . . आज तो,

‘इस रास्ते पर
यहां मैं अकेली बैठी हूं
जो मुझे भोर बेला में
(शेषांश पृष्ठ १०२ पर)

रणजीत की
लम्बी कविता



विपरीत चिन्तन

मैं कई अजीबो-गरीब मूर्खतापूर्ण काम ए
साथ करना चाहता हूँ
मैं जीते-जी अपनी कब्र खोदना चाहता हूँ
बीस साल मैंने जन सामान्य को साम्यवादी
बनाने की कोशिश की
अगले बीस साल मैं
साम्यवादियों को जनवादी बनाने की
कोशिश करना चाहता हूँ
मैं सोवियत संघ में गांधी को जन्म देना
चाहता हूँ
और हिंदुस्तान में लेनिन को
क्रांति के साठ साल बाद भी वहाँ का आम
आदमी निर्भय नहीं हो
गांधी के बिना यह काम कौन करेगा ?
और आज़ादी के तीस साल बाद भी यहाँ
दो-तिहाई लोग भूखे सोते हैं
क्या लेनिन के अलावा भी इसका को
इलाज है
मैं कास्त्रो को अमेरिका का राष्ट्रपति
चुनना चाहता हूँ
और रीगन को क्यूबा का ।
मैं सब कुछ उलट-पुलट देना चाहता हूँ
मैं अंतरीपों को खाड़ियों में
और खाड़ियों को अंतरीपों में बदल देना
चाहता हूँ
मैं पहाड़ों को घाटियों में रखकर उ
समतल कर देना चाहता हूँ
मैं तीसरी दुनिया के रेगिस्तानों की प्या
दोनों दुनियाओं की नदियों के पानी
बुझा देना चाहता हूँ

नवनीत

तमाम उल्टे-सीधे काम एक साथ करना
चाहता हूँ

अफ्रीका में गोरी सरकारें तो हैं
व मैं योरप में काली सरकारों की स्थापना
करना चाहता हूँ

मास्को में लिबर्टी स्टैच्यू लगाना चाहता हूँ
तीर न्यूयार्क में लाल सितारा ।

समाजवाद की उपलब्धियों की रक्षा
के लिए

अफगान सेनाओं को सोवियत संघ में
तैनात करना चाहता हूँ !

चाहता हूँ कि कोई देश अपने घरेलू
मामलों में खुद दखल न दे

से सिर्फ दूसरे देशों के घरेलू मामलों में
खल देने का अधिकार हो !

पूरी दुनिया एक परिवार हो ।

सभी की एक चुनी हुई संसद हो, संघीय
सरकार हो

राष्ट्रीय सरकारें प्रांतीय सरकारों में
बदल दी जायें

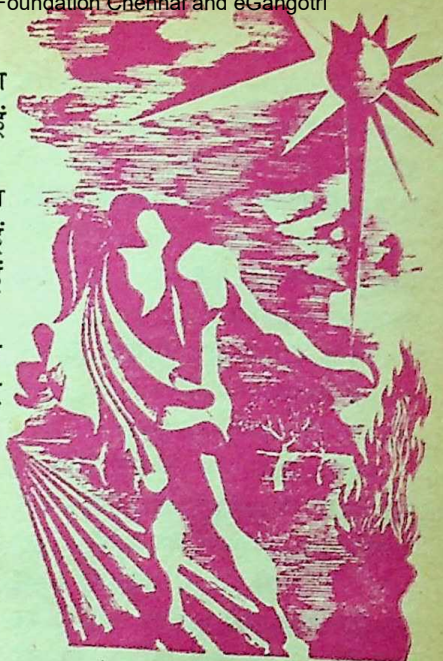
उनके पास न सेनाएं हों,
हथियार हों

न ऐसी दुनिया बने, जिसमें
तो कोई भूखा हो,

बेरोजगार हो
और भी हर व्यक्ति को अभिव्यक्ति का

लोचना का, आंदोलन का
अधिकार हो

अपने जीवन पर, मरण पर



अपनी यति-गति-नियति पर
पूरा अख्तियार हो !

हर गांव, कस्बे, नगर की
अपनी एक चुनी हुई स्वायत्त सरकार हो
लेकिन गांव से लेकर विश्व तक की सभी
सरकारों के पास

कम से कम अधिकार हों
ताकि वे धीरे-धीरे
बेजूरत होकर
झर जायें;

टूटें
गिरें
और मर जायें ।

- ओम बिर्लिङ, नूनिया मुहाल कटरा, बांदा, उ. प्र. -



(पृष्ठ ९९ का शेषांश)

जीवन की नौका पर खेकर
इस प्राण को दे गया था
आज प्रकाश और अंधकार के इस संधि
तट पर

धीरे से विलीन हो गया है
विगत सुर की व्यथाएं
प्रभाती के उस आलोक को खोज रही हैं
और मैं चुपचुप सुन रही हूं
अंधकार की भाषाहीन आहटों को'

सहसा शीतल हवा के एक झोंके ने
उसे स्पर्श कर द्रवीभूत कर दिया और
उसकी आंखों में आंसू भर आये ! उसे
याद आया ऐसी ही एक सांझ थी । वह
अपनी अंतरंग सखी के साथ सीढ़ियों पर
बैठी थी । सामने छुपते सूर्य के बिंब को
देखकर सखी ने पूछा था, 'बता सकती हो
प्रेम अपना पथ क्यों नहीं पाता ?' और
उत्तर में एक व्याकुल गहन मौन व्याप्त
हो गया था ।

मुक्त आकाश को पीछे छोड़ बस दौड़
रही थी । सड़क खुली और सुनसान थी ।
कुछ ही देर में यह खुलापन फिर भीड़-
भड़क के में बदल जायेगा फिर न यह हवा
रहेगी न तेज रफ्तार । उसे तेज रफ्तार से
कितना अपनत्व है ! उसका जी होता है
गति अपार गति में बदल जाये और वह
स्वयं सबसे तेज रफ्तार में से एक हो
जाये ।

दूर से शहर की असंख्य बस्तियां दिखाई
दे रही थीं कि एक स्टॉप पर बस रुकी !

नवनीत

कुछ गांवों की स्त्रियां बच्चों के झुंड़
चढ़ीं और वहीं उसकी धरती पर
पैर पसारकर बैठ गयीं । उनके
ओर उसका ध्यान गया । ओह
बिवाइयां, कितने धूल धूसरित !
गिलट के गहने कसे हुए थे जहां पर
खाकर जगह एकदम काली हो गयी
दिन भर की मजदूरी से थके हाथों
लेकर ये यों ही गहरी नींद में सो जा
पर वह कभी गहरी नींद में नहीं सो
फिर उसने उनके निर्भय चेहरों को
जो अंधेरी पगडंडियों पर अपने घ
ओर लौटते किसी शंका या अनाश्रय
बोझ नहीं ढोते ।

इनके घरों में टिमटिमाने वाले
और जलते चूल्हों से उठता क
धुआं उसके मन में एक अजनब
पैदा कर देते हैं । इनके पास क
हो सकते हैं पर समझे जाने की क
है... क्या मालूम ?

अगले स्टॉप पर बस में चढ़ते ए
युवक-युवती ने उसका ध्यान आ
लिया ।

बिना उतावली के वे दोनों थं
जगह में सिकुड़कर बैठ गये थे । रंग
लड़की के सुंदर चेहरे पर विष देता
रेखाएं देख अपनत्व से भर उठी ।
ऐसा चेहरा अपना लगने लगता है
कहीं परस्पर कोई संबंध का सूत्र
हो ! उसने उस युवक की ओर देखा

र, शालीन मुख पर खोयापन था—ठुड़ी
ऊपर को उठी हुई थी और एक शिशु-
का भाव प्रदर्शित करती थी। 'यह
धर्मधुमकवी के शहद और डंक जैसा
जिसमें या तो आसक्ति की चिपकन है
डंक की तड़पन ...' उसने सोचा, 'स्त्री-
का यह सामाजिक अ-संबंध कितना
स्थित, किंतु कसा हुआ है। इसमें न
करने पर व्यक्ति अकेला कहाता है
प्रवेश करने पर निःसंग हो जाता है।
शहर निकट आ गया था। वस सब्जी
ट से गुजर रही थी। इस मार्केट के
भाग में मांस-मच्छी वगैरा विकती हैं।
सांस लेते उसे उबकाई आने लगती
जिस दुर्गंध को सांसों में सहना भी
न है उसे मनुष्य कितने स्वाद से
है? इस स्थल पर वह दुराग्रह की
तक दृढ़धर्मी है, कई बार उसने इस
पर के औचित्य पर सहज दृष्टि अपनाते
प्रयत्न किया, किंतु सफल न हो सकी।
बुजी मार्केट से होकर बस जिस सड़क
जारी वहां कुछ संपन्न बोहरा परिवारों
ऊंची-ऊंची हवेलियां थीं। ये बोहरा
भाषा और विचारों में अपने धर्मा-
वियों से कुछ अलग होते हैं। इनका
थे। रंग भी अलग ही इनकी पहचान
विष देता है।
ठी। कुछ-कुछ ऊंची नाक और माथा,
गता है पीलापन लिये इनके अचंचल
सूत्र, बुरका पहने किंतु उछाड़े बस टेंपो
पर देखाती-जाती इनकी स्त्रियां और

सलवार-कमीज पहने इनकी लड़कियां।
बोलने पर तोतलेपन का आभास होता है।
इतमें कट्टरपन कम होता है। ये लोग
व्यवहार कुशल दिमाग के व्यापारी होते
हैं। परिवार की लड़कियों को समान
स्तर वाले घरों में ही व्याहते हैं, इसलिए
लड़कियों की उमर बढ़ जाती है और
कभी-कभी कई अनध्याही रह जाती हैं।
यह सब सूचना उसकी एक मित्र न, जो
इनके घरू जीवन का सर्वे कर रही थी, उसे
दी थी।

उसने उन बंद खिड़कियों वाली हवे-
लियों को देखा... इनमें कितने एकाकी
जीवन निरुद्देश्य भाव से रहकर रीत
गये होंगे! इनकी भी अपनी कथाएं-
व्यथाएं होंगी, पर इज्जत के परदे में कैद
हृदय उन्हें प्रकट करने का साहस नहीं कर
पाते होंगे।

शहर आ गया था। सब ओर रोशनी
थी, चकाचौंध थी। हर तरह का व्यक्ति,
हर चीज का व्यापारी वहां मौजूद था,
हर तरह का खरीदार वहां दौड़-भाग कर
रहा था... उसे तो कुछ खरीदना नहीं
था... वह तो फिर एक सफर पर निकली
थी... ऐसे कितने सफर उसने कितनी
बार किये हैं... किसकी खोज के लिए?
वह दुर्लभ कौन है....? खुजितेछि!
कोथा तुमि, कोथा तुमि? खोज रही हैं
कौन हो तुम, कौन हो तुम?

—८४, मोतीलाल नेहरू नगर,
उज्जैन (म. प्र.)



फकीर मोहन सेनापति के उड़िया उपन्यास का सार-संक्षेप

छह बीघे जमीन

गोविंदपुर । यह गांव इतना प्रसिद्ध है कि किसी को इसका परिचय देना जरूरी नहीं होता । दुर्गम देहाती क्षेत्र के एक गांव के जनमानस में इतनी तरावट ताजगी बनी रहने का श्रेय गांव के जमींदार रामचंद्र मंगराजजी को ही दिया जा सकता है ।

श्रीमान मंगराजजी अतुलित भू-संपदा के स्वामी थे । असीम संपदा, अनेकों सेवक, सैकड़ों कर्मचारी और उनकी प्रिय प्रजा उन्हें देवता के समान मानती थी और पूजती थी । सौभाग्य से उनकी धर्मपत्नी भी बड़ी विदुषी थीं और उन्हें धर्मात्मा के रूप में ख्याति मिली थी । उनसे किसी का दुःख नहीं देखा जाता था । कितने ही अनाथों को आश्रय दिया था । अपंग-अपाहिजों की सेवा की थी । दीन-दरिद्रों की सहायता की थी और भूखों के मुंह में अन्न दिया था । नित्य प्रति उनका मन सेवा-कार्य में ही तत्पर रहता था । इसके अलावा गृहस्थ-धर्म का भी वे पालन करती थीं एवं निष्ठापूर्वक पतिदेव की सेवा । भारतीय संस्कृति के अनुकूल नारी के सभी गुण उनमें विद्यमान थे ।

नवनीत

श्रीमान मंगराजजी को एकाएक आसानी से संपदा और अधिकार के ने घेर लिया । धन के नशे ने उन्हें बना दिया । भोग की वासना ने जकड़ लिया । धन और प्रभुता के यौवन का समन्वय सब कुछ बदल है । जमींदार मंगराज के मन में वैभव-भोग की लिप्सा लहराने लगी ।

उनके यहां चम्पा नाम की एक रानी थी । संभवतः मंगराजजी को फं के लोभ और भोग की प्रेरणा भी उक मिली थी । वह उनकी प्रेरणा जो त्रों जमींदारी के प्रशासन के मामले में, सलाह ली जाती थी । जमींदार हां त सिवा और किसी की नहीं सुनते प चम्पा की सलाह से जमींदार ने ऐसा रती चलाया कि प्रजा में त्राहि-त्राहि ए गयी ।

प्रजा पर जुल्म, कड़ी हुकूमती जमींदारनी अत्यंत दुखी हुई । वे उन्होंने अत्याचार को रोकने, जमींदार को ना-रास्ते पर लाने के उन्होंने प्रयत्न भी मंगराजजी को उचित और अनुचित ध्यान भी दिलाया । चम्पा के मागई अ

संक्षेप

का एक
कार के
ने उन्हें
ना ने
ता के
बदल
न में
ने लगी
एक

मी को संस्कार जो स्वाभिमान की मर्यादा
भी एक खो चुका था, धन के घमंड से जो
ता जो पत्नी को कीड़े-मकोड़े की तरह समझता
ले में, उसे सुधारने में पत्नी के परामर्श
नेदार हां तक कामयाब हो सकते थे ? अपने
सुतों और पतिदेव के पाप का प्रायश्चित्त करना
ऐसा भारतीय नारी का गौरव है। प्रायश्चित्त के
ब्रह्मण्य अपने को न्योछावर करने में वह सदा
रहे रहती है। जब पत्नी के परामर्श का
हुकूमतमीदार पर कोई असर नहीं पड़ा, तब
। वेवहोंने प्रायश्चित्त का मार्ग चुन लिया ।
पर कोना-पीना छोड़ दिया और अंत में प्राण
न भी गि दिये ।

अनुचित पत्नी की मृत्यु का भी मंगराजजी पर
के माई असर नहीं पड़ा । धर्मपत्नी तीन पुत्र

१९८३

१०५

हिंदी डाइजेस्ट

उन्होंने फतेहपुर सरसंड की ज़मींदारी को हथियाया था। उसकी लंबी कहानी है।

किसी दिन मंगराजजी मेदिनीपुर पधारे थे। उन दिनों उड़ीसा के फतेहपुर सरसंड ज़मींदारी के मालिक शेख दिलदार मियांजी मेदिनीपुर में ही रहा करते थे, जो मियांजी की पुश्तैनी जागीर थी। बंगाल के मुस्लिम नवाब अलीवर्दी खां के ज़माने में मियांजी के दादा जान को कई एक इलाकों की ज़मींदारी इनाम में मिली थी। उसे उनके बेटे-पोते, परपोते आपस में बांटकर भोग-दखल करते थे। शेख दिलदार मियां वाकई दिलदार आदमी थे। नवाबी शान-शौकत, ऐश-आराम के कायल थे। वे ज़िंदगी को मंज़िल-ए-शौक की नज़र से देखने वाले पैगंबर थे। उनका ज़्यादा समय नाच-गाने और खाने-पीने में बीतता था। ज़मींदारी की तरफ उनका खयाल ही नहीं रहता था। नतीजा यह हुआ कि ज़मींदारी की आय घटने लगी। पर महफिल के कपटी, स्वार्थी, शराबी दोस्तों की फरमाइशें बढ़ने लगीं। जागीर दिन-ब-दिन बढ़ी के चांद के समान घटने लगी। आखिर अपनी आदतों और महफिल की फरमाइशों की पूर्ति के लिए उन्हें भारी रकम कर्ज भी लेनी पड़ी थी। मंगराज ने मेदिनीपुर के मियांजी की नवाबी का हाल कुछ-कुछ सुना और शेष खुद समझ गये। उनके जैसे समझदार को इशारा ही काफी था। औरों की लाचारी से फायदा उठाने में वे कभी पीछे रहने

नवनीत

वाले नहीं थे। मौका हाथ लगा फिर ब
विछा दिया। चिड़िया बिना फंसे
भी कहाँ ?

मंगराज ने नवाब दिलदार नि
दोस्ती की और कुछ मांस-मदिरा
पिलाकर अच्छे ढंग से दोस्ती नि
कुछ ही दिनों में दोस्ती मज़बूत
गयी। मियां साहब ने, जो अपनी
तुरंत पूरी हो जाते देख मंगराज
एहसान मानते रहते थे, एक दिन
मूंदकर हिब्बानामे पर अपने
कर दिये और इतनी बड़ी जा
हाथ धो बैठे थे, यह बात खुद
को भी पता नहीं थी। पर मंग
बखूबी जानते थे कि उनकी कुशा
के सामने एक क्या सैकड़ों मियांजी
से झुक जायेंगे।

दूसरों की जायदाद हड़पने
राजजी सिद्धहस्त थे। सरसंडा डरे
की तरह अनेक जायदादें हड़पकर
वैभवशाली बने थे। जनता उनकी
समझती थी। इसलिए उनके प्रति
सम्मान औपचारिक ही था। लोग
उनसे सावधान रहते थे परंतु पति
और गरीबी से विवश हो उनके शि
होते थे।

बाहरी रंग-ढंग से मंगराज
धर्मात्मा का चोला पहन रखा था।
और परोपकारी की सूची में उन
पहले रहता था। लोग जानते थे
था एक वगुलाभगत जिसके मुंह

लगा बिगल में छुरी थी। पर वे कानूनी
ना फंसे जमी थे। झगड़े-झंझट से दूर रहते थे।
भी काम करते, पूरे कानूनी तौर पर।
दार निन की ओट में बड़े-से-बड़े गैर-कानूनी
मदिरा में निकाल लेना उनके बायें हाथ का
ती निरु था।

जबूत ०००
अपनी गोविंदपुर से तीन-चार मील की दूरी
मंगराज एक पुराना गांव था जिसमें प्रायः
क दिन हर किसान लोग ही रहते थे। नाम
मपने करतनपुर। उस गांव का एक प्रतिष्ठित
नी जाकेत बाघसिंह मंगराज की असलियत
खुद जानता था। मौके-बेमौके प्रसंग आया
र मंग कि वह मंगराज की पोल खोल दिया
कुशाता था। जमींदार के भेदियों का जाल
यांजीशों ओर फैला था। बाघसिंह के रंग-
से अवहित होना दो मिनट की बात
इपने में। जमींदार बाघसिंह के खूंखारपन
रसंडा डरे नहीं, अकल से काम लिया, तीर
इपकरा। बाघसिंह के परिवार में चम्पा
उनकी नौकरों के जरिये फूट डाल दी।
प्रतिषी झगड़े-झंझट का तांता शुरू हो
लोग। मंगराजजी चतुर निशानेबाज थे,
तु पति लगाये बैठे थे। ऐसी चाल चली कि
के शिबसिंह का घर-बार नष्ट-भ्रष्ट हो गया।

अपनी कुशाग्र बुद्धि के पराक्रम से
राज मंगराजजी ने कितने परिवारों की तबाही
था। थी, उसका ठिकाना नहीं। गोविंदपुर
में उनका एक संपन्न जुलाहे का परिवार रहता
ते थे। जुलाहे का नाम था 'भग्गू' और उसकी
मूंह की का नाम था 'सारो'। एक आदर्श

जोड़ी-बाल-बच्चे नहीं थे। पति-पत्नी
की गृहस्थी का संबल छह बीघे जमीन
था। भग्गू खेत में मेहनत करता और
सारो उसकी मदद करती। पत्नी के
रुआसे चेहरे को देख भग्गू उसके मन को
थाह लेता। कहता —

‘अरी, तू इतनी उदास क्यों है? क्या
दुनिया में सबके बाल-बच्चे हैं? ईश्वर
निर्दय नहीं होते। समय आने वाला है,
तेरी गोद अवश्य भरेगी। अभी तू इतना
सरसती है, पर तेरे आगे-पीछे इतनी
चिल्ल-पों मचेगी कि तू ऊब जायेगी।’

सारो ठहरी देहाती अनपढ़ औरत।
ऐसी औरत को समझाना मुश्किल होता
है। भग्गू की बात से उसे भरोसा तो नहीं
होता लेकिन भला दूसरा उपाय ही क्या
था? चुप रह जाती। भग्गू ने अच्छी नस्ल
की एक बड़ी गाय मोल ली। उसे आंगन
में बांध दिया। सारो के अकेलेपन को
मानों एक सहेली मिल गयी। वह बड़े
प्यार से उसे 'नेती' के नाम से पुकारती,
पुचकारती, सहलाती और अकेले में उसके
पास बैठकर दुनिया भर की बातें करती।

सारो ने ज्योतिषी से सलाह लेकर
गऊमाता की सेवा के साथ-साथ मंगला
माई की पूजा करना भी प्रारंभ कर दिया।
वह रोज धुले-उजले कपड़े पहनकर मंदिर
में जाती और संतति की कामना करते
हुए शुद्ध मन से फूल और बेल की पत्तियां
चढ़ाती थी। सारो की भक्ति-भावना देख
अन्य लोग भी बिना याचना के उसकी

कल्याण-कामना करते ।

श्रम और सद्भावना भग्नू के जीवन के दो मूल मंत्र थे । अपनी छह बीघे जमीन के कण-कण से उसको जितना मोह और प्रेम था, उतने ही प्यार से स्नेह-मयी माता की तरह वह जमीन उसे प्रचुर अन्न भी देती थी । भग्नू खेत से लौटकर घर में हरिभजन करता, चौपाल में दूसरों के संग बैठता और हंसी-मजाक में साझेदार बनता । भाई-बंधु से मिलता । ईमान और न्याय की बातें करता । भग्नू के संत-स्वभाव से गांववाले काफी प्रभावित थे । लोग खुले दिल से उसकी सराहना करते । इसलिए उसे गांववालों ने गांव का परमानिक ('प्रामाणिक') बनाया ।

भग्नू परमानिक के पारिवारिक जीवन के अपार सुख, सामाजिक प्रतिष्ठा, जमीन की आमदनी आदि की बातें मंगराजजी के दिल में ऐसे खटकने लगीं मानो किसी ने उनकी छाती में कील ठोक दी हो । भग्नू की छह बीघे उपजाऊ जमीन पर उनकी ललक भरी दृष्टि बहुत पहले से पड़ी थी । वह मिट्टी मिट्टी न थी, सोना थी । ऐसी सोने-सी मिट्टी मंगराज जैसे यशस्वी और बुद्धिमान आदमी के रहते एक मामूली जुलाहे के पास कैसे रहे ? ऐसी भू-संपदा का मालिक भग्नू बना रहे, मंगराजजी इसे कैसे सहन कर सकते थे ? यह धारणा तब तीव्र हो गयी, जब उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा भी बढ़ी ।

सारो रोज मंगला माई के दर्शन के नवनीत

लिए मंदिर में जाती थी । उसकी भक्ति भावना से भी फायदा उठाया सकता है । मंगराज ने अपना कुचलाया ।

सना राणा मंगला माई के मंदिर पुजारी था । एक दिन उसने सारो से कहा कि उसकी मनोकामना कुछ ही दिनों में पूरी होने वाली है । देवी ने उसे स्पष्ट आदेश किया है । सारो की सेवा से देवी प्रसन्न है । वह चाहे तो स्वयं से बात कर सकती है । उस दिन भक्ति-भावना से गद्गद् होकर सारो लौटी थी और भग्नू को सारो इत्मीनान से सुनायी थी ।

दूसरे दिन नहा-धोकर उजले-पहने मंदिर के पूजक राणा के साथ पत्नी मंगला माई के मंदिर में फूल-अक्षत, अगरबत्ती-दीप आदि चढ़ाकर उपरांत राणा ने सारो के लिए वरदायाचना की । पति-पत्नी याचक की हाथ जोड़े देवी के सामने दंडाधर थे । एक गंभीर निर्घोष के साथ देवी मूर्ति के पीछे से आकाशवाणी गूंज उठी । 'मैं सारो की भक्तिपूर्ण पूजा से प्रसन्न हूं । उसे पुत्र-संतान की प्राप्ति होगी । परंतु जब तक मेरे लिए एक मंदिर का निर्माण न हो जाय, उसकी कसौटी अधूरी ही रहेगी ।'

देवी मूर्ति के डोलने का और मध्य से देववाणी अनुगुंजित होने का अद्भुत दृश्य पति-पत्नी तन्मय होकर

रहे थे । स्वर पुनः गुंजित हुआ—

‘केवल पुत्र संतान ही नहीं, मंदिर का निर्माण करवाओ, पर्याप्त धनराशि की भी प्राप्ति होगी । वहीं मंदिर का निर्माण हो, जहां एक पुष्प पात्र हो और जहां की धरती खोदने पर स्वर्ण-मुद्रा प्राप्त हो । यदि स्वर्ण-मुद्रा की प्राप्ति के बाद भी मंदिर का निर्माण नहीं हुआ, तो भग्नू का सर्वनाश अवश्यंभावी है ।’

देववाणी मौन हुई । पति-पत्नी ने देवी के साक्षात् दर्शन किये, उनमें किंचित् संदेह का अवकाश न था । भावी संतान-सुख की कल्पना से दोनों के चेहरे खिल उठे ।

दूसरे दिन प्रातःकाल मंदिर की ओर आते-आते मंदिर के करीब एक ताजा फूल पड़ा मिला । देवी की आज्ञा के अनुसार वहां की मिट्टी खोदी गयी । तो सच-मुच शुद्ध सुवर्ण की एक मुद्रा मिली । देवी के कथन पर दोनों का विश्वास दृढ़ हो गया । अब दोनों सदैव चिंतित रहने लगे । दोनों के सामने विशाल पहाड़ के समान एक ही प्रश्न खड़ा था—मंदिर कैसे बनेगा ?

यह बताने की यहां कोई जरूरत नहीं कि यह सब मंगराज की चाल थी । चम्पा के जरिये पूजक सना राणा को कुछ प्रलोभन दिये गये थे । राणा ने देवी मूर्ति के पीछे गड्ढा खोदवाया । गांव के जगा नाई को पहले से गड्ढे में छुपा रखा था । देववाणी उसी ने की थी ।

उड़िया उपन्यासकार

फकीर मोहन सेनापति

(जन्म १८४३-मृत्यु १९१८)

उड़िया के, प्रेमचन्द की तरह, उपन्यास-सम्राट । ‘छ माण आठ गुंठ’ (छह बीघा जमीन) उनकी अमर उपन्यास कृति है । उन्होंने केवल प्रायमरी तक शिक्षा पायी । परंतु संस्कृत, अंग्रेजी, बांगला आदि पांच भाषाएं जानते थे । वे कवि, निबंधकार, कहानी लेखक, इतिहासकार और अनुवादक के नाते विख्यात । इनके अन्य उपन्यास हैं—‘लछमा’, ‘मामुं’, और ‘प्रायश्चित्त’ । ‘छ माण आठ गुंठ’ साहित्य अकादमी द्वारा हिन्दी अनुवाद प्रकाशित । अंग्रेजी अनुवाद ‘सिक्स एक्स आफ लैंड’ भारत सरकार के प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित ।

मंगराजजी अपने कुचक्र में सफल हुए । चम्पा के परामर्श से भग्नू ने अपनी छह बीघे जमीन यानी अपनी समूची भू-संपदा को मंगराज के पास बंधक रख दिया और मंदिर-निर्माण के लिए कुछ रुपये तथा कुछ बेकार के सामान ले आया । जमींदार इतना कमीना था कि जमीन का उचित दाम भी नहीं दिया । नियत अवधि में भग्नू न रुपया चुका सका और न गिरवी में पड़ी अपनी जमीन ही वापस ले सका । पैसे के लिए बार-बार मंगराज का तकाजा आता था जिसका भग्नू के पास कोई जवाब नहीं था ।

ऐसा अवसर भला कौन अपने हाथ से जाने देता है ? मंगराज ने इसी बीच अदालत से ज़मीन की डिगरी भी ले ली। ऊपर से ब्याज की रकम के बदले गृहस्थी के सामान और 'नेती' गाय को भी ले लिया। तिस पर भी मंगराजजी खुश न थे, इसलिए कि भग्गू के फटे हाल को देख उनको दया आयी और कुछ रकम छूट देने को वे विवश थे।

इस तरह भग्गू और सारो का सोने का दरवाजा चूर-चूर हो गया।

दरवाजा से दोनों को गहरी चोट लगने लगे। सारो मंगराज के द्वार पर भूखी बैठकर बड़बड़ाती रहती, गाय मांगती, बर्तन मांगती, कपड़ा मांगती, अनाप-शनाप बकती भी रहती। मंगराज को शाप देती। अन्न-जल के बिना कितने दिन उसका शरीर टिकता। अंत में एक दिन मंगराज के द्वार पर ही उसने अपना अंत कर लिया। लोग कहते हैं—'मरते समय सारो की सांस आग से भी ज्यादा गरम थी। उसकी आत्मा की आह से मंगराज की कई पीढ़ियां जलकर भस्म हो जायेंगी।'।

भग्गू पागल हो गया और भटकने लगा। कभी-कभी आता और ज़मीन की मेड़ पर बैठकर घंटों उसे निहारता रहता। फिर गायब हो जाता।

सारो की मृत्यु की घटना से गांव में तथा गोविंदपुर के इलाके में खलबली मच गयी। गांव के चौकीदार गोबर जेता

नवनीत

ने थाने में रपट लिखवा दी—मंगराज के नाम। दारोगाजी तुरंत अपने सिपाहियों को साथ लिये आये। खूब पूछ-ताछ और तहकीकात हुई। दारोगाजी से मंगराजजी का पहले से वैमनस्य था। इसलिए सारे प्रमाण बड़ी सतर्कता से लिये जा रहे थे। बत्तीस गवाहों के बयान लिखे गये। केवल चार गवाहों ने मंगराजजी के पक्ष में बयान दिया। पुलिस के मुखबिरों की भी तालिका तैयार हुई। अंततोगत्वा मंगराज के नाम एक लंबा-चौड़ा अभियोग का ब्यौरा बनाकर अदालत में पेश किया गया जिसमें आद्योपांत समूची घटना का जिक्र और हत्या के मामले के समस्त प्रमाणों का जिस निष्ठा से काम लिया, अपने जीवन में शायद ही और किसी मामले में ऐसी लगन दिखायी हो। जहां हत्या के ऐसे-ऐसे ठोस प्रमाण हों—दारोगाजी अपने अनुभव लोगों को सुनाते हुए कहते थे—वहां इसके लिए फांसी के सिवा दूसरी सज़ा होती ही नहीं।

जज की अदालत में सुनवाई शुरू हुई। गवाहों की जिरह, वकीलों की बहस काफ़ी दिनों तक चली। बड़े से बड़े नामी वकीलों ने मंगराज की तरफ से पैरवी की। वकील रामलालजी की बुद्धि और कानूनी बहस देख लोग धन्य-धन्य करते थे। वकील साहब के अथक प्रयत्न और बुद्धिमत्ता के फलस्वरूप फांसी का दंड टल गया। न्यायमूर्ति ने सारो की मृत्यु के लिए मंगराज को निर्दोष ठहराया। वह तो जान

बूझकर उनके आंगन में मरी थी। दूसरा मामला था—भगू की जमीन-जायदाद से संबंधित। मंगराजजी उससे भी बरी हो गये। आखिरी मामला था—‘नेती’ गाय को जबरदस्ती उड़ा ले आने वाला, जिससे उन्हें रिहाई नहीं मिल सकी। अदालत ने छह महीने जेल की सजा और पांच सौ रुपये जुर्माना घोषित किया। मंगराज जेल गये। जान बची लाखों पाये !

०००

मंगराज के जेल जाते समय चम्पा खूब रोयी-धोयी थी, घर का उत्तरदायित्व उसी को संभालना था इसी वजहाने वह चाभी का गुच्छा भी ले आयी थी। गोविंदा नौकर से सांठ-गांठ हुई। एक दिन तिजोरी खोलकर सारा सोना-चांदी, जवाहरात निकालकर दोनों भाग निकले। शाम होते-होते वे गोपालपुर के समीप विरूपा नदी के किनारे पहुंचे। उसके किनारे पर एक झोपड़ा खड़ा था जिसमें गोपालपुर के गोपी हलवाई की दूकान चलती थी। वहीं रात काटने का निश्चय कर गोपी को गांव से उनके लिए खाना लाने के लिए भेज दिया गया। इतने में मामूली बात-चीत के दौरान असली सवाल सामने उभर आया। चम्पा चोरी के माल के बड़े हिस्सा का दावा करती थी, इसलिए कि धन उसी को वजह से मिला था। गोविंदा स्वभाव का टेढ़ा आदमी था। वह भला कैसे पीछे हटता ? उसकी मदद लिये बिना चम्पा अकेली यह माल ला नहीं

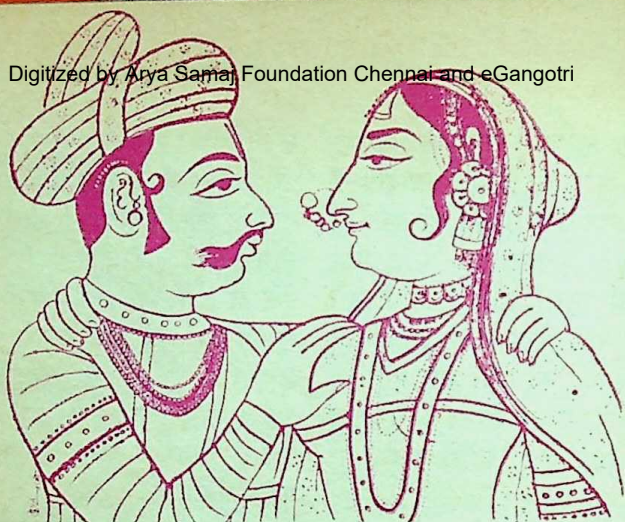
सकती थी। दोनों अपने-अपने हक और दावे पर अडिग थे। रात का समय, निर्जन नदी के किनारे एक मर्द और एक औरत, सामने सोने-चांदी-हीरे-मोती की गठरी, ऐसे क्षण में क्या एक अकेली अवला के सामने एक मर्द झुक सकता था ? कैसे झुकता ? गोविंदा के अंदर सोया हुआ पशुत्व जाग उठा। उसने तेज हथियार के एक ही प्रहार से चम्पा को दूसरे लोक में पहुंचा दिया।

किसी भी हत्यारे के लिए हत्या का स्थान छोड़ देना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य हो जाता है। पर जाता कैसे ? सामने विरूपा रास्ता रोक रही थी। वह भीषण फुफकार के साथ क्षण-प्रतिक्षण फैल रही थी। पीछे से गोविंदपुर के मंगराज की अदृश्य छाया पीछा कर रही थी। आसमान में घने काले बरसाती बादल उमड़-धुमड़ कर कड़क रहे थे। करीब अर्द्ध रात्रि का समय था। घाट का मांझी ही एक मात्र सहायक था जो नदी के उस पार पहुंचाकर उसे बचा सकता था।

उसे बुलाया और मुंहमांगा दाम देने का प्रलोभन भी दिया। मांझी ने नाव खोल दी। लेकिन मंझधार में ही उसकी हिम्मत जाती रही।

बरसाती नदी उन्मत्त होकर नाच रही थी। तेज धारा और भीषण हुंकार से वह कांपने लगा। वह आगे नहीं बढ़ सका। विरूपा की विकराल धारा से मांझी खूब (शेषांश पृष्ठ ११८ पर)

हिंदी डाइजैस्ट



डा. दुर्गा शर्मा का एक खोजपूर्ण लेख



दशपुर का अछूता कला-संसार

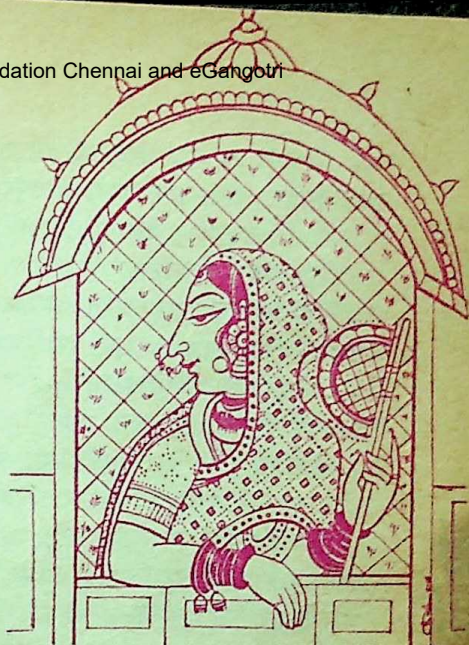
विद्वानों के निरंतर अथक प्रयासों के कारण भारत की प्राचीन चित्रकला के कई तिमिराच्छन्न स्थल प्रकाश में आये हैं। किन्तु अभी भी ऐसे अनेक स्थल हैं, जिनकी ओर ध्यान देना शेष है। उनमें ऐसे कलातीर्थ भी हैं, जिनकी उपलब्धियां प्रकाश में आने पर हमारी परंपरागत

चित्रकला के अध्याय में कुछ सुनहरे और जुड़ जायेंगे।

मन्दसौर मालवा का अभिन्न अंग और मालवा चित्रकला शैली देश प्राचीन विभिन्न कलाशैलियों में एक पहचान रखती है। इस आधार यह निश्चित रूप से कहा जा सकता कि मन्दसौर शैली भी मालवा की चित्रकला परम्परा से प्रभावित रही है उसने भारत की अन्य प्रचलित को अधिकारपूर्वक आत्मसात् किया।

दशपुर प्राचीनकाल में एक समृद्ध नगर रहा है। ऐसी स्थिति कला ने भी अपना गौरवमय इतिहास





स्थापित किया होगा। जब किसी क्षेत्र की कलात्मक वृत्तियां उभरती हैं, तो वह उस पूरे जनपद के सांस्कृतिक व्यक्तित्व का निर्माण करती है। नगर की बसाहट शिवना नदी के किनारे होने के कारण दशपुर जलप्लावन के कई प्रलयकारी आघात अपने सीने पर झेल चुका है। चित्रकला की प्राचीन धरोहर भी नदी की बाढ़ में कई बार नष्ट हुई है। जिस नगर का महान सम्राटों, महाकवियों से रागात्मक सम्बन्ध रहा हो; बौद्ध, जैन, पुराण, महाभारत, बृहत्संहिता, मेघदूतम्, कादम्बरी और राजतरंगिणी जैसे प्राचीन ग्रंथ जिसकी प्रशस्ति के गान गाते रहे हों, वह नगर निश्चित ही कला और संस्कृति की उत्थानस्थली रहा होगा।

मन्दसौर में हुए उत्खनन से प्राप्त कलात्मक सामग्री भव्य प्रतिमाएं, संवत् १८६५ में रचित सचित्रण कल्पसूत्र तथा १९ वीं सदी एवं इसके पश्चात् भित्ति, कागज, कांच एवं लकड़ी की पट्टियों पर बने चित्र, मन्दसौर के कला विकास के क्रम को दिशा प्रदान करने में सहायक हैं। कला की इस अपार सम्पदा में भित्ति चित्रकला की बहुलता है। ये चित्र किला रोड, जनकपुरा तथा उसके आसपास स्थित मन्दिर और भवनों में सुरक्षित हैं। विषय विभाजन की दृष्टि से यहां के चित्र धार्मिक, सामंती और सामाजिक विषयों पर आधारित हैं। समाज के आम जीवन जीनेवाले जन जीवन के चित्रों में

अनाज खरीदना, बीनना, जांत में पीसना, भोजन बनाना, परोसना, पनघट से पानी लाना, स्नान करना, कपड़े धोना, चोटी गुंथना-गुंथाना, दर्पण में निहारना, धोबी, ढोली, नाई, नाइन, मुण्डन संस्कार, वार-त्यौहार, झूला झूलना, विभिन्न खेल, भांग घोटना, छानना, पीना और पिलाना, सेवक-सेविकाएं, प्रेम प्रसंगों तथा सहवास जैसे विषयों की संरचना के साथ ही कृष्ण की विभिन्न लीलाएं, शिवना नदी के किनारे पशुपतिनाथ (शिव) का विशाल मंदिर एवं घाट दृश्य आदि धार्मिक चित्र



तथा रतलाम, जावरा, प्रतापगढ़, सीता-मऊ, रामपुरा, इन्दौर, उदयपुर, जोधपुर, भरतपुर और तबुरशाह जैसे राजा-नवाबों के व्यक्ति चित्र, राजदरवार, नृत्य-समारोह, विशाल चल समारोह, आखेट, भ्रमण, मंत्रणा, भारतीय एवं यूरोपियन सैनिक, युद्ध दृश्य, आमोद-प्रमोद, शुक्र-क्रीड़ा जैसे विषयों पर यहां रचना हुई है। इतना ही नहीं, यहां हनुमंत मत के आधार पर संगीत की ३६ राग-रागिनियों की रचना तथा विचित्र चित्र रचना, पशु-पक्षियों, प्राकृतिक, भवन चित्रों, ज्यामिती, अलंकारी आलेखनों आदि के सहयोग से बहुत ही सरस एवं कलात्मक चित्रण कक्षों के प्रकोष्ठों एवं छतों पर भी हुआ है।

कम से कम स्थानों पर अधिक से अधिक चित्र रचना अथवा आलेखन सज्जा यहां की विशेषता है। उदाहरण के लिए विशाल चल समारोह जैसे चित्र को देखा जा सकता है, जिसमें ४१७ आकृतियां समाविष्ट हैं। चित्र रचना में चेहरे एक चश्म और धड़ डेढ़ चश्म है। अपवाद स्वरूप डेढ़ एवं दो चश्म चेहरे भी दिखाई देते हैं। मानव एवं पशु-पक्षियों के अधिकतर आकारों में समानता दिखाई देती है, इससे ऐसा भ्रम होता है कि चित्र-रचना करते समय चित्रकार ने सांचे का उपयोग किया है। किन्तु ऐसा नहीं है, अपितु यह जन-कलाकारों की कुशलता एवं सधे हुए हाथों का प्रमाण है।

चित्र में पुरुष पगड़ी, अंगरखा, धोती,

नवनीत

चूड़ीदार पायजामा, कछना, पटका, ढाटा और अंगोछा तथा कहीं कुर्ती और चूड़ीदार पायजामे वस्त्रों में सज्जित हैं। पुरुष की नारी वस्त्र गोटा किनारी, चुन्दड़ी, रियां, पट्टे, कंगूरे, शकरपारे तथा पत्तियां एवं रंगों से सज्जित हैं। सिर से पीठ की ओर झूलती हुई पहने चित्रित हुई हैं, किन्तु कुछ में ओढ़नी वक्ष को ढंके हुए भी देती है। अधिकतर वक्ष पर बनी वक्ष का निचला भाग झांकता चित्रित हुआ है। वस्त्रों के अलावा लाएं झेला, झूमर, कर्णफूल, नथ, कंठहार, छल्ला, बंगड़ियां, चूड़ियां, मालाएं आदि आभूषणों से सज्जित पुरुष भी कंठहार, मोतीमालाएं, नियां, मूरकियां तथा कहीं-कहीं धारण किये हुए हैं। किन्तु उक्त सभी चित्रों में सुलभ नहीं है।

स्त्री एवं पुरुष दोनों के केश सज्जित हैं। महिलाएं जूड़ा बांधे हुए और कहीं खुले बालों में भी चित्रित उनके कान के पास बल खाती लट हर चित्र में दिखाई देती है। विभिन्न प्रकार की मूंछें, कलमें, कहीं-कहीं खुले बालों में है।

चित्र-सज्जा करते समय चित्र बड़ी कुशलता से वर्ग विभाजन उसने अभिजात्य, मध्यम और जीवन जीने वाले स्त्री-पुरुष के वस्त्रा

ना, सज्जा इस प्रकार से की है, जिससे
तथा मानी से तात्कालिक सामाजिक परि-
यामे तियां आंकी जा सकें। जिस ढंग से
की तु दसौर के चित्रकार ने आम जीवन की
चन्द्रो, द्वांकी प्रस्तुत की है, उससे निश्चित
रे तथा से कहा जा सकता है कि वह उस वर्ग
हैं। प्रतिनिधित्व करनेवाला लोक कला-
ने हुई र था।

कुछ रंग-संयोजन की दृष्टि से आकृति में
ए भी ण, मुख्य एवं मिश्रित रंगों का प्रभाव
वनी को र्वाई देता है। फलस्वरूप रचना में
सांकेतिक अधिक उभार आ गया है। चित्रों के पृष्ठ
अलावा णों पर अधिकतर लाल और नीले रंग
नय, र्वाई देते हैं, किन्तु अन्य रंगों के साथ-
वूडियां थ वड़ी कुशलता से सुनहरे रंग का
सज्जा ण हुआ है। यह रंग-संयोजन मालवा
लाएं, रंग-संयोजना से प्रभावित है। इन रंगों
ही पुण सबसे अधिक लाल और इसके पश्चात्
उक्त मरज रंग प्रधानता लिये हुए हैं। रंगों
। भरण सपाट पद्धति से किया है। इस
केश रण चित्र छाया रहित, किन्तु रेखा
ए और ण है। काले रंग की रेखाएं लय, ताल
त्रत हुई र प्रवाह में अपनी गोलाई-मोटाई तथा
ती बान लिये थिरकती और मचलती हुई
ने हैं। तुत हुई हैं। रेखाएं मंदसौर की चित्र-
में, दांश की जीवंत कहानी है।

। आकृति को उभारने के लिए अधिक
चित्रक और रेखाओं पारदर्शित वस्त्रों तथा
न कि-भंग विन्यास जैसी जटिल रचना में न
और तसते हुए बहुत ही सादगी से कला के
वस्त्रात्मक एवं कलात्मक पक्ष प्रस्तुत

है। विषयात्मक दृष्टि से चित्र के पृष्ठ
भागों पर भवन, वृक्ष, पौधे, पक्षी, आकाश
एवं बादलों की रचना की गयी है।

चित्रों में खड़िया जलरंग प्रयुक्त हुए
हैं। इन रंगों को गोंद के पानी में अधिक
घुटाई कर तैयार किया गया है। प्रयोग में
लाते समय रंगों को पतला बना लिया जाता
था, जिसके कारण रंगों में भारीपन नहीं
दिखाई देता है। प्रारंभ में पृष्ठ भाग को
एक रंग से पोतकर तूलिका की सहायता से
गेरू अथवा अनुकूल किसी भी रंग की
रेखाओं से चित्र का खाका बनाकर उसमें
वांछित रंगों को भरा गया है। इनमें
प्रयुक्त रंगों की यह विशेषता है कि इन्हें
पानी से भी नहीं मिटाया जा सका। जल
रंगों में स्थायित्व और ताजगी के जो गुण
विद्यमान हैं उसकी विशेषता के प्रमुख
कारण इस प्रकार हैं—

१—चित्रों में रंग और रेखाओं का
जितना महीन कार्य हुआ है, वह जल-रंगों
से संभव है, तेल-रंगों से नहीं। जल-रंगों
से चित्र बन जाने के पश्चात् उसे सूखने के
लिए छोड़ दिया जाता था।

२—पूरी तरह से रंग सूख जाने के
पश्चात् उस सम्पूर्ण दीवार पर पके हुए
चन्द्रस के लेप को पोत दिया जाता था।

३—चन्द्रस अपने स्वभाव के अनुसार
देर तक नहीं सूखता है। इसलिए उसे
सुखाने के लिए पूर्ण जले हुए कोयले को
सिगड़ी में भरकर कमरे में रख दिया जाता
था। ऐसा बार-बार करने से उसके ताप

से चन्द्रस का लेप सूख जाता और रंगों में स्थायित्व आ जाता था। चन्द्रस का लेप और कोयले की गर्मी का प्रभाव प्रयुक्त रंगों पर दिखाई देता है। फलस्वरूप रंग अपने मूल प्रभाव में न दिखकर, कुछ परिवर्तन लिये हुए दिखाई देते हैं।

मन्दसौर में प्रयुक्त रंग विधान पद्धति पर टिप्पणी करते हुए कुछ विद्वान इस जयपुर और उदयपुर के महलों की भीतों के समान आरास-पद्धति की कला मानते हैं। किन्तु यह मात्र भ्रम है। जयपुर के प्रसिद्ध कला विद्वान कुं. संग्राम सिंह मन्दसौर की कला को परम्परागत कला शैली मानते हैं, उस पर आरास-पद्धति का तनिक प्रभाव भी है, यह वे नहीं स्वीकारते।

रंगों में स्थैर्य का एक और प्रमुख कारण भित्ति-आलेप विधान है। यह उड़द, मेथीदाना, सण, गुड़ एवं चूने के मिश्रित घोल से तैयार किया जाता था। यह घोल जमीन में गड्ढा खोदकर उसमें घोला जाता था। घोल के जम जाने के पश्चात् उसके ऊपर के पतले घोल को दीवार पर आलेप चढ़ाने के लिए उपयोग में लाते थे। इस आलेप को बांस की पतली चीपट से पिटाई कर, स्थैर्य प्रदान करने की क्रिया की जाती थी। इस लेप विधान में यह विशेषता पायी गयी है कि इस पर प्रयुक्त रंग ऊपर न

नवनीत

तैरते हुए, आलेप की गहराई तक पहुँचते हुए हैं।

मन्दसौर में श्री सज्जनलाल पोशान्तिलालजी वाग्या, मंगलदासजी श्री बावेरचा, अंधेरी गली आदि के अलावा अनेक मंदिर और भवन दीवारों चित्रों से सजी हुई हैं किन्तु पर भी चित्रकारों के नामों एवं चित्र निर्माण तिथि अंकित नहीं हैं। अस्वरूप कागज पर चित्रित चित्र पर

१९११ अगहन वदी ९ ति
प्रमाण ज्ञात होता है।

भित्ति-चित्रों का निर्माण काल जानने के लिए भीतों पर चित्रित तात्कालिक महाराजाओं एवं नवाबों के शासन काल एवं प्रसिद्ध इतिहासविद् डॉ. रघुवीर प्रसिद्ध पुराविद् डॉ. वाक

चित्रकर्मी प्रो. शिवकु

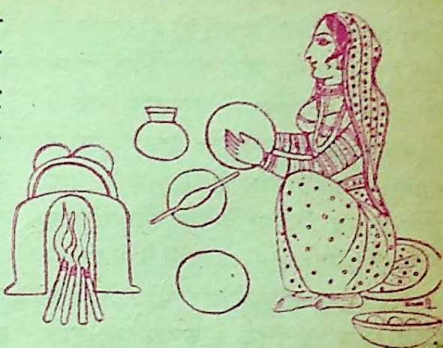
जोशी तथा प्रो. डॉ. श्यामसुन्दर आदि विद्वानों की धारणाएं सहयोगी हुईं। उनके अनुसार मन्दसौर की चित्रकला का निर्माण काल १९वीं शताब्दी होना चाहिए।

मन्दसौर की यह कला-शैली मूलरूप से घरू मालवा शैली है। मालवा की चित्रकला परम्परा, मालवा, मन्दसौर की लोककला लोक-जीवन से गहनरूप से प्रभावित इसके अलावा इस पर मराठा, के



ई तक
बूंदी और मुगलवर्ती शैलियों का भी महत्व
पूर्ण प्रभाव दिखाई देता है। यह स्वाभा-
विक भी है; क्योंकि १९ वीं शताब्दी में
मन्दसौर उक्त क्षेत्रों की सामाजिक और
राजनैतिक गतिविधियों का एक मिलन-
स्थल था। मन्दसौर की दीवारों पर बने
विभिन्न क्षेत्र के राजा-महाराजाओं एवं
अन्यों के चित्र इस सच्चाई के साक्षी हैं।

इस दृष्टि से मन्दसौर का चित्रकार
लचीला रहा है। उसने एक ओर मालव
चित्रशैली की विशेषताओं को कायम रखा
है, वहीं दूसरी ओर विभिन्न स्थलों की
चित्रशैलियों को बड़े प्रभावोत्पादक ढंग
से इस प्रकार आत्मसात् किया है कि
विभिन्न चित्र-शैलियों का प्रभाव निरूपण
तो स्पष्ट होता है, किन्तु ऐसा प्रभाव
तत्सम्बन्धित चित्रों तक ही सीमित है,
समस्त चित्रों पर नहीं। अतः मन्दसौर की



चित्रकला निश्चित रूप से मालवा चित्र-
कला का पुनर्जीवन है, जो अपनी गति,
सामंजस्य, लास्य एवं यौवन के साथ प्रकट
होती है और इस प्रकार मध्यकालीन और
आधुनिक मालव चित्रकला के बीच एक
अति लचीली किन्तु महत्वपूर्ण कड़ी है।

—‘अमर कटेज’, ३५ जाटों का वास,
रतलाम ४५७००१ (म. प्र.)



संत महिमा

ईरान और टर्की के बीच युद्ध चल रहा था, इसी बीच तुर्की ने ईरान के संत फरीदुद्दीन
अंसार को पकड़ लिया और उन्हें जासूसी का आरोप लगाकर फांसी की सजा सुना दी।
ईरानी संत को बहुत प्यार करते थे। वहाँ के एक धनी ने संत को छोड़ देने के बदले उनके
वज़न के बराबर सोना देने का प्रस्ताव किया, पर टर्की ने उसे ठुकरा दिया। अंत में ईरान
के बादशाह ने टर्की के सुलतान के पास संदेश भेजा कि वे उनका सारा राज्य लेकर संत
को छोड़ दें। टर्की के सुलतान को बहुत आश्चर्य हुआ। उसने पूछा—‘जिस राज्य को इतनी
लंबी लड़ाई के बाद भी न ले सके वह हमें एक आदमी के बदले क्यों दिया जा रहा है?’

‘राज्य तो नाशवान है पर संत अमर है, राज्य खो ऋर उसे फिर पाया जा सकता है।
पर संत को खोकर हम गरीब हो जायेंगे और कलंकित भी।’ ईरान के बादशाह ने जवाब
दिया। तुर्की सुलतान यह सुनकर नतमस्तक हो गया, उसने संत को आदरपूर्वक मुक्त
कर दिया। वह युद्ध भी बंद कर दिया।

—जितेंद्रकुमार



(पृष्ठ १११ का शेषांश)

परिचित था। ऐसे कितनों को ही वह अपने गर्भ में विलीन कर चुकी थी। काफी संघर्ष के उपरांत नाव किनारे की तरफ मुड़ी।

संघर्ष की वह रात प्रायः समाप्त होनेवाली थी। पूरब के क्षितिज में आने वाले प्रभाव की सिद्धरी रेखा बिखरने का आभास हुआ। मांझी ने यात्री के चेहरे को देख लिया था और पोशाक भी। चेहरे के भाव साफ पढ़ लिये। कपड़ों पर ताजे खून के छींटे देख शंकाकुल मन सहम गया। यह जरूर कोई खूनी है।

गोविदा ने भी सब कुछ समझा। मांझी को एकड़वा देगा। फांसी पर लटकाया जायेगा आदि। अपने भविष्य का एक साफ किंतु भयंकर दृश्य उसके सामने नाचने लगा। वह गठरी के साथ नदी में कूद पड़ा। तैरकर पार हो जाने की उसने जो बाजी लगायी थी, उसमें वह हार गया। जाने कहां से यकायक एक बहुत बड़ा मगरमच्छ आया और उसे निगल गया।

सबरे गोपी की दूकान के पास नारी हत्या को लेकर गोपालपुर में सनसनी पैदा करने वाली खबर फैल गयी। यह कौन थी? किसने इसकी हत्या की, क्यों की? गांव को इस आकस्मिक संकट में बचाने के लिए लोगों ने लाश को नदी में फेंक दिया। लाश नदी की धारा में बह गयी और देखते-देखते ठीक उसी जगह पर एक मगरमच्छ ने उसे भी निगल लिया, जहां पर गोविदा को निगला था। संभवतः

दोनों की समाधि एक ही मगरमच्छ के पेट में हुई।

एक ही जेल में मंगराज, जगा नाई, गोबर, भगू आदि जेल की सजा भुगत रहे थे। भगू जब कभी मंगराज की सूरत को देखता प्रतिशोध की ज्वाला में भड़क उठता। एक दिन जेल के अंदर उसे अकेले में पाकर भगू ने बुरी तरह नोच डाला। दूसरे दिन मालूम हुआ कि जेल में गोबर जेना मर गया है और मंगराज की हालत नाजुक है।

मंगराज को खराब स्वास्थ्य के कारण रिहा कर दिया गया। उन्हें घर ले जाने के लिए कोई नहीं आया था। उनके एक पुराने नौकर मुकुंद ने ही उन्हें घर पहुंचा दिया था। मंगराज का सब कुछ चौपट हो चुका था। बची-खुची भू-संपत्ति नीलाम हो चुकी थी। उसके बेटे अनाहार में जर्जरित और दाने-दाने के लिए मुहताज थे।

कुछ ही दिनों के बाद मंगराजजी ने ठीक उसी स्थान पर अपनी अंतिम सांस छोड़ दीं, जहां पर उनकी धर्मपत्नी का जीवन-दीपक बुझा था। मुमूर्षु मंगराज को ऐसा अहसास हुआ था कि एक ओर सैकड़ों भगू उसे घेर कर जोर-जोर से उस पर मुगदर का प्रहार कर रहे हैं और दूसरी ओर एक ऊंचे सिंहासन पर बैठी हुई एक देवीमूर्ति उसके स्वागतार्थ दोनों हाथ बढ़ा रही है।

(भारतीय भाषा परिषद, कलकत्ता के सौजन्य से)



बोधकथा :

क्रेता और विक्रेता



यह किस्सा दरवेश सलाह यूनस का सुनाया हुआ है। एक बार एक युवक ने, जो बाद में बहुत बड़ा विद्वान बनने वाला था, अपने गुरु बुरहानुद्दीन को बड़ी भद्दी और अपमानजनक बातें कहीं। दरवेश सलाह यूनस उस मौके पर उपस्थित थे।

बुरहानुद्दीन ने कोई जवाब नहीं दिया और जब युवक चला गया, तो यूनस ने पूछा :

‘क्या आप उस आदमी को डांट नहीं पिलायेंगे, ताकि वह उस हताशा भरी

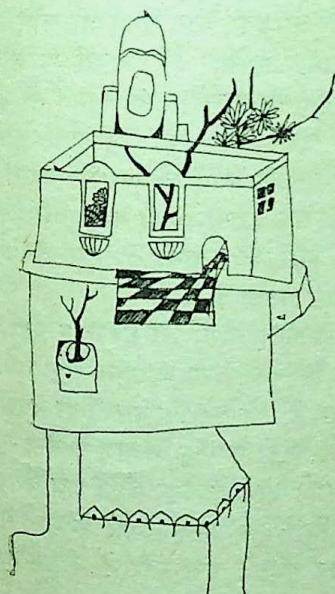
स्थिति को देख-समझ सके, जिसमें से वह गुजर रहा है?’

बुरहानुद्दीन बोले :

‘हम उसे दुबारा नहीं देखेंगे, क्योंकि उसका खयाल है कि मैं उसकी चुनौतियों का उत्तर देने में असमर्थ हूँ इसीलिए वह कहीं और जायेगा।’

‘परेशान करने वाले लोगों ने पीछा छुड़ाने के लिए क्या आप यही जरिया इस्तेमाल करते हैं?’ यूनस ने पूछा।

‘यह जरिया नहीं है,’ बुरहानुद्दीन बोले, ‘मेरे पास आदमी जो कुछ भी लेने आता है, उसे देने का यही तरीका मेरे पास है। उसे किसी ऐसे आदमी की तलाश होती है, जिससे उसका मतभेद हो और वह बहस कर सके। मैं वह आदमी बनने से इनकार कर देता हूँ, इसलिए वह किसी दूसरे की तलाश में चल पड़ता है, पहले से भी अधिक चिंतित। सो वह जायेगा और किसी ऐसे आदमी को ढूँढ़ लेगा, जिसे बहस में मज्जा आता है। इस तरीके से, जैसे हम क्रेता और विक्रेता को एक दूसरे के पास ले आते हैं। अगर मैं ऐसे आदमी को वह कुछ नहीं दे सकता, जो मैं देना चाहता हूँ, तो जो कुछ वह चाहता है, उसकी तलाश में उसकी मदद तो कर सकता हूँ। [प्रस्तोता : सुदीप]



सुरेन्द्र श्रीवास्तव का एक आलौकिक घटना - प्रधान रहस्यात्मक लेख



दोहरे व्यक्तित्व का स्वामी : लुईस राजर्स

क्या एक व्यक्ति एक ही समय पर दो स्थानों पर उपस्थित हो सकता है? और वह भी एक स्थान से सैकड़ों मील दूर दूसरे स्थान पर। अधिकांश लोग इस बात पर हँसेंगे और इस पर विश्वास ही नहीं करेंगे कि ऐसा भी हो सकता है।

लेकिन, बहुत से ऐसे लोग भी होंगे, जो इस बात पर हँसने की बजाय गंभीर हो जायेंगे—विशेष रूप से वे वैज्ञानिक तथा मनोवैज्ञानिक, जो आज तक 'पुरुष-द्वय' लुईस राजर्स के दावे को गलत सिद्ध नहीं कर सके हैं। लुईस राजर्स एक साधारण व्यक्ति था और ओझागिरी का काम करता था, किंतु १९३७ में उस पर तब एकाएक सबका ध्यान आकर्षित हो गया, जब उसके दोहरे व्यक्तित्व की बातें प्रकाश में आयीं।

मनोवैज्ञानिक अनुसंधान की ओटोरियो इंस्टिट्यूट के निदेशक डा. मार्टिन स्पेंसर ने राजर्स के दावों को अस्वीकार करते हुए कहा कि ये ऐसी बातें हैं, जिन पर जांच नहीं की जा सकती। स्पेंसर का विश्वास था कि राजर्स ठग मात्र है।

लुईस राजर्स का जन्म इंग्लैंड में हुआ लेकिन तीस वर्ष की आयु में वह कनाडा

चला गया। १९३१ तक वह टोरेंटो जाकर बस गया। वहाँ वह 'सयाने' और माध्यम के रूप में काम करने लगा। राजर्स खूबसूरत तथा आकर्षक था। शीघ्र ही उसका काम चल निकला। लोग उसके पास अपने मृतक संबंधियों से भेंट करने के लिए पहुंचने लगे। वस्तुतः ऐसे लोगों की तसल्ली के लिए ही वह सयाने का काम करता था। किंतु, राजर्स लोगों को उनकी बातें तो बता देता, परंतु जो लोग उसके परामर्श करते, उन्हें राजर्स के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं होती थी।

राजर्स को अपने रहस्यपूर्ण होने की बहुत खुशी थी। वह अक्सर कहता था—'मुझे पर आत्माओं की मेहरबानी है। जब भी मुझे वे बुलाती हैं, मुझे उनके पास जाना पड़ता है।'।

शंकालु लोगों को तब तक यही संदेह था कि राजर्स का व्यवसाय एक शब्दज्ञा मात्र है, जब तक कि उसकी दो मुवक्तियों की टोरेंटो के एक बाजार में भेंट नहीं हुई गयी। दोनों स्त्रियां थीं। जब वे बाजार में मिलीं तो उनमें राजर्स के बारे में बात छिड़ गयी। एक स्त्री ने कहा—'मुझे तो

नवनीत

१२०

जनवरी

पता ही नहीं था कि मि. राजर्स मांट्रियल चले गये हैं। मेरी बहन ने उन्हें मंगलवार को वहां देखा था और उनसे काफी देर तक बातें की थीं।

यह सुनते ही दूसरी औरत चौंक पड़ी। आश्चर्य में डूबते हुए उसने कहा—'यह असंभव है। गत मंगलवार को तो वे मेरे घर पर थे।'

और इसके बाद तो इस पुरुषद्वय के बारे में अफवाहें फैलने लगीं—कुछ सच्ची, कुछ झूठी। राजर्स के एक साहसी मुक्किल ने उससे इन अफवाहों व उसके दोहरे व्यक्तित्व के बारे में पूछ ही लिया, किंतु राजर्स ने कोई जवाब नहीं दिया। वह मुस्कराकर रह गया।

राजर्स के बारे में सूचनाएं एकत्र की जाने लगीं। उसके मुक्किलों ने जो तथ्य अपने पास एकत्रित किए थे, उनकी तुलना करने पर पता चला कि यदि एक जगह राजर्स वाक् पटु, कुशल, चुस्त और सक्रिय होता था, तो दूसरी ओर राजर्स खामोश व सुषुप्त होता।

१९३७ तक ये कहानियां इतनी चर्चित हो गयीं कि ऑटेरियो इंस्टिट्यूट के वैज्ञानिकों ने राजर्स से पूछा कि क्या वह उनके प्रश्नों के उत्तर देगा, लेकिन राजर्स ने मना कर दिया। इससे इंस्टिट्यूट के निदेशक डा. स्पेंसर असमंजस में पड़ गये। वह राजर्स से उसके कक्ष में मिलने गये और उससे पूछा कि आखिर उसे किस बात का डर है।



राजर्स ने कहा कि वह नहीं चाहता कि उसके काम और उसके मुक्किलों के विश्वास से वैज्ञानिक थ्योरियां गढ़ी जायें। डा. स्पेंसर ने उसे समझाया कि ऐसा नहीं होगा। बहुत समझाने के बाद आखिर डा. स्पेंसर उसे समझाने में सफल हुए। पुरुषद्वय राजर्स उनके परीक्षण में भाग लेने के लिए तैयार हो गया।

इस समय तक अन्य लोग अफवाहों को गंभीर रूप में लेने लगे थे। वे यह जानने को उत्सुक थे कि क्या राजर्स चालवाजी से काम लेकर लोगों का विश्वास बनाये हुए है। पुलिस भी छानबीन में लग गयी और उसके नाम की एक फाइल तैयार कर ली गयी।

डा. स्पेंसर के परीक्षण की एक बात यह थी कि राजर्स तीन सप्ताह तक टोरेंटो से बाहर नहीं जायेगा। डा. ने अपने साथियों से कहा कि जब भी वह घर से बाहर निकले, वे उसका पीछा करें। परी-

भारतीय विद्या भवन

पुस्तक बिक्री विभाग

भवन के चुने हुए हिन्दी प्रकाशन

शीर्षक	लेखक	पृष्ठ	मूल्य
१-कृष्ण बन्दे जगद् गुरुम् (कलात्मक सज्जा, सचित्र : प्लास्टिक आवरण के साथ : रियायती मूल्य)	घनश्यामदास बिरला	१२३	रु. १०-००
२-बापू की प्रेम प्रसादी (चार खंडों में: कड़े कपड़े की जिल्द : रियायती मूल्य) (प्रथम खंड अप्राप्य)	„	१-५१५ २-४१८ ३-४०८ ४-४९२	रु. १०-०० प्रत्येक खंड
३-भगवान स्वामिनारायण के वचनान्त	अनुवाद : राम- वल्लभ शास्त्री	६४२	६०-००
४-श्रीवेणुगीतम्	आर. कलाधर भट्ट	२८७	३५-००
५-योग और विद्यार्थी	योगाचार्य हंसराज यादव	२०४	१२-५०
६-राष्ट्रनिर्माता सरदार पटेल	आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री	२६०	१०-००
७-विश्वनागरी	रामेश्वर कन्हैयालाल लोहिया	८२	१५-००
८-भारतीय विद्या	डा. श्रीधर भास्कर वर्णेकर	१२६	६-००
९-विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर	इलाचन्द्र जोशी	२८२	४-००
१०-प्राचीन भारतीय मनोरंजन	मन्मथ राय	३३९	५-२५
११-भारतीय संस्कृत और इतिहास	डा. बंजनाथ पुरी	२५२	५-००
१२-भारतीय संविधान के सिद्धान्त	चन्द्रभानु अग्रवाल	३५७	१०-००
१३-रवीन्द्र रत्नाकर	रघुवंशलाल गुप्त	१८४	५-००
१४-बद्रीनाथ की ओर	क. मा. मुन्शी	६६	१-००
१५-गीता का प्रेरक तत्व जीवन योग	काका साहेब कालेलकर	३८	१-००
१६-महानता के दृष्टान्त	योगाचार्य हंसराज यादव	१३२	३-००

प्राप्ति स्थान :

भारतीय विद्या भवन, कुलपति मुन्शी मार्ग, बम्बई-४०० ००७

तथा उसके सभी केन्द्रों पर

क्षण शुरू होने के तीन दिन बाद ८ अप्रैल, १९३७ को मांट्रियल से एक व्यक्ति ने सूचना दी कि एक व्यक्ति, जो अपने आपको लुईस राजर्स बताता है, यहां एक होटल में देखा गया है।

जांच करने वाले तुरंत मांट्रियल पहुंचे और वहां उनकी भेंट राजर्स के डुप्लिकेट से हुई। वह लंबा खूबसूरत व्यक्ति था, जिसके बाल लंबे और काले थे। उस व्यक्ति ने कहा—‘हां, मैं लुईस राजर्स हूं।’

उसकी शक्ल राजर्स से इतनी मिलती-जुलती थी कि जांच करने वाले व्यक्ति दुविधा में फंस गये। उन्होंने तुरंत डा. स्पेंसर को फोन किया।

स्पेंसर यह सुनकर सकते में आ गये। वे लगभग चीखकर बोले—‘नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। मैं इस समय उसके साथ दोपहर का खाना खा रहा हूं।’

स्पेंसर को इतने पर भी विश्वास नहीं हुआ कि राजर्स दोहरे व्यक्तित्व का स्वामी है। उनका विश्वास तो यह था कि राजर्स जालसाजी से काम लेता है।

लोगों की उल्टी-सीधी बातों तथा डा. स्पेंसर के उपरोक्त तर्कों से राजर्स तंग आ गया। उसने कहा—‘मैं इन सबसे थक गया हूं। १२ अप्रैल को मैं यह हमेशा के लिए सिद्ध कर दूंगा कि मेरे अंदर असाधारण शक्ति है। तब शायद आप मुझे हमेशा के लिए अकेला छोड़ देंगे।’

१२ अप्रैल को राजर्स को डा. स्पेंसर के कार्यालय में ले जाया गया और बाहर

से ताला लगा दिया गया। डा. के तीनों साथियों के सामने राजर्स ने कहा कि उनके दिमाग में जो भी पहला शब्द आता है, वह बोल दें। डा. स्पेंसर ने कहा—‘गुलाब’।

राजर्स बोला—‘बस, अब ठीक है।’

इसके बाद चारों व्यक्ति एक घंटे तक वहां बैठे रहे। इतने में फोन की घंटी बज उठी। फोन इंस्टिट्यूट के एक प्रतिनिधि का था, जिसने सूचित किया कि उसने अभी-अभी राजर्स को शहर में देखा है।

कमरे में सर्वत्र स्तब्धता छा गयी। एक घंटा बाद पुनः टेलीफोन आया। इस बार फोन राजर्स ने किया था। फोन पर राजर्स की स्पष्ट आवाज सुनाई दी—‘मैं लुईस राजर्स हूं। सांकेतिक शब्द (कोडवर्ड) गुलाब है।’

डा. स्पेंसर के आश्चर्य की सीमा नहीं रही कि राजर्स ने फोन कहाँ से किया, जबकि वह तो उनके कार्यालय में कैद था, जहां से फोन हटा दिया गया था। काफी सोच-विचार के बाद उन्होंने राजर्स के दुहरे व्यक्तित्व को स्वीकार कर लिया।

इस घटना के कोई पांच वर्ष पश्चात् द्वितीय विश्वयुद्ध में राजर्स की मृत्यु हो गयी। वैज्ञानिक उसके बारे में आगे खोज करते ही रहे, किंतु उन सबकी खोज को बीच में ही अधूरा छोड़ अपना रहस्य साथ लिये लुईस राजर्स इस दुनिया से विदा हो गया।

—१६२—शुगर मिल कालोनी,
शामली—२४७७७६ (उ. प्र.)

जॉर्ज हाइम की जर्मन कहानी



शव-परीक्षा और एक सपना

मृतक सफेद मेज़ पर नंगा और अकेला लेटा हुआ था। उसके चारों ओर ऑपरेशन-थियेटर की क्रूर सफेदी और निर्दयी गंभीरता अभी तक जैसे असीम यातनाओं की चीखों से कांप रही थी।

उसका शरीर किसी बहुत बड़े, चमकते हुए, प्यालानुमा फूल जैसा था, जो किसी ने हिंदुस्तानी जंगल में से किसी रहस्यमय पौधे से तोड़कर मौत की बलिवेदी पर रख दिया हो।

उसकी कमर के गिर्द लाल और नीले रंग की आभा थी, और उसकी नाभि के नीचे एक बहुत बड़ा ज़ख्म किसी चौड़ी, लाल हल-रेखा की तरह खुल गया था, जिसमें से तीखी दुर्गंध आ रही थी।

डाक्टर सफेद कोट पहने कमरे में दाखिल हुए। वे मृतक के पास गये और उसे दिलचस्पी से देखते हुए उसके बारे में अपने विचार प्रकट करने लगे।

फिर, उन्होंने सफेद अलमारियों में से चीड़-फाड़ करने वाले औज़ार निकाले, हथोड़ियों, तीखी आरियों, रेतियों और डरावनी चिमटियों वाले सफेद डिब्बे निकाले, और कुछ छोटे-छोटे डिब्बे निकाले, जिनमें बड़ी-बड़ी सुइयां भरी पड़ी थीं

और चीलों की चोंचों की तरह मांस लिए लगातार चीखती हुई प्रतीत होती रही थीं।

तब उन्होंने अपना भयानक काम शुरू किया। उनके हाथ खून से लथपथ हो गये जो ठंडे शव के अंदर गहरे धंसते हुए विभिन्न अंगों को खींच रहे थे।

अंतड़ियां उनकी कलाइयों के निचले हिस्से से लिपटी हुई थीं—हरे-पीले सांपों की तरह और गर्भ-सी बदबूदार, तरल गंदगी उनके कोटों पर टपक रही थी। उन्होंने उसकी अमसने में छेद किया, तो उसमें ठंडा पेशाब निकल पड़ा। पीली शराब की तरह चमकता हुआ उसे दिखाया दिया, जिसे उन्होंने बड़े-बड़े मृतक प्यालों में डाला। उसकी बड़ी तीखी और बूढ़ी सिर-मुंह को चढ़ जाने वाली गंध थी।

लेकिन मृतक सोया रहा और बड़े शांत, उसे से सारी यातनाएं सहता रहा।

और जब उसके सिर पर हथोड़ियों की चोटें गुंजीं, तो एक सपना, जो उसका दिल में के प्यार का अवशेष था, जागृत हो उठा, जैसे अंधेरे में टार्च की रोशनी जगमगाहनिय उठती है।

बड़ी खिड़की के सामने विशाल आकाश दिखाई दिया, जिसमें बहुत-से छोटे-छोटे तारे

नवनीत

१२४

जनवरी १८३

मांस
तीत
काम शु
हो ग
सते ह
के नि

तद् बादल प्रकाश में तैर रहे थे—तन्हे-
ह, सफेद फरिश्तों की तरह । और
ने उस आकाश की नीलिमा में बहुत ऊंचे
पेशा रहे थे और जुलाई महीने की स्निग्ध
ता हुआ में कांपते हुए दिखाई दे रहे थे ।
बड़े-मृतक का काला खून उसके नीले,
खी और बूंदार माथे पर बह रहा था । फिर,
थी । जमकर बड़ी भयानक शक्ल का वन
बड़े सा, और मौत अपने चमकते हुए, रंग-
र पंजों के बल उस पर सरकने लगी ।
थोड़ी-थोड़ी चमड़ी अलग होने लगी और
ने उसका पेट एकदम सफेद पड़ गया । उस
ता, जपिय डाक्टर उसके शरीर में अपनी बांहें
जगमगानियों तक धंसाये हुए अपना काम
रहे थे ।

आखिर मृतक का मुंह खुल गया । वह
टे-छोटे-छोटे कराता हुआ प्रतीत हो रहा था । उसने

जनव १८३



सपने में एक चमकता हुआ तारा देखा,
महकती हुई शाम देखी, और उसके होंठ
मानो किसी हल्के-से चुंबन के स्पर्श में
कांपे :

‘मैं तुम्हें कितना प्यार करता हूं !
मैंने बहुत प्यार किया है तुम्हें ! बताऊं कि
कितना प्यार किया है ? जब तुम पोस्त
के फूलों भरे खेतों में से गुजरती थीं और
खुद एक महकता, दहकता हुआ फूल बनी
होती थीं, तो सारी शाम जैसे तुम्हारे अंदर
समा जाती थी । और तुम्हारा उड़ता,
लहराता हुआ लिवास सूर्यास्त की आभा
में आग की लपट की तरह दिखाई देता
था । तुम अपना सिर एक ओर को झुकाये
हुए होतीं, और मेरे चुंबनों की बदौलत
तुम्हारे बालों में से अभी तक लपटें निकल
रही होतीं ।

‘तुम चली जातीं और मुड़कर मेरी ओर देखती रहतीं । और तुम्हारे जाने के बाद भी तुम्हारे हाथ में पकड़ा हुआ दीया धुंधलके में गुलाब के फूल की तरह लहराता हुआ प्रतीत होता ।

‘मैं तुम्हें कल फिर मिलूंगा—यहां, गिरजे की खिड़की के नीचे । यहां, जहां मोमवती की रोशनी आती है और तुम्हारे बालों को किसी सुनहरे जंगल में बदल देती है । यहां, जहां नरगिस के फूल तुम्हारे टखनों को चूमते हैं ।

‘मैं फिर तुम्हें इस गोधूलि में रोज़ मिला करूंगा । हम कभी दूसरे से अलग नहीं होंगे । मैं तुम्हें प्यार करता हूँ ! बताऊँ कि कितना करता हूँ ?’

और मृतक, सफेद मेज़ पर लेखुशी में हल्का-सा कांपा, जबकि के हाथ में पकड़ी लोहे की छैनी के कनपटी पर की हड्डियों को तोड़ दिया ।

(अनुवाद : सु)



चमत्कारिक अनुभव

आज से कुछ वर्ष पहले मैं अपने जीवन से एकदम निराश हो चुकी थी । अंधकारमय प्रतीत होता था । मानसिक व्यथा यंत्रणा बनकर मुझे अनमना किये क्या मैं जो चाहती हूँ, उस लक्ष्य को पा सकूंगी ? गूढ़ अध्ययन को लालायित, पशु शता ! ज़रा-सा कुछ पढ़ने बैठती तो आंखों के आगे अंधेरा छा जाता । काले अक्षर स्याही के धब्बे बन जाते । हे प्रभु, क्या करूँ ? सूरज की रोशनी में जाती तो धूप ही न खुलती । आंखों में पानी भर जाता, पलकें मुंद जातीं । मैं हरदम सोचती, जिन कैसे पार लगेगी नेत्रज्योति बिना ! कृपा करो प्रभु ! हर समय एक ललक, अज्ञान की जो मुझे ‘उत्तिष्ठत जाग्रत !’ का मंत्र फूंकती रहती । मैं हतप्रभ हुई अंतरात्मा का आश्रय सुनती ! लेकिन इन क्षीण आंखों से भला करूँ भी क्या !

सहसा एक दिन, योगासनों की एक पुस्तक मेरे हाथ लग गयी । सोचान बन न योगासन करूँ मैं । और मैंने दूसरे दिन से शीर्षासन, सर्वांगासन, पश्चिमोत्त कुतूह और धनुरासन प्रारंभ कर दिया । अभ्यास क्रमशः ‘प्रकृति’ बन गया । प्रातः के वांछित नियमपूर्वक योगासन करने लगी । मेरे इस अनुभव का ऐसा चमत्कार हुआ कि करें, निस्तेज आंखों को नयी ज्योति प्राप्त हुई और मुझे नया जीवन ! प्रायः शयन से

निरंतर योगासन करते हुए मुझे विलक्षण कार्य-क्षमता प्राप्त हुई है । मेरे चमत्कारिक अनुभव का ही प्रताप है कि अब मैं निरंतर अपने लक्ष्य की ओर उन्मुख हो लक्ष्य है पढ़ना और लिखना । लिखना और पढ़ना, वस !!

—चन्द्रकान्ता कक्कड़, खोहरा स्ट्रीट, अलवर — ३०६ गये



म. पंडित गोपीनाथ कविराज द्वारा प्रस्तुत एक योगी-कथा



पागल बाबा

महापुरुष से मेरा परिचय दिसंबर, १९३० ई. में हुआ। इसका एक हास है। उस समय हरिप्रसाद विद्यांत के एक महाशय काशीवास करते थे। वे पहले संयुक्त प्रांतीय शासन के जिनिक निर्माण विभाग में उच्चपदस्थ नियर थे। अवकाश प्राप्ति के अनंतर ही चले आये थे। कभी-कभी वे हमारे गुरुदेव के आश्रम में आया करते थे गुरुदेव के सूर्य-विज्ञान तथा कुछ अलौकिक व्यापार का प्रदर्शन देख आश्चर्यचकित हो गये और प्रसंगत: 'सामान्यतया साधु समाज में आने की चर्चा कहीं सुनाई नहीं पड़ती।' आये हुए एक अन्य महात्मा के मुख से मैंने सुना है कि प्राचीन भारत में विज्ञान बहुत उन्नत था। यह सुनकर कुतूहल हुआ कि विज्ञान में रुचि वाले उस विशिष्ट महात्मा का परिचय करें, क्योंकि साधारण साधु मंडल प्रायः उदासीन रहता है। मैंने विद्यांत के महाशय से उनके साथ चलकर उक्त महात्मा का दर्शन करने की इच्छा प्रकट की। वे हमको अपने साथ एक ऐसे स्थान ले गये जहां मोटर की मरम्मत होती

थी। यह स्थान छोटी गैबी के निकट था। वहां पहुंचकर अपने आने की सूचना देने के बाद मैं भीतर गया। साथ में कुछ और भी लोग थे। हमारे मन में आया कि यह तो कोई साधु-आश्रम नहीं है, फिर यहां महात्मा कैसे होंगे? कुछ देर तक प्रतीक्षा की, फिर एक प्रौढ़ पुरुष कारखाने से बाहर आये। वे श्याम वर्ण के थे, मस्तक पर केश इस प्रकार बिखरे हुए थे जैसे उनका कभी तैलादि से संपर्क हुआ ही न हो। तपः क्लिष्ट उग्रमूर्ति, घुटनों तक वस्त्र पहने हुए। वे आकर हम लोगों के सामने बैठ गये। पता लगा कि ये वही महात्मा हैं, जिनके विषय में विद्यांत महाशय ने चर्चा की थी।

हमने पूछा, 'क्या आप प्राचीन भारत में विज्ञान-चर्चा के संबंध में कुछ जानते हैं?' उन्होंने कहा, 'प्राचीन भारत में नाना प्रकार के विज्ञान का प्रचार था। इस विषय में कोई-कोई विशिष्ट अभिज्ञ पुरुष भी थे। रावण का विज्ञान, वशिष्ठ का विज्ञान आदि अनेक प्रकार के विज्ञान प्रसिद्ध रहे। इसका सविशेष परिचय भी मुझे मिला है।' यह सुनकर मेरे मन में आश्चर्य हुआ कि ये कैसी-कैसी अलौकिक

बातें कह रहे हैं। मैंने पूछा, 'आपको इसका ज्ञान कहां से प्राप्त हुआ?' उन्होंने कहा, 'अपनी गर्भधारिणी माता से।'

इसके बाद उन्होंने अपनी माता का लोकोत्तर चरित और उनके प्रभाव से अपने नाना प्रकार के अलौकिक ज्ञान प्राप्ति का वृत्तांत बताया। उन्होंने कहा कि थोड़ी ही आयु में उनकी माता ने भावराज्य दर्शन का रहस्य उन्हें बतला दिया था। यह योग का अति गंभीर रहस्य है। भावजगत में प्रविष्ट होने पर भौतिक जगत में जो कुछ लुप्त हो गया है, उसका भी परिचय मिलता है। इस जगत में जिन विद्याओं का लोप हो गया है, भावजगत में वे सब मौजूद हैं। प्राचीन काल में योग्य गुरुवर्ग अधिकारी शिष्यों को भावजगत में प्रवेश करने का रहस्य सिखलाते थे।

मैंने पूछा, 'इस विषय का कोई प्रत्यक्ष ज्ञान आपने प्राप्त किया था क्या?'

उन्होंने कहा, 'मैंने बहुत कुछ संग्रह किया और उसे लिपिबद्ध भी किया है। विभिन्न विद्वानों का विश्लेषण मूलक तत्व उसमें हमने दिखाने का प्रयत्न किया है। इस प्रकार के उल्लेख से हमारे पास बहुत-सी कापियां भरी पड़ी हैं।' यह कहकर उन्होंने घर से कुछ कापियां मंगाकर दिखायीं। प्रत्येक कापी में नाना प्रकार के चित्र देख पड़े। उनके साथ कुछ विवरण भी था—यह अलक्तक से लिखा गया था। यह सब देखकर बाबाजी पर मेरी

बहुत श्रद्धा हो गयी। वे देखने में सावधान वेश में थे, किंतु ज्ञान असाधारण पड़ा।

मैंने बाबाजी से पूछा, 'आपने साक्षात्कार किया है या नहीं? सुनकर उन्हें रोमांच हो आया। 'भगवद्दर्शन! नहीं, नहीं। मैंने जगत का दर्शन किया है। विश्व जगत् रहस्य भी भेद किया। उसके बाद शून्य के प्रांत में आकर बैठा हूं। भेद किये बिना भगवद्दर्शन संभव पहले दिन इतनी बातचीत का लोग निवृत्त हुए। इस प्रथम ही घनिष्ठता स्थापित हो गयी।

इसके बाद मैं समय-समय महापुरुष का संसर्ग करता था। समय अगस्त्यकुंड के पास एक रहते थे। लोगों से इनके जीवन में विचित्र कथाएं सुनीं। कहा जाता शैशव में इनकी सर्पदंश से मृत्यु थी। सर्पदंश के कारण कुटुंबियों लित परंपरानुसार, इनकी देह में भस्म न करके मिट्टी में गाड़ दिया स घटना के दूसरे दिन एक संन्यासी महापुरुष आये। उन्होंने हटाकर इनका शव बाहर निकल अपनी अलौकिक शक्ति से योग-प्रती द्वारा इन्हें पुनरुज्जीवित देहविशिष्ट बना दिया। कुछ इनका पुनः काया-परिवर्तन ऐसा सुनने में आया था।



मेरा सपना जो सच हुआ



सरोजिनी कुलश्रेष्ठ

मैंने सन १९७२ में श्रीअरविंद सोसा-
इटी की सदस्यता ग्रहण की थी।
६ नवंबर '७३ को सपना देखा कि एक
माल लैपशेड के समान विशाल घेरा धीरे-
धीरे भूमि पर घूम रहा है। क्रीम रंग के
काले कागज से बनी हुई उसकी बाहरी
परिवार पर अद्भुत और दिव्य चित्र बने
ए हैं। चांदनी के प्रकाश में वह चित्रकला
भरी हुई दृष्टिगोचर हो रही है। रेल के
वेग में हैंडिलवाला जैसा द्वार होता है
सोसा ही इसमें केवल एक ही द्वार है।
केरा जब घूमकर अपना एक चक्र पूरा
जाता है तभी उसमें कोई व्यक्ति चुंब-
युक्त शक्ति से खिचकर द्वार में प्रविष्ट हो
जाता है और धीरे-धीरे अदृश्य हो जाता
को। मैं सपने में सुने हुए इसके नाम को
द्वितीय का कुआँ समझ रही हूँ। एक चमकते
अधूतरे पर बैठकर उसको घूमते हुए
होने लगी हूँ। जो दो-चार व्यक्ति मेरे साथ
वाफे हैं उनमें एक श्वेत वस्त्रधारिणी महिला
प्रती है। वह चबूतरे से धीरे-धीरे उतरकर
र के ओर खड़ी होकर द्वार के सामने आने
वही प्रतीक्षा करती-सी प्रतीत होती है।
हुआ ही द्वार घूमकर सामने आता है वह
डकर उस द्वार में प्रविष्ट हो जाती है

और एक क्षण हैंडिल पकड़कर हमारी
ओर मुंह करके खड़ी रहती है। अब मैं
पहचानने की कोशिश करती हूँ परंतु
चेहरे पर छाया-सी पड़ जाने के कारण
साफ नहीं देख पाती। हाँ, लंबे चेहरे का
आकार स्पष्ट दिखाई पड़ जाता है। दुबले-
पतले शरीर पर श्वेत नायलॉन जाजेंट
की साड़ी का पल्ला हवा में फरफराता
हुआ देर तक देखती रहती हूँ। पल भर
में हैंडिल छोड़कर पीछे सरकती हुई वह
महिला तिलस्म जैसी सीढ़ियों से चढ़कर
अदृश्य हो जाती है। मेरे मुंह से शब्द
निकलते हैं—'अरे ये भी गयी।' और आंख
खुल जाती है।

मैंने समझा कि संभव है मेरी माँ उस
मौत के कुएं में जाने की तैयारी कर रही
हैं। परंतु जो आकृति देखी थी वह तो
जानी-पहचानी 'श्रीमां' ही थीं। तब ?

सपने की दूसरी रात को ही 'श्रीमां'
नहीं रहीं। १७ नवंबर-७३ को यह सपना
मैंने घर में सुनाया। १८ नवंबर को प्रातः
काल आकाशवाणी से 'श्रीमां' के दिव्य
जीवन प्रवेश का समाचार सुनकर जाना
कि मेरा सपना सच हो गया है।

—किशोरीरमण महिला महाविद्यालय, मथुरा



सुरेन्द्र कुमार मिश्र की हिन्दी कहानी

छोड़ गये बालम....



मेरी घनिष्ठता सीमित है। घनिष्ठता बढ़ाना मुझे अच्छा नहीं लगता। हाथों की बनायी मेरी पत्थर की मूर्तियों से प्रभावित होकर नोरा ने मुझसे बलात् घनिष्ठता बढ़ायी है। मैं उससे अलग रहना चाहता हूँ। किंतु आत्मीयता बढ़ जाने के कारण अब मैंने उसे अंगीकार कर लिया है। दिन के किसी भी प्रहर में मैं आत्म-रत होकर—कभी एकांत में कभी घिरे रहने पर भी—अनवरत छेनी-हथौड़ी से संघर्ष करते हुए जीवन-युद्ध के रिक्त अध्याय को भरता रहता हूँ। जीवन और भला है ही क्या? समस्त साधना को अंगीभूत करके प्रकृति में समाहित करना ही है।

मेरी मूर्तिकार वृत्ति हर जगह, हर पत्थर में कला को तलाश लेती है। कला तो हमारे हृदय के भीतर स्वयं ही विराजमान है, फिर वह भला अपने बाह्य प्रति-बिम्ब को क्यों न ढूँढ़ ले। मेरी अंतर्मुखी कलावृत्ति आत्म-केंद्रित है। मेरे लिए प्राण ही कला और कला ही प्राण है।

मैं गंभीर और मितभाषी हूँ। चंचलता मुझे पसंद नहीं। बात को ऐसे बोलने के पक्ष में हूँ जैसे गागर में सागर। नोरा मुझे

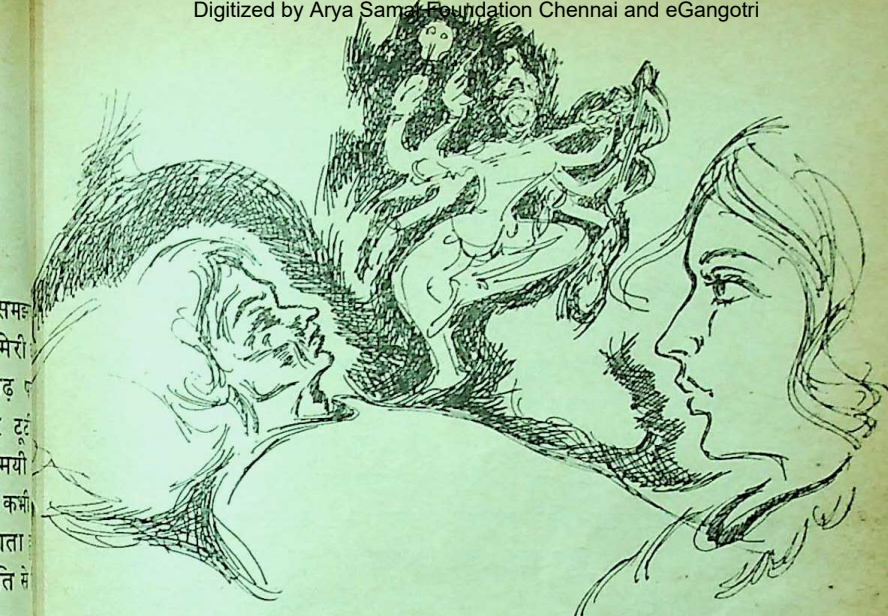
नवनीत

एक भिन्न और अप्रतिम व्यक्ति समझ हृदय से विरोधी होते हुए भी—मेरी का समर्थन करती है। अगनद और प्रखर धूप से चोट खाकर टूट चट्टानों में मुझे अपनी सौंदर्यमयी दिखायी दे जाती है और जब मैं कभी किन्हीं शुष्क चट्टानों में खो जाता नोरा मुझे उस समय मनुष्य जाति से समझने लगती है।

जून के कठिन महीने में एक दिन नोरा दस बजे दिन में नोरा अपनी कार से लौट रही थी। इस प्रखर धूप में धूसरित इस निर्जन सड़क पर मुझे घूमता हुआ देखकर वह अपनी रोककर बोली—‘किस ज़रूरत से यहाँ पर हो?’

‘ऐसे ही ...’ मैंने कहा। शायद चकित होकर वह बोली—‘गर्मी में! आओ गाड़ी में ...’ वहतु का वाज़ा खोलकर आग्रह करने लगी।

‘नहीं, तुम जाओ,’ मैंने उत्तर फिरे को फिर भी नोरा ने बलात् मुझे विवशता के कार में खींच लिया। विवशता के शनो मैं कुछ क्षण नोरा के समीप मौतगलने बैठा रहा, किंतु फिर बोलने लगा—‘नोरा के



नोरा, कुदरत का क्या करिश्मा है,
 सुंदर ... अत्यधिक सुंदर, मानों धूप
 खर होकर पत्थर-सी कठोर हो जायेगी
 और पृथ्वी से लेकर आकाश तक इस
 पती उच्चाप के भीतर कला सजीव तथा
 प्राणवंत होकर तरल गर्मी की लपटों के
 मान इस मनुष्य जाति की स्वार्थता को
 लाकर अपने में समाहित कर लेगी। तारों
 घिरी रात भले ही इसका विकल्प हो,
 वह कहीं प्राणवंत कला की अद्वितीयता
 की कोई छीन भी सका है ! ज़रा इस रंगीन
 तर्रिमे को उतारकर देखो, नोरा ।'
 विवश नोरा ने चश्मा हटा दिया । लू
 के मनो उसकी आंखों को झुलस-झुलसकर
 मोनगलने लगी किंतु मेरी अनुभूति मानो
 नोरा के हृदय में उतर आयी । शायद

सोचती हो—यह व्यक्ति कितना अलग है!

मेरी अनेक मूर्तियों—‘मानसरोवर देवी’
 ‘सागरतट की प्रतिमूर्ति’, ‘संघर्षरत दुर्गा’
 आदि ने कला जगत में प्रसिद्धि प्राप्त नहीं
 की, किंतु नोरा आत्मविश्वास के साथ कह
 सकती है कि वास्तव में जिस दिन कोई
 मूर्तिकला के पारखी की आंखें इन्हें परख-
 कर इनका मूल्य आंकेंगी—दुनिया स्तब्ध
 रह जायेगी । नोरा का मुखमंडल आत्म-
 तेज से दीप्त हो जाता है कि विश्व का
 अप्रतिम कलाकार उसका अपना ही ... ।

वह विचार करती है—मैं दुनिया से
 भिन्न हूं । भावना की उत्ताल तरंगें ही
 मुझे लिये फिरती हैं । एक दिन वह हमारे
 घर आ बैठी । मैं न जाने कहां खो गया
 था । मेरी चुप से वह न तो गमगीन हुई

और न इसमें उसने कोई विघ्न डाला । शायद सोचती हो—किस अमूर्त कला का अंकुर अभी इस दीवाने के उर्वर दिमाग में निकल रहा हो, और न जाने कौन पत्थर सजीव प्राण ग्रहण कर ले !

क्षण में ही पड़ोस की छोटी लड़की 'भैया ... भैया ... भैया' ... चिल्लाने लगी । नोरा को लगा कि मैं खुमारी से जगा हूँ । मैंने अनुभव किया—'कितना सुंदर, कितना मधुर ... । कुरूपता में भी सौंदर्य की गरिमा छिपाये प्रकृति किस तरह अविचल और मदमस्त पड़ी है ... ।' नोरा शायद तब मुझे आदमी समझी हो ।

०००

इधर मैं जोरों से बीमार पड़ गया । दुस्साध्य रोग का खर्च भी असाधारण ! कुछ ही महीनों में लगभग चार हजार रुपये खर्च हो गये । मेरा आधा घर तो बंधक था ही, बचा आधा, यह भी गिरवी रखना पड़ा । किंतु मुझे कोई गिला-शिकवा नहीं । मैं तो यह सोचता हूँ कि यदि तुच्छ रुपये से जीवन का दान मिले तो किसी भी रूप में यह महंगा नहीं । प्राण का रक्षक तो यह रुपया नहीं, मगर रोग से त्राण देने वाला अवश्य है ।

यह दारुण संकट गुजरा तो, लेकिन मेरी स्थिति और भी गर्त में चली गयी । किंतु संसार से विलग रहने की अपनी आदत में मुझे कोई फर्क नज़र नहीं आया । मैं टूटी खाट पर साधारण बिछावन से

नवनीत

ही इतना संतुष्ट हो जाता हूँ मानो गढ़े पर विश्राम कर रहा होऊँ ।

कई दिन तक मैं घर में सि रहा । नोरा ने सुना कि मैं बनाने में लगा हूँ । वह घर भी नहीं शायद वह इसमें किसी प्रकार का नहीं बनना चाहती थी ।

नोरा जब जान गयी कि मूर्ति गयी है तो देखने आयी ।

उस मूर्ति के नीचे नाम खुदा 'संताप देवता' । मूर्ति में शैया पर स्वयं मेरे जर्जर शरीर का और उत्पन्न पीड़ा का संपूर्ण रेखांकन चरम पीड़ा से ग्रस्त चेहरे पर रेखाएं और रोगी के शीर्ण मुख का आतंक दृष्टिगोचर किया गया । जीवन और मृत्यु के बीच संघर्ष रूप में रोग की कल्पना की संपूर्ण मूर्ति में की गयी थी । देखकर मौन रह गयी, कहना भी था ! कुछ संभाव्य भी हो तब तो किंतु मेरा खयाल है, अनेक दिन मूर्ति की भयानक स्मृति उसके दिमाग में उतर न सकी होगी ।

०००

मूर्ति-मेले के आयोजन का सुनकर नोरा ने मेरे सम्मुख मूर्ति को भेजने का प्रस्ताव रखा । नहीं हुआ । मैं समझता हूँ कि निर्माण का, कारीगरी का, कोई मूल्य है यह तो अपने आप में ही मूल्यवान्

अनेक तर्क से नोरा ने मुझे समझाया—
यदि प्रतिभा मात्र आत्मकेंद्रित हो जाये
तो उसकी सार्थकता संदिग्ध हो जाती है।
आत्मसंतोष को बिखराना ही तो विश्व
व्यापणरूपी विनाश वृक्ष का आदि
जो है।’

बहुत ही अनुरोध के बाद नोरा ने उस
मूर्ति को अपने ही खर्चे से मेले में भिज-
वाया। एक ही हफ्ते बाद मेले के आयो-
गकों द्वारा भेजा गया तार नोरा को
मिला—‘बाहर का एक मूर्ति-व्यापारी
‘संतोष देवता’ मूर्ति के लिए सात हजार
पैसे तक देने को तैयार है।’

नोरा ने यह शुभ-संवाद मुझे सुनाने में
बहुत ही संकोच महसूस किया, क्योंकि मेरे
एक भाव की विरुद्धता तो वह जानती ही
गयी। फिर भी नोरा ने सोचा कि ‘यदि
मैं एक मूर्ति के मूल्य से एक दुखी प्राणी
अथवा दुख दूर हो जाये तो यह प्रतिभा का
नोचोपमान थोड़े ही है। जो व्यापारी सात
हजार रुपया अपनी गांठ से इस अर्थयुग में
मूर्ति में निहित प्रतिभा के मूल्यस्वरूप
तक रहा है—वह तो वास्तव में प्रतिभा का
दिग्भिनंदन ही कर रहा है।’ बहुत ही
कोच के साथ नोरा ने यह प्रस्ताव मेरे
गमने रखा, किंतु फल वही हुआ जिसका
मैं से भय था।

प्रस्ताव अस्वीकृत होने की सूचना भेज
गयी। फिर संदेश आया—‘चौदह हजार
पैसों तक भी वह मूर्ति लेना चाहता है।’
नोरा फिर वही प्रस्ताव डरते-डरते मेरे

समक्ष लायी।

मैंने साफ शब्दों में कह दिया—‘मूर्ति
को मेले में भेजना ही नहीं चाहिये था।
मूर्ति लौटा लो।’

मेरी निःस्वार्थ कला-साधना के प्रति
नोरा के हृदय में और भी उच्च भाव आ
गये। हालांकि मेरा त्याग उसे अव्याव-
हारिक लगा—किंतु निष्ठा के संपूर्ण अस्तित्व
का संगम मेरे हृदय में देखकर वह मुझे
और भी आदर्श समझने लगी। वह श्रद्धा
से भर आयी। उसे यह भी विदित हुआ
कि प्रतिभा से प्राप्त संतोष, जीवन-
जीविका की भावना से भी परे है, वहां
तक साधारण जन की पहुंच भी नहीं।
नोरा—जो कला वेदी से बहुत दूर थी—
समझी कि भौतिकता की ओट से गुजर कर
आये प्रतिभा के प्रकाश, पूजा, श्रद्धा और
आराधना से प्राप्त मुक्ति की बलवती
इच्छा की दीप्ति से भी दिव्य है। यज्ञ-कार्य
के पुण्य संकलन में भी वह आभा नहीं कि
प्रतिभा प्रकाश की कांति को धूमिल कर
सके। प्रतिभा से प्राप्त अकाट्य संतोष
प्रकृति के किसी ऐहिक-दैहिक मुख से
प्राप्त संतोष से हर क्षण श्रेष्ठ है।

०००

मेरी दशा धीरे-धीरे क्षीण होती जा
रही है। कभी-कभी मैं मृत्यु की यातना से
व्रस्त होकर गुहार-सा करने लगता हूं।
किंतु मैं कला की अर्चना में निरंतर जुटा
हुआ हूं। दुख, शोक और भावना के सम्मि-
लित आघात से कभी-कभी मैं संज्ञाहीन

यवा १८३

हो जाता हूं, किंतु होंठों पर कला की मुस्कुराहट वर्तमान रहती है। इधर मैंने एक और मूर्ति बनायी है जो जीवन की दुर्गम चढ़ाई में एक क्षीण तपस्वी कलाकार के कलांत, जर्जर और संघर्षरत शरीर के दृश्य को रेखांकित कर रही है। मूर्ति का कलाकार दुविधा में है—इस संघर्ष के मध्य में अपने को पाकर। एक ओर निष्प्राण जीवन है तो दूसरी ओर कला की अमरता। कलाकार कला के हिमस्तूप शिखर का आह्वान पाकर निष्प्राण जीवन त्याग कर उस अमरता की ओर चल देता है।

मूर्ति देखकर नोरा चकित रह गयी। मूर्ति में स्थित मूर्तिकार के भाव और श्रद्धा के सच्चे स्वरूप को देखकर नोरा उसकी तरफ आकर्षित हो चली। मूर्ति अथवा यह जीवन कथा का जीवंत आकार! यह महत्वाकांक्षा है या प्रतिभा के प्रति आत्मसमर्पण। वह अभिभूत हो गयी...

०००

मुझे आज की रात बड़ी भयावनी लग रही है। नींद तो आने का नाम ही नहीं लेती, ऊपर से बहुत ही दूसरे किस्म की बेचैनी महसूस हो रही है। एक तो सदी का प्रकोप, दूसरे दुर्बल काया और तीसरे दीनता के कारण ओढ़ने-बिछाने का निरंतर अभाव खटक रहा है। आज बहुत डर भी लग रहा है। ऐसा अनुभव होता है कि मैं इस क्षण से ही मृत्यु के आगोश में हूं और वह मुझे दुनिया से दूर बहुत दूर...

नवनीत

खींचे लिये जा रही है। मेरा निष्प्राण हा हूं। अब ढुलकने ही वाला है किंतु मेरी निहित अमरकला मेरे साथ ही चलती प्रस्तुत है। बहुत ही डर गया हूं। सरल भय को आमोद के रूप में ढालने हेतु मैंने इसी अनुभूति की प्राणवंतता से अभूषण होकर इसी को मूर्ति के रूप में बनार से लिए छेनी-हथौड़ी और पत्थर के हृदय की को इसी रात में बहलाना-सहलाना साम कर दिया है।

३००

नोरा आदतन सुबह कभी नहीं उठे कम वह भी जाड़े में। किंतु आज किसी हृदय घुट से प्रताड़ित होकर बहुत सबरे ही हृदय की कर उठ बैठी। दुःस्वप्न के दुख के त्रि रह भार से उसकी आंखों में आंसू छगाता आये हैं। वह देखती है कि जाड़े का संघ धारण करके मृत्यु के दूत मेरे संपूर्ण शव के रोम-रोम के माध्यम से मेरे शरीरपाण-प्र प्रवेश पाते जा रहे हैं और मैं डरत हृदय रहा हूं। एक विचित्र किस्म की बेचैनी महसूस करता जा रहा हूं और ये मूलतः दूत मेरे हृदय पर अपना साम्राज्य स्थाप करते बढ़ते जा रहे हैं। यहां तक कि के मूलतत्त्व, उसकी गति पर भी नियंत्रण होता जा रहा है। हृदय के इनके प्रभाव से भीत होकर मंद पड़ती सकती जा रही है और फिर मृत्यु की इस शाश्वत अनुभूति को जगत के कल्याण के लिए कला सहयोग से एक मूर्ति में समाहित

१३४

ज १८३

हा हूँ । हृदय गति मंद पड़ती जा रही है
मेरी कतु छेनी-हथौड़ी अनवरत खट्-खट
चलती जा रही है ।

हूँ । सरला नोरा आंखें सजल किये हुए,
ने हेव्रन के आतंक से पीड़ित होकर, उसी
से शमूपा में बहुत सवेरे ही अपनी मोटर
द्वार से अकेले हमारे घर आ पहुंचती है ।
के हृदय की धुकधुकी से वह परेशान है । भय
लाना साम्राज्य उसके बाहर-भीतर चारों
रफ छाया हुआ है कि कहीं यह स्वप्न सच
न हो जाये । वह सीधे मेरे मूर्ति-
में जाले कमरे में आ धमकती है । इधर मेरा
हृदय घुटता जा रहा है । लगता है कि अब
हृदय की धड़कन बंद हो जायेगी । प्रहर
के त्रि रहते ही मुझे दिल का दौरा पड़ा है,
छागातार मैं मृत्यु से कुछ क्षण जीवन के
के लिए संघर्ष कर रहा हूँ ताकि अपनी इस
पूर्ण शक्ति और अंतिम अनुभूति को इस
शरीराण-प्रतिमा में पिरो सकूँ । एक हाथ
डरत हृदय दबाये, दूसरे एक हाथ से ही छेनी-
हथौड़ी अविराम चला रहा हूँ । मेरी
मूर्तिलत देखते ही नोरा को अपने स्वप्न की
स्थिता पर आस्था जमती चली जा रही है
कि वह सुबक-सुबक रौने लगती है—'क्या
मैं और क्या जानूँ, कहीं सपने इतने भी
बड़े होते हैं !'

एक ओर तो नोरा अपने भय, पीड़ा,
प्रताड़ना का विवरण देते हुए मुझे
पना स्वप्न भी सुनाती चली जा रही है
एक ओर वह जार-जार रो भी रही
तो एक ओर डाक्टर, दवा आदि की

वात भी उन्मादिनी-सी किये जा रही
है । ऐसा मैं अनुभव करता हूँ—इस अंतिम
अवस्था में भी कि नोरा इस आकस्मिक
आघात से अपनी मानसिक स्वस्थता और
संतुलन गंवाती जा रही है और स्यात्
उसका मस्तिष्क विकृत होता चला जा
रहा है । अपनी इस स्थिति में वह मेरी ओर
ध्यान नहीं दे रही है कि मैं भी कुछ कहने
को इस अंत समय में आकुल हूँ । स्वर गले
से फूट नहीं रहा है कि मैं नोरा को आवाज
दूँ, इंगित जताने के लिए अब तो हाथ भी
नहीं उठ रहे । केवल आंखें कब तक
टिकेंगी ? लगता है कि अब यह इच्छा
अवसाद बनकर साथ ही चली जायेगी ।

एक ही कसक अब बाकी रही कि
इस विश्व के समक्ष अपना संपूर्ण
समर्पित दान हेतु और कला की अमरता
प्राप्ति की पूर्ति हेतु—अपनी इस मृत्यु-
अनुभूति को किसी तरह इस पत्थर
में सजीव कर दूँ । पूर्ण भाव तन्मयता
को बेजान और अनगढ़ पत्थर में
उतार दूँ, ताकि विश्व की बाकी
समस्त चेतना इस अनुभूति को हृदय से
ग्रहण कर सके । नोरा को मैं बार-बार
आंखों से संकेत देकर, छेनी-हथौड़ी उठा
कर, विदाई देने को, प्रार्थना करने को,
अपने को पूर्ण करने को कहता हूँ । किंतु
वह मात्र प्रलाप में रोती ही चली जा रही
है । मुझे इस अवस्था में भी बार-बार
खीझ आ रही है कि हा ! जीवन भर का
प्रेम ! तू इस असह्युयातना और विवशता

हिंदी डाइजेस्ट

लोग कम्प्यूटर जेब में रखकर चलेंगे

कम्प्यूटर की उपयोगिता दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। वह दिन दूर नहीं लोग अपनी जेबों में कम्प्यूटर रखकर चलेंगे और वह उन्हें पूरे दिन के कार्यक्रम की सूचना देता रहेगा।

लोगों की यह धारणा कि कम्प्यूटर की सेवा से बेरोजगारी बढ़ेगी उसी भ्रामक है जिस प्रकार टेलीफोन के प्रचलन के पूर्व लोग यह सोच रहे थे कि टेलीफोन की सेवाएं शुरू हो जाने के बाद संदेशवाहकों की संख्या घट जायेगी। आज टेलीफोन उद्योग में देश में लगभग १० लाख लोग काम कर रहे हैं और वह अब बिलकुल नहीं, आवश्यकता बन गया है। इसी प्रकार कम्प्यूटर की सेवाएं व्यापक पैमाने पर हो जाने पर रोजगार के अनेक अवसर उपलब्ध होंगे।

टाटा कंसलटेंसी सर्विसेज के अंतर्गत देश के ६ स्थानों तथा विदेशों में १२० पर कम्प्यूटर की सेवाएं प्रारंभ की गयी हैं। हम कम्प्यूटर के क्षेत्र में विदेशों अत्याधुनिक तकनीकी जानकारी एकत्र करते रहते हैं।

कम्प्यूटर का उपयोग एकाउंट, दिनचर्या, कृषि आदि जीवन के हर क्षेत्र में जा सकता है।

— एफ. सी. को

प्रभारी निदेशक, टाटा कंसलटेंसी सर्विसेज, बंबई-४००

की दशा में भी काम नहीं आ रहा है और मेरी अपूर्ण इच्छा अपूर्ण ही रहने जा रही है। हा ! हृदय की चिरसंचित अभिलाषा नोरा ! न तो तुझे जीवन भर चाह कर भी अपना सका और न तो कला की पूर्ति की प्राप्ति का गौरव और संतोष ही मुझे मिला। मैं तो जीवन भर जीता रहा और जीवन जीकर भी मृत्यु-रस का पान करता रहा। तुझे अपना की इच्छा जगी भी तो अब, जब अलविदा बोल रहा हूं। आजीवन तो कला के माध्यम से तुझे ही

पाने की तैयारी करता रहा और जुटा जाता है अपने प्रेम की सार्थकता सिद्ध करने में तथा अपनी मेरी आंखें मुंदने लगी हैं, चेतना विस्ती होती चली जा रही है, मैं मृत्यु के अंतिम क्षणों में लिपटा अंतिम स्वर—नोरा का किर आं भरा चीत्कार—सुनता जा रहा हूं। लक्ष्य अधिक ही विकल ... बहुत ही अलग तस्वीर ... नोरा का ... नोरा का आहार ... 'छोड़ गये बालम ... तू ... मुख की

— राममंदिर के निकट, टंडवा, गुरुकुल

पलामू (बिभोजन)



आपका स्वास्थ्य :

अजीर्ण और उसका उपचार



वैद्य पं. सुरेश चतुर्वेदी

नवनीत के पाठकों के लाभार्थ हम 'आपका स्वास्थ्य' स्तंभ इस अंक से प्रारंभ कर रहे हैं।

यह एक ऐसी बीमारी है, जो अनेक बीमारियां पैदा कर देती है। साधारणतः अजीर्ण रोग में आहार का पाचन ठीक प्रकार से नहीं होता, जिससे आहार-रस का निर्माण योग्य मात्रा में नहीं होता और खून, मांस, चर्बी आदि धातुओं का निर्माण भी योग्य मात्रा में नहीं होता है।

अजीर्ण रोग में पाचकाग्नि विकृत हो जाती है। जब यह वायु से विशेष प्रभावित होती है तो पाचकाग्नि विषम हो जाती है, जिससे पेट में भोजन के बाद अफारा हो जाता है, पित्त का अधिक प्रकोप होता है, अग्नि तीक्ष्ण होकर आहार को जला देती है और यदि कफ की प्रधानता रहे तो अग्नि मंद होकर पेट में आंव को बढ़ाकर आंव पैदा हो जाती है।

लक्षण : वैसे इन अवस्थाओं के अलग-अलग लक्षण होते हैं, लेकिन साधारणतः आहार का पाचन ठीक प्रकार से न होने, मुख की विषमता, पतले दस्त होना या गैर-भोजन की शिकायत, पेट में वायु बनना, अरुचि, जी मिचलाना, उब-

काई, छाती में जलन, थोड़ा खा लेने से भी पेट में भारीपन आदि लक्षण पाये जाते हैं।

उपाय : इस रोग में लवणभास्कर चूर्ण दो ग्राम की मात्रा से दिन में दो बार ठंडे पानी के साथ तथा भोजन के बाद द्राक्षासव दो चम्मच की मात्रा से पानी मिला कर सेवन करें और चित्रकादि वटो की एक-एक गोली मुंह में रखकर दिन में ३-४ बार चूसने से बड़ा लाभ होता है। इसके अतिरिक्त अग्नि संदीपन चूर्ण तथा हिग्वाष्टिक चूर्ण का प्रयोग भी किया जा सकता है।

पथ्य : इस रोग में भारी पदार्थों का सेवन—जैसे बेसन, उड़द, आलू, मावा, आदि से बने हुए पदार्थों से परहेज करना चाहिये।

हरा धनिया, पुदीना तथा अदरक की चटनी विशेष लाभकारी होती है। लौकी, तोरई, परवल, टिंडे, पालक, मूली तथा फलों में पपीता, संतरा, जामुन, फालसा एवं शहतूत विशेष उपयोगी हैं।



बाल-कथा :

अनोरवा कैमरा



विश्वबन्धु

पापा उस दिन देर से ऑफिस से लौटे थे। घर आते ही पहला सवाल किया, 'रीतू बेटी ने खाना खाया कि नहीं?'

जवाब मम्मी की ओर से जब 'नहीं' में मिला, तो वे परेशान हो गये। थोड़ा झल्लाये भी। रीतू से क्या कहते? वह तो कब की सो चुकी थी।

छह साल की नन्ही रीतू है। दिल्ली से उसके मामा आये थे कुछ दिन पहले। साथ में एक सुंदर कैमरा भी लाये थे। रीतू को कई पोजों में बैठाकर दनादन 'क्लिक' करते जाते। एक से बढ़िया एक तस्वीरें खिंचतीं जातीं। उन्हें धुलवाया जाता और तैयार हो जाने पर वे तस्वीरें रीतू को दे दी जातीं। रीतू उन्हें मुहल्ले भर में सबको दिखाती हुई घूमती। कभी कोई न मिलता, तो अपने टॉमी को ही दिखाती और वह भी पूंछ हिला-हिलाकर अपनी खुशी जाहिर करता।

एक दिन रीतू खुद ही कैमरे से तस्वीरें खींचने की जिद कर बैठी। मामा ने रीतू को कैमरा पकड़ा कर तस्वीरें खिंचवा दीं। वे तस्वीरें जब धोयी गयीं, तो एक से बढ़ कर एक 'कार्टून' सामने आये।

पापा का चेहरा लौकी जैसा लंबोतरा

हो गया।

मम्मी की एक आंख ही गायब गयी। 'टॉमी' बबर शेर नज़र आने लगे कपड़ों पर इस्तरी करके लाने वाला घं गधा नज़र आने लगा।

रीतू पर तो जैसे फोटोग्राफर का नशा ही सवार हो गया। आखिर मम्मी भी तंग आ गये। उन्होंने कैमरा उठाकर अल्मारी में बंद कर दिया। नन्ही रीतू रो-धोकर चुप हो गयी, लेकिन उसकी आंख उठते-बैठते कैमरे पर ही रहती।

एक दिन पड़ोस के खन्ना अंकिल बीमार पड़ गये। शहर के बड़े अस्पताल में भर्ती कराया गया। शाम को चार बजे पापा, मम्मी और मामा उन्हें देखने गये। नौकर रामू को हिदायत दे गये। वह तब तक रीतू की देखभाल करते रहे।

उधर रीतू ने देख लिया था कि मम्मी कैमरे को अल्मारी में बंद करना भूल गई हैं। वह पढ़ने की मेज़ पर ही छूट गया। रीतू का मन किया कि अभी लपक कर कैमरा उठा ले और सारे कमरे की तस्वीरें खींच डाले। लेकिन कैसे खींचती?

नवनीत

१३८



का पहरा जो लगा हुआ था ।

बहुत सोच-विचार कर रीतू ने एक बाल चली । नौकर रामू को पट्टी पढ़ाई कि घौराहे के पासवाले बंगले की राधा उसकी गुड़िया ले गयी है । दो दिन हो गये हैं— अब तक वापस नहीं लायी है । इसलिए रामू तुरंत जाकर उसे ले आये ।

रामू ठहरा आज्ञाकारी नौकर । तुरंत रीतू बेटी का हुकम बजाने चल पड़ा ।

जैसे ही रामू आंखों से ओझल हुआ, रीतू ने कैमरे को धर दबोचा । पहली फोटो उसकी गुड़ियों ने खिचवाई । टॉमी ने भी सुनहरा मौका दिया गया और उसकी भी दो-तीन तस्वीरें खिच गयीं । फिर सोचा कि बाहर निकलकर मुर्गियों को दड़वे तक जायें । बहती गंगा में वे भी

हाथ धो लें । उनके भी कुछ शानदार 'शॉट्स' ले लिये जायें ।

दड़वे में मुर्गियां दुबकी हुई थीं । रीतू ने बहुत चाहा कि वे चलें-फिरें ताकि फोटो 'धांसू' खिचे, पर मुर्गियां तो मुर्गियां आज दुबकने के ही मूड में थीं ।

खीझ कर रीतू ने दड़वा खोल दिया । अब तो मुर्गियों की पूरी फौज ही बाहर आ गयी । सेनापति मुर्गेराम भी बाहर आये और सीना तानकर 'कुकड़ू कू' की बांग दी जैसे कोई चतुर बल्लेबाज आते ही 'छक्का' लगाये ।

रीतू ने कैमरा मिलाया । अभी वह 'रेडी' कहने वाली ही थी कि हंगामा मच गया । हुआ यह कि टॉमी ने मुर्गियों पर जबरदस्त हमला बोल दिया । एक-दो

मुर्गियां धर दबोचीं । बाकी फड़फड़ाकर भागीं । एक-दो मुर्गियां इसी हड़बोंग में रीतू के कंधे पर सवार हो गयीं । रीतू घबरा गयी और कैमरा उसके हाथ से छूट कर तेज़ी से एक पत्थर से जा टकराया । कैमरा चकनाचूर हो चुका था ।

छुट्टियां बीत जाने पर मामाजी तो बिदा हुए लेकिन अब तो रीतू ने जिद पकड़ ली कि वह नया कैमरा खरीदेगी ।

रीतू की जिद दिन दूनी, रात चौगुनी होने लगी । अब तो उसने बाकायदा भूख-हड़ताल भी शुरू कर दी थी । कभी बेमन से खाना खा ले, तो कभी वह भी नहीं ।

इतवार के दिन पापा ने पास-पड़ोस के सभी बच्चों को बुलाया । सब ड्राइंगरूम में आकर बैठ गये । रीतू भी रुआंसी-सी वहां आयी और एक तरफ खड़ी हो गयी । पापा ने एक बड़ा पैकेट मेज़ पर रखा और एक छड़ी उस पर घुमाकर जादूगर जैसी स्टाइल में कहा,

‘देखो, बच्चो ! दुनिया का एक नया और अनोखा कैमरा जिससे वे तस्वीरें भी खिंचती हैं जो सामने न हों ।’

बच्चे खुशी से चिल्लाये, ‘ऐसा कैमरा हम जरूर लेंगे ।’

पापा ने कहा, ‘अच्छा, तो झटपट इसे खोल डालो ।’

बच्चे मिलकर उसे खोलने लगे । रंग-विरंगे कागज़ों की एक के बाद दूसरी पर्त शुरू हो जाती । आखिरी पर्त जब खुली, तो एक रंग का डिब्बा और ब्रश बाहर

निकलकर हैरत से बच्चों को देखने लगे । बच्चों ने नाक-भौंह सिकोड़ी, कैसा कैमरा ?’

पापा ने तुरंत रंग में ब्रश डुबोया । एक कागज़ पर उसे चलाने लगे । रुककर बोले, ‘राधा ! यह क्या बना । राधा हंसते-हंसते लोट-पोट हुई, ‘मंकी !!’

दूसरे बच्चे भी खिलखिलाये, ‘आ याने बंदरमल !’

पापा ने समझाया, ‘बच्चो ! यहां कोई बंदर नहीं था, फिर भी कैमरे ने बंदरराम की तस्वीर दी न ?’

बच्चों ने हामी भरी ।

पापा ने कहना जारी रखा, ‘यहां इस कैमरे की खासियत है । लेकिन चलाने के पहले मन में एक तस्वीर खींचनी पड़ती है, फिर वही कागज़ बन जाती है ।’

उस दिन की मीटिंग तो खत्म किंतु रीतू की वीमारी का पूरा इलाज गया ।

अब वह इस नये अनोखे कैमरे से बढ़िया एक तस्वीर खींचती है और बच्चों की चित्र-प्रतियोगिताओं में सफलित करने को भेजती है ।

तुम उसकी उस दिन की खुशी अंदाज़ लगा सकते हो, जब उसे एक प्रतियोगिता में पहला इनाम मिला - ३/१३९ विष्णुपुरी, नवाबगंज, कानपुर



एक पत्र मृत्युंजय उपाध्याय का कवि चंद्रमौलि उपाध्याय की हत्या पर

[संपादक नवनीत के नाम]



आदरणीय भाई, प्रणाम ।
आपने श्री चंद्रमौलि उपाध्याय और उनकी पत्नी की आत्महत्या की खबर अवश्य पढ़ी या सुनी होगी । विगत ६ जून, १९८२ को यह दुर्घटना घटी किंतु हमें कलकत्ते में यह खबर १६-१७ जून को प्राप्त हुई । सभी परिचित मित्र, चंद्रमौलि की स्मृति में डूब गये । घटना का पूरा विवरण जानने की इच्छा से पं. छविनाथ मिश्र 'पागल' ने चंद्रमौलिजी के छोटे भाई गंगाधर उपाध्याय को उनके गांव बरैनी, पो. कछवा, जिला मिर्जापुर (उ. प्र.) के पते पर एक पत्र लिखा । श्री गंगाधर उपाध्याय का जो मर्यादित उत्तर मिला उससे ऐसा लगता है कि उन्होंने आत्महत्या नहीं की अपितु उनके मुहल्ले और निवास-भवन (यारपुर, खगोल रोड, पटना) के कुछ अपराध कर्मियों ने धन के लोभ में उनकी हत्या कर दी, और माल वगैरह सभी गायब करके २४ घंटे बाद आत्महत्या की खबर बड़ी तेजी से फैलायी ।

श्री गंगाधर के अनुसार चंद्रमौलिजी ने घटना के डेढ़ हफ्ते पूर्व अपने घरवालों

के नाम लिखे एक पत्र में अपनी जान और माल पर खतरे का उल्लेख करते हुए लिखा था कि उनकी हत्या कर दी जायेगी, यदि वे किसी प्रकार जान बचाने में सफल हो सके तो बनारस पहुंच जायेंगे । इसी आशय की एक रिपोर्ट उन्होंने गर्दनियां बाग थाने (पटना) में भी लिखायी थी । पर कोई कुछ नहीं कर सका और चंद्रमौलि की हत्या हो गयी । उनके परिवारवालों को दुर्घटना की सूचना न तो स्थानीय पुलिस ने ही दी और न उस मकान-मालिक ने जिसके मकान में वे रहते थे, और न उस व्यक्ति ने जो उनके साथ में रहता था । उन्हें १३-१४ जून को घटना की सूचना अपने गांव के पास के किसी सज्जन से प्राप्त हुई ।

चंद्रमौलिजी के भाई श्री चंद्रधर उपाध्याय, गंगाधर उपाध्याय तथा गांव के दो अन्य सज्जन उनके अंतिम पत्र के साथ पटना गये । चंद्रमौलिजी की लाश, चुपचाप दो-चार दिन पूर्व ही, उनके साथ रहने वाले व्यक्ति ने, डोम से जलवाने की व्यवस्था की थी, किंतु मरघट पर खोजते हुए अचानक ही पहुंच जाने वाले

१९८३

१४१

हिंदी डाइजैस्ट

साहित्यकार (श्री चंद्रकिशोर पांडेय) ने दाह-संस्कार किया। घरवाले फूल भी न चुन पाये। चंद्रधर उपाध्याय ने उनके पत्र की फोटोस्टेट कॉपी स्थानीय पुलिस को दी। पुलिस ने इंकवायरी करने की बात कही और उनके साथ रहने वाले व्यक्ति से बड़ी मुश्किल से चंद्रमौलिजी का थोड़ा-बहुत सामान घर वालों को दिलाया।

चंद्रमौलिजी के कमरे में गहनों के खाली डिब्बे मिले, पर ४०-५० हजार रुपये के गहनों में से एक भी गहना न मिला। चंद्रमौलिजी कुछ वर्षों से सूखी चाय पत्ती का कारबार कर रहे थे, उसमें उन्होंने लगभग डेढ़-दो लाख रुपया कमाया था, ऐसा अनुमान है। गहनों के अलावा नगद रुपये भी न मिले और न ही उनकी हस्त-लिखित एक भी पांडुलिपि और न वे सैकड़ों पत्र जो उन्हें समय-समय पर कल-कत्ते तथा अन्य स्थानों से परिचितों, मित्रों तथा परिवारवालों ने लिखे थे। पुलिस जो कुछ थोड़ा-बहुत दिला सकी,

उसे ही लेकर घरवाले बड़ी विकट स्थिति में पटना से घर पहुंचे।

प्रश्न उठता है कि उनकी पांडुलिपि तथा पत्रों के गायब होने का रहस्य है? क्या अपराधियों ने ये सभी इत्यादि इसलिये तो नहीं गायब कर दिए कि पुलिस को उनके घरवालों तथा मित्रों से के पते न प्राप्त हो सकें और वह किसी विश्व सूचना न दे पाये, और मामला चुपचाप रफा-दफा कर दिया जाये? हो भी ऐसा ही रहा है। उनकी हत्या हुई ऐसी सूचना पटने के श्री कुमारेंद्र के भी मुझे मिली है। गंगाधर ने कहा कि यदि साहित्यिक-संगठन माध्यमों से आवाज बुलंद की जाये इंकवायरी के लिए बिहार सरकार दबाव डाला जाये तो, अपराधी पकड़े जा सकते हैं और उचित दंड मिल सकता है रुपये-पैसे न मिलें न सही, उनकी लिखित सामग्री उपलब्ध हो पाती बड़ा काम होता।



चीनी कहावतें

किसी की छाया पर पैर रखना अशिष्ट तो है ही, अशुभ भी है।

०००

लंबे वस्त्र लंबे पांवों को छिपा लेते हैं।

०००

घास के नीचे सोने से, उसके ऊपर कष्ट भोगना बेहतर है।

०००

साहस के साथ सतर्कता की भी आवश्यकता है, इसलिए जिगर बड़ा दिल छोटा रखने की जरूरत है।



पवनार से देवनार



ऋषियों का हृदय उदार, भावना कोमल तथा मन परदुःख-कातर होता है। उनके लिए जीवमात्र समान है। पशु-पक्षी के दुखजनित पीड़ा से भी आंदोलित होकर उनकी करुणा बरस पड़ती है। ऋग्वेदी की विरह-व्यथा से उद्वेलित महर्षि वाल्मीकि के मुख से 'मा निषाद् प्रतिष्ठांत्वमगमः शाश्वती समाः' मन्त्र फूट पड़ा। कालांतर में यही विश्व काव्य की प्रथम पंक्ति बन गयी। रामायण की रचना का आधार और कविता का मानदण्ड होने का गौरव भी इसे ही मिला। धन्य हैं वे ऋषिगण जो परोपकार के लिए ही भी शरीर धारण करते हैं।

उसी प्रकार गोवंश की मूकवेदना से आहत होकर आधुनिक मुनि स्व. आचार्य विनोबा भावे ने शांति सेना के सदस्यों को पवनार से देवनार जाकर अनुशासित सत्याग्रह करने की अनुमति दे दी थी। फिर क्या था, देश के कोने-कोने से हजारों स्त्री-पुरुष, बंबई के उपनगर बांद्रा से देवनार तक छा गये।

इन हजारों सत्याग्रहियों के भोजन, निवास एवं यातायात की विकट समस्या थी; किंतु संसार में सभी महत् कार्य प्रभु की कृपा से संपन्न हो जाते हैं। उक्त समस्या के समाधान हेतु घाटकोपर सर्वोदय हास्पिटल के प्रमुख ट्रस्टी श्री कांतिभाई शाह ने सत्याग्रहियों के ठहरने आदि की व्यवस्था सहज भाव से कर दी। शेष सारा भार अखिल भारत कृषि-गो सेवा संघ ने अपने ऊपर ले लिया। संघ के कार्यध्यक्ष श्री सेठ तुलसीदास भाई एम. विश्राम के सफल संचालन में सब कुछ सुचारु रूप से चलता रहा और सत्याग्रह अभी भी जारी है।

सत्याग्रहियों के जत्थे प्रति दिन देवनार जाते हैं, गिरफ्तारियां होती हैं; उन्हें छोड़ा जाता है। यह तारतम्य गंगा की धारा की भांति एक वर्ष से यानी ११ जनवरी १९८२ से अनवरत चल रहा है।

इसमें सारा देश एक हो गया है। सरकार ने यह तथ्य परख लिया है, परंतु वह वोट की राजनीति के कारण घूँघट डाले बैठी है। समय की पुकार है कि वह आगे आकर सत्य का दामन थाम ले और सच्चे अर्थों में आत्मनिर्भरता की नीति को गले लगाये।
अस्तु -

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे संतु निरामयाः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु माकश्चिद् दुःखभागभवेत्॥

—डॉ. रामसकल शर्मा



खलील जिवान कृत बोध-कथा :

पहचान



भगवान ने सौन्दर्य और कुरूपता की देवियों को एक साथ बनाया, और दोनों एक साथ ही पृथ्वी पर आयीं ।

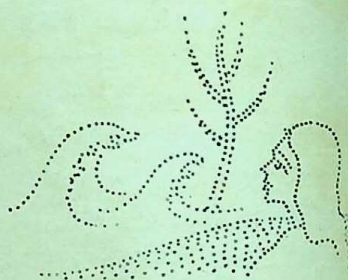
पृथ्वी पर आकर उन्हें एक सुंदर झील दिखायी दी । दोनों का मन उसमें स्नान करने का हुआ ।

आसपास कोई न था, इसलिए वे अपने-अपने वस्त्र उतारकर स्नान करने के लिए झील में उतरीं ।

स्नान करते-करते जब सौन्दर्य की देवी काफ़ी दूर निकल गयी तो कुरूपता की देवी को, जो आरंभ से ही सौन्दर्य की देवी से ईर्ष्या करती चली आ रही थी, मौका मिला, सौन्दर्य की देवी से बदला लेने का ।

वह चुपके से बाहर आयी, और सौन्दर्य की देवी के वस्त्र स्वयं पहनकर, तथा अपने वस्त्र वहीं छोड़कर, वहां से चुपके से चलती बनी ।

जब सौन्दर्य की देवी झील से बाहर आयी, तो वह निर्वस्त्र थी । मगर, सौन्दर्य बिना अपने वस्त्रों के भी खिलता है ।



उसने कुरूपता की देवी के वस्त्र पहने । फिर भी, सौन्दर्य की देवी को वस्त्र तो पाने ही थे । उसने कुरूपता की देवी का पीछा करना आरंभ किया और आज तक कर रही है ।

आज भी स्थिति वही है, जो तब । कुरूपता की देवी सौन्दर्य की देवी के वस्त्र पहने घूम रही है, और सौन्दर्य की देवी ने कुरूपता की देवी के वस्त्र पहन रखे ।

उनकी सच्ची पहचान करने के उनके वस्त्रों को नहीं, स्वयं उन्हें पहचाना जाता है । पर, अधिकांश लोग पहचाना तो वस्त्रों पर आकर हो जाती है ।



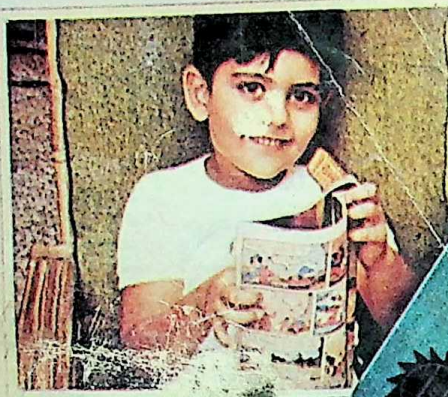
मु. रामकृष्णन् द्वारा भारतीय विद्याभवन, क. मा. मुन्शी मार्ग, बंबई-४००००० के लिए प्रकाशित तथा श्रीवेंकेश्वर प्रेस, ३६/४८ खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग बंबई-४००००४ में मुद्रित ।

सेन्चुरी के अनुपम वस्त्र



१००% सूती कपड़ों के लिये
दि सेन्चुरी स्पिनिंग एण्ड मैन्युफेक्चरिंग कंपनी लिमिटेड, बम्बई

जब मैं बड़ा होऊंगा न,
कॉमिक्स ही पढ़ूंगा,
और बिस्किट ही खाऊंगा..!



बच्चों को भाये पारले ग्लुको-
स्वाद में निराले, शक्ति से भरपूर



पारले
ग्लुको

0. B
मदन की पत्निका
नी' से समन्वित

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न व नी न

दी डाइजैस्ट

मृ
42
28-2-83

विष्णु



14
जब मैं
कॉपि

सेन्चुरी के अनुपम वस्त्र



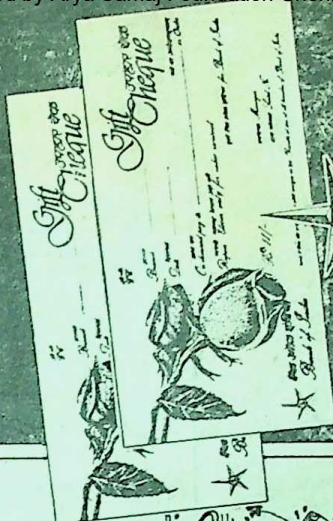
१००% सूती कपड़ों के लिये
दि सेन्चुरी स्पिनिंग एण्ड मैनुफेक्चरिंग कंपनी लिमिटेड, बम्बई

11,25,51,101 श्रेष्ठ उपहार!

मनचाही खरीद कर पाए:

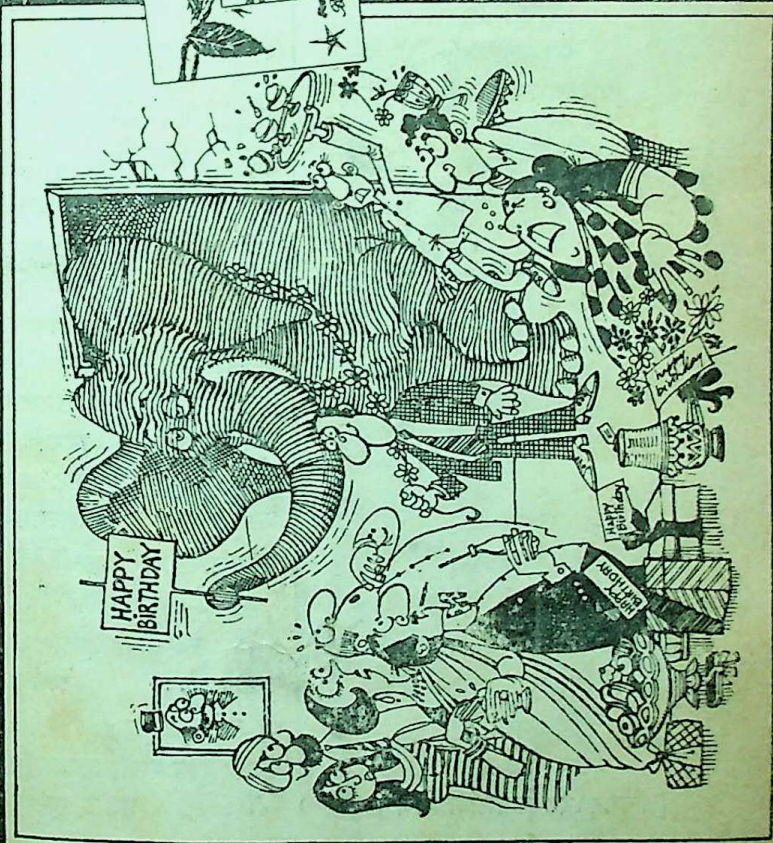
दिलने में जुमावने और साथ ही साथ
* रु. 11, रु. 25, रु. 51, और रु. 101 की
शुभराशियों में उपलब्ध.

बैंक ऑफ इंडिया के उपहार चेक
बैंक की सभी गहरी और कच्चाई गालों में
उपलब्ध हैं और भारतभर की किसी भी
शाखा में भुजाए जा सकते हैं.



बैंक ऑफ इंडिया
(भारत सरकार का उपक्रम)

उपहार



नवनीत

संस्थापक

कन्हैयालाल मुंशी श्रीगोपाल नेबटिया
भारती : स्था. १९५६ नवनीत : स्था. १९५२

*

संपादक

धीरेन्द्रकुमार जैन

सह-संपादक

गिरिजाशंकर त्रिवेदी

उप-संपादक

रामलाल शुक्ल

*

संयोजक

शान्तिलाल तोलाट

*

प्रकाशक

सु. रामकृष्णन्

*

आवरण-चित्र

शिव-पार्वती

शिवरात्रि प्रसंगे

[चित्रकार : कमलाक्ष शेणै]

कार्यालय : भारतीय विद्या भवन

वर्ष : ३२; अंक :

नवनीत : आपकी निगाह में
साहित्य और सामाजिक परिवर्तन

डा. महीप सिंह

भारतीय मन जादू की पुड़िया नहीं...

डा. मदन मोहन तरुण

सांची : एक पुनरावलोकन

डा. शैलेन्द्रनाथ कपूर

श्रीवत्स : एक प्रमुख जैन लक्षण

डा. अशर्फीलाल श्रीवास्तव

प्रार्थना

अविस्मरणीय श्री श्रीमां आनन्दमयी

सरोजिनी कुलश्रेष्ठ

क्या जो सामने है, वही कला है ?

एनी डिल्लार्ड

हमारे युग के एक शलाका-पुरुष

कुलपति श्री कन्हैयालाल मुंशी

रामलाल शुक्ल

जुंग के नाम लिखे फ्रायड के तीन पत्र

राजस्थान का उपेक्षित खजुराहो :

भण्ड देवरा रामस्वरूप जोशी

'मैं पुजारी होकर कभी देवता....'

विमल मित्र

हमारी सर्वव्यापी भ्रष्टता का कारण

क्या..... बी. के. नेहरू

दो कविताएं सिद्धेश

खाली हाथ वाली अम्मा (कहानी)

प्रबोध कुमार गोविल

कुलपति मुन्शी मार्ग, बम्बई-४०० ००७

फरवरी १९८३

सातवें महाद्वीप की यात्रा

भूमित्र देव ७६

मेरी इमेज सन्हायलाल ओझा ८०

यह आदमी चालाक नहीं है

अमर चतुर्वेदी ८४

कमाऊ (कहानी) कृष्णा अग्निहोत्री ८८

काल को जीतने का उपाय

'शिवपुराण' से १७

ईरान के वैदिक ऋषि जरथुस्त्र

डॉ. महावीर सिंह १००

अधूरी कहानी सतीशकुमार गुप्ता १०४

उद्घोष (कविता) श्रीराम वर्मा १०८

एक कालमुक्त निरंतर दौड़ (कहानी)

जगज्जति वराड ११२

प्रम कीवता में कश्मीर की नूरजहाँ

किरण शंकर मंत्री ११६

सजन के क्षणा का अनुभव

डा. रघुवंश १२०

बाजाराव-मस्ताना का प्रेम-कहानी

सावित्री परमार १२५

आपका स्वास्थ्य वैद्य सुरेश चतुर्वेदी १४१

एक इबारत : दो सतरें (कविता)

स्व. डा. बल्देव प्रसाद मिश्र १४२

चित्र-सज्जा : वी. एन. ओके. कमलाक्ष

शेणै, टी. ए. राणा, डा. विष्णु भटनागर,

सतोष जड़िया, के. रवीन्द्र, आर. डी.

पुरोहित ।



अमृतं तु विद्या

भारतीय विद्या भवन

१९३८ में सम्पादित पूर्णतया शिक्षा, कला और संस्कृति के प्रति समर्पित, जनसेवी धर्मादा न्यास, सम्पादक : कुलपति क. मा. मुन्डी, अध्यक्ष : श्री धरमसी म. खटाऊ, उपाध्यक्ष : श्री गिरधारीनाथ मेहता,

सहयोगी प्रतिष्ठान

१- मुम्बारेखी संस्कृत महाविद्यालय २-मास्त्रीय संस्कृत परीक्षा विभाग ३-मूल संस्कृत परीक्षा विभाग ४-टीला विद्यालय ५-मुम्बारी माल गोयनका स्नातकोत्तर अध्ययन एवं शोध प्रतिष्ठान ६-मुम्बारी नगर मंदिर (मुसलमान) ७-मुम्बारी रामजी शाला मुसलमान ८-भारतीय सहीत शिक्षापीठ ९- भारतीय नर्तन शिक्षापीठ १०-भारतीय इतिहास विभाग ११-प्रकाशन विभाग, मुसल गिरिबिंदी, मुम्बारी लालिहवाली १२-भारतीय विद्या (भारतीय विद्या प्रेस) लि., बम्बई बम्बई (अंग्रेजी पाठिक), सविंद (संस्कृत प्रैमासिक), नवभारत हिन्दी डायरेक्ट (हिन्दी मासिक), नवभारत सम्बंध (मुद्रतोरी मासिक) १३-राष्ट्रीय अंतर्देशीय बीर शायरिका सम्बंध योजना १४-अंतराविर्षिक योजना १५-राष्ट्रीय भतारवासी समिति १५- म. म. काना कालेज और म. म. विज्ञान विभाग मम्बई (अंग्रेजी) १६-अनुपमराय मेहता पब्लिश स्कूल (नवी दिल्ली) १७-हृदयगिरि सोमानी कानेज, बला एवं विज्ञान (मोहोरी, बम्बई) १८- मरदार पेटेल अधियायिकी कालेज (अंग्रेजी) १९- रमछोदनाल बरखतनाल विज्ञान कालेज (अहमदाबाद) २०- रमछोदनाल बरखतनाल कला एवं वाणिज्य कालेज (अहमदाबाद) २१-खोसोराय बाणिज्य कालेज, (शहोरी) २२- कला एवं विज्ञान कालेज (शहोरी) २३- स्वामीनारायण पब्लिशिंगक (शहोरी) २४- वी. अनुपमराय कानिदास खोसो महिला कालेज (आमनगर) २५- व. स. मेहता विज्ञान कालेज (भारवारी) २६- रमछोदनाल प्रसाद संश्लेष एवं प्रबंध विद्या प्रतिष्ठान (मुमिंटे) प्राणनाल देवकर, मानजी संश्लेष एवं प्रबंध विद्या, कालेज, बम्बई, मरदारा पेटेल जलसंश्लेष कालेज, नवी दिल्ली; हिलासल भगवानी जलसंश्लेष कालेज अहमदाबाद तथा बम्बोरी; सोमानी जलसंश्लेष कालेज, एनाकुलम्; इडोया, बरगोड, गुदुर, हिराबाद, भंमोरी तथा त्रिपुर में स्थित जलसंश्लेष कालेज २७- बलपरायण मेहता कालेज भाया अकरावो, नवी दिल्ली २८- ज. ह. बाबिया स्कूल (अंग्रेजी) २९- बलपरायण मेहता पब्लिश स्कूल (विद्यालय) इडोया तथा भारवारी ३०-भवन का विद्या मंदिर, एलामकर, एनाकुलम् ३१- कोचीनवाड पर भवन का स्कूल, मोहोरी ३२- बलपरायण मेहता पब्लिश स्कूल (विद्यालय) भारवारी, इलाहाबाद से पाठ ३३- भवन का पब्लिश स्कूल, भेज, पम्ब-भुदपुर, हिराबाद ३४- संस्कृत संस्थाएं (संस्कृत विषय परिषद; भारतीय ली सेवा संघ; ज्योतिष परिषद (बम्बई) ३५- संस्कृति पाठकघर एतसी।

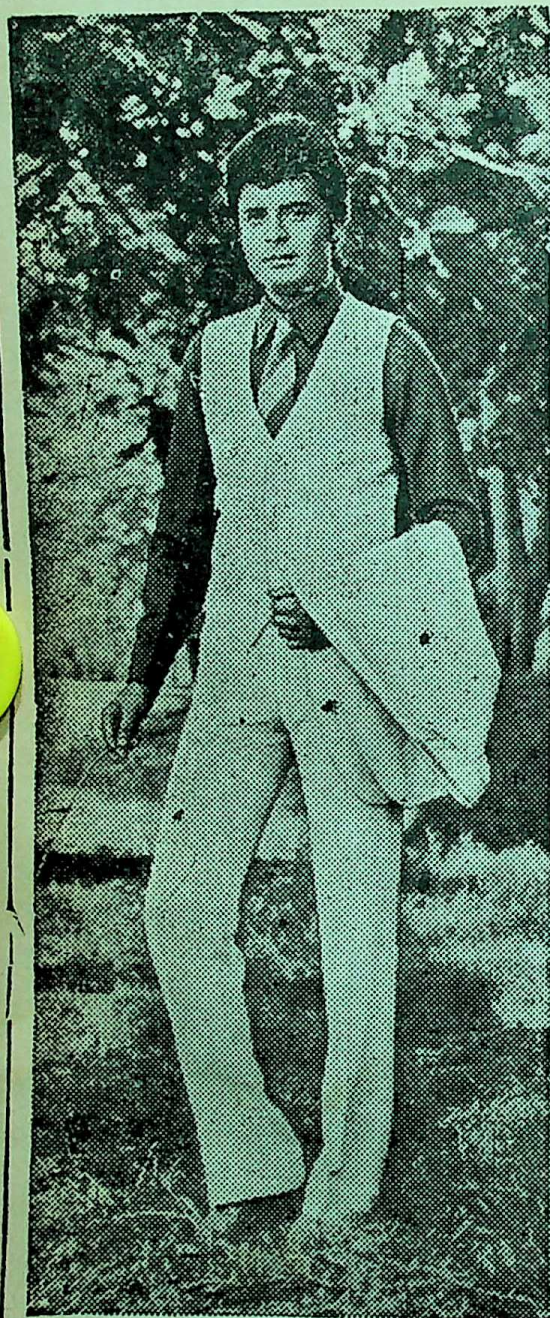
केन्द्र और कार्यालय

बहुमदाबाद, बंगलौर, बडोदा, भोपाल, मुंबई, कलकत्ता
पंढरी, कोयंबूर, डाकोर, दिल्ली, एराकलम, मुंदर, शिरापुर, बम्बई,
जामनगर, काकावाडा, कानपुर, मराठ, मरुत, मंगलौर, मुम्बई,
पुणे, सिवोन्, धीनगर, त्रिपुर, बिजाबाद, मुम्बई, बरन (बुधकाल) ।

भारतीय विद्या मण्डल

के.एम.मुन्शी मार्ग, जोषाटी, बम्बई-४००००७

फोन : ३५१४६१



ताज़गी की एक लहर

जियाजी सूटिंग, शर्टिंग और
कॉटन प्रिंट्स आजकल मिलने का
आम कपड़ों से बिल्कुल भिन्न है।
जियाजी यानी सही सूटिंग, शर्टिंग
और कॉटन प्रिंट्स की तलाश में
देर तक भटकने के बाद एक ताज़गी की
लहर। आप अपने आपको कुछ और
ज़्यादा पसंद करने लगेंगे।
क्योंकि जियाजी सूटिंग, शर्टिंग
और कॉटन प्रिंट्स विशेष आपके
लिए ही तो बनाए गये हैं। जियाजी
आस पास बिसरे सुनेपन में
ताज़गी भर देते हैं।



जियाजी
सूटिंग-शर्टिंग
कॉटन प्रिंट्स

जियाजीराव कॉटन मिल्स लिमिटेड
बिला नगर, बवालियर (म.प्र.)



नवनीत : आपकी निगाह में



नवनीत का अगस्त मास का अंक मिला। पढ़ गया हूँ। 'अनुभूति के क्षण' की समीक्षा छाप कर आपने मुझ पर जो कृपा की है, उसके लिए मन से आभारी हूँ। शाब्दिक आभार को आप औपचारिक ही न मानें। नवनीत में जिस दृष्टि को आप लेख, कविता, कहानी, स्मरण आदि के माध्यम से भास्वर कर रहे हैं, वह आपकी चेतना का ही प्रतिरूप है। आपके समस्त सृजन में एक दिव्य बिंदु रहता है, वह बिंदु अध्यात्म, रस-राग, जीवन-मूल्य और भारतीय जीवन-दर्शन से संपृक्त होने के कारण पृथक् पहचाना जाता है। 'अनुत्तर योगी' ने आपके इस दिव्य बिंदु को पाठकों के लिए अधिकाधिक उजागर कर दिया है। अगस्त के अंक में निर्मल वर्मा के लेख के संदर्भ में निर्मला चौहान का गंभीर लेख इसी तथ्य को रेखांकित करता है। 'अनुत्तर योगी' को निर्मला चौहान ने जिस रूप में गुह्य भारतीय चिंतन धारा का उपन्यास माना, वह सही दृष्टि है। लेख गंभीर ही नहीं, विचारोत्तेजक और तर्क सम्मत भी है। इस अंक के अन्य लेख-कविता आदि में भी आपका मूल्यबोध स्पष्ट झलक रहा है।

—डॉ. विजयेन्द्र स्नातक, दिल्ली

०००

नवनीत के अगस्त अंक के लिए, बधाई।

भारत की श्रेष्ठ पत्रिकाओं में नवनीत का स्थान निश्चित है। विशुद्ध भारतीय उपन्यास में 'अनुत्तर योगी' का विवेचन पढ़ कर अच्छा लगा। आशा है हिंदी आलोचकों का ध्यान इस ओर मुड़ेगा। अभी तक उन्होंने इसकी उपेक्षा की है। मुझे 'मत्स्येन्द्रनाथ' का अंश गड़बड़ लगा। 'नाथ साधना पद्धति' अलग चीज है। डॉ. उपाध्याय चमत्कारों में उलझ गये हैं। 'अनुत्तर योगी' की गहरी पैठ इसमें नहीं दीखी।

—निरंजन छ. जमीदार, इन्दौर

०००

नवनीत मिल रहा है। उसकी दार्शनिकता और अध्यात्म चिंतना कुछ विशिष्ट पाठकों के लिए एक अतींद्रिय मुख और शांति की सामग्री है और कतिपय नये आयाम हमारे भ्रष्ट होते सांस्कृतिक और नैतिक मूल्यों के प्रति चिंता भी प्रकट करते हैं। मगर उसका वैविध्य और साहित्यिक रूप थोड़ी ज्यादा सामग्री की मांग करता है। नवनीत बौद्धिक जगत के नैतिक आदर्शों के प्रति एक समर्पित डाइजैस्ट है, जो किसी समय 'रीडर्स डाइजैस्ट' का विकल्प माना जाता था। हम चाहे उसे किसी का विकल्प न बनने दें और न किसी की नकल, मगर उसकी मौलिक सत्ता की स्थापना आपके संस्पर्श में इस प्रकार

हिंदी डाइजैस्ट

होना आवश्यक है कि वह मानदंडों की धुरियां बदल दे। नवनीत के पास दिव्य और भव्य बौद्धिकता का आध्यात्मिक संसार तो है, लेकिन उसका यह अध्यात्म आपसे उस विस्फोट को चाहता है, जिसे आपने 'अनुत्तर योगी' के महावीर में किया है।

नवनीत जन-आकांक्षाओं और सर्जक-पाठकों की रुचियों को उकसाने के लिए यदि अधिक प्रखर तेवर धारण करे तो अच्छा लगेगा।

—रमेश दवे, भोपाल

०००

नवनीत की मैं नियमित पाठिका हूं। यह पत्रिका साहित्य-जगत में अमूल्य निधि है। इसका प्रत्येक अंक सुसज्जित व ज्ञान-वर्धक होता है। विशेषकर आपके आलेख बहुत प्रभावित करते हैं। उन्हें पढ़ते समय मैं भाव-विभोर हो जाती हूं—प्रतीक्षा-काल विह्वल कर देता है। नया अंक पाते ही सर्वप्रथम विषय-सूची में आपका नाम जिस पृष्ठ पर उद्धृत होता है—पहले वही पढ़ती हूं। मई और जून के अंकों में, 'आत्माओं के अनोखे शिल्पी स्वामी मुक्तानन्द परमहंस' की जन्म-जयंती के प्रसंग पर आपका आत्मस्पर्शी व स्वानुभव पढ़कर असीम सुख का अनुभव हुआ—साथ ही आश्चर्य-मिश्रित हर्ष। क्या श्रद्धा में इस प्रकार अखंड डूबा जा सकता है? पूरा तथ्य मन को झकझोर देने वाला था। एक प्रश्न अभी भी मेरे सन्मुख अनुत्तरित

नवनीत

खड़ा है कि वह कौन-सा मोहपाव सिद्ध पत्त उतपीड़न था, जो श्रीचरणों को अकलुष से धो रहा था। सांवना की जगह प्राप्त न डना पाकर भी हृदय को उसी क्षेत्र में उड़ेल रहा था, और अंत में सनाथ कमाह की शक्तिपात का आशीर्वाद प्राप्त कितो मेरे इस महान वरदान को पाकर उस राग से मुक्त हो सके! अभी भी जि में प्राण डूब रहे हैं कि क्या आप लोग तरह ही कवि का मानस होता है? पाहूं। मे से यह कैसा पर्दा!

—पदमश्री चोपड़ा, एक प्रव एवं ज्ञा

०००

नवनीत का नया अंक देखकर पत्र लिखने के लिए बाध्य होना नवनीत स्तरीय साहित्य के साथ ही कन के मामले में भी अन्य पत्रिका बाजी मारने में सफल रहा। वास्त जहां नवनीत के पृष्ठों में उच्च कोटि साहित्य है, वहीं उच्च कोटि की नवनीत के माध्यम से मुखरित होने है। साहित्य एवं कला का उच्च संयोजन नवनीत के रूप में देने के हम आपको धन्यवाद के सिवा और दे सकते हैं? —कुंअर रवींद्र, शह

०००

आपकी मई मास की पत्रिका न में 'आत्माओं के अनोखे शिल्पी मुक्तानन्द परमहंस' पढ़कर गदग गया। आत्मा से आनंद की हिलोरी लगीं। आप कितने भाग्यवान हैं, जो

सिद्ध पुरुष के संसर्ग में आकर आत्मा के ओं कलुष धोने में लगे हैं। जून माह का अंक गह प्राप्त न हो सका, क्योंकि मैं एक इंटोरियर वे क्षेत्र में कार्यरत था। आगे क्या हुआ? जून माह की पत्रिका यदि आपको कष्ट न हो कि तो मेरे पते पर शीघ्र भिजवा दें।

—शिवस्वरूप गुप्त, रुद्रपुर

०००

मैं नवनीत पत्रिका का नियमित पाठक हूँ। मेरी समझ में इस पत्रिका का स्थान हिंदी साहित्य में सर्वोच्च होता चाहिए। एक प्रबुद्ध पाठक के लिए मानसिक शांति एवं ज्ञानवर्द्धन की उपयुक्त सामग्री इस पत्रिका में आरंभ से अंत तक मिलती है। पिछले महीने जुलाई एवं अगस्त '८२ के अंक पढ़ने को मिले। मैं उत्कृष्ट उपन्यास पढ़ने में अपना समय व्यतीत करता हूँ। कारखाने के नीरस वातावरण में उत्कृष्ट उपन्यास संजीवनी का काम करता है। मैंने आपकी पुस्तक 'अनुत्तर योगी' की समीक्षा पढ़ी। रांची में बहुत खोजा, परंतु किसी भी पुस्तक विक्रेता के पास पुस्तक न मिली। कृपया पुस्तक मिलने का पता एवं मूल्य की जानकारी दें।

—शत्रुघ्नशरण, रांची

०००

वर्षों से मैं नवनीत का पाठक रहा हूँ। अनेक पत्र-पत्रिकाओं से होते हुए जब नवनीत पर निगाह पड़ी तो ऐसा लगा कि यही वह चिर प्रतीक्षित पत्रिका है, जो अपनी उच्चस्तरीय मार्मिक रचनाओं से

पाठक की संवेदना को छूकर अपनी ओर आकृष्ट कर सकती है। अगस्त '८२ के नवनीत में संकलित उमाकांत मालवीय का 'प्रेम की प्रतीति' ऐसा ललित निबंध है, जिसकी भाषा-शैली सटीक, पद्यात्मक दृष्टांत एवं तथ्यपूर्ण दृष्टिकोण अंतर को झकझोर देते हैं। विद्वान लेखक को मेरी ओर से बधाई। बद्रीप्रसाद गुप्त का गीत एवं मनीषा वियाला की कहानी 'उम्मीदों से आगे' भी अच्छी लगी।

—राजेन्द्र कुमार झा, मुंगेर, बिहार

०००

अगस्त '८२ का नवनीत अंक पढ़ा। 'सौंदर्य-बोध की ऊंचाइयाँ' नापने वाले साहित्यकार रामावतार 'चेतन' 'आशीर्वाद के लिए' कविता के माध्यम से पूरी संजीदगी के साथ अभिभूत कर गये। 'पंडित बाबा हजारीप्रसाद द्विवेदी' का संस्मरण मार्मिक एवं हृदयस्पर्शी रहा। 'ब्रज की महाभाव चेतना' और 'प्रेम की प्रतीति' आदि निबंध उत्प्रेरक तथा दिशा बोधक हैं। हार्दिक शुभकामनाओं सहित।

—ओंकारनाथ मिश्र, खोरी

०००

बहुत बार आपको पत्र लिखने को सोचा, पर 'फिर कभी' के ऊपर छोड़ दिया। नवनीत पत्रिका नहीं, एक आत्मीय बंधु है। मन के उस स्वर को छूता है, जो हम किसी से व्यक्त नहीं कर सकते, क्योंकि केवल अनुभव के आधार पर ही वहां जाया जाता है और वह अनुभव हर कोई

समझ नहीं पाता, लिहाजा तृप्ति नहीं हो पाती। जून-जुलाई के अंक में आपने जो अपने परमहंस श्री मुक्तानंद स्वामी के संपर्क में आये अनुभव लिखे हैं, वे अभिभूत कर गये, क्योंकि उसे तो कोई भुक्तभोगी ही समझ सकता है।

—अनुला वैद्य, नयी दिल्ली

०००

एक वर्ष बाद नवनीत नवंबर अंक खरीदा और पढ़ा। नवनीत अन्य मासिकों-सी हो गयी थी। पढ़ना छोड़ दिया था। परंतु दीपावली अंक क्या कहना! पत्रिका को संग्रहणीय ही नहीं—‘विश्वज्ञानकोष’ बनाने के लिए साधुवाद! अनेक लेख मानसिक तुष्टि, आध्यात्मिक दृष्टि देते हैं। शुभारंभ अद्वितीय विद्वान डॉ. माचवे—‘काली कलकत्तेवाली’ से करते हैं। मेरी दृष्टि उनके आदि-तत्त्व महामाया को गेटे के शब्दों में ‘इटर्नल-वूमन’ (चिरंतन-नारी) पर रुक जाती है। सोचता हूं, क्या बहुभाषाविद् लेखक ने चिरंतन नारी अनुवाद कर गेटे के भाव को सही पकड़ा है? शायद इटर्नल के लिए ‘अक्षय’ (गीता अध्याय १०, श्लोक ३३) अथवा ‘शाश्वत’ शब्द उपयुक्त थे और वूमन के लिए ‘माता’ अथवा मातृ (देवीसूक्त २५) या देवी। चिर+अंत+न से गड़बड़ी है और नकारात्मक अंत होने से भावशैथिल्य भी।

—डॉ. केदारनाथ सिंह, जौनपुर

०००

कहना चाहूंगा कि नवनीत जब से

नवनीत

आपके हाथ में आया है, तब से वह उत्तर प्रगति की ओर अग्रसर हो रहा है। जब नवनीत देखता हूं, लगता है अच्छी चीज़ देख रहा हूं। उसकी बड़ी खूबी तो यह है कि वह आतङ्क-भड़क और राजनीति से कोसों दूर है। नवनीत में वैज्ञानिक चरित्र छप रही है, देखकर बहुत प्रसन्नता फैलती है। नवनीत में वैज्ञानिकों की जीवनी बहुत कम मिलती हैं। नवनीत इस अभाव की पूर्ति करेगा, ऐसी आशा है।

—रमेश गुप्त, गरौडा, झांसी

०००

नवनीत नवम्बर' ८२ का अंक संयोग से राउरकेला में एक प्रति के रूप में प्राप्त हुआ। अधिक शाली एवं रोचक यह विशेषांक पॉल ब्रंटन का रहस्यात्मक खोजी 'योगी, जिसने मृत्यु को जीत लिया' तुर्गनेव का 'गूंगा-बहरा'। महाकवि की 'चुनौती' कविता। डॉ. विश्वनाथ उपाध्याय का 'मत्स्येन्द्रनाथ' के अन्य जितने भी शीर्षक हैं छवि को उत्कृष्ट बनाने में महत् देते हैं। 'अनुत्तर योगी' का मन को अपने आरंभिक भाग की खींचता है। सामान्य पाठक मूल को खरीद कर पढ़ सकेंगे, मुझे इससे किस्तों के सहारे प्रकाश जाय, जिससे हम जैसे पाठकों की

कृपालु पाठकों से नम्र निवेदन

कागज की निरंतर बढ़ती महंगाई और छपाई के खर्चों में होती जा रही वृद्धि के कारण हमें जनवरी - १९८२ से नवनीत के चंदे की दरों में वृद्धि करने के लिए बाध्य होना पड़ा है। आशा है कि नवनीत के कृपालु पाठक नवनीत को अपना पूर्ववत् स्नेह प्रदान करते रहेंगे और उसे अपने बहुमूल्य सुझावों से लाभान्वित करते रहेंगे।

जनवरी १९८२ से नवनीत के चंदे की नयी दरें :

भारत में : १ वर्ष : २८ रु.; दो वर्ष : ५४ रु.; ३ वर्ष : ८० रु.।

विदेशों में (समुद्री डाक से) : १ वर्ष : ८० रु.; २ वर्ष : १५० रु.; ३ वर्ष : २२० रु.।

श्रीलंका, पाकिस्तान, बांग्लादेश :

१ वर्ष : ४० रु.; २ वर्ष : ७८ रु.; ३ वर्ष : ११५ रु.।

विदेशों में हवाई डाक से : (पाकिस्तान, श्रीलंका, अफगानिस्तान और वर्मा)

१ वर्ष : १२५ रुपये। अन्य सभी देशों के लिए २०० रुपये।

मासिक प्रति : २०५ रुपये।

— व्यवस्थापक

क कुछ मिट जाय। नवनीत आज भारतीयता की लीर उससे ऊपर उठकर सार्वभौम जगत की जिस नवनीत से साक्षात्कार करा रही है, समग्र मानवता के लिए दिशाबोध है। वही ऐसी सामग्री अन्यत्र दुर्लभ है। नवीत की स्पष्ट खासियत मेरी दृष्टि में इसलिए भी है कि इसकी हरेक सामग्री अत्यंत होती है, अजन्मा होती है। भारतीय सत्य की वाहक पत्रिका नवनीत अवगत बनी रहे मेरी अंतस् अभि-प्राप्ति है।

— प्रभाकरप्रसाद पीयूष, रांची।

०००

नवनीत दीपावली नववर्षा के साथ कुछ दिन चैन से व्यतीत हुए। सच, जीवन यह कुछ दिनों वाला हिस्सा नितांत

आत्म-सुख और आत्मानंद के मध्य सजा-संवरा है पल-पल। इस अंक में एक साथ देश के अनेक महान लेखक-विचारक अपनी रचनाओं के साथ मिले, मन-मस्तिष्क को चैन मिला, जी जुड़ा गया मेरा, मानसिक तृष्णा तुष्ट हुई है। एक तरफ बच्चन, वीरेन्द्रकुमार, पॉल ब्रंटन, वीरेन्द्र मिश्र, भवानी प्रसाद मिश्र, विमल मिश्र, नागर और जैनेंद्र की दार्शनिकता से अनुभूत रहा हूं तो दूसरी ओर माचवे, गिरिजाशंकर त्रिवेदी, तोलाट, पाषाण, सुमन, राजी सेठ आदि के साहित्य को जी रहा हूं। आपको इस हेतु धन्यवाद देता हूं, हार्दिक अभिनंदन करता हूं। लेखकों को भी हार्दिक बधाई।

— सुरेश सरल, जबलपुर

डा. महीप सिंह का साहित्य-चिन्तनात्मक लेख



साहित्य और सामाजिक परिवर्तन

साहित्य किस सीमा तक और किस प्रकार सामाजिक परिवर्तन में अपनी भूमिका का निर्वाह कर सकता है यह दोषती प्रश्न साहित्य के संदर्भ में अनेक मूलभूत मुद्दों को उभारता है। ये मुद्दे साहित्य के उद्देश्य एवं प्रभाव से सम्बन्धित हैं, साथ ही साथ साहित्य के स्वभाव और चरित्र के प्रति भी हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं। साहित्य के उद्देश्य या प्रयोजन को लेकर प्राचीनकाल से भारतीय और पाश्चात्य काव्य-शास्त्री चर्चा करते रहे हैं, परन्तु साहित्य का गहरा सामाजिक सरोकार होना चाहिए, उसे सामाजिक परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करना चाहिए और समाज के पीड़ित-दलित वर्ग का पक्षधर होना चाहिए ऐसी चिन्ता और चर्चा अपेक्षाकृत आधुनिक युग की देन है। इस दृष्टि-विकास में निश्चित ही मार्क्सवादी दर्शन का गहरा प्रभाव है।

प्राचीन भारतीय साहित्य में साहित्य को सामाजिक परिवर्तन की भूमिका के साथ जोड़कर देखने की प्रवृत्ति लगभग नहीं है। आचार्य मम्मट के मत से काव्य के प्रयोजन यश-प्राप्ति, धन-प्राप्ति, व्यव-

हार-ज्ञान, अमंगल का विनाश, करना सिद्धि और कांता-सम्पत्ति मधुर हजारी देना है। ध्यान देने से स्पष्ट होगा सही प्रयोजन व्यक्ति केन्द्रित प्रयोजन यश और धन की प्राप्ति कवि को व्यवहार-ज्ञान, अमंगल का विनाश लोक सिद्धि और कान्ता-सम्पत्ति उपदेश व्यक्तिनिष्ठ कामनाएं हैं। भी रचना को सामाजिक संदर्भ प्राप्त होता है जब वह व्यक्ति के स्थापित मान्यताओं, परम्पराओं आदर्शों के प्रति शंका, प्रश्न और उत्पन्न करती है। प्राचीन भारतीय में कवि की दृष्टि शंका उत्पन्न करने उभारने और नकार उत्पन्न करने नहीं थी। यदि ऐसी बात होती तो लव्य, शंबूक, कर्ण जैसे सामाजिक द्वारा सताए गये चरित्रों के कवि उन स्थितियों का उपयोग था। परन्तु वह ऐसा नहीं करता। कहा जा सकता कि जहां कहीं चरित्रों का उल्लेख है वह इनके होकर व्यवस्था की पुष्टि के पक्ष

इसका कारण क्या है? क्या प्राचीन कवि को अपने चारों

समाज और उसकी व्यवस्थाओं में कहीं कुछ अन्यायपूर्ण और अनुचित नहीं दिखायी देता था ? क्या ऐसी स्थितियां नहीं थीं जिनके परिवर्तन की कामना वह कर सकता ? अथवा सामाजिक व्यवस्था में किसी प्रकार के परिवर्तन की कामना करना उसके संस्कार में ही नहीं था । पं. पुरजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसे भारतीय संहृदय का संस्कार कहा है—‘दीर्घकाल से भारतवर्ष इस बात में विश्वास करता रहा कि किये का फल जरूर भोगना पड़ता है । इस जन्म में नहीं तो अगले जन्म में उसे अपने कर्म का फल भोगना ही पड़ेगा । उसे बच सकना संभव नहीं है । इस जन्म में जो कुछ भी मनुष्य पाया है, वह पूर्व जन्म के पुण्य या पाप का परिणाम है और इस जन्म में जो पुण्य या पाप करेगा वह भी उसको भोगना ही पड़ेगा । इस विश्वास का प्रभाव भारतवर्ष के साहित्य पर पड़ा है । इस साहित्य में वह वस्तु एकदम नहीं मिलेगी जिसे पश्चिम के साहित्य में समाज के प्रति विद्रोह भावना कह कर बहुत बड़ा नाम दिया गया है । वस्तुतः प्राचीन हिन्दू कवि इस जगत के समस्त विधान को सामंजस्यपूर्ण और अनुचित मानता है । धनी या निर्धन होना करने पुण्य या पाप का परिणाम है, अच्छे

या बुरे कुल में जन्म लेना सुकृत या दुष्कृत का फल है, इसमें कहीं विरोध या विद्रोह की जरूरत ही नहीं है । साहित्य में इसीलिए ‘रिवोल्ट’ (विद्रोह) नामक वस्तु का यहां एकदम अभाव है ।

विरोध या विद्रोह का जन्म असंतोष से होता है । व्यक्ति या एक वर्ग जब अपनी स्थिति से असंतुष्ट होता है, तो वह उससे उबरना चाहता है । परन्तु स्थापित मान्यताएं और व्यवस्थाएं उसे उबरने नहीं देतीं, क्योंकि इससे निर्धारित सीमाएं, टूटती हैं । ऐसे असंतोष के कुछ उदा-



डा. विष्णु भटनागर

हरण प्राचीन भारतीय साहित्य में प्राप्त हो जाते हैं ।

विश्वामित्र का ‘राजर्षि’ से ‘ब्रह्मर्षि’ पद की प्राप्ति के लिए

आजीवन संघर्ष करना, एकलव्य का धनुर्विद्या में कुलीन राजकुमारों जैसी दक्षता प्राप्त करने का प्रयास करना या शंबूक का, यह जानते हुए भी कि वह शूद्र है और तप-साधना उसके लिए एक वर्जित फल है, तपस्या-रत होना—इस प्रकार के कुछ उदाहरण हैं ।

अपनी स्थिति से उबरकर बेहतर स्थिति को प्राप्त करने के व्यक्तिगत या जातिगत प्रयास को, जो इस देश में सदियों से चला आ रहा है और आज भी है, समाज

हिंदी डाइजैस्ट

शास्त्री एम. एन. श्रीनिवास 'संस्कृतीकरण' की प्रक्रिया कहते हैं। अन्य समाज शास्त्री प्रो. योगेन्द्र सिंह के अनुसार संस्कृतीकरण प्राचीन विशाल परम्परा द्वारा स्थापित समाज के आदर्श ढांचे और सिद्धांतों के प्रति विरोध का एक रूप है। यह एक प्रकार से कर्म के हिन्दू सिद्धान्त की अस्वीकृति है जो जन्म के कारण लोगों के कार्य को विभिन्न स्तरों पर नियमबद्ध करता है।

प्राचीन भारत में बौद्ध और जैन धर्मों का जन्म स्थापित और स्वीकृत परम्पराओं और मान्यताओं के विरोध में होता है और अपनी अभिव्यक्ति के लिए संस्कृत को छोड़ कर प्राकृत भाषाओं को अपनाने की प्रवृत्ति सामाजिक परिवर्तन के कार्य में भाषा और साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका की ओर संकेत करती है। चार्वाक का लोकायत दर्शन पुनर्जन्म और कर्मफल के सिद्धान्तों द्वारा अन्याय को सहने और यथास्थिति बनाये रखने के प्रयासों को उस युग (ईसा की तीसरी शती) में सबसे बड़ी चुनौती थी। आधुनिक द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के कितने ही सूत्र चार्वाक के सिद्धान्तों में प्राप्त हो जायेंगे, जब उसने यह कहा कि—'जब तक जीना चाहिए सुखपूर्वक जीना चाहिए, यदि आपके पास साधन नहीं है तो दूसरों से ऋण लेकर भी मौज करना चाहिए। श्मशान में शरीर के जल जाने पर किसने उसको लौटते हुए देखा है' तो यह उस

नवनीत

सामाजिक व्यवस्था की तीव्र प्रतिक्रिया थी जिसके द्वारा आत्मा, पुनर्जन्म, परलोक और इन पर आधारित पुण्य का भय दिखाकर सुविधा प्राप्त समाज के अधिसंख्य लोगों को दीनता, कष्ट और अन्याय को सहते चले जाने के लिए प्रेरित रहता था। चार्वाक ने परलोक और की अवधारणा को पूरी तरह अस्वीकार दिया था और तत्कालीन मान्यताओं की खिल्ली उड़ाते हुए था—वेदादि धूर्तों और स्वार्थियों की नाएं हैं, जिन्होंने लोगों से धन लिए ये सज्जवाग दिखाये हैं। यज्ञ में और आहुति पशु यदि स्वर्ग को जायेगा तो मान अपने पिता को ही उस यज्ञ में नहीं मारता? मरे हुए प्राणियों की वस्तुओं को ले जाना भी व्यर्थ है। किसी ब्राह्मण को भोजन करा दें या न शिष्ट दे दें, जहां रास्ते में आवश्यक होगा वह वस्तु उसे मिल जायेगी।

मानव जीवन में इतनी निर्वाध पीड़ा की चरम स्थिति और अन्याय चरम परिणति पर आती है। विद्वान् दार्शनिक था, परन्तु प्रेमचन्द चारक कहानी 'कफ़न' के घीसू और माधो गंवार थे। दृष्टव्य है कि परलोक मान्यता के सम्बन्ध में दोनों का कितना समान है। घीसू कहता है—

प्रति जगाने से क्या मिलता है, आखिर जल ही तो जाता है। कुछ बहू के साथ तो न जाता।

माधो कहता है—‘दुनिया का दस्तूर नहीं तो लोग वामनों को हजारों रुपया क्यों देते हैं। कौन देखता है, परलोक में मिलता है या नहीं।’

चार्वाक का चाहे कोई सम्प्रदाय न चला हो, चाहे उसके विचारों की कोई सम्परा स्पष्ट रूप से इस देश में विकसित हुई हो, परन्तु उसके मत और तर्क का प्रभाव इस दृष्टि से तो दिखायी पड़ता ही है कि परवर्ती चिंतन-प्रणालियों और आन्दोलनों में तर्क करने और जीवन प्रत्यक्षवादी दृष्टिकोण अपनाने का प्रवृत्ति बढ़ता चला जाता है।

पं. हजारीप्रसाद द्विवेदी मानते हैं कि तो जीवन के गंभीरतर समझे जाने वाले क्षेत्रों का साहित्य में समाधान खोजना है। आधुनिक प्रवृत्ति है। परन्तु यह भी देखा जाता है कि मध्ययुग के प्रारम्भ होते होते इस देश में ब्राह्मण और शास्त्र पोषित समाज-व्यवस्था की कुरूपता के प्रति जो विरोध-भाव पनप रहा था और सामाजिक परिवर्तन की जो आकांक्षा जन-मानस में जागृत हो चुकी थी उसे अनेक तत्कालीन मन्त्र-विचारकों ने अपने साहित्य द्वारा अभिव्यक्ति का रूप देना प्रारम्भ कर दिया। मध्यकाल का इस प्रकार का सबसे अधिक भावशाली आन्दोलन—भक्ति आन्दोलन है—। परन्तु इसके पूर्व के सिद्ध—नाथ

साहित्य में भी, जिसने भक्ति आन्दोलन की पूर्वपीठिका तैयार की, यह स्वर मुखर था। सिद्धों ने प्रचलित धार्मिक रूढ़ियों, अन्धविश्वासों और सामाजिक असमता पर अपनी तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त की थी। उस युग में ब्राह्मण वर्ग धर्म के स्थिर स्वार्थ का प्रतीक था। उसकी श्रेष्ठता को चुनौती देना व्यवस्था के नियन्ता को चुनौती देना था। उसी के साथ ही समाज-व्यवस्था में सबसे निम्न स्तर पर जीने वाली जातियों, जिन्हें सामाजिक-धार्मिक स्तर पर कोई भी अधिकार प्राप्त नहीं था, के लिए भक्ति सहित, जीवन के अन्य क्षेत्रों में सम्मान और समता की मांग करना सामाजिक परिवर्तन की दृष्टि से सर्वाधिक प्रगतिशील और अग्रगामी मांग थी। महत्व की बात यह है कि इस दोहरे-तेवर को लेकर अपने सामने की सभी धार्मिक-सामाजिक और व्यवसाय गत दीवारें तोड़ते-फांदते हुए वे लोग आगे आये जो सदियों से उस व्यवस्था में घुटते हुए जी रहे थे। आठवीं-नौवीं शताब्दी के सिद्धों में (श्री राहुल सांकृत्यायन के अनुसार चौरासी) अधिसंख्य ब्राह्मणतर विशेष रूप से शूद्र जातियों से लोग थे। इन सिद्धों में विशेष उल्लिखित सिद्ध सरहपा कहते हैं—ब्राह्मण रहस्य को नहीं जानते। वे बेकार ही वेद पाठ किया करते हैं—माटी, जल, कुशा लेकर मंत्रोपचार करते हैं और घर में बैठकर धुएं से अपनी आंखों को कष्ट देते हैं। भगवावेशी ये

परमहंस जनता को उपदेश देते हैं और औचित्य-अनौचित्य में अंतर न जानते हुए भी ज्ञानी का दंभ पालते हैं।

साहित्य द्वारा सामाजिक परिवर्तन हो सकता है या नहीं और यह परिवर्तन कितना दूरगामी तथा प्रभावशाली हो सकता है, इस पर विवाद हो सकता है। परन्तु इतना तो निर्विवाद है कि समाज में अनेक कारणों से आ रहे परिवर्तन को साहित्य शब्द देता है, उसे मुखर करता है, उसकी दिशा बनाता है, परिवर्तन के स्वर को दूर-दूर तक पहुंचाता है, उसे प्रोत्साहित करता है और आने वाले पीढ़ियों के लिए उस प्रयास और स्वर को जीवित रखता है। इसके साथ ही व्यापक परिवर्तन का भी, स्वल्प परिवर्तन का भी यथास्थिति का भी और परिवर्तन विरोधी शक्तियों के आपसी टकराव का वह दस्तावेज बनता है।

भारतीय भाषाओं के भक्तिकालीन साहित्य के अध्ययन से मध्ययुगीन परिवर्तन चेतना का अनुमान लगता है जो हमारे आधुनिक साहित्य की पृष्ठभूमि बनता है।

भारतीय समाज में वर्णाश्रम व्यवस्था और उसका पोषक सामन्तवादी तंत्र सदियों से ही सामाजिक शोषण और अन्याय का मुख्य आधार रहा है। इस शोषण की पृष्ठभूमि में अनेक आर्थिक और प्रभुता सम्बन्धी कारण काम करते रहे हैं। इस समाज व्यवस्था की रीढ़ 'असमानता' है। वर्ण व्यवस्था असमानता

पर टिकी है। फिर विभिन्न वर्णों के बीच की अनेक जातियां-उपजातियां असमान भेदों में बटी हुई हैं। हर वर्ण अपने ही अंदर की किसी उपजाति बड़ी या छोटी है। कान्यकुब्ज ब्राह्मण ब्राह्मणों से अपने आपको श्रेष्ठ मानता है। परन्तु उनमें भी बीस बिस्वों के ब्राह्मण 'उच्चता' के सामने कम बिस्वों के ब्राह्मण की 'उच्चता' घटती चली जाती है। 'उच्च-नीच' की यह धारणा अत्यन्त निराली समझी जाने वाली जातियों के मध्य उतनी ही जागृत और स्वीकृत हो जितनी उच्च जातियों में।

सामाजिक परिवर्तन की दृष्टि से दृष्टि किया जाने वाला प्रत्येक प्रयास प्राचीन काल से ही इस असमानता को जन्म और पुष्ट करने वाली वर्ण व्यवस्था का विरुद्ध किया जाने वाला प्रयास रहा। इस ओर हिन्दी भक्ति काव्य की दो प्रमुख धाराएँ इस निर्गुण और सगुण या निराकारत्व और साकारवादी उस युग की परिकल्पना का भी यथास्थितिवादी या समझौतावादी शक्तियों का प्रतिनिधित्व करती हैं।

सामाजिक संरचना, सामाजिक संस्थानों यहां तक कि सामाजिक परस्पर (Interaction) और व्यवहार सभी सामाजिक मूल्यों पर निर्भर हैं। सामाजिक संरचना या सामाजिक संस्थाओं में कोई भी परिवर्तन उसी होता है जब सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन होता है। भारतीय संदर्भ में, विशेषतः

के सामाजिक मूल्यों की समस्याओं को समझने बिना सामाजिक परिवर्तन की समस्या को नहीं समझा जा सकता।

भारतीय जीवन में 'कर्म' के मूल्य की वर्चा इस निबंध के प्रारम्भ में की गयी। यह मूल्य इस देश की बहुसंख्या के मानस में संस्कार रूप में व्याप्त है। यह मूल्य हर व्यक्ति की वर्तमान स्थिति का दायित्व उसके पूर्व या इस जन्म के कर्मों पर डालता है। किसी भी व्यक्ति की वर्तमान स्थिति की व्याख्या उसके पूर्व जन्म के कर्मों का हवाला देकर कर दी जाती है। इस प्रकार एक दृष्टि से कर्म का सिद्धान्त समाज-विरोधी परिणतियों को प्रभावश्रय देता है। किसी भी व्यक्ति की वर्तमान दुर्दशा का कारण निहित स्वार्थों वस्तुशाली सामाजिक शक्तियां हो सकती हैं। रहा इस ओर हमारा ध्यान नहीं जायेगा, यदि धारम इस मूल्य में अपनी आस्था रखते हैं। कारण यह मूल्य हमें दूसरों के कष्टों के प्रति परिक्रदासीन और सरोकारहीन भी बनाता प्रोत्साहित करता है। क्योंकि उनके जो भी कष्ट हैं उनका कारण स्वयं उनके कर्म हैं। यह दृष्टिकोण कसकर व्यक्ति को अपनी स्थिति के प्रति असहाय पर और दूसरों की स्थिति के प्रति उदासीन बना देता है।

मध्ययुगीन निर्गुण संत 'कर्म सिद्धान्त' सामाजिक तालिक रूप से विश्वास करते हुए भी उसी इसकी मूल्यवत्ता को ठुकराते हुए दिखाई देते हैं। कर्मफल के सिद्धान्त को पूरी विवेकपूर्वक नकारते हुए नामदेव (दर्जी), कबीर

१८३

(जुलाहा), दादू (धुनिया), रैदास (चमार), सेन (नाई), नाभादास (डोम), सदाना (कसाई), धन्ना (जाट), आदि छोटी समझी जाने वाली जातियों के लोग भक्ति के क्षेत्र में घुसकर अपने अधिकार और अपनी समता-समकक्षता का दावा करने लगते हैं। नामदेव कहते हैं—

नाना वर्ण गवा उनका एक वर्ण डूध
तुम कहां के ब्रह्मन हम कहां के सूद।

तो कबीर उनसे दो कदम आगे जाकर कहते हैं—

जौ तू ब्राह्मण ब्रह्मणी जाइआ।
तउ आन वाट काहे नहीं आइआ ॥
तुम कत ब्राह्मण हम कत सूद ॥
हम कत लोह तुम कत दूध ॥

और गुरु नानक सदियों से पोषित, शास्त्र-स्वीकृत समाज-व्यवस्था में सर्वाधिक पीड़ित वर्ग के एकदम पक्षधर बन कर कहते हैं—

नीचां अंदरि नीच जाति नीची हूं अति नीच
नानक तिनके संग साथ बडियां सूं किया
रीस ॥

संत कवियों की ये रचनाएं प्राचीन समाज-संरचना के सोपानात्मक संगठन : (Social heirarchy) के मूल्य का भी पूरी तरह निषेध करती है।

फ्रांसीसी विचारक अगस्ते कॉमते : (Auguste Comte) सामाजिक परिवर्तन को बौद्धिक विकास का परिणाम मानता है। इस कार्य में वह शिक्षा को सर्वाधिक महत्व देता है जिसके होने से समाज के

हिंदी डाइजेस्ट

कुछ वर्ग सुविधा प्राप्त स्थिति में आ जाते हैं और जिसके अभाव में अन्य वर्ग सुविधाहीन होकर शोषण के शिकार बनते हैं।

प्राचीन भारतीय समाज की संरचना में यह बात बहुत महत्वपूर्ण है। शिक्षा पाने और शिक्षा देने का अधिकार ब्राह्मण वर्ग का ऐकान्तिक अधिकार था। अन्य वर्गों को वह अपनी इच्छा और सुविधानुसार शिक्षा देता था। वणिक थोड़ी सी व्यावहारिक शिक्षा तक सीमित था और शूद्र तो इस परिधि में आता ही नहीं था। इस प्रकार समाज की सम्पूर्ण बौद्धिक सक्रियता का केन्द्र एकमात्र ब्राह्मण था और वह समाज के लिए अपने स्वार्थों के हितों की रक्षा के लिए नियम (धर्म-शास्त्र-स्मृतियाँ) बनाया करता था।

बौद्ध और जैन युग से ही शिक्षा पर ब्राह्मण के ऐकान्तिक अधिकार को चुनौती मिलने लगी। इन धर्मों के अनेक विद्वान् अब्राह्मण जातियों से आये। भक्तिकाल में तो ब्राह्मण की (पुस्तकीय) शिक्षा को बारबार झुठलाया गया है—

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ पंडित भया न कोइ
(कवीर)

ब्राह्मण वर्ग ने जिस शिक्षा से अन्य वर्गों को वंचित रखकर उन्हें ज्ञानहीन रखा था, उस वर्ग में एकाएक ज्ञान की पिपासा बढ़ जाती है। परन्तु यह ज्ञान ब्राह्मण की शिक्षा से नहीं मिल सकता था क्योंकि वह उसे इसका अधिकारी ही नहीं मानता था। इसलिए ज्ञान का माध्यम

नवनीत

बना 'गुरु' और उसकी कसौटी 'आत्मानुभव'—

सफल जनमु मोकउ गुरि कीना,
दुख बिसारि सुब अंतरि लीना।
गिआन अंजनु मोकउ गुरि दीना,
राम नाम बिनु जीवन हीना।
गिआन अंजनु गुरि दीआ,
अगिआन अंधेर बिनास।
संत किरपा से हरि भेटीआ,
नानक मन परगास।

(गुरु नाम)

और आत्मानुभव की दृष्टि से कहते हैं—

मैं कहता हूँ आंखिन की देखी,
तू कहता कागद की लेखी।

इसीलिए उनका दावा है कि अन्य जन्म ज्ञान से वे चीजों को सुलझाते हैं जबकि पुस्तक शिक्षा का अभिमान तो मात्र चीजों को उलझाता ही है। मैं कहता सुरझावन हारी,
तू राख्यो उरझाई रे।

निर्गुण धारा को सामान्यतः हिन्दू ज्ञानमार्गी धारा कहते हैं। कितने ही लोग की बात है कि पंडितों की दृष्टि में 'अज्ञ' और 'अज्ञानी' लोग 'ज्ञानी' शास्त्रियों की विद्वता को नकारते कहने लगे कि ब्राह्मण वह है जो ब्रह्म विचार करता है, न कि जो पोथियाँ रटता रहता है।

सामाजिक परिवर्तन की इस प्रक्रिया में मध्ययुग की सगुण साकार धारा

भूमिका बहुत शिथिल या यथास्थिति-वादी है। जिस व्यवस्था को अद्विज संत तोड़ना चाहते हैं, ये उसे भरसक बचाना चाहते हैं और उसमें थोड़ी सी ही सुविधा देकर समझौता करना चाहते हैं। डा. प्रेमशंकर कहते हैं कि 'राम-कृष्ण काव्य की नयी सामाजिक चेतना रुढ़ियों का अंध समर्थन नहीं करती, पर उसके विद्रोह का स्वर साकारी देवत्व को चरितनायक स्वीकारने के कारण जुझारू नहीं हो पाता।

... राम-कृष्ण भक्त कवि एक व्यवस्था से की खोज करते दिखाई देते हैं। विगलित यथार्थ का चित्रण उनमें संकेत से है, पर सामाजिक चेतना के रूप में वे विकल्प की तलाश करते हैं, यूटोपियाई रामराज्य या कृष्ण चरित इस व्यवस्था में वे सम्पूर्ण रूप से नये समाज की कल्पना नहीं करते, काफ़ी चीजें पुरानी भी बनी रहनी चाहिए—वर्ण का पालन, ब्राह्मण का सम्मान, वेद-मर्यादा आदि। व्यवस्था की यह तलाश ही भक्तिकाव्य की सामाजिक चेतना के विद्रोह को मुखर और जुझारू नहीं होने देती।

तुलसीदास अपने युग के जागरूक कवि थे। अपने समय की दयनीय सामाजिक स्थिति का उन्होंने अनेक स्थानों पर वर्णन किया है—

खेती न किसान को भिखारी को न भीख बलि, बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी। जीविका विहीन लोग सीछमान सोच-बस

कहें एक एक न सों कहां जाई का करी।

परंतु इसका कारण उन्हें स्वीकृत-परम्परित समाज व्यवस्था की कहीं कोई कमी के रूप में नहीं, उसमें शंका, अश्रद्धा और अस्वीकृति में दिखाई देता है—

आत्मम बरन धरम विरहित जग लोक वेद मरजाद गई है।

प्रजा पतित पाखंड पाप रत अपने अपने रंग रई है।' (विनय पत्रिका)

उस स्थिति में सामाजिक परिवर्तन की जो प्रक्रिया मुख्यतः शूद्र संतों द्वारा अपनायी जाती है, जहां वे ब्राह्मणों से बराबरी का दावा करते हैं और यह कहते हैं कि जो ब्रह्म को जानता है वही विप्र है, तुलसीदास को अच्छा नहीं लगता—
बार्दाहं सूद्र द्विजन सन हम तुममें कछु घाटि।
जानहि ब्रह्म सो विप्रवर आंख देखावहि डांठि ॥ (दोहावली)

मध्ययुग की बहुचर्चित अवतारवादी परिकल्पना क्या है? क्या कारण है कि सगुण-साकारवादी सभी भक्त द्विज वर्ण के हैं और निर्गुण निराकारवादी संत (अधि-संख्य) अद्विज हैं। भारतीय समाज में अवतार की कल्पना का विकास कुछ मूल्यों की रक्षा के लिए किया गया। तुलसीदास की दृष्टि से मूल्य ये हैं—ब्राह्मण, गऊ, देवता, और संत की रक्षा—विप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार निज इच्छा निर्मित तनु, माया गुन गोपार। (रामचरित मानस)

समाजशास्त्री बेकर का मत है कि 'पवित्र' Sacred या 'लौकिक' (secular) होने का अंतर किसी भी समाज के विकास में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। उसका कहना यह है कि जो समाज 'पवित्र' है, वह ऐसी पद्धति विकसित कर लेता है जो परिवर्तन की प्रतिरोधी होती है। दूसरी ओर लौकिक समाज परिवर्तन को जल्दी स्वीकार करता है।

भारतीय समाज रचना मूलतः 'पवित्र' ढंग की रचना रही है। यहां की धार्मिक शिक्षाएं 'लौकिक' पर 'अलौकिक', 'इह-लोक' पर 'परलोक' की श्रेष्ठता सिद्ध करती रही हैं। परन्तु आधुनिक काल के प्रारम्भ होते ही, मुख्यतः पश्चिमी जीवन पद्धति के सम्पर्क में आने के बाद 'लौकिक' मूल्यों का महत्व स्वीकार किया जाने लगा। 'पवित्र' समाज आस्थावान श्रद्धालु समाज होता है और लौकिकता की ओर अग्रसित समाज विचार और तर्क को साथ लेकर चलता है।

हमारे साहित्य में 'मध्ययुगीन पवित्रता' से 'आधुनिक लौकिकता' की ओर के संचरण के संकेत बहुत धीरे-धीरे उपलब्ध होने शुरू होते हैं। उसका कारण भी स्पष्ट है। यह समाज मूलतः परिवर्तन का प्रतिरोधी समाज है।

यूरोपीय जातियों के सम्पर्क और इस देश में अंग्रेजों का शासन स्थापित होने पर समाज-संरचना में जो परिवर्तन आना प्रारम्भ हुआ उसे अनेक समाजशास्त्री

प्रायः पश्चिमीकरण कहते हैं : (प्रो. श्रीनिवास, प्रो. योगेन्द्र सिंह)। व्यक्तिगत किसी पश्चिमी देश के प्रत्यक्ष या परोक्ष स्तुति सम्पर्क के कारण किसी गैर-पश्चिमी निम्नस्तरीय में होने वाले परिवर्तनों के लिए प्रचुर और प्रासंगिक शब्द 'आधुनिकीकरण' है। डेनियल गेल्लर के अनुसार 'आधुनिकीकरण' में आकांक्षित सामाजिक संस्थाओं और निजी आकांक्षित मानवीय को स्पर्श करने वाली एक 'विक्षोभक प्रत्यक्षवादी भावना' निहित है। पश्चिमीकरण (या आधुनिकीकरण) में इस पवित्र मूल्यगत अधिमान्यताएं निहित थीं। सबसे महत्वपूर्ण मूल्य, जिसमें कई अन्य मूल्य सम्मिलित हैं, वह है जिसे मोटे-मोटे रूप पर मानवतावाद कहा जा सकता है, जिसे अभिप्राय है जाति, आर्थिक स्थिति, धर्म, आयु और लिंग भेद के बिना मनुष्य की भलाई के लिए कर्मठ भावना। नतावाद और लौकिकीकरण दोनों मानवतावाद में निहित हैं। साहित्य में इन मूल्यों की मान्यता और स्वीकृति संकेत हमें आधुनिक काल के प्रारम्भ चरण से ही मिलने लगते हैं।

सन १८७७ में बंगला साहित्य रमेशचन्द्र दत्त ने लिखा था—देवी-देवता राजा-रानियों, राजकुमार-राजकुमारों से उतरकर हमने सामान्य नागरिकों तक कि सामान्य किसान के वित्त के साथ सहानुभूति रखनी प्रारम्भ की है। समरूप एकरूपता की प्रशंसा करने अपेक्षा हम व्यक्ति की निजता और

प्रो. की सराहना करने लग गये हैं। महान व्यक्तियों के यश और वैभव की प्रशंसा का क्या स्तुति करने की अपेक्षा हम स्वेच्छा से सभी निम्नस्तर के व्यक्तियों की स्वतंत्रता प्रचार और प्रतिरोध की सराहना करने लगे हैं। सामान्य जन की ओर समाज का ध्यान में धार्कषित होना और उसकी निजता और आकांक्षामानीयता का महत्वांकन होना आधुनिक युग में सामाजिक परिवर्तन की ओर प्रारम्भिक महत्वपूर्ण कदम था। साहित्य में इस परिवर्तन की व्यापक तस्वीर उभरने लगी। धीरे-धीरे साहित्य से विशिष्ट जन कई गायब होने लग गया। प्रो. पूरन सिंह जैसे लेखकों ने सामान्य जन की मजदूरी की महत्ता को गुरु-गंभीर आध्यात्मिक चिन्तन से ऊपर रख दिया—

‘पद्मासन निकम्मे सिद्ध हो चुके हैं। वही आसन ईश्वर प्राप्ति करा सकते हैं जिनसे जोतने, बोनने, काटने और मजदूरी का काम लिया जाता है। लकड़ी, ईंट और पत्थर को मूर्तिमान करने वाले मुहार, वड़ई, मेमार तथा किसान आदि वैसे ही पुरुष हैं जैसे कि कवि, महात्मा और योगी आदि।’ (मजदूरी और प्रेम) प्रेमचन्द जैसे जागरूक लेखक इस बात को स्पष्टतः स्वीकार करते थे कि सामाजिक-आर्थिक स्तर पर जो परिवर्तन अनेक नेताओं, विचारों और आन्दोलनों के माध्यम से आ रहा है, वही परिवर्तन उन्हें साहित्य के माध्यम से लाता है। १९३५ में वर्धा में गांधीजी से भेंट होने के बाद

उन्होंने शिवरानी देवी से कहा था—‘वह (गांधीजी) भी मजदूरों-किसानों की भलाई के लिए आन्दोलन चला रहे हैं और मैं भी अपनी कलम से यही कुछ कर रहा हूँ।’ (प्रेमचन्द घर में)

सामाजिक परिवर्तन की सर्वप्रथम पहचान व्यक्ति के मानसिक परिवर्तन से उत्पन्न होती है। मैंने प्रारम्भ में ही कहा है कि व्यक्ति के मन में स्थापित मान्यताओं के प्रति जब शंका, प्रश्न और नकार उत्पन्न होना प्रारम्भ हो जाता है तो परिवर्तन की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है। यह शंका, प्रश्न और नकार और फिर एक स्वस्थ, अन्याय और शोषणविहीन समाज बनाने की आकांक्षा इस प्रक्रिया को तीव्र करता है। प्रेमचन्द के अनेक पात्रों में स्थापित मूल्यों और मान्यताओं के प्रति हलकू का यह प्रश्न और शिकायत उमड़ती रहती है—‘मजदूरी हम करें और मजा दूसरे लूटें’ (पूस की रात)

समकालीन साहित्य में सामाजिक परिवर्तन के विविध संदर्भों के अनेक मुखी चित्र उपलब्ध हैं। आज का लेखक परिवर्तन का दर्शक या लेखा-जोखा रखने वाला ही नहीं है, वरन् वह परिवर्तन की प्रक्रिया का सक्रिय सहभागी भी बनना चाहता है। इसी बिन्दु पर साहित्य और सामाजिक परिवर्तन का सम्बन्ध गहरे अन्तर्सम्बन्ध में बदलता है।

—एच-१०८, शिवाजी पार्क,
नयी दिल्ली-११००२६



निर्मल वर्मा के लेख पर डा. मदन मोहन तरुण की टिप्पणी 'भारतीय मन जादू की पुड़िया नहीं'



संवर्ष और वैषम्य से अलग समन्वय असंभव है। संपूर्ण मन आखिर है क्या ! संपूर्ण मन खंड-खंड विचारधारा का अखंड साक्षात्कार ही तो है। पूरा जीवन अवस्थाओं का विकास ही तो है। क्या वह पूर्ण भी हो पाता है ! क्योंकि पूर्णता तो मृत्यु है।

अगर हम व्यक्ति के अहम् को छोड़ देंगे तो विराट आश्रय कहां लेगा ! और फिर देश-विदेश का वैचारिक या भावात्मक वैषम्य इतना नहीं होता कि उसके लिए अलग-अलग कठघरे बनाने पड़ें। सर्जन के क्षेत्र में पूरब और पश्चिम के विभाजन की धारणा ही गलत है।

दरअसल उपन्यास आधुनिक संसार की विशिष्ट अभिव्यक्ति विधा है, जिसका स्वरूप इतना विराट और विविध है कि यदि हम किसी धारणा विशेष में स्वयं को आवद्ध कर इसे परिभाषित करने का प्रयास करेंगे तो निस्संदेह हम उसकी विशिष्टताओं को सीमित ही करेंगे। निर्मल वर्मा से यही गलती हुई है। उन्होंने उपन्यास को उसकी समग्रता में न देख पाने की अपनी अक्षमता को 'भारतीय मन' के

नवनीत

सीमित दायरे में बांध दिया है, जो संपूर्ण अविश्वसनीय है। (संदर्भ नवनीत जून-८२)

भारतीय मन से निष्पन्न उपन्यास श्री वर्मा के अनुसार एक ओर 'महाकाव्य' लोक-कथाएं, परी कथा, इंद्रजाल, चुनौती दूसरी ओर उसमें हमें पश्चिमी उपन्यास के सर्वोत्तम, दुर्लभ क्षण याद आते हैं। जब व्यक्ति ने अंतर्मन की अंधेरी गहिराई बाहर 'संपूर्ण' से साक्षात्कार किया था। इस

संभवतः इन पंक्तियों को लिखते समय आंचलिक श्री वर्मा के सामने वीरेंद्रकुमार जैन ने साधु उपन्यास 'अनुत्तर योगी' रचा है, जिसे दूसरी उन्होंने 'भारतीय मन' की उदार विशिष्टताओं के कारण जान-बूझकर कहीं दूर नहीं की है। भारतीय मन की खोज में भारतीय वर्मा अपने पूरे निबंध में कस्तूरी मृग व्यक्तित्व तरह जंगली घास सूंघते फिरे हैं। मैं कोई

'अनुत्तर योगी' व्यास और कालिदास की समन्वित प्रतिभा का असाधारण उन्मेष है। पौराणिक काल के बाद भारतीय मनीषा की दिव्यतर विशिष्टता का विस्फोट है। विज्ञान युक्त तिलोत्तम का यह महालास्य है; व्यक्ति की सृजनात्मक

त्मक इयत्ता का नेति-नेति विस्तार है। इसकी सफलता इसकी आध्यात्मिकता में नहीं, ऐंद्रिक विषयानंद की सीमांतक तीव्रता में है जिसने वीरेंद्र और महावीर अर्थात् लोक और परलोक के अंतर को ही समाप्त कर दिया है। 'अनुत्तर योगी' समस्त प्रतिमानों से परे अपना प्रतिमान है और अपना ही निकष भी है।

भारतीय मन यहीं तक सीमित नहीं है। वह समय और संदर्भ की सीमाओं में अपने परिवेश की सामाजिक, राजनीतिक जुगुप्साओं के विरुद्ध सीधे-सीधे शब्दों में चुनौतीपूर्ण संघर्ष भी है। वह व्यवस्था के विरूपण के विरुद्ध प्रतिपक्ष की शक्तिक्षम आवाज भी है, जो भारतीय जीवन के निरंतर उन्मेष के लिए संघर्षशील है।

इस क्षेत्र में गोदान, झूठा सच, मैला आंचल, यह पथ बन्धु था आदि उपन्यासों ने साधारण प्रतिमान स्थापित किये हैं। दूसरी ओर त्यागपत्र, शेखर एक जीवनी, अपने-अपने अजनबी, मछली मरी हुई, सूरज का सातवां घोड़ा आदि कृतियां भारतीय मन की द्वंद्वात्मक अवस्थाओं के व्यक्ति-सजग प्रतिमान हैं जिनकी श्रेष्ठता में कोई शंका नहीं की जा सकती।

वेद और उपनिषद में भारतीय मनीषा

ने अपना चूड़ांत निदर्शन किया है किंतु इससे व्यास, वाल्मीकि, कालिदास, शूद्रक, दंडी, वाणभट्ट, गुणाढ्य, हरिभद्र सूरी, चार्वाक, चाणक्य की महत्ता जरा भी कम नहीं होती। जीवन साक्षात्कार की यह विविधता ही किसी भाषा के साहित्य की शक्ति है।

आज जब देश के कुछ क्षेत्रों में दैनिक हत्याओं की संख्या पचास से भी ऊपर है, जहां हज़ार-हज़ार डकू मारे जा रहे हैं, हरिजन भुट्टों की तरह आग में भूने जा रहे हैं, महंगी शिक्षा और विकास के अवसर उच्च वर्ग की संपत्ति बनते जा रहे हैं—वहां भारतीय मन यातना के राक्षस के प्राणों को किसी दूर देश के वृक्ष पर छुपे तोते में ढूंढ़ने नहीं जायेगा। दवा या आप-रेशन करने की आवश्यकता वहां होती है जहां जखम हो। भारतीय मन कोई जादू की पुड़िया नहीं है कि फूंक मारते ही वह हर दर्द को उड़नछू कर डाले और जादू की छड़ी घुमाकर पूरे देश के लिए सपनों का संसार बसा दे जिसमें हर कोई हिंदी फिल्मों के नायकों की तरह, कटते-मरते समय भी गाना गाता दिखाई दे। इस प्रकार के सपने कक्षजीवी साहित्यकारों तक ही सीमित होते हैं।



सही राह पर चलती हुई चींटी तुम्हें पछाड़ सकती है, अगर तुम गलत राह पर हो तो।

—राबर्ट बेसन

०००

अनुभव का कांटा चेतावनी के कई जगलों से अधिक कीमती है। —राबर्ट बेसन



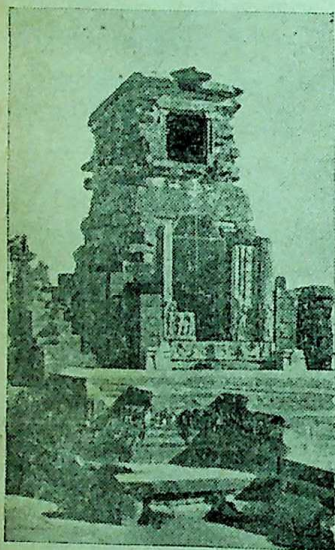
डा. शैलेन्द्रनाथ कपूर का पुरातात्विक लेख



सांची : एक पुनरावलोकन

भारत की विशाल एवं पावन वसुध्वा अपने अंक में अतीत की विलक्षण स्मृतियां संजोये हुए है। समय-समय पर देश पर होने वाले बाह्य आक्रमणों के कारण न जाने कितनी ऐतिहासिक सम्पदा नष्ट हो गयी। अपनी पुरानी धरोहरों के प्रति हमारी अज्ञानता ने भी विशेष क्षति पहुंचायी। आज जिन अवशिष्ट प्राचीन स्मारकों के माध्यम से अपने विगत

मंदिर संख्या ४५



नवनीत

इतिहास का आलोक मुखरित हो। उनमें सांची अत्यंत महत्वपूर्ण है।

वर्तमान मध्य-प्रदेश के विदिशा-से लगभग ९ किलोमीटर दूर, लखनपुर से भोपाल रेल-मार्ग पर भोपाल से लगभग ७० किलोमीटर पहले सांची स्थित। सांची रेलवे स्टेशन से १ किलोमीटर दूरी पर लगभग ९१ मीटर ऊंची मरीचि पर्वतमाला पर यहां के प्राचीन स्मारक अपने वैभव युग की कहानी बतला रहे हैं। प्राचीन युग में इसे 'काकणाय', 'काकनादवोट' और 'वोट-श्री-पर्वत' आदि नामों से भी जाना जाता था।

तीसरी शताब्दी ई. पू. से लगभग दूसरी शती ई. तक के बारह सौ वर्षों में इस समय पर यहां अनेक स्मारक निर्मित हुए। तीसरी शती ई. पू. के प्रियदर्शी सम्राट अशोक की एक पत्नी का नाम 'देवी' था जो विदिशा के वृद्धाकम्पन्न व्यापारी की पुत्री थी। विदिशा एवं सांची भारत के प्राचीन व्यापार मार्ग पर स्थित होने के कारण भी प्रसिद्ध स्थल थे। श्रीलंका के पालि भाषा में लिखे गये बौद्ध ग्रन्थ 'महावंश' के अनुसार सांची रेलवे स्टेशन



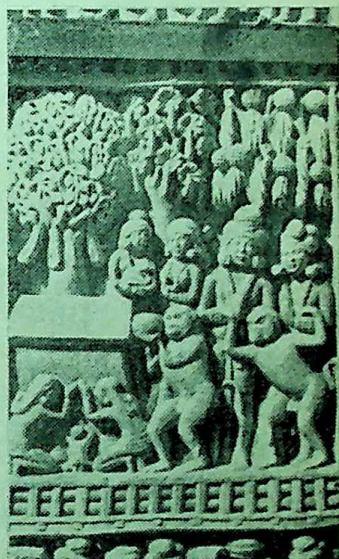
सांची के स्तूप का उत्तरी द्वार शीर्ष

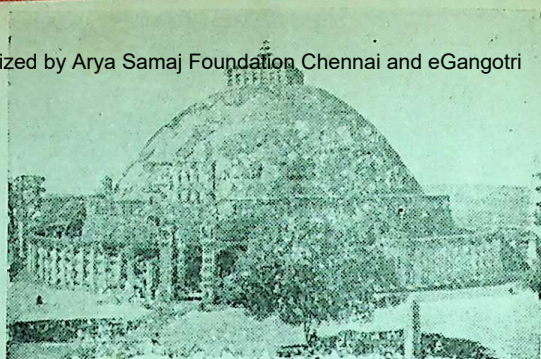
अशोक का पुत्र महेन्द्र, श्रीलंका जाने से पूर्व कुछ समय तक विदिशा के 'वेदिस गिरि विहार' में ठहरा था। सम्राट अशोक ने भगवान बुद्ध के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करने के लिए सांची में एक स्तूप का निर्माण कराया था एवं स्तूप के दक्षिण में एक स्तम्भ लगवाकर उसमें लेख लिखवाया था। स्तूप भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण (मृत्यु) के प्रतीक माने जाते हैं। सामान्यतया बुद्ध के अस्थि अवशेषों पर जो स्मारक निर्मित किये गये, उन्हें स्तूप की संज्ञा दी गयी। यद्यपि बाद में छोटे-छोटे स्तूप बनाकर उनकी पूजा का प्रचलन हुआ।

सांची के तीन स्तूप वर्तमान समय में महत्वपूर्ण हैं। इनमें एक बड़ा स्तूप है जिसे शुंग-युग में (दूसरी शताब्दी ई. पू.) बढ़ाकर बड़ा किया गया था। इस स्तूप की निर्माण कला अत्यन्त समृद्ध है जो बरबस दर्शकों का ध्यान आकर्षित करती है। इस स्तूप के अण्ड का ऊपरी भाग एवं पाषाण निर्मित तीन छत्र सांची रेलवे स्टेशन एवं उसके कुछ पहले ही से दिखाई

देते हैं। वस्तुतः यह विशाल स्तूप सांची में निर्मित स्मारकों की आत्मा है। निकट से देखने पर ज्ञात होता है कि इस स्तूप में नीचे का तल या गोल मेढी, मेढी के ऊपर विशाल १२० फुट व्यास वाला

स्तूप के उत्तरी द्वार पर उत्कीर्ण बुद्ध को मधु अर्पित करता हुआ बंदर





सांची का मुख्य स्तूप

अण्ड, अण्ड एवं मेधी के बीच जाने के लिए दक्षिण दिशा में दो ओर से सोपान, ऊपर पहुंचने पर एक प्रदक्षिणापथ, अण्ड में ऊपर एक हर्मिका वाक्स जिसमें भगवान बुद्ध के अस्थि अवशेष रखे गये थे, निर्मित हैं। हर्मिका वाक्स को एक वेदिका या रेलिंग से घेरा गया है। इसके ऊपर तीन छत्र एक पत्थर के दण्ड पर निर्मित हैं। सबसे ऊपर वाले छत्र का व्यास कम एवं नीचे वाले छत्र का व्यास अपेक्षाकृत अधिक है।

इस स्तूप के चारों ओर चार द्वारों का निर्माण किया गया जो तोरणद्वार कहे जाते हैं। तोरण द्वारों की निर्माण रचना उस युग के कलाकारों की कला क्षमता का सजीव उदाहरण है। इसमें स्तम्भों एवं उसके ऊपर का चारों ओर का भाग शिल्पों से भरा पड़ा है। अधिकांशतः भगवान बुद्ध के पूर्व जन्म की कथाएं (जातक कथाएं) पत्थरों में अंकित की गयी हैं। हाथियों, सिंहों, यक्षों, वन्दरों, पशु-पक्षियों, स्त्री-पुरुषों आदि की शिल्पा-कृतियां दर्शक का मन बरबस मोह लेती नवनीत

हैं। उदाहरणतः पूर्वी तोरण द्वारा चरागाहों से लौटती हुई गाएं, साथ स्त्रियों आदि का निरूपण कला की दक्षता का प्रमाण प्रस्तुत करती तोरण द्वारों का शायद ही कोई ऐसा हो जहां कलाकार ने अपनी साधना प्रमाण प्रस्तुत न किया होगा। अण्ड की ऊंचाई लगभग ५४ फुट है

इस स्तूप के चारों ओर एक वेदिका है जिसे भूमि वेदिका कहा जा सकता है इस वेदिका का निर्माण लकड़ी की विधि पर किया गया है। इसमें सूचियां एवं उष्णीष हैं जो आज भी तरह सुरक्षित हैं। महास्तूप के अशोक का मौर्यकाल की चमकदार से युक्त स्तम्भ है जिस पर चार दूसरे की ओर पीठ किए हुए बैठे हैं। सिंहों के निर्माण में अशोक के स्तम्भ में सिंहों की सी कलापूर्णता है परन्तु सांची के इन सिंहों में शक्ति का समन्वय है। बात यह है कि यह स्तम्भ जिसका निचला लेख-युक्त भाग



मंदिर संख्या १७ और १८

के पास गड़ा हुआ है व ऊपरी भाग सांची संग्रहालय में सुरक्षित है। अशोक ने ब्राह्मी लिपि में अपने लेख में लिखवाया था कि जो भी व्यक्ति बौद्ध संघ में फूट डालने की चेष्टा करेगा उसे सफेद वस्त्र पहनाकर संघ से निष्कासित कर दिया जायगा। सम्भवतः उस युग में भिक्षुओं को सफेद वस्त्र पहनाया जाना उनका अपमान समझा जाता था। अशोक के स्तम्भ के एक हिस्से को तोड़कर वहीं के पास के एक जमींदार ने गन्ने की पेराई की साँके लिए अपने कोल्हू में लगवाया था। सांची में निर्मित एक अन्य स्तूप में बुद्ध के प्रधान शिष्य सारिपुत्र और मौद्गल्यायन की अस्थियां रखी हुई हैं। यह स्तूप बड़े स्तूप के पास लगभग ४५ मीटर उत्तर-पूर्व में है। इनके अतिरिक्त एक अन्य स्तूप बड़े स्तूप से थोड़ी दूर अपेक्षाकृत साँके नीचे निर्मित है। इसकी वेदिका पर अनेक शिल्प, शिल्पकला की उत्तमता के प्रतीक हैं। बौद्ध पूजा गृहों को चैत्य गृह एवं भिक्षुओं के आवास गृहों को विहार कहा

जाता है। सांची में ऐसे विहारों के भग्नावशेष मिले हैं जिनमें बौद्ध भिक्षु निवास करते थे। इनके अतिरिक्त गुप्त राजाओं के वैभवकाल में सांची में अनेक मन्दिर निर्मित हुए। मन्दिरों की छतें, गर्भगृह, वरामदा, वरामदे में निर्मित पत्थर के स्तम्भ आदि इस तथ्य के प्रतीक हैं कि इनमें से एक मन्दिर जो आजकल मन्दिर संख्या-१७ के नाम से जाना जाता है, पूर्वगुप्त-युग में निर्मित हुआ था। इसी प्रकार मन्दिर संख्या-४५, अपनी निर्माण विधा के आधार उत्तर-गुप्त युग की संरचना मानी जाती है। कला की दृष्टि से पूर्वगुप्त-युग में मकरवाहिनी गंगा एवं कूर्मवाहिनी यमुना जैसी नदी देवियों का अंकन गर्भगृह के प्रवेश द्वार में ऊपर की ओर किया जाता था। उत्तर-गुप्त-युग में यही अंकन नीचे से ऊपर की ओर होने लगा था। इसी प्रकार पूर्व-गुप्त-युग में मन्दिरों की छतें सपाट बनती थीं, जबकि उत्तर-गुप्त-युग में छतों पर शिखर निर्मित होने लगे थे।

(शेषांश पृष्ठ ३२ पर)

डा. अशर्फीलाल श्रीवास्तव का लक्षण-शास्त्रीय-लेख

श्रीवत्स : एक प्रमुख जैन लक्षण



भारतीय जीवन में मांगलिक लक्षणों की एक अति प्राचीन परम्परा रही है। भारत के विभिन्न धार्मिक साहित्य एवं कला से इस तथ्य की पुष्टि हो जाती है। अष्टमंगल, अष्टमंगलकमाला, अष्टमंगलक कन्याएं तथा अष्टपुष्पिका आदि प्रतीक इन्हीं मांगलिक लक्षणों के विकसित स्वरूप हैं। जैन धर्म से सम्बन्धित साहित्य एवं कला में भी ऐसे ही जिन अनेक मांगलिक लक्षणों का समावेश किया गया, जैन तीर्थकर कंकाली टीला (मथुरा)



नवनीत

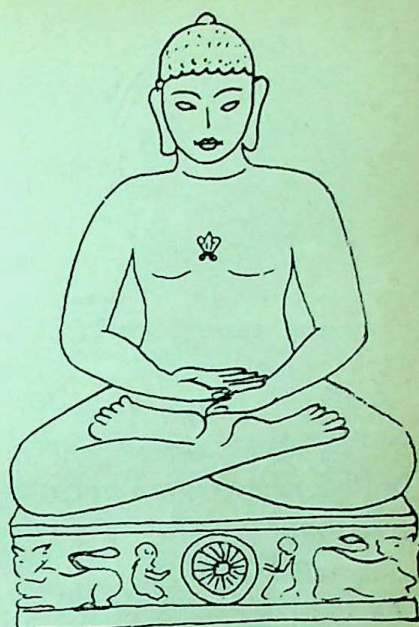
श्रीवत्स उन्हीं में से एक है। यों तो श्रद्धा, ईश्वर, जैन, बौद्ध तथा ब्राह्मण सभी धर्मों में ईश्वर सार्वजनिक रूप से स्वीकार किया गया है। परन्तु जैन धर्म में इसका विशेष स्थान था। विभिन्न जैन ग्रंथों में इसका उल्लेख कहीं मांगलिक लक्षणों की चर्चा की अष्ट कु है, वहां श्रीवत्स का भी उल्लेख मौजूद है।

श्रीवत्स प्रतीक को दो रूपों में माना जाता था—एक मांगलिक चिह्न के रूप में और दूसरे महापुरुष-लक्षण के रूप में। मांगलिक चिह्न के रूप में श्रीवत्स उल्लेख विभिन्न जैन ग्रंथों में पाया है। जैन तीर्थकरों के चिह्नों, चैत्यों, तथा उनके यक्ष-यक्षियों की मूर्तियों में दसवें तीर्थकर सीतलनाथ का श्रीवत्स वतलाया गया है। जैन औपपातिक सूत्र, ३१ में अष्टमंगल चिह्नों की गणना है। उनमें श्रीवत्स, नन्द्यावर्त, वर्धमानक, भद्रासन, दर्पण तथा मत्स्य-युग्म के साथ श्रीवत्स का भी उल्लेख है। एक जैन ग्रन्थ तिलोपपण्णत्ति (त्रिलोक-प्रज्ञा) के तीसरे अधिकरण की २२ से ६३ की गाथाओं में विभिन्न प्रकार के लक्षणों का वर्णन है जिनमें जिनालय भी है।

इन जैन मन्दिरों में तीर्थकरों की मूर्तियों के अतिरिक्त अष्टमांगलिक द्रव्य भी थे। त्रिशला द्वारा देखे गये चतुर्दश स्वप्न-लांछन तथा २४ तीर्थकरों के अपने-अपने लांछन भी अष्टमांगलिक चिह्न ही थे।

इन मांगलिक चिह्नों की संख्या प्रारम्भ काल में सम्भवतः आठ रही होगी, तभी इन्हें अष्टमांगल कहा गया। आगे चलकर आठ में भी संख्या ही मांगलिक हो गयी। तभी की अष्ट कुम्भकन्याएं अथवा अष्ट पुष्पिकाएं मौजूदादि एतद रूप में मांगलिक मानी गयीं। इन मांगलिक चिह्नों में आठ की संख्या यद्यपि रुढ़ सी हो गयी, पर यह कभी सुनिश्चित नहीं रहा कि किन्हीं आठ विशेष चिह्नों को ही अष्टमंगल कहा जाये। किन्हीं भी आठ चिह्नों को अष्टमंगल चिह्न कहा जाने लगा। यही कारण है कि इन मांगलिक चिह्नों की संख्या धीरे-धीरे बढ़ती ही गयी। इनमें श्रीवत्स, स्वस्तिक, नन्द्यावर्त, वर्धमानक, त्रिरत्न, भद्रासन, भद्रकलश, दर्पण, मीन-मयुत, परशु, अंकुश, कमण्डलु, ध्वज, चक्र, चामर, माला तथा पुस्तक आदि अनेक लांछन सम्मिलित थे।

श्रीवत्स के इस मांगलिक प्रतीक का एक कान उदयगिरि-खण्डगिरि की जैन गुफाओं तथा मथुरा के कंकाली टीले से प्राप्त प्राचीन जैन स्तूप के अवशेषों से प्राप्त हुआ है। उड़ीसा की उदयगिरि-खण्डगिरि की पहाड़ियों की जैन गुफाओं में श्रीवत्स



जैन तीर्थकर (मथुरा : प्रथम शती)

तथा त्रिरत्न प्रतीकों को अत्यन्त सम्पूज्य स्थान दिया गया है। रानीगुम्फा, गणेश-गुम्फा तथा अनन्तगुम्फा के प्रवेश द्वारों को उत्कीर्ण मेहरावों से सजाया गया है। इन मेहरावों के ऊपर ठीक बीचो-बीच त्रिरत्न अथवा श्रीवत्स के प्रतीक को उत्कीर्ण किया गया है।

श्रीवत्स प्रतीक का एक अनुठा प्रयोग जैन धर्मावलम्बी नरेश खारवेल के हाथी-गुम्फा अभिलेख में प्राप्त हुआ है जहाँ अभिलेख के प्रारम्भ में बायीं ओर पहली से लेकर पांचवीं पंक्तियों की सीध में ऊपर श्रीवत्स और नीचे स्वस्तिक का एक-एक



चक्र पदक, चष्टन की कमरपेटी माट (मथुरा)

प्रतीक उत्कीर्ण हैं। अभिलेखों के प्रारम्भ में 'स्वस्ति-श्री' जैसे मांगलिक शब्दों के लिखने की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है और वर्तमान काल में भी व्यापारिक पत्रों में इन्हें प्रथमतः लिखा जाता है। श्री शिवराममूर्ति का यह अभिमत सत्य ही जान पड़ता है कि हाथीगुम्फा अभिलेख में 'स्वस्ति' और 'श्री' लिखने के स्थान पर 'स्वस्तिक' और 'श्रीवत्स' के प्रतीक उत्कीर्ण कर दिये गये हैं। इससे यह तथ्य प्रकट होता है कि अभिलेखों में प्रयुक्त 'स्वस्ति-श्री' वस्तुतः स्वस्तिक एवं श्रीवत्स के ही संक्षिप्त स्वरूप हैं।

श्रीवत्स के विविध अंकन मथुरा के कंकाली टीले से प्राप्त प्राचीन जैन स्तूप के वेदिका-स्तम्भों, आयागपट्टों तथा जैन तीर्थकरों की मूर्तियों पर पाये गये हैं। एक वेदिका-स्तम्भ के वृत्त-फलक में श्रीवत्स का एक सरल रूप अंकित है जो आमने-सामने फन उठाये दो सर्पों की आकृति जैसा है। सम्भवतः श्रीवत्स के

नवनीत

इसी स्वरूप के कारण मुद्राशास्त्रियों इसे 'नागमुद्रा' कहा है।

मथुरा से प्राप्त जैन आयागपट्ट अष्टमांगलिक लक्षणों के बहु-विध उपलब्ध हुए हैं। एक आयागपट्ट के में तीर्थकर की प्रतिमा है जिसके नीचे तथा अगल-वगल त्रिरत्न के प्रतीक हैं। इस आयागपट्ट के बाएँ दाएँ किनारे क्रमशः चक्र एवं हस्ति वाले स्तम्भों से सजे हैं और ऊपर नीचे के किनारों पर चार-चार मांगलिक प्रतीक हैं। ऊपर मीन-मिथुन, श्रीवत्स तथा नन्द्यावर्त और नीचे नन्द्यावर्त, पुष्पमाल, पवित्र पुस्तक तथा भद्र हैं। दूसरे आयागपट्ट पर केन्द्र को बड़े त्रिरत्नों से सजाया गया है। ऊपरी किनारे पर श्रीवत्स, स्वस्तिक, पद्म और निचले किनारे पर पुष्पपात्र, मीन-मिथुन, कमण्डलु, तथा पीठासीन पुस्तक के प्रतीक पित हैं। एक अन्य आयागपट्ट पर कृत विशाल स्वस्तिक के चारों ओर



चक्र फलक, वेदिका स्तम्भ (मथुरा)

एक-एक मांगलिक चिह्न अंकित है।
जिन चार चिह्नों को अंकित किया गया
है वे हैं स्वस्तिक, मीन-मिथुन, पीठासीन
पुस्तक तथा श्रीवत्स। एक आयागपट्ट
का आभ्यन्तर चक्र के चारों ओर चलमुद्रा
में उत्कीर्ण नारियों से अलंकृत है। इस
आयागपट्ट के चारों कोनों तथा किनारों के
मध्य भाग में एक-एक प्रतीक अंकित है।
दाहिने किनारे के बीच में श्रीवत्स की
स्थिति है। इस प्रकार हम देखते हैं कि
आयागपट्टों पर उत्कीर्ण अष्टमांगलिक
चिह्नों में श्रीवत्स को अवाध रूप से
स्थान मिला था।

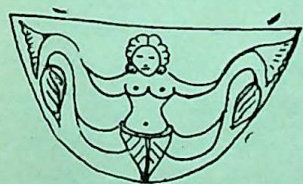
मथुरा के निकट सोंख की खुदाई से
कोई जर्मन पुरातत्वविद् डा. हर्टेल को एक
है। यही मिट्टी का हाथ (पंचाङ्गुल) मिला
है। पाँचों उंगलियों वाले खुले इस दाहिने
स्वस्तिक की हथेली पर बायें से, क्रमशः श्रीवत्स,
चन्द्रचक्र तथा स्वस्तिक प्रतीक अंकित हैं।
जैन धर्म तथा कला में महापुरुषों के
प्रमुख लक्षण के रूप में भी श्रीवत्स
छोटी मान्यता मिली थी। जैन तीर्थकारों की
प्रतियों के वक्षस्थल पर प्रायः लाक्षणिक



पंचाङ्गुल (सोंख) मथुरा

चिह्न अंकित पाया जाता है जिसे साहि-
त्यिक साक्ष्य के आधार पर श्रीवत्स कहा
गया है। भारत के जैन, बौद्ध तथा ब्राह्मण
सभी सम्प्रदायों के साहित्य में महापुरुषों
के कतिपय विशेष लक्षणों की मान्यता है।
जैन तीर्थकारों की प्रतिमाओं के प्रमुख
लक्षणों में आजानु भुजाएं, प्रशान्त मुद्रा,
नग्न अवस्था तथा वक्षस्थल पर श्रीवत्स
का लांछन गिनाया गया है। आचार-
दिनकर, उत्तराध्ययनसूत्र, अभिधानचिन्ता-
मणि, तिलोयपण्णत्ति तथा समवायांग-
सूत्र आदि विभिन्न ग्रन्थों में सभी तीर्थकारों
के चिह्नों, चैत्यों, वृक्षों तथा उनके यक्ष-
यक्षियों की सूची दी गयी है। इन सूचियों
के अनुसार दसवें तीर्थकर सीतलनाथ
का विशेष चिह्न श्रीवत्स था।

महापुरुष लक्षण के रूप में श्रीवत्स
प्रतीक की उद्भावना का आधार सम्भवतः
वक्ष पर उगे वालों का गुच्छा अथवा घूंघर
रहा होगा जो सामान्यतः सभी पुरुषों
के वक्ष पर न उगकर केवल महापुरुषों



चक्र, वेदिका स्तंभ, स्तूप नं. २ (सांची)

मथुरा
का १८३

के वक्ष पर ही शोभित माना गया है। मथुरा तथा अन्य स्थानों से प्राप्त बहुत सी जैन प्रतिमाओं की पहचान मात्र इसी प्रतीक से सम्भव हो सकी है, अन्यथा उनमें एवं बौद्ध मूर्तियों में अन्य कोई विशेष अन्तर नहीं है। मथुरा के अतिरिक्त देश-विदेश के अन्य कई संग्रहालयों में भी ऐसी कई जैन प्रतिमाएँ हैं जिनके वक्ष-स्थल पर श्रीवत्स का लांछन उत्कीर्ण है।

ऊपर कहा जा चुका है कि श्रीवत्स की

मान्यता महापुरुष लक्षण के रूप में प्रायः जैन, बौद्ध और ब्राह्मण आदि सभी सम्प्रदायों में स्वीकार की गयी थी। बौद्ध धर्म में यद्यपि श्रीवत्स को महापुरुषों के एक लक्षण के रूप में स्वीकृति अवश्य मिली थी, परन्तु वक्ष-लक्षण के रूप में उतनी लोक-

प्रियत नहीं मिल पाई थी। इसे बौद्ध साहित्य में एक केश-लक्षण के रूप में उल्लिखित किया गया है। ललितविस्तर में राजकुमार सिद्धार्थ के केशों को श्रीवत्स जैसा विन्यस्त कहा गया है। यही कारण है कि बौद्ध प्रतिमाओं के वक्ष पर श्रीवत्स का अंकन प्रायः नहीं पाया जाता है।

ब्राह्मण धर्म-साहित्य में श्रीवत्स विष्णु का वक्ष-लक्षण है। इसका सर्वाधिक प्राचीन उल्लेख रामायण तथा महाभारत में प्राप्त होता है। परन्तु भारतीय कला

नवनीत



चक्र-फलक, वेदिका-स्तंभ, सारनाथ

में महापुरुष-लक्षण के रूप में स्वीकार करने में जैन मूर्तिकला लक्षण के ही पहल की। कुषाण काल से ही इस प्रतिमाओं पर इस लक्षण को अंकित किया जाने लगा था जब कि विष्णु और वैष्णव देवताओं की मूर्तियों पर नहीं। १० वीं शती से पूर्व इसको पूर्ण लोकप्रियता न मिल सकी थी। यह बात अत्यन्त आश्चर्यजनक जान पड़ती है कि गुप्तकाल में भारतीय इतिहास का ही नहीं स्वीकार

कला का भी स्वीकार (कला का भी स्वीकार था) की कला में श्रीवत्स का अंकन बहुत अन्तः उपलब्ध हुआ है। समाधान कालीन कला में प्रश्न है मांगलिक चिह्न उद्भावक महापुरुष-लक्षण के अधिक लोप्रिय था या अधिक लोप्रिय था? इसके पहले लिक चिह्न के ध्यान के

तथा बाद में पुरुष-लक्षण के रूप में विविध अंकन पाये गये हैं। यद्यपि गिरि (मध्य प्रदेश), ग्वालियर पाली (राजस्थान) से मिलने वाली प्रतिमाओं पर श्रीवत्स लांछन अंकन उपलब्ध हुआ है, पर ऐसा पड़ता है कि ब्राह्मण धर्म के कलाकारों का ध्यान इस जैन लक्षण ओर गुप्तोत्तर काल में ही अधिक हो सका।

प्राथमिक जैन तीर्थकरों की प्रति

पर उत्कीर्ण श्रीवत्स का स्वरूप मांगलिक लक्षण के समान ही रहा। परन्तु, कालान्तर में इसके स्वरूप में अनेक परिवर्तन हुए और इसकी चरम परिणति एक चतुष्कोणिक अथवा चतुर्दलीय पुष्प के रूप में हुई। विष्णु तथा अन्य वैष्णव देवी-देवताओं की मूर्तियों पर यही चतुर्दलीय आरूप पाया गया है। कला के इस ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में कुछ विद्वानों की यह सम्मति स्वीकार नहीं की जा सकती कि श्रीवत्स

स्मूलतः चतुर्दलीय पुष्प की आकृति का रहा होगा।

अन्त में एक प्रश्न का समाधान अपेक्षित है।

प्रश्न है कि इस लक्षण की उद्भावना किस रूप में हुई होगी अथवा इसका प्राथमिक स्वरूप क्या रहा होगा? इस प्रश्न के समा-

धान के लिए हमें भारतीय

कला एवं 'श्रीवत्स' शब्द के भाषागत अर्थ का सहारा लेना होगा।

भारतीय कला में प्राप्त श्रीवत्स के प्राथमिक स्वरूप से हमें ऐसा आभास होता है कि मूलतः यह प्रतीक मानव-आकृति का रहा होगा। हम यह भी कह सकते हैं कि इस प्रतीक के प्राथमिक स्वरूप की परिणाम मानव की आकृति से मिली होगी।

गुणयुगीन श्रीवत्स प्रतीक को ध्यान से देखने पर ऐसा लगता है जैसे यह पालथी मारकर बैठे तथा दोनों हाथों से कंधों

को छूता हुआ मानव हो। प्रतीक की निचली और ऊपरी दो-दो गोलाइयां क्रमशः दो पैरों और दो हाथों तथा ऊपरी मध्य नोक मुख के स्थान पर ही निर्मित की गयी जान पड़ती हैं। इस निष्कर्ष की सम्पुष्टि सांची, सारनाथ, कौशाम्बी तथा मथुरा के उत्कीर्ण शिल्प से हो जाती है जहाँ मानव को श्रीवत्स के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

इस तथ्य के कुछ सबल प्रमाण दक्षिण



बडेरी-फलक, कौशाम्बी

भारतीय कला से प्राप्त हुए हैं, जिनमें पेडुमुडियम से प्राप्त उत्कीर्ण-फलक, कावेरिपक्कम से प्राप्त दो दिग्गजों से अभिसिंचित श्रीवत्स एवं तंजौर जिले के एनाडि स्थान से प्राप्त एक लघु कांस्य प्रतिमा विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। मुझे तो

गंगा घाटी से प्राप्त एन्थ्रायॉमाफ़िक ताम्र उपकरणों में भी श्रीवत्स का प्रतीकांकन जान पड़ता है।

'श्रीवत्स' शब्द के भाषागत अर्थ पर ध्यान देने से इस प्रतीक की उद्भावना का रहस्य स्वतः प्रकट हो जाता है। श्रीवत्स शब्द दो शब्दों— 'श्री' और 'वत्स' से मिलकर बना है। 'श्री' सुख, सम्पत्ति एवं सृजन की प्रतीक है। श्री की कृपा का सुपात्र होने के नाते मनुष्य उसकी सन्तान (वत्स) के समान है। अपने पुरुषार्थ एवं

हिंदी डाइजेस्ट

परिश्रम से मनुष्य सभी प्रकार की सम्पत्ति अर्जित करता है और उसके उपभोग से सुख पाता है।

संसार की समस्त सृष्टि में मानव जैसा रूपवान अन्य कोई प्राणी नहीं है। उसकी सृजन-शक्ति भी किसी से छिपी नहीं है। अपने इन गुणों को प्रागैतिहासिक मानव भी जानता था।

सिन्धु-सभ्यता की मोहरों पर मानव सृजनात्मक शक्ति के अंकन पाये गये हैं।

अस्तु, अपने श्रम, सौन्दर्य सृजन-शक्ति से मनुष्य भी श्री के से समन्वित है और इसीलिए 'श्री-वत्स' कहलाने योग्य है।

—१३६, तुलारामबाग, इलाहाबाद (उ.)



(पृष्ठ २५ का शेषांश)

सांची के स्मारकों पर दृष्टि डालने से स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल में इसे विशेष कलात्मक गौरव प्राप्त हुआ। प्राकृतिक सौन्दर्य सुषमा संजोये हुए सांची की पर्वतमाला एवं समीप बहती हुई वेतवा नदी दर्शकों के आकर्षण का केन्द्र है। यहां के प्राचीन स्मारक प्रकृति की सौन्दर्य श्री के बीच मानव के गहन प्रयासों की कथा कहते हैं। सन् १८१८ ई. में जनरल टेलर ने यहां के स्मारकों की ओर जनता

का ध्यान आकर्षित किया था। कलेक्टर एलेग्जेंडर कनिंघम, सर जान तथा मुहम्मद हमीद कुरेशी के प्रयत्नों से सांची के विगत वैभव प्रकाश पड़ा। वर्तमान युग में इन स्मारकों का संरक्षण करना अपने पूर्वजों की दी गयी थाती को सुरक्षित रखने का प्रयास है जो प्रत्येक देशवासी का कर्तव्य है।

—सुरेंद्रालय, ए.

रामसागर मिश्र नगर, लखनऊ (उ.)



इसे कहते हैं ईमानदारी

मैं पिछले वर्ष कश्मीर घूमने गया था। जम्मू में हम एक सरकारी (रेस्ट हाउस) में तीन दिन रुके। (सरकारी शब्द आजकल लापरवाही, अनियंत्रित का आभास देता है। कागजी कार्यवाही, लाल फीताशाही का बोलबाला वहां देख मिल सकता है)। वहां से लौटने पर हमने रजिस्टर में अपना पता झांसी का क्योंकि झांसी कुछ दिनों के लिए हमें रुकना था। रास्ते में ज्ञात हुआ कि वहां से खरीदे दो 'मफलर' हम रेस्ट हाउस में ही भूल आये हैं! अब क्या होगा? झांसी आये अभी दो ही दिन हुए थे कि एक पार्सल मेरे नाम पर था। सुखद आश्चर्य था कि मैनेजर ने 'मफलर' भेज दिये थे? मैं सोचने लगा कि ऐसे ईमानदार लोगों पर देश टिका है!

— श्रीकांत कुलश्रेष्ठ



आ नो भद्रः क्रतवो यन्तु विश्वतः

भवन की पत्रिका 'भारती' से समन्वित

नवनीत

मनुष्य के नवोत्थान का सूचक;
जीवन, साहित्य और संस्कृति का मासिक

प्रार्थना

अस्मे ता त इन्द्र सन्तु,
सत्याऽसिसन्तीरुपस्पृशः ।
विद्याम यासां भुजो,
धेनूनां न वज्रिधः ॥

हे परमेश्वर, तेरे प्रति की गयीं वे हिंसारहित मार्मिक प्रार्थनाएं
हमारे लिए सत्य हो जायें, ऐसी हो जायें कि जिन प्रार्थनाओं
के भोगों को, फलों को हे वज्रवाले हम दुहनेवाली गौओं के
भोगों की तरह प्राप्त करें ।

— ऋग्वेद १०, १२, १३

सरोजिनी कुलश्रेष्ठ का संस्मरणात्मक लेख



अविस्मरणीय श्रीश्री मां आनन्दमयी

परमहंस योगानन्द ने अपने संस्मरणों में आनन्दमयी मां की गहरी भावना के साथ चर्चा की है। वे ज्यों ही आनन्दमयी मां के सम्मुख हुए, वे 'पिताजी आप आ गये' कहकर अपने को भूलने लगीं और और उन्हें कार में अपने पास बिठाकर निश्चल समाधि में प्रविष्ट हो गयीं। उनकी सुंदर आंखें आकाश की ओर देखने लगीं और अधोन्मीलित होकर निकट सुदूर आंतरिक स्वर्ग राज्य में देखते हुए स्थिर हो गयीं।

मेरे शिक्षक गुरु श्री कृष्णानन्द पंत आनन्दमयी मां के भक्त थे। उनके घर पर एक विशाल फोटो लगी हुई थी जिसमें मां साधारण नारी की वेशभूषा में बैठी समाधि में लीन हैं। जब कभी वहां जाती, वह फोटो मुझे आकर्षित करती।

उसके लगभग १५ वर्ष बाद मां के वृंदावन स्थित आश्रम में मैं मां से दीक्षा होने को आतुर खड़ी थी। मेरी बारी आयी।

मां की दृष्टि मुझ पर पड़ते ही वे मृदु हो उठीं, फिर कुछ प्रश्न पूछे की कोमल अंगुलियां तस्वीर मढ़े हुए मंत्र पर धीरे-धीरे घूमने लगीं और मैं दुहराती जाती



युवती श्रीश्री मां समाधि अवस्था में

विशाल कक्ष से सज्जा से पहले भूत मैं मां के अति खड़ी अपने को समझ रही थी। प्रथा और परंपरा अपरिचित भूलें तो मां सहज समझा देतीं। बैठना है, प्रसाद ओर रखना नहीं छूना है, प्रसाद से करना है आदि

अब मेरी साधना शुरू हो गयी जब मां वृंदावन आतीं, वे मातां पास आ जातीं। बिना किसी चुंबकीय लहरें उनके आने का मेरे कान में कह जातीं। रात बजे जब आश्रम में सामूहिक का आयोजन होता, मैं उठकर

नवनीत

और ध्यान अपने आप लग जाता । आनंद का ज्वार-सा उठ जाता, उस समय मानों, मैं उनके आश्रम में ही होती । लहंगे जैसी चुन्नटदार झंडियां जहां चारों ओर सजी रहतीं, सुंदर सुगढ़ हाथों से बनी बंदनवारें लटक रही होतीं । अति सुंदर सजे मंडप में अखंडानंदजी अथवा अन्य संत प्रवचन कर रहे होते । कलश आदि व्यवस्थित ढंग से सजे रहते । सब कुछ अत्यंत आकर्षक लगता । गेरुये शनील से मढ़े तकिये और चादर और उस पर सफेद लंबा चोगा पहने हुए मां, कभी अस्तव्यस्त खुले केशों से और कभी वनदेवी जैसा जूड़ा ऊपर बनाये हुए । मां की अनुपस्थिति में भी उनका ऐसा ही जूड़ा बनाये हुए चित्र उनकी साक्षात् उपस्थिति का भान कराता था । उत्सवों के अवसर पर आश्रम की चहल-पहल में आनंद का सागर लहराता था । मां अत्यंत कोमल किंतु तेजपुंज होतीं । जब उन्हें दुपट्टा उड़ाया जाता तो नववधू सी सज जातीं । भक्त गण कोई किसी कुंज में, कोई किसी वृक्ष के नीचे तथा कोई चबूतरे पर ही ध्यान लगाये बैठ जाते । आदि भूम-धूम कर कीर्तन होता तो संपूर्ण वातावरण ही कृष्णमय हो जाता । गले में मालों के हार पहने जब भक्तगण उच्च स्वर से कीर्तन करते तो मस्ती देखते ही बनती थी । व्यवस्था और आकर्षण मां के आश्रम को के प्रधान गुण थे और मैं उस सब कुछ के प्रति आकर्षण की डोर में बंध कर रह रही थी ।



उत्तरावस्था में श्रीश्री मां प्रार्थना की तल्लीन मुद्रा में

एक बार मां वृंदावन आयी थीं । मैं कार्य की व्यस्तता और अकेलेपन की विवशता के कारण मां के स्नेह की परीक्षा ले बैठी । 'मां अगर आज तुम मुझे अपने पास बुला लो तो जानू कि तुम में कोई दिव्य शक्ति है । शाम को पांच बजे लान में टहल रही थी कि पड़ोस के वीमा निगम में नौकरी करने वाले शर्माजी चारदीवारी के पार से कहने लगे, 'बहनजी, हमारी नयी कार आयी है आप उसका उद्घाटन कर दीजिए ।' मैंने कहा—'नयी कार में बैठकर वृंदावन चले जाइये, उद्घाटन हो (शेषांश पृष्ठ ४७ पर)

एनी डिल्लार्ड का आधुनिक कला-विवेचनात्मक लेख क्या जो सामने है, वही कला है

०००

ज्ञान और बोध की प्रक्रिया की छान-बीन की आदत वैज्ञानिकों और कलाकारों के बीच बढ़ती जा रही है। भौतिक विज्ञानी पिछले साठ वर्षों से कहते चले आ रहे हैं कि वे प्रकृति का अध्ययन कर ही नहीं सकते। वे अध्ययन कर सकते हैं, प्रकृति के निजी बोध का। भी प्रायः अपना विषय स्वयं बन जाती है, और विज्ञान भी एक प्रकार से कला हो

०००

बीसवीं सदी की पत्र-पत्रिकाओं, फिल्मों और विज्ञापनों के लगातार बढ़ते हुए शोरगुल के बीच कथा-साहित्य भी अपनी अस्मिता को अक्षुण्ण बनाये रखने और अपने इस दावे को अधिकार पूर्वक प्रस्तुत करने के लिए तत्पर दिखायी देता है कि उसे एक श्रेष्ठ कला के रूप में स्वीकार किया जाये। वह दावा कर रहा है, व्यावसायिकता से सर्वथा मुक्त अपनी पवित्रता का, और अनिच्छ गीति-काव्य के साथ अपने संरचनात्मक सादृश्य का। और ऐसा दावा करते समय, उसकी रुचि अपनी निपुणता में भी लगातार बढ़ रही है।

चित्रकला और काव्य की



नवनीत

नी कला। सच तो यह है कि अपनी
में ही उसका संलग्न होना, इस सदी
आदमी की आत्मचेतना से जन्मी
हार की विशुद्धता की खोज का प्रतीक
है। यही स्थिति, कमोवेश, चित्रकला
क्षेत्र में भी है।

चित्रकला में तो फ्रेंक स्टैला की यह
वेस्त 'जो आप देखते हैं, वही आप देखते
वेष्टलागू हो जाती है, लेकिन शब्दों का
तो दुनिया से है, जो कथा-साहित्य के
भी प्रदान करती है। इसीलिए,
साहित्य को कुछ भी होने के लिए,
तक कि स्वयं होने के लिए भी, अपनी
ह को छोड़ना पड़ता है।

शुक्र ग्रह पर वायुमंडलीय गुणत्व के
प्रकाश सारे ग्रह की परिधि का
र लगाकर वहीं आ जाता है, जहां
ह चला था और इस कारण, सिद्धांततः
मी वहां पहुंच जाये तो अपनी खोपड़ी
पीछे का भाग देख सकता है। कलाकार
लक्ष्य तो अपनी खोपड़ी के पीछे के
को देखना ही है, लेकिन कथाकार
ऐसा करेगा तो वह पुनरुक्त चक्कर
कर ही रह जायेगा। वह 'पेल फायर'
भांति एक दुनिया या दुनिया की
नी की सृष्टि कर सकता है, जो अर्थों
एक सेट के लिए एक कुशल संदर्भ का
करता है।

कथा-साहित्य कई प्रकार से कला-
युक्त हो सकता है। वह कला के बारे में
कर सकता है या, उसके पात्र



कलाकार हो सकते हैं। १९२६ में प्रका-
शित गिदे का एक उपन्यास 'काउंटर
फीट्स' पहला उपन्यास था, एक उप-
न्यासकार द्वारा लिखे जाने वाले उपन्यास
के बारे में।

कला-विषयक उपन्यास का एक प्रकार
वह भी हो सकता है, जिसमें अपनी सतह-
छोड़े ही नहीं। 'पेल फायर' ऐसा ही उप-
न्यास है। गट्टचड स्टीन ने भी ऐसे उप-
न्यासों की रचना की है। कला की थीम से
संबंधित, कोई-कोई आधुनिक उपन्यास
कथा और कथाकार का एक ऐसा संबंध
स्थापित करता है, जिसमें कोई भी सही
बोध संभव नहीं है, कारण बोध करने
वाले का दृष्टिकोण ही भेगा है, क्रमशः
कथा, कथाकार और दुनिया के संबंध
अवबोधक और अन्य किसी पदार्थ के
बीच संबंध तक सीमित रह जाते हैं। और
यह थीम आधुनिक कथा-साहित्य में
बार-बार दोहरायी जा रही है; समकालीन

कथा-साहित्य की मनोग्रस्ति बन गयी है यह थीम ।

किसी भी वस्तु में गहरी दिलचस्पी ज्ञान-मीमांसा बनकर रह जाती है । कारण किसी भी वस्तु को जानने-समझने के लिए हमें पहले मन के जानने की विधि को जानना-समझना होगा । और यह किस प्रकार संभव है ?

मानवीय बोध और विचारों की संरचना को अनेक आयामों से समझने के प्रयास चल रहे हैं । वैज्ञानिक, मनो-वैज्ञानिक, भाषा-शास्त्री, मानव-विज्ञानी अपने-अपने ढंग से उसे जानने की कोशिशों में लगे हैं । मुझे लगता है कि बोध में यह रुचि 'दुनिया में रुचि के लिए रुचि' की असली इच्छा से जन्मी है ।

परम सत्य क्या है ? सुनिश्चित रूप से हम क्या जान सकते हैं ? दुनिया में सचमुच क्या है ? आदि-आदि प्रश्नों के उत्तर मानव, सभ्यता के आदि काल से खोजता चला आ रहा है । आज ये उत्तर उसके लिए पहले से भी ज्यादा जरूरी हो गये हैं । आज के मानव को यह अहसास बड़ी शिद्दत से होता जा रहा है कि उसके पास कुछ भी नहीं है, जिसे वह परम मान सके । उसका गणित, उसके मापदंड, कुछ भी तो परम नहीं है ।

विज्ञान के बारे में ऐसा माना जाता था कि उसके सब निष्कर्ष पक्के और निश्चित होंगे । उसके अधिकांश निष्कर्ष सुनिश्चित हैं भी, लेकिन आज विज्ञान को

नवनीत

भी यह अहसास होता जा रहा है कि पांवों तले की जमीन बार-बार है । मुझे लगता है कि विज्ञान तनी रस्सी पर चलने वाले व्यक्ति है; वह चलते समय अपने पांवों नहीं देखता । और जब कभी देखा तो पाता है कि वह त्रिशंकु की भाँति हवा में लटका है ।

आइंस्टीन और हिसेनबर्ग ने निकों ने अपने पांवों को देखा, जैसे भले लोगों की इस भोली भंग कर दिया कि ऐसा प्राकृतिक संभव है, जो वास्तव में, और साथ सब वस्तुओं को समान आधार कर सके । जब हमारी ज्ञानेंद्रिया सीमित हैं, जब अधिकांश मनोवेग तक पहुंचते-पहुंचते 'संपादित' हैं, जब हमारे यंत्र अचूक नहीं हैं, कैसे सत्य और वास्तविकता प्राप्त करने की आशा कर सकते हैं ?

०००

और यदि ज्ञानेंद्रियों पर निर्भर लिया जाये, तो भी क्या हम अपने पर निर्भर रह सकते हैं ? हमारी अवबोधन-शक्ति कैसे वास्तविक सच्चा बोध कर सकने में समर्थ है ? भौतिक विज्ञानी पिछले कहते चले आ रहे हैं कि वे अध्ययन कभी नहीं कर सकते, निजी बोध का । हिसेनबर्ग ने 'पदार्थ और विधि को पृथक रखें

नहीं है।' सर आर्थर एडिंगटन की मान्यता है कि 'चेतना के संयोजन के बिना सारा पृथिव जगत वास्तविकता विहीन और निरपेक्ष है।' एडिंगटन के उत्तराधिकारी सर जेम्स जींस ने भौतिकी के अनेकानेक तथ्यों का सार प्रस्तुत करते हुए कहा है : 'जगत् एक विशाल यंत्र की अपेक्षा एक विशाल विचार के समान है।' एडिंगटन ने इसी कारण जगत् को 'मानस-व्य' कहा था। और मानव-विज्ञानी कहते हैं कि मानस अवबोधक यंत्र न होकर, सांस्कृतिक कृति है। वह स्वयं एक कलाकृति है।

हमारा सारा ज्ञान प्रासंगिक और मात्र प्रासंगिक है। और मन उस गिटार के समान है, जिस पर हम विश्व-संगीत काम-लाज ढंग से बजा लेते हैं।

कथा-साहित्य की इस संदर्भ में क्या भूमिका है? पहली बात तो यह है कि विषयों का अंतर-शिक्षण-विषयक रूपण अत्यंत अस्तव्यस्त स्थिति में है। हमारे दूसरे लोगों की तरह कथाकार भी अस्तव्यस्तताओं की ओर आकर्षित होते हैं। अन्य चिंतकों की भांति कथाकार भी अपनी सदी की बौद्धिक समस्याओं की ओर आकर्षित होते हैं। तात्त्विक रूप से कथा-साहित्य का संबंध जगत से और प्रपञ्च के स्वभाव से है। और इसीलिए कथाकार अंततः अपने आप से खड़े प्रश्न करने को बाध्य हो जाता है : 'मन-सा जगत?'

प्राउस्ट के 'स्वांस वे' में मार्सेल कहता है : 'किसी बाहरी वस्तु को देखकर यह चेतना कि मैं उसे देख रहा हूं, मेरे और उसके बीच रहती है, और वह वस्तु एक सूक्ष्म, अशरीरी रूपरेखा में ऐसी परिवर्द्ध हो जाती है कि उसके भौतिक आकार के संपर्क में आना मेरे लिए असंभव प्रायः हो जाता है।'।

बोध की समस्या को कथाकार उपरोक्त ढंग से भी पेश कर सकता है : 'किसी बाहरी वस्तु से सीधे संपर्क में कैसे आया जाये?' कुछ कथाकार इस समस्या से जूझने के लिए वस्तु को उसके सामान्य संदर्भों की जकड़ से मुक्त कर देते हैं, जिससे ऐसा लगता है, जैसे हम उस वस्तु को पहली बार देख रहे हों। साहित्य और चित्रकला दोनों का एक असेंसे यही ध्येय रहा है—पढ़ने या देखने वाले को, सामान्य अपेक्षाओं से च्युत नयी दृष्टि प्रदान करना, किसी वस्तु को देखने और समझने के लिए। अतियथार्थवादी चित्रकार इस ध्येय को पाने के लिए बेहद प्रयत्नशील रहते हैं। वे वस्तुओं को उनकी परिचित मानसिक सेटिंग से पृथक् कर यह आशा करते हैं कि अंत में वे देखने वाले के दिमाग को भी कब्जे पर से उतार देंगे।

०००

नयी दृष्टि की प्राप्ति भाषा को अवबोधक साधन के रूप में इस्तेमाल करके भी की जा सकती है। हेनरी ग्रीन, राइट (शेषांश पृष्ठ १४४ पर)

रामलाल शुक्ल का व्यक्तित्व-बोधक लेख



हमारे युग के एक शलाका-पुरुष कुलपति श्री कन्हैयालाल मुन्शी

[श्रद्धेय मुन्शीजी की पुण्य तिथि ८ फरवरी के अवसर पर]

एक बार अपने कार्य के सिलसिले में मैं उज्जैन गया हुआ था। कई प्रकार की स्मृतियां मन में लिये हुए। कालिदास, भोज और विक्रमादित्य के नाम वहां से जुड़े हुए थे। साथ ही महाकालेश्वर, जो द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से एक है, के दर्शन करने की तीव्र उत्कंठा मन में पैदा हो रही थी। देश के सांस्कृतिक इतिहास में उज्जैन का भी अपना योगदान है। स्मृतिस्वरूप उन दुर्लभ विभूतियों के नाम पर वहां के मार्ग भी हैं। देखा क्षिप्रा के तट पर महाकालेश्वर का मंदिर—दर्शनार्थियों की भीड़। दर्शन करके पैदल ही पड़ाव की ओर चल दिया। जून का महीना। प्रखर धूप। कुछ दूर चलकर विश्राम करने एक वगीचे में बैठ गया। तरह-तरह के विचार मन में आने-जाने लगे। इतने में जोर की आंधी आयी और सारे उद्यान को झकझोर गयी। बाद में सब कुछ फिर पूर्ववत्। दूर्वादल से वहां की धरा हरी-भरी थी। हरीतिमा मन को लुभाने लगी। कारण स्पष्ट था—उसकी नियमित सिंचाई और देखभाल।

बैठे-बैठे मैं सोचने लगा कि अपनी के विषय में भी तो लगभग यही बात हो सकती है। भारत में तरह-तरह की उथल-पुथल हुए। कई प्रकार के इच्छा आये और गये। एक लंबे अरसे की पराधीन भी रहे। पर समर्पित ठाना इसे अभिसिंचित करने तथा इसकी करनेवाले जागरूक प्रहरियों की कीर्ति नहीं रही। स्व. कन्हैयालाल मुन्शी तीसरी संस्कृति के इसी प्रकार के एक एवं संरक्षक थे। संस्कृति के लिए उन्होंने संस्कृत भाषा का लिया था। उनका विश्वास ही संस्कृति से जुड़ी होती है और एक ऐसा अक्षय स्रोत है, जो का नाम नहीं लेती। अन्य प्रांतीय के प्रति भी उनका इसी प्रकार दृष्टिकोण था। पर वे चाहते भाषाएं भी संस्कृत से अपने करती चलें। अखिल भारतीय साहित्य सम्मेलन के जयपुर वेशन में, जिसके वे सभापति

त पर बल दिया था। 'संस्कृत विश्व रिपद' की स्थापना भी संस्कृत के सर्वांगीण विकास के उद्देश्य से हुई थी, जिसके कार्याध्यक्ष थे और अध्यक्ष थे भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसादजी।

मुन्शीजी पर सरस्वती का वरद-हस्त था। उन्हें 'वीणा पुस्तक धारिणी' कहा गया है। वीणा और पुस्तक ये दोनों क्रमशः

वर-संगीत और ज्ञान

अपनी प्रतीक स्वरूप नहीं बना। ज्ञान की अधि-

तरह-काशी होने के कारण 'गार के इच्छा' के साथ

अरसे क्रिया' का तालमेल र्मिपत ठाना भी उसकी

इसकी एक महत्वपूर्ण विशेषता है। ज्ञान का

ल मुन्शीबंध विद्या से है। के एकहा गया 'विद्यया

के प्रवृत्तमश्नुते'। विद्या का धारा ज्ञान प्राप्त

था होता है, मुक्ति और मिलती है। ऋग्वेद

जो कर्म सरस्वती के महत्व पर प्रकाश डाला जाता है—'सरस्वतीं देवयंतो हवन्ते सरस्वती

कार वध्वरे तायमाने' सरस्वतीं मुकृतो हवन्ते

हवन्ते सरस्वती दाशुषे वायं दात ॥' विजय चाहने

पने बाले वीर, ज्ञानी और व्यावहारिक व्यक्ति सरस्वती का आह्वान करते हैं। यज्ञ

करने वाले यज्ञ के समय उसे बुलाते हैं। मुकृती पुण्यात्मा सरस्वती की उपासना

करते हैं। दानी पुरुषों को वे वरणीय वस्तुएं देती हैं। सरस्वती की कृपा से मुन्शीजी में लगभग सभी विशेषताएं मौजूद थीं।

मुन्शीजी का जन्म गुजरात के भृगुवंशी ब्राह्मण परिवार में ३० दिसंबर १८८७ को हुआ था और अवसान ८ फरवरी १९७१ को बंबई में। 'मुन्शी'

उपनाम उनका हिन्दी

उपन्यासकार मुन्शी प्रेमचन्द के घनिष्ठ

संपर्क में आने के कारण, उस समय

पड़ा, जब वे सन १९३६ में उनके

साथ 'हंस' पत्रिका का कुशल संपादन कर

रहे थे। और यह योगायोग की बात है

कि दोनों ही 'उपन्यास सम्राट' निकले।

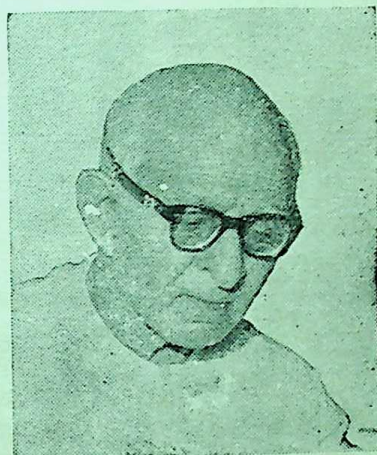
'होनहार विरवान के होत चीकने पात'

की तरह वचन में ही मुन्शीजी देखने, चलने और बोलने में अपना खास प्रभाव

छोड़ते थे। बैग लेकर स्कूल जाते समय का चित्र देखने पर ही लगता है कि बालक

अनेकों में एक रहा होगा। उनका व्यक्तित्व एक 'जीनियस' का था जो अपनी अप्रतिम

मानसिक ऊंचाई रखता था, किसी भी परिस्थिति से लड़ सकता था और उसे



कुलपति श्री मुन्शी

मनचाहा नया मोड़ देने में भी समर्थ था । इस प्रकार के व्यक्तित्व की परिभाषा करते हुए सैम्युअल जॉन्सन ने लिखा है : 'जीनियस इज ए जनरल सोर्ट ऑफ मेंटल सुपिरियार्टी ए पाँवर ऑफ इन्वेंशन कैपेबल आफ बीइंग टर्नेड इन यनी डायरेक्शन' । मुन्शीजी में ये सभी विशेषताएं एक साथ मौजूद थीं । भारतीय संस्कृति की सूक्ष्म पहचान और उसके प्रति गहरी श्रद्धा, भारतीय विद्या भवन जैसी अंतर-राष्ट्रीय संस्था का निर्माण तथा हैदराबाद जैसी अति सक्षम रियासत को नया मोड़ देने जैसे कठिन कार्य को मुन्शीजी ही कर सकते थे । ये सभी कार्य बड़े थे ।

प्रायः देखा जाता है कि हर बड़ी उपलब्धि या घटना पहले अपने लघु रूप में जन्म लेती अथवा आकार ग्रहण करती है और फिर यदि कुशल नेतृत्व मिल जाता है उसे तो विकसित होने में देर नहीं लगती । इसमें गौर करने लायक दो बातें हैं । एक तो हर बड़ा कार्य करना कठिन होता है, दूसरे उस पर नियंत्रण रखना उससे भी कठिन । नीत्से ने कहा था : 'टु डू ग्रेट थिंग इज डिफिकल्ट बट टु कमांड ग्रेट थिंग इज मोर डिफिकल्ट ।' किंतु मुन्शीजी ने भवन की स्थापना कर उसे चरितार्थ कर दिखाया ।

मुन्शीजी के व्यक्तित्व निर्माण में उनके अनवरत संघर्ष, विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों और परंपरागत संस्कारों का विशेष महत्व रहा है । साथ ही भारत के स्वर्णिम अतीत से उन्हें निरंतर प्रेरणा

नवनीत

मिलती रहती थी । उनका व्यक्तित्व मुच 'इंद्रधनुषी' था । वह सात रंगों का होता है और धरती पर वर्षा की देता है । जल को जीवनदाता भी जाता है । मुन्शीजी के व्यक्तित्व सात विशेषताएं परिलक्षित होती हैं एक साथ शिक्षाशास्त्री, विधिवेत्ता, नेता, कुशल प्रशासक, लेखक, पत्रकार इतिहासकार थे । इन्हीं सब विशेषताओं को लेकर मुन्शीजी के इंद्रधनुषी व्यक्तित्व का निर्माण हुआ था । मुन्शीजी का सांस्कृतिक सुगंध फैलाने के लिए वर्षा से धरती हरी-भरी है और संस्कृति से जीवन । मुन्शीजी प्रार्थना में विश्वास करते थे । उनके गीता मंदिर हाल में जब कालीन प्रार्थनाएं होती थीं तो बड़े भाव से उनमें वे सम्मिलित होते थे ।

भवन के सभी कार्यों का प्रारंभ प्रायः ही शुरु होता चला आ रहा है । वे धर्मों की प्रार्थनाओं का सम्मान करते हैं । उनका व्यक्तित्व उस समय विशेष से चमकता था, जब वे प्रार्थना के किसी कार्य का शुभारंभ करने के अपने श्वेत परिधान में दृढ़ संकल्प बड़े आत्मविश्वास के साथ आगे बढ़ते आस्था से की गयी प्रार्थना की अपनी विशेषता होती है । किर्कगार्ड ने कहा 'प्रेयर इज नॉट चेंज गाँड, बट चेंज 'प्रार्थना भगवान में परिवर्तन नहीं कर वरन प्रार्थी में (दिव्य) परिवर्तन लाती

आधुनिक काल के सांस्कृतिक इतिहास
तीन विभूतियों के नाम बड़े गौरव के
य जुड़े हुए हैं, जिन्होंने शिक्षा, साहित्य
र कला आदि विधाओं को माध्यम
कर देश में सांस्कृतिक नवजागरण का
चजन्य' फूँका था। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने
रत के पूर्वांचल में 'शांति निकेतन' की,
मदनमोहन मालवीय ने वाराणसी में
द्व विश्वविद्यालय' की तथा कन्हैयालाल
मी ने बंबई में 'भारतीय विद्या भवन'
स्थापना की थी। ये तीनों तेजस्वी,
स्वी एवं मनस्वी थे। शिव का स्वरूप
ालिक एवं कल्याणकारी माना जाता
उनकी पूजा-अर्चना में विल्व-पत्र का
प महत्व होता है। उसमें तीन पत्र
हैं। उन तीनों शिव-भक्तों के समूचे
भी विल्व-पत्र स्वरूप 'शिवार्पण-
' थे और अपने प्रिय भक्तों के उस
म विल्व-पत्र को मानो सुधारसर्वाषिणी
की जटा निरंतर अभिसिंचित करती
ही है। इसी से उनका महत्व कभी घटेगा
। वे मर कर भी अमर हो गये हैं।
मीजी की शिव-भक्ति का सबसे प्रत्यक्ष
ण इतिहास प्रसिद्ध सोमनाथ के मंदिर
जीर्णोद्धार, बाबुलनाथ मंदिर की
नीर्माण जिसके वे चैयरमैन भी थे तथा
कहावान चंद्रशेखर की स्थापना आदि से
सिद्ध है।
ों का राज के यांत्रिक युग की बेतहाशा भाग-
ताती में मानव मानव के अंतरंग संबंधों में
फरार आता जा रहा था। अपनी

संस्कृति के प्रति लोगों की आस्था घटती
जा रही थी। मुन्शीजी ने संस्कृति के मूल-
भूत तत्वों—ऋतु सत्य, यज्ञ और तपस को
प्रमुखता देकर श्रद्धा, भक्ति और समर्पण
द्वारा उसे रोकने का भरसक प्रयास किया।
उन्होंने उपयुक्त समय और उसके महत्व
को पहचाना। समय की सार्थकता और
उसके मूल्य को उन्होंने लक्ष्य किया था।

फ्रांसिस बैकन कहता है—'टाइम इज द
ग्रेटेस्ट इनोवेटर'। मुन्शीजी का दृढ़ विश्वास
था कि मानव का उदात्त स्वरूप संस्कृति
की ही शरण में जाने से निखर सकता है।
वही व्यष्टि को समष्टि से और राष्ट्र से भी
जोड़ सकती है। वह मानवता प्रेम और
विश्वबंधुत्व का अखंड पाठ पढ़ाती है।
पर इसके लिए आवश्यक है उसके प्रति
त्याग, निष्ठा और समर्पण की भावना पैदा
की जाय। उसके प्रति विश्वास उत्पन्न किया
जाय। प्रसिद्ध पाश्चात्य विचारक गेटे ने
भी 'विश्वास' को 'जीवन की प्रेरक शक्ति'
माना है। बड़ी उदार है भारतीय संस्कृति।
एक ओर तो वह मानव के परस्पर के
संबंधों को परिष्कृत और विकसित करती
रहती है और दूसरी तरफ धर्म और दर्शन
आदि को भी प्रभावित करती है तथा
दोनों लोकों के जीवन को भी। वह अखंड
मानवता का पाठ पढ़ाती है। सांस्कृतिक
पृष्ठभूमि पर युग-बोध और युग-धर्म के
अनुसार जो भी मानवोचित कार्य हुए हैं,
हो रहे हैं और होंगे, वे सभी सांस्कृतिक
कार्य में आयेंगे। इसीलिए हमारे यहां के



चित्र : टी. ए. राणा

ऋषियों-मुनियों, संतों-महात्माओं एवं महापुरुषों के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व को सांस्कृतिक मान्यताएं मिली हुई हैं। सत्य और धर्म का अंतरंग संबंध संस्कृति से माना गया है। मनु ने धर्म के दस लक्षण गिनाये हैं—‘धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः। धीर्विद्या सत्यम क्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्।’ गीता में भी ‘धर्म’ को कृष्ण स्वरूप कहा गया है—जहां धर्म है वहीं कृष्ण है और जहां कृष्ण है, वहीं जय है।

मुन्शीजी को धार्मिक अनुष्ठान बहुत पसंद थे। आधुनिक काल के भारतीय मनीषी आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि 'सभ्यता समाज की बाह्य व्यवस्था का नाम है, संस्कृति अंतर की।' पाश्चात्य विचारक मेरिल ने भी इसे विस्तृत अर्थों में 'भावना' कहा है। सांस्कृतिक दृष्टि से भारतीय चिंतन भी भावना को कम महत्व नहीं देता। घर-परिवार में

नवनीत

हम भावना के अनुसार ही तो व्यक्त करते हैं। वैदिक-युग, धर्म-युग, खलने और भक्ति-युग भी भारतीय वात इतिहास में स्वर्ण-युग हैं। उसका नेता जिस अतीत आज भी क्षितिज की मूल्यों मान को जोड़े हुए है तथा सुंदर में स और उसका संकेत भी है। गांधी संस्कृति को 'जीवन की पारंपरिक रहे हैं कहता है। संस्कृति की व्याख्या उस 'फाउंडेशन ऑफ इंडियन कल्चर' अहिंसा मुन्शीजी ने लिखा है—'इट्स फर्स्ट अनुशासन रिस्टिक इज़ कंटिन्युटी, इट्स सवके पास्ट, एडजस्ट्स इट सेल्फ टु द प्रेम, मोव्स फॉर्वार्ड टु शेप द फ्यूचर। कर मुन्शीजी का अटूट विश्वास थे। विश्वास ही फल है। जीवन की थी वि में वे उसी की लीला और छवि के अपि थे। गौर करने की बात है कि और कश्यप को ईश्वर कहीं नहीं दि जोड़ पर प्रह्लाद को उनकी भक्ति और म के कारण खंभे में मिल गया। कांग्रे भगवान को ही प्रेरक और सत्य थे। उसी की अंतश्चेतना से फिर करते थे। इसीलिए मुन्शीजी पार्लि कार्य को 'भगवान का कार्य' कहें में (थे। 'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च भावि जगत्' में उनकी गहरी आस्था १९ एजें में उनी पाल १९

व्यक्ति थे, सब के मन में परतंत्रता अधिक खलने लगी थी। और यह संयोग की ही बात थी कि देश को महात्मा गांधी जैसा नेता मिल गया था। मुन्शीजी ने देखा कि जिस प्रकार की भारतीयता और जीवन मूल्यों के प्रति मैं अपने जीवन और साहित्य में समर्पित हूँ उन्हीं को केंद्र मान कर गांधीजी देश में स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ रहे हैं। गांधीजी के जीवन और उनकी उस लड़ाई में प्रभु-भक्ति, प्रार्थना, सत्य-अहिंसा, नैतिकता, आचार-विचार तथा अनुशासन का विशेष महत्व था। इन सबके माध्यम से वे देश की एकता के लिए प्रेम, भाईचारा और मानवता का प्रचार कर रहे थे और शक्ति केंद्रित कर रहे थे। गांधी और मुन्शी दोनों की मान्यता थी कि एक धर्म दूसरे का विरोधी नहीं, अपितु पूरक होता है। वे दोनों प्राचीन और अर्वाचीन के बीच संतुलन का तार जोड़ रहे थे।

मुन्शीजी १९१७ में इंडियन नेशनल कांग्रेस के सदस्य बने। १९३० में नमक सत्याग्रह में जेल गये। ३२ और ४० में फिर जेल-यात्रा हुई। १९३४ में कांग्रेस पार्लियामेंट्री बोर्ड के सचिव हुए। १९३७ में (तत्कालीन गुजरात-महाराष्ट्र अविभाजित) बंबई में गृहमंत्री बने और १९४७ में हैदराबाद में भारत सरकार के एजेंट जनरल। १९५० में केंद्रीय खाद्य मंत्री तथा १९५२ में उत्तरप्रदेश के राज्यपाल। पर राजनीतिक जीवन में भी

साहित्य से उनका संबंध बना रहा। जिस समय वे उत्तरप्रदेश में राज्यपाल थे, तब कविवर निरालाजी भी एक बार लखनऊ के एक काव्य-समारोह में गये हुए थे। मुन्शीजी निरालाजी को अपने यहां भी निमंत्रित कर ससम्मान बुलवा सकते थे, पर यह विशेष रूप से ध्यान देने की बात है कि मुन्शीजी जैसे बड़े साहित्यकार और राज्यपाल स्वयं निराला से मिलने गये और पास बैठ कर उनकी मजेदार-दो टूक-लट्ठमार बातें सुनते और मुस्कराते रहे। यह ध्यान देने की बात है कि जो व्यक्ति १९४६ में भारत



सरकार की ओर से भारतीय संविधान की ड्राफ्टिंग कमेटी का विशेषज्ञ बना और देश में राष्ट्रीय नव जागरण पैदा करना चाहता था, वही व्यक्ति १९५९ में कांग्रेस से अलग क्यों हो गया। क्योंकि, उन्होंने देखा कि कांग्रेस धीरे-धीरे गांधी के विचारों और उसूलों से दूर होती जा रही है।

अंदर-बाहर और कथनी-करनी में उन्हें सर्वत्र पोल ही पोल दिखने लगी। यहां तक कि जो आशा-आकांक्षा लेकर वे स्वतंत्र पार्टी में गये, उसमें भी वे अधिक

समय तक नहीं टिक पाये। गांधीजी की नीति का विश्लेषण करते हुए एक बार उन्होंने बम्बई में कहा था कि गांधी कहते थे 'भय सर्वत्र वर्जनम्' पर आज दिखायी पड़ रहा है 'भय सर्वत्र प्रवर्तनम्'। मुन्शीजी लोकतंत्र को मानवता के संदर्भ में देखना चाहते थे।

लिकन ने कहा है—'डिमोक्रैसी इज द गवर्नमेंट आफ द पीपुल, वाई द पीपुल, फॉर द पीपुल।'।

साहित्य से मुन्शीजी का गहरा लगाव था। वह उनके हृदय में बसता था। लेखन में उनकी दृष्टि प्रायः पौराणिक, ऐतिहासिक और सामाजिक उपलब्धियों की ओर अधिक रही। पौराणिक कृतियों में 'अविभक्त आत्मा', 'भगवान परशुराम', 'कृष्णावतार' तथा ऐतिहासिक में 'पाटण नी प्रभुता', 'गुजरात नो नाथ', 'पृथ्वीवल्लभ', 'जय सोमनाथ', 'तपस्विनी', 'ध्रुवस्वामिनी' और सामाजिक में 'काका नी शशी' एवं 'डॉ. मधुरिका' आदि का नाम लिया जा सकता है।

मुन्शीजी के जीवन और सृजन में प्रेम, अध्यात्म, अहं और आत्म-विश्वास प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। उनकी रचनाओं के प्रमुख पात्रों—मुंज, काक, शुक्राचार्य, परशुराम, मुंजाल, विष्णुगुप्त और कृष्ण तथा नारी पात्रों में—देवयानी, मंजरी, लोपामुद्रा, लोमहर्षिणी, मीनल, ध्रुवदेवी, तनमन और राज बा आदि के चरित्रों में ये सभी विशेषताएं भरी पड़ी

हैं। उनके सृजन की दूसरी महत्वपूर्ण यह है कि परशुराम और कृष्ण विशिष्ट पात्रों में वे अतिमानव के चरित्र की कल्पना भी करते प्रतीत होते हैं—'आई हैव काल्ड द होल वर्क वतार, दि डिसेंट ऑफ द लॉर्ड।' मुन्शी अपने जीवन में एक नहीं अनेक क्षेत्रों में गए और जहां गये, वहीं कीर्तिमान स्थापित किया।

पर, साहित्य से उनका गहरा लगाव हमेशा बना रहा। और अंत में घूम कर फिर वहीं वे आ जाते थे—'मेरो अनत कहां सुख पावे'। मुन्शीजी 'प्रतिभा' के धनी थे। उनकी उस प्रतिभा को जब एक क्षेत्र छोटा पड़ने लगा तब कई क्षेत्रों में फैल गयी।

बाढ़ के पानी से सरोवर भर कर फिर उमड़ कर चारों तरफ फैल जाता है पर आखिर में बचता वही है, जो उस हृदय में रहता है।

मुन्शीजी भगवान के आदमी थे उसी के संदेश-वाहक। वे 'कर्मण्येवाहि' 'अरे कारस्ते' का जीवन जिये थे। वे भारतीय संस्कृति के राष्ट्रीय व्याख्याता थे एक युग-पुरुष भी। उनके उसी प्रताप के प्रभाव से भवन की शाखाएं केवल भारत के कोने-कोने में कार्यरत वरन् इंग्लैंड और अमेरिका जैसे विश्व प्रतिभा संपन्न देशों में भी अब उसकी शाखा खल गयी हैं।



(पृष्ठ ३५ का शेषांश)

येगा ।' उन्होंने कहा—'यह ठीक है, प भी हमारे साथ चलिए । दोनों काम जायेंगे ।'

उस दिन रंगजी के मंदिर में रथ के की आतिशवाजी थी । हम लोग गये, हारीजी के दर्शन किये, आतिशवाजी की और मथुरा की ओर लौट पड़े । मन ने कहा—'वृंदावन तो आ गयी मां अपने पास और बुला लो ।'

अचानक शर्माजी पूछ बैठे, 'आनंद-मां का आश्रम कहाँ है ? सुना है वे ची हुई संत हैं ?' मैंने कहा 'आजकल भी हुई भी हैं ।' 'तो हमें भी दर्शन करा जाए ।' मैंने धड़कते हृदय को संभाला र कहा—'हां, आश्रम रास्ते में ही गा ।'

आश्रम में पहुंचकर कार से उतरते ही के कक्ष तक मैंने बस दौड़ लगाई । भक्तों के साथ ध्यान में लीन थीं । ९ वजे ध्यान टूटा, वक्तियां जल उठीं । ने मुझे पहचाना और उठकर सीधी बैठ । 'अरे आओ, आगे आओ ।'

मां के चरणों में झुकती चली गयी । आज मैंने सोचा मां स्वयं मुझे बुलायें आऊं । आपने मुझे बुलाया । धन्य कर खाए ता ।'

मेरी पुत्री विवाह योग्य हो गयी थी । से एकांत में मिली तो अपनी यही स्या रखी । मां ने हाथ से ताली बजाते कहा—'ऐसे हो जायेगा उसका विवाह,

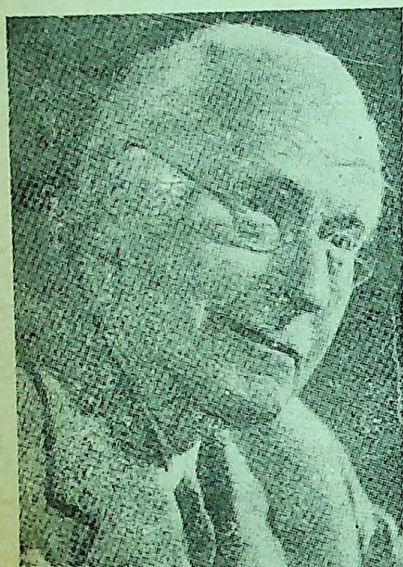
जाओ तैयारी करो' । एक माह भी नहीं बीता कि विवाह पक्का हो गया । त्रिताल की लय पर ही सब कुछ हुआ । एक रवि-वार देखना-दिखाना, दूसरा रविवार पक्की, तीसरा रविवार खाली और चौथे रवि-वार को विवाह । संयोग से वर पक्षवाले मेरे समधी भी मां के शिष्य थे । दोनों परिवार विवाह के बाद मां के आश्रम में मिले तो समधिन साहिवा ने कहा—'मां, यह मेरी बहू है', मैंने कहा—'मां यह मेरी बेटी है जिसका विवाह आपने ताल देकर कराया है ।' मां के मुख पर दिव्य मुस्कान फैल गयी, कोमल स्वर में बोलीं, 'चलो यह तो बहुत अच्छा हुआ ।'

मेरी माताजी भी मां से मिलीं तो कहा—'मां, मुझे मुक्ति चाहिए ।' मां ने कहा—'तुम्हें मुक्ति चाहिए, अच्छा तो तुम एक करोड़ मंत्र का जाप कर लो, मुक्त हो जाओगी ।' माताजी के मन में वह बात ऐसी बैठी कि उन्होंने एक करोड़ मंत्र का जाप पूरा कर लिया और उसके कुछ ही दिन बाद दिव्य मृत्यु पायी । 'मैं भगवान के पास जा रही हूँ' कहकर समा-धिस्थ हो गयीं ।

अभी जून में कनखल स्थित आश्रम में मां के दर्शन किये थे । कौन जानता था कि वही मेरे लिए उनका अंतिम दर्शन था । शत बार श्रद्धांजलि ।

—रामनाथ रोड, किसान निवास के सामने,
डैम्पियर नगर, मथुरा (उ. प्र.)





मनोवैज्ञानिक सी. जे. जुंग

जुंग के नाम लिखे फ्रायड के तीन पत्र

०००

फ्रायड की प्रशस्ति में एक बार जुंग ने कहा था : 'फ्रायड की महानतम उपलब्धि यह कि उन्होंने मनस-रोगियों को गंभीरता से लिया, और इस कारण मनस-रोगों की जो समझ उन्हें मिली, पहले किसी को नहीं मिली थी।' उन्होंने फ्रायड द्वारा अपने 'दत्तक' जुंग को परा-मनोविज्ञान के बारे में लिखे गये तीन दुर्लभ और ऐतिहासिक पत्र

०००

वियेना, १६ अप्रैल, १९०९

प्रिय मित्र ! ... यह एक अनोखी बात है कि जिस शाम मैंने तुम्हें औपचारिक-रूप से अपने ज्येष्ठतम पुत्र, उत्तराधि-

नवनीत

मैंने निश्चय किया कि मैं इस विषय तुम्हें अवश्य लिखूंगा। यह पत्र मेरे निश्चय का परिणाम है।

मेरे घर के सामने के कमरे में पुस्तकें

की एक बड़ी अलमारी है, जिस पर मिस्र के दो भारी प्रस्तर-पट्ट रखे हैं। इस कमरे से हमेशा चरमराहट की आवाज आती रहती है। जाहिर है कि ये आवाजें क्यों और कहां से आती हैं। लेकिन दूसरे कमरे से, जहां मैंने और तुमने किसी चीज़ के जोर से गिरने की आवाज सुनी थी, ऐसी आवाजें बहुत कम आती हैं। जब तुम और मैं बातें कर रहे थे, तब ये आवाजें काफ़ी मात्रा में और लगातार आ रही थीं, लेकिन तुम्हारे जाने के बाद अचानक बंद हो गयीं।

तुम्हारे जाने के बाद मैं देर तक सोचता रहा कि इन आवाजों का क्या मतलब था, यदि कोई मतलब सचमुच लगाया जा सके तो। मझे की बात यह है कि तबसे ये आवाजें कई बार सुनायी दी हैं, मगर तभी जब मैं न भूतों के बारे में सोच रहा था, और न तुम्हारा खयाल कर रहा था। और, चुनौती के तौर पर मैं यह भी कह सकता हूँ कि आवाजें इस वक्त भी, जब मैं तुम्हें यह पत्र लिख रहा हूँ, नहीं आ रही हैं।

और मुझे वे भ्रम भी याद आते हैं, जब

मेरे लिए इन आवाजों का कोई मतलब नहीं था। और वे क्षण तब आये थे, जब तुम अपनी सम्मोहक उपस्थिति के साथ कमरे में थे। भूतों के प्रति मेरा विश्वास और अविश्वास दोनों उन क्षणों में न जाने कहां अन्तर्धान हो गये थे।

लेकिन अब, किन्हीं अज्ञात भीतरी कारणों से मुझे फिर लगने लगा है कि भूत-वूत कहीं कुछ नहीं होते। मेरे सामने रखा फर्नीचर निर्जीव और निःस्पंद पड़ा है। उसे देखकर मुझे यूनान के उन देवी-देवताओं की याद आ जाती है, जिनके चले जाने के बाद प्रकृति स्थिर और बेजान हो जाया करती थी।

मैं फिर अपना पैतृक चोगा धारण करके तुम्हें यह नेक सलाह देना चाहता हूँ, बेटे, कि ज्ञान की खातिर इतना त्याग करके इन हवाई चीज़ों से माथा फोड़ने से क्या लाभ है? मनोविश्लेषक की दृष्टि से इस प्रश्न पर विचार करता हूँ तो पाता हूँ कि युवा लोग ऐसे ही होते हैं। उन्हें ऐसी नयी राहों पर दौड़ने में ही मज़ा आता है, जिन पर हम बूढ़े लोग जाने की सोच भी नहीं सकते, और जायें भी तो उन जैसी तेज़ी नहीं दिखा सकते।



सिंगमण्ड फ्रायड

१९८३

और अब मैं अपनी अधिक आयु के अनुभवों के आधार पर, वाचालता के साथ पृथ्वी और आकाश के बीच के एक ऐसे विषय के बारे में कुछ कहना चाहूंगा, जिसे कभी नहीं समझा जा सकता। कई साल पहले, मैं इस विलक्षण विचार से ग्रस्त हो गया था कि मैं ६१ और ६२ वर्ष की आयु के बीच चल वसूंगा। तब ६१ व ६२ वर्ष की आयु बहुत दूर लगती थी, और आज भी मैं उससे ८ वर्ष के फ़ासले पर हूँ। बाद में, मुझे अपने भाई के साथ युनान जाना पड़ा। वहाँ मैं यह देखकर दंग रह गया कि मुझे ६१ और ६२ की संख्याएं बार-बार दिखायी देती थीं, विशेष रूप से वाहनों पर। मैं उसका पूरा व्यौरा रखने लगा। लौटते समय, मैं बड़ा उदास था। एथेन्स के जिस होटल में हमें ठहरने का मौका मिला था, वहाँ हमें दूसरे माले पर कमरे मिले थे। मैंने सोचा, चलो इस तरह ६१-६२ संख्याओं से तो मुक्ति मिलेगी। पर जब मैंने देखा कि मेरे कमरे का नम्बर ३१ था (जो ६२ का आधा था) तो मेरा दिल बैठने लगा।

उस दिन से ३१-३२, ये दोनों संख्याएं बड़ी वफ़ादारी के साथ मेरे इर्द-गिर्द घूमती रहती हैं। मैंने यह जानने का प्रयास किया कि ऐसा क्यों होता है, और इसके लिए मुझे खुद का मनोविश्लेषण करना पड़ा। इस विश्लेषण की डोर के सहारे मैं बहुत पीछे-सन १८९९ में-पहुंच गया, जब मैंने अपनी पुस्तक 'द इन्टरप्रिटेशन ऑफ़ ड्रीम्स'

नवनीत

को लिखना आरंभ किया था। यह पुस्तक पूरी हुई १९०० में, एक वर्ष के अंतर के बाद, वही अंतर जो ६१ और ६२ तथा ३१ और ३२ में है।

तभी मुझे एक नया फोन मिला था जिसका नम्बर था-१४३६२। मैं तब ४३ वर्ष का था, और ४३ की संख्या इस फोन नम्बर का एक अंग थी। फोन नम्बर ६२ की संख्या के साथ समाप्त होता था। इस कारण मेरे अवचेतन ने यह मान लिया था कि मेरा जीवन भी ६२ वर्ष की आयु में समाप्त हो जायेगा। उसने यह भी मान लिया था कि अब इस पुस्तक के बाद, मैं कोई और पुस्तक नहीं लिखूंगा।

विश्लेषण के इस निष्कर्ष को एकदम निरर्थक मनाने को भी मन नहीं करता। और क्या यह एक संयोग ही था कि यह ग्रस्तता मेरे जीवन में तब आयी, जब मैंने विल्हेम फ्लोस से प्रभावित होना आरंभ कर दिया था। अब इस ग्रस्तता ने एक अंधविश्वास का रूप धारण कर लिया, मैं नहीं जानता।

यह घटना इस बात की पुष्टि करती है कि मेरा रहस्यवाद यहूदी रंग लिये हुए है। इसके अतिरिक्त, मैं यह भी कहना चाहूंगा कि ६२ की संख्या के साथ मेरी ग्रस्तता को दो प्रकार से समझाया जा सकता है। पहला यह कि मेरा अवचेतन अति सतर्क है, फॉस्ट के अवचेतन की भांति जो प्रत्येक नारी को हैलन के रूप में ही देखता था। दूसरा, 'संयोग का सहयोग'

अनेक भ्रांतियों को जन्म देता है ।
मेरे लेखे भूत और प्रेतात्माएं भी
भ्रांतियां हैं, बड़ी दिलचस्प भ्रांतियां ।
तुम पर जो शोध तुम कर रहे हो, उसमें
मेरी रुचि इसलिए है कि मेरी रुचि खुश-
नुमा भ्रांतियों में भी है ।

तुम्हारे, तुम्हारी पत्नी और बच्चों
के प्रति सद्भावनापूर्वक तुम्हारा—फायड
(२)

वियेना, १२ मई, १९११

प्रिय मित्र,
... मैं जानता हूँ कि अपने अन्तरतम
अनेक रुझानों के कारण तुम गुह्य-
विद्या की ओर आकर्षित होते जा रहे हो ।
एकदम से पूरा विश्वास है कि गुह्यविद्या का
तुम्हारा अध्ययन जब पूरा हो जायेगा, तब
कि यह अपने को पूर्वापेक्षा अधिक समृद्ध
जब मैंने आगे, और तुम्हारा दृष्टिकोण अधिक
आरंभ आपक हो जायेगा । अपनी आन्तरिक
ने एक रुझानों पर अंकुश लगाना उचित नहीं,
नया, मैं और उन्हें निर्वन्ध उसी मार्ग पर जाने देना
हिए, जिस पर वे इच्छानुसार जाना
करती हैं ।

‘दिमेन्तिया’ के कारण तुम्हारी जो
कहना गति हुई है, उसके कारण कोई, काफ़ी

समय तक, तुम्हें ‘रहस्यवादी’ कहने की
भूल नहीं करेगा ।

मैं सिर्फ़ एक सलाह देना चाहूंगा । इस
रसीले क्षेत्र में बहुत अधिक समय तक न
रहना । उसके होकर रह गये, तो अपने
केन्द्र को भुला दोगे, स्व पर अपना नियंत्रण
खो बैठोगे ।

अभिवादन सहित और तुम्हारे उत्तर
की प्रतीक्षा में,

तुम्हारा विश्वासपात्र—फायड

(३)

वियेना, १५ जून, १९११

प्रिय मित्र,

... फेरेंजी के अनुभवों के बाद से मैं
गुह्यविद्या के मामले में पहले से अधिक
विनम्र और सहनशील हो गया हूँ । कोई
वात थोड़ी भी तर्कसंगत लगे तो मैं उस पर
विश्वास करने को तैयार रहता हूँ । जैसा तुम
जानते ही हो, मैं ऐसा सुखपूर्वक नहीं करता ।
लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि उन
अनुभवों से मेरी गुस्ताखी को भारी धक्का
लगा है, और वह चूर-चूर हो गयी है ।

तुम्हारे और तुम्हारे घर के प्रति

सद्भावना सहित,

तुम्हारा विश्वासपात्र—फायड



आयु के वर्ष वही गिनता है जिसे गिनने के लिए और कुछ शेष नहीं । —अज्ञात

०००

सर्वश्रेष्ठ कला स्वप्न को सत्य में परिवर्तित करने में है । —डेविड कूपर

०००

कर्तव्य कार्य अच्छा करवाता है, परन्तु प्रेम कार्य सुंदर करवाता है । —अज्ञात



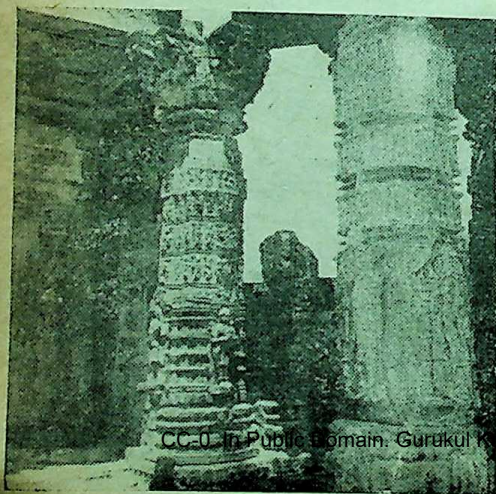
रामस्वरूप जोशी का कला-अनुसन्धान लेख



राजस्थान का उपेक्षित खजुराहो : भण्ड देवरा

राजस्थान जो अपनी आन-वान, शौर्य-संस्कृति तथा वास्तुकला की अमिट छाप पर्यटकों पर छोड़ता है, वहां न जाने आज भी भण्ड देवरा-मैनाल जैसे कितने ही उपेक्षित स्थान हैं, जो पर्यटकों को प्राचीन संस्कृति, कला की जानकारी उपलब्ध कराने में अद्वितीय हैं। राजस्थान का हाड़ौती प्रदेश वास्तुकला, भवनकला के अवशेषों से इस बात की पुष्टि करता है कि तीसरी से बारहवीं शताब्दी तक यह क्षेत्र काफी समृद्ध रहा है। उत्तर भारत से जो संस्कृति मालवा से होती हुई दक्षिण में गयी, उनके मध्य आने वाले शाहवादा, विलास, गड़गच्च, चंद्रभागा, भण्ड देवरा, बाड़ौली के अवशेष अपनी वैभव गाथा कह रहे हैं। मंदिर निर्माण कला के उत्कृष्ट

खंभों पर तराशा गया मिथुन शिल्प



नमूने आज भी अद्वितीय हैं। राजस्थान में हाड़ौती कोटा क्षेत्र का सुनहरा स्थान रहा है। स्थापत्य-कला एवं शिल्प का अमूल्य धरोहर हैं। यहां का प्रत्येक ऐतिहासिक कहानी है।

राजस्थान का उपेक्षित खजुराहो गढ़ का शिवमंदिर, जिसे भण्ड देवरा कहते हैं, आज भी जन साधारण पर्यटकों के लिए अज्ञात स्थान बना हुआ है। कोटा १३० कि. मी. दूर किशनगंज तहसील स्थित रामगढ़ ग्राम से तीन कि. मी. प्राकृतिक पहाड़ी से घिरे तलहटी में प्राचीन अद्भुत शिवालय है, जिसे भण्ड देवरा कहते हैं, जिसका नाम है भग्न देवरा। इसका अर्थ है फूटा और देवरा का अर्थ है देव का अर्थात् मंदिर। जो आज भी अपने को सार्थक कर रहा है।

‘कोटा राज्य का इतिहास’ पुस्तक के लेखक डा. मथुरालाल (पृष्ठ ३२) के अनुसार वर्तमान कोटा का पुराना नाम श्रीनगर बतलाया जा रहा है जो दसवीं शताब्दी के आस-पास समृद्ध नगर रहा होगा।

मंदिर से संबंधित एक शिलालेख इंजिनियरी के कार्यालय में सुरक्षित है।



खजुराहो शैली का जीर्ण-शीर्ण भण्ड देवरा

दसवीं शताब्दी की लिपि में लिखे गये
संस्कृत शिलालेख का खण्ड है—

‘दशमी शताब्दी . . . श्री मलय देव
वर्मन . . . विजयोल्लास . . . विनम-
ग्रस्य . . . सहस्रावधि परास्तवरस्य . . .
भक्तिकीर्ति मूर्तिः’

इसमें ज्ञात होता है कि मलय वर्मा
नामक राजा ने किसी शत्रु पर विजय प्राप्ति
के उपलक्ष्य में अपने इष्टदेव की पूजा के
लिए मंदिर का निर्माण कराया होगा।

मंदिर के अंदर पीछे लगे हुए स्तंभ
पर निम्न शिलालेख है—

‘संवत् १२१९ . . . त्रिशासवर्मा . . .
मेडवंशीय महाराज श्री मत्तिसिंहस्य’

लेख से स्पष्ट है कि विक्रम की तेरहवीं
शताब्दी के प्रारंभ में एक मेडवंशीय क्षत्रिय
राजाने इस मंदिर का निश्चय ही जीर्णोद्धार
कराया था।

यदि खजुराहो को भण्ड देवरा कहा
जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। भण्ड
देवरा की प्रस्तर कला की मूर्तियां अजंता-

एलोरा की श्रृंगारिक प्रतिमाओं को भी
मात करती हैं। अत्यंत उत्कृष्ट कलात्मक
पंचायतन मौखरी कला में निर्मित मैनाल,
भण्ड देवरा, चन्द्रभागा के मंदिर इस बात
के निर्णायक हैं कि खजुराहो के मंदिरों में
उनका अनुसरण किया गया है।

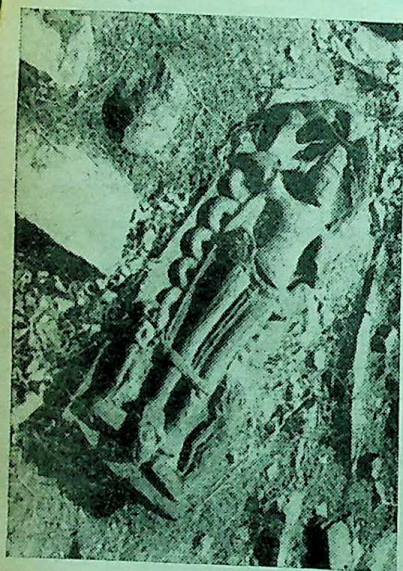
दसवीं शताब्दी में इस अंचल में शैव
मत का बाहुल्य था और वाममार्ग शाखा
का प्रभाव शासक से लेकर प्रजा तक था।
इस समय में आर्लिगन और मिथुन
क्रीड़ाओं में रत मूर्ति शिल्प का प्रचलन
हुआ। यही वह समय था जबकि खजु-
राहो में भी शिल्प निर्माण हुआ था। वाम-
मार्गी मिथुन क्रिया को भगवान के साथ
तादात्म्य का एक दैहिक साधन मानते थे।
शिव भक्ति का मिलन जीवन की अनि-
वार्य इच्छा मानते थे। अध्यात्म प्राप्ति
अर्थ-मोक्ष का मुख्य स्रोत काम क्रीड़ा है।
उनका मानना था मोक्ष तभी संभव है जब
भोग से तृप्ति हो।

मूर्ति-शिल्प एवं वास्तुकला के लिए

हिंदी डाइजेस्ट

दसवीं शताब्दी की महत्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत करता है। मंदिर पूर्णरूप से हिंदू शैली पर निर्मित है। प्रवेश द्वार अर्धमंडप, महामंडप, अंतराल, शुभगृह और परिक्रमा सभी हिंदू शैली की विशेषताएं हैं। गर्भ-गृह के सामने अंतरालय तथा विशाल मंडप का विधान है। मंदिर में आगौरी कला के स्तंभ में शैव कला मुखरित हुई है। यद्यपि इनमें वामाचार का प्रभाव है। संपूर्ण प्राचीन देवालय रक्त वर्ण पाषाण से निर्मित है।

इस देवालय का शिखर उच्च कोटि का है जो बहु शिखरी है। शिखर-बंध मंदिरों में उत्तम कोटि का मंदिर है। इसका शिखर असुरक्षित बिखरा शिल्प



नवनीत

खजुराहो के दौलादेव मंदिर से भी है। इसका मंडप दस बड़े तथा १८ स्तंभों कुल २८ कलापूर्ण बड़े स्तंभों टिका है।

मंडप के सभी इन बड़े स्तंभों पर प्राचीन शिल्पकारों ने अपनी दक्ष कलापूर्ण कलाओं से सुंदर तथा आकर्षक कामशायी के चित्रों को पत्थर में तराश कर उसका की संस्कृति का परिचय दिया है। प्रत्येक स्तंभ पर अस्सी मिथुन मूर्तियां हैं। इस प्रकार आठ सौ काम क्रीड़ा आलिंगन वद्ध मूर्तियां विभिन्न मिथुन मुद्राओं में तराशी गयी हैं। काम क्रीड़ा सभी कलाओं का स्पष्ट दिग्दर्शन होता है।

इसकी वास्तुकला में अंग प्रदर्शन विशेष महत्व दिया गया है। नारी हो पुरुष सभी मूर्तियां सुडौल एवं बलिष्ठ देहवाली हैं। पाषाण पर तराशी मूर्तियों की भव्यता अत्यंत हृदयग्राही यक्ष, किन्नर, देवी-देवता, अप्सराएं, गंधर्व, युगल मूर्तियां, उनकी मदभरी आंखें, उन्नत उरोज, पतली कटि, पैरों में नूपुर, गले में हार, कानों में कुंडल, कलाई में कंगन पहने स्वरूपों को कलाकार ने और अधिक तराशने का प्रयत्न किया है। मंदिर वास्तुकला के कारीगरों के परिश्रम तथा कला का सुंदर मिश्रण है।

मुख्य मंदिर के साथ चार मंदिर जुड़े हुए हैं, जो उत्तेजक वास्तुकला के खजुराहो शैली के अद्भुत नमूने हैं। मुख्य मंदिर

में पत्थर की कटाई देखने योग्य है। मूर्तियां भी ऊँचे खड़ी-बड़ी हैं। मंदिर ४९ मीटर लंबा, ३२ १८ मीटर चौड़ा तथा ३२ मीटर ऊँचे शिखर तंत्रों में निर्मित है। देवालय के समीप शिखर और मंडप के प्रस्तर बिखरे पड़े हैं। र प्राचीन कोणार्क, भुवनेश्वर, पुरी, खजुराहो आदि पूर्ण उत्कृष्टता के अनुरूप मोहक कला के यहां गम्यमान दर्शन होते हैं।

उसका भण्ड देवरा का शिवालय आज भी प्रत्येक पुरातत्व विभाग की पहुंच से बाहर है। यह स्थान मूर्ति चोरों का स्वर्ग बना हुआ है। स्थान-स्थान पर तस्करों की छेनी-आओं एवं झाड़ियों से यह शिव मंदिर आहत है। कीड़ा मंदिर के आसपास उगी झाड़ियों में मूर्तियां निर्यात की जाती हैं। राज्य सरकार ने यद्यपि इसकी मरम्मत के लिए एक कोष खोला है, परंतु जो वास्तुकला के विशेषज्ञों के अभाव में हो सके, उसका उपयोग नहीं हो रहा है। शी गंगाज इसे सड़क-यातायात मार्गरोल व गंगा से जोड़ने तथा इसको सुर-



भण्ड देवरा के कलापूर्ण खंभे

क्षित रख कर पर्यटक केंद्र के रूप में विकसित करने की प्रमुख आवश्यकता है।
—जनसंपर्क विभाग, कोटा (राज.)



श्रेय किसे ?

परिषद के प्रांगण में लेखन के सभी उपकरण एकत्रित हुए और साहित्य-मृजन में अपनी-अपनी भूमिका का बड़-चढ़कर उल्लेख करने लगे।

कलम ने कहा—जो कुछ लिखा गया है उसका श्रेय मुझे मिलना चाहिये।
स्याही बोली—मेरे बिना लेखन का कार्य एक कदम आगे नहीं बढ़ सकता।
हाथों ने कहा—हम जो घिसते-पिसते हैं—सो ?

मस्तिष्क ने कहा—तुम सबका कथन अपने स्थान पर सही है। पर यह क्यों भूल जाते हो कि तुम लोगों से आगे भी कोई अदृश्य चेतना है, जो उस प्रयोजन को पूरा करती है, जो उस प्रयोजन को पूरा करती है। —डा. गोपालप्रसाद 'वंशी'



‘मैं पुजारी होकर कभी देवता का प्रसाद चुराऊंगा नहीं...’

विमल मित्र

०००

विगत ११ नवंबर '८२ को श्री विमल मित्र को श्री पूनमचन्द भुतोड़िया पुरस्कार (राशि दस हजार रुपये) से सादर सम्मानित किया गया। उक्त अवसर पर पठित श्री विमल मित्र का अभिभाषण . . .

०००

आज जब कि मैं अपने जीवन के सीमान्त-देश में आ पहुंचा हूं, तब आप लोगों ने मेरे लिए जिस सम्मान-समारोह का आयोजन किया है, उसके परिपेक्ष्य में मैं अपने बीते हुए दिनों का सिंहावलोकन करने की आवश्यकता का अनुभव कर रहा हूं। जिस राह को पीछे छोड़ आया हूं, उसकी तरफ मुड़ कर देखने में मुझे आतंक हो रहा है। जिस प्रबल विरोध का, जिस प्रत्यक्ष शत्रुता का और जिस अप्रतिहत असम्मान का मुझे आज तक सामना करना पड़ा है, उसमें आज भी कोई कमी आयी हो—ऐसी बात नहीं है। वरन् उसमें वृद्धि ही हुई है।

मैं जानता हूं कि आज आप लोगों ने जो सम्मान मुझे दिया है, वह मेरी व्यक्ति-सत्ता को नहीं दिया है। दिया है मेरी लेखक-सत्ता को। मुझमें जो व्यक्ति-सत्ता अवस्थित है, वह नाना कारणों से बार-बार मेरी लेखक-सत्ता को पराजित

करना चाहती रही है। मैं भी आज भी उसके विरुद्ध संग्राम करता हूँ लहू-लुहान होता रहा हूँ। फिर भी पराजय स्वीकार नहीं की।

मैंने जिस परिवार में जन्म लिया उसे एक मध्यवित्त परिवार कहना ठीक होगा। घर में कनिष्ठ होकर जन्म ग्रहण करने के कारण एवं अर्थ, सामान और वैभव की दृष्टि से अपेक्षाकृत निम्न होने के कारण मैं बार-बार लांछित होता था। विशेषतः मेरे दो अग्रजों के जीवन संग्राम में सुप्रतिष्ठित होने के कारण उन अभिभावकों की दृष्टि में मैं था सर्वथा अवहेलित। अवहेलित होने का एक कारण और भी था। उन दिनों मध्यवित्त परिवार में जन्म लेकर साहित्य को आजीवन पेशे के रूप में ग्रहण करने का स्वप्न हास्यास्पद ही माना जाता था। लेकिन सुदूर बाल्यकाल से ही मेरी प्रवृत्ति मुझे साहित्य की ओर ही अधिकारी

नवनीत

५६

आकर्षित करती थीं। कविता-लेखन और संगीत-गायन से ही मेरी जीवन-यात्रा का सूत्रपात हुआ। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में मेरी कविताओं का प्रकाशन मेरे अभिभावकों के हार्दिक कष्ट और मेरे प्रति हताश होने का कारण होता। जब एक दिन कोलम्बिया कम्पनी द्वारा मेरे कंठ-संगीत का रेकार्ड निर्मित किया गया, तब मेरे अभिभावक-गण कैसी घोर हताशा में डूब गये थे, वह मुझे अब भी याद है। इसी बीच विश्वविद्यालय की

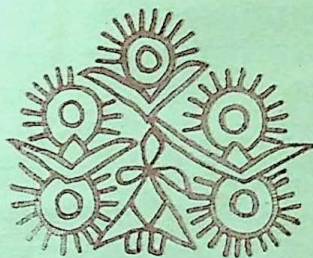
अन्तिम परीक्षा में उत्तीर्ण होने के पश्चात् ही मेरे अभिभावकों ने अधिक समय नष्ट किये बिना मुझे सरकारी दफ्तर की निश्चित निरापदता के बीच प्रविष्ट करा दिया और वे स्वयं एक गहरी दुश्चिन्ता से मुक्त हुए।

लेकिन दुःख की रात्रि जितनी भी दुःख-भरी क्यों न हो, एक दिन उसका भी उषाकाल आता है। मेरे जीवन में भी अन्धकार को भेद कर सूर्य उदित हुआ। मैंने भी एक दिन सरकारी दफ्तर के आश्रय का परित्याग कर साहित्य को एक स्वाधीन वृत्ति के रूप में ग्रहण किया।

प्राचीन काल में हमारे देश में याज्ञवल्क्य नाम के एक ऋषि थे। उन्होंने प्रवज्या ग्रहण करने के पूर्व अपनी दोनों पत्नियों को अपने पास बुलाया। एक का

नाम था कात्यायनी और दूसरी का मैत्रेयी। उन्होंने कात्यायनी से कहा— 'मैं इसी समय घर-संसार छोड़ कर चला जाऊंगा। जाने के पहले मैं अपनी समस्त सम्पत्ति को तुम दोनों के बीच वितरित कर जाना चाहता हूँ। तुम क्या लोगी, बोलो ?'

कात्यायनी ने कहा— 'मुझे सब कुछ चाहिये— रुपये-पैसे, खेत-खलिहान और गाय-भैंस आदि आपकी जो भी सम्पत्ति है, सभी कुछ ... !'



कात्यायनी का उत्तर सुनकर याज्ञवल्क्य ऋषि ने मैत्रेयी से पूछा— 'इस बार मैत्रेयी, तुम बोलो, तुम्हें क्या चाहिये ?'

मैत्रेयी ने उत्तर दिया— 'येनाहं नामृता स्याम किमहम् तेन कुर्याम् ... । अर्थात् जिसे पाकर मैं अमर नहीं हो सकूंगी, उसे लेकर मैं क्या करूंगी ?'

यह उत्तर उपनिषद् की मैत्रेयी का ही उत्तर नहीं है, वरन् पृथ्वी के जितने भी महाज्ञानी-महापुरुष हो गये हैं—सबों का यही एकमेव उत्तर है। सभी एक ही बात कह गये हैं— 'तुम मुझे 'अमृत' दो; मैं तुम्हें दूंगा 'त्याग', मैं तुम्हें दूंगा 'प्रेम' और मैं तुम्हें दूंगा 'भक्ति'।'

पृथ्वी की समस्त भाषाओं के साहित्य की भी यही एक ही वाणी है—त्याग, प्रेम

हिंदी डाइजेस्ट

और भक्ति की वाणी । यही वाणी बोल गये हैं वाल्मीकि, व्यास देव, कालिदास, तुलसीदास, सूरदास, रवीन्द्रनाथ, बंकिमचन्द्र, प्रेमचन्द्र और शरच्चन्द्र । यही वाणी है आधुनिक युग के उपन्यासकार जैनेन्द्र कुमार और वीरेन्द्र कुमार जैन की ... । इसी वाणी की पूंजी लेकर मैंने एक दिन सरकारी निरापदता का त्याग कर अपनी साहित्य-यात्रा का आरंभ किया था । आज जीवन के सत्तर वर्षों का अतिक्रमण कर चुकने के पश्चात् यदि मैं पीछे मुड़ कर अतीत का, वर्तमान का और कुछ अंशों में भविष्यत् का मूल्यांकन करने लगूँ, तो संभवतः यह अन्याय नहीं माना जायेगा । किसी दल में योगदान करने की स्वाभाविक प्रवणता न होने के कारण दल में रहने की सुविधाओं से मैं जिस तरह वंचित हुआ हूँ, उसी तरह दल के बाहर रहने की असुविधाओं को भी मैं पूरी मात्रा में भोगता आया हूँ । और बाल्यकाल की भांति बड़े होने पर भी अहंकार का पुच्छाग्र मुझे जो छू नहीं पाया, उसका एकमात्र कारण यही हो सकता है कि अख्यात अथवा ख्यात, किसी भी अवस्था में मुझे निरुत्साह करने वाले लोगों की कभी कमी हुई ही नहीं । लोगों का अकृपण स्नेह जिस तरह मैंने पाया है, उसी तरह कुत्सा-कटूक्तियों से भी मैं अपने-आप को मुक्त नहीं रख पाया । मेरी भांति एक साथ इतनी निन्दा और इतनी प्रशंसा पाने का सौभाग्य आज के किसी दूसरे साहित्यिक

नवनीत

को काफी कम ही मिला है ।

साहित्य के सम्बन्ध में 'आधुनिक साहित्य' की बात खूब उछाली जाती है । वैसे देखा जाये तो जो आज आधुनिक वही कल प्राचीन हो जाता है । कल आधुनिक होगा, परसों वही प्राचीन जायेगा । लेकिन शाश्वतता की दृष्टि आधुनिक या प्राचीन की सारी संज्ञा अर्थहीन हैं । इसे और भी स्पष्ट कर दूँ, हुआ कहा जा सकता है कि आधुनिकता अहंकार जितना गुणवाचक नहीं है, उतना अधिक है कालवाचक । आश्वस्ति की बात की है कि आधुनिक चिरकाल के आधुनिक रह सके, इतनी परमायु नहीं । जो वस्तु क्षणभंगुर होती है, उसे लिए महाकाल सरदर्द मोल नहीं लेता । साहित्य में मैं सर्वदा उसी महाकाल की पूजा-आराधना करता आया हूँ । इस यश पाने पर भी मैंने उस यश के अन्त कभी भरोसा नहीं रखा । इसका कारण यह है कि यश बड़ी ही सन्देहजनक चीज है । आज जिसका अपयश है, कल उसी का अपयश होता है । सुकरात को घोर अपयश मिला, उन्हें प्राणदण्ड दिया गया, लेकिन आज यशस्वी हैं । अपने जीवन-काल में डॉन हाडी को अपयश मिला था, आज के डॉन में वे यशस्वी हैं । अपने जीवन-काल रवीन्द्रनाथ और शरच्चन्द्र ने जितना अपयश पाया था, उनकी मृत्यु के उपरान्त उनका यश सहस्र गुना बढ़ा है । अतएव जानता हूँ कि अपने जीवन काल में लेख

को जो यश प्राप्त होता है, उस पर भरोसा नहीं किया जा सकता। महाकाल की ऐसी ही विधि है।

मैं जानता हूँ कि इहलोक से परलोक तक ले जाने वाला जो खेवय्या है, वह बड़ा ही शौकीन आदमी है। उसकी अमरत्व की नाव में जगह भी खूब कम है। लेखक जो कुछ उसे देंगे, उसे ही वह ग्रहण कर लेगा—ऐसी बात नहीं। वह खेवय्या सोने का मुकुट धारण करता है और हीरों की कंठी पहनता है। अमरत्व की उस नाव में रखी जाने लायक कोई चीज़ मैं इकट्ठी कर पाया हूँ या नहीं—कह नहीं सकता!

मैं फिर कहना चाहता हूँ कि आप

लोगों ने मुझे आज जो सम्मान दिया है, वह मेरी व्यक्ति-सत्ता को नहीं दिया है। दिया है मेरी लेखक-सत्ता को। मैं यह भी जानता हूँ कि यह मेरा प्राप्य नहीं है। प्राप्य है उनका ही, जो मेरे उपास्य देवता हैं। इसे मैं उन्हें ही दूंगा, जो इसके सच्चे अर्थों में अधिकारी हैं। मैं पुजारी होकर कभी देवता का प्रसाद चुराऊंगा नहीं...

अन्त में मैं स्व. श्री पूनमचन्द भुतो-डिया की पुनीत स्मृति में नतमस्तक होकर प्रणाम करता हूँ। मेरी यही प्रार्थना है कि मैं उनके नाम से नामांकित इस पुरस्कार के योग्य हो सकूँ।

(हिंदी रूपांतर : शंभुनाथ पाड़िया 'पुष्कर')



पैसा और चांद

हम जब पैसे के यहां पहुंचे तो उससे कहा, 'इनसे मिलिए। आज खास तौर पर आपसे ही मिलने आये हैं।'।

पैसे ने कहा, 'ये कौन हैं?'

'अरे आपने पहचाना नहीं? ये चांद हैं चांद!' हमने कहा।

'हां हां, याद आया!' वे बोले, 'बचपन में मां कहा करती थी देखो वेटे, चंदामामा। वह रहा ऊपर। कैसा हंस रहा है।'।

पैसे ने फिर चांद से पूछा, 'आजकल आप कहाँ हैं?'

चांद ने कहा, 'वहीं आकाश में।'।

'अच्छा जी वहीं जमे हुए हैं! क्या कर रहे हैं?'

जवाब हमने दिया, 'आपकी तरह यह भी धंधा ही करते हैं!'

'अच्छा जी! कौन-सा धंधा!'

'यह धरती को चांदनी एक्सपोर्ट करते हैं।'।

इस पर पैसे ने कहा, 'भाई, ये गलत जगह आ गये हैं। चांदनी के लेन-देन से हमारा कोई वास्ता नहीं।'।



—शंकर पुणतांबेकर

बी. के. नेहरू का सामयिक लेख

हमारी सर्वव्यापी भ्रष्टता का मुख्य कारण क्या वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था है ?

०००

इन्स्टीट्यूट ऑफ फायनेंशियल मैनेजमेंट एण्ड रिसर्च, मद्रास द्वारा पिछले २२ दिसम्बर को जी. एल. मेहता व्याख्यान-माला के अन्तर्गत दिये गये श्री बी. के. नेहरू (राज्यपाल जम्मू और कश्मीर) के महत्त्वपूर्ण और विचारोत्तेजक व्याख्यान के अंश । देश की आज की स्थिति से क्षुब्ध अनुभवी प्रशासक श्री नेहरू का कहना है कि तब तक वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था को समूल नष्ट नहीं किया जाता, तब तक हमारे समाज के प्रत्येक क्षेत्र पर छाया संकट दूर नहीं होगा, और यह क्रांतिकारी परिवर्तन राष्ट्रीय संकट की घड़ियों में ही संभव प्रतीत होता है ।

०००

इस दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि आज सरकारों के ढांचे में सर्वत्र भ्रष्टाचार व्याप्त है । सत्ता में आया प्रत्येक दल इस भ्रष्टाचार से लिप्त रहा है । और हम सब इस भ्रष्ट व्यवस्था के अशक्त बंदी पात्र बन कर रह गये हैं । और इसी व्यवस्था के अन्तर्गत हमें जीना और काम करना है ।

आज काफ़ी बड़ी संख्या में हमारे मंत्री और राजनीतिज्ञ भ्रष्ट हैं । निचले दर्जे के सरकारी नौकरों में भ्रष्टाचार सर्व-व्यापी है । मध्यम दर्जे के कर्मचारी भी भ्रष्टाचार के दुष्प्रभाव से प्रभावित होते जा रहे हैं । इतना ही नहीं, भ्रष्टाचार की काली छाया अब आई. ए. एस., आई.

एफ. एस., आई. पी. एस. के अधिकारियों पर भी पड़ने लगी है ।

यह स्थिति 'कानून के शासन' को तिला-जलि देने के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुई है । स्थिति यह हो गयी है कि ईमानदार आदमी उन अधिकारों का लाभ उठा सकता, जो कानून से उसे मिले और बेईमान आदमी कानून का उल्लंघन करने पर भी दंडित नहीं हो पाता । आदमी के कल्याण के लिए जो अच्छे कानून हम लोगों ने बनाये, उसका लाभ हम नहीं मिल सका, क्योंकि उन्हें कभी कभी से लागू नहीं किया गया । ऐसा दीवानी या फ़ौजदारी कानून नहीं जिससे अपराधी को दंड नहीं दिलाया

नवनीत

६०

लेकिन जिन्हें धन या राजनैतिक
रक्षण प्राप्त है, वे दंडित होने से बच जाते
। निहित स्वार्थों पर कुठाराघात करने
वाले कानून शब्द ही बने रहते हैं, और
भावी नहीं हो पाते ।

सिर्फ एक पीढ़ी में ही, हम ईमानदार
बेईमान बन गये हैं । इस बदलाव ने
हमारे प्राचीन मूल्यों को तो मलिन और
के. नेह्रुवस्त किया ही, हम उनके स्थान पर नये
न के गुणों को भी विकसित नहीं कर पाये ।

आज भारतीय समाज में व्यक्ति का
मान और कार्य जन्म पर नहीं, उसकी
आर्थिक परिस्थिति पर निर्भर करता है ।
स कारण, आज जिसे देखिये, वह पैसे
पीछे पागल है । इस पैसे के व्यय के
द्वारा हमारी वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था
हमारी भ्रष्टता का सर्वप्रमुख कारण
कतई नहीं चल सकती ।

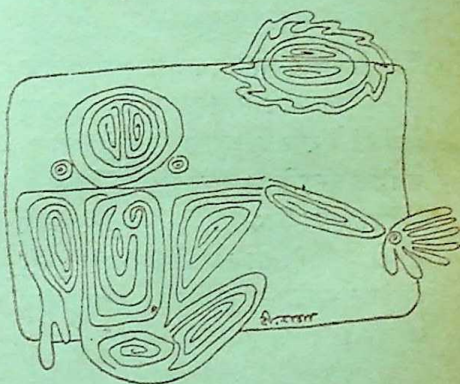
०००

हमारे संसदीय तथा विधान सभा के
निर्वाचन क्षेत्र इतने बड़े आकार और
गाँवों की आबादी वाले होते हैं कि उनसे
नाम लड़ने वाले खर्चों का, विशाल होना
निश्चितप्राय है, भले ही कोई चुनाव में
कानूनी तरीके इस्तेमाल न करे । यह
मान है कि एक संसदीय निर्वाचन क्षेत्र
चुनाव में पांच से बीस लाख रुपये तक
भी खर्च होते हैं । लोकसभा के ५४२ निर्वा-
चित प्रतिनिधि होते हैं । विधान सभाओं
नहीं हैं ३५५३ निर्वाचित सदस्य हैं । इन सबके
चुनाव पर होने वाले कानूनी और गैर-

कर १८३

कानूनी व्यय (जिसमें मतकेन्द्रों पर कब्ज
करने से लेकर विरोधियों को आतंकित
करने जैसी कार्यवाहियाँ शामिल हैं)
भयंकर रूप से कितना विशाल है, इसकी
कल्पना आसानी से की जा सकती है ।

चूँकि कोई भी दल अपने सभी उम्मीद-
वारों के चुनाव का व्यय स्वयं उठाने में



चित्र : टी. ए. राणा

समर्थ नहीं होता, इसलिए प्रत्येक उम्मीद-
वार को शेष राशि ऐसे व्यक्तियों या ऐसी
संस्थाओं से जुटानी पड़ती है, जो चन्दे की
इस राशि के बदले में उम्मीदवार से यह
अपेक्षा करते हैं कि निर्वाचित होने पर वह
उनके हितों का ध्यान रखेगा, और शासन
से उनके अनुकूल नीतियों का पालन
करायेगा ।

उन देशों में जहाँ लोकतंत्रीय संस्थाएं
सुचारुता पूर्वक चलती हैं, वहाँ लोग जिस
दल की नीतियों को पसंद करते हैं, उसे
इस आशा से चन्दा देते हैं कि सत्तारूढ़

हिंदी डाइजेस्ट

होने पर वह दल उन नीतियों को लागू करेगा। कुछ देशों में तो ऐसे चन्दों की राशि की अधिकतम सीमा निर्धारित है और कुछ में इन चंदा देने वालों के खातों की सार्वजनिक जांच पड़ताल भी होती है। स्वाधीनता के बाद भारत ने भी इसी तरह शुरुआत की थी। आरंभ में चंदा देने वालों की सब बातें नहीं मानी जाती थीं, लेकिन धीरे-धीरे व्यवस्था ऐसी स्थिति में गिरती गयी जहाँ चंदे और उसके बदले में अपेक्षित काम में सीधा संबंध स्थापित हो गया। यदि एक बार यह संबंध लोक-तांत्रिक संस्कृति के मान्य सहचर के रूप में स्वीकार कर लिया जाये, जैसा कि भारत में हो गया है, तो सर्वाधिक प्रभावशाली नेता भी भ्रष्टाचार के प्रसार को नहीं रोक सकता।

०००

दलों को दी गयी चन्दों की ये राशियाँ काफ़ी जल्दी अपने लाभ के कोष में बदल ली जाती हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि कार्यपालिका को अपनी बुद्धि के अनुसार निर्णय लेने के व्यापक अधिकार प्राप्त हैं। इस अधिकार के दुरुपयोग की संभावना ने उन लोगों का चरित्र बदल दिया है, जो आजकल राजनीति में प्रवेश कर रहे हैं। आजकल कैसे लोग राजनीति में आये हुए हैं, इसका एक दिलचस्प उदाहरण यह है कि एक राज्य के ३० प्रतिशत से अधिक विधायक फ़ौजदारी-मामलों में फंसे हैं।

आज ऐसे राजनीतिज्ञ बहुत अल्प-
नवनीत

संख्या में हैं, जो वास्तव में नीति-निर्णय या कानून बनाने में दिलचस्पी रखते नहीं तो इस बात का कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं है कि सदन के अधिवेशनों में स्थिति इतनी कम क्यों होती है? नैतिक व शैक्षणिक पृष्ठभूमि वाले नीति-निर्धारण और कानून की कृतियों में दिलचस्पी रखनेवाले लोग राजनीति में प्रवेश नहीं करते, हमारी वर्तमान चुनाव प्रणाली में चुने जाने की कोई संभावना नहीं है।

राजनैतिक जीवन में प्रविष्ट नये कर्मोवेश ऐसे हैं, जो नीतियों में दिलचस्पी नहीं रखते, और जिन्हें अक्सर पता नहीं होता कि उनके दलों के घोषित पत्रों में क्या लिखा है। वे विधायिका सत्ता, वैभव और धन की चाह से प्रेरित होते हैं। उनका मुख्य उद्देश्य होना मंत्री बनना। लेकिन निजी लाभ के लोभ आज केवल मंत्रियों को ही नहीं, सभी सदस्यों को प्राप्त होते हैं। अतः न केवल विधायकों को मंत्री बनाया जाता है (भारत के प्रत्येक राज्य में मंत्रियों की संख्या वहाँ के डिप्टी कमिश्नरों और कटारों की संख्या से भी अधिक है।) शेष को सार्वजनिक क्षेत्र के निगमों, अध्यक्ष या निदेशक बना दिया जाता है और जो इस प्रकार भी नहीं खपते उन्हें अपने निर्वाचन क्षेत्रों का वास्तविक शासक बना दिया जाता है। वहाँ वे सब काम मनमर्जी से करा सकते हैं।

राजनीतिक स्तर पर भ्रष्टाचार प्रशासन तंत्र को पूर्णतया उत्साहहीन कर देता है। कोई प्रशासक कानून या नियमों की परवाह क्यों करे, जबकि मंत्री को दिया गया एक फोन उसके न्यायपूर्ण निर्णय को बदल सकता है।

तब फिर कैसे इस जहरीले दुष्चक्र को, जो देश को पतन के गर्भ में ले जा रहा है, तोड़ा जाये? जो लोग नैतिक क्रांति की बात करते हैं, वे समस्या को सही तौर पर नहीं समझ पाये हैं।

आज हमें ऐसी व्यवस्था की आवश्यकता है, जिसमें बेईमानी करने की न्यूनतम गुंजाइश हो। वर्तमान संविधान की कतर-व्यौत से काम नहीं चलेगा।

सर्वप्रथम हमें संसदीय और विधायिकाओं की चुनाव-प्रणाली में यह सुधार करना होगा कि ये चुनाव सीधे होने के स्थान पर अप्रत्यक्ष रूप से विभिन्न निर्वाचन संस्थाओं के माध्यम से सानुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर होने चाहिए। पं. नेहरू ने भी १९५२ में अप्रत्यक्ष चुनाव प्रणाली को प्रत्यक्ष चुनाव प्रणाली से बेहतर माना था।

दूसरा सुधार कार्यपालिका और विधायिका के अधिकारों को वास्तविक रूप से अलग-अलग करने से सम्बन्धित है। विधायिका का काम कानून बनाने तक सीमित रहे, कार्यपालिका के कामों या मुख्य कार्यपालक के चयन एवं उसे सत्ता में बैठाये रखने में उसका कोई दखल नहीं होना

चाहिए। विधायिका की सदस्यता मंत्रियों सहित उन सभी के लिए वर्जित हो, जो सरकार में लाभ के पद पर हैं।

तीसरा सुधार मुख्य कार्यपालक को एक निश्चित कालावधि तक बनाये रखने से संबंधित है, ताकि वह सैकड़ों लोगों को संतुष्ट रखने से मुक्त होकर, प्रशासन को विकृत किये बिना, कानून के अनुसार शासन करने को स्वतंत्र हो।

चौथा सुधार यह निश्चित करने से सम्बन्धित है कि प्रशासनिक ढांचा मुख्य कार्यपालिका की इच्छा का दास नहीं बने।

पांचवां सुधार न्यायिक व्यवस्था में होना चाहिए। न्यायपालिका की स्वतंत्रता कार्यपालिका के आतंक के विरुद्ध एक अकूत सुरक्षा साधन है। न्यायाधीशों की पेंशन उनके वेतन के बराबर कर देनी चाहिए ताकि उनमें कार्यपालिका का समर्थन जुटाने का आकर्षण समाप्त हो। कानूनी तंत्र को भ्रष्टाचार से मुक्त रखने के लिए उसे राजनीतिक हस्तक्षेप से भी मुक्त रखना होगा, और उसे तुरंत और सस्ता न्याय सुलभ कराने में भी समर्थ बनाना होगा।

और अंतिम सुधार यह हो कि सरकार की नियमित गतिविधियां सुस्थापित पद्धतियों के अनुसार संचालित हों, मनमाने ढंग से नहीं। और यदि अनावश्यक नियंत्रण और नियम हटा दिये जायें, तो भी काफ़ी अधिक नियमित गतिविधियां निरन्तर गतिशील रहेंगी। (प्रस्तुति : हंस)



प्रब तक

तुमने कहा था कि
तुम्हें लाल रंग पसन्द है,
तुमने काल्पनिक पत्र लिखा था
काल्पनिक नायक के नाम
'अतीव' से तुम्हारे अतीत का कोई संबंध
नहीं

और न ही उस पत्र में उकेरे शब्दों से
कोई मोह ।

लेकिन मेरा संबंध क्या था ?

टीले पर बैठकर, समुद्र के छोटों से
सिक्त देह की गंध

हठात् चेहरे पर रक्ताभ आभा
और अंजुरी में बालू के कणों के बीच
तुमने तो यह भी कहा था न कि
वस अभी, अभी ही, नहीं तो
पता नहीं, फिर कब ?

तब से अब तक—याने आज तक कभी नहीं
मिला

वह क्षण

वह समर्पण !

अब न तो मैं और न तुम / दोनों विदग्ध
तुमने अतीत को बनने दिया है वर्तमान
और मैं भविष्य के अन्धकार में भटक
रहा हूं !

०००

सिद्धेश की दो कविताएं

भटकन

मैंने नहीं चाहा था कि
अनायास / एक संकल्प संतप्त या

एक प्रतीक्षा लगातार

शब्दों के अर्थाभाव की जगह
एक दृष्टि असमाप्त / देकर
बीच से चुपचाप सूखी डालियों से
टकराकर हवा की तरह अदृश्य हो जा
सोचा भी नहीं था कि
मेरी अगवानी में बड़े तुम्हारे हाथ
सामने से बड़े आते हुए दोनों पांव
अंगुलियों के पोरों में महीन सत
हठात् / शुष्क और थिर हो जायेंगे

लगा तो यही था कि
एक लगातार मौन के बाद

गहराती शाम और अलस मौसम की
एक नयी शुरुआत के लिए मैंने पा

नया वसन्त

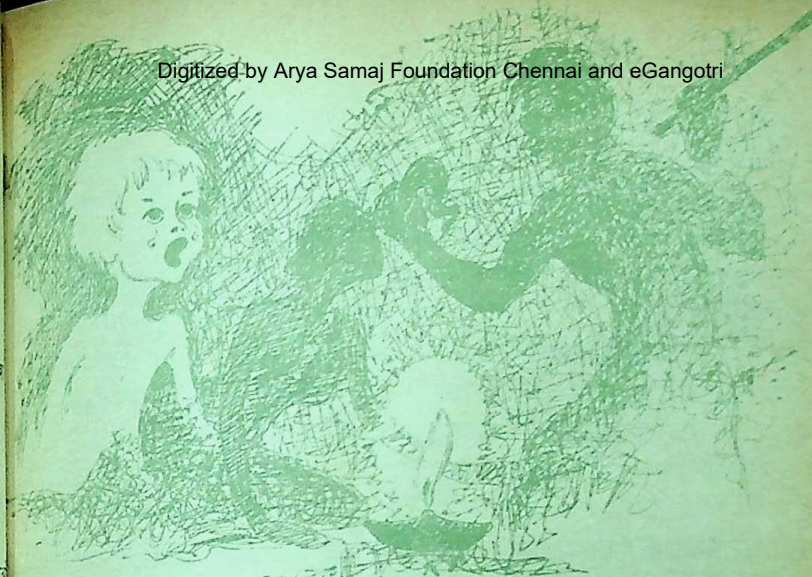
नयी आभा

जिंदा रहने का सौगंध भरा तिल

अकथ संवाद

०००





प्रबोधकुमार गोविंद की कहानी



खाली हाथ वाली अम्मा

मेरे नाम तो मेरा पप्पू है, पर अब पप्पू कम लोग कहते हैं मुझे, क्योंकि मैं बड़ा हो गया हूँ और इतने बड़े लड़के को पप्पू कहना, शायद लोगों को अजीब-सा लगता हो इसलिये पिछले कुछ सालों से लोग मुझे मेरा वास्तविक नाम, यानी कि 'प्रणय' कहकर पुकारने लगे हैं।

बैसे आपके लिए यही बेहतर होगा कि मुझे प्रणय न कहकर 'पप्पू' ही पुकारें। इसके दो कारण हैं। पहला तो यह, कि जिस समय की बात मैं आपको बताने जा

रहा हूँ तब मैं इतना छोटा-सा था कि अगर इतने छोटे लड़के का नाम भीम भी हो तो उसे प्यार से, इत्मीनान से पप्पू कहा जा सकता है। दूसरी बात, प्रणय न कहलवाने के पीछे एक मकसद यह भी है कि मेरी जिंदगी ने जिस बात का मज़ाक सबसे ज्यादा उड़ाया, वह मेरा नाम ही है। तात्पर्य यह, कि 'प्रणय' मेरा नाम ही रहा, बस। न तो किसी का प्रणय मेरे पैदा होने की वजह रहा और न ही मैंने अपने शैशव में अपने माँ-बाप का प्रणय कभी

१८३

देखा या जाना ।

मैं जानता हूं, आपके दिमाग में खटका हुआ है । इतना छोटा बच्चा प्रणय और दांपत्य की बातें भला कैसे कर सकता है, कैसे समझ सकता है ? यही सोच रहे हैं न आप ?

देखिये, आपकी इस शंका का मेरे पास कोई समाधान नहीं है । आप चाहें तो उस अभिमन्यु को स्मरण करके मेरी कहानी सुन लें जिसने चक्रव्यूह का खंडन करना गर्भ में ही सीख लिया था । हां, यदि आपको अपने बीसवीं शताब्दी में पैदा होने का दर्प है और आप महाभारत के ज़माने की बातों को निहायत बेहूदा और दकियानूसी मानते हैं, तो बेशक छोड़ दीजिये, मत पढ़िये । मुझे ऐसे लोगों को अपनी कहानी सुनाने का शौक भी नहीं है जो अपने समकालीन वक्त को ही प्रगतिशीलता मानकर फ़ख़र से जीने का ढोंग भरते हैं । ऐसे लोग क्या दे सकेंगे मुझे ? क्या ले सकेंगे मेरी कहानी से ? ऐसे लोगों से मेरा कोई वास्ता नहीं ।

नहीं ! एक मिनट ठहरिये ।

दुर्भाग्य से, दुनिया में पैदा होते ही मेरा साबका ऐसे ही लोगों से पड़ा । वो पहला पुरुष जो मुझे दुनिया में ले आने का कसूरवार है, बोलचाल की भाषा में कहूं तो बाप मेरा, एक ऐसा ही आदमी था । वो बीसवीं शताब्दी में पैदा होने को ही प्रगतिशीलता मानता था शायद । स्कूल-कालेजों में काले अक्षर बांचकर डिग्री ले

लेने को ही आभिजात्य समझता था । टके कमाकर इस वालिष्ठ भर की कि को कामयाब मानने में ही वह कि रखता था ।

पर पता नहीं उसकी वह प्रगतिशीलता वह पढ़ा-लिखापन, वह आभिजात्य कहां चला गया जब वह सेहरा बांघ बजती शहनाइयों के बीच मेरी अम्मा देहरी पर खड़ा हुआ था । उसकी लाल वसन में लिपटी दुल्हन बनी अम्मा के पांव पर लगे ताजे महाकथीं, पर कान उस खुसर-फुसर की लगे थे जो शामियाने के पिछवाड़े से सींच रही थी ।

देखिये, बात मेरी अम्मा के ब्याह है—जाहिर है कि मैं कहीं नहीं था, इससे इसीलिये मेरे पास अपने कहे के कोई वैध सबूत नहीं है । लेकिन मैं आप में ही स्पष्ट कर चुका हूं कि आप छोटी-मोटी बातों पर मत जाइयेगा, खाली हाथ लौटेंगे मेरी चौपाल से । कहूं, सुनते-गुनते-मानते रहेंगे तो कुछ मकसद हल हो सके, आपका और मेरा भी ।

हां, तो वह फुसफुसाहट जो शामियाने के पिछवाड़े उगी थी मेरे दादा और मेरी की थी, जो थोड़ी ही देर में बरन बेल-सी मंडप के तले दमकते-थिरकते पर छा गयी ।

कहते हैं, देखते-देखते मुर्दनी-सी गयी । हौसले मर गये लोगों के ।

नवनीत

ताबूत-बंद होकर मरघट जाते शव के
सदृश मुरझा गयीं। कारण यह था, कि
मेरी अम्मा के साथ सहेजा-जुटाया गया
असवाब बहुत कम था, जिस पर मेरे बाप,
यानी कि अब्बाजान के पूरे कुनबे को
आपत्ति थी। मैं जो रहा होता तो पूछता
अपने बाप और दादा से, कि क्या मेरी
अम्मा इतनी सस्ती थी कि उसे डोली में
बैठा ले जाने के लिए हरजाने के तौर पर
मालमत्ता चाहिये था ?

क्या कीमत लगी उस दिन मेरे पिताजी
की, यह तो उन्हें भी ठीक से नहीं पता लग
पाया जो उनके बराती बनकर साथ गये
थे। फिर भी इतना तय है कि जब अम्मा
की डोली समुराल में आकर उतरी तो
उससे कोई खुश नहीं था। मेरे नाना ने मां
के व्याह की तैयारी बरसों पहले से की थी,
और कहते हैं कि बाद में बरसों तक ही वह
व्याह का कर्जा चुकाता भी रहा, पर
मेरे चारों समधियों को खुश नहीं भेज पाया
अपने दरवाजे से। बड़ी वेदम-सी दुआएं
लिखकर गयी साथ मेरी अम्मा, बाबुल से।

तबसे मुझे अपने पिता पर भी आता है जो
सात वचन भर के अर्द्धांगिनी बना तो लाया
मेरी अम्मा को, पर उसका वह आधा अंग
और रोज-रोज ही सताया जाने लगा घर में,
जब अम्मा का दहेज का सामान खुला।
कपड़ों का बक्सा उलटा-पुलटा गया,
रूपया-गहना आंका गया तो एक ही राय
बनी-खाली हाथ चली आयी।

फिर तो चारों पहर जैसे घर में कोई

मां को कोंचने-सताने का हवन ही शुरू हो
गया जिसमें गाहे-बगाहे सभी आहुति देते
रहते। दादी, मेरी तीनों बुआ, चाचा,
ताई और कभी-कभी खुद पिता, बारी-
बारी से हवन-सामग्री डालते रहते उस
यज्ञ में।

एक कहावत है कि हर मां की यह साध
होती है कि जब उसका लाल जवान हो जाये
तो वह उसके लिए चांद-सी दुल्हन लाये।
पर मेरी समझ में यह नहीं आता कि चांद
जैसी दुल्हनियां को बिसराकर लोग वक्त
आने पर सितारों की गिनती के फेर में
क्यों पड़ जाते हैं ? पिता ने कभी सीधे
मुंह बात नहीं की अम्मा से।

चांद ही सी तो थी अम्मा मेरी। आस-
मान से ज़मीन पर झांकता चांद। इसी
लिए झुकी पलकें। हमेशा नीचे ही रहीं
मेरी अम्मा की पलकें। उन्होंने उठना
सीखा-जाना ही नहीं कभी। धीरे-धीरे
अपने परायों की पहचान खोजती-तला-
शती मेरी अम्मा उस घर में पुरानी होने
लगी। तभी आया मैं।

बड़ी बुआ ने शायद अम्मा और पिताजी
के जले पर नमक छिड़कने के इरादे से
मेरा नाम रख दिया-प्रणय। अम्मा और
पिताजी देह से मिलकर लाये थे मुझे, मन
से नहीं... उन्हें क्या चाव मेरा नाम
रखने का ? जो पड़ गया, ठीक।

पिताजी ने व्याह की वेदी पर लियेवचन
एक दिन भी नहीं निभाये। अम्मा को सुख-
दुख का साथी बनाना तो दूर, उस पर

हिंदी डाइजेस्ट

हाथ भी छोड़ बैठते थे जब-तब । जब पहली ही बार मेरी अम्मा ने मार खाई और मूक साक्षी बने घर के सब लोग, तभी वह समझ गयी कि खाली हाथ चले आने का यह दंश ज़िंदगी भर ढोना-सहना है । और अपनी नियति खामोशी से गांठ में बांध बैठी अम्मा ।

रात के अंधेरे में मां मुंह छिपाकर रोती । पर जब हंसने का ही सहारा वहां कोई नहीं था तो रोने पर हाल पूछने भला कोई क्यों आता ? घंटों रोती, चुप हो जाती । अपने पिछले जन्मों को कोसती, कभी मां-बाप को भी कोस बैठती जिन्होंने जन्म दिया । कोसती उस सीख को, जो देहरी लांघते समय अपने नैहर से मिली । कोसती उस विवशता को, जो पढ़ी-लिखी न होने का अहसास जब-तब करवाती रहती ।

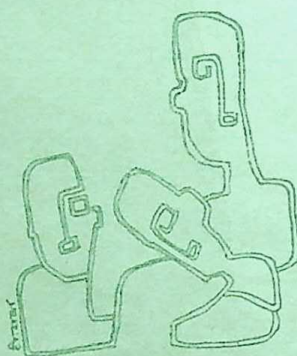
मंझली बुआ की सगाई तय हुई थी । तैयारी चल रही थी । दादी पुराने संदूक से एक जोड़ा कंगन पल्लू से पोंछती दादा को दिखाने के लिए उनके पास लायी—इन्हें ही चढ़ा दें ।

ये अम्मा के वही कंगन थे, जिन्हें पीतल के नकली या घटिया बता-वताकर अम्मा के नवेली दुल्हन वाले दिनों में ताने-कोसने दिये गये थे । चुप नहीं रह पायी अम्मा । बुआ के सामने ज़बान खोलकर धीरे से

नवनीत

कहा—‘दीदी, हंसाई न होगी तुम्हारे ये नकली गहना चढ़ेगा तो ...’

बिफर पड़ी बुआ । जैसे वास्तव जलती दियासलाई दिखा दे कोई । उठी दीदी । जैसे आसमान से आग सूरज, वैसे व्यंग्य वाण तिरने लगे के गिर्द । जैसे खड़ी फसल पर धूल वादलों को कोसे किसान, वैसे जल के हाथों कोसी गयी अम्मा । दादी कसर नहीं छोड़ी, बोली—‘कमीनी, जलक



जात, अब यही तो हुआ रहा है कि बूढ़े सास-ससुर से ज़वान लड़ा । घर को एक यही रह गयी थी, ज़वान की धनी की कंगाल । कैसे-कैसे के रिश्ते आ रहे हैं । कर्म तो इस कलम की हाथों फूटने थे ... पिता को पुत्र दिखाने का एक और

हाथ लगा था । अम्मा की पकड़कर कमरे से घसीटा, छड़ी और ऐसी चमकायी अपनी मर्दानगी कोई कपड़े से रगड़कर पुराने सामान चमकाये । अधमरी-सी हो गयी

मैं दहाड़ मारकर रोया । बुआ गयी । लेकिन यह बुआ का वास्तव था जिससे मैं उठाया गया था वलिक उसकी अपने भैया को देने की कोशिश में हटाया गया था

दूसरे कमरे में ले जाकर पटक दिया गया ।
 बिलबता रहा, चीखता रहा । बुआ फुंफ-
 कारती-सी बाहर निकल गयी ।
 बित्ते भर की दीवार बीच में थी । उधर
 कलपती थी मेरी अम्मा, इधर चीखता मैं,
 धर भर में फैले थे हमारे अपने ।

०००

कभी-कभी जब मेरी बुआ मूड में होती
 । तब ही तब मुझसे खेला करती थी । पलंग पर
 बैठकर घुटनों पर मुझे चढ़ा लेती और
 ही तो झुला झुलाया करती—

‘झू-झू के पाऊं के . . . पान पंसारी के
 ढाड़ा . . . खट्टे-खट्टे पप्पू के . . . मीठे-मीठे . . .’

तभी मैं बोल पड़ता—अम्मा के ।
 तीन-चार साल का मैं, ऐसा बोलकर खुश
 कैसे-कैसे हो जाता, लेकिन यह खुशी ज्यादा देर
 रहे नहीं रह पाती । क्योंकि तभी किसी न
 कलमुँह किसी काम में जुटी-जुती मेरी अम्मा पास
 . . . गुजरती तो मैं उसके चेहरे पर अपनी
 पुसपुस खुशी के लिए कोई स्वीकार नहीं
 कर और देख पाता । वह निर्विकार रहती थी ।
 की कपाट आंखों से शंकित-सी ऐसे मुझे देखती
 छड़ी हुई गुजरती थी मानो बिल्ली की गोद में
 दर्नागी कोई चूहा खेल रहा हो । खेल कब तक
 सामान्य, अंजाम क्या हो, यह सब जैसे बिल्ली
 यी अम्मा मूड पर निर्भर हो । अम्मा की इस
 बुआ जैसी असहायता में मेरी अपनी विवशता
 हास्तल हो जाती थी ।

एक दिन भर काम में जुटी रहती थी
 मेरी अम्मा ।

एक दिन न जाने क्या हुआ, दौरा-सा



पड़ा अम्मा को । किसी बात पर कहा—सुनी
 होकर चुकी थी और प्रताड़ना-लांछन के
 बाद हलकान होती अम्मा का रोजाना सा
 कलपना-सुबकना चल रहा था, कि हिच-
 कियां बढ़ने लगीं । आंखें उलटने-सी लगीं,
 मुंह लाल हो गया, हाथ-पैर जैसे थरथराने
 से लगे ।

बहुत देर तक घर में किसी के कान पर
 जू नहीं रेंगीं । थोड़ी देर बाद छोटी बुआ
 ने मेरी दादी के कान में फुसफुसाकर कुछ
 कहा । पर कोई असर, कोई हलचल किसी
 कोने से नहीं सुनाई दी । दादी का रूखा
 सा जुमला—‘त्रिया-चरित्तर का कोई एक
 ढब थोड़े ही है, अब यह हाथ-पांव फेंकने
 का नया टोटका हाथ लगा है ।’ आंगन में
 बिठ गया ।

मैं अम्मा के पास बैठा था । चुपचाप उसे
 देखता रहा । थोड़ी देर बाद जब अम्मा ने

आंचल से मेरा मुंह साफ किया तो मुझे भरोसा हो गया कि अम्मा को जो भी दौरा या बीमारी का आवेग था वह अब समाप्त हो गया है। वह उठकर रसोई में चली गयी। शाम की चाय का वक्त हो रहा था।

उस दिन से मैंने अम्मा में एक बदलाव देखा। वह शाम को रोज़ ठाकुरजी के सामने दिया-अगरवत्ती जलाने के बाद अब थोड़ी देर वहां चुपचाप खड़ी भी रहने लगी थी। कभी-कभी यदि वहां आसपास कोई न होता तो एकाध भजन भी गुनगुना लेती थी।

एक दिन मुझे बहुत अच्छा लगा। शाम के समय घर में कोई नहीं था। दादी भी नहीं, तब अम्मा ने सांझ की पूजा-वेला में मुझे भी अपने साथ खड़ा कर लिया। दीपक की लौ दिप-दिप करके जल रही थी। मैं अम्मा के साथ हाथ जोड़े खड़ा हुआ अगरवत्ती के धुएं से उठते छल्लों को चुपचाप देख रहा था। अम्मा अपनी पानीदार हल्की आवाज़ में गुनगुना रही थी—

‘तेरी धरती मुकम्मिल नहीं
अंबर पे जगह दे मुझे
मैं जीना नहीं चाहती
दुनिया से उठा ले मुझे ...’

मैं बार-बार सिर उठाकर अम्मा की ओर देख लेता था। तब अम्मा मेरे बालों में हाथ फेरती और फिर मुझे अपने से सटा लेती। मैं उसके आंचल में दुबक जाता वह यथावत प्रणाम की मुद्रा में खड़ी हो जाती और उसकी स्वर-लहरी किसी

अरण्य-निर्झर-सी वह उठती—

‘दुनियां है तेरी रहने के का
उनके, कि जो तुझको भूल
तेरे शिवालय को पत्थर क
खुद को ही भगवान कहें ...
मुझसे ये नहीं होगा,

जो चाहे सजा दे मुझे

उस रात को सब काम से निवृ
बाद अम्मा जब सोने के लिए बिस्तर
आयी तो मैंने उसे पूछा था—‘मां, तु
क्यों नहीं चाहती?’

वह चुप रही। उसकी देह गरम
मैंने उसका पेट छूकर देखा, ताप
माथा भी भट्ठी की तरह तप रहा
अम्मा की आवाज़ को न जाने क्या
गया था? कुछ बोलने को होती, फिर
हो जाती। कभी रोने लगती, फिर
जाती।

दूसरे दिन दोपहर में फिर पहले
जैसा ही दौरा अम्मा को पड़ा। वह क
रही, लेकिन थोड़ी ही देर बाद अच
गयी। मैं दौड़कर बुआ को बुला ला
बुआ ने देखा तो दादी को बुलाने ग
अम्मा,

तभी अम्मा को होश आ गया। अम्मा
दादी को आते देखा तो धोती का पल्ल
पर ले बिस्तर से उठने की कोशिश
लगी। लेकिन वह उठ नहीं पायी, बिछा
पसर गयी। दादी थोड़ी देर कमरे में
फिर चली गयी।

उसके बाद अक्सर ऐसा होने
अम्मा को दोरे जब-तब पड़ने लगे।

घबराकर कमरा बंद कर लेती तो कभी जानों-कांसनों से बचने को छत पर या गुसलघर में जाकर बंद हो जाती। एक-दो बार अचेत भी हो गयी। बातें तो इस बारे में होने लगी थीं लेकिन दवादारू की बात कभी अम्मा के लिए किसी ने नहीं सोची।

एक दिन दादी ने ही मुझे बताया कि अम्मा पागल है।

मैंने बुआ से पूछा तो वह भी यही बोली कि हां, वह पागल ही हो गयी है।

अब जब भी पिता के हाथों मारपीट होती, अम्मा को मक्कार, निर्लज्ज वगैरह के साथ-साथ पागल भी कहा जाता था।

मेरी समझ में यह नहीं आता था कि पागल कैसे होते हैं? अम्मा तो पहले की तरह ही मुझसे कभी-कभी चुपचाप पूछा करती-खाना खा लिया? मेरे कपड़े मैंले होते तो कमरे में ले जाकर बदल देती। मुझे गोद में बैठाकर प्यार भी करती।

हां, अब गुमसुम ज्यादा रहती थी वह। पिता से पूछने का तो साहस नहीं होता था, क्योंकि उससे डरता था मैं, पर अम्मा से एक दिन पूछ ही लिया मैंने-अम्मा, तू पागल हो गयी है क्या?

अम्मा ने मेरे गाल पर कस के एक पल्लू जमा दी। मैं रोने लगा। दूसरे ही क्षण मेरे गिर्द अपना पल्लू लपेटकर मुझे धोती से भींच रही थी अम्मा। पर इससे मेरा रोना कम नहीं हुआ। आवाज सुनकर दूसरे कमरे से मेरी बुआ धड़धड़ाती हुई आयी और अम्मा की गोद से मुझे छीनकर

ले गयी। मैं भी चुप होकर बुआ के साथ चला गया। हालांकि मुझे पता था कि दूसरे कमरे में ले जाकर एक ओर को पटक दिया जाऊंगा मैं। पर अम्मा की गोद से मुझे छीनते हुए बुआ के चेहरे पर ठीक वैसा ही भाव था जैसे कोई सती-साध्वी पापी बाज से किसी घायल परिदे को बचाने चली आयी हो।

अम्मा अब दो-दो दिन खाना नहीं खाती। कमरा बंद करके बैठी रहती। कोई खाने के लिए उससे कहता भी नहीं। न जाने क्या हो गया था उसे!

०००

एक दिन अम्मा दोपहर को घर से गायब हो गयी। मैंने सारे में देखा। घबराकर बुआ को बताया तो बुआ और दादी भी बौखलाई-सी सारे घर में इधर-उधर तलाशने-देखने लगी। काम पर से लौटने पर पिता को भी पता चला। वह अविचलित से बैठे बाबा से बात करने लगे। मगर जब बाबा के कान में यह बात पड़ी कि बहू न जाने कहां चली गयी है तो उनकी आंखों में भी हैरत के जंजाल के बीच प्रश्नचिन्ह खड़ा हो गया।

तभी दरवाजे पर खड़का हुआ। देखा, अम्मा थी। किसी से बोले-चाले बिना सीधी भीतर गयी और अपना कमरा बंद कर लिया। सब लोग बहुत विगड़े। पिता ने सख्ती से डांट लगाकर जबरन दरवाजा खुलवाया और कमरे में घुसे तो मैं भी पीछे-पीछे चला गया। पिता के गर्म होकर



डांटने का अम्मा पर कोई असर नहीं पड़ा। वह खामोश बैठी रही। फिर धीरे से बुदबुदाकर जवाब दिया—‘किरण के घर गयी थी।’

—‘क्यों?’

—‘ऐसे ही, काम करने।’

—‘काम करने? क्या काम करने?’
क्रोध में थरथरा रही थी पिता की जवान।

—‘बर्तन साफ़ करने, झाड़ू लगाने।’

—‘तेरा दिमाग तो ठिकाने है? किसने कहा था यह सब करने को?’

—‘किसी ने नहीं कहा। रोज़ ही तो मांजी कहती हैं कि कंगालों के घर से खाली हाथ उठकर चली आयी, अब यहां मुफ्त की रोटियां तोड़ने को मिलती हैं... इसी से काम करने गयी थी।’

पिताजी ने कसकर एक लात जमायी। बोले—‘कमीनी, कुतिया, हरामजादी, तेरी ये औकात? तू मोहल्ले भर में घर के टंटों पर बतकहियां उछलवाने गयी थी?’ वह प्रहार करते गुस्से से कांप रहे थे।

नवनीत

अम्मा निढाल होकर गिर पड़ी। बुझ पीछे आकर चुपचाप खड़ी हो गयी।

बाहर से दादी की आवाज आयी—‘लो, और सुनो, मेरे कहने से लाजवंती कमाने गयी थी। इतनी ही शरम बाकी है तो कहीं डूब क्यों नहीं मैंने जो कह दिया, तो क्या गलत कर

उस दिन शाम को किरण, जिसे बुआ ही कहता था, आयी। वह आगे खाट पर दादी के पास बैठ गयी। बोले—‘क्या हो गया था, अम्माजी, आज?’

—‘कुछ भी तो नहीं क्यों...’

—‘भाभी इस तरह, महरियों तरह... काम मांग रही थीं हमारे आकर। मैं कालेज से लौटी ही थी। ने कहा, पूछ तो सही क्या बात है?’

बात पर लड़-झगड़कर चली आयी क्या? जा घर पहुंचा दे... नहीं बैठा, चाय बना दे। लेकिन तब तब भाभी ने कोने में बड़ी झाड़ू उठा ली बोलों—‘कुछ मत देना, सुबह की दे देना, बगीची साफ़ कर देती हूं।’

यह सब सुनकर दादी ने माया लिया। पिता को भी यह सब जान बहुत क्रोध आया।

उस दिन से अम्मा हमेशा कमरे करके रखी जाने लगी। अब मुझे भी पास नहीं जाने दिया जाता था। चुपचाप बिस्तर पर पड़ी रहती थी ऊपर देखती रहती थी। अब वह पहनें तरह रोती भी नहीं थी।

हां, कभी-कभी मुझे भी अब लगने लगता, कि यह सब ठीक कह रहे हैं, सचमुच अम्मा पागल हो गयी है।

अब अम्मा के कमरे में कोई नहीं जाता था। मैं भी बुआ के पास या दादा के पास सोता था। अम्मा कब सोती है, कब जागती है, क्या खाती है किसी को नहीं पता चलता। हां, पिता कभी-कभी जब रात को बहुत देर से आते तो अम्मा की कोठरी में धुस जाते। कभी-कभी वहां से चीखने-पुकारने की आवाजें आतीं, कभी-कभी नीरव खामोशी बंद दरवाजे पर चपकी रहती।

कैसा हो गया था घर? घर से जैसे अम्मा का साया ही किसी अंधेरे में लीन होकर छुप गया था। जैसे घर की किताब अम्मा नाम का सफ़ा ही फटकर गायब हो गया था। अम्मा के बारे में कोई अब बातचीत भी नहीं करता था।

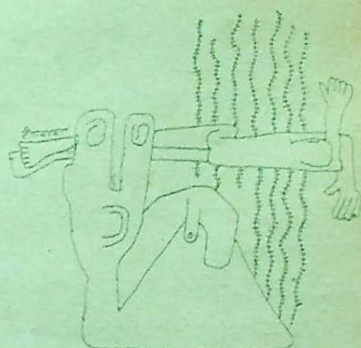
थोड़े दिनों बाद एक दिन मैंने सुना कि अम्मा को बच्चा होने वाला है। सच-सच अम्मा का पेट बहुत बड़ा हो गया था। अम्मा सोई रहती, या कै करती रहती। सुबह का खाना दोपहर तक, शाम का खाना सुबह तक, कमरे में बिखरा पड़ा रहता। आधा खाती, आधा छोड़ती। घर पर जो औरतें मिलने आती थीं उनकी और दादी की बातों से मुझे पता चला कि अम्मा को जो बच्चा होने वाला था, वह मेरा भाई नहीं है।

मुझे बड़ा अचरज हुआ। ये बात मेरी

समझ में बिल्कुल नहीं आयी कि मेरी अम्मा के पेट से पैदा होने वाला बच्चा मेरा भाई क्यों नहीं होगा? किसी की मां को कोई बच्चा होता है तो वह उसका भाई ही तो होता है। फिर...

— 'ये इस हाल में और फिर क्या हो गया?' कोई औरत पूछती।

दादी कहती— 'अब कोई क्या करे? इसका क्या कोई ठिकाना है? पागल जात है। चौबीसों घंटे बांधकर भी तो नहीं रख



सकते। कौन इसके पीछे-पीछे फिरे।'।

— 'तो क्या ...' औरतें आश्चर्य से देखतीं।

— 'डाक्टरों को दिखाया। इतना इलाज करवाया। सैकड़ों रुपये की दवा आ गयी। पर घर की बहू को पागलखाने छोड़वाने की हिम्मत भी तो नहीं होती।'।

दादी ने सफेद झूठ बोला। मैंने आज तक घर में कभी डाक्टर या वैद्य को आते नहीं देखा। कभी एक पैसे की दवा-गोली

अम्मा के लिए लाते घर में किसी को नहीं सुना । मैं बीच में बोलने ही वाला था कि बुआ ने किसी काम से आवाज़ दे ली ।

०००

एक रात को कोठरी खोलकर अम्मा फिर बाहर निकल गयी । थोड़ी ही देर बाद छत पर से किसी की निगाह पड़ी । पिता ने दौड़कर पकड़ लिया और एक रस्सी से बांधकर फिर से कोठरी में डाल दिया । अब अम्मा को पेशाब-पाखाने-गुसल के लिए भी कोठरी से बाहर नहीं निकाला जाता था ।

मैं अब अम्मा के पास जाने से डरता था । कभी-कभी खिड़की से चुपचाप देखता था जाकर । हरदम अम्मा के मैले कपड़ों में से बदबू आती रहती थी । अम्मा के तन पर मक्खियाँ भिनकती रहती थीं । मैं देख नहीं पाता । रो भी नहीं पाता था ।

थोड़े दिनों के बाद मैं ताऊजी के घर भेज दिया गया । अब मैं वहीं रहने लगा । मैंने दाखिला भी वहां ले लिया था । वहां भी सबको पता चल गया था कि अम्मा पागल हो गयी है . . . जंजीर से बांधकर रखनी पड़ती है . . . पेशाब-पाखाना कपड़ों में ही कर लेती है आदि-आदि । मुझे सबका ये बातें करना अच्छा नहीं लगता था । कभी यदि मैं कहता कि अम्मा पागल नहीं है, तो सब हंसते थे ।

बुआ जब ताऊजी के घर आयी तो देर-देर तक ताईजी को अम्मा के किस्से सुनाया करती थी । वह मुझे वहां से हटा

देती थी, पर फिर भी मैं अम्मा को छिप-छिपकर सुनने की कोशिश करता

बुआ ने बताया कि जब मेरी को बच्चा हुआ तो वह कोठरी से निकली हुई थी । रात में बाहर देहा ही हो गया बच्चा । न जाने दरवाजा कि खोला, कैसे खोला ! अम्मा डचोई अचेत पड़ी थी और गली के दोनों आकर अम्मा के बच्चे को चाट रहे तड़के ही दूधवाले ने देखा ।

मेरे रोंगटे खड़े हो गये सुनकर । हुआ, जो वह मेरा भाई नहीं था गंदा . . . कुत्ते चाट रहे थे उसे . . . वह मेरी अम्मा का लड़का . . .

बच्चा होने के थोड़ी देर बाद ही गया था । अम्मा सुबह होश में आयी विल्कुल कृशकाय हो गयी थी । चिल्लाती रही ।

मैं स्कूल जाता था इसलिये त बार-बार कहने पर भी मुझे अ पास नहीं भेज रहे थे । वे मुझे सम 'जब अम्मा ठीक हो जायेगी तो उसे बुला लेंगे, तुम फिर मत करो ।'

—'कौन करेगा अम्मा को ठीक पूछता, फिर अम्मा के पास जाने मचलने लगता । मैं खूब ज़िद कर भी था । मैं अम्मा को एक बार चाहता था कि अब वह कसी है ।

ताऊजी ने प्यार से मुझे चुप करवा ताई ने गोद में बैठाकर मुझे दुन बोली—'यह तो राजा बेटा है । जि

ही करता है। रोज स्कूल जाता है। जब बड़ा हो जायेगा तो इसकी चांद-सी दुल्हन आयेगी ...

—'खुब सारा पैसा लेकर। खाली हाथ नहीं आयेगी ना?' मैं पूछ बैठा था। ताई ने गोद में मुझे भींच लिया, पर बोली कुछ नहीं। मैं सब भूल गया।

थोड़े दिनों में पता चला कि मेरी अम्मा मर गयी। तब मैं किसी के रोकने से नहीं माना। उसी दिन ताऊजी को मुझे साथ लेकर घर जाना पड़ा।

घर में सब थे, पर अम्मा नहीं थी। अम्मा के पास मैं बहुत दिनों से डर और बदबू के कारण जाता भी नहीं था, पर एक बार ... सिर्फ एक बार बदबू ही सूंघने को ... सब कुछ फिर से देखने को लड़ गया मैं। घर धुला-धुला-सा था। अम्मा की कोठरी भी साफ, ठीक-ठाक कर दी गयी थी। सारे में फैले साफ-सुथरेपन में

कही गंदगी-घिनौनापन दूहता फिरता मैं। गली के बाहर कुत्तों को गौर से देखता, जिन्होंने मेरे भाई को चाटा होगा, पर...

मैंने ताऊजी के साथ वापस लौटने से इंकार कर दिया। फिर वहीं रहने लगा।



मुस्कराहट चेहरेरूपी खिड़की में प्रकाश है, जिससे पता लगता है कि हृदय घर पर है।

—फ्रांसिस बेंसन

०००

प्रेम पुरुष के लिए तर्क, स्त्री के लिए आनंददायक स्वप्न और कवि के लिए एक विषय है।

—राबर्ट बेंसन



०००

बहुत साल बीत गये। गर्द-गुवार में दुबक कर दिन-रात ओझल होते चले गये। सब कुछ फिर से यथावत चलने लगा। मेरी दूसरी मां घर में आ गयी। इस नयी मां को मेरी दादी पहले की तरह कुछ कहती नहीं थी। शायद यह पहले वाली अम्मा जैसी गरीब भी नहीं थी। बहुत तेज भी थी। दादी की हर बात को किसी न किसी जवाब से बांधकर रखती थी।

मुझे इस बात से अनजानी-सी खुशी होती थी कि यह मां खाली हाथ नहीं आयी थी। इसीलिये अब इसके पागल होने या मुझे छोड़कर चले जाने का सवाल नहीं था। मैं सोचता, अब इसके पेट से मेरा भाई होगा तो मैं यहीं रहूंगा ... उसे गली के कुत्तों को चाटने नहीं दूंगा। यह नयी मां प्यार करती थी मुझे।

फिर भी कभी-कभी मुझे अपनी वही, खाली हाथ वाली अम्मा याद आती थी। बस वही अम्मा। फिर रोने को दिल चाहता था। पर मैं रो नहीं पाता था ... चुप करवाने वाली अम्मा जो नहीं थी।

—सी-११ सेक्टर ७, वाशी,

नयी बंबई-४००७०३

डा. भूमित्र देव का भूगर्भ-वैज्ञानिक लेख

सातवें महाद्वीप की यात्रा

कहानी चाहे अनेक समुद्री जलमार्गों को तैरकर पार करने की मिहिर सेन की हो, या फिर एवरेस्ट पर विजय पाने की तेनजिंग की, या पोखरन (राज-स्थान) में आणविक विस्फोट की, या हाल में भेजे गये उपग्रह की, इन्हें भारतवासियों के साहस, धैर्य और दृढ़ संकल्प की गाथाओं में स्वर्णाक्षरों से लिखा गया है। ऐसी ही एक और कहानी लिखी जा रही है सातवें महाद्वीप अर्थात् एण्टार्कटिका पर। नये वर्ष १९८२ में जनवरी को २१ भारतीयों का एक अभियान-दल इस दक्षिणी महाद्वीप पर पहुंच चुका है। संयोग की बात है कि ठीक ८० वर्ष पहिले रॉबर्ट फैलकन स्कौट ने प्रथम बार ८-१-१९०२ को इस महाद्वीप को निकट से रात को साढ़े दस बजे देखा था। इस अभियान दल में १२३ सदस्य थे जिन्होंने ३१-७-१९०१ को लंदन के बंदरगाह से अलविदा ली थी।

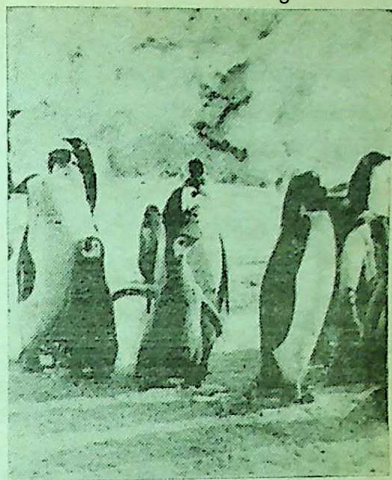
यह सातवां महाद्वीप हमारे देश से चार-पांच गुना बड़ा है और वहां तक पहुंचने में हमारे अभियान-दल को ३५ दिन लगे। काफ़ी लोग एण्टार्कटिका को 'सफ़ेद रेगिस्तान' के नाम से पुकारते हैं। जिस महाद्वीप पर संसार का सबसे बड़ा

पीने का पानी का स्रोत हो उसे सफ़ेद रेगिस्तान कहना भी अजूबा लगता है। यह है सच। पीने का पानी तो अत्यंत किंतु सारा ठोस रूप में है। इसका मोटाई कहीं-कहीं पर तो १-२ मील नापी गयी है। प्रतिवर्ष जितनी वर्षा गिरती है वह पानी के माप से केवल ५ से सेंटीमीटर ही है। इसी वजह से वहां दुनिया सूखी कही जाती है। तापमान से ५५ डिग्री से नीचे तक चला जाता है वहां की रातें करीब ६ माह की होती ताकि कुंभकरण जैसे लोग काफ़ी सो सौ शेष वर्ष में दिन की तरह सूर्य दिखाई दे रहा है। दोपहर और आधी रात में दिनों वस इतना अंतर लगता है कि आधी रात को सूर्य भगवान थोड़ा नीचे जाते हैं, पर छिपते नहीं।

ऐसे सूखे और ठंडे माहौल में क्या भी जीव-जंतु हैं जो कि बर्फ़ीले तूफ़ानों बावजूद भी वहां डेरा डाले हों? जी वहां का वातावरण इतना वीरान नहीं संभव है हमारे अभियान-दल का स्वप्न करने वहां हज़ारों की तादाद में पैंगु नामक चिड़ियां खड़ी मिलें, जो कि ३-४ फिट तक ऊंची हैं और हमारी आपकी

नवनीत

हलती हैं। ये उड़ नहीं सकतीं क्योंकि उनके पंखों के स्थान पर मीन-पक्ष जैसे फिलपर होते हैं। लेकिन ये अक्सर पेट के बल भी घिसट-घिसटकर हजारों किलोमीटर तक यात्रा कर सकती हैं। इनमें अपने घर-परिवारों को पहिचानने की अद्भुत क्षमता होती है। ता. ३-१२-१९५९ को कुछ वैज्ञानिकों ने पांच नर पैग्विन अपहृत करके हवाई जहाज से लेकर २४०० मील दूर छोड़ दिये। ९-१० ग्राह बाद वे पुनः अपने घर पहुंच गये। पैग्विन के घरेलू व्यवहार भी रोचक हैं। अक्सर नर पैग्विन अपनी चोंच में घोंसले लिए एक छोटे पत्थर को पकड़कर प्रणय प्रवेदन करता है। वह मादा पैग्विन से १५ फुट दूर बेखूबी से खड़ा हो जाता। फिर अचानक मुड़कर और झुककर वह जल्दी-जल्दी मादा पैग्विन की ओर जाता। किंतु उसकी ओर पीठ करके खड़ा होता है। अपनी गर्दन लंबी करके वह करीब ६ सेकेंड तक स्थिर खड़ा रहता है, जैसे लामी मार रहा हो। फिर वह बिना किसी आंख से झांककर पीछे देखता है जैसे अपने करतब का असर देखना चाहता हो। जो भी उसके पत्थर को स्वीकार कर ले उससे ही मादा पैग्विन मानें। अक्सर भी देखा गया है कि दोनों की सह-अस्तित्व के बाद कोई अन्य बेरोजगार नर पैग्विन पत्थर का टुकड़ा पेश करने आता है। किंतु इन हरकतों को युगल-पैग्विन प्रेक्षित कर देते हैं। वैसे कभी-कभी तलाक़

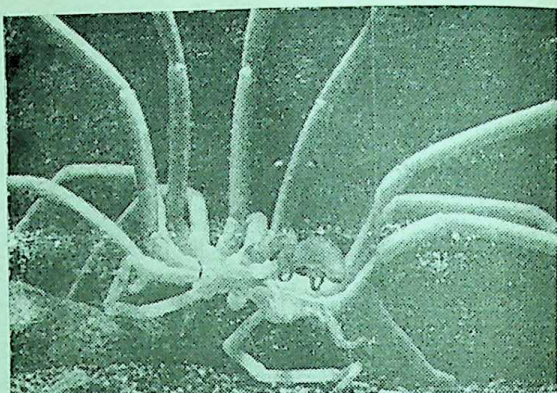


पैग्विन परिवार

भी देखा गया है।

वैसे तो इस वर्ष से ढके महाद्वीप पर सफ़ेद रंग का बोलवाला है, किंतु कहीं-कहीं नंगी चट्टानों पर हरी कार्ड, दुर्लभ झीलों में गुलाबी शैवाल (फोर्मीडियम), और समुद्र में लाल छोटा झागा (यूफ़्रोसिया), सील और व्हेल वातावरण को बहुरंगी बना देते हैं। संसार की सबसे बड़ी सील वहीं पायी जाती है। इनके अलावा दो-तीन प्रकार की फूलदार जड़ी-बूटियां भी पाई जाती हैं। कुछ लोगों ने यह भी जानने की कोशिश की है कि क्या वहां पर सदैव से इतनी वीरानी रही है। जीवाश्मों के अध्ययन से पता चला है कि लाखों वर्ष पहिले वहीं पर बड़ी पत्ती वाले फ़र्न (प्लासोप्टेरिस) चारों ओर फैले थे और ज़मीन पर बर्फ़ नहीं थी, वातावरण

हिंदी डाइजेस्ट



समुद्री मकड़ी

गर्म था। कुछ लोग तो यहां तक कहते हैं कि किसी समय में दक्षिणी अमेरिका, अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया, भारतवर्ष और एण्टार्कटिका एक सुपर महाद्वीप के रूप में थे जो कि बाद में अलग-अलग हो गये।

इस वर्फ़ से लदे ५५ लाख वर्ग मील वाले महाद्वीप पर एक ऐसा ज्वालामुखी पर्वत भी है जो कि १९६७-१९६९ और अगस्त १९७० में फूट चुका है। यह भी प्रकृति की अजब माया है।

आज से ७० वर्ष पहिले इस महाद्वीप पर दक्षिणी ध्रुव पर पहुंचने की होड़ लग चुकी थी। नार्वे के लोग १४-१२-१९११ को वहां पहुंचे थे। इससे करीब २॥ वर्ष पहिले ६-४-१९०९ को उत्तरी ध्रुव पर विजय प्राप्त की जा चुकी थी। तब से आज तक कई देश अपने अभियान-दल इस सातवें महाद्वीप तक भेज चुके हैं।

नवनीत

एशिया के समस्त विकासशील देशों में भारत ही पहला देश है जिसने इस सफलता प्राप्त की है। अतः हमारा ज्ञान-दल बधाई का पात्र है। इस प्रयास में ज्ञान-विज्ञान की प्रगति होगी और भावासियों का मनोबल बढ़ेगा। वैसे ही भारत एक खेती प्रधान देश है जिसमें अर्थव्यवस्था पर मौसम का असर होता है। इस अभियान से हमारे किसानों को भारत की खाड़ी से लेकर एण्टार्कटिका तक समुद्र-विज्ञान, मौसम-संचार-व्यवस्था के अध्ययन का सुअवसर मिलेगा, और निश्चय ही हमारे देश के बनते-बिगड़ते मौसम के तेवरों को अच्छी तरह समझ सकेंगे। इसके अतिरिक्त नये स्रोत भी मिल सकते हैं। प्राणियों के अध्ययन से इस बात पर और प्रकाश पड़ेगा कि वे किस

इतनी ठंडक और सूखा में जीवित रह सकते हैं।

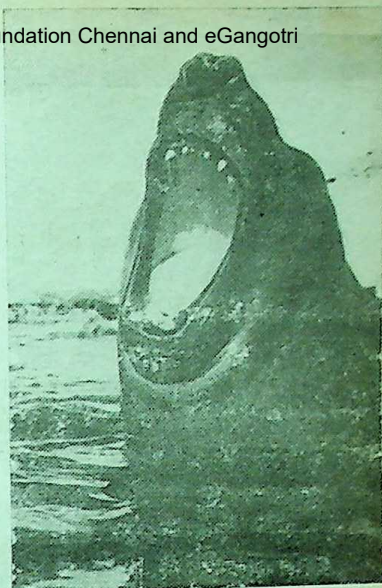
इस अभियान से वातावरण को किस प्रकार संरक्षित रखें इस गंभीर समस्या पर भी प्रकाश पड़ने की आशा है।

मानव यह भी जानना चाहता है कि ध्रुवों और पहाड़ों पर पड़ने वाली वर्षा किस प्रकार हमारे मौसम को बदल सकती है।

आज से करीब ११००० वर्ष पहिले एक हिम-काल आया था जब कि उत्तरी अमेरिका और यूरोप दोनों करीब-करीब पूरी तरह बर्फ से ढक गये थे। बर्फ आज के बसे लंदन और बर्लिन तक फैल गयी थी।

ऐसा होना पुनः संभव है। केवल इस कारण से भी इस महाद्वीप और इसके बर्फीले मौसम का अध्ययन आवश्यक है।

हाल ही में हमारा अभियान-दल सुकुशल भारत लौट आया है। दल के सभी



सील

सदस्य बधाई के पात्र हैं। उन्होंने भारतीय विज्ञान में नया प्राण फूँका है।

— प्राणि विज्ञान विभाग,

लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ उ. प्र.



रात में दिनकर आया

काशी नागरी प्रचारिणी सभा की हीरक-जयंती मनायी जा रही थी। एक विराट कवि सम्मेलन का आयोजन था। आकाशवाणी प्रयाग से प्रसारण का भी प्रबंध था।

रामधारी सिंह 'दिनकर' को उसका अध्यक्ष बनाया गया था।

कवि सम्मेलन वाले दिन दिनकरजी को आने में देरी हो गयी। लोगों को शांत करने के लिए डा. शिवमंगल सिंह 'सुमन' अपनी प्रसिद्ध कविता सुनाने के लिए खड़े हुए—'मैं नहीं आया तुम्हारे द्वार, पथ ही मुड़ गया था।'

संयोग से प्रथम पंक्ति समाप्त होते-होते दिनकरजी आ पहुँचे। दूर से ही वे बोले—'मैं आ गया। मैं आ गया।'

सब लोग हंस पड़े। तभी वहाँ बैठे आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी कह उठे—'आज रात को, दिनकर आया।' सर्वत्र हास्य का वातावरण छा गया। —युरेद्र श्रीवास्तव



सन्हैयालाल ओझा का ललित निबन्ध



मेरी इमेज

परेशान हो उठा हूं। बात ही ऐसी है, अभी तक मेरी कोई इमेज नहीं बन पायी है। प्रकाशक ने कहा है, तो विश्वास करना ही चाहिये। पुस्तक बिके, इसके लिए जरूरी है कि वह प्रचारित हो, चर्चित हो, पाठक उसके प्रति आकर्षित हों—इसके लिए इमेज पुस्तक की नहीं, पुस्तक-प्रणेता की होनी चाहिये। और मेरी कोई इमेज नहीं है। प्रकाशक चाहता है कि मेरी पुस्तक छपे और बाजार में आये, इसके पहले मेरी इमेज बना ली जाये। उसका लोभ है, लाभ है, और हक भी है। उसने पुस्तक छापी है, पैसा लगाया है, और उसे अपनी लागत ही नहीं, लाभ भी पूरा-पूरा उगाहना है।

वह कहता है, मेरी इमेज बनायी जा सकती है, सभी लेखकों की बनायी गयी और बनायी ही जाती है। वह मेरी इमेज बनाने को भी उत्सुक है। इसके लिए उसे सामग्री चाहिये। वह चाहता है कि उसके लिए यह सामग्री जुटा दूं—कहता है कि यह सामग्री मैं ही जुटा सकता हूं, मुझसे अधिक मेरे बारे में और जान ही कौन सकता है? मेरी परेशानी यही सामग्री

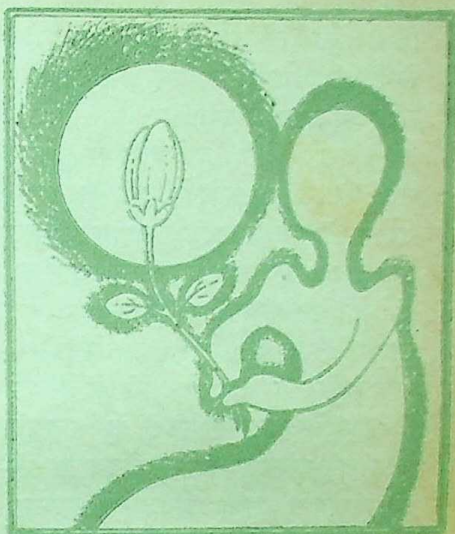
जुटाने की है। कहां से लाऊं यह सामग्री? वह कहां मिलती है? किन दामों में? बाजार में? और दाम ही अंटी में हैं? इमेज क्या होगी? कैसी होगी? मुझ जैसी होगी या बनाने वाले की होगी? मुझसे अगर बड़ी हुई तो स्वाभाविक क्या छोटा नहीं हो जाऊंगा? और छोटी हुई तो? उससे प्रकाशक की क्या कता होगी? और छोटी तो वह है इतनी कि किसी को दिखाई ही नहीं दे। स्वयं मुझको भी नहीं। इसीलिए प्रकाशक ने कहा है!—मेरी यही परेशानी

और यह इमेज आखिर कहते हैं कि वला को हैं? जब पढ़ता था, तब समझ गया था इसका अर्थ 'बिब', या 'प्रतिबिब' है। प्रयोग से एक और आभासित हुआ था, 'छवि' या 'प्रच्छवि'! अगर बात इतनी ही हो कठिनाई कहां है? आंखें तो सबको दी हैं ही। प्रकाशक को भी। खोलें देख ले—सामने ही तो खड़ा हूं! जब समझता हो तो फीता ले ले हाथ में नाप ले लंबाई-चौड़ाई-मुटाई। कितनी बार तो दर्जी की दुकान पर नपता

नवनीत

हूँ। बाटा-पलेक्स आदि ऐसी कई-कई
दुकानों ने नाप लिये हैं। डॉक्टरों ने तो
नाप ही नहीं, वजन भी लिया है—वजन-
दार या भारी न पाकर निराशा भले ही
उन्हें हुई हो। वर्षों की इकाई में भी एक
नाप है। लेकिन इन पैमानों से क्या कोई
इमेज खड़ी की जा सकती है? प्रकाशक
कहता है, उसका बाजार दूसरी किस्म का
है। इन सामग्रियों से उसका काम नहीं
चलेगा। वह दूसरे ही किस्म की सामग्री
चाहता है। प्रकाशक को अपने स्वयं के
लिए मेरी इमेज की जरूरत नहीं है।
उसकी जरूरत तो मेरी पुस्तक को चुनकर
ही खत्म हो गयी है। मेरी इमेज वह दूसरों
के लिए, ग्राहकों के लिए खड़ी करना
चाहता है। उसे पुस्तक छापकर बेचनी भी
होती है। मेरी इमेज उठी होगी तो पुस्तक
विकेगी! गोया पुस्तक नहीं, नीलाम पर
मेरी इमेज—नहीं, वजात मैं खुद नहीं—मेरी
इमेज नीलाम पर चढ़ी हुई है! परेशानी
की यही तो बात है। अगर नीलामी मेरी
बुद्ध की हो रही होती तो मुझे परेशान होने
की नौबत नहीं आती, परेशानी होती मेरे
मालिक को, मेरे सिरजनहार को!

दर्पण में सूरत तो रोज ही देख लेता
हूँ। जो कुछ प्रतिबिम्ब या प्रतिच्छाया
दिखाई देती है, पता नहीं, वह आपको
दिखाई देती है या नहीं। आंखें आपकी हैं,
मेरी नहीं। आपकी आंखों का दृश्य आपका
व्यक्तिगत ही होगा, मेरा या किसी भी
दूसरे का कैसे ही सकता है? महाकवि



तुलसीदास के प्रमाण 'गिरा नयन विनु,
नयन विनु वानी' के बावजूद मेरी ही
आंखों और वाणी में कुछ सामंजस्य पाते
हों तो दर्पण में उद्घाटित इस प्रतिच्छवि
के कुछ तथ्य हाज़िर हैं।

आइये, पहले तो वर्ण से ही बात आरंभ
की जाये। वर्ण से मेरा तात्पर्य शास्त्रोक्त
चतुर्वर्ण-व्यवस्था से नहीं है, वह तो दर्पण
का विषय भी नहीं है। मेरा तात्पर्य है
एकदम से रंग-भेद पर आधारित वर्ण से।
वह मेरा, दृष्टियों जसा काला तो नहीं, पर
भारतीयों का काला मजे से कहा जा सकता
है। अगर संतोष लाभ करना चाहूँ तो
उसे गहरा सांवला भी कह सकता हूँ।
गेहूँ की आजकल कई देसी-परदेसी किस्में
प्रकाश में आयी हैं, इसलिए सोचता हूँ

किसी ऐसी ही किस्म का गेहुँआ रंग कहने से भी काम चल जा सकता है। चेहरा गोल-मटोल एकदम तो नहीं, पर हां, अंग्रेजी के 'ओ' अक्षर जैसा, कुछ लंबाया हुआ। उसे अंडाकार इसलिये नहीं कहा जा सकता कि अंडा एक सिरे पर दूसरे से कुछ संकड़ा होता है। सिर के बाल उड़ जाने पर अंडे की चिकनी-चुपड़ी सतह से खोपड़ी की तुलना शायद बैठ जाये, पर आकृति से नहीं। सिर के बाल उड़ने को हो ही रहे हैं। गुच्छे केवल कनपटियों के आसपास और लघु-मस्तिष्क ही से पोषण पा रहे हैं। अर्थात् बृहत् मस्तिष्क स्पष्टतः दिवालिया होता जा रहा है, अपनी विरल संतान को खिलाने-पिलाने की भी उसमें सामर्थ्य नहीं रही है। वेशर्म होकर कुछ केश सामने तने खड़े हैं, पर धीरे-धीरे हठ छोड़कर उन्हें भी ज़मीन छोड़ना पड़ रही है, और इसीलिये सामने का ललाट चौड़ा होता जा रहा है। मेरे पिता त्रिपुंड लगाया करते थे, उनका धनुषाकार त्रिपुंड दोनों सिरों पर अश्व-नाल जैसा ऊपर शिखा-प्रांत तक पहुंचता था। मैं तिलक-छापे नहीं लगाता, शायद इसीलिये प्रकृति ने ही सामने ललाट के चर्मावस्थान में चंद सिलवटें डाल दी हैं। मध्य से ज़रा दाहिने हटकर उनमें एक तिल भी उभर आया है। वचपन की एक और निशानी है ललाट पर। पता नहीं, मां तब ललाट पर काजल के चांद-सूरज टांगती थी या नहीं। वे खूबसूरत वच्चों को चश्मे-बद्ध रखने के

नवनीत

लिए आज भी टांगे जाते हैं। मुझे पता कि मेरे लिए वचपन में कभी ऐसी कुरूपता पड़ी हो, इसलिए प्रकृति ने ही यथा-संभव फोड़े-फुंसी सजाकर चांद-सूरज टांगे थे, वे अब भी हैं। ललाट की इन रेखाओं को मन-ही-मन शायद अनेक बार समझकर ही गये दिनों भाल-देश पर और सामुद्रिक-अंक एक दुर्घटना में लाया हूं। पर भाग्य है कि बदलना ही चाहता!—और जैसा कि आप अंदाज़ ही सकते हैं, सिर के इक्के-दुक्के पकते जा रहे हैं और झड़ते जा रहे हैं। उन्हें नापित के कर्तन-कौशल की जरूरत नहीं पड़ती। और मैं अनायास ही जगह बदलत साहित्यकार बन बैठा हूं।

आंखें गहरे गढ़े में धंसी हुई, यहाँ तक कि भवें भी ऊपर आ झुकी हैं, और तब से भी सफ़ेद बाल झांकने लग गये हैं। उन्हीं की वजह से वे दिखाई भी देती हैं। पर चश्मे की फ्रेम में खास कुछ दिखाने नहीं देतीं। आंखें तरल हों, पर सफ़ेद नहीं हैं। मटमैली अवश्य कह सकते हैं, जगह महीन डोरे भी पड़े हुए हैं। लियां भी काली नहीं हैं। पकी, इमली में जिस तरह गहरे कथई रंग चकत्ते दिखाई देते हैं वैसे ही तब लीजिये। दृष्टि तो मंद है ही, पास की चीज़ें नहीं, दूर की भी, यानी न अंतर्दृष्टि और न दूरदर्शी! इसीलिये चश्मा पहन रहता हूँ हमेशा, अपने दोषों को छिपाव रखने के लिए। सोते समय नहीं लगाता

सोचता हूँ, यदि सोते समय भी लगाये रहूँ तो सपने और भी स्पष्टता से दिखाई दें और जागने पर भी उन्हें याद रख सकूँ।

गहरी धंसी हुई आंखों में झीलें तो नहीं हैं, समुद्र भी नहीं हैं, यद्यपि खारे आंमू अवश्य है उनमें। आंखें वैसे जव चाहे बरसने भी लग जाती हैं। बीमारी से उनका कोई संबंध नहीं है। फिर वे अनायास बरस क्यों उठती हैं? कष्टना से उनका संबंध है या भीतर की लेक्रिमल-प्रणियों से, कुछ कहा नहीं जा सकता। आंखें कमजोर हों, पर दिल कमजोर नहीं है, यद्यपि रक्त की अल्पता से वह सरलता से मुझे चक्कर भी खिलाता रहा है।

आंखों के नीचे नाक है, ऊंची नहीं, पर कटी हुई भी नहीं है। आंखों के पुल से सहसा उठती है और कुछ ही दूर जाकर कुछ फैलने लगती है एकाएक उठ खड़ी होकर। सुनता हूँ वचन में दोनों गाल फूले हुए थे, उन दोनों उठानों के बीच नाक की उठान दबी-दबी सी लगती थी। गोल-मटोल सभी दिशाओं से रहा होऊंगा इस-लिये वचन में सभी कहते थे पौडिया। फिर पौगंड-अवस्था तक पहुंचते-पहुंचते नाक पर ज्वालामुखी फूटने लगे। कुछ निशान अब भी मौजूद हैं उन क्रेटरों के। सामने से देखा जाये तो पृथुल नासाग्र के रंध्र भी दिखाई दे जाते हैं। अपनी पकौड़ी-जैसी भाँड़ी नाक से मुझे कोई कोफत कभी नहीं हुई। जो चश्मा आंखों पर चढ़ाता हूँ वह मूर्खता को ढांकनेवाली चौड़ी लाइ-

ब्रेरी फ्रेम का है ! इससे आंखों की उच्छलता ही नहीं, नाक की गर्वोन्नति में भी दखलंदाजी हो जाती है और सहज ही मोटी बुद्धि को ढांककर विद्वता का भ्रम भी पैदा हो जाता है। गाल अब फूले हुए तो नहीं, पर पिचके हुए भी नहीं हैं, चश्मे से चेहरे का बहुत कुछ बेडौलपन दब गया है।

बगल में दो कान बादस्तूर खड़े हैं। वचन में ये शायद उमठे नहीं गये। न मैंने ही कभी इन्हें पकड़ने की जरूरत महसूस की है। इसलिये ये छोटे-छोटे तो रह ही गये हैं, अब वेशर्म भी हो उठे हैं। बादस्तूर हैं ऊपर-ऊपर देखने में ही। काफी अरसे से हड़ताल पर हैं। बायां कान बहुत पहले विद्रोही हो चुका था और अक्सर 'टूल्स डाउन' करके बैठ रहता था। कई डॉक्टरों की मध्यस्थता से समझौता-वार्ता भी चलाई। सुनता हूँ, फ्रांस के एक डॉक्टर मेनिअर ने विद्रोही कानों के ऐसे मामलों में बहुत पंच-फैसले किये हैं, जिससे कान और दिमाग के इस पड्यंत्र को उसीके नाम से जाना जाने लगा है, अर्थात् 'मेनिअर्स सिनड्रोम।' स्वाभाविक था कि काम का सारा भार बचे हुए दाहिने कान के सिर पर आ पड़ा था। तंग आकर उसने भी हड़ताल कर दी है अब। मेनिअर्स सिनड्रोम से भी मामला आगे बढ़ गया है। बड़े अच्छे-अच्छे शब्द हैं उसके लिए, 'पर्सैप्टिव्ह डेफनेस', 'सेंसरी-न्यूरल कंजैट' (शेषांश पृष्ठ ९५ पर)



अमर चतुर्वेदी द्वारा आलेखित एक पोर्ट्रेट

यह आदमी चालाक नहीं है

अधिकतर लोग अक्सर उम्र के साथ बूढ़े हो जाते हैं। कुछ उम्र के पहले बूढ़े हो जाते हैं और एकाध ऐसे भी होते हैं जो उम्र का बैरियर तोड़ देते हैं। पहली और दूसरी किस्म सामान्य लोगों की है। जो उम्र का बैरियर तोड़ देते हैं, वह सामान्य नहीं रह जाते—सदाबहार बन जाते हैं। मेरे वह मित्र इसी श्रेणी में आते हैं जो यों तो अपनी उम्र के ६८ बसंत देख चुके हैं, फिर भी उनके लिए अब भी हर सुबह की पहली किरन एक कविता और हर शाम एक मांसल उपन्यास है। उनकी

नवनीत

कुतूहलपूर्ण आंखों में हर रोज ज़िंदगी की हर नयी परत का खुलना आप देख सकते हैं।
अजीब है यह आदमी—जो बड़ा चश्मा लोगों को धोखा दे जाता है—अपनी लाकड़-बह पूर्ण संस्कृतनिष्ठ प्रांजल शब्द-छटा और करार भाव-विन्यास के कारण। कभी-कभी व्यक्ति उ भी लगता है यह ज्ञान और पाण्डित्य अपनी प्रथम अथाह सागर जगमगाती रोशनीयों इस दर्शन आलोकित वियावान के खण्डद्वीप जैसा प्रकट। क्योंकि यह एक भावुक कवि और कभी दो व्य कार भी है, लेकिन अगर यह सच भी सच वास तो मैं इस व्यक्ति के उस स्वरूप को इस बीबी अ

अधिक मोहक पाता हूं, जिसमें मुझे इस 'शोषणा' निष्कलुष भोली छवि बेहद सुकुमार और सहज दीखती है।

मैं इस व्यक्ति को पिछले लगभग २२ वर्षों से देख रहा हूं। ऐसी के जानने का दावा करना हिमाकृत से कम नहीं होगा। इसलिये अपनी जानकारी को मैं प्रमत्त नहीं मानता—इसलिये भी कि यह व्यक्ति तो भी स्वयं को नहीं जानता। मैं जब पहली बार इस व्यक्ति से मिला था, तब इसकी जवानी की तो नहीं, प्रौढ़ावस्था की अवस्था अवश्य रही होगी। पतला सुता

सिर पर बिखरे रूखे लहराते बाल, सलोन
 नेहरे पर भीतर को धंसी आंखें, जिन पर
 अर्ध-चश्मा, धारीदार दुशर्त पर चेक का
 कोट-बह कन्टीन्यूटी इसी ६८ वें वर्ष तक
 बरकरार है। उन दिनों कहते हैं यह
 व्यक्ति अरविन्द-दर्शन में डूबा था और
 अपनी प्रथम कृति में ('अनागता की आंखें'),
 इस दर्शन के भाष्यकार से कम नहीं दिखाई
 पड़ता। कहते हैं उन्हीं दिनों इस व्यक्ति
 में दो व्यक्ति सिमटे थे। एक दर्शन में
 रूखा बसा सुपरमैन अतीन्द्रिय सुखों का

खोजी और दूसरा इस जगत
 के भौतिक और दैहिक सुखों
 का भोक्ता, आकण्ठ सुखा-
 भोगी।

कुछ दिनों बाद इस व्यक्ति
 के अतीन्द्रिय सुखों के खोजी ने
 वेहद ऊंची उड़ान भरी और
 सूर्योदयी नूतन कविता की

'समाप्ति' ही नहीं की, बल्कि
 अकेला ही अध्यात्म की अनछुई ऊंचाई पर
 उड़ने लगा। लोगों को ईर्ष्या हुई और लोग
 उसकी उड़ान से इतने आतंकित हुए कि
 उसके इस दुस्साहस पर कुपित हो इसे
 उपेक्षित करने लगे। तब मैंने सोचा था
 कि इस सूर्य से आंखें मिलाने वाले का
 तो वही हृश्च नहीं होगा, जो गृधराज
 'समाप्ति' का हुआ था। लेकिन आश्चर्य
 वह इतना बड़ा हुआ और यह परम सुकुमार
 कवि उपेक्षा के गर्त में जा गिरा।
 फिर भी इसके भीतर का सुखाभोगी दत्त-



चित्त रहा नारी और पुरुष की चिरन्तन
 काम-वासना और उसके सहज निःसृत
 आनन्द के केन्द्रबिन्दु की शोध करने में।

आश्चर्य है यह व्यक्ति ऊपर जितना
 खिलता और खुलता है, भीतर उतना ही
 डूबता और बन्द भी है। रूप, रस, गन्ध
 की सुधा-माधुरी को छक कर पी लेने की
 अदम्य लालसा जहां इसे हर पल वेचैन
 बनाये रखती है, वहीं जीवन के कटु
 अनुभवों का गरल पान करते हुए संयम
 का बांध नहीं तोड़ पाता। दो विरोधी

व्यक्तियों का अटूट सामंजस्य
 शायद इस व्यक्ति के व्यक्तित्व
 की इकाई को पूरा करता है।

अनगिनत स्नेहिल बंधनों
 में जकड़ा यह मुक्तिदूत हर
 डाल, हर पात-पात की खबर
 रखता है। मानव मन की
 सूक्ष्मतम प्रवृत्तियों, सम्बे-
 दनाओं, राग-द्वेषों और भंगि-

माओं को जब अपनी कलम की पैनी धार
 पर तौलता है, तब लगता है यह वेहद
 चतुर आदमी होगा, लेकिन किसी के भी
 दुख-सुख में छटपटा कर चीख पड़ना, इसके
 बारे में पूर्वनिश्चित धारणा के उस भ्रम
 को वेहद जल्दी ही कुछ क्षणों में तोड़ देता
 है और यह आदमी वेहद निरीह दिखाई
 पड़ने लगता है।

इस व्यक्ति से बातचीत के विषय
 कुछ भी हो सकते हैं, यानि देसी ठर्रे से
 लगाकर रायल सैल्यूट तक की दाद, अथर्व-

हिंदी डाइजैस्ट

वेद से आचार्य रजनीश तक का दर्शन, होमर और कालिदास से लगा कर आधुनिक नवोदित काव्य, कथा, उपन्यास कहानी के क ख ग सीखने वाले व्यक्ति का लेखन, पिकासो जैसे कला-मर्मज्ञ से लगा कर खड़िये से रेखायें खींचने वाले ७ वर्षीय 'रिंकू जैन' का आर्ट, क्लियोपेट्रा हेलेन और कालिदास की शकुन्तला से लगाकर काली-कलूटी महारिन की सुन्दरता, महानगर की अनियंत्रित भीड़ से लगाकर दूर किसी समन्दरी टापू पर हल्की उभरती स्वप्नजयी एकाकी नीली रोशनी का स्वप्न, अथवा किसी मित्र की कोई भी ऊलजुलूल हरकत से लगाकर कोई दो शब्दों में सिमटा रंगीन वाक्य । यह व्यक्ति हर उस अदा का कायल है जो कहीं भी मानवीय गरिमा या पतन को स्पर्श करती है ।

परमात्मा से लगाकर पीर-पैगम्बर, संत-महंत, तांत्रिक और मांत्रिक, भैरव और भैरवी, मज्जार या दरगाह तक पर विश्वास करनेवाला यह व्यक्ति परमात्मा के विविध रूपों का जहां आत्मा से आराधक है, वहीं भौतिक शारीरिक धरातल पर ईश्वर का विद्रोही भी । किसी गली, मोड़, चौराहे पर खड़े हो 'अहं ब्रह्म' की घोषणा करने वाले इस व्यक्ति को आप किसी भी संत अथवा भैरवी के आश्रम में सिर झुकाये बैठे देख सकते हैं ।

एक ओर यह व्यक्ति महावीर के जीवन से अनुप्राणित हो १६ सौ पृष्ठों पर

नवनीत

अनुत्तर योग की व्याख्या प्रस्तुत कर दूसरी ओर चार्वाक, मार्क्स, फ्रायड, एडलर की हिमायत करते हुए शीलों से आगे निकल जाता है । समाजवाद, पूंजीवाद, समाजवाद से व्यक्तिवाद की धज्जियां उड़ाते हुए आप से बेखबर इस व्यक्ति की स्वतंत्र लुंगी बांधते-बांधते कब गिर पड़ी, भी उसे भान नहीं रह जाता ।

पूर्व निश्चित किसी एप्पाइन्टमेंट तैयारी के लिए बेहद जल्दबाजी के फिर भी सदैव देर से पहुंचने तथा पान और विचार-विमर्श के वक्त की निश्चिन्तता की ऐसी परस्पर आदत जो शायद कभी सुधर नहीं सके । एक पैग व्हिस्की और एक टुकड़े चीर उंगलियों में दबाये बीस पैग पीने के साथ आसानी से दे देना और दो चपातियां खाते पूरी शाम ही नहीं, तक को तबाह कर देना, इस व्यक्ति लिए बेहद मामूली बात है ।

अपने वरिष्ठों और अग्रजों के सन्ततिशिर, समकक्षों के बीच जुझार कनिष्ठों के प्रति उदारता से भरपूर व्यक्ति के तीन रूपों में कौन-सा रूप है और कौन-सा स्वाभाविक, निर्णय पाना कठिन है । मेरे इस मित्र के समकक्ष का कहना है, कि यह व्यक्ति धरातल पर उन मन्तव्यों को ही जानता है, जिसकी प्रस्थापना की स्वयं करता है । मेरा अनुमान है कि

गुण इसकी विशाल हृदयता का प्रमाण है, क्योंकि किसी एक मान्यता के साथ अटक जाना मानसिक संकीर्णता का भी तो द्योतक है।

कभी-कभी लोग इस कवि को मालवे का कवि कहते हैं। मालवे की माटी और मालवे की शाम शायद इस व्यक्ति के स्वभाव से मेल खाती हो। लेकिन इतना सच है, कि अपनी उम्र का तीन-चौथाई हिस्सा मारीचि की कर्मस्थली बम्बई में बिताने के बाद भी, इस धरती का गुण इस व्यक्ति में विकसित नहीं हो पाया है।

इस कवि के काव्य में एक ओर बौरे आम की गन्ध, गांव की तलैया में फैले पुरइन के पातों की चिकनाहट, किसी नवोढ़ा की चितवन की रसपगी धूपछांह, लोक-गीतों में उभरते किसी गंवई का भोलापन और किसी किशोरी की चुल-बुलाहट भरी मोहकता दीखती है, तो दूसरी ओर भीड़भरी वस्तुओं के बीच किसी शून्य पुरुष की भटकन, समन्दर पर गहराती शाम के साथ लिपटे अन्धेरो में एकाकी दूर जाते जलयान की तटस्थता और वीतरागी मन का खोयापन—इस व्यक्ति के यात्रा-पथ के पड़ावों को रेखांकित करता है।

इस व्यक्ति के व्यक्तित्व और कृतित्व के बारे में जो जानते हैं, वह मौन साध लेते हैं—चर्चा नहीं करना चाहते। जो नहीं जानते, वह इसे वीरेन्द्रकुमार जैन के नाम से पुकारते हैं, जो शायद यह व्यक्ति

नहीं है।

मैं कितनी बार कोशिश कर थक गया हूं कि इस व्यक्ति—वीरेन्द्रकुमार जैन के जाननेवालों और न जाननेवालों से पूछ लूं कि तुमने इस व्यक्ति को जाना है तो बोलते क्यों नहीं इसके बारे में, और नहीं जानते, तो इसे यह नाम क्यों दे रहे हो—लेकिन मेरा मन कहता है, दोनों उत्तर नहीं देंगे—क्योंकि ये दोनों बेहद चालाक क्रिस्म के लोग हैं, जो आज के समानधर्मी की बात करते हैं, और यह व्यक्ति चालाक नहीं है।

इस चालाक न हो पाने वाले साहित्य-कार के साहित्य का लेखा-जोखा करने वाले यह भली भांति जानते हैं कि इसके द्वारा सृजित अमृत के दान और पचाये गये विष की तौल करने पर अमृत का पलड़ा इतना भारी है कि किसी भी साहित्यकार का साहित्य ही नहीं व्यक्तित्व जिसके समकक्ष तुल सकता है, किन्तु इस व्यक्ति वीरेन्द्र कुमार जैन ने गुणक और नाप तौल का सदैव इनकार करते हुए संवेदना के उस निकुंज में रहना स्वीकार किया है जहां हानि-लाभ, यश-अपयश और उपलब्धि-अनुपलब्धि का गुणक छोटा ही नहीं ओछा ही पड़ जाता है।

इस व्यक्ति के समूचे व्यक्तित्व को निहारते हुए मुझे अक्सर यह शेर याद आ जाता है :

हमको मिटा सके, वो जमाने में दम नहीं
हमसे जमाना खुद है, जमाने से हम नहीं।



कृष्णा अग्निहोत्री की कहानी



कमाऊ

टपरे के सामने बंधी तीनों बकरियां मिमियाई और रमेश ने कथरी से मुंह निकाल गलियाया—‘स्थाली चुप रहती है कि मुंह तोड़ दूं...’

जबरा भी रस्सी तुड़ा भूं-भूं भौंका तो रमेश को उठना ही पड़ा। सूरज का गोला आम के बौरों से छेड़खानी करता झांक रहा था।

‘अच्छा तो तुम भी?’

—‘सबको मेरे सोने से दुश्मनी है। अरे अब रहा ही क्या है। सोने तो दो।’ और रमेश ने कुल्ला करने के लिये पानी ढूँढा... सारी बाल्टियां खाली।

—‘अरे छुट्टन... पानी तो ला।’ और उसने अंगड़ाई ली।

—‘तेरे बाप का नौकर हूं क्या? खाली रहता है तो दो बाल्टी पानी ही नल से ले आया कर। मुझे तो बाजे बजाने जाना है... सरदारों की बरात है... नाचूंगा-गाऊंगा, खा-पी पचास मिल जायेंगे।’ छुट्टन आहूँ... आहूँ कह वहीं थिरकने लगा।

रमेश ने आकाश को ताका... खुला हुआ... वह लगभग रगड़ता म्युनिस्पैलटी

नवनीत

के नल तक पहुंचा... वहां भीड़ लगी थी और नल से केवल बूंद-बूंद पानी गिर रहा था। उसकी मां एक छोटी कपड़ी उठाये लंगड़ती आ रही थी: ‘मां पानी उसने सहमे स्वर से कहा।

पर वह बोली नहीं... एक हिक्का की दृष्टि से आगे बढ़ गयी। उसकी कलाई बड़ाहट रमेश साफ सुन सकता था—‘बड़ा बड़ा है, पर धेला नहीं कमाता।’

रमेश खांसा... उसे ठंड-सी लग रही है—‘दो दिन से यूँ ही अनमना-सा है। पर कहे तो किससे कहे।

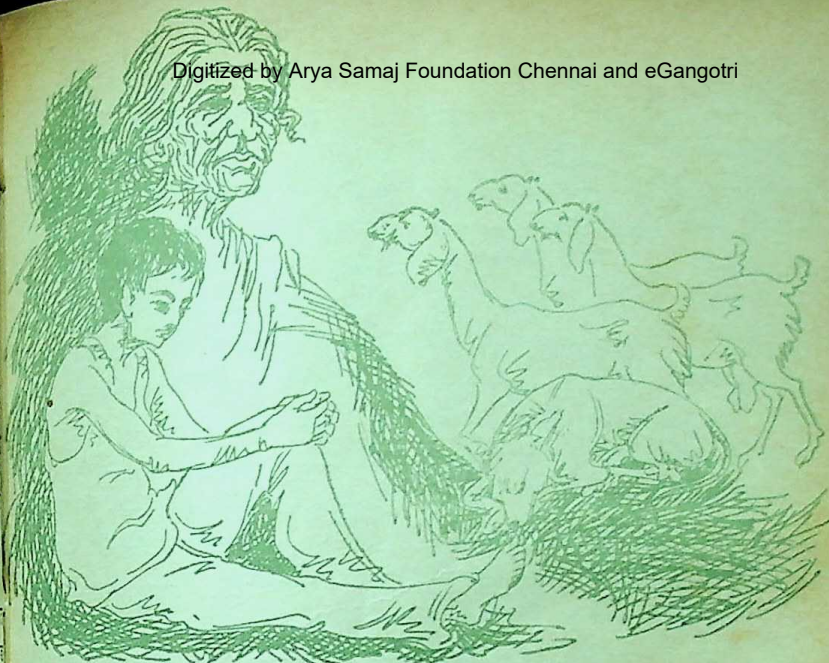
न जाने कब वह फत्तू की होटल सामने फुटबाल-सा देहरी पर टिक कर हो गया। न वह अंदर जा पा रहा था न जगह से हट रहा था। फत्तू ने देखा... देखकर टाल गया, जैसे वह सड़क से उड़ा आया फटा कागज हो।

—‘फत्तूजी।’

—‘हां... क्या है?’ फत्तू ने टाला स्वर में पूछा।

—‘एक कप चाय दो न।’ रमेश शीघ्रता से कह बगल झांकने लगा।

—‘क्यों, कुछ कमाई हो गयी है?’



से कुछ माल-पानी मिल गया है ?'

— 'तबीयत ठीक नहीं, इकट्ठे चुका हुआ ।'

— हां, हां क्यों नहीं । तुम हो भी तो बहुत कमाई वाले ।'

— 'छोकरे आज और दे दे ... और देख कल से उधारी बंद । कल से किसी को भी उधारी नहीं देना ।'

लतियाये कुत्ते से दुबकते रमेश ने झट चाय का प्याला मुंह लगाया ही था कि चौराहे पर भीड़ एकत्रित हो गयी ।

वह भी उत्सुकता से उस ओर बढ़ा ... सामने दिनेश मास्टर का छोटा भाई सुरेश एक हाथ में डंडा उठाये उसे चारों ओर घुमा रहा था, 'हटो, तुम्हारी ऐसी की तैसी, तुम लोग क्या सोचते हो ...

मैं कोई बेवकूफ हूं ... एम. ए. कामर्स हूं । मैं अब बहुत बड़ा आदमी हूं ... मैं पांच सौ रुपये कमाता हूं । हां, हटो ... हटो ... देखो वो सब आ रहे हैं । मुझे माला पहनायेंगे । हां, मुझे वो सब माला पहनायेंगे ।'

— 'इसको क्या हुआ ? परसों तक तो ठीक था ।' रमेश ने पास खड़े व्यक्ति से पूछा ।

— 'होना क्या था । है तो वही पुरानी बीमारी, पर बेचारा सह नहीं सका ।'

— 'कौन-सी बीमारी ?'

— 'अरे बेकारी और क्या ।'

सुरेश को रमेश ताकता रहा ... कुछ देर बाद बड़ी हिम्मत से उसने भीड़ ठेल उसे पकड़ना चाहा ... परन्तु वह भागता हुआ बोला 'हूं ... तु तू ... तु तू ... कबड्डी

वो मारा ! तू क्या मुझे हरायेगा ! मैं बहुत कमाता हूँ । बहुत बड़ा व्यक्ति हूँ ।' रमेश की आंखें कुछ गीली हो गयीं । वह वापस उस ट्रेन गुजरने वाली लाल पुलिया के नीचे आ बैठा ।

वहां कुछ सुअर, कुछ खुजलैटे कुत्ते भी दुबके बैठे थे । लूसी का पेट भारी था ।

'स्याली फिर जन्मेगी ... और पिल्ले कुंकुयाते नींद हराम करेंगे । बड़ी फुसरती है जब देखो ढेर लगा देती है साले नाजायजों का ।'

रमेश ने बीड़ी टटोली । आधी मिल गयी । उसने एक तांगेवाले से माचिस मांगी व उसे जला लिया ।

सुरेश भैया से उसकी अच्छी पटती थी ... उनका बड़ा भाई मास्टर है ... । सुरेश को बड़ी परेशानी से पढ़ाया है । दोनों भाई एक कच्चे घर में रहते हैं । मां और पिता गांव में एक छोटी जमीन से गुजारा करते हैं । परन्तु पिता को दारू की बहुत खराब लत है ... जब देखो शाम को धुत हो पत्नी को बहुत मारते हैं ।

रमेश उस दृश्य को देख अपने घर की याद कर लेता ... पढ़े-लिखे और अपढ़ में तो कोई अंतर नहीं लगता ... वहां उसकी मां जहां कोस-कोस कर गाली देती है वहां सुरेश की मां मुंह पर आंचल डाल रोये जाती है ... इसीलिये उसे दमा हो चुका है ... शहर में सुरेश लाया भी तो डाक्टर ने कह दिया इन्हें आराम करवाओ और अच्छा खाना-पीना दो ।

नवनीत

— आराम और अच्छा खाना-पीना क्या इतना सरल है ?' सुरेश अपने अपने भाई का खाना बना लेता है । तब कि पानी भरने से लेकर भोजन, झाड़ू सभी वहीं निपटाता है ।

उसे काम करते देख रमेश को लज्जा भी आती है ... उसने तो अपने कपड़े नहीं धोये और न ही कभी रोटी सेंकी । उस पर मां यदि थोड़ी रोटी परोसती तो वह चीखने लगता ।

सुरेश उसे फत्तू की होटल ही में कामभार मिला । कोई अहं नहीं । अन्य लिखों से अलग ... चुपचाप समाज पढ़ता है ... और कभी-कभी रमेश ऊलजलूल प्रश्नों का उत्तर भी सहज देता है ।

'इतना पढ़कर क्या करोगे, भइया' 'बैंक की परीक्षा में बैठूंगा । ऑफिस में भी आवेदन-पत्र दिया है । कहीं न कहीं जुगाड़ बैठेगा ...' सुरेश चेहरा संतोष से खिला था, परन्तु सुरेश जगह नहीं पा सका ... कारण भी नहीं समझ आया ।

— 'वो जो दो छोकरी रहीं न ... सी थीं । उनको कैसे ले लिया ?' ने ही खोदा ।

— 'वो होशियार होंगी ।' सुरेश उदासीनता से अपने बालों को नाँव

— 'मां बहुत बीमार है ... सोच मिल में ही काम ढूँढ़ूँ ।'

— 'तुम्हें बहीखाते लिखने का

तो है नहीं ।
 - 'तो क्या मजदूरी तो कर सकता हूँ ।'
 लेकिन कुछ दिनों में ही धूल व ठसकों से वहाँ सुरेश जम नहीं पा रहा था । दाल मिल के मालिक ने बहुत दया दिखलाकर कहा, 'तुम घर का कुछ काम कर दिया करो, मैं तुम्हें पूरी मजदूरी दे दिया करूँगा ।'
 सुरेश ने बड़ी हिम्मत से उस बड़े कंपा-उड़वाले घर में प्रवेश लिया । मैली सी पतलून और उस पर एक बदरंगी कमीज । घर के लोगों ने पहले दिन तो बहुत महानुभूति का प्रदर्शन किया । सेठ का बड़ा लड़का भी कामर्स पढ़ रहा था ... बड़े आश्चर्य से उसने पूछा, 'अच्छा एम. ए. कामर्स ?'

पर दूसरे दिन ही उस पर झाड़-पोंछ का काम आ गया । तीसरे दिन से पानी भरते-भरते उसकी कमर टेढ़ी होने लगी । वच्चे दिन-भर चीखते-चिल्लाते, 'सुरेश दो ग्लास पानी, सुरेश नाश्ता, सुरेश खाना, सुरेश बाजार से पान लाओ ।' सुबह छह बजे से रात्रि के ९ बजे जाते । सेठानी की अधिक दया उमड़ती तो वह नाश्ता-चाय कभी कभार दे देती । जो भी है ... चौदह घंटे की भाग-दौड़ के बाद सुरेश को दो सौ के लगभग रुपये मिल जाते ... लेकिन उसे इतवार की छुट्टी तक नहीं मिलती । नहाने व घर के काम वह सुबह पांच बजे आकर ही निवटाता

इस पर भी बात बनी नहीं । बर्तन-कपड़े वाली छुट्टी पर चली गयी तो सेठानी

ने उसे यह काम भी सौंप दिया ।

सुरेश के हाथ छिल गये ... वह रो आता । लेकिन वह जीवटता से काम पूरा करता ।

रमेश ने उसके हाथ की काली रेखाओं को घूर कहा भी, 'उस सेठ को एक हाथ मारो तो ... और काम छोड़ दो ... दूसरी जगह मजदूरी ढूँढो ।'

'हम भगवान को कोस लें ... चांद-सूरज पर घृणा से थूक दें ... हानि नहीं होगी ... लेकिन इन बड़े लोगों से वैर लो तो जीना कठिन हो जाता है ।' सुरेश ने निढाल स्वर से कहा था । पर सुरेश बीमार हो गया । क्या मिल मजदूर बीमार नहीं होते ? परन्तु सुरेश को इसलिये बीमार नहीं पड़ना था क्योंकि वह सेठ के घर का सारा काम ईमानदारी से निभा रहा था जैसा कोई दूसरा मजदूर नहीं कर पाता । बीमारी के बाद सेठ के घर का काम सुरेश से संभला नहीं और वह पुनः बेकार हो गया ।

रमेश का खालीपन अपना है वरना इस देश में उसके लिए काम की कुछ कमी नहीं । अपनी हड्डी-कट्टी देह से वह हम्माली में ही बहुत कमा लेता है । जब मन में आता है ठेला भी चला सकता है ... और इस पर जब आराम की इच्छा होती है तो सबसे छुप सिनेमा हाल में आलूगोंडे-भजिये खा नींद की झपकी ले लेता है ।

पिछली बार बरसात में बहुत कड़की थी । बकरियां भूखी व मां बीमार थी ।

हिंदी डाइजैस्ट

रमेश उठा और रात के दो बजे पंधाना रोड पर छुरा ले खड़ा हो गया। दो साइकिल वाले फंसे। हो गयी एक रात में सौ रुपये की कमाई। पुलिसवालों की आंखों में वह बड़ी सफाई से धूल झाँक सकता है। ऐसा गरम काम महीने में एक दिन ही करता है। वह भी गांव और सड़क बदल कर।

कुछ दिन पहले मेले में वह अंधा बन गया और एक हफ्ते में उसने दो सौ रुपये कमाये। ऐसी कमाई से आधा हिस्सा वह अपनी मां को दे देता है। कुछ दिन बड़े चैन से बीतते हैं। दिन-भर पेड़ के नीचे बैठ ताश खेलो और नये-नये सिनेमा देखो। एक आध बार मौका मिले तो चरस का दम भी लगा लो।

धीरे-धीरे उसके कामों की शोहरत बहुत फैल गयी और आस-पास के दुकानदार भी उससे डरने लगे।

सुरेश को एक दिन रमेश अपने साथ घुमाने ले गया, लेकिन वह तो थर-थर कांपने लगा ... 'इससे अच्छा तो मैं सोप फैक्टरी में काम कर लूंगा।'

गया तो बड़े शौक से वह परन्तु हाथ जल गया तो तीन माह तक पट्टी बांधनी पड़ी।

तब रमेश ने उसका मजाक बना कहा—

नवनीत

— 'आप तो, भाई साहब, पाप-पुण्य बोझा लादे हो। तब तो निकम रहिये, वरना इस देश में इस समय कमाना कठिन नहीं।' — 'लेकिन बेईमानी से रुपया कमाया तो मैंने इतने वर्ष इस डिग्री को में क्यों नष्ट किये?'

— 'ये सब आप जानते हैं? हम तो भूखे नहीं मरेंगे' — 'लेकिन जेल भी जाओगे। अपराधी कभी तो कानून के भी में आयेगा?'

— 'भइया की बातें ही होना है तो नेता-स्टिर इनके चमचों को जेल जाना चाहिये न?'

— 'वो पिछली बार गांजे की पेटियां रातों शहर से बाहर हमने न, जानते हो वह थीं?' वह फुसफुसाया।

— 'किसकी थीं?' — 'शहर के राजनी कार्यकर्ता हैं, उनकी थीं' — 'तेरी तो उनकी बहुत पहचान मेरी नौकरी की बात कर ना।' सुरेश ए. कामर्स, रमेश अपढ़ डेड से रहा था।

— 'हैं एक-दो हजार। ये सब साथी हैं।' इंसानियत के नहीं।



रोटी जाति के आदमी को नौकरी दिल-
बायें तो नाम होगा। मुझसे पूछ रहे थे,
पर मैं तो अंगूठा छाप हूँ। आपको नौकरी
दिलवाने से आपको क्या लाभ ?'

— 'क्यों, पुण्य नहीं। कर्त्तव्य नहीं।'

रमेश ने ठहाका लगाया, 'फिर वही
पुण्य-कर्त्तव्य ? ये सब तो सड़ी-गली बातें
केवल घड़ी दो घड़ी भगवान के मंदिर
में याद करने वाली। नेता क्या मूर्ख हैं।
वह उन्हें कुछ नहीं मिलेगा तो वो हर
से ऐरे गैरे नत्थू को नौकरी दे देंगे।'

सुरेश का मुंह उतर गया... वह एक-
स चुप रह गया।

'मेरी मां बहुत बीमार है... मुझसे देखा
ही जाता।' उसकी आवाज़ मंद थी।
रमेश ने उस दिन बस-स्टॉप पर दो जेबें
घड़ी और सुरेश की मां को फल दे आया
था। कुछ रुपया अपनी मां को भी दे
दिया... उस दिन उनके घर मांस की
छड़ी चढ़ी व मां, जवरा व बकरियों ने भी
गोहारी मनाई।

पर बटुआ झोपड़े के पास पड़ा रहा...
सलिये हैड कांस्टेबल ने धर दबाया।

— 'क्या ! रमेश ने निस्संकोच तीन माह
जेल से जेल में बिताये। हवा-पानों भी तो
दिलना जरूरी है। पर वहां उसे मलेरिया
गया। क्या मच्छर थे ! जैसे बड़ी मक्खी।
जेल जाना कोई बुरी बात तो नहीं,
लेकिन वड़े लोग जाते हैं। वैसे शरीर के काम
में कमी नहीं। मजदूरी तो कैसे भी मिल
जाती है... और वह बड़ी ईमानदारी

से रुपया कमा सकता है। लेकिन जब
बिना खटे-मरे ही घर बैठे कमा ले तो
क्यों काम करे। देखा जायेगा... कोई
और रास्ता हूँगे। रमेश ने इसी ऊहापोह
में एक हफ्ता बिता दिया। झोपड़पट्टी में
तो रोज कमाओ रोज खाओ। छुट्टन के
तो और नये आसार हैं। वह दुष्ट तो अभी
से दिन-रात सिनेमा देखता है। दारु
पीता है।

सुरेश की मां जिस दिन मरी उस दिन
से वह बहुत चुप-चुप रहने लगा। दिनेश
भइया तो बहुत भले हैं। कई बार समझा
चुके। 'जल्दी क्या है नौकरी की ? मिल
जायेगी। अभी तो मैं दाल-रोटी जुटा ही
लेता हूँ न।' लेकिन सुरेश की अपनी
खुदारी उसे वैचन किये रहती। सुना है
एक जगह चौकीदार का काम भी करने
गया था... लेकिन निभा नहीं। और आज
वह इस दशा तक...

रमेश ने कान खुजाया... तभी पुलिस
पर एक अच्छे भले से दिखने वाले व्यक्ति
आये। 'अरे रमेश, क्या खाली हो आज
कल ?'

— 'हां, हूं तो खाली।'

— 'तो चलो आज मेरे घर नौकर नहीं
आया—कुछ काम निबटा दो।'

— 'क्या दोगे ?'

— 'चार रुपये रोज।'

— 'हूं, इतने में मैं बर्तन, कपड़े, झाड़ू
करूंगा क्या ?'

— 'घर के काम के और क्या दे सकता

हूँ । मेरे लिए यही अधिक है ।'

— 'क्यों वो पी. डब्ल्यू. डी. वाला साहब दो सौ देता है कि नहीं ।'

— 'वो कोई अपनी गिरह से तो देते नहीं ? सरकारी खर्च से देते हैं । पेमेंट सरकार करती है, काम नौकर घर पर करता है ।'

— 'इससे मुझे क्या लेना-देना — हां, कहो तो मां को भेज दूंगा ।'

— 'तुम ही चले चलो ।'

— 'जाओ सेठ, सुबह-सुबह फालतू बातें मत करो ।' उसे जाते ही रमेश बुदबुदाया. 'हरामी काम करने की बात करता है ! मैं कोई निकम्मा हूँ जो काम करूँ । थोड़ी धूप चढ़ी तो वह वहीं लेट गया और जोर-जोर से गाना गाने लगा ।

पानवाले ने मुस्करा कर छोड़ा—'रमेश भाई, बड़ी मस्ती है ।'

— 'क्यों, तेरे बाप ने दी है क्या ?'

— 'बाप तक क्यों जाते हो ?'

— 'तो क्या मां तक पहुंचूं !' रमेश ने भड़ी गाली दी । और उठ बैठा । पानवाला डरा कि अभी चीखे-चिल्लायेगा और ग्राहक भाग जायेंगे । उसने बड़े प्यार से कहा, बेकार नाराज होते हो—एक पान खा लो ।' और रमेश ने पान चबाया, और सीना ताने घर की ओर बढ़ा ।

मां डलिया बुन रही थी । रमेश को देख डपटती बोली, 'क्यों रे ! आज भी निठल्ला बना घूम रहा है ।'

— 'तू काम करेगा — वो साहब पूछ रहा

था । यहां बैठे-बैठे हाथ पैरों को तेरे सताता है — जा, जरा भाग-दौड़ तो हट जायेगी ...'

— 'रोटी कौन थोपेगा ?'

— 'तो ला न बहू ।' रमेश ने कि

— 'और खिला न अपनी गा

हरामजादे ।'

'देख मां गाली मत दे, तू जानती मैं एक झटके में कितना कमा लेता 'तू बेफिकर रह ... शाम को देखा दावत करेगी मेरी ।'

शाम हुई । हलकी काली स्याही टिमटिमाती चिमनियां तारों सी ऊ और उधर —

रमेश अचानक चौराहे पर वती पर जोर-जोर से सर व शरीर हिला था ! 'रमेश ! अरे... इसको तो पड़े गये !' एक ढेंड चीखा । अब क्या था पास से भीड़ रमेश के पास इकट्ठी लगी । रमेश सबको कुछ न कुछ बतला रहा था ... पैसा-दस पैसा-वहां गिरती गयीं । और जब लगभग वजे तक पीर बाबा वापस गये वह रुपये की रेज़गारी और दो नए एकत्रित हो गये थे ।

रमेश उठा और रेज़गारी बटोर को मीठे सुर से गलियाता बोला— निकम्मे चल ... आज तो जज्ज काम... करो काम... अरे इस देश करने की मेरे जैसे कमाऊ को क्या

— ग. गर्ल्स डिग्री कालेज, खंडवा

(पृष्ठ ८३ का शेषांश)

दि-आदि । सौंदर्य नाश के भय से इनका
हिंदी नाम या अर्थ देने का प्रयोजन नहीं
है । कुछ समझौता-वार्ता कर लेने के बाद
मैंने भी हठी मालिक की तरह 'लॉक-
आउट' या तालाबंदी घोषित कर दी है ।
कलकत्ता के इस शोर-शराबे से भरे
आवाजों के जंगल में बिना समाधि और
साधना के मुझे अनाहत-नाद सुनने का
शाम मिल गया है । जहाँ तक सुनने का
सुन है, दूसरों की कौन कहे, मैं अपनी ही
ही सुनता हूँ ।

नाक के नीचे कुछ दूर तक ओंठों का
लुआ पठार, और फिर सूखे नीरस ओंठों
का धनुष तथा उनकी ढीली प्रत्यंचा । रस
अभाव में ही पतला गये हैं । भीतर
तों का खोल अपनी जगह पर है, गो
हिनी जिन्हें होना चाहिये था, वे दाढ़ें
बाव दे चुकी हैं । बायीं ओर भी एक
हा है । रह-रह कर इंकिलाव जिंदावाद
कार उठने वाले 'दसनन बीच' विचारी
मि अब शहजोर होने लगी है, स्वाद में
ही, बल्कि छालों में । और फिर एक
हरी उपत्यका के पार यवाकार क्षुद्र-सी
। कहने को कुछ ही, तो जायसी के
र में स्वर मिला कर कहूंगा, 'मोहि कहं
सि कि कोहर हीं ।'

इमेज के लिए चेहरे-मोहरे के सिवा
पर जरूरत किसी की क्यों होने लगी ?
नु जरूरत सचमुच चेहरे-मोहरे की भी
क्या ? धर पकड़ा होता प्रकाशक ने ही

किसी फोटोग्राफर को । फोटो तो रंगीन
भी हो सकता था । पर इससे शायद जैसी
प्रकाशक चाहता है वैसी इमेज खड़ी नहीं
हो पाती होगी । वरना सामग्री के लिए
वह मेरे पीछे ही क्यों पड़ता ? रेखाओं में
न सही, शब्दों में तो मैंने ऊपर दिखा ही
दिया है कि विकने लायक कुछ है ही नहीं—
न शकल, न सीरत !

इमेज शब्द का एक और प्रसंग में
धड़ल्ले से प्रयोग सुनता हूँ आजकल, राज-
नीति के क्षेत्र में । विदेशों में हमारे आचरण
के प्रसंग में भी भारत की इमेज की चर्चा
चल निकलती है आये दिनों समाचार-
पत्रों में । प्रचार के दांव-पेंच से राजनीति
के पहलवान एक-दूसरे की इमेज बनाते-
बिगाड़ते प्रायः ही सुने जाते हैं । साहित्य-
कार के लिए भी कहीं इसी तरह की तरल-
विरल इमेज की बात तो नहीं है ? अगर
ऐसी बात है तो प्रकाशक मेरे पास क्यों
आया है ? आलोचकों और पुरोहितों की
कमी कहां है ? फार्मूला-फरोशों के पास
तो रेडी-मेड किसिम-किसिम के फार्मूला
हैं, जो बिना पुस्तक पढ़े किसी भी पुस्तक
पर आसानी से चस्पां किये जा सकते हैं !
प्रकाशक ने वह पुस्तक तो पढ़ी ही है,
जिसे वह प्रकाशित कर रहा है ! यदि उससे
उसके ही दिमाग में मेरी कोई इमेज नहीं
बनी, तो मुझसे मसाला मांगकर दूसरों
के लिए वह मेरी कैसी इमेज बनायेगा ?
मसाला मेरे पास ऐसा है ही क्या जो मेरी

हिंदी डाइजैस्ट

रचनाओं में नहीं है ?

कैसी इमेज बनाना चाहता है वह ? अवश्य कुछ ऐसी बनाना चाहता है, जो अभी नहीं है ! जो नहीं है, उसे क्यों, और कैसे बनायेगा वह ?—और तब क्या वह 'मैं' रहूंगा ? मुझे चश्मे से देखा जाये तो वह मेरा रंग तो नहीं होगा । और चश्मा लगाकर ही देखना हो तो मुझे ही क्यों, किसी को कुछ भी दिखाकर मेरी इमेज की भ्रांति पैदा की जा सकती है !—मेरी भ्रांति, यानी मुझे लेकर दर्शकों के मन में उत्पन्न की गयी भ्रांति ! मेरे मन में उत्पन्न भ्रांति को भी तो इन्हीं शब्दों में पुकारा जाता । अर्थात् मूल तत्व है भ्रांति, इमेज नहीं ।—भ्रांति कहां, किसके बारे में है, यह महत्वहीन ही नहीं, निष्प्रयोजन भी है । कला के क्षेत्र में यही तो कहा जाता है, कला वही श्रेष्ठ है जो वास्तविकता की भ्रांति पैदा कर सके । भ्रम जितना गहरा हो, कला उतनी ही श्रेष्ठ होगी । लेकिन तब भी भ्रम साहित्यकर्ता में नहीं, वह होना चाहिये साहित्य-कृति में । अब तक यही तो जानता आया था । साहित्य भी तो एक कला ही है । आज इमेज की बात सुनकर सोचने को बाध्य हो रहा हूं कि क्या सचमुच जमाना इतना बदल गया है ? अब इस युग में यदि साहित्यकार अपने साहित्य ही में नहीं, अपने में भी भ्रम पैदा कर सके तभी वह भाविक की दृष्टि में श्रेष्ठ प्रमाणित हो सकेगा, बाजार में वह तभी विक सकेगा । और आज इसीलिए

ये प्रकाशक ने नीलाम की बोली लाना पहले इमेज के बहाने मुझे कसौटी पर खड़ा किया है ।

भाई प्रकाशक मेरे ! हाट में तो सभी आ खड़े हुए हैं—कविरा खड़ा है, लेखक का, और उस पर पाठक का, चर्चा है, वह महज हमारी कीमत आंकने के लिए है ! इस हाट में तो विकते ही हैं, खरीदार भी । एक भी खरीदकर दूसरे को बेच दिया जाय करेगा—यहां—दूसरा पहले खरीदार को खरीदो तब तीसरे को बेच देता है । और कई बार ऐसा भी होता है कि लगता है हम और वह रहे हैं, पर सचमुच तो रहे होते हैं कि जैसे यही सौदा ले लो । बेचना मुझे पड़े रहे हो तुम । लेकिन एक बार पूंजी कर दांव पर तो तुम चढ़ गये हो । मेरी बनाना चाहते हो, पर विकत तुम्हें है । नफा-नुकसान जो तुम्हारे मैं तो तराजू-भर रह गया हूं । तौल बहुत हुआ तो पासंग कहकर तुम्हें फेंक दोगे । इमेज मेरी नहीं, अपनी की बनाओ, भाई ! प्रकाश की रंग हर चीज दिप उठेगी । यह तो धर्म है, लाग-लपेट नहीं । ग्राहक ले आओ ! माल की कमी नहीं । डंडी मारने की आदत किसी को, कम-से-कम मेरी पीढ़ी के साहित्य को तो नहीं होनी चाहिये !

—८।ए नंदन रोड, भवानीपुर,

शिवरात्रि के उपलक्ष्य में शिवपुराण से उद्धृत एक गुह्य विद्या



काल को जीतने का उपाय...

देवी पार्वती ने कहा—प्रभो ! काल से आकाश का भी नाश होता है । वह तो हयंकर काल बड़ा विकराल है । वह स्वर्ग भी एकमात्र स्वामी है । आपने उसे जगत्त्रय कर दिया था, परंतु अनेक प्रकार के खरीदोत्रीं द्वारा जब उसने आपकी स्तुति की.

तब आप फिर संतुष्ट हो गये हम और वह काल पुनः अपनी है कि कृति को प्राप्त हुआ—पूर्णतः मुझे स्वस्थ हो गया । आपने उससे पूंजी नातचीत में कहा—‘काल ! तुम हो । किंचित् विचरोगे, किंतु लोग हैं देख नहीं सकेंगे ।’ आप मुझ की कृपादृष्टि होने और मिलने से वह काल जी उठा था उसका प्रभाव बहुत बढ़ गया । अतः महेश्वर ! क्या

ऐसा कोई साधन है, जिससे उस काल को नष्ट किया जा सके ? यदि हो तो मैं बताइये ; क्योंकि आप योगियों में श्रेष्ठ और स्वतन्त्र प्रभु हैं । आप शरीरधारण के लिए ही शरीर धारण करते हैं ।

शिव बोले—देवि ! श्रेष्ठ देवता, दैत्य, राक्षस, नाग और मनुष्य—किसी के

द्वारा भी काल का नाश नहीं किया जा सकता ; परंतु जो ध्यान-परायण योगी हैं वे शरीरधारी होने पर भी मुख्यपूर्वक काल को नष्ट कर देते हैं । वरारोहे ! यह पंच-भूत शरीर सदा उन भूतों के गुणों से युक्त ही उत्पन्न होता है और उन्हीं में

इसका लय होता है । मिट्टी की देह मिट्टी में ही मिल जाती है । आकाश से वायु उत्पन्न होती है, वायु से तेजस तत्त्व प्रकट होता है, तेज से जल का प्राकट्य बताया गया है व जल से पृथ्वी का आविर्भाव होता है । पृथ्वी आदि भूत क्रमशः अपने कारण में लीन होते हैं । पृथ्वी के पांच, जल के चार, तेज के तीन और वायु के दो गुण



चित्र : के. रवीन्द्र

होते हैं । आकाश का एक मात्र शब्द ही गुण है । पृथ्वी आदि में जो गुण बताये गये हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध । जब भूत अपने गुण को त्याग देता है, तब नष्ट हो जाता है और जब गुण को ग्रहण करता है, तब उसका प्रादुर्भाव हुआ बताया जाता है । देवेश्वर ! इस प्रकार तुम पांचों भूतों के यथार्थ स्वरूप

हिंदी साहित्य

को समझो । देवि ! इस कारण काल को जीतने की इच्छावाले योगी को चाहिये कि वह प्रतिदिन प्रयत्नपूर्वक अपने-अपने काल में उसके अंशभूत गुणों का चिन्तन करे ।

योगवेत्ता पुरुष को चाहिये कि सुखद आसन पर बैठकर विशुद्ध श्वास (प्राणायाम) द्वारा योगाभ्यास करे । रात में जब सब लोग सो जायं, उस समय दीपक बुझा कर अन्धकार में योग धारण करे । तर्जनी अंगुली से दोनों कानों को बंद करके दो घड़ी तक दबाये रखे । उस अवस्था में अग्निप्रेरित शब्द सुनायी देता है । इससे संध्या के बाद का खाया हुआ अन्न क्षणभर में पच जाता है और सम्पूर्ण रोगों तथा ज्वर आदि बहुत-से उपद्रवों का शीघ्र नाश कर देता है । जो साधक प्रतिदिन इसी प्रकार दो घड़ी तक शब्दब्रह्म का साक्षात्कार करता है, वह मृत्यु तथा काम को जीतकर इस जगत् में स्वच्छन्द विचरता है और सर्वज्ञ एवं समदर्शी होकर सम्पूर्ण सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है । जैसे आकाश में वर्षा से युक्त बादल गरजता है, उसी प्रकार उस शब्द को सुनकर योगी तत्काल संसार-बन्धन से मुक्त हो जाता है । तदनन्तर योगियों द्वारा प्रतिदिन चिन्तन किया जाता हुआ वह शब्द क्रमशः सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होता जाता है । देवि ! इस प्रकार मैंने तुम्हें शब्दब्रह्म के चिन्तन का क्रम बताया है । जैसे धान चाहनेवाला पुरुष पुआल को छोड़ देता है, उसी तरह मोक्ष की इच्छा वाला योगी सारे बन्धनों

को त्याग देता है ।

इस शब्दब्रह्म को पाकर भी जो वह अना- वस्तु की अभिलाषा करते हैं, वे मु- विना व- आकाश को मारते और भूख-पा- है । इसक- कामना करते हैं । यह शब्दब्रह्म ही होता है । प्रिये- मोक्ष का कारण, बाहर-भीतर के निरन्तर- रहित, अविनाशी और समस्त उ- नी प्रका- से रहित परब्रह्म है । इसे जानकर प्राणवेत्- मुक्त हो जाते हैं । जो लोग कालप- उन्हें प्रय- मोहित हो शब्दब्रह्म को नहीं जान- को नाद- पापी और कुबुद्धि मनुष्य मौत के इस प्रक- फंसे रहते हैं । मनुष्य तभी तक सं- धोष- जन्म लेते हैं, जब तक सब के आ- (सिंगा- परमतत्त्व (परब्रह्म परमात्मा) की वासुरी, नहीं होती । परम तत्त्व का ज्ञान हो- गर्जन- पर मनुष्य जन्म-मृत्यु के बन्धन से- कर तुं- हो जाता है । निद्रा और आलस्य स- सदा ही- का बहुत बड़ा विघ्न है । इस श- पापों से- यत्नपूर्वक जीतकर सुखद आसन- भ्यास- आसीन हो प्रतिदिन शब्दब्रह्म का भी जब- करना चाहिये । सौ वर्ष की अवस्था- और अ- वृद्ध पुरुष आजीवन इसका अभ्या- जाता है- तो उसका शरीररूपी स्तम्भ मृत्यु- में ही ल- जीतनेवाला हो जाता है और उसे- में वह- वायु की शक्ति को बढ़ानेवाला आ- जीतने- प्राप्त होता है । वृद्ध पुरुष में भी शब्द- प्रकार- के अभ्यास से होनेवाले लाभ का कि- वर्णन- देखा जाता है, फिर तरुण मनुष्य को प्रकट ह- साधना से पूर्ण लाभ हो, इसके लि- साधन- कहना ही क्या है । यह शब्दब्रह्म न- हर लेने- हैं, न मन्त्र है, न बीज है, न अक्षर- अपनी-

नवनीत

यह अनाहत नाद (विना अघात के अथवा विना बजाये ही प्रकट होनेवाला शब्द) है। इसका उच्चारण किये बिना ही चिन्तन होता है। यह शब्दब्रह्म परम कल्याणमय है। प्रिये ! शुद्ध बुद्धिवाले पुरुष यत्नपूर्वक निरन्तर इसका अनुसंधान करते हैं। अतः ती प्रकार के शब्द बताये गये हैं, जिन्हें प्राणवेत्ता पुरुषों ने लक्षित किया है। मैं उन्हें प्रयत्न करके बता रहा हूँ। उन शब्दों को नादसिद्धि भी कहते हैं। वे शब्द क्रमशः इस प्रकार हैं—

घोष, कांस्य (झांझ आदि), शृंग (सिंगा आदि), घण्टा, वीणा आदि, बांसुरी, दुन्दुभि, शंख और नवां मेघ-गर्जन—इन ती प्रकार के शब्दों को त्याग कर तुंकार का अभ्यास करे। इस प्रकार सदा ही ध्यान करने वाला योगी पुण्य और पापों से लिप्त नहीं होता। देवि ! योगाभ्यास के द्वारा सुनने का प्रयत्न करने पर भी जब योगी उन शब्दों को नहीं सुनता और अभ्यास करते-करते मरणासन्न हो जाता है, तब भी वह दिन-रात उस अभ्यास में ही लगा रहे। ऐसा करने से सात दिनों में वह शब्द प्रकट होता है, जो मृत्यु को जीतने वाला है। देवि ! वह शब्द ती प्रकार का है। उसका मैं यथार्थरूप से वर्णन करता हूँ। पहले तो घोषात्मक नाद प्रकट होता है, जो आत्मशुद्धि का उत्कृष्ट साधन है। वह उत्तम नाद सब रोगों को हर लेने वाला तथा मन को वशीभूत करके अपनी ओर खींचने वाला है। दूसरा

कांस्य-नाद है, जो प्राणियों की गति को स्तम्भित कर देता है। वह विष, भूत और ग्रह आदि सबको बांधता है। इसमें संशय नहीं है। तीसरा शृंग-नाद है, जो अभिचार से सम्बन्ध रखने वाला है। उसका शत्रु के उच्चाटन और मारण में नियोग एवं प्रयोग करे। चौथा घण्टा-नाद है, जिसका साक्षात् परमेश्वर शिव उच्चारण करते हैं। वह नाद सम्पूर्ण देवताओं को आकृष्ट कर लेता है, फिर भूतल के मनुष्यों की तो बात ही क्या है।

पांचवां नाद वीणा है, जिसे योगी पुरुष ही सदा सुनते हैं। देवि ! उस वीणा-नाद से दूर-दर्शन की शक्ति प्राप्त होती है। वंशीनाद का ध्यान करनेवाले योगी को सम्पूर्ण तत्व प्राप्त हो जाता है। दुन्दुभि नाद का चिन्तन करनेवाला साधक जरा और मृत्यु के कष्ट से छूट जाता है। देवेश्वर ! शंखनाद का अनुसंधान होने पर इच्छानुसार रूप धारण करने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। मेघनाद के चिन्तन से योगी को कभी विपत्ति का सामना नहीं करना पड़ता। वरानने ! जो प्रतिदिन एकाग्र चित्त से ब्रह्मरूपी तुंकार का ध्यान करता है, उसके लिए कुछ भी असाध्य नहीं होता। उसे मनोबांछित सिद्धि प्राप्त हो जाती है। वह सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और इच्छानुसार रूपधारी होकर सर्वत्र विचरण करता है, कभी विकारों के वशीभूत नहीं होता। वह साक्षात् शिव ही है, इसमें संशय नहीं है।



डा. महावीर सिंह का एक जीवनी-परक लेख



ईरान के वैदिक ऋषि जरथुस्त्र

ईरान शब्द, आर्य शब्द का ही परिवर्तित रूप है। आर्य लोग मध्य-एशिया से सर्वप्रथम ईरान में ही आये, पत्पश्चात् उन्होंने भारतवर्ष की ओर प्रस्थान किया। ईरान में महर्षि जरथुस्त्र ने जिस पारसी धर्म की नींव डाली वह वास्तव में वैदिक धर्म ही था। महर्षि जरथुस्त्र ई. पू. १० वीं शताब्दि से लेकर ७ वीं शताब्दि के बीच हुए थे। उनके जीवन की गथाओं से पता चलता है कि वैदिक घटनाओं से उनका अभूतपूर्व संबंध था। अवेस्ता तथा ऋग्वेद की समानता अनेक रूपों में सिद्ध हो चुकी है। आर्यों में गाय को बहुत पवित्र माना जाता है तथा जब भी पृथ्वी पर संकट आता है वह गाय का रूप धारण कर ब्रह्मा के पास जाती है, संकट दूर करने की प्रार्थना करती है। जरथुस्त्र के जन्म के पूर्व गाय ने ब्रह्मा से यही प्रार्थना की थी। ऐसी ही कथाएं राम, कृष्ण तथा अन्य अवतारों के संबंध में भी प्रचलित हैं। पौरुषस्प तथा दुग्धोवा के घर में महात्मा जरथुस्त्र ने जन्म लिया। जरथुस्त्र के माता-पिता राजवंश से संबंधित थे। भारतवर्ष में भी सभी अवतार राज्यवंश से ही संबंधित थे। उनके जन्म

के समय भी वैसे ही चमत्कार हुए जैसे भारतवर्ष में अनेक अवतारों के जन्म के समय हुए। बालक जरथुस्त्र जन्म के पक्ष में रोने की अपेक्षा मुस्कराये तथा उनके माइयों व मंडल पर प्रकाश का घेरा विद्यमान था। बचपन में अनेक दुष्टों ने उन्हें हात चाने की चेष्टा की, लेकिन जरथुस्त्र ने चमत्कारों द्वारा सभी को परास्त कर दिया। यों सभी घटनाएं कृष्ण के बचपन से मिलती जुलती हैं। अन्य अवतारों के बचपन की कथाएं भी जरथुस्त्र की घटनाओं से मिलती जुलती हैं।

१५ वर्ष की अवस्था में जरथुस्त्र संसार से विरक्त होकर ध्यान-उपाय का मार्ग ग्रहण किया, लेकिन अनेक ने विघ्न उत्पन्न किये, जैसा कि ऋषियों के साथ भी हुआ। अनेक को पार करते हुए अंत में जरथुस्त्र अपनी तपश्चर्या पूर्ण की। दुष्टात्मा 'मन' ने 'स्पिताम' (पूर्व का नाम) को प्रलोभन दिये, लेकिन वे अविचल रहे जिसके कारण उनका नाम जरथुस्त्र सुनहरा प्रकाश पड़ा। इसी प्रकार का नाम भी बुद्ध पड़ा था। ज्ञान करने के पश्चात् जरथुस्त्र ने अपने

र को उपदेश दिया। लगभग यही कथा
 के संबंध में भी प्रचलित है। ईरान
 अनेक वर्षों तक जरथुस्त्र ने धर्म-प्रचार
 का कार्य किया, लेकिन उनके चचेरे भाई
 के अलावा किसी ने भी उनके धर्म को
 स्वीकार नहीं किया। पहली बार उन्हें
 ईरान में सफलता प्राप्त हुई जहां के
 राजा ने जरथुस्त्र को अपना गुरु बनाया।
 के इस घटना के पश्चात् जरथुस्त्र के अनु-

उनके शिष्यों की संख्या में
 मान बढ़ी से वृद्धि हुई।

भारतवर्ष में ईरानी
 ने सभ्यता के प्रभाव काफी
 रक्षित रखे, क्योंकि
 वे अवेस्ता तथा वेदों की
 विचार धारा में काफी
 मिलता-जुलता था। दोनों की

संस्कृतियों का मूल उद्-
 भूत एक ही था। वेदों में
 धर्म के लिए ऋत् शब्द
 का प्रयोग किया गया

। अवेस्ता में ऋत् के

लिए अश शब्द का प्रयोग किया गया है, जो
 कि ऋत् शब्द का ही परिवर्तित रूप है। जिस
 प्रकार वेदों में समाज को चार भागों में
 विभाजित किया गया है अवेस्ता में इन्हीं
 वर्णों को उसी रूप में रखा गया है। ब्राह्मण
 के लिए आथर्वान, क्षत्रिय के लिए रथे-
 स्त्र, वैश्य के लिए वास्त्रोस और शूद्र
 के लिए हुटेक्ष शब्द मिलते हैं। समाज
 की व्यवस्था अवेस्ता तथा वेदों में समान

है। दोनों ग्रंथों की भाषा का उद्गम स्रोत
 एक ही है। ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य
 वर्णों का उपनयन संस्कार संपन्न होता
 था और इस संस्कार के कारण ही बालक
 द्विज कहा जाता था अर्थात् दूसरा जन्म
 धारण करने वाला। बाद में यह संस्कार
 केवल लड़कों के लिए चलन में रह गया।
 लेकिन पारसी धर्म में यह संस्कार बालक
 तथा बालिका दोनों के लिए प्रचलित है।

हिंदुओं में यज्ञोपवीत,
 मेखला (करघनी),
 शिखा (चोटी) के समान
 ही पारसी लोगों में
 मुद्रेह (पवित्र कमीज),
 कुस्ती (मेखला) और
 टोपी प्रचलित हैं।

ईरान में जरथुस्त्र के
 पहले भी वैदिक धर्म
 प्रचलित था, लेकिन
 आपसी मतभेदों के
 कारण संकट उत्पन्न
 हो गया था। भारतवर्ष

महात्मा जरथुस्त्र

में बुरे लोगों को असुर कहा जाता
 था, जबकि ईरान में उन्हें देव कहा
 जाता था। भारतवर्ष के वैदिक कालीन
 देवता इंद्र, ईरान के भी देवता थे। ईरान
 में प्राचीन देवता जैसे इंद्र, (वृत्रहन),
 नासत्यास, विघ्रात्र तथा अन्य को राक्षसों
 के समान समझा जाता था। लेकिन होम
 (सोम), हवार (सूर्य), मोघ (चंद्रमा),
 मिथर (मित्र), यम आदि की पूजा प्रच-



लित थी । धीरे-धीरे ईरान में महात्मा तथा सज्जन व्यक्तियों की अवहेलना आरंभ हुई, जिसे दूर करने के लिए जरथुस्त्र का अवतार हुआ । गीता में अवतार धारण करने का कारण भी इसी से मिलता-जुलता है । भारतवर्ष में श्रीकृष्ण का पूरा जीवन जरथुस्त्र के जीवन तथा सिद्धांतों से पूर्णरूपेण मेल खाता है और कभी-कभी ऐसा लगता है कि महाभारत के कृष्ण तथा जरथुस्त्र कहीं न कहीं आपस में अवश्य जुड़े थे ।

पारसी साहित्य

ईरान के इतिहास में दो भीषण युद्ध प्रसिद्ध हैं, जिनमें ईरान की पराजय हुई तथा इन युद्धों में महत्वपूर्ण साहित्य नष्ट हो गया । ई. पू. ३३१ में सिकंदर ने ईरान को पराजित किया और ई. ६५१ में अरबों ने ईरान को पदाक्रांत किया । केवल कुछ ग्रंथ ही सुरक्षित बच सके, जिसमें यस्न (यज्ञ) प्रमुख है । इन ग्रंथों में अनेक अनुष्ठानों का वर्णन है । यस्न ग्रंथ ७२ भागों में उपलब्ध है, जिसमें जरथुस्त्र से संबंधित गाथा का भाग प्रमुख है । ग्रंथ में ५ गाथाओं का उल्लेख है—अहुनावेति, उश्तावेति, स्पेता मेन्यु, वाहुक्षस्थ तथा वहिस्त-इस्ति ।

(जरथुस्त्र ने ईश्वर (अहुरमज्द या हुरमज्द), अच्छाई-बुराई, तथा दैनिक आचरण संबंधी बातों पर विचार किया है । जरथुस्त्र ने यह स्पष्ट किया है कि हुरमज्द सर्वशक्तिमान तथा सर्वव्यापक

है । संसार का जन्म इसी के कारण है । जरथुस्त्र ने उस समय प्रचलित बहुदेववाद का तीखा खंडन किया । एकेश्वरवाद की स्थापना की । उनका मत है कि ईश्वर के निर्गुण ब्रह्म के समान जरथुस्त्र ने मज्द की व्याख्या की । ईश्वर की स्तुति ध्यान द्वारा संभव है । हुरमज्द की स्तुति के ६ सोपान हैं, जिन्हें क्रमवार पढ़ना चाहिए । ये सोपान अश वहिस्त, बहुमानो, शशथ्रवैय, अमेती, हउर वैतात, अमेरतात । अर्थ है दैवी इच्छा । अश वहिस्त का अर्थ है दैवी ज्ञान और शशथ्रवैय का अर्थ है दैवी क्रिया । इन ६ सोपानों में प्रथम सोपान पुरुष वर्ग और अंतिम तीन स्त्री वर्ग सूचित करते हैं । इस प्रकार इच्छा और क्रिया पुरुष प्रधान पक्ष है । तीन सोपान नारी प्रधान सोपान भारतीय धर्म में अर्द्धनारीश्वर की कल्पना को साकार करते हैं । शैव-दर्शन में रस्य के सिद्धांत में इच्छा, ज्ञान और के समत्व पर ही बल दिया गया है । प्रकार हुरमज्द तथा छह सोपान कुल कर सात देवता हैं । अग्नि को देवता के रूप में स्वीकार किया गया । इनके अलावा जरथुस्त्र ने सोशा भी शक्ति के रूप में स्वीकार किया है । में सुश्रुषा शब्द इससे मिलता है । ईश्वर के प्रति दृढ़ के लिए इस गुण का होना आवश्यक है ।

पाप और पुण्य

हुरमज्द ने सर्व प्रथम दो आत्माओं को जन्म दिया—पुण्यात्मा तथा पापात्मा। एक जीवन का पर्याय है तो दूसरा मरण का। यह द्वंद्व अनंत काल तक चलता रहेगा। अंत में विजय पुण्य की ही होती है। हमारे प्राचीन ग्रंथों में भी लगभग यही विचार मिलते हैं। जरथुस्त्र का विचार है कि जैसे-जैसे व्यक्ति भौतिक उपदार्थों के लोभ में फँसता है, वैसे-वैसे वह पाप के गर्त में गिरता चला जाता है। यह विचारधारा उपनिषदों की माया, ब्रह्म और जीव संबंधी व्याख्या से मेल खाती है। अंग्रमन्य, या जैतान या माया के भ्रम से बचने के लिए ज्ञान की आवश्यकता है, क्योंकि सच्चा ज्ञान समस्त भ्रमों को नष्ट करता है। यह सिद्धांत भारतीय दर्शन के अनुरूप है।

संसार में रहकर कर्म करना अनिवार्य है, अतः ज्ञान की अपेक्षा कर्म श्रेष्ठ है। गीता में भी लगभग यही संदेश कृष्ण ने अर्जुन को दिया था। ईरान में ज्ञान की अपेक्षा कर्म को अधिक महत्व दिया गया, लेकिन गीता की शिक्षा के समान कर्म को ज्ञान सेवा के लिए ही स्वीकारा गया ताकि कर्म फल की प्राप्ति की ओर आसक्ति पैदा न हो सके। सेवा भाव के द्वारा किया गया कर्म ही श्रेष्ठ कर्म है। कोरा ज्ञान संसार के लाभप्रद नहीं है।

शक्तिशाली मंत्र
वैदिक मंत्रों के समान ही यस्त में

हुरमज्द द्वारा संसार की उत्पत्ति के लिए अहुन वैर्य मंत्र (मंत्र) के उच्चारण का उल्लेख है। जब जरथुस्त्र को पराजित करने के लिए अंग्रमन्यु (शैतान) ने अपनी पूरी शक्ति लगा दी तब हुरमज्द ने अहुन-वैर्य मंत्र वा उच्चारण किया। अवेस्ता में यह मंत्र सर्वाधिक शक्तिशाली तथा पवित्र माना जाता है। इस मंत्र के उच्चारण से बड़ी से बड़ी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। मंत्र का सार इस प्रकार है :

‘जिस प्रकार पृथ्वी पर राजा सर्वशक्तिमान होता है, उसी प्रकार ऋतु (ऋषि) भी अपनी आध्यात्मिक इच्छा के कारण सर्वशक्तिमान होता है। श्रेष्ठ ज्ञान उन्हें प्राप्त होता है जो ईश्वर के लिए कार्य करते हैं तथा शशथ्र हुर (श्रेष्ठ कर्म) का फल उन्हें प्राप्त होता है, जो नम्र तथा सेवा भाव से कार्य करते हैं।’

जिस प्रकार उपनिषदों में ब्रह्मज्ञानी को राजा से श्रेष्ठ समझा जाता था, उसी प्रकार ईरान में अध्यात्म विद्या के ज्ञाता को श्रेष्ठ समझा जाता था। जरथुस्त्र की प्रथम गाथा अहुनवति में इसी मंत्र का विवेचन है।

जरथुस्त्र ने तीन प्रमुख शिक्षाएँ समाज को दीं—ह्युमत (सम्यक् विचार), हुख्त (सम्यक् वाणी) और हुवरस्त (सम्यक् कर्म)। वैदिक साहित्य में मनसा, वाचा, कर्मणा तीनों द्वारा साधना करने की बात कही गयी है। जो मन, वाणी और कर्म पर

(शेषांश पृष्ठ १२२ पर)

सतीशकुमार गुप्ता की हिन्दी कहानी

अधूरी कहानी

आज जब घर पहुंचा तो देखा एक लिफाफा आया है। लिखाई देखते ही समझ गया दीदी का है। खोलकर देखा बहुत ही संक्षिप्त-सा पत्र था।

सत्येन, तुम अक्सर लिखा करते हो न, दीदी, अब तो शादी कर ही डालो। तो इसी फरवरी की १४ को कोर्ट मैरिज कर रही हूं। तुम्हारे सिवा मेरा इस दुनिया में और है ही कौन जिसे आने के लिए लिखूं। आओगे न ?

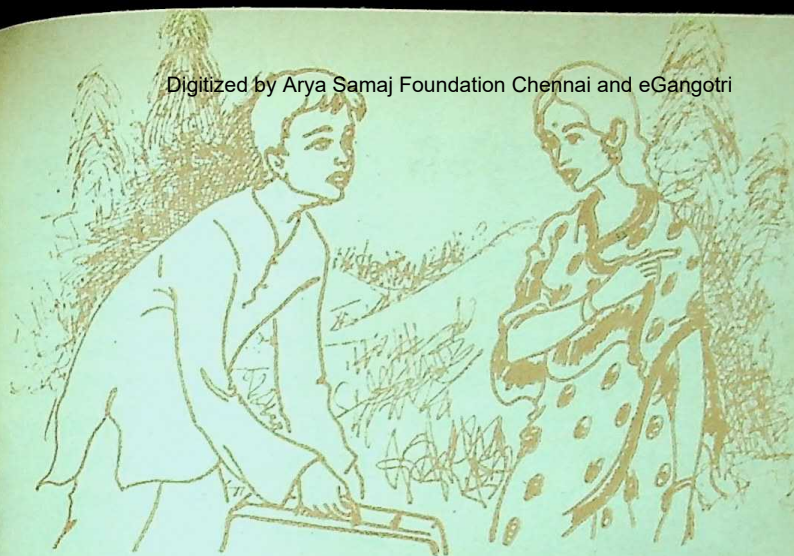
—तुम्हारी दीदी

मैं एक बार अतीत में खो गया। लता दीदी को मैं पिछले चार साल से जानता हूं। जब बहुत ठोकरें खाने के बावजूद कहीं नौकरी नहीं मिल पायी तो शिमला से क्लर्क की नौकरी के लिए नियुक्ति-पत्र मिलते ही मैं वहां जाने के लिए तैयार हो गया। न कोई जान न पहचान, अकेला वहां आने से घबरा रहा था। वैसे भी इससे पहले कभी घर से बाहर निकला न था। सोचता था कोई पूर्व परिचित मिल जाता तो काम कुछ आसान हो जाता, कमसे कम कमरा वगैरह तो दिलवा देता। खैर जाना तो था ही,

मजबूरी जो थी। शिमला स्टेशन उतरकर मुझे कुछ समझ नहीं आ रहा क्या करूं, कहां जाऊं ? फिर सोचा दफ्तर ही चला जाये वहां ही किंग कहूंगा। अगर दो-चार दिन रहने की जगह मिल जाये तो इतने में तो कमरे का इंतजाम हो ही जायेगा। दफ्तर में काम शुरू करने के बाद मैंने दो-चार लोगों से कमरे के बारे में बात की, पर किसी ने मेरी तरफ ध्यान नहीं दिया। 'हां ध्यान रखेंगे' कहकर टाल दिया। शाम तक कोई इंतजाम नहीं हुआ तो एक बार अंडर सेक्रेटरी के पास गया उसे अपनी समस्या बतायी तो उसने दो बार मेरी तरफ देखा फिर बोला, 'तुम्हारे पास पैसा है, जब तक कोई इंतजाम नहीं हो तब तक दफ्तर में ही सो जाया करो और यह कहकर वह फिर फाइलों में लौट चला आया।

०००

दो-तीन दिन में ही सभी लोगों में जानने लग गया। एक दिन पास लड़की ने पूछा, 'अच्छा, सत्येनजी, आ



कमरा मिल गया ?'

‘अरे कहां, अभी तो दफ्तर में ही जमा हुआ हूं !’

इस पर वह कुछ देर चुप रही; फिर बोली, ‘देखिए, वैसे मैंने कभी किराये पर मकान दिया तो नहीं है, पर इस शर्त पर कि जब आपको कोई अच्छा मकान मिल जायेगा आप खाली कर देंगे तो मैं आपको एक कमरा दे देती हूं।’

मैंने एक बार उसकी ओर कृतज्ञता से देखा फिर बोला, ‘उसके बारे में आपको चिंता नहीं होनी चाहिए ?’

शाम को मैं बहुत सकुचाता हुआ अपना सामान लिये उसके पीछे-पीछे चल पड़ा। मुझे ऐसे लगा जहां-जहां से हम गुजर रहे हैं सब लोग हमारी तरफ ही देख रहे हैं और वह उस सबसे बेखबर चली जा रही है। घर पहुंच कर उसने गेट का ताला खोला। मैंने एक नज़र में देखा—मकान काफी बड़ा और अच्छा बना हुआ था,

पर उचित देखभाल न होने की वजह से वीरान-सा लगता था। लगता था पिछले कई सालों से सफेदी नहीं हुई। दरवाजों का रोगन फीका पड़ चुका था। उसने एक कमरे का ताला खोलकर मुझे दिखाते हुए कहा, ‘भरे खयाल से आपके लिए काफी है।’ फिर बोली, ‘काफी दिनों से बंद बड़ा है इसलिए सफाई करनी पड़ेगी, तब तक आप दूसरे कमरे में बैठिए।’

कमरा साफ होने के बाद मैंने अपना सामान लगा लिया और चारपाई पर बिस्तर लगाकर लेट गया। हल्की-सी आंखें बंद करके मैं घर के बारे में सोचने लगा। आज मुझे अपना घर बड़ा याद आ रहा था। तभी—‘चाय लीजिए’ की आवाज़ से मैं हड़बड़ाकर उठ बैठा। फिर बोला, ‘अरे यह तकलीफ आपने क्यों की?’ कुछ देर तक हम दोनों चुपचाप चाय पीते रहे। मुझे कुछ बात ही नहीं सूझ रही थी। फिर एकाएक बोला, ‘देखिए न, मैं भी कितना

हिंदी डाइजेस्ट

बुद्धू हूं, अभी तक आपसे नाम ही नहीं पूछा ।

‘मेरा नाम लता है ।’

‘अच्छा, लताजी, यहां रहने का जुर्माना तो सुना दीजिए ।’

‘मैं समझी नहीं,’ एकाएक वह चौंकी फिर मतलब समझकर खिलखिला पड़ी । ‘देखिए, मैंने आपको बताया था न, मैंने पहले कभी कमरा किराये पर दिया नहीं, आप जितना भी ठीक समझें दे दिया करिए ।’

‘इतने बड़े मकान में आप अकेली कैसे रहती हैं ?’

इस पर लता एकाएक उदास हो गयी फिर बोली, ‘चार साल पहले मम्मी-पापा की एक बस एक्सीडेंट में डेथ हो गयी थी, तब से अकेली हूं । क्या करूं किसी को मकान किराये पर देते हुए भी डर लगता है मुझे ।’

‘ओह, पर और कोई रिश्तेदार तो होगा ?’

‘नहीं, कोई नहीं, मम्मी-पापा दोनों अनाथ आश्रम में पले थे,’ कहकर उसने निश्वास छोड़ा ।

मुझे कुछ समझ में नहीं आया कि कैसे उसे सांत्वना दूं ।

इसलिए मैंने चुप रहना ही बेहतर समझा ।

०००

कुछ ही दिनों में हम आपस में इतना घुलमिल गये कि मैं हर काम लता पर

नवनीत

छोड़कर निश्चित हो आता । अपा... किसी काम में थोड़ी-सी भी देरी हो... तो मैं लता पर झुंझला उठता । इस... वह मुस्कराती रहती । कई बार हंसकर छिपक... देती, ‘सत्येन, अब तुम शादी कर जा... में होत...

मैं मन ही मन सोचता—लता, यहां क... अच्छी लड़की कहां मिलेगी ? पर... कहने की हिम्मत न जुटा पाता और... ‘तुम ही कोई लड़की ढूंढ दो न ।’ ‘मुझे क्या पता तुम्हें पत्नी के... कैसी लड़की पसंद है ।’

सोचता—लता क्या सचमुच तुम्हें पसन्द मालूम नहीं ? फिर कहता, ‘ढूंढ दो कोई बुद्धू-सी लड़की जिस पर... चल जाये ।’

‘क्यों तुम्हारे लिए अच्छी लड़कियां कमी है । अच्छा सच-सच बताना में भी किसी पर नज़र है ?’ वह मुस्क... पूछती ।

‘अरे मुझे तो सारी ही पसंद है, मुझे भी कोई पसंद करे !’ इस पर दोनों देर तक हंसते रहते ।

०००

बचपन से ही जब मैं खुश होता... उसमें सभी को शामिल करता हूं परंतु कोई समस्या होती है तो उसको अकेले झेलता हूं । ऐसी कुछ आदत-सी बन... है । मुझे याद है उस बार कोई फार्म... जाने की आखिरी तारीख थी । आई. ए. एस. का फार्म भरना था । रुपये की ज़रूरत थी । आखिरी ता...

अगर चल रही थीं, मेरे पास ८० रुपये तो क्या
 ८० रुपये भी नहीं थे। उस दिन मम्मी
 की मुझे बहुत याद आयी। मैं कमरे में
 छिपकर खूब रोया। 'आज अगर मैं दिल्ली
 में होता तो क्या मेरा फार्म रुक जाता।
 यहाँ कौन बैठा है?' उस दिन लता ने
 पर खाना खाने के लिए कहा तो मैंने तबीयत
 और खराब का बहाना करके टाल दिया।
 'दफ्तर में भी मैं सिर पर हाथ रखकर बैठा
 के रहा। एक-दो यार-दोस्तों ने पूछा भी
 पर मैंने टाल दिया।

तुम्हें दोपहर को लता ने जब खाना न खाते
 होता, देखा तो बोली, 'सत्येन, बात क्यों नहीं
 स पर बताते, कोई खास परेशानी है?'

'बताया तो न, तबीयत खराब है।'
 'सत्येन, तुम्हें मेरी कसम, क्या मुझे भी
 जाना कराया समझते हो।'

'लता आज आई. ए. एस. के फार्म की
 लास्ट डेट है, मेरे पास पैसे ही नहीं, सिर्फ
 ८० रुपये के लिए एक चांस मिस करना
 पड़ रहा है।'

'अरे बड़े बुद्धू हो, बताया क्यों नहीं,
 अच्छा मैं अभी बैंक से निकलवा लाती हूँ।'

अब लंच के बाद लता ने ८० रुपये
 मेरी मेज की तरफ सरकाये तो मुझे ऐसा
 लगा जैसे उसने मुझे खरीद लिया।

मैं भारी-आवाज़ में बोला, 'लता, तुम
 मेरी कहाँ-कहाँ मदद करोगी?'

'छि: इतनी सी बात पर घबरा गये!'

०००

अगले महीने तनख्वाह मिलते ही

मैंने अस्सी रुपये लता को देते हुए कहा,
 'लता, मैं तुम्हें कभी नहीं भूलूंगा।' एक
 बार अपने वजट का ध्यान करके मेरा
 हृदय कांप गया। ४५० रुपये कट-कटाकर
 मिले हैं—८० रुपये इसके दे दिये। घर
 पर भेजने हैं। फिर लता को खाने और
 मकान के किराये के! मेरे माथे पर पसीने
 की बूंदें झलक आयीं।

'अरे तबीयत तो ठीक है, इतनी सर्दी
 में तुम्हें पसीना आ रहा है!'

'हां, ठीक हूँ, बिल्कुल ठीक हूँ।'

'सत्येन, तुम परेशान नज़र आ रहे हो,
 पैसे नहीं हैं तो रहने दो फिर आ जायेंगे।'

'नहीं, लता, नहीं, मैं मैनेज कर लूंगा।'

उसके बाद लता अक्सर टोकती, 'सत्येन,
 तुम एक जाकेट तो खरीद लो, इतनी सर्दी
 पड़ रही है, कहीं ठंड-बंड लग गयी तो लेने
 के देने पड़ जायेंगे।'

'लता, दरअसल घर पर काफी स्वेटर
 पड़े हैं, वहां जाकर ले आऊंगा।' कहकर
 मैं टाल जाता जबकि मैं अच्छी तरह से
 जानता था कि दिल्ली में मेरे पास एक
 ही स्वेटर था और वह भी अब अजय पहन
 रहा होगा।

०००

एक दिन शाम के वक्त सैकशन आफिसर
 मेरे पास आया और बोला, 'मि सत्येन,
 आज आप जरा रुक जाइयेगा, कुछ बहुत
 जरूरी काम आ गया है।' मैंने एक बार
 लता की तरफ असहाय नज़रों से देखा
 (शेषांश पृष्ठ ११० पर)

हिंदी डाइजेस्ट

श्रीराम वर्मा की एक लंबी कविता

उद्घोष

सुनो प्रेतो, सुनो !
अनगिन व्यथाओं में बंद
जर्जर, खड़खड़ाते, रेंगते, पिसते
अपाहिज
सुनो !

दुःख-दुर्दम कथा-स्मृति से
उबर उर्वर ऊर्जा से सुनो !
—यत्न की सीमा नहीं कोई ।
विहंसते पुण्य के क्षण दीपते
जीवन-प्ररोही—

तनिक देखो— गली अपनी
ठूठ से पीपल हुई
बजती हुई—
किरण-मुलकित कोंपलों की डार—
उतरे
हरे तोतों के सबेरे—
गली अपनी ठूठ से पीपल हुई ।

कहां हैं वे
तिमिरचर्चित
हरित हिरन-मरीचिकाएं !
कहां है जलकुंभियों का ताल
दलदल और कीचड़दार— !

तनिक देखो :
बादलों में उड़ा सागर
इंदुबिंबित उतर आया
लिये कुल आकाश—

खुरदरी वह भूमि छूते
नाचता है पंख फैलाये
चंदोवेदार वह
बन मोर
हर्षाकार— !

जल उठे उन अट्टहासों का तुम्हारे
तरल होकर हो गया कैसा कफ
सरीहन सप्तर्षि उतरे
थाल भर नक्षत्र लेकर !
जाल भर जुगनू लजाते
खिलखिलाती गदोरी पर !

तुम्हारे उन अट्टहासों का कथांतर
चंद्रधौत ललाट ज्योतिरत—
तीसरा वह नयन अनिमिष
नूपुरों के लास्य में नत :
तरल छाया - नग - जड़े
गति-बिब ठहरे :
शांत सुनगुन में सगुन अविरा
मनसायन गहनतम !

एक छोटे पटाखे की राख भर
कुंडलीकृत यह अंधेरा !
लहरती भागीरथी आलोक की !
जियो प्रेतो, जियो !
तिल-तिल तितीर्षा से
रूप लेकर नये पूरे जियो !

नवनीत

बेलीस बन आवाज
पूरे आदमी आज़ाद
बनकर जियो !

आधे-अधूरे भटकते
इस अंधेरे से उस अंधेरे
आज पूरे
रोशनी से रोशनी तक
आदमी आज़ाद
बनकर जियो !

यह अमावस्या
अगत्या पूर्णिमा में पल्लवित ऋतुराज !
दिगंतर पर्यंत बहिरन्तर
चमकती लहरती भागीरथी आलोक की !

मोम गलती :
रात्रिगंधा !
मकरी :

ठहरी बलाका !

दियाली :
दिपती दिवास्वप्निल हथेली !
जुही के सीमांत में सिद्धर !

आलरें ये :

अंजुरित सप्तक महकते,
अंशुल साधे अरौंदे इंद्रधनु !

सीमांत रंगारंग :
उतरे परेवे ऊर्ध्वग ! —

अनदेखे—

ध्रुवांतों की अपरिचित उषाएं
उल्लास में ठहरीं चरमगति चेतना के तीर—

नयन :

खुलते क्षितिज !

तिरती भोर-नौका देह !

तितीर्षातुर जियो प्रेतो

रूप लेकर नये पूरे जियो !

आज जीवन नहीं है मझधार—

बह रहा है शिराओं में तरल हेम-पराग !

बह रहा है बदलता दिक्काल—

चमक उठ्ठी अंगूठी पर अंगीठी ज्यों

लहक उठ्ठे गहन और अगाध —

दूर वे तारे अकेले

गिने दुदल

रत्न हैं रोते मुकुट के !

एक नन्हे पटाखे की राख भर

रावण अंधेरा !

मुक्त प्रेतो, करो तुम अभिषेक

इस आलोक-जल से :

नये कंधे, नये कर-पद

बरो ऊर्जा—

अधूरे से बनो पूरे—

प्रलय-जल से उभरते ब्रह्मांड !

करो तुम अभिषेक इस आलोक-जल का !

तुम्हारे ही नख निरखती

बह रही है लहरती भागीरथी आलोक की !

—ए-९, पन्नालाल कालनी, सिविल लाइन,

आजमगढ़—२७६००१

(पृष्ठ १०७ का शेषांश)

फिर बोला, 'ठीक है, साहब !'

उसके चले जाने के बाद लता ने कहा, 'सत्येन, तुमने तो स्वेटर भी नहीं पहन रखा। रात को तो बहुत सर्दी हो जायेगी।

'कोई बात नहीं, जल्दी आने की कोशिश करूंगा।'

'पर तुम्हें जब इतनी बार कहा है कि एक स्वेटर खरीद लो, तुम मानते क्यों नहीं?'

'इस महीने सबसे पहले स्वेटर ही खरीदूंगा।' कहकर मैंने उसको शांत करना चाहा। इस पर वह बोली, 'अच्छा, आज क्या करोगे?'

'अरे चिंता की क्या बात है, लता, दुनिया में ऐसे लोग भी हैं जिनके पास पहनने के लिए कमीज भी नहीं है।'

इस पर वह निरुत्तर हो गयी। शाम को जाने के समय बोली, 'सत्येन, तुम्हारे लिए अपना शाल रख जाऊँ, रात को सर्दी बहुत होगी।'

'अरे बाबा, क्यों मेरा जुलूस निकलवाने पर लगी हो।'

'अच्छा, स्वेटर दे दू।'

मैंने उसकी ओर एक बार देखा फिर मुझे उसकी बुद्धि पर तरस आया। फिर बिना उसकी तरफ देखे बोला, 'हां, यहीं पर रख दो।'

जब कुछ देर के बाद उसने चुपके से मेरी दराज में स्वेटर रखा तो मैं बहुत झुंझलाया, 'बड़ी बुद्धू लड़की है, अरे भई

मैंने तो मज़ाक में कहा था, मैं तेरा पहनूंगा?'

'क्यों क्या हर्ज है?'

मैंने एक बार उसकी तरफ देखा हाथ जोड़कर बोला, 'अच्छा, लता, इसे अब ले जाओ, मुझे आफिस काम करने दो।'

वह चली गयी तो मैं सोचने लगता हूँ कि कितनी भोली है यह। इस बेचारी को यह पता लग जाये कि हम दोनों को दफ्तर में क्या-क्या रिमाक्स पास आते हैं, तो इसके दिल पर क्या गुज़रेगा।

उसी रात जब मैं घर पहुंचा तो मेरा शरीर बुखार से तप रहा था। मैंने को बहुत समझाया पर वह डाक्टर बुला बिना न मानी। वह सारी रात मेरी चूल्हा पर बैठी रही। जब वह दवाई पिलाने के लिए मेरे ऊपर झुकती तो उसकी सांस से मेरा चेहरा ढक जाता। मेरे नखुशबू से भर जाते। सोचने लगता कि कितना खुशनसीब होगा जिसे ऐसी लड़की मिलेगी।

०००

जब एसिस्टेंट की परीक्षा पास कर ली तो दिल्ली से मेरा नियुक्ति-पत्र आया तो उस दिन हम दोनों बहुत उदास हो गये थे। बाद में मैंने चुप्पी तोड़ते हुए कहा, 'लता, अगर तुम कहो तो मैं लता जाऊंगा।'

'छि: सत्येन, ऐसी बात तुम्हारे दिमाग में

नवनीत

आयी कैसे ? वहां तुम्हारा घर है, मम्मी
भाई-बहन हैं ।'

'पर, लता, सच पूछो तो मुझे उनसे
कभी भी प्यार नहीं मिला । वहां वात-
वात पर मुझे निकम्मा करार दिया गया ।
यहां तक कि मेरा अपने आप पर से विश्वास
ही उठ गया था ।'

शाम को जब चलने का समय हुआ
तो वह भी मुझे स्टेशन तक छोड़ने जाने
का आग्रह करने लगी, तब मैंने ही उसे
माना कर दिया था, 'लता, तुम समझती
क्यों नहीं, गाड़ी ११ बजे रात को चलेगी ।
तुम वापिस कैसे आओगी ?' आखिरी
बार विदा देते समय वह मुझसे लिपट
गयी थी । हम दोनों खूब रोये । वह बार-
बार मुझे चूमती । गर्मी के दिन थे मैं पसीने
से भीग गया । अब आखिरी बार मैं बैग
उठाकर जाने लगा तो उसने कहा—

'सत्येन !'

'हां, बोलो न, कुछ कहना है ?' मैंने बैग
वहीं रख दिया ।

'मैंने आज तक तुमसे कुछ नहीं मांगा,
आज मांगूं तो दोगे न ?'

'अरे, कहो न ।' मैं उसके बिल्कुल पास
आ गया ।

'सत्येन, मुझे एक बार दीदी कह कर
चुलाओगे ?' फिर वह जैसे अपने आप
मैंने खो गयी । 'बचपन से ही मेरी इच्छा
थी, मेरा एक भाई हो, छोटा भाई । सो
भगवान ने नहीं दिया । उसने मम्मी-
पापा को मुझसे छीनकर इतनी बड़ी

दुनिया में मुझे असहाय बनाकर छोड़
दिया । तुम्हें पहले ही दिन जब देखा तो
जाने क्यों लगा जैसे तुम ही वह हो जिसकी
मैं बचपन से कल्पना करती आयी थी ।
और मैं आज कह सकती हूं, सत्येन, कि
मेरा खयाल गलत नहीं निकला । अगर
मेरा सगा भाई भी होता तो शायद उससे
भी मुझे इतना प्यार, इतना अपनापन
नहीं मिल पाता जितना तुमने दिया है ।'

मैं एकाएक जैसे आसमान से गिरा ।
जिसके साथ मैं शादी करने के इरादे बनाये
हुए था उसे एकाएक बहन के रूप में कैसे
मान लूं । मैं ऐसा नहीं कर सकता । मेरी
आत्मा जैसे चीत्कार कर उठी, पर तभी
अंदर से आवाज़ आयी—'सत्येन, ज़रा
सोचो तो, अगर इसे पता चला तो इसके
दिल पर क्या गुजरेगी ? क्या इसे सहारे
की जो हल्की-सी आशा की लकीर दिखाई
देती है वह भी मिटा दोगे । क्या इसके
अहसानों का यही बदला दोगे ?' मैं इसी
दुनिया में था कि लता की आवाज़ ने मुझे
झकझोर दिया, 'बोलो, सत्येन, एक बार
दीदी नहीं कहोगे ? सत्येन, मैं तुमसे कोई
बड़ी चीज़ तो नहीं मांग रही,' मैंने देखा
लता की आंखें डबड़बाई हुई थीं और वह
याचक के रूप में मेरे सम्मुख खड़ी थी ।
'दीदी' कहकर मैं उससे लिपट गया ।
कुछ देर बाद जब मैं वहां से चला तो मुझे
ऐसा महसूस हो रहा था जैसे मैंने लता के
सारे अहसानों का मोल चुका दिया है ।

—४२४७, श्रीनगर, दिल्ली-११००३५



जगजीत बराड़ की एक पंजाबी कहानी



एक कालमुक्त निरन्तर दौड़

शाम गहरी हो गयी थी। अन्धकार देर तक बढ़ता ही रहने वाला था। पाल दुविधा की हालत में एक तंग गली में खामोश खड़ा था। गली में कहीं रोशनी का कोई खम्भा नहीं था। वह गली उसके लिए कितनी अज्ञात और अपरिचित थी। दोनों ओर ही छोटी ईंटों की दीवारें थीं। दीवारों में न कोई खिड़की थी, न दरवाजा। बल्कि जहां वह खड़ा था, वहां तो दोनों दीवारें जुड़ गयीं जान पड़ती थीं।

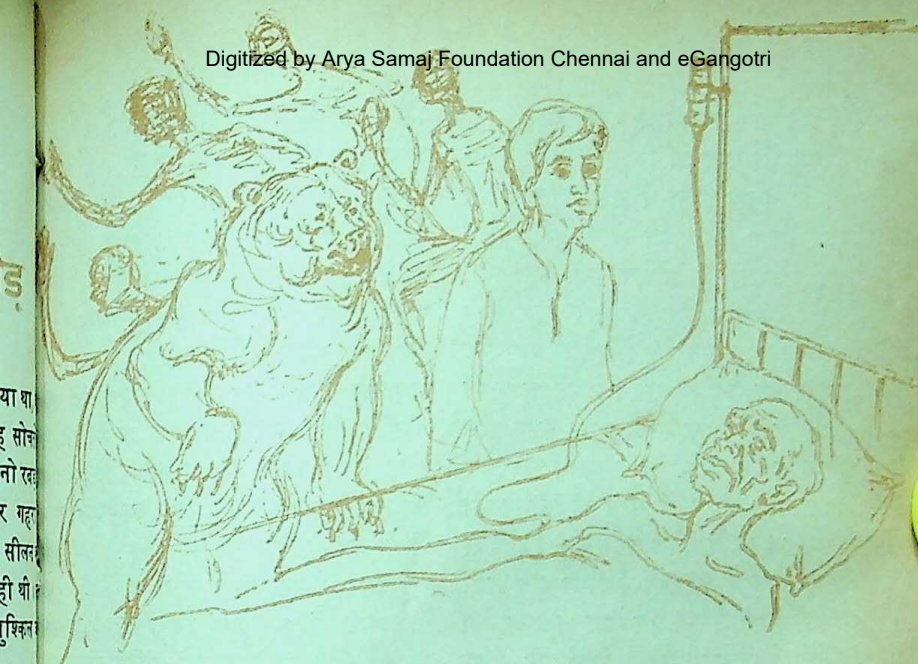
उसे पूरा विश्वास था कि उसका पिता चलते-चलते सड़क की बड़ी सड़क से उसी गली में मुड़ा था। वह अपने पिता को खोजता हुआ ही तो गली के सिरे तक पहुंचा था। एक क्षण के लिए उसके मन में आया कि वह अपने पिता को आवाज लगाये। लेकिन फिर वह डर गया था कि उसकी आवाज इस तंग गली की दीवारों से टकरा कर उसके अपने ही चेहरे पर ईट-सी आकर लगेगी। कोई आवाज भी उन दीवारों के पार नहीं पहुंच सकती थी। दीवारों के उस पार मात्र एक पत्थर-सी खामोशी थी।

क्या सचमुच उसका पिता काली नवनीत

खामोशी के उस शहर पहुंच गया था। से लौटना असम्भव था। यह सोच उसकी हड्डियां एक भय से मानो तलबन गयीं थीं। अन्धेरा और गहरा चला था। उस तंग गली की सील दीवारों में उसकी सांस घुट रही थी। उसे अपने पिता की तलाश मुश्किल पड़ती थी।

वह गली निश्चय ही कितनी लम्बी थी। जैसे-जैसे वह वापिस लौट रहा था, गली चौड़ी होती जा रही थी, तलाश पाना आसान हो रहा था। लेकिन उसका मन में एक चाह, एक तलाश लगे रहती ही जा रही थी... उसके पिता की गैरहाजरी की तलाश। फिर एक क्षण उसके शरीर में कंपकंपी उभर आती थी। कहीं उसके बेटे को भी उसकी खोज में इसी गली में न आना पड़े।

अब वह दूर तक रोशनी देख सकता था। शायद वह रोशनी शहर की बड़ी सड़क पर थी। जिस जगह गली सड़क में मिलती थी, वहां रोशनी का एक खम्भा था। और पास आकर देखा था, तो सफेद पत्थर के एक खम्भे पर वह



उसे खूब भली लगी थी, लेकिन दूसरे ही क्षण उसने खम्भे की ओर ध्यानपूर्वक देखा था। खम्भे पर तारकोल से बनाया गया आदमी का एक बेनाम लेकिन ताज़ा चित्र था, और आकार-चित्र पर एक लाल रंग का काटने का चिन्ह। एक भय से उसकी आंखें फैल गयी थीं। बार-बार अपने पिता के बारे में सोचता वह ठीक सड़क तक पहुंच गया था। सड़क पर कितना यातायात था, आवागमन था। वह सड़क पर अकेला चलने से डर रहा प्रतीत होता था। लेकिन वही सड़क तो उसके घर की ओर जाती थी।

उस रात वह बहुत देर से घर पहुंचा था। घर पहुंच कर भी वह सबसे पहले अपने पिता के कमरे में गया था। पलंग के

पायताने पड़े जूते, खूंट्टी पर टंगी टोपी और मेज़ पर पड़ी राखदानी में अधजली सिगरेट एक ही कहानी के प्रतीक थे.... एक खामोश हो चुकी कहानी के। उसने एक लम्बा निश्वास लिया और वह अपने कमरे में लौट आया। फिर मन की पीड़ा, शरीर की थकान और भविष्य की चिंता को साथ लिये वह अपने बिस्तर में खो गया था।

दूसरी सुबह उसने दिन चढ़ने पर आंखें खोली थीं। जागते ही मानो कुछ होश भी आ गया हो। अब उसे याद आया था कि कई दिन पहले उसका पिता सख्त बीमार हो गया था। डाक्टर के कहने पर उसे अस्पताल में दाखिल करवाया गया था। वह अपने पिता को देखने के लिए हर

रोज दो बार अस्पताल जाता था ।

पाल को याद था कि एक दिन अस्पताल में उसके पिता ने उसे बहुत करीब होकर बैठने का संकेत किया था । फिर उसकी आंखों में झांकते हुए कहा था, बेटा ! जिंदगी एक निरन्तर दौड़ है । यह दौड़ काल-मुक्त है । अर्थात् यह दौड़ आदमी को एक ही समय अपने से पहले दौड़ चुके लोगों के साथ, अपने साथ दौड़ रहे लोगों के साथ और अपने बाद में दौड़ने वाले लोगों के साथ दौड़नी पड़ती है । इस दौड़ में बहुत सम्भव है कि पैरों में छाले पड़ जायें, अंगों में पीड़ा होने लगे, व शरीर का अंग-प्रत्यंग हार तक जाये । लेकिन निरन्तर दौड़ते रहने के लिए जरूरी है कि छाले, पीड़ा और थकान का एहसास, मन की लगन से बड़ा न हो जाये । . . . और यदि कहीं यह एहसास मन की लगन से बड़ा हो भी जाये, तो भी दौड़ते ही रहना होगा ।

पाल पूरे मनोयोग से सुनता रहा था । उसका पिता इस दौरान उसके चेहरे की ओर एक आसपूर्ण लगन के साथ एकटक देखता रहा था । शायद उसके पिता की इच्छा थी कि पाल निरन्तर दौड़ते रहने की सबल स्वीकारोक्ति दे । लेकिन पाल तो जैसे अपने पिता के कहे हर शब्द के अर्थों में उतर गया था ।

उसके पिता ने करबट ली थी । बिस्तर के साथ पड़ी अलमारी खोली थी । एक खाकी रंग का लिफाफा उसने पाल

को दिया था । लिफाफे में दो चित्र और एक तस्वीर । एक चित्र बड़े रीछ का था । चित्र में रीछ अपने पैरों पर खड़ा जैसे किसी चीज पर ही वाला था । उसके खुले मुंह में से पड़ते सफेद और तीखे दांत, लम्बी रंग की जीभ, और लाल आंखें भयावह क्रोध, कितने भयानक लगते रीछ के पैरों के पास ही एक आदमी पड़ा था । चित्र का शीर्षक 'असफल का भय' पढ़ कर तो पाल को मानों में ही डर लगने लगा था । वह कुछ में दूसरा चित्र देखने लगा था ।

दूसरे चित्र 'एक निरन्तर दौड़' कितने ही लोग भाग रहे प्रतीत होते उनके चेहरों से पैरों की थकान और दर्पण की पीड़ा कितनी प्रत्यक्ष थी । दौड़ में जितना भी कोई आगे था, उसके पैर दूसरों से बड़े लगते थे । ही उसके चेहरे और मन की पीड़ा स्पष्ट थी ।

दोनों चित्रों को लिफाफे में बंद डालते हुए पाल एक और तस्वीर लगा था । अब तक उसके चेहरे के और गम्भीर हो गये थे । उस पल पिता पुनः बोले थे । इस बार आवाज़ अचानक धीमी हो गयी उन्होंने बताया था कि वह तस्वीर के बड़े भाई की थी । उनका पूरा विश्वास था कि उसके भाई का चेहरा 'एक निरन्तर दौड़' शीर्षक वाले चित्र के चेहरों में

नवनीत

था। पाल ने तस्वीर बहुत ध्यान पूर्वक देखी थी। उस तस्वीर के नक्शे पाल के नक्शों के साथ कितने मिलते थे। फिर मन ही मन पाल दोनों चित्रों और तस्वीर में कोई समानता खोजने लगा था। एक ही समय कितने ही प्रश्न उसकी आंखों के आगे तैरने लगे थे। प्रश्न, जिनके उत्तर उसके पिता के पास होने चाहिए थे। एक आशा के साथ उसने अपने पिता की ओर देखा था। उन्हें तो नींद आने लगी थी, मुग़ा जैसे वे सो गये थे।

मन में कितनी ही चिन्ताएं और प्रश्न आले पाल अस्पताल से लौट आया था। इस शाम वह बहुत उत्सुक रहा था, अपने प्रश्नों के उत्तर जानने के लिए।

जब दूसरी सुबह पाल अस्पताल गया तो उसके पिता की हालत ज्यादा खराब थी। अचानक उन्हें अर्धांग पक्षाघात आघोरा पड़ा था। नर्स और डाक्टर खास ध्यान पर उनकी देखभाल कर रहे थे। उनकी दायाँ बांह में ग्लूकोज लगा हुआ था। पाल के कमरे में आने पर नर्स एक

बार तो बाहर चली गयी थी, शायद कोई दवाई लेने के लिए। उदास-सा वह लिये पाल पहले तो क्षणिक के लिए अपने पिता के पांयताने खड़ा रहा था, लेकिन फिर मन मजबूत करके उनके बिस्तर के दायाँ ओर उनके बहुत ही नीप हो गया था।

पाल अपने पिता को बुलाने का यत्न कर रहा था, लेकिन..... उनकी

जीभ तो बिल्कुल रुक गयी थी। वे पाल को कुछ कहने का निरन्तर यत्न कर रहे लगते थे। लेकिन उनके होंठ मन का माध्यम बनने से इन्कार कर चुके थे। अनकहे शब्दों के व्यवधान के कारण ही शायद उनकी आंखों के डोरे लाल हो गये लगते थे। आंखों में से एक अनाम विवशता और अज्ञात लाचारी झांक रही थी। माथे की रेखा और गहरी हो गयी प्रतीत होती थी। उनके हाथों में भी बहुत ही कम शक्ति रह गयी थी। एक अन्दरूनी पीड़ा से जैसे उन्होंने अपने दांत दबाने चाहे थे। पाल ने अपनी गीली आंखें झपकते हुए उनका दायाँ हाथ दबाया था। वही हाथ फिर उनके माथे पर फेरा था। अपना मन मजबूत करते हुए पाल ने उन्हें दिलासा दिलाते हुए कहा था कि वे कुछ ही दिनों में बिल्कुल ठीक हो जायेंगे। शायद उनके कान भी अब कोई बोल, कोई आवाज़ सुनने से असमर्थ थे। अचानक उनकी सांस बहुत तेज़ और ऊंची हो गयी थी। मुँह के दायाँ भाग से एक झाग-सी बह चली थी। आंखों की पुतलियाँ और फैल गयी थीं।

सहमा हुआ पाल दौड़ कर नर्स को बुला लाया था। कुछ ही पल में एक अन्य नर्स और डाक्टर आ गये थे। कोई पांचक मिनट बाद ही उसके पिता को विशेष देखभाल वाले कमरे में ले गये थे। उस कमरे में से उसके पिता वापस नहीं आ पाये।

—अनुवाद : फूलचंद मानव



किरण शंकर मैत्रा का प्रेम-काव्य विवेचन



प्रेम-कविता में कश्मीर की नूरज

मैंने मेरे हाथ मेंहदी से रचा लिये हैं
प्रियतम, कब तुम आओगे ?

आओ तृप्त करो—मेरी तप्त वासना
देखो, मैं मृत्यु पथ-यात्रिणी तुम्हारी

प्रतीक्षा में ।

पिया बिन, दिन रात व्यर्थ विवश असहाय
कैसे सहन करूं ये ज्वलंत विरह

मेरा भाग्य कब प्रसन्न होगा—किस शुभ
मुहूर्त में

कब लौट आयेंगे मेरे प्रेमी, कब ?

गहन विरह की उष्ण दीर्घ निश्वास और
तप्त अश्रुओं से परिपूर्ण उपरोक्त प्रेम-
गीतिका की रचयिता १६ वीं शताब्दी
की एक कश्मीरी कवयित्री थीं । इनका
जन्म हुआ एक कृषक पुत्री के रूप में, लेकिन
सौभाग्य उनको ले गया कश्मीर के राज-
प्रासाद में । मिली साम्राज्य की मान-
मर्यादा । इसके बाद का जीवन भी विविध
विचित्र घटनाओं से परिपूर्ण है । इस
कवयित्री का नाम था हब्बा खातून—
कश्मीर के रोमांटिक कवियों में अग्रणी ।

कश्मीर के आदि कवि थे सिति कंठ ।
उनका जन्म १३ वीं शताब्दी में या उससे
भी कुछ पहले हुआ था । सिति कंठ की

नवनीत

कविता संस्कृत शब्द बाहुल्य थी ।
गवेषणा विभाग से प्रकाशित 'महा-
प्रकाश' ग्रन्थ में उनकी पांडित्यपूर्ण
शैली का वर्णन है ।

सिति कंठ के समकक्ष कवियों में
नीय हैं साध्वी कवयित्री लालेश्वरी,
योगेश्वरी या लाल दाद (जन्म
मानतः १३३५) । लालेश्वरी केवल
कवयित्री ही नहीं थीं, उनका प्रधान
चय, दार्शनिक और संन्यासिनी रूप में
उनकी रचनाएं भी संस्कृत मिश्रित
शाक्तभाव परिपूर्ण रहस्यवादी कवि-
ने अपनी कविता के माध्यम से दा-
भावना प्रचारित की थी । इसके साथ
कश्मीरी भाषा को सम्मान के क्षेत्र में
किया था ।

लालेश्वरी के समय से कश्मीरी
के उच्चारण में बहुत परिवर्तन
गहन हृदय मंचित—तीव्र आवेगबोध
स्वर माधुर्य हब्बा खातून के गीत
की प्रधान विशेषता है । ये ही गुण
प्राचीन पंथी कवियों की पुरातन
धारा से अलग करके उनके कवि-
जनन्यता लाया ।

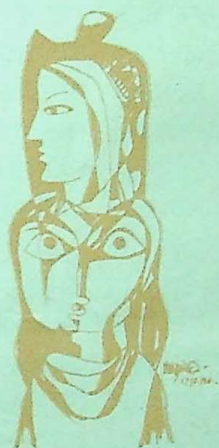
श्रीनगर से दस मील दूर अपूर्व प्राकृतिक सौंदर्य से परिपूर्ण चंदाहार गांव में हब्बा खातून का जन्म हुआ। अब्दुल्ला राठीर की इस बेटी को बचपन में 'जून' या 'जूनी' कहकर पुकारा जाता था। कश्मीरी भाषा में 'जून' शब्द का अर्थ 'चांद' है। वास्तव में इस बालिका ने चंद्रमा जैसा रूप लेकर जन्म लिया था और जैसी रूप 'महा' में रश्मि वैसी ही गुण में भी सरस्वती। पूर्णतः कम उमर में ही 'गुलिस्तां', 'बोस्ता' और 'कुरान' में जलियादि धर्मशास्त्र और कश्मीरी साहित्य का ज्ञान-जन्य किया था। स्वभावतः उस युग की पुरातनपंथी प्रभुभूमि में अपनी पुत्री की रूप-शब्द ने अब्दुल्ला राठीर के मन में भय उत्पन्न किया। कृपासवाले लेडपुर गांव के एक किसान पुत्र के साथ आदी करके उसे जल्दी से जल्दी विदा कर दिया।

चित्र : आर. डी. पुरोहित

ससुराल में आकर काव्य-रचना में जब लीन हुई तब नववधू के इस सुलभ गुण ने सभी को नाराज कर दिया। अधुर काव्य संगीत जैसे गुण का किसानों के घर में क्या उपयोग ? सास ने उनको विभिन्न प्रकार की यंत्रणाएं दीं। पति को हार्दिक से उदासीन। फलतः हब्बा खातून का विवाहित जीवन शीघ्र ही नितांत दुःखमय हो गया।

वास्तविक जीवन के साथ यह संघर्ष हब्बा खातून के अंतर्जीवन को आलोकित किये हुए था। उसी समय से उनकी कविता में लगा हुआ एक नस्टाल्जिक (अतीत स्मृति) विवाद-स्वर पनपा। यह स्वर केवल उनकी कविता में ही नहीं है, आहिस्ता-आहिस्ता उस युग के सभी कवियों के काव्य की एक विशिष्टता बन गया। पारिवारिक जीवन में विरोध होते हुए भी शीघ्र ही हब्बा खातून की कवि के रूप में ब्याप्ति उनके गांव की सीमा को पार कर राजधानी श्रीनगर तक पहुंच गयी।

इसी समय में एक घटना ने हब्बा खातून के सारे जीवन में एक आश्चर्य-जनक परिवर्तन ला दिया। एक बार वे जाफरान के खेत में खड़ी होकर स्वर-चित गीत गा रही थीं तो उसी खेत के पासवाले रास्ते से गुजर रहे थे कश्मीर के राजकुमार युसुफ। संगीत के काव्य-सौंदर्य और स्वर-माधुर्य से आकृष्ट होकर उन्होंने गायिका की तरफ देखा। प्रथम दर्शन में ही प्रेम हो गया। क्षण में नये इतिहास ने जन्म लिया। बदल गयी हब्बा खातून की जीवन-धारा। प्रेम-मुग्ध राजकुमार ने सुंदरी गायिका से प्रश्न किया—'आप कौन हैं ?' तत्क्षण ही रचित एक चतुष्पदी में हब्बा



खातून ने अपना परिचय दिया । राज-कुमार ने देखा कि यह नाम तो था उनका अति परिचित । राजकुमार सक्रिय हुआ, और शीघ्र ही हब्बा खातून को विवाह-विच्छेद करवा कर अपनी जीवन-संगिनी बना लिया । और इसके बाद अपने पिता की मृत्यु उपरांत राजगद्दी पर बैठकर स्वयं युसुफ शाह चोक (सन १५७९ ईस्वी) ।

इसके बाद कश्मीर की कला और साहित्य के राजकीय संरक्षण का भार वहन किया हब्बा खातून ने । उन्होंने राजा के सहयोग से गुलमर्ग अंचल को पुष्प बगिया में परिवर्तित करने की कोशिश की । राज्य प्रशासन की अन्य बातों में भी उन्होंने अपनी सहायता और परामर्श देना आरंभ किया । फलतः जनता हब्बा खातून को कश्मीर की नूरजहां कहने लगी ।

हब्बा खातून प्रधानतः प्रेम की कवयित्री थी । प्रेम के विभिन्न आवेग नये-नये रूपों में उनकी कविता में रूपायित हुए । वो प्रेम कभी प्रतीक्षा में उत्तप्त, विफलता में विषण्ण, विनिमय में व्याकुल, संशय में दुविधाग्रस्त और प्राप्ति की वेदना में कंथित हो मुखर हुआ —

प्रेम ने किया विक्षत मुझे,
ज्वलंत अग्नि की दाह चतुर्दिक,
जलता-जलता अस्तित्व मेरा अंगार

उनकी प्रेम-कविता के प्रेक्षा-पट में कश्मीर की अनुपम प्रकृति और सुदूर-वर्ती पुष्प कुंजों की कलियों के हृदय में फूलों के स्वप्न भी दृष्टव्य हैं—

नवनीत

प्रियतम, तुमने सुनी नहीं मेरी अनुनय, प्रियतम
फूल खिल रहे हैं पहाड़ों की झील में
चलो न हम चलें, दूर की पुष्प बगिया और एक
तुमने सुनी नहीं मेरी अनुनय, प्रियतम

‘लोल’ होती है छह से दस पंक्तियों की कश्मीरी प्रेम-कविता, जिसमें एक घना आवेग—जिस आवेग में तीव्र कामना, जो प्रायः व्यर्थता में, यंत्रणा, जर्जर, कदाचित् मिलन के आनंद में होता है । उस लोल कविता ने हब्बा खातून की लेखनी में नवीन स्पंदन और ला दिया था । लोल कविता में खातून की प्रतिभा का स्फुरण हुआ मेरी भौंह से झरता है मोती का क्लृप्तिहीन प्रहर में गुलाब लेती हैं शालीमार बगीचे में बैठे पूर्ण किया आनंद मेरा

आनंद स्पंदित अंतर मेरा, प्रियतम
पिरो रही हूं सुगंधित फूलों की माला
आसाबल में मदिरा पात्र का उफान
वेणीबद्ध मेरा उदास केशगुच्छ

पिरो रही हूं अविराम सुगंधित फूल
(आसाबल—कश्मीर का एक रोमांटिक व्याकुलता, अंतहीन उनकी कविता की पंक्ति-दीखती है—
इसी पहाड़ी उपत्यका झील में तुम्हारे दर्शन मिलेंगे नहीं, प्रियतम

अनुभी के जंगल में मैं व्याकुल होकर हूँ
 रही हूँ
 और एक बार तुम्हें देखना नहीं मिलेगा,
 प्रियतम ?
 देखो, गुलाबों की कलियों में यौवन उभर
 रहा है
 तुम क्या मेरे पास नहीं आओगे, प्रेमी मेरे ।
 मेरी देह की कुल-कुल में सौंदर्य परिपूरित
 है तुम एक बार गंध नहीं लोगे, स्वप्न मेरे ?
 प्रेमी के हृदय का प्यार जीतकर भी
 अभी नहीं जाता है रोमांटिक कवि के मन
 में उर । दिशाहीन अनिश्चितता, वार-
 वार छाया डाल जाता है निश्चित मिलन
 का स्वप्न में—
 हूँ प्रियों प्रहर बीता हुआ असीम प्रतीक्षा में
 के हृदय मेरा आशाहीन, शून्य, उदासीन
 या अमलन स्वप्न प्रेम का चिरंतन संस्कार,
 प्रेमे प्रेम के ऊपर परत जाता है अहंकार
 का आवरण
 होता में रंजित किया रक्तिम कर-युगल ।
 उफान प्रेमी देह मंदिर अभिषिक्त पुष्प चुंबन में
 गुच्छ-वर्णपान पात्र में स्वर्णाभ स्वर्गीय मदिरा,
 मागन हृदय सरोवर में प्रेम पंकज लाता हूँ
 उपहार —
 क हारे होंठों पर अभी भी हंसी दुर्लभ है !
 उज्ज्वल प्रेम स्वप्नों में भरी हुई हब्बा
 खतून और युसुफ शाह के युगल जीवन के
 अनंत आकाश में अचानक छा गया
 अविनाशी झंझावात । श्रीनगर में अचानक
 रही प्रियादयिक दंगा आरंभ हो गया था ।
 तम दिल्ली के सिंहासन पर सम्राट अकबर

शासनाधीन थे । इसी वहाँ अकबर ने
 अपनी सेना श्रीनगर भेज दी । अकबर
 की फौज ने युसुफ शाह को बंदी बना
 लिया । साथ-साथ हब्बा खातून के भाग्य
 के पहियों को भी मोड़ दिया । राज-
 प्रासाद से निकलकर वे भी जनता के
 बीच घूमती रहीं । रोमांटिक कवि की
 काव्य बीणा में अब एक विद्रोही स्वर भी
 उभर आया । प्रेमी को बंदी-दशा से मुक्त
 करवाने का पूरा प्रयत्न किया, मगर परा-
 क्रमशाली मुगल सम्राट के विरुद्ध कौन
 उन्हें मदद करने वाला था ? वरन तत्का-
 लीन श्रीनगर के मुगल प्रतिनिधि ने हब्बा
 खातून को भी गिरफ्तार करने का आदेश
 जारी किया, मगर वह आदेश तब वापस
 ले लिया गया जब उन्हें पता चला कि
 हब्बा खातून तो एकमात्र उदासीन संन्या-
 सिनी है ।

लाहौर में दो साल बंदी रखने के बाद
 सम्राट अकबर ने युसुफ शाह को मुक्त
 कर दिया और जागीर देकर बंगलादेश में
 भेज दिया । लेकिन कुछ दिन बाद वहीं
 उनकी मृत्यु हो गयी । कश्मीर में इस बात
 का जब हब्बा खातून को पता चला तो
 उनकी सारी पृथ्वी शून्य हो गयी । शोक-
 दुःख में छिन्न-भिन्न उनके व्यथित हृदय से
 जो कविताएं उस समय निस्सृत हुई वह
 हब्बा खातून की कब्र पर उत्कीर्ण होने के
 योग्य हैं—

दीन किसान के घर में जन्म लिया उस
 (शेषांश पृष्ठ १२३ पर)

डा. रघुवंश का विचारोत्तेक लेख

सर्जन के क्षणों का अनुभव

क्षण की चर्चा के साथ क्षणवाद और फिर अस्तित्ववाद जैसे जीवन-दर्शन का स्मरण आ जाता है। पर शास्त्रवाद और दार्शनिक सिद्धान्तों के आधार पर अनुभव के सत्य को न कभी पूरा ग्रहण किया जा सका है और न व्याख्यायित ही। अनुभव पूरा होता है, वह शास्त्र की सीमाओं में अटता नहीं, दर्शन की व्याख्या के परे जाता है। यह जरूर है कि सहज अनुभव में जीने वाला ज्ञानी हो जरूरी नहीं है, वरन ज्ञानी हो भी तो उसे अपने अनुभव में उसका अतिक्रमण करना होगा। इसी लिए तत्त्ववाद का ज्ञान बोझा भी कहा गया है। एक मजे की बात है, हिन्दी के अधकचरे साहित्य के विचारकों ने हर कवि और कृति में दार्शनिक सिद्धान्तों की खोज कर डाली है और मोटे-मोटे पोथे छपवा डाले हैं। जबकि रचनाकार अनुभव को अभिव्यक्त करने में ही सफलता पाता है। वह अनुभव के स्तर पर हर तत्त्ववाद सिद्धान्त, मतवाद का अतिक्रमण करता है, जाने-अनजाने। रचना-कर्म अनुभव की पूर्णता पर ही प्रतिष्ठित है।

मैं क्षण के बारे में अनुभव के स्तर पर

नवनीत

सोचता हूँ, और तब मन में न को आता है और न दार्शनिक मतवाद एक प्रवाह है, देश-काल प्रवाह बिन्दु पर क्षण को अनुभव रूप में किया जा सकता है। क्षण-क्षण अनुभव-प्रवाह में हम आप सब जीते हैं। हम भूख-प्यास का अनुभव करते हैं। पीड़ा-तृप्ति का अनुभव करते हैं। दुःख का अनुभव करते हैं, हर्ष का अनुभव करते हैं, उद्वेग और का अनुभव व्यक्ति हैं और समस्त आनन्द का अनुभव करते हैं। यह अनुभव के विविध स्तर आयाम जीवन-प्रवाह के क्षणों में व्यक्त और झलक मारते रहते हैं। अनुभव के इन क्षणों में जीते हैं, प्रवाह में बहते हुए।

और कहा जाता है कि जीवन भंगुर है।

हम में जड़-चेतन सृष्टि समाहित फिर चैतन्य के अनेक स्तरों से हम हैं। मनुष्य सारी सृष्टि का प्रतिनिधि उसका शरीर जड़ होकर किसी स्पर्श से चैतन्य है और हमारे सारे का माध्यम है, हर स्तर और

अनुभव का। फिर चेतन रूप में सामान्य विद्वान् से लेकर आनन्द की उच्चतम भूमिकाओं तक फैला हुआ है, व्याप्त है। सृष्टि के प्रतिनिधि होने के नाते जड़ता के स्तर से लेकर चेतना के हर स्तर पर जीना हमारी विवशता है। हम सोते हैं, जागते हैं, स्थिर और गतिशील रहते हैं। हमको भूख-प्यास लगती है। हमको श्रम होता है, दुःख होता है और मुख भी खिलता है। फिर हम ऐसे क्षणों में जीते हैं, जो सर्जन की अनुभूति से स्फुरित होते हैं। सर्जन के आनन्द के आगे हम भूमिकाएं आत्मा के अर्ध्यात्म की हैं। वह हमारे जीवन से सामान्य व्यक्ति के लिए अलग का विषय हो सकती है, अपने निजी अनुभव का क्षेत्र नहीं। फिर हम इस सारे अनुभव-प्रवाह में क्या ग्रहण करना चाहते हैं। प्रवाह में

जीना स्वाभाविक है, पर जीवन की सार्थकता नहीं। मनुष्य सार्थकता की पलाश में है, शायद इसी स्तर पर वह मनुष्य है और सृष्टि के तमाम जीवों से अलग है और विशिष्ट भी। सवाल है कि सार्थकता क्या है जो पूरी सृष्टि में मनुष्य की विशिष्टता है। अनुभवेतर अथवा किसी परा (आध्यात्मिक) अनुभव की स्थिति या स्तर तक हमारी पहुँच नहीं

है। उसकी चर्चा यहां नहीं है, हम कर नहीं सकते। फिर हमारे अनुभव की सार्थकता क्या है?

सामान्य स्थिति में हम अनुभव प्रवाह में लीन, विस्मृत और तदरूप रहते हैं। हमको अपना बोध या आत्म-बोध नहीं हो पाता। जीवन प्रवाह में अनुभव अलग नहीं होता। पर जीवन में विशेष अवसर आते हैं, विशेष क्षण घटित

होते हैं, जब इस प्रवाह में तटस्थ रूप में अनुभव-क्षण को ग्रहण किया जा सकता, उसे रूप दिया जा सकता है। हम अपने ही अनुभव को अलग संपन्न, समृद्ध होते हुए रूप ग्रहण करते पाते हैं। इस प्रकार के विशिष्ट क्षणों का अनुभव सर्जनात्मक होता है। और सर्जन के क्षणों के अनुभव में जीना जीवन की सार्थकता है।



चित्र : के. रवीन्द्र

इस अनुभव से सामान्य और विशिष्ट सभी व्यक्ति गुजरते हैं। इसके लिए कवि या कलाकार होने की अपेक्षा नहीं है। हम नीला आकाश देखते हैं, नाना रंगों के फूल देखते हैं, आकाश में सांवले मेघों को घिरते देखते हैं, उनके बीच बिजली की कौंध को देखते हैं। हम शिशु को देखते हैं, हम माता के वात्सल्य का अनुभव करते हैं। हम में दया करुणा आलौड़ित

होती है। हम उदारता, सहानुभूति और परोपकार की भावना से आन्दोलित होते हैं।

इस प्रकार कभी हम रूप-रस-गंध के अनुभव को सर्जन क्षणों में विशिष्ट रूप में ग्रहण करते हैं। कभी मानवीय भावों-संवेदनाओं को मूल्य के रूप में उपलब्ध करते हैं। इस स्तर पर भाव सौन्दर्य का अनुभव सर्जनात्मक हो जाता है। रूपान्तर से वस्तुओं और स्थितियों को जानना, पहचानना और उसके सहारे उनको उपयोग में लाना अलग बात है, और उनको रूपाकार में स्वतंत्र रूप से अनुभव करना अलग बात है। अनेक भावों में जीना एक बात है और भावों का मूल्यों के स्तर पर उदभावित करना अलग।

मुझे लगता है, आज के युग की ट्रेजेडी है कि हम मूल्यों की चर्चा करते हैं, व्याख्या और स्थापना करते हैं, मूल्यहीनता का

रोना भी रोते हैं, पर मूल्यों की पहचान के ही। मूल्यों को जब के रूप में प्रतिपादित समर्थित किया है, तब ऐसा लगता है कि ये मान्य हैं जिन्हें स्वीकार करना है। ऐसा पड़ता है कि मूल्य जीवन पर आतं हों। तब सारे प्रयत्नों के बावजूद जीवन से अलग-थलग पड़ जाते हैं। प्रकार मूल्यों को अनुभव में ग्रहण किया जाता, उनका मानना औपचारिक है, अतः न मानना स्वाभाविक है। कोई अनुभव सर्जन रूप में उपलब्ध मूल्य नहीं बनता, तब मूल्य सार्थक होता है।

अतः सर्जन के क्षणों का मूल्यों की उपलब्धि है और मूल्योपलब्धि के बिना जीवन की सार्थकता को पाना भी संभव नहीं है।

—३/४ बैंक रोड, इलाहाबाद-२११००६

□ (पृष्ठ १०३ का शेषांश)

संयम रखते हुए निष्ठापूर्वक कार्य करता है, वही श्रेष्ठता को प्राप्त करता है।

जरथुस्त्र के विचारों को संसार में फैलाने के लिए अनेक विचारकों ने व्यापक यात्राएं कीं। यह धर्म संसार के अनेक देशों में प्रचलित भी हुआ, लेकिन धीरे-धीरे स्वयं ईरान में इस विचारधारा का लोप होता गया। अरब देशों में इस्लाम के व्यापक प्रचार के कारण पारसी धर्म महत्वहीन हो गया। फिर भी जिन लोगों

को पारसी धर्म में आस्था थी, उन्होंने ईरान की दसवीं शताब्दि में ईरान को छोड़कर समान धर्म वाले देश भारतवर्ष में आ गयी। अपने साथ में ये लोग ईरान की प्रज्वलित अग्नि लाये थे वह पवित्र अग्नि आज भी बंबई से ८० मील दूर उज्जैन के मंदिर में प्रज्वलित है। ईरान में पारसी लोग भारतवर्ष में रच-बस गये क्योंकि दोनों के पूर्वज तथा धार्मिक मान्यताएं समान थीं।

—अकाशवाणी, श्रीनन्द-वे



(पृष्ठ ११९ का शेषांश)

हब्बा की ने
हब्बा खातून जिसका नाम
जनता की उत्सुक दृष्टि की भीड़ पार करके
बुरके में ढकी हुई उस नारी,
असंख्य अनुरागी अविराम अनुसारी
ध्यान तोड़कर अरण्यचर संयमी तापस भी,
एक पलक देखने की आकांक्षा—
वही हब्बा खातून !

हब्बा खातून के जीवन के पहले १८-१९
वर्ष बीते ग्रामीण परिवेश में । उसके बाद
४ साल बीते युसुफ शाह के साथ । इसके
बाद पच्चीस वर्ष संन्यासिनी का जीवन ।
अंत में इस प्रेम प्रतप्त कश्मीर की कली
को ईर्ष्यालु मृत्यु छीन ले गयी (१६०६
और ईस्वी, ११ अप्रैल) कवयित्री की उम्र उस
न के समय ५६ वर्ष की थी ।

श्रीनगर से तीन मील दूर पर, पांडा-
खोक ग्राम में—जिस जगह मस्जिद में
ध्यान भावना में आखिरी जीवन बीता—
उसी नगर के कब्रिस्तान में हर वर्ष उसी
दिन पर हब्बा खातून का मरण दिवस
को मनाया जाता है ।

समय की वक्र दृष्टि पार करके भी
हब्बा खातून की कविता आज भी अमर
कश्मीर की दूर पर्वत चोटियों पर
उत्तराखंड किसान भी 'नोट' (मिट्टी के घड़े
बना हुआ एक लोक वाद्ययंत्र), 'तुंबख-
नारी' (चमड़े में ढका हुआ मिट्टी का लोक
वाद्ययंत्र) इत्यादि बजाकर मिलन-विरह,
प्रेम-वेदना के गाने गाता है ।

यद्यपि देवनागरी लिपि में लिखने से
कश्मीरी भाषा में रचित कविता का सही
स्वरूप हम भली भाँति नहीं समझ सकेंगे,
फिर भी हब्बा खातून रचित एक गीत
(जो आज भी अधिकांश कश्मीरियों को
प्रिय है) का भाव उद्धृत है—

—राजकुमारी की विदाई के समय में
परिचारिका उनके साथ जाने की मांग कर
रही है, मगर राजकुमारी ने कहा—'नहीं मैं
तो समुराल जा रही हूँ, तुम्हारा जाना
ज़रूरी नहीं है । मेरे लिए सचमुच कुछ
करना चाहती हो तो मुझे अच्छी दुल्हन के
वेश में सजा दो (तोहिमे पुइरब हाई बाई
छाव)

—हां, साथ में कुछ मिठाई भी दे दो
(नयी दुल्हन को पहली बार समुराल में
कुछ साथ लेकर जाना ज़रूरी है) ।
समुराल में पहुंचने पर जब बहुत से परिजन
मेरे पास आ जायेंगे तो मैं उनके हाथ में
क्या दूंगी ?

—मेरी डोली चार कहार कंधों पर ले
लेंगे—मेरे कानों में आ रहा है अपने लोगों
का रुदन स्वर । वो लोग मेरी विदाई के
समय क्यों रो रहे हैं ? मैं समुराल जा रही
हूँ । मुझे नयी दुल्हन के वेश में सजा दो ।

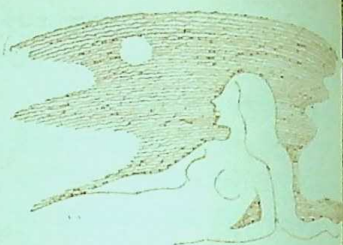
उपयुक्त हिंदी रूपांतर हब्बा खातून
की गीति - कविता का मात्र शब्दार्थ है ।
असल में यह कविता गहरी व्यंजनामय है ।
राजकुमारी मृत्यु के पहले राजप्रासाद की
परिचारिका को उपदेश करती हुई कह

रही है ।

इसमें ससुराल की मृत्युलोक से तुलना की गयी है । वह कह रही है—

परलोक में जाने से पहले मैं कौन-सी सुकृति (मिठाई) साथ लेकर जा रही हूँ । मृत्युलोक के प्रहरी के हाथ में मैं कौन से पुण्यकर्म की पिटारी दूँ । मेरा जनाजा (डोली) चार आदमी कंधों पर उठा रहे हैं । मेरे प्रियजन क्यों रो रहे हैं ? मैं तो स्वर्ग-लोक में (ससुराल) जा रही हूँ ।

१६ वीं शताब्दी में जिस कवयित्री ने



ऐसी गहरी व्यंजनामय काव्य-रचना थी इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि देश के लोगों ने अभी तक उसे हराई में अमर करके रखा है ।



सोमाली के प्रेम गीत

•

मेरे दिल के टुकड़े नहीं हो सकते; वह एक हैं और, वह तुमसे ही बंधा है, ओ चंद्रमुखी !

•

जब तक मैं जियूंगा, तब तक प्रेम के गीत गाता रहूंगा मेरी कमजोरियों को माफ़ कर देना, ओ मेरे खुदा !

•

ओ दवा से भरी बोतलों !

खाली हो जाओ, और अपने को प्रेम-गीतों से भर लो ।

•

प्रेम दवा की उस खुराक की माफ़िक है, जो तीखी होने पर भी राहत देती है ।

•

ओ डॉक्टर ! मेरा दिल बिधा है (किसी के नयनों के तीर से) मेरा इलाज कर सकोगे क्या ?

पर, ध्यान रहे, मेरा इलाज किसी अस्पताल में नहीं होगा ।



सावित्री परमार द्वारा आलेखित ऐतिहासिक प्रणय-कथा

अरुण-पलाश बाजीराव पेशवा :

सोनजुही - कलिका मस्तानी

निशिगंधा-सी महकती ऐतिहासिक प्रेम-कहानी

[दिसंबर-८२ के अंक से आगे का अंश]

तो तुम हो मस्तानी बाई ? कितनी सुंदर ! कितनी कोमल . . . ओह !
र, हम बताने आये हैं कि बहुत व्यस्त
गये आकर, तुमसे मिल नहीं सके ।
हुत थक गये हैं । आओ, बैठो . . .
गंगा के शीतल जल में बहते पूजा के
पुष्प सी मस्तानी बाजीराव के पांवों
पास गलीचे पर साक्षात् प्रार्थना-सी
हो उठी । तहजीब, लालित्य, अंग-
गिमाएं, अनूठी शृंगारिक सज्जा और
छिों की बारीक मुस्कान पर रची अंतर
मिठास . . . पेशवा का हठीला मन
र ठगा गया ।

'मन-मस्तिष्क दोनों बेहद थक गये हैं ।
कौन राय सुनाओगी ?' मन-मितवा का
हला आदेश । मधुर-कंठी कोकिला
माय्य-सिंदूरी हो उठी । उसके शरवती
धरों पर बागेश्वरी राग झूम उठा ।
ने की वीणा पर मुरकियों की सुंदर मीढ़ें

मोड़ लेने लगीं । रागिनी की रिमझिम में
पेशवा आकंठ भीगकर मुग्ध हो उठा ।
दीवार पर अंकित भित्तिचित्र-सा हो
गया था वह । संगीत की बारीकी में कमल-
वन-सुगंध तैर गयी । वह मुग्ध-नशीली-
बेसुध नज़र एक बार और उन रक्तिम
लरजती कोंपलों से ओंठों पर डालकर
चुपचाप उठा । द्वार की ओर बढ़ा । फिर
लौटा । 'नृत्य नहीं दिखाओगी मस्तानी ?'
. . . कामदेव के पचरंगी पुष्प-धन्वा सी
कमनीय देह लहरा उठी । आज ही तो
मनमीत को नृत्य की सुरम्य कला का मधु-
वन अर्पित करना है ! अब तक की अन-
वरत साधना, गुरु से ली गयी शिक्षा, मां
द्वारा सीखा गया नृत्य-ज्ञान का निचोड़
रोम-रोम से आराधना बनकर छनछना
उठा । फर्श-दीवारें, जड़ाऊ छत, महाराबों
सभी में लोल-लवंग भंवर उमड़ने लगे ।
संदली एड़ियों पर झूलते-इठलाते धुंध-

रुओं से देह्यष्टि की अपरूप किन्नरी
हजार-हजार बिंबों में रूपायित हो उठी ।
न समय का होश रहा, न अपने वजूद का ।
हिमानी पेशानी पर मोतिया आवशार चू
पड़े । हवा में कांपते जल-हिलोरों से आंचल
के गदराये संकेत थरथरा उठे । अलकों
के घुमाव बुंदों की लटकन-घुंडियों से
उलझ गये । तन का एक-एक आभूषण
हीरे-पन्ने-पुखराज की रंगीन आभाओं के
साथ उत्ताल-तरंगित नृत्य कर उठा ।
श्वेतहंसिनी से पांव खूबसूरत कालीन पर
फिरकी हो उठे । झाड़-फानूस, रेशमी
चुन्नटी पर्दे, गंध-शलाकाएं और झिल्ली-
झिल्ली सलमा-सितारे जड़ा दुपट्टा ऊदी
घंटाओं-सा पेशवा के चारों ओर लहरा
गया । नृत्य धीमा होता हुआ फिर कोनिश
में झुक गया । कलकल-छमछम झरना
सांसों के उफान में बदल गया । वेशकीमती
नवरत्न हार मस्तानी की झुकी गर्दन में
आ गिरा । पलकों से झांकती नेत्र-मीना-
क्षियां अनुरागी झील में डुबकी मार गयीं ।

‘मस्तानी ! तुम जितनी रूपवती हो,
उतनी ही गजब की संगीत और नृत्य कला
में प्रवीण हो । जानती हो, हमारी सारी
थकान, उलझनें और दिमागी बेचैनी पर
कैसा कपूरी आलेप तुमने किया है ? छत्र-
साल ने सचमुच हमें एक नायाब भेंट दी
है . . . तुम तो लासानी हो, मस्तानी . . .’

शहंद की बूंदें हौले से टपकीं—‘बहुत
खुश, बहुत शुक्रगुजार हूं, हुजूर ! आपकी
नज़रों में मेरा गायन-नृत्य सरसब्ज हुआ,

इनाम पाया । आज के दिन खिदमत
का मौका कामयाब हुआ, मालिक

‘इतने खुश हैं हम कि ये इनाम
कम लग रहा है—कुछ और देने
स्वर्ग की अप्सरा के लिए यह
कुछ भी तो नहीं . . .’

‘एक नाचीज़ इल्तजा है . . .
‘बोलो . . .’

मस्तानी के ओंठों ने हर शब्द
तोल कर बोला, जैसे खुदा की दार
इबादत की पाक इबारत हो—

‘जब भी मेरे आका थकें, माया
सियासती पेचीदगियों से परेशान हो
तब मेरे हुनर को पेश करने की इ
हुजूर के कदमों में मिले । एक वा
रोज़ आपके कदम इस तरफ जल
आयें . . . मेरे घुंघरू सिर्फ आपके
बंधें . . . हरेक मुहिम पर आपके
मेरा वजूद रहे । एक लम्हा भी हु
दीदार जुदा न हो . . .’

‘क्या कह रही हो, मस्तानी !
क्या हो सकेगा, यह हम देखेंगे . . .
हमें किस स्वर्ग का द्वार दिखाने की
की है, मस्तानी ?’

‘मेरे आका ! यह एक नन्हीं-मी
है । मक़सद सिर्फ आपके हर क
साथ कदमबोसी का है . . . मैंSS
‘अच्छा, तुम अब आराम क
फिर आयेंगे . . .’

मस्तानी ने फिर कोनिश की
की नमी के पीछे छलछलाते

हृदय की नेह-निष्ठा प्रतिबिम्बित हो उठी। पेशवा के पांव पलभर को ठिठके। कुछ अक्षर निकलते-निकलते ओंठों की हैरान करों में अटककर रह गये। मस्तानी बाई की आवाज में लरजती करुणा ने, नेह-पगे नेत्रों ने, आत्मीयता जगाते आकुल आग्रह ने पेशवा के भीतर एक मीठी-सी वैचैनी व्याप्त कर दी . . .

इसके बाद ये मुलाकातें अंतराल, बंधन, विमाएं और औपचारिकताएं लांघती-लांघती इतनी निकट, इतनी अंतरंग हो गईं कि बाजीराव-मस्तानी दो तन, एक आत्मा हो उठे . . .

‘तुम केवल हमारे लिए गाओगी, सिर्फ मैं ही तुम्हारी नृत्य-कला को देखेंगे. . . . एक पल भी तुमसे दूर पेशवा नहीं रह सकता। यह जन्म-जन्मान्तर का रिश्ता है, मस्तानी . . . ! कोई हमसे तुम्हें अलग नहीं कर सकता। तुम सर्वस्व हो। तुम बाजीराव की मस्तानी हो . . .’

‘आप मेरे मुकद्दर हैं, आका। आपके आँसू की बूंद-बूंद पर मस्तानी के खून का जर्ज़र-जर्ज़र कुर्बान है . . . आगे भी होगा, आलीजा . . . मेरी सांसों का तार-कतरा आपकी मुहब्बत में सुखरू . . . हज़ूर का रहम, दिल छू लेने वाली दिलकश नज़र ही मेरी बाकी जिंदगी का बहिश्त है, मेरे मालिक . . .’

हर मिलन पर यही कौल-करार, स्नेह-आदान-प्रदान, दोनों ही अपनी दिली-निष्ठा में सिमटकर बाहर से बेखबर हो

गये . . .

०००

मस्तानी बाई के रतने चांद छूने लगे। उसका अलग उच्चकोटि का, लकड़ी की उत्कृष्ट कुराई का महल। पूरा लवाजमा-रक्षक-पहरेदार, दास-दासियों की कतारें, हिंदू-मुस्लिम पोशाकों के लकदक विभिन्न डिजायन, अमूल्य आभूषणों का अंवार।

उसके इशारों पर पेशवा की दिनचर्या होती-लड़ाई में, सलाह-मशविरे में, शिकार के समय, सैरगाह में, आमोद-प्रमोद में, बीमारी और ज़ख्मी हालत में . . . हर जगह, प्रत्येक क्षेत्र में मस्तानी ही मस्तानी दिखाई पड़ती थी। एक औरत का भरपूर प्यार, प्रिय के लिए हर क्षण समर्पण की भावना, अटूट निष्ठा-विश्वास, अनवरत आत्मिक-सेवा उसने पेशवा को दी। पेशवा हैरान था। उसके असीमित त्याग-स्नेह और विनम्रता के समक्ष . . . उसकी पैनी दृष्टि, दूरदर्शिता, कुशाग्रबुद्धि, विकट परिस्थितियों में साहस की क्षमता . . . भयरहित सत्य पर आधारित व्यवहार . . . जुझारू ताकत . . . सबको देख-परख कर पेशवा उस पर बेतरह मुग्ध था। उसका प्रशंसक, प्रहरी, रक्षक और स्नेही मित्र था। उसके हवा की सारंगी पर तैरते सुरंगी स्वर, अनार के फूल जैसे अधरों से झरती संगीत की पारिजात-गंध, सलमे-सितारे, पुखराज-मोतियों में जड़ी उसकी संगमरमरी देह का अवर्णनीय सौन्दर्य, बेला-जूही से गंधायित नृत्य-

चूमर, कहेआदम शीशों में लहराता कया-
मती नृत्य, नाजुक पैरों का त्वरित संचालन,
फूलों लदी टहनी-सी झुकती-मुड़ती देह-
लता-इन सभी मुग्धकारी मधुवनी मौसमों
में पेशवा बीरा उठा, ललित अंगड़ाइयों
के मेहराबों में खो गया ।

०००

मस्तानी के हाथों में उसकी जिंदगी के
सारे अधिकार-फैसले आ गये । अंगूर की
बेल की तरह पेशवा-गद्दी पर बह छा गयी ।
दरबारी, मराठा राजा, विशिष्ट अधि-
कारी सभी के नथुने क्रोध,
अपमान, विवशता से
फुंकार उठे । पेशवा का
जानाना रंगमहल आंसुओं
की लड़ियों में डूब गया ।
हंसी-खुशी के दीप-कंदील
बुझ गये । पेशवा को सम-
झाते-समझाते पत्नी और
आत्मीयजन थक गये, आशा
के सरोवर सूख कर पपड़ा गये . . .

पेशवा की माता राधाबाई, पत्नी काशी-
बाई, छोटी-छोटी, प्यारी-प्यारी बातें
करने वाला बेटा नानाजी, सभी उदासी-
नता के गहन अंधकार में घिर गये । इतने
लंबे युद्ध से लौटने की, मुगल-बंगश से
जीतने, बंदेलखंड में अपनी जागीर-जमीन
जमाने की खुशी में जो स्वागत, रौनक,
गीत-बधावे और प्रसन्नता की हार्दिक
उछालें पैदा हुई थीं, पूना के आकाश पर
जो चंद्र-ज्योत्सना उमंग की छिटकी थी,

वह सब कुछ अमावसी अंधकार में
गया । सब परेशान, दुखी कि मस्तानी
खूबसूरती के मायाजाल से पेशवा
कैसे आजाद कराया जाये . . . ? तभी
मर जाये और लाठी भी न टूटे ।

उधर दोनों की आंखें दिवास्वप्न
जलयान में तैरती-हिलोती रही ।
गुलाब की क्यारियां उसके पद-संचालन
खिल उठतीं । पेशवा सफेद बेला-चने-
गजरे उसकी नागिन-बेणी में लगे
छिड़कते रहते । गजरे की कलियां



रस-परागभरे संपुट मस्तानी
की सांसों की गन्धें
चटाखते-खिलते रहते ।
में क्या कानाफूसी चल रही
है ? काशीबाई के मन में
कौन-सी पीड़ा जड़ रही है ?
बनी प्राण चाट रही है ?
दर्दिली टीस . . . दरबार
साहू की भृकुटियों का

उन दोनों के ख्वाबगाह में प्रवेश नहीं
सकता था । पेशवा कभी भूले-भटके
रंगमहल में आ भी जाता तो हंसे-
खुनकियां और संगीत की मदिर मुहों से
उसके कानों में गूंजने लगतीं । वह पेशवा की
खोकर फिर मस्तानी के महल की
दौड़ पड़ता । काशीबाई का गजरा
कर झर जाता । जूड़ा खुलकर
प्रकोष्ठ में हाहाकार कर उठता ।
मस्तानी के किशमिशी आगोश
जाता । उसके स्कंधों पर उसके तन

नवनीत

१२८

प्राधावाई का बुढ़ापा दहक रहा था । पर किसीकी मजाल थी कि बाजीराव के सिर पर चढ़े जादू का रंग तनिक-सा फीका भी कोई कर सके . . . ! चिमनाजी बेहद परेशान । क्योंकि उन्हें आभास मिल गया था कि पेशवा ऐसी कोशिश में था कि मस्तानी के बेटे शमशेर बहादुर को नानासाहब के बराबर अधिकार दिये जा सकें । भीतर ही भीतर यह संदेह गर्म चर्चा का आकार ले रहा था ।

इन सभी अमलतासी सोच-चिन्ताओं के ऊपर मस्तानी बाई पेशवा के प्यार में भोगी लिपटी सदाबहार फूलों-सी गम-गमाती नाजुक शाखा-सी मन की खुशियों के हिंडोले पर झूल रही थी । दीवानगों की मदद तक पेशवा की वह इकलौती चाहत थी । मैदानेजंग से लेकर फूल-शैया तक उसकी निगाहें अपने मितवा को अपन अपनों में गूँथे रहती थीं । अपनी हिफाजत के लिए अपने लिए खतरों से एकदम बेखबर होकर सांसों के इकतारों पर बस पेशवा का नाम तरंगित रहता था । जाने कितने अमानक खतरों से, मृत्यु के विकराल जों से अपने प्राणों पर खेलकर उसने पेशवा की रक्षा की थी कई अवसरों पर . . .

०००

एक दिन जी-तोड़ कोशिशों के बाद बाई चिमनाजी पेशवा को घेरकर मां प्राधावाई के कक्ष में ले आया । लंबे अर्से के बाद इतने नज़दीक पुत्र को पाकर मां की आँखें सावन-भादों हो उठीं । हिच-

कियों के बीच शिकायतें और मां कां वरिष्ठ अधिकार झरने लगा । 'बेटा ! मां हूँ, इसलिये आज तुझसे कुछ मांगने का न्याय चाहती हूँ . . . ' बीच में ही पेशवा ने मां के चरण छू लिये, 'पाप मत लगाओ, मां । बोलो, सिर भी हाज़िर है ...'

'बस, कलेजा ठंडा हुआ कि तुमने अपने मीठे व्यवहार नहीं त्यागे हैं । पुत्र, तू मस्तानी का त्याग कर दे । देख, मेरा हरा-भरा घर मुरझा रहा है । पूछ चिमना से, लोग क्या-क्या कहते हैं ? देख जाकर काशीबाई को । उसकी दशा देखकर क्या पहचान पायेगा उसे ? नानासाहब के मन में कितना बवंडर छा रहा है, उस बच्चे की चिन्ता कर, बेटा ...'

पेशवा की निगाहें खामोश होकर ज़मीन में झुक गयीं . . . चिमनाजी ने विनम्र पीड़ा से कहा—'भैया ! गली-गली चर्चा है कि दूध-अमृत से श्वेत चरित्र पर कैसा काला धब्बा आपने लगा लिया है । सुना है आप शमशेर बहादुर को नाना के बराबर ही अधिकार देने जा रहे हैं । आकर तनिक भाभी की हालत तो देखिये ...'

पेशवा के चेहरे पर काले बादल घुमड़ आये । मां और भाई के साथ चलकर उसने छपरखट पर पत्नी का कंकाल-कलेवर फैला देखा । कहां गया गुलाबी रंग ? बंकिम-खुमानी आँखें ? तेज़ बुखार में जलती बेजान देह, विरह-उदासी में झुलसे रसरिक्त ओंठ . . . पेशवा की भाँहें चिन्ता-ग्लानि से जुड़ गयीं । वह पत्थर

की तरह जड़-खामोश होकर रह गया ।
 'देख ले, पुत्र ! मस्तानी की नागिन-सी
 फुंकारती विपैली सांसों से यह चिराग अब
 बुझने ही वाला है । मस्तानी ने तुझे जीत-
 कर हम सभी को पराजित कर दिया है ।
 हम सब सुख के अतल भंडारों को भोग
 कर भी दुख के नारकीय जबड़ों में पिस
 रहे हैं । व्यंग्य-अपमान की खिल्लियां हमें
 चारों ओर शूल-सी दागती रहती हैं...'
 पेशवा मां के चरण छूकर और भाई के
 कंधे थपथपाकर उसी हाहाकारी खामोशी
 से वहां से चल दिया ।

भयंकर बेचैनी, तूफान और कशम-
 कश की खौलती तेज गर्मी से पेशवा का
 मस्तिष्क विक्षिप्त-सा हो उठा । एक ओर
 कटु सत्य — बेटे नाना के मन में पनपती
 घृणा, भाई के मन की व्याकुलता, पत्नी
 की बेकसूर अंतहीन वेदना, मां की झुर्रियों
 में पिघलता-सिसकता दर्द । इतनी दुर्दम्य
 शक्ति-प्रसिद्धि के बाद भी समाज में
 उसकी बदनामी, कड़वी आलोचनाएं, और
 दूसरी ओर निर्मल, बेदाग, विश्वास भरा,
 अपरिमित मस्तानी का प्रेम, त्याग । किसे
 त्यागे, किसे अपनाये ? कैसे छोड़ दे सहचरी,
 स्वाभिमानी और नेह-पगी सौंदर्यशील
 मस्तानी को ? क्या अपराध है उसका ?
 क्या करे ? शबनमी मुस्कान पर कैसे
 उदासी जमा दे ?

यह तो पेशवा जानता ही था कि हठ
 और शक्ति का सार्वभौमिक दबाव भी
 कब तक उन दोनों को मान्यता दे पायेगा ?

उसकी प्रसिद्धि का आलम ऊपरी जान
 भले ही उढ़ाता रहे, लेकिन आंतरिक
 और स्वीकृति की संतुष्ट स्थिति का
 देगा । हथेली में बंद दुर्लभ रत्न की
 जत कैसे जीवन भर करेगा ? फिर
 शमशेर बहादुर ? उसका दोष ?
 की चिढ़ाती-हंसती आंखें देखकर वह
 अपने पिता को क्षमा करेगा ?

सिर में भूचाल मच उठा था ।
 रहकर वह कैसे प्रिया से विना
 सकेगा ? वेणी की खुली अलकों में
 कर जब कर्णफूल गिरेंगे । भोर की
 आभा से संदली अधरों पर जब
 पुकार 'पेशवा-पेशवा' की मचलेगी
 क्या उस आकुल गुहार को वह
 कर पायेगी ? फिर ? मस्तानी के
 वाजी के जीवन का अर्थ क्या रहे
 लगता है कि मृत्यु के पृष्ठ पर ही
 के सदस्यों के लिए अब कोई निर्णय
 होगा . . .

दूसरे दिन एकदम सूर्योदय हो
 चिमनाजी को पेशवा का गुप्त
 मिला—'सुनो, चिमना ! हृदय में
 जल रही है । पूना से दूर कुछ
 लिए पटस जा रहा हूं । वहां अकेला
 चाहूंगा । न कोई पत्र-संदेश, न कोई
 मिलने के लिए वहां आये । जब
 थाह पालेगा, स्वयं लौट आऊंगा
 तब तक हर तरफ निगाह रखकर
 करना . . .'

ईर्ष्या-पीड़ा और चिंता एकदम

होकर नये पड़्यंत्र की बुनावट में व्यस्त हो गयीं। चिमनाजी, नानासाहब, राधा-बाई, विश्वस्त आया रुक्मणीबाई—सभी चौकन्ने हो उठे। काशीबाई को आशापूर्ण सांत्वना दी गयी। सभी के सिर जुड़कर विचार-परामर्श में लीन हो गये। चुपचाप तय हुआ कि मस्तानी को उसी के महल में कैद कर देना चाहिये। कोई दास-दासी, पहरदार-सैनिक, हाकिम-हुक्काम उसके पास नहीं जाने देना है। तुरन्त दासियों को बाहर कर दिया जाये। बाजीराव के विषय में कोई समाचार उसे नहीं मिलना चाहिये। सलाह पर सभी ने स्वीकृति की पक्की मुहर लगा दी। आनन-फानन में कोई न कोई बहाना बना-बनाकर सभी मस्तानी के महल से बाहर हो गये। चिमनाजी के अपने सिखाये-पढ़ाये साथी, विश्वस्त सैनिक महल के आसपास छा गये। फाटक, दरवाजे सभी पर सख्त पहरा लग गया। चिड़िया भी पर नहीं फड़फड़ा सकती थी अब वहां पर...

मस्तानी अपने शयनकक्ष में पुत्र के साथ हर्षित थी। इस भयावहता का अहसास तब हुआ, जब प्रियतम से मिलने के लिए स्नान-शृंगार के लिए दासियों को उसने पुकारा। पुत्र की धाय और नौकरों को आवाजें दीं। स्वयं उठकर देखा—पूरे विशाल महल में मौत का सा सनाटा फैला हुआ था। बाहर भारी कदमों की आवाजें—शार-मेहराव-दरीचियां सभी मजबूती से बंद। ये कैसी दिल्लगी है? कहां

गये सभी? वह अभिशापित कित्तरी-सी दीवारों को पीटने लगी। बाजीराव अब तक आ जाते थे, कहां हैं? एक अचीह्ता-सा भय उसके शरीर को हिमखंड बना गया। बच्चा भूखा-प्यासा विचलित हो उठा था। नहीं, नहीं, बाजी जरूर आयेंगे। किसी दुश्मन ने ऐसा दुस्साहस किया है। कितनी बड़ी सजा उसे इस अशोभनीय कृत्य की मिलेगी। आयें तो सरकार। किसी तरह गलती से जो दासी भीतर बंद रह गयी थी, उसे प्रकोष्ठ की पिछवाड़ी गोख से पेशवा की खबर लाने भेजा, लेकिन वह लौटकर नहीं आयी।

एक वृद्धा दासी, जो मस्तानी को हृदय से चाहती थी, उसकी आत्मा इस जुलम के प्रति कराह उठी। वह पहरदारों की नजर बचाकर किसी तरह भीतर आयी। देखा कि पत्थर की शिला बनी मस्तानी छतों को घूर रही थी। उलझे केश, आंमुओं से लिपा चेहरा, अस्त-व्यस्त पोशाक। एक दिन में ही ऐसा लग रहा था जैसे खंडहर में गुंजती वह कोई प्रेत-हवा है!... उस दासी का जी हाहाकार कर उठा!

रात की कालिमा उतर आयी। मुगंधियों, मशालों, पुष्पों और पेशवा की हंसी की मोतिया लड़ियों से जो महल गुलजार रहता था, वह आज इस कालिमा में पुतकर भांय-भांय कर रहा था। मस्तानी की आंखों में आज मनुहारें लादे स्नेह की कश्तियां नहीं, बल्कि भविष्य के काले खतरों की तस्वीरें तैर रही थीं। बाजी

को क्या हुआ ? चिमनाजी, काशीबाई और राधाबाई जीत गयीं क्या ? जाने कब थके-टूटे मस्तिष्क पर नींद की बेहोशी छा गयी । दूसरा दिन भी उसी उदासीनता में डूबा मिला । दासी ने शमशेर संभाल लिया था । मस्तानी उन्हीं कपड़ों में भूखी-प्यासी बंद दरवाजों, जालियों-झरोखों के आसपास विह्वल-पागल बनी घूमती रही । खुली नागिनी लटें उसके नंगे आतुर पांवों पर सिर पटकती रहीं . . .

बूढ़ी दासी ताराबाई ने किसी तरह दिल दहला देनेवाली सूचना उसे लाकर दे दी कि—‘मस्तानी बेटी ! अब तुम हमेशा यहां बंदी बनकर रहोगी । पेशवा कभी इधर नहीं आयेंगे । बाहर मुकम्मिल कठोर पहरा है । तुम कैदी हो . . .’ सुन कर वह मूर्च्छित हो गयी । चार दिन बीत गये । छोटी-सी खिड़की की राह एक घड़ा पानी और मां-बेटे को अति साधारण भोजन खिसका दिया जाता था और फिर खिड़की के पल्ले बंद कर दिये जाते थे ।

मस्तानी जल या भोजन को छूना तो क्या, देखती भी नहीं थी । शमशेर की ओर नज़र भी न उठती । रह-रहकर पागलपन के दौरे उठते । बाल नोंचती । चीखने लगती—‘मेरे पेशवा ! आलीजाह ! देखो अपनी मस्तानी को । मेरा क्या कसूर रहा ! मैंने तो कुछ मांगा-चाहा नहीं । मैंने शादी का ख्वाब कहां देखा था ! विवाह, इज्जत, पुत्र और बेइंतहा मुहब्बत आपने दी । प्यार की राहों को रोशन किया । मैं तो

तन-मन से आपके ही कदमों पर चलती रही । बाजीराव ! अब आज्ञा अपने हाथ से कैद या मौत दीजिये । मस्तानी पेशवा के बिना जीवित नहीं रहेगी । प्रलाप-दर-प्रलाप शून्य दीवारों, छतों, टकराते रहते । ऐश्वर्य-सज्जा की सामग्रियां धूल-धूसरित हो गयीं । पर्दे उसकी चीखों से जल उठे । मंथी गुंथी झालरों वाली नेह-शैया अभागिनी अपशगुनी लगने लगी । मस्तानी नहीं जाती थी । बूढ़ी दासी के नेत्र देख-देख बरसते रहते । सहजन की ज़मीन पर पीत होकर विछ गयी नृत्य के नूपुर, संगीत के शहदीले स्वप्न हो गये । मृत्यु के निकट भूखी-प्यास मन की असहनीय वेदना से चीख मस्तानी आ पहुंची थी ।

उधर पटस के एक सुन्दर आराम भवन में पेशवा बेचैनी से करवटें बंध रहा था । मस्तानी से मिले कितने दिनों गये ! जैसे प्राण ही खींच लिये हैं किने ? ‘मौत अब तक क्यों नहीं आयी ?’ आश्चर्य है यह ! मस्तानी, तुम क्षणों नेत्रों से ओझल क्यों नहीं होती होकर भी पलकों पर छाया-सी . . . मेहराब-सी झुक रही हो . . . कब से अनिद ललित रूप संगीत की लहरों तरंगित नहीं देखा ! मुझे न पाकर क्या दशा होगी ! तुम जानती हो कि सीने में बिरह की कितनी भयंकर जल रही है ? . . .

धनरे केश घटाओं-से लहरा उठते । स्नेह-
सावन रिमझिम बरसने लगता । काशी-
वाई भी पेशवा के हृदय की बेचैनी, मुह-
ज्वत, मस्तानी से उसका प्रेम जान गयी
थी, लेकिन उस मुहागवती गर्विता, स्वाभि-
मानी नारी ने कभी कुछ नहीं कहा । पति
के लिए प्यार-प्रतीक्षा की पूजा-थाली
सजाये बैठी रही । पुत्र के कच्चे मन पर
पति की वीरता, प्रसिद्धि और वंश-गौरव
के भित्ति-चित्र उकेरती रही । अपने चेहरे
अथवा हावभाव से सास राधावाई के
सामने अपने मन की टीस की एक भी
रेखा प्रकट नहीं की ।

ऐसी बात नहीं थी कि राधावाई से
कुछ अनदका रहता । उनकी अनुभवी
वृद्ध-आंखें समय की नब्ज और घर-परि-
वार की एक-एक धड़कन पहचान रही
थीं । एक नारी के मेंहदी के रंग को और
अधिक गहरी खुशबू में रचाने के लिए
वह काशीवाई किस तरह अपने अरमानों
के लहू की बूंद-बूंद निचोड़कर खुद की
देह-लता सुखा रही है, वे खूब समझ
रही थीं । उधर पेशवा स्वयं इन दोनों
नारियों के दर्द से बेखबर नहीं था । विवेक
की झीनी चादर उसके सिर को सहला
उठती कि क्षणभर बाद ही फिर उसी
रसमरी डाली को लपेटकर वह ज्ञानशून्य
हो जाता । परंतु सियासत के कामों में
अब भी उसकी बहादुरी, शक्ति और
मेधावी बुद्धि का डंका बज रहा था ।

अचानक सभी के सामने चमत्कारी

विस्फोट हुआ कि पेशवा ने कुल-मर्यादा के
विरुद्ध मस्तानी से विवाह कर लिया है ।
कोई क्या कहे ? क्या करे ? चेतनाशून्य
हो उठे सुननेवाले । सजग होते ही आलो-
चनाओं और क्रोध के आवेग-बवंडर छा
गये । काशीवाई के नेत्रों में अपमान और
लज्जा की नागफनी उग आयी । मां और
भाई चिमनाजी विवशता से कराह उठे ।
राजदरबार में राजा के कानों में पेशवा की
शक्ति-प्रसिद्धि से जलनेवाले विरोधी शीशा
पिचलाने लगे । लेकिन पेशवा को इस
बाहरी बारूदी माहौल से जैसे कोई चिंता
नहीं थी । यह उसका नितांत अपना निजी
मामला था । सोच समझकर लिया गया
एक दुस्साहसी फैसला था । हैरान होने
वाले घुटते रहे, पड़्यंत्र रचने वाले दांत
पीसते रहे, पत्नी और मां के नेत्रों में दर्द
की काली चट्टानें जमती रहीं, भाई चिम-
नाजी के चेहरे पर झुंझलाहट की स्याह
राख छाती रही, लेकिन पेशवा अब और
भी अधिक मस्तानी वाई के राग, नृत्य
और सौंदर्य के जादू में गमगमा उठा था ।
एक पक्का इरादा करके और आने वाले
हरेक तूफान का अंदाजा लगाकर ही तो
उसने फैसला करके मस्तानी के मुस्कराते
मदमाते नेत्रों में झांक कर कहा था—
'मस्तानी ! मैं राजकाज और राजा साहू
के आदेशों-कार्यों को नजरअंदाज करके
तुम्हारे पास आता हूँ । सोचो, यह कब
तक चलेगा ? रिवाज के मुताबिक तुमसे
मैं विवाह कर नहीं सकता । तुम्हें कोई दान

दी गयी दासी अथवा दरबारी नर्तकी समझे, यह मैं कभी सहन नहीं कर सकता। तुम मेरे प्राणों की रागिनी बन गयी हो, इसलिये एक पल भी मैं अलग नहीं रह सकता। इस तरह तुम्हारे पास मिलने आने पर मेरी प्रतिष्ठा पर आंच आती है, यह भी गलत है। इसलिये मैंने दूसरी विधि से तुमसे विवाह करने का पूरा आयोजन कर लिया है। तुम तैयार हो ?'

जैसे बांसुरी की कांपती-लरजती पुकार पर संध्या केसर-कस्तूरी हो उठे, या झांझ-मादल पर लोटती-फुदकती रात और अधिक नशीली होकर भीग-भीग उठे, ऐसी ही दशा पेशवा के ये शब्द सुनकर मस्तानी की हो उठी। 'अपने आलीजाह से अलग मैंने खुद को कब माना है ? इन कदमों के अलावा मुझे कुछ दरकार नहीं है, हुजूर। इतनी बड़ी खुशी, इज्जत आप दे रहे हैं, मस्तानी की जान आप पर कुर्बान है, मेरे आका... ' और वस ऐसे ही क्षणों के निर्णय पर विश्वास और प्यार के पवित्र मंडप में आत्मा की सप्तपदी पर दो अनुरागी देहें समर्पण के पाणिग्रहण-संस्कार में गुंथ गयीं। आकाश साक्षी बना, सूर्यवेदी पर धरती ने कन्यादान किया, स्नेह-मंदिर के देवता ने आशीर्वाद दिया, मस्तानी अब वाजी की हो गयी। उसके सरल एकनिष्ठ प्यार ने वाजी जीत ली। धानी फसलों की वासमती गंध की तरह दोनों एक-दूसरे में घुल-मिल गये। शरद चांदनी विछलती झील में जैसे सुनहरी

मछलियां तैरती हुई चंचलता विना विधायक व
ऐसे ही पेशवा की गर्मवाहों में वह पिछा आया
कर खुशबू-खुशबू हो उठी। शहसूरी अपनी न
रेशों-सा समय फिसलता रहा। पेशवा की वा
मुहब्बत भरे गुनगुने स्पर्शों ने मस्तानी के रूप-राशि
आत्मा को नया आलोक दिया। उसने जिका
अमूल्य नारी-रत्न एक अवूझी कानि खुद के
दमक उठा। वह गर्भवती हो गयी। तो मुहिम
के हृदय किसी अनकहे अर्वाचीन उसका
के संवेगों में धड़कने लगे। अजीब आनंद कितनी
एक विचित्र जिज्ञासा। सभी ने सुना कि कूदती
सदैव की तरह सभी के कलेजे दुख, ईर्ष्या
जलन और विवशता से छटपटा उठे। दोनों के

वाजीराव को फुसंत कहाँ थी ? इबाई ने
सब जहरीली फूटकारों से लापरवाह और पेश
मस्तानी को लेकर मालवा चला गया। पुत्र को
वहाँ मुहम्मद खां गवर्नर-मुकर्रर था। मस्तानी
मराठों के खिलाफ ज़बर्दस्त मुहिम तैयार
कर रहा था। वाजीराव ने वहाँ जा
ही उसे अपने मज़बूत घरे में फंसा लिया।
मुहम्मद खां ने घबराकर राजा को
से सुलह की शर्तें रखनी चाहिए। राजा
पेशवा से सलाह की। पेशवा ने मतमा
शर्तें मानने पर मुहम्मद खां को मजबूर
किया और दिल्ली में उसने अपनी शांति
का ऐसा जलवा दिखाया कि मुहम्मद
को हटाकर मालवे का गवर्नर सर्वाई
सिंह को बनाया गया। इन सारी क
समस्याओं को सुलझाने के बाद उस
ध्यान फिर मस्तानी पर केंद्रित हो उठा
उसे अब स्थायी रूप से सुविधाओं में

विश्राम की जरूरत थी। वह उसे पूना फिर
आया। क्षणभर को भी वह पेशवा को
अपनी नजरों से ओझल नहीं होने देती
थी। बाजीराव उसके सिरहाने बैठा उस
रूप-रशि को देखता-सोचता रहता। उसे
उसके शिकार अभियान, अपने अस्वस्थ दिन,
कानि युद्ध के मैदान याद आते, जहां प्रत्येक
कोशिश पर मस्तानी शीतल छाया बनी
थी। उसका हाथ बंटाती रहती थी। जाने
कितनी लड़ाइयों में ढाल-तलवार लेकर
मर चुकी होती रही थी।

आखिर वह शुभ घड़ी आयी, जो
उसके सपनों के लिए प्रतीक्षित थी। मस्तानी-
बाई ने एक पुत्र को जन्म दिया। अपने
पेशवा और पेशवा के मिश्रित रूप को, इतने सुन्दर
पुत्र को पाकर वह उल्लास से भर उठा।
मस्तानी मातृत्व गरिमा से भर उठी।
काशीबाई के महल में विषादभरा सन्नाटा
छा गया। राधाबाई के कानों में जाने किस
धतुरे की घंटियां बजने लगीं। एक ऐसी
खेड़ों आग-सी लहक उठी थी, जो अदृश्य
रहकर भी भूने जा रही थी। काशीबाई
अपने बेटे नानासाहब को सीने से लिपटाकर
भीतर ही भीतर आंसुओं के धारे पी रही
थी। उसके दिल में भयानक बर्फीले शिला-
खंड जम गये और सांसों में असंख्य ज्वाला-
सूखी। बालक होते हुए भी नानासाहब
सारे अहसासों की पहचान करने लगा
था। इसीलिये पिता पेशवा से दूर-दूर रह
कर अपने चाचा चिमनाजी के पास सदैव
बैठा रहता था। चाचा स्वयं इस धीमी-

धीमी आंच में सुलगता रहता था। पेशवा
को मस्तानी की बांहों से खींच लाने की
हजार तरकीबें दरबार से लेकर अंतःपुर
तक तलाशी जाती रहती थीं, परंतु कोई
रास्ता नहीं मिल रहा था। प्रयास जारी
थे, अवसर का इंतजार था। मस्तानी को
क्या होश था कि इन मखमली कालीनों के
नीचे भयानक शोले सुलग रहे हैं, जो कभी
भी धधककर उसे राख बनाने के लिए
लपक उठेंगे...

पेशवा और मस्तानी का बेटा शमशेर
बहादुर बड़ा हो रहा था। मां की सुंदरता,
सुगंध और खिली-चमकीली दृष्टि तथा
पिता जैसा मजबूत जिस्म, बहादुरी और
स्नेह-करुणा-साहस भरा दिल उसने पाया
था। बड़ा हसीन-दिलेर बेटा, पेशवा
की आंखों का सितारा था। वह जैसे ही
वर्ष-दो वर्ष का हुआ कि उसकी मां की
तरह उसे भी एक बहुत बड़ी जागीर दी
गयी। उधर उसका बड़ा बेटा नाना भी
कदावर नौजवान हो उठा था, जो चाचा
के साथ सारी सियासी बातें सीख रहा था।
तभी पेशवा के मन में दिल्ली पर आक्रमण
करने का खयाल पैदा हुआ। गुजरात और
राजपूताना होकर जाना कठिन था, वह
मालवा और बुंदेलखंड होकर जाना चाहता
था। वह शाही इलाकों में धावा मारने
लगा। जहां जाता, वहां मैदान साफ करके
अकूत धन ले जाता। इस तरह चारों
ओर उसकी कमान में रह रहे मराठे छा
गये। मस्तानी हर कदम पर उसके साथ

हिंदी डाइजैस्ट

रहती थी। कहीं से वह चौथ वसूलता, कहीं से भेंट लेता, कहीं से जागीरें। पचास लाख की रकम शाही खजाने से भी तलब की। नगद राशि न मिलने पर वह सर-सब्ज इलाके ले लेता। साथ ही कितने ही युद्धों में भी उसे संलग्न रहना पड़ता। उसके दिल में दिल्ली से शाही शासन को नेस्तनाबूद करने का संकल्प हर घड़ी मजबूती से जमा रहता। इसीलिये दूसरी बार मल्हार राव के साथ दस दिन के सफर को वह केवल दो दिनों में पूरा करके उधर दौड़ पड़ा। एक सज्जित शानदार घोड़े पर मस्तानी उसके साथ-साथ दौड़ रही थी। नगर में रामनवमी का त्योहार और मां भवानी की पूजा का आयोजन चल रहा था। मरहटे लोगों की भीड़ पर टूट पड़े। मनमाना उन्हें लूटा। इनके आगमन की सूचना जंगली आग-सी फैल गयी, चेहरों के रंग उड़ गये, भगदड़ मच उठी, गद्दी पर बैठा मुहम्मद शाह पागल हो उठा। जमुना की ओर की सुरंगों, खिड़कियों पर नावें-पहरे-पालकियां तैनात करा दीं कि खतरा आने पर भागा जा सके। अपने सेनापति अमीर खां को पेशवा के मुकाबले में भेजा। बाजी-राव ने उस पर भयानक हमला किया। मस्तानी भी तलवार की धार पर दुश्मनों के छक्के छुड़ा रही थी। उसे हराकर सेना को मारकाट कर सोने-मखमल की नक्काशी से जड़े हाथी-घोड़े हथियार उसके हाथ लगे। हरेक आक्रमण में मस्तानी

नवनीत

फूल-छत्री बनी पेशवा की शक्ति तसल्ली, स्नेह और प्रेरणा देकर उसे में नहाये कमल-सा ताजा रखती। तोपखाने के आग उगलते गोले, तलवारें उसे पेशवा के प्रेम के समक्ष लगते थे। उसे अपनी जान का खतरा था। मौत-जिदगी, केवल उसकी नज़र पेशवा के लिए न्यौछावर थी। की शक्ति, उसकी शानो-शौकत का आसमान तक बुलंद हो गया था।

मस्तानी के रूप-प्यार ने ही उसके त्याग ने भी पेशवा को खरीत था। इतने सुख-आराम-ऐश्वर्य-भोग की परवाह न करके जो नवनीत पल्लवों-सी कोमलांगी धूप, गर्मी, वर्षा, भूख-प्यास सहकर जंगल-युद्धक्षेत्रों में उसके साथ पगलाई थी, उस मस्तानी के लिए पेशवा प्राण से प्रशंसक था, मुग्ध प्रेमी था। रांग इन सब कसौटियों पर दिन दूना रांग लिये उसे आपादकंठ रंगे रहता। मस्तानी के अधिकार, हतबे, धन से भरे खजाने असीम हो उठे थे। ही चर्मोत्कर्ष पर पहुंच रही थी पेशवा मुहब्बत। वह और भी अधिक चुभने कांटा बन गयी थी हर नज़र के काशीबाई अपने गम में डूबकर सूख नाना और जवान होकर हर वारीकी समझने लगा था। मस्तानी सख्त नफरत होने के कारण उसने के साथ लड़ाइयों में जाना छोड़ दिया।

थका
आपका स्वास्थ्य :

अम्ल पित्त और उसका उपचार

वैद्य पं. सुरेश चतुर्वेदी

यह एक उदर संबंधी बीमारी है। जो व्यक्ति हमेशा विरोधी आहार, जैसे दूध और मछली, दूषित आहार एवं खट्टे पदार्थों का अधिक सेवन करते हैं, तथा धामाण्य में दाह पैदा करनेवाले, पित्त प्रकुपित करनेवाले आहार का सेवन करते हैं, उन्हें प्रायः यह रोग हो जाता है। अत्यधिक मद्यपान करनेवालों को भी यह रोग हो जाता है।

इस रोग में भोजन ठीक प्रकार से नहीं पचता, खट्टी व कड़वी डकारें, उबकाइयां आती हैं तथा शरीर में थकावट व भारीपन मालूम पड़ता है। गले व छाती में जलन होती है। भोजन में अरुचि पैदा हो जाती है।

जब यह रोग अधिक बढ़ जाता है तब

मुंह से खट्टा पानी आना या उल्टी होना प्रारंभ हो जाता है। इस रोग की उग्रावस्था में सिर में दर्द, जी मिचलाना, ठंडे पदार्थ खाने की इच्छा, चक्कर आना और बेचैनी प्रायः रहती है।

इस रोग में पथ्यापथ्य की ओर विशेष ध्यान रखना चाहिए। दूध, मलाई, घी, गन्ना हितकर रहते हैं। हरे धनिये का सेवन विशेष रूप से करना चाहिए। नारियल का पानी, फलों में मौसंबी, अंगूर हितकर हैं। शाकों में मूली, परवल, घी या तोरई आदि हल्के शाक लाभदायक हैं।

साधारण अवस्था में नींबू को काटकर गरम करके काली मिर्च मिलाकर चूसें। भोजन के बाद अविपत्तीकर चूर्ण दो ग्राम की मात्रा से सेवन करने से लाभ होता है।



हीरे-मोती

वात स्वीडन की है। यहां की राजकुमारी यूजीन अपनी दयालुता के लिए बहुत प्रसिद्ध थीं। जब उन्हें अपने पैतृक संपत्ति में डेर सारे हीरे-मोती के जेवरात और रुपये प्राप्त हुए तो अपने कई सहयोगियों और मित्रों के मना करने के बावजूद भी उन्होंने इन सबका उपयोग एक अस्पताल बनवाने में किया।

हमेशा की तरह एक दिन वे अपने कुछ सहयोगियों के साथ अस्पताल में बीमारियों को देखने गयीं। असहाय और दुखी व्यक्तियों के प्रति राजकुमारी की करुणा देखकर एक रोगी की आंखों से आंसू निकलने लगे।

यह देखते ही राजकुमारी यूजीन अपने सहयोगियों से बोलीं, 'देखो, आज मुझे हीरे-मोती, रुपये-पैसे ब्याज सहित वापस मिल गये।

—असीम चक्रवर्ती



स्व. डा. बल्देव प्रसाद मिश्र की एक अप्रकाशित कविता



एक इब्रात : दो सतरें

आपस ही में लड़-लड़ पड़ना, राह नहीं है राहत की ।
जब सब उसके ही बंदे हैं, उसने ही हमें बनाया है
दी वह जुवान जिसने हमको, उसका ही नाम मुनाया है ।
तब राम कहो कि रहीम कहो, दोनों में वही समाया है—
क्या दाख वही है नहीं, जिसे तुमने अंगूर बताया है !
शब्दों की उलझन में फंसना, यह कैसी बात लियाकत की ?
आपस में ही लड़-लड़ पड़ना, राह नहीं है राहत की ।

ओंकार पढ़ो कि पढ़ो कलमा, दोनों में उसका गाना है
पूजा कह लो, कह लो नमाज़, दोनों में एक तराना है ।
व्रत रख लो या रोज़ा रख लो, एक ही जगह तो जाना है
दो दान कि तुम दे दो जकात, दोनों का एक ठिकाना है ।
काशी कावा में जाग रही है जोत एक ही वहदत की
आपस ही में लड़-लड़ पड़ना, राह नहीं है राहत की ।

जो हिंदू देश में रहता है, हिंदू तो वही कहाता है ।
जिसमें खर पर ईमान रहे, मुस्लिम वह समझा जाता है ।
तब हर हिंदू है मुसलमान, जो प्रभु की भक्ति जगाता है
और हर मुस्लिम भी हिंदू है, जो भारत में बस जाता है ।
फिर क्या हिंदू क्या मुसलमान, दो सतरें एक इब्रात की ।
आपस ही में लड़-लड़ पड़ना, राह नहीं है राहत की ।

उंगलियां पांच हैं पंजे में, पांचों ही पांच तरह की हैं
पर क्या वे पंजे पर बैठीं आपस में कभी लड़ा की हैं ?
बेकाम हथेली वह जिसमें उंगलियां नहीं मिल पाती हैं
घूसा बनता तब जोरदार, जब वे पांचों मिल जाती हैं ।

इंसान उंगलियों से अपनी कुछ बातें सीख मुहब्बत की ।
आपस ही में लड़-लड़ पड़ना, राह नहीं है राहत की ।

है बाग एक दो फूल खिले, रंगत में हों वे जुदा-जुदा
पर इस न्यारेपन ही से तो, गुलशन का है वह रूप खिला ।
अपने न्यारेपन को लेकर लड़ पड़ते हैं, कब फूल भला ?
दो दिन की फसल-बहारी है, इंसान ! फूल-सा तो बन जा ।
न्यारेपन की रंगीनी से दूनी कर सजधज कुदरत की ।
आपस ही में लड़-लड़ पड़ना, राह नहीं है राहत की ।

—द्वारा नर्मदा प्रसाद मिश्र, मानस भवन, सिविल लाइन्स, राजनांदगाव, म. प्र.—



मजबूत नींव

स्वामी विवेकानंद उन दिनों इंग्लैण्ड की यात्रा कर रहे थे । वे इस तथ्यपूर्ण सत्य परिचित थे कि अंग्रेज उन्हें बड़ी ही हिंकारत की दृष्टि से देखते हैं और अक्सर अप-
नित करने को कोशिश में लगे रहते हैं । इसलिये वे भी अतिरिक्त सावधानी रखते थे ।

एक बार वे रविवार को लंदन के बड़े गिरजाघर में भाषण देने के लिए आमंत्रित
थे गये थे । जब वे मंच पर पहुंचे तो वहां एक पादरी ने ईसा मसीह के चित्र के नीचे
कई धर्मग्रंथों की ओर इशारा करके कहा । 'देखिये, मि. विवेकानंद ! तुम्हारी श्रीमद्-
बुद्धगीता कहां रक्खी हुई है ? उधर देखिये ।'

स्वामीजी ने उसकी अंगुली के इशारे की तरफ देखा । सबसे ऊपर बाइबिल, उसके
नीचे ग्रीक, फारसी, अरबी तथा अन्य कई धर्मग्रंथ रक्खे हुए थे । पर गीता इनमें सबसे
नीचे थी ।

तभी वह पादरी फिर चहका—'देख लिया न आपने ! गीता की जगह हमारी
बाइबिल में यह है ।'

पर स्वामीजी उसके कथन से क्रोधित नहीं हुए । हंसकर बोले, 'वेरी गुड ! वेरी
!! दिस इज गुड फाउंडेशन !' (बहुत अच्छा ! बहुत अच्छा !! नींव बहुत
बहुत है ।) पादरी बेचारा अपना मुंह-लटकाकर एक तरफ हट गया ।

—दुर्गाशंकर त्रिवेदी



(पृष्ठ ३९ का शेषांश)

मॉरिस और एलेन-रोवे-ग्रिले जैसे कथाकार लिखते समय यह मानकर चलते हैं कि जगत सचमुच सामने खड़ा है, और अब यह कथाकार का काम है कि वह उसे निष्पक्ष दृष्टि से देखे। जगत और उसकी वस्तुओं की स्थापना करना कला का नया ध्येय बन गया है।

कुछ कथाकार, जैसे लेम, बार्जस आदि प्रत्यक्ष-बोध में विश्वास करते हैं। रहस्य-प्रधान कथाओं की शैली में लिखा गया कथा-साहित्य इस श्रेणी में आता है। इस श्रेणी की कुछ कथाओं में ज्ञान की सापेक्षता को परस्पर-विरोधी वर्णनों द्वारा रेखांकित करने का प्रयास भी किया गया है। ऐसे कथाकार भी हैं, जो स्वयं अज्ञेय रहकर जगत की अज्ञेयता को दर्शाने का हास्यास्पद प्रयास करते हैं।

समकालीन कथा-साहित्य की एक थीम यह है : सारा ज्ञान अनिश्चयपूर्ण है, इसलिए जगत को नयी-नयी काल्पनिक संभावनाओं के साथ चित्रित किया जाये। फिर कुछ भी हो सकता है। इटालो काल्विनो के उपन्यास 'अदृश्य नगर' में मार्को पाँलो कुब्ला खान को उन नगरों के बारे में बताता है, जिन्हें उसने खान के क्षेत्र में देखा था। खान मार्को पाँलो से बीच-बीच में जिरह करता है, यह जानने

के लिए कि कहीं वह सब कुछ मान कर तो नहीं कह रहा है। पर, कला के क्षेत्र में कपोल-कल्पना और कल्पना का अंतर है? और क्या स्वयं कुब्ला की दुनिया कल्पित दुनिया नहीं है? मानसिक वस्तुएं और काल्पनिक वस्तुएं एक ही दर्जे की हैं, इसलिए कल्पना व्यक्ति अपने को जगत का सर्जक मानता है तो क्या हर्ज है?

आज के सर्वाधिक ख्यातनामा कथाकारों का कथा-साहित्य अधिकांशतः रोक्त थीमों पर आधारित है।

इस सदी के कथाकार और कलाकार अपनी कृतियों को एक नया और अधिक महत्त्व देना चाहेंगे। यदि कला के समान कला भी संदर्भों का समर्थन तो कला झूठी और नगण्य भी हो सकती है, लेकिन, कथाकार और कलाकारों को कहकर, अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करना कि आखिरकार विज्ञान भी तो क्षीयमान मात्र ही है; जो है, वह कला ही है। तब कथाकारों और कलाकारों को कोई दावा पेश नहीं किया है, लेकिन तब तक रूप से यह कहा जा सकता है कि ऐसा करेंगे अवश्य !

(‘स्पैन’ से प्रेरित प्रस्तुति)

सु. रामकृष्णन् द्वारा भारतीय विद्याभवन, क. मा. मुन्शी मार्ग, बंबई-४०००४ के लिए प्रकाशित तथा श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, ३६/४८ खेमराज श्रीकृष्णदास बंबई-४००००४ में मुद्रित।

यही भयंकर आग पेशवा की देह का
 खार बन गयी। गहरा तेज ज्वर, अर्द्ध-
 बेहोशी के आलम में ओठों पर एक
 नाम। कराहों के बीच मस्तानी के
 प्राणहारा पुकार। बूढ़ी दासी ने फिर
 किसी प्रकार यह खबर अर्द्ध विक्षिप्त
 मस्तानी को दी कि पेशवा जीवन और
 लु की बांहों में संघर्ष कर रहे हैं। चिम-
 गाजी, नाना साहब वहां हैं। वहां भी सख्त
 हरा है। इन दोनों की इजाजत के बिना
 पेशवा को नहीं देख सकता। पहले यह
 था कि जब तक पेशवा लाटें, तब तक
 मस्तानी को घोर हलाहल देकर समाप्त
 दिया जाये। पूछने पर सर्प-दंश का
 जाना कर दिया जायेगा। एक गद्दी हुई
 था, कि शिकार पर जाते समय घने
 जंगल में सर्प ने डस लिया। आराम से
 शानक नागिन-पाश से पेशवा खानदान
 बचाकर मान-मर्यादा की रक्षा हो
 गयी। लेकिन अब यह विचार फिलहाल
 छुड़ दिया है, क्योंकि सभी पेशवा की
 मारी से चितित होकर उनके पास
 चले गये हैं।

मस्तानी मुनकर चीत्कार कर उठी।
 बवा और शमशेर के लिए वह पंखनुची
 मोती की तरह जमीन पर बिखरकर
 सपना कर उठी। कुछ समय से उसकी गोद
 उसका पुत्र भी छीन लिया गया था।
 दासी जानती थी कि मां से बिछुड़कर
 रोते बच्चे को तेज बुखार हो गया
 लेकिन उसने यह बात छुपा ली थी।

कहां तक सहेगी आखिर यह अभागिनी
 इतनी वज्र चट्टानों की चोट को ... !
 पहले ही उसकी दशा देखी नहीं जाती
 थी-फटी-चिथड़ी वही पोशाक, उलझे
 गर्द अटे बाल, सूजे-उबले नेत्र, चीत्कारों
 की गर्मी से फटे-तपे ओंठ, भूखी-प्यासी
 पिंजर देह। नीले-काले सायों में वह वहशी
 बनी यादों की दीवानगी में सुबह से शाम
 तक पागल बनी रहती। टूटे ख्वाबों का
 सिरा कहीं नहीं था। कहां गये पेशवा के
 संग व्यतीत किये हरसिंगारी पल ... !
 कहां गया वह मेहरबान चेहरा ? चांद-
 सूरज-सी खट्टी मीठी दिल्लगियां ? रंगीन
 शीशों में झिलमिल करती युगल पर-
 छाइयां ? मेरे आका ने तो तकदीर की
 जुंविश पर बहिश्त की खुशबू छिड़की
 थी ... यह कैसा कफन उठाकर ठंडा
 कब्रिस्तान सौंप दिया ? ... यों ही
 उदास सन्नाटों में वह अपनी ही कातरता
 में धुलकर डूब जाती। दिमाग की बेहोश
 गलियों में फिर सुधियों के जुगनू टिम-
 टिमाने लगते। कभी लगता कि वह प्रिय
 के आगोश की देवदारी छाया तले नशे
 की खुमारी-सी, शेफाली की कमनीय
 छुअन-सी आनंद लहरी बनी गुनगुना रही
 है। कभी लगता कि मोटी, पथरीली हथे-
 लियों की सख्त दरारों के बीच दबकर
 उसका वजूद कुचला जा रहा है !

बूढ़ा दासी तसल्ली क्या दे ? साफ-साफ
 कह तो दिया है कि पेशवा नहीं आयेगा।
 उसे मजबूर कर दिया है तुम्हें छोड़ने पर !

बच्चा ? नहीं जानती कि वह कहां, किस प्रकार रखा जायेगा ? ...

अब मस्तानी दासी के पांव पकड़कर मित्रों में गर्क हो उठी—‘पेशवा के बिना अब मैं सब कुछ जानकर लम्हा भर भी नहीं रहूंगी यहां। तू मुझे किसी तरह पेशवा के पास ले चल। वे बीमार हैं। मुझमें प्राण अटके होंगे। उठ, हम साथ ही दुनिया से विदा होंगे। कहीं से एक घोड़े का इंतजाम कर ले। निकाल दे मुझे इस बद-नसीब महल से। हां, हां, मैं घोड़े पर बैठ सकूंगी। इतनी कमजोर कहां हूं। पेशवा बीमार हैं, मैं फिर यहां क्यों ? उनके दीदार की उम्मीद ने मुझमें ताकत भर दी है। तू मुझे कोई मोटी और मजबूत-सी रस्सी ला दे। महल की पिछली बुर्ज पर से नीचे उतर जाऊंगी। शाम को वहां थोड़ी देर के लिए पहरा कमजोर रहता है। वहां तू घोड़ा तैयार रख। मेरी यह आखिरी इत्तजा है। तुम दासी ही नहीं, मेरी मां की तरह हो। पेशवा को भी तुम पुत्रवत् प्यार करती हो। हमें किसी तरह एक बार मिला दो ... यह मेहरबानी करो तुम ...’

वृद्धा दासी का मन मोमिया हो उठा। वह अपनी बहन के लड़के से पहरेदारों की नज़र, बचाकर मिली। वह अस्तबल में घोड़ों की सेवा-निगरानी पर था। सामने ही मस्तानी का प्रिय घोड़ा बंधा हुआ था। दासी ने एकांत में ले जाकर उससे मन की बातें धीमे पोशीदा रूप में कीं। उसका

नवनीत

भांजा चौंका—‘पर मौसी, उसे देने की खबर सुनी है। तुम कहीं भी ...’ दासी और धीरे-धीरे फुसाई—‘अरे बेटा ! वह पेशवा की ही मरने वाली है ... हाड़-गुनह है ... बेचारी का कसूर क्या है ... छत्रसाल ने दी, आ गयी, पेशवा चाहा, जी-जान से कुर्बान हुई। बेटे की फिक्र है, न खुद की। मदद कर दो। वह बद-नसीब मुंह देख ले ...’

फिर सारी योजना तय हो गयी रात का अर्द्धप्रहर। गहरा सुख बुर्ज की फसील पर अच्छी तरह बांधी गयी दासी की मदद से। उसने वह बहास मालकिन मस्तानी की हथेलियां छिल गयीं ... मकबरे उधड़ गये। ज़मीन पर पांव टिके पहरेदार थोड़ी दूर पर धक्के दिये। जाने कहां की ताकत को रोशनी मिली कि वह के पीछे खड़े घोड़े तक गयी ... दासी के आदेशानुसार भांजे ने घोड़े की रस्सी उसे पकड़ ली वह उछलकर बैठते ही अंधेरे में से सेवक और वृद्धा दासी उसी अपने-अपने ठिकाने लौट गये।

भयानक जंगल ... अनजान ... पहले दो-एक बार वह पर पेशवा के साथ आयी जल्द पूरी जानकार नहीं थी। वह

घोड़ाती रही घोड़े को । कटीली झाड़ियों में उलझकर उसके हाथ-पांव लहलुहान हो गये । चिथड़े और भी तार-तार होकर बंद-लहू में सन गये । रात बीतने पर आ गयी थी । घोड़े की गति में अंतर आ रहा था । उसके हाथ-पांव मन-मन भर के हो रहे थे । धूप चढ़े वह 'पेशवा भवन' के पास पटस में पहुंची । उसकी निर्जीव-सी देह घोड़े पर झुकी थी । पर मंजिल सामने थी । तभी आंधी के वेग-सा चिमनाजी आगे आकर पहाड़ की तरह अड़ गया— 'नहीं-नहीं, रुको । तुम भीतर नहीं आ सकतीं । अभी तुरंत तुम्हें पूना लौटना होगा । दूर से भी तुम भैया को नहीं देखोगी । उन्हीं का हुक्म है । वह किसी से मिलना नहीं चाहते ... !' वह चिमनाजी के सामने रोई, गिड़गिड़ाई, धूल में लिटकर पैरों से लिपट गयी, लेकिन चिमनाजी ने एक इंच आगे भी उसे नहीं खिसकने दिया, बल्कि जबर्दस्ती घोड़े पर रिसियों से कसकर उसे वापिस पूना ले आया गया ।

आर्त विलाप करते-करते वह बेहाल हो गयी । बंधन कसी देह का दुख, धूप, धूल, लंबी राह के प्रभावों से मुक्त बेहोश ... वाजीराव को क्या पता था कि किस भयानक साजिश में मस्तानी पिंजरे में बंद होहकाफी पक्षिणी-सी तड़फड़ा रही है ? कि कैसे, किन तरकीबों से वह प्यार में सच्ची-निःस्वार्थ, एकनिष्ठ पुजारिन प्रिया तेरे दर से बेइज्जत करके ठुकरा

दी गयी है ? वह तो अपनी भीतरी आग के जलते बुखार में जल रहा था । जब भी बंद पुतलियों में एक परी-जिस्म झुककर जुही की कली-सा मुस्कराता, वह बड़बड़ा उठता मस्तानी का नाम । रात-दिन सिर-पांव सहलाते पत्नी-मां-भाई यही कातर नाम-ध्वनि सुनते । प्राण किसी अंधेरे कोटर में भटक रहे थे । रूह जाने कौन-सा खोया-फिसला रत्न तलाश रही थी । मधुमास की हवाओं की मदालस शोखी । वह चौंकता कि मस्तानी अभी आकर खिलखिलाई है ... ? यह किसके वस्त्रों की रेशमी सलवटों का जादू छा रहा है ... ? मूर्च्छित-अर्द्धमूर्च्छित पुकारें रात दिन वाजीराव के चारों ओर मौत की घाटियों में टीसती रहतीं ...

महल में फिर सख्त पहरे में उसे लाकर कैद कर दिया गया । इस बार बहुत रोने-कलपने पर तारा दासी के साथ उसका बेटा शमशेर उसके पास भेज दिया गया । अब वह पत्थर के बूत की तरह उस द्वार पर टकटकी लगाये रहती, जहां से उसके प्रियतम के कदम रोशन हुआ करते थे । कुछ दिनों से उसकी व्याकुलता बढ़ गयी थी । उसे पेशवा की हालत का ज्ञान अंधेरे में डूबे अंधे कुएं जैसा डसने लगता था । कहीं यह चमकता सितारा टूट तो नहीं जायेगा ? वह बेचैन हो उठती । कभी लगता कि अभी कोई पास से गुजरा है । पेशवा के शरीर की सुगंध अभी-अभी यहां से बही है । मुझे नाम लेकर पेशवा ने आवाज

हिंदी डाइजेस्ट

दी है । वह दौड़ती कि दीवारों, मोटी अर्गलाओं से टकरा जाती । लुब्ध प्याज़ी रंग भय से पीतवर्णी हो उठता था !

०००

पेशवा की हालत गिर रही थी तेज़ी से । आत्मा प्यासी हो भटक रही थी । कई दिनों बाद पलकों के पाल खुले । रिक्त दृष्टि किसी को टटोलने लगी । क्षीण स्वर फुसफुसाया—‘लो मस्तानी, हम चल दिये . . . जल्दी तुमसे मिलेंगे . . . नहीं जी सका तुम्हारे बिना . . .’ मौत की हथेली के नीचे वह स्वर दब गया । कोहराम मच गया । शत्रु-मित्र, निज के, पराये सभी एकमत हो विसूर उठे कि मस्तानी के प्रेम में पागल, उससे बिछुड़ कर, पूना से विलग होकर आखिर पेशवा जीवित नहीं रह सके । राधाबाई, काशी-बाई, चिमनाजी और नाना मन ही मन किसी अनाम-अव्यक्त अपराध-बोध से भर गये । काश ! अंतिम आकुल क्षणों में बाजीराव को उनकी मस्तानी मिल जाती, तब शायद प्राण-पखेरू यों आहत हुए आकाशगामी न हुए होते ?

मस्तानी ने सुना तो पेड़ से विच्छिन्न कटी डाल-सी ज़मीन पर गिर पड़ी । छाती को चीरकर आहें फूट पड़ीं . . . अब क्यों क़ैद रहे ? बाजी गये . . . अकेले

क्यों जायें ? अंतस तोड़कर जो वेदना का बांध टूटा, वह उसे मरने के द्वार पर ले आया । पहले ही, महीने में अकेली, अपमानित असुविधाओं से चिंताओं और पेशवा के विरह में समाप्त कर रही थी । अब तो आत्म-सूत भी टूट गया । उसी विश्वसनीय दासी के माध्यम से पुत्र शमशेर को के विश्वासपात्र मल्हारराव होल्कर पास पहुंचा दिया, कि इसकी गुप्त परवरिश वे करेंगे . . . और ‘पेशवा आका . . .’ कहते-कहते उस पंगव हृदय-मंदिर की पुजारिन ने प्राण दिये । उसका शव चूँकि महल के द्वार से नहीं निकाला गया, एक खिड़की बाहर किया गया । आज भी शनिवार का लकड़ी-महल . . . मस्तानी-खिड़की मुग्ध युगल-प्रेमियों की याद ताज़ा हैं । मां, पत्नी और पुत्र ने शमशेर स्नेह-शिक्षा-वंश गरिमा दी । शायद ताप, अपराध-बोध से छुटकारा पाए और पेशवा-भक्ति की सेवा का यही था । बाजीराव-मस्तानी की प्रेम-कथा आज अमर-कथा बन गयी है—सत्य का सत्य पृष्ठ !

—श्रीमहावीर दि. जैन उच्च माध्यमिक विद्यालय, सी-स्कीम, जयपुर

एक वृक्ष पर लगे सेब तो गिने जा सकते हैं परन्तु एक सेब में कितने वृक्ष हैं इन्हें कौन जान सकता है ? हर भले कार्य का असर भी, इसी तरह, नहीं जान सकता ।

उपयोग करें
प्रेलिम स्टेपल फाइबर
और
साथ में



मजबूत, टिकाऊ, विश्वसनीय
पूरक धागे

Grasilene

दि ग्वालियर रेयान सिल्क (मन्यू.) विविंग कं. लिमिटेड
(स्टेपल फाइबर विभाग)

तार : GRASIM

टे. नं : ३८८२८८



इनसे मिलिए
ये हैं डॉ. सुरेश भाटिया (एम.बी.बी.एस., एम. एस., एफ.आर.सी.एस.)

स्टेट बैंक शिक्षा-योजना द्वारा यह सपना साकार कीजिए।

अपने बच्चों का भविष्य अपने सपने के मुताबिक बनाने के लिए धन की जरूरत पड़ती है। इसीलिए आपको सरल और आरंभिकता के अनुरूप स्टेट बैंक शिक्षा-योजना की जरूरत है। देखिये, यह योजना आपके लिए क्या करती है।

जब आपका बच्चा 3 वर्ष का हो जाए और स्कूल जाना शुरू करे, तभी से इस योजना में हर महीने 100 रु. जमा शुरू कर दीजिए। 10 वर्ष तक जमा करते रहिए, उसके बाद और जमा करने की जरूरत नहीं। जब आपका बच्चा 12 वर्ष होगा तबतक आपकी 12,000 रु. की वचत बढ़कर 21,772 रु. हो जायेगी। फिर इसके बाद अगले पाँच वर्ष में यह रकम बढ़कर 37,458.72 रु. हो जायेगी। उस समय, आपका बच्चा कॉलेज में प्रवेश लेगा। तब आप उसकी किताबों, शुल्क आदि के लिए 5,188.72 रु. निकाल सकेंगे और शेष रकम से उसे अगले पाँच वर्षों तक प्रति माह 700 रु. मिलते रहेंगे।

यानी आपको अपने 12,000 रु. की वचत के बदले मिलते हैं 47,188.72 रु.। यही नहीं, जरूरत पड़ने पर विदेश में अध्ययन के लिए बैंक आपको 30,000 रु. तक धन भी दे सकता है।

स्टेट बैंक शिक्षा-योजना—उपयुक्त और उपयोगी योजना।


स्टेट बैंक
 सुरक्षा: एक सुखद अनुभव

सुवन की पत्निका
'भारती' से समन्वित

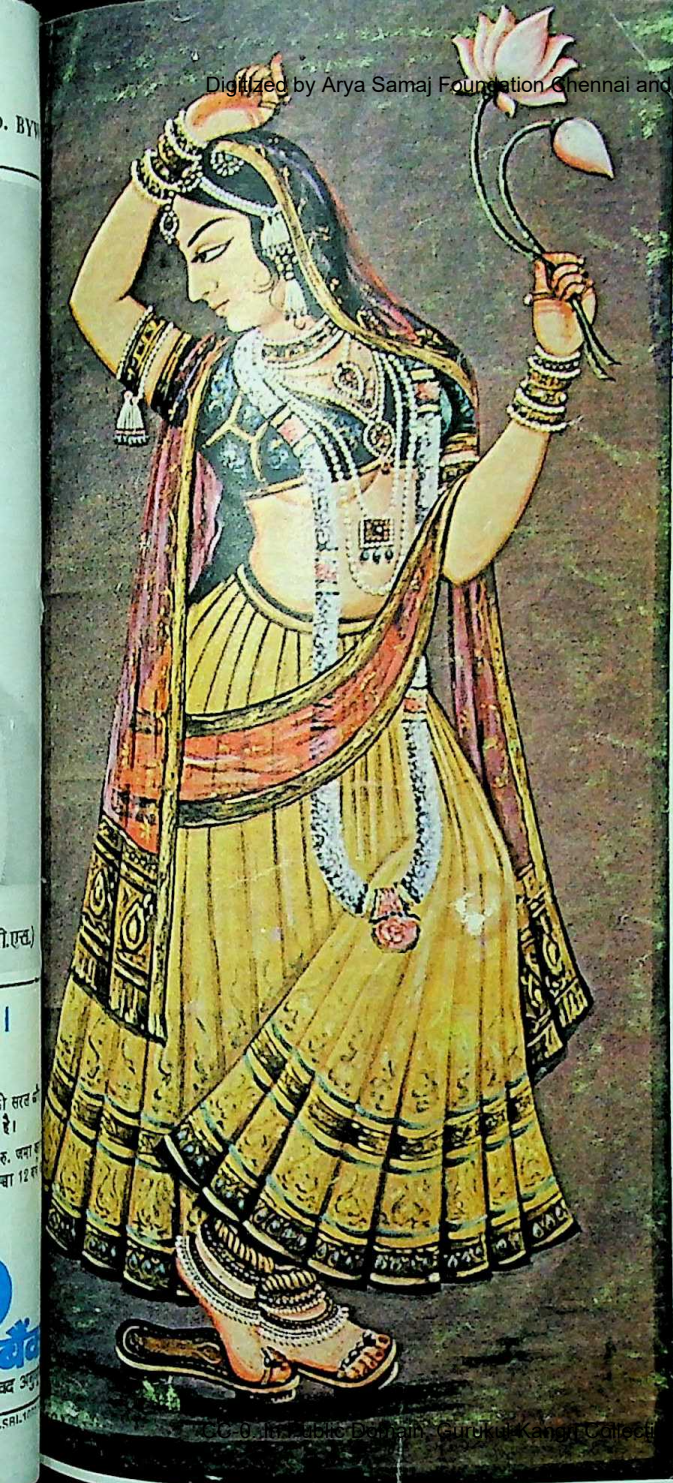
नवनीत

हिन्दी डाइजैस्ट

मार्च १९८३ :

मूल्य रु. २.७५

43
प्राप्त संख्या २१-३-८३
प्रा.प. दिनांक
पुस्तक



उपयोग करें

प्रेलिम स्टेपल फाइबर

और

साथ में



मजबूत, टिकाऊ, विश्वसनीय

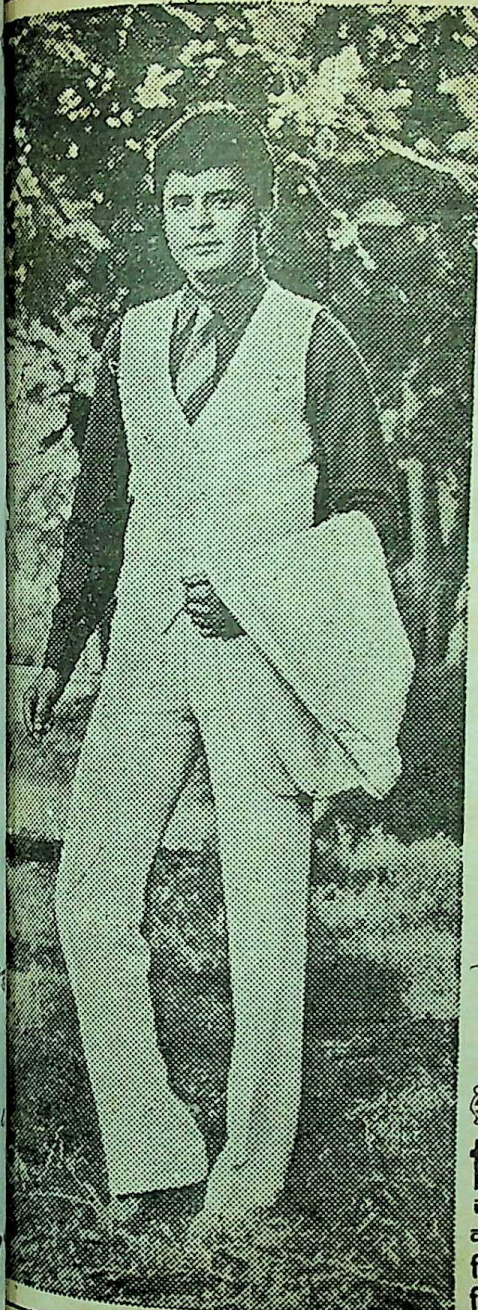
पूरक धागे

Grasilene

दि ग्वालियर रेयान सिल्क (मन्यू.) विविंग कं. लिमिटेड
(स्टेपल फाइबर विभाग)

तार : GRASIM

टे. नं : ३८८२८



ताज़गी की एक लहर!

जियाजी सूटिंग, शर्टिंग और
कॉटन प्रिंट्स आजकल मिलने वाले
आम कपड़ों से बिल्कुल भिन्न हैं।
जियाजी यानी सही सूटिंग, शर्टिंग
और कॉटन प्रिंट्स की तलाश में
देर तक भटकने के बाद एक ताज़गी की
लहर। आप अपने आपको कुछ और
ज़्यादा पसंद करने लगेंगे।

क्योंकि जियाजी सूटिंग, शर्टिंग
और कॉटन प्रिंट्स विशेष आपके
लिए ही तो बनाए गये हैं। जियाजी
आस पास बिखरे सुनेपन में
ताज़गी भर देते हैं।



जियाजी
सूटिंग-शर्टिंग
कॉटन प्रिंट्स



जियाजीराव कॉटन मिल्स लिमिटेड,
बिला नगर, ग्वालियर (म.प्र.)

नवनीत

संस्थापक

कन्हैयालाल मुंशी श्रीगोपाल नेवटिया
भारती : स्या. १९५६ नवनीत : स्या. १९५२

*

संपादक

धीरेन्द्रकुमार जैन

सह-संपादक

गिरिजाशंकर त्रिवेदी

उप-संपादक

रामलाल शुक्ल

*

संयोजक

शान्तिलाल तोलाट

*

प्रकाशक

सु. रामकृष्णन्

*

आवरण-चित्र

लास्य - मुद्रा

[चरन शर्मा के सौजन्य से]

कार्यालय : भारतीय विद्या परिषद्

वर्ष : ३२; अंक : १९

रामबाण औषधि पेनिसिलिन

डॉ. हरिमोहन

महावीर का अपरिग्रह सिद्धान्त

डॉ. कमलचंद सौगानी

पुस्तक-समीक्षा पण्ड्या, त्रिवेदी

व्यंग्यकार : कितने दमदार, कितने

दुमदार (हास्य-व्यंग्य परिचर्चा)

संयोजक : जगदीश किजल

श्रीरामकृष्ण परमहंस के प्रति...

ह. मो. श.

दो गीत

यश मालवीय

प्रार्थना

कर्म और पुनर्जन्म पालखीवाला

पश्चिम पर पूर्व का प्रभाव

आनंदकुमार स्वामी

विश्व और व्यक्ति प्रयाग

स्वतंत्रता, शिक्षा और संस्कृति

डॉ. मणिशंकर आचार्य

किशनगढ़ की चित्र-कला

मोहनलाल गुप्ता

उसे विलक्षण शक्तियां प्राप्त थीं

संजय खर्वा

मेरी कविता डॉ. ओम प्रभाकर

आखिरी पड़ाव (पंजाबी कहानी)

जोगेंद्रसिंह छाबड़ा

तीन कविताएं अनंत कुमार पाषाण

पिकासो की प्रेमिकाएं अनजान

जिनलोक की यात्रा

ब्रह्मानंद स्वामी

पति मुन्शी मार्ग, बम्बई-४०० ००७

अंक १९८३

नामिका सार्थवती वसूव	
देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र'	७९
कड़ौ घाट (कहानी) विन्दु जोशी	८०
नीला का शल्य-चिकित्सक	
हरिमोहन शर्मा	८४
तो वाजिद अली शाह की... मेरी	
के. पी. सक्सेना	८९
बिनु जीवन लागत फीको	
डॉ. वरसानेलाल चतुर्वेदी	९२
श्यों से बाहर मालती शर्मा	९६
त (कहानी) शीतांशु भारद्वाज	९७
ये साल का पहला दिन (कविता)	
राजेन्द्र उपाध्याय	१०५
मैं और विज्ञान का अद्भुत समन्वय	
नानक त्यागी	१०८
अरबी लघुकथाएं	
शशीकान्त जरदोस	११४
की होली सरोजिनी कुलश्रेष्ठ	११६
दरी डाकिन (उपन्यास-अंश)	
थियोफिले गोतियर	१२०
धान-मंत्री का बैंक बेलेंस	
गणेश त्र्यंबक कुलकर्णी	१३६
चित्र-सज्जा : ओके, शेणै, आर. डी.	
हित, चरनशर्मा, जड़िया, के. रवीन्द्र,	
हनुलाल गुप्ता, रामगोपाल विजय-	
निय, सौंकला, दिनेशकुमार, विकास	
सवनीस, नीता वैद्य ।	



अमृतं तु विद्या भारतीय विद्या मञ्चन

१९३८ में संस्थापित प्रगल्भ विद्या, कला और संस्कृति के प्रति समर्पित, जनसेवी धर्मादा ग्याम, संस्थापक : कुमारी क. भा. मुन्शी, अध्यक्ष : श्री धरमजी म. खटाव, उपाध्यक्ष : श्री विद्यापीठमल मेहता,

संस्थापक प्रतिष्ठान

१- मुम्बईरी संस्कृत महाविद्यालय २- भारतीय संस्कृत परीक्षा विभाग ३- भारत संस्कृत परीक्षा विभाग ४- नीता विद्यालय ५- मुम्बई-माल गोपनका स्नातकोत्तर अध्ययन एवं शोध प्रतिष्ठान ६- मुम्बई छत्रपती मंदिर (पुस्तकालय) ७- कलकत्ता रामजी भवन पुस्तकालय ८- भारतीय संस्कृत विद्यापीठ ९- भारतीय नर्तन शिक्षापीठ १०- भारतीय इतिहास विभाग ११- प्रकाशन मंदिर, पुस्तक मुद्रिणी, मुम्बई साहित्य, भारतीय विद्या (भारतीय विद्या पेंनालिक), बरुण कर्मल (अंग्रेजी पत्रिका), संविद (संस्कृत पत्रिका), मधुनीत (हिन्दी शारंग्य (हिन्दी पत्रिका), मधुनीत समर्थन (मुद्रापीठ पत्रिका) १२- प्राचीन अन्तर्दिष्टी और आधुनिक आविष्कार योजना १३- औपनिषदिक योजना १४- राजाजी शतवार्षिकी समिति १५- म. म. कला कानेज और म. म. विज्ञान विभाग संस्थान (अंग्रेजी) १६- बल्लभराय मेहता पब्लिक स्कूल (नवी दिल्ली) १७- हजारीमल सोनानी कानेज, कला एवं विज्ञान (चोपादी, बम्बई) १८- सरदार पटेल अभियांत्रिकी कानेज (अंग्रेजी) १९- रत्नोदयनाथ अचलनाथ विज्ञान कानेज (अहमदाबाद) २०- एमकेएमनाथ अचलनाथ कला एवं वाणिज्य कानेज (अहमदाबाद) २१- रत्नोदयनाथ वाणिज्य कानेज, (हाकोर) २२- कला एवं विज्ञान कानेज (हाकोर) २३- स्वामीनारायण पारितोषिक (हाकोर) २४- श्री अनुपनाथ कानिदास जोशी महिला कानेज (जयनगर) २५- ब. म. मेहता विज्ञान कानेज (भरवारी) २६- एनके प्रसाद संगेयन एवं प्रबंध विद्या प्रतिष्ठान (मुद्रिणी : प्राणलाल देवकल नानडी संगेयन एवं प्रबंध विद्या, कानेज, बम्बई, सरदार पटेल जनसंगेयन कानेज, नवी दिल्ली) हरिलाल धनवती जनसंगेयन कानेज अहमदाबाद तथा बंगलूर; सोमानी जनसंगेयन कानेज, एलानकुलम्; बड़ोदा, बंगलूर, मुद्र, हरपनाथ, मंगलूर तथा त्रिपुर में स्थित जनसंगेयन कानेज) २७- जवाहरलाल नेहरू छात्रा अकादमी, नवी दिल्ली २८- ब. ह. बाबिया स्कूल (अंग्रेजी) २९- बल्लभराय मेहता पब्लिक स्कूल (विद्यालय) बड़ोदा तथा भरवारी ३०- मदन का विद्या मंदिर, एलामनगर, एलानकुलम् ३१- कोचीनमार्ग पर मदन का स्कूल, कोचीन ३२- बल्लभराय मेहता पब्लिक स्कूल (विद्यालय) भरवारी, इलाहाबाद के पास ३३- मदन का पब्लिक स्कूल, पंज, राजमन्ट्रपुर, हैदराबाद ३४- संस्कृत संस्थान : संस्कृत विश्व परिषद; भारतीय स्त्री सेवा संघ; स्त्रीविषय परिषद् (बम्बई) ३५- संस्कृति पाठ्यक्रम पुस्तकें।

केन्द्र और कार्यालय

अहमदाबाद, बंगलूर, बड़ोदा, चोपाम, धरमेश्वर, धरमेश्वर, बंगलूर, कोयलपुर, हाकोर, दिल्ली, एलानकुलम्, मुद्र, हैदराबाद, बम्बई, जयनगर, काकोनाडा, कानपुर, मद्रास, मुद्र, मंगलूर, मुद्र, मंगलूर, मंगलूर, सिवोन, बीनगर, त्रिपुर, विद्यावाटनम्, लंदन (संस्कृत राज्य) ।

भारतीय विद्या मञ्चन

के.एम.मुन्शी मार्ग, चोपादी, बम्बई-४००००७

फोन : ३५१४६१

रामबाण औषधि पेनिसिलिन और अलैर्गजैंडर फ्लेमिंग



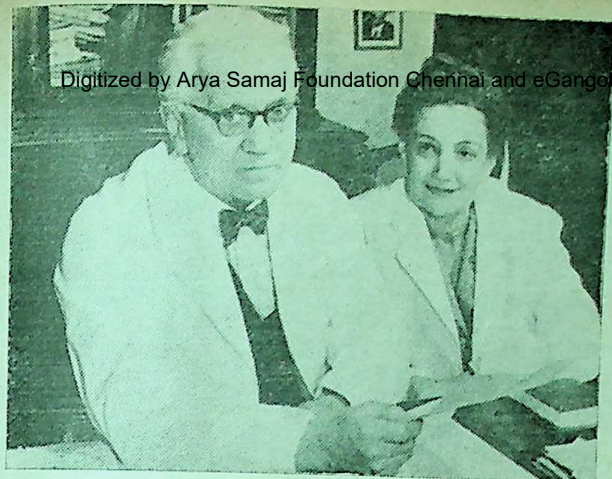
डा. हरिमोहन

बीसवीं शताब्दी की राम-बाण औषधि 'पेनिसिलिन' का आविष्कार वास्तव में एक अत्यंत ही महत्वपूर्ण घटना है। सन १९२९ में प्रोफेसर अलैर्गजैंडर फ्लेमिंग सेंट मेरी अस्पताल, लंदन में 'कार्बकल' तथा रुधिर को विषाक्त करने वाले कीटाणुओं का अध्ययन कर रहे थे। इन प्रयोगों के लिए उनको टैस्ट ट्यूब में अथवा पेट्री-डिश में कीटाणुओं को उत्पन्न करना होता था और इनको खोलकर अनुवीक्षण यंत्र द्वारा समय-समय पर निरीक्षण करना होता था। न जाने किस घड़ी हवा से कुछ फफूंद उत्पन्न करने वाले कीटाणु एक पात्र में पहुंच गये। और फलस्वरूप पात्र के अंदर हरे रंग की मखमली फफूंद सी लग गयी। वास्तव में यह घटना कोई नयी नहीं थी। इस तरह से दूषित डिश को साधारणतया फेंक दिया जाता था और प्रयोग को दोबारा से किया जाता था। लेकिन विलक्षण दृष्टि रखने वाले फ्लेमिंग ने अनुवीक्षण यंत्र द्वारा यह देखा कि फफूंद के चारों ओर के कीटाणु तेज़ी के साथ विनष्ट होते जा रहे थे। उन्होंने यह सोचा कि अवश्य ही इस फफूंद में कुछ ऐसे

तत्व हैं जो कीटाणुओं के लिए साबित हो रहे हैं। इस प्रयोग को फिर कई बार करके देखा और इसी को उन्होंने पेनिसिलिन का नाम दिया।

वास्तव में फ्लेमिंग को इस फफूंद उगाने में कई कठिनाइयां आईं। उन्होंने इस प्रकार के फफूंद अधिक मात्रा में बनाने के लिए प्रयत्न किए। किंतु यह कम लगभग दस वर्ष तक चलता रहा। पेनिसिलिन विशुद्ध रूप में बन तो जाता था परंतु उसका प्रयोग करना एक समस्या थी। भाग्यवश फोर्ड के प्रोफेसर फ्लोरे ने पेनिसिलिन गाढ़ा करने की विधि निकाली और उन्होंने दर्शाया कि गाढ़ी अवस्था में पेनिसिलिन का इस्तेमाल रोग कीटाणुओं को नाश करता है और साथ ही रोगी को किसी प्रकार का हानिकारक प्रभाव नहीं छोड़ता। वास्तव में उस समय नामाइड नामक औषधि का प्रयोग प्रचलित पर था। इससे भी रोग के कीटाणु नाश हो जाते थे। परंतु कुछ व्यक्ति इस औषधि असर नहीं कर पाती थी। ये व्यक्ति पर सल्फो-नामाइड का

नवनीत



सर अलेग्ज़ैंडर फ्लेमिंग और लेडी अमालिया फ्लेमिंग

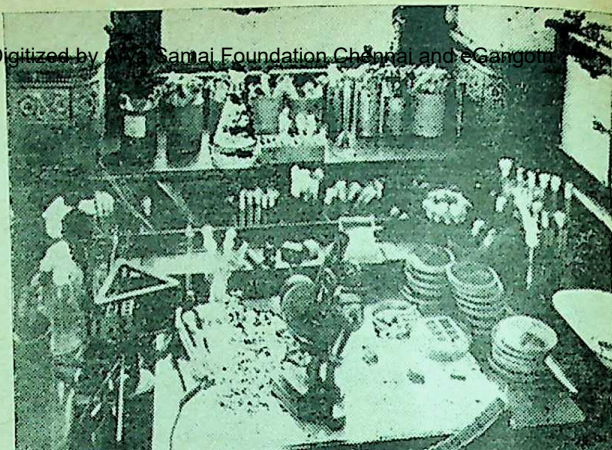
होता था उन पर पेनिसिलिन का इस्ते-
माल किया गया और लगभग सभी
व्यक्तियों को इससे पूर्ण स्वास्थ्य लाभ
हुआ।

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् अमरीका में
पेनिसिलिन अधिक से अधिक मात्रा में
तैयार किया गया जिससे युद्ध भूमि से
लाये गये घायल सैनिकों का उपचार हो
सके। यदि उस समय यह औषधि न होती
तो बेचारे सैनिक हजारों की संख्या में
प्राणों से हाथ धो बैठते। अथक प्रयत्न के
बाद भी पेनिसिलिन पर्याप्त मात्रा में न
प्राप्त हो सकी। प्रोफेसर फ्लोरे को पेनि-
सिलिन निर्माण हेतु परामर्श के लिए
अमरीका में आमंत्रित किया गया और
बहुत बड़े पैमाने पर पेनिसिलिन बनाने
हेतु विस्तृत योजनाएं बनायी गयीं। फल-
स्वरूप १९४३ में राष्ट्र मित्रों की सेना में
घायल और बीमार सैनिकों का उपचार
इस संजीवनी वूटी से किया गया।

प्रारंभ में पेनिसिलिन बनाने में काफी
मुश्किलों का सामना करना पड़ता था।
हफ्तों चीनी के शर्वत पर फफूंद उगाये जाते
थे। इस सबके लिए खास उपकरणों का
प्रयोग किया जाता था और ढकने के
लिए इन उपकरणों पर रुई की पतली
तह रखी जाती थी ताकि फफूंद उत्पन्न
करने वाले कीटाणु अंदर जा सकें। जो
पतली नरम तह शर्वत पर जम जाती थी
उस तह में पेनिसिलिन समाविष्ट हो
जाता था और फिर इस पेनिसिलिन को
गाढ़ा किया जाता था। वास्तव में गाढ़ा
करना एक टेढ़ी खीर थी इसलिए विशेष
सावधानियां बरतनी पड़ती थीं। जिससे
कहीं बना बनाया पेनिसिलिन नष्ट हो न
जाये।

आज संसार के कई देशों में पेनिसिलिन
का औद्योगिक स्तर पर उत्पादन हो रहा
है। साधारणतया पेनिसिलिन शरीर में
इंजेक्शन द्वारा प्रविष्ट कराया जाता है।

हिंदी डाइजैस्ट



अलैगज़ेंडर फ्लेमिंग की प्रयोगशाला, जिसमें उन्होंने पेनिसिलिन की खोज की

कई बार गोलियों और कैप्सूलों के जरिये भी शरीर में मुंह के रास्ते पहुंचाया जाता है। अब तो पेनिसिलिन को किसी तरल माध्यम में घोल बनाकर स्वास्थ्य लाभ हेतु दिया जाता है। हां, यह जरूर है कि पेनिसिलिन की ज़िदगी बढ़ाने के लिए और शक्ति क्षीण न होने के लिए उसको ठंडे तापक्रम पर रखा जाता है।

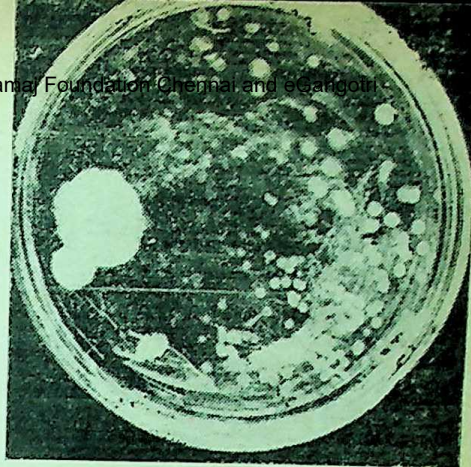
आज के युग में मानव तरह-तरह के रोगों से ग्रस्त है परंतु पेनिसिलिन जैसी रामबाण औषधि उसको कम समय में रोग से छुटकारा दिला देती है। यही नहीं कुछ ऐसे रोग जो अन्य औषधियों से पूर्णतया स्वास्थ्य लाभ नहीं पहुंचाते वहां पेनिसिलिन एक अचूक औषधि का कार्य करती है और रोगी कम समय में पूर्ण स्वस्थ हो जाता है। साथ ही उस पर किसी प्रकार का हानिकारक प्रभाव भी नहीं होता, जैसा कि अन्य कई औषधियों के इस्तेमाल से हो

जाता है।

आइये अलैगज़ेंडर फ्लेमिंग के जीवनी वारे में कुछ जानें—

अलैगज़ेंडर फ्लेमिंग का जन्म ६ अगस्त १८८१ को लाकफील्ड के एक फार्म हुआ जो आयरशायर का एक कस्बा है। इनके पिता एक किसान थे। उन्होंने बार विवाह किया था और दोनों पत्नियों से चार-चार बच्चे थे। इतना बड़ा परिवार होने के कारण फ्लेमिंग बचपन से किसी अच्छे स्कूल में न जा सके अक्सर भाई-बहनों के साथ वे पहाड़ों घूमने निकल जाते और कई बार बिंदूक के शिकार करने की कोशिश करते इससे हुआ यह कि उनकी प्रेक्षण का विकास एक विशेष प्रकार से हुआ। उन्होंने पांच वर्ष की अवस्था में यह निष्कर्ष निकाल लिया कि वह स्कूल अवश्य जावेगा गांव का एक स्कूल जहां केवल बारह बच्चे

और एक अध्यापिका थी। इसी स्कूल में उन्होंने दस वर्ष की आयु तक शिक्षा ग्रहण की। इसके बाद उन्होंने डारवेल में एक छोटे से स्कूल में दाखिला लिया। यह स्कूल उनके गांव से लगभग चार मील दूर था। हर मौसम में वह रोज़ स्कूल समय से पहुंचन की कोशिश करते। बारह वर्ष की अवस्था में उन्होंने किल्मानाक की अका-



दमी में लगभग दो साल शिक्षा ग्रहण कर कक्षा में अच्छा स्थान बनाया। लेकिन दुर्भाग्यवश उनके पिता की मृत्यु हो गयी। और फिर इस बड़े परिवार को जीविका अर्जित करने के लिए प्रयत्न करना पड़ा। फलस्वरूप छोटे-बड़े सभी को खेत पर काम करना पड़ा। उनकी माताजी मिसेज़ ग्रेसी वचपि एक कुशल महिला थीं, बच्चों को अधिक शिक्षा न दे पायी। बेचारे फ्लेमिंग को जिसको प्यार से सभी लोग एलिक नाम से पुकारते थे, लंदन जाना पड़ा। यहां उन्होंने एक जहाज़ के आफिस में छोटे क्लर्क की नौकरी स्वीकार की। यहां उन्हें बहुत अधिक कार्य करना पड़ता था। और वास्तव में काम बिलकुल रुचिकर न था। लेकिन क्या करें पेट पालने के लिए उन्होंने इस अरुचिकर कार्य को भी बड़ी सफलता से किया।

यह भाग्य ही कहिए कि १९०१ में उनको अपने चाचाजी श्री जान की मृत्यु

पेट्री-डिश जिसमें पेनिसिलिन का श्रीगणेश हुआ के बाद काफी संपत्ति वसीयतनामे के अनुसार प्राप्त हुई। वास्तव में श्री जान अविवाहित थे और ऐलिक से उन्हें विशेष लगाव था। इस संपत्ति को प्राप्त करते ही फ्लेमिंग ने यह दृढ़ विचार कर लिया कि लंदन यूनिवर्सिटी में शिक्षा ग्रहण कर एक अच्छे डाक्टर बनेंगे। उन्होंने अथक परिश्रम से नेचुरल साइंस में लंदन यूनिवर्सिटी का स्कालरशिप प्राप्त किया। क्योंकि उनको युवा अवस्था के प्रारंभ में ही एक छोटे क्लर्क के रूप में कई वर्ष कार्य करना पड़ा, इससे वह कक्षा में उन छात्रों में गिने जाते थे जिनकी उम्र सामान्य छात्रों से कुछ अधिक थी। लेकिन जब उनको परीक्षा में पांचों विषयों में विशेष योग्यता प्राप्त हुई और यूनिवर्सिटी का स्वर्णपदक भी मिला। इससे सभी फडियां कसने वाले सहपाठी स्तब्ध रह गये कि यह अधिक उम्र वाला छात्र कैसे बाज़ी ले गया। १९०८ में संपूर्ण शिक्षा

हिंदी डाइजेस्ट

प्राप्त करने के बाद वह रायल कालेज आफ सर्जस के फैलो नियुक्त किये गये। यहां उन्होंने बहुत सी नयी दवाइयों को खोजने के लिए कार्य किया। सन १९११ में उन्होंने सिफलिस जैसी भयंकर बीमारी के उपचार के लिए कई नयी दवाइयों की खोज की। १९१४ में प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान फ्लेमिंग को फ्रांस जाना पड़ा। यहां उन्होंने तेरहवें जनरल अस्पताल बालोगेनी में अथक परिश्रम से कार्य किया। इसी बीच १९१५ में २३ दिसंबर को उनका विवाह कुमारी सेरिश मैक्लौरी से संपन्न हुआ। १९१८ में प्रथम विश्व-युद्ध समाप्त होते ही वे सेंट मेरी अस्पताल में लेक्चरर के पद पर नियुक्त हुए और फिर १९२० में वह बैक्टीरियोलोजी डिपार्ट-मेंट में डायरेक्टर के पद पर आसीन किये गये। यहां उन्होंने लाइसोजाइन की खोज की। फलस्वरूप १९२८ में वह सेंट मेरी अस्पताल में प्रोफेसर के पद पर नियुक्त किये गये और यहीं उन्होंने विश्व विख्यात पेनिसिलिन की १९२९ में खोज की। लगभग दस वर्ष तक वह पेनिसिलिन को अधिक मात्रा में बनाने के उद्देश्य से तरह-तरह के प्रयोग करते रहे। १९३९ में द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारंभ हो गया और फलस्वरूप फ्लेमिंग को हारफील्ड में पैथोलॉजिस्ट के रूप में कार्य करना पड़ा। लगभग १९४० के करीब फ्लोरे और अर्नेस्ट चेन ने पेनिसिलिन को प्रचुर मात्रा में प्राप्त किया और उसको औषधि के

नवनीत

रूप में रोग उपचार के लिए प्रयोग लाया। अब इन तीनों महानुभावों मिलकर अथक परिश्रम से न केवल पेनिसिलिन को प्रचुर मात्रा में बनाने की नयी विधियां निकालीं बल्कि संक्रामक रोगों को दूर करने के लिए पेनिसिलिन प्रयोग बड़ी मात्रा में किया। और फलस्वरूप द्वितीय महायुद्ध में बीमार सैनिकों यह औषधि रामबाण साबित हुई। १९४५ में फ्लेमिंग को दो अन्य वैज्ञानिक प्रोफेसर फ्लोरे और प्रोफेसर चेन के साथ चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में नोबेल पुरस्कार सम्मानित किया गया।

सन १९४६ में प्रोफेसर अर्नेस्ट फ्लेमिंग नव-निर्मित रिट फ्लेमिंग इंस्टीट्यूट के प्रधान नियुक्त किये गये। उन्होंने चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में उपलब्धियां प्राप्त कीं। और संक्रामक रोगों से निपटने के लिए यानी मातृजाति को घातक रोगों से सदा के लिए छुटकारा दिलाने के लिए अनुसंधान किया और कुशलतापूर्वक उन चोटी के रोगों के निवारण का नेतृत्व किया जिन्होंने अनेक ऐसी औषधियों का आविष्कार किया।

१९४९ में फ्लेमिंग की पत्नी मिसेस सेरिश फ्लेमिंग का देहांत हो गया। इस मानसिक रूप से फ्लेमिंग को बहुत आघात पहुंचा, क्योंकि वह बड़े ही शर्मिले किशोरी के व्यक्ति थे जो अनुसंधान के अतिरिक्त वास्तव में किसी से संपर्क नहीं चाहते थे। यहां तक कि इंटरव्यू के



हर समय वह अपनी पत्नी को ही अपने साथ रखते। जिससे उनको अपने को व्यक्त करने में कोई कठिनाई न हो। अकेले जीवन व्यतीत करना उनके लिए दुःख हो गया था। और फलस्वरूप उन्होंने ९ अप्रैल १९५३ में कुमारी अमालिया बोरेका नामक सुंदर स्त्री से विवाह किया जो कुछ ही दिनों में उनकी अच्छी जीवनसंगिनी बन गयी। लेकिन भाग्य को कुछ और मंजूर था और अचानक ११ मार्च १९५५ में इस विवाह के लगभग दो वर्ष बाद ही फ्लेमिंग इस दुनिया से सदा के लिए चले बसे। मानव जाति उनके

सर अलेग्जेंडर फ्लेमिंग को कंधे पर उठाये विश्वविद्यालय के उत्साही छात्र

ऋण से कभी भी मुक्त नहीं हो सकेगी।
-४७, आनन्द लोक, नई दिल्ली - ४९



दि टी. बी. एसोसियेशन ऑफ इंडिया, नयी दिल्ली

बुखार हो या न हो, पर यदि दो से चार सप्ताहों तक खांसी हो, अथवा थूक के साथ खून निकलता हो, तो क्षय होना संभव है। निकट के आरोग्य-केन्द्र या अस्पताल में जाकर सही निदान करा लें। रोग की शीघ्र जांच हो जायेगी, तो इलाज आसान और पूर्ण रूप से किया जा सकेगा।

टी. बी. सोल खरीदकर क्षय विरोधी अभियान में सहायक बनें

['भारतीय विद्या भवन' के सौजन्य से]

महावीर का अपरिग्रह सिद्धान्त : सामाजिक न्याय का अमोघ मंत्र



डा. कमलचंद सौगानी

वर्तमान युग में परिग्रह की सीमा काफी चर्चा का विषय बनी हुई है। महावीर युग में हिंसा का प्राधान्य था पर ऐसा लगता है कि आज के युग में परिग्रह का प्राधान्य है। ऐसा नहीं है कि महावीर युग में परिग्रह की सीमा की चर्चा न हो। अति प्राचीन ग्रंथों में परिग्रह की सीमा के बारे में स्पष्ट कथन मिलते हैं। उनमें यह कहा गया है कि गृहस्थ को धन-धान्य आदि वस्तुओं की सीमित करना चाहिए। और संभवतया इस निर्देश को मानकर कई गृहस्थों ने परिग्रह की सीमा को बांध कर अपरिग्रह की दिशा में अवश्य ही प्रगति की होगी। उन्होंने पांच हाथी के बजाय दो हाथी रखे होंगे, दस मकान के बजाय एक मकान रखा होगा, लाखों रुपयों के बजाय हजारों रुपये रखे होंगे। इस तरह से परिग्रह के त्याग का उदाहरण प्रस्तुत किया होगा। समाज ने ऐसे लोगों को त्यागी कहकर सम्मानित भी अवश्य किया होगा, क्योंकि वे तो ग्रंथों की सीधी सादी भाषा के अनुसार अपने जीवन को ढाल रहे थे।

यहां यह प्रश्न उपस्थित होता है कि

नवनीत

क्या इस प्रकार के त्याग को अपरिग्रह संज्ञा दी जाय ? इससे अधिक गहरा यह उपस्थित होता है कि परिग्रह का क्या है ? क्योंकि परिग्रह के लक्षण जानकर ही हम परिग्रह-अपरिग्रह निर्णय कर सकते हैं। अपरिग्रहवादियों सामने जब यह प्रश्न आया तो उन्होंने अपरिग्रह को समझाने के लिए परिग्रह लक्षण प्रस्तुत किया। वे समझते थे कि परिग्रह का लक्षण ज्ञात होने पर मनुष्य उन लक्षणों से बच कर अपरिग्रही बन सकेगा। इसलिए उन्होंने परिग्रह लक्षण बताते हुए कहा कि जहां मूर्ख वहां परिग्रह है। इसको स्पष्ट करते हुए उनका कहना है कि यह हो सकता है कि व्यक्ति के पास न मकान हों, न धन-धान्य तब भी इनके प्रति आकर्षण या राग हो वह निश्चित रूप से परिग्रही है, जैसे कि लोभी अति दरिद्र व्यक्ति। इसके अतिरिक्त यह भी हो सकता है कि बाह्य परिग्रह हो और अंतरंग में यदि मूर्ख है तो ऐसा व्यक्ति अपरिग्रही कहलाता है जैसे राजा जनक।

यहां प्रश्न यह है : क्या परिग्रह



मूर्छा लक्षण कोरा व्यक्तिगत नहीं है ? क्या मूर्छा होने और न होने का ज्ञान हमें हो सकता है ? मूर्छा एक मानसिक स्थिति है जिसको दूसरे व्यक्तियों में जान पाना तो कठिन है ही अपने में भी जान पाना अत्यंत कठिन है । इस तरह से परिग्रह का यह लक्षण होते हुए भी व्यक्ति व समाज के लिए यह उपयोगी नहीं है । संभवतया इसी बात को ध्यान में रखकर अपरिग्रहवादियों ने कहा कि सामान्यतया जहां बाह्य परिग्रह होता है वहां मूर्छा होती ही है । कुछ असाधारण व्यक्ति इस कोटि से बाहर चले भी जायें तब भी साधारण लोगों के लिए यह लक्षण घटित होता है, क्योंकि उनके मन में यह बात रही होगी कि समाज साधारण व्यक्तियों के समुदाय से ही निर्मित होता है और अपरिग्रह की चर्चा उसी समुदाय के लिए विशेष महत्व की है । इसलिए सामाजिक दृष्टिकोण से बाह्य वस्तुओं की उपस्थिति और अंतरंग मूर्छा के होने में एक कार्य-कारण का संबंध स्वीकार किया जा सकता है, अर्थात्

उन्होंने यह स्वीकार किया कि जहां बाह्य वस्तुएं हैं (वास्तविक अथवा काल्पनिक) वहां मूर्छा होगी ही । यह कार्य-कारण संबंध सामाजिक स्तर पर उचित प्रतीत होता है, अर्थात् किसी व्यक्ति के बाहरी परिग्रह को देखकर अथवा बाहरी परिग्रह की इच्छा को जानकर हम साधारणतया उसकी अंतरंग मूर्छा का अनुमान कर सकते हैं । इस तरह सामाजिक दृष्टिकोण से बाह्य वस्तुओं का होना व न होना ही महत्व का है । मूर्छा का होना और न होना पूर्णतया व्यक्तिगत होता है । समाज की निगाह केवल बाह्य वस्तुओं पर ही हो सकती है और उसी को कम ज्यादा करना समाज के हाथ में है । अतः परिग्रह का लक्षण सामाजिक दृष्टिकोण से मूर्छा न होकर बाह्य वस्तुओं का होना (वास्तविक) ही माना जा सकता है । इसीलिए अपरिग्रहवादियों ने स्थान-स्थान पर बाह्य वस्तुओं की सीमा पर जोर दिया है । इस तरह से अपरिग्रह के मापदण्ड का प्रश्न वस्तुओं के परिमाण के मापदण्ड का प्रश्न

है। अब प्रश्न यह है : वस्तुओं का कितना परिग्रह, अपरिग्रह की कोटि में माना जाय ? परिमाण का निश्चय कैसे किया जाय ?

संभवतया इसके उत्तर में कहा जा सकता है कि वस्तुओं की व्यक्तिगत आवश्यकतानुसार संख्या परिमाण का मापदंड मानी जानी चाहिये। यदि मुझे एक मकान की आवश्यकता है तो मैं एक मकान बनवा लूं और दूसरा मकान न बनवाऊं। इसी तरह आवश्यकतानुसार अन्य वस्तुओं का परिमाण भी कर लूं। यदि मेरी आवश्यकता एक करोड़ रुपये की है तो उतना रख लूं और बाकी समाज को अर्पण कर दूं। अब प्रश्न यह उठता है कि आवश्यकता का निर्णय किस आधार पर हो ? एक उद्योगपति की आवश्यकताएं, प्रोफेसर की आवश्यकताएं तथा अन्य वर्ग के लोगों की आवश्यकताएं भिन्न-भिन्न हैं। इसलिए उनके परिग्रह के परिमाण भी भिन्न होंगे। किसी के लिए १० कारें भी आवश्यक हो सकती हैं और किसी के लिए एक भी नहीं। क्या हम परिग्रह का निर्णय व्यक्तिगत आवश्यकतानुसार वस्तुओं की संख्या के आधार पर कर सकते हैं ? मेरे विचार से ऐसा करना किसी भी तरह उचित नहीं माना जा सकता, क्योंकि यह दृष्टिकोण पूर्णतया व्यक्तिवादी है। पर अपरिग्रह एक समाजवादी दृष्टि है। अपरिग्रह का मापदंड तब तक उचित नहीं कहा जा सकता जब तक उसके निर्णय में सामाजिक दृष्टि को महत्व न दिया जाय। मेरे लिए

कितना आवश्यक है कि इसका निर्णय व्यक्ति नहीं समाज करेगा। व्यक्ति का निर्णय शोषण को जन्म देता है पर समाज का निर्णय अपरिग्रह की भावना को समाज का निर्णय जनतांत्रिक राज्य का निर्णय एक अर्थ में कहा जा सकता है। सामाजिक आवश्यकतानुसार परिग्रह परिमाण को निश्चित कर सकता है, अतः कितना व्यक्ति के पास रहे और कितना व्यक्ति से समाज को चला जाय। एक व्यक्ति १०० मिलों का मालिक तो लाभ के फलस्वरूप व्यक्ति कितना और समाज के पास कितना जाय इस निर्णय व्यक्ति नहीं समाज ही करेगा।

कभी-कभी यह कहा जाता है कि परिग्रह के परिमाण की भावना समाज की प्रगति को अवरुद्ध करने वाली होती है किंतु मेरे विचार से ऐसा मानना उचित नहीं है, क्योंकि अपरिग्रह की भावना व्यक्ति की उत्पादन शक्ति को क्षीण करती, पर उसकी संग्रह शक्ति को सीमित करने की बात कहती है। अत्यधिक संग्रह वृत्ति एक मानसिक रोग है और स्वस्थ समाज के निर्माण के लिए इस रोग को समाप्त करना आवश्यक है ही। समाज की प्रगति उत्पादन शक्ति से होती संग्रहवृत्ति से नहीं। अतः अपरिग्रह मापदंड हुआ समाज का वस्तुओं के परिमाण के विषय में निर्णय। एक ऐसा देश हो सकता है जहां किसी व्यक्ति के भवन भी परिग्रह न माने जायें और

नवनीत

देश भी हो सकता है जहाँ एक भवन
होना भी परिग्रह की कोटि में आये ।
इस तरह से कहा जा सकता है कि मूर्छा
की प्रतीकता व मंदता का संबंध बाह्य वस्तुओं
की संख्या से नहीं हैं पर सामाजिक परि-
स्थिति में वस्तुओं के परिमाण के संबंध
समाज के निर्णय से है । सामाजिक
स्थितियों के बदलने से बाह्य वस्तुओं
परिमाण भी बदलते जायेंगे । अमरीका
परिग्रह परिमाण के विचार में और
भारत के परिग्रह परिमाण के विचार में
भेद होगा । ऐसा प्रतीत होता है कि
परिग्रहवादियों ने परिमाण के प्रश्न को
गंभीरता ही रखा है । देश-काल के अनुसार
परिमाण बदला जा सकता है ।

यदि परिमाण का माप समाज है तो
भारत जैसे देश में कर के माध्यम से, भूमि
समाज आदि के माध्यम से परिमाण को
नियंत्रित करना अपरिग्रह की भावना को
प्रकट करता है । भारत के अधिकांश

लोगों को देखते हुए हम सभी किसी न
किसी रूप में शोषणवादी हैं । हमारा एक
पैट, एक मकान, एक शर्ट भी परिग्रह ही
है क्योंकि भारत के करोड़ों लोग इनसे भी
वंचित हैं । अपरिग्रह की भावना समाज-
वादी समाज की दिशा में हमारे देश को
अग्रसर कर सकती है, क्योंकि अपरिग्रह
का मापदंड वस्तु-परिमाण के संबंध में
समाज का निर्णय है व्यक्ति का नहीं ।
जिस प्रकार अहिंसा रसोईघर तक सीमित
रह गयी उसी प्रकार अपरिग्रह थोड़े दान
देने तक । एक स्कूल बनवाने, अस्पताल
बनवाने आदि में हमने अपरिग्रह को
सीमित कर दिया । वास्तव में अपरिग्रह
तो सारी मानव जाति को सम्मान से
जीने देने की एक सामाजिक कला है
और इस तरह से महावीर का अपरिग्रह
का सिद्धांत समाज को विकसित करने का
एक अमोघ मंत्र है ।

—उदयपुर विश्वविद्यालय, उदयपुर, राज.



हस्ताक्षर की कीमत

कवि जानशेड एक बार, एक पुस्तक की दुकान पर पहुँचे, और अपनी ही एक
पुस्तक उठाकर देखने लगे । थोड़ी देर इधर-उधर पलटने के बाद उन्होंने उस पुस्तक पर
अपना हस्ताक्षर कर दिये और किताब लेकर वे विक्रेता के पास गये और उन्होंने उसकी
कीमत पूछी ।

‘दस क्राउन कीमत इस पर लिखी है, स्वयं पढ़ सकते हैं ।’

‘लेकिन इस पर कवि के हस्ताक्षर भी हैं । आप शायद भूल गये, इसकी कीमत
ज्यादा होगी ।’ कवि ने तर्क किया ।

‘माफ कीजिए । दूसरी प्रति ला देता हूँ । मालूम होता है किसी बेवकूफ ने इस
किताब को खराब कर दिया है ।’

—कल्पना आंचलिया



फार्म नं. ४

१. प्रकाशन का स्थान
२. प्रकाशन का अवधिक्रम
३. मुद्रक का नाम
राष्ट्रीयता
पता
४. प्रकाशक का नाम
राष्ट्रीयता
पता
५. सम्पादक का नाम
राष्ट्रीयता
पता
६. उन शेयर होल्डरों के नाम और पते
जिनके पास कुल पूंजी के एक प्रति-
शत से अधिक शेयर हैं।

भारतीय विद्या भवन,
प्रत्येक मास
सु. रामकृष्णन्
भारतीय
भारतीय विद्या भवन,
सु. रामकृष्णन्
भारतीय
भारतीय विद्या भवन,
वीरेन्द्र कुमार जैन
भारतीय
भारतीय विद्या भवन,
भारतीय विद्याभवन,
रजिस्ट्रेशन एक्ट २१
तथा बम्बई पब्लिक
(१९५०) नं. एफ.
(बम्बई) के अनुसार

अध्यक्ष	मानद सचिव	मानद कोषाध्यक्ष
श्री धरमशी मू. खटाउ	श्री जशवन्तलाल मटुभाई	श्री. एस. पी. क.
उपाध्यक्ष	श्री जे. एच. दोशी	श्री चरणदास
श्री गिरधारीलाल मेहता		श्री जगदीश
श्री सी. सुब्रह्मण्यम्		श्री प्रवीणचन्द्र

मैं सु. रामकृष्णन् यह घोषित करता हूँ कि ऊपर दिये गये विवरण जहाँ
मैं जानता हूँ तथा मेरा विश्वास है, सत्य हैं।

मार्च १९८३

सु. रामकृष्णन् (प्रकाशक के हस्ताक्षर)

नवनीत

१४

पुस्तक - समीक्षा



और शिप्रा बहती रही (ऐतिहासिक उप-
न्यास); लेखक : श्री निरंजन छ. जमी-
दार, इंदौर; प्रकाशक : रचनाकार प्रका-
शन, डी-४६, विवेक विहार, दिल्ली-३२;
पृष्ठसंख्या : १४३; मूल्य : २० रुपये।

युथुत साहित्यकार श्री जमींदार ने
ऐतिहासिक घटनाचक्र को तथ्य बना
कर कथानक अथवा पात्र की अपेक्षा इस
कृति में बीभत्स रस को उभारने का प्रयत्न
किया है। कथा-लेखन की विद्या में यह
सही बात है। यों तो पूर्वपीठिका में 'नांदी'
शोधक के अंतर्गत तत्कालीन परिस्थितियों
का विवरण दे दिया गया है, किंतु 'दस्ता-
वेज' होने पर भी इसमें व्यर्थ का विस्तार
होता है। रोचकता कहीं भी खंडित नहीं
होती और वर्णनात्मक पुनरावर्तन भी
विचित्र नहीं होता।

मालवा पर अपना पंजा कसने के लिए
अधिया तथा होल्कर के बीच प्रतिस्पर्धा
रही थी और वे समान-विरोधी तत्वों
का हाथ मिलाकर हत्या, लूटमार तथा
अराजनी जैसे जघन्य कृत्यों में लग गये थे।
मराठा-शक्ति अंग्रेजों से भिड़ने में अपने
को हर तरह से असहाय पा रही थी।
जमींदारों में चरित्र-भ्रष्टता हृद दर्जे की
बढ़ गयी थी। विलासप्रियता में नारियां
भी सुरक्षित नहीं रह पायी थीं। जो सत्ता

के नाग-फांस में पहुंच गयीं, वे भी अस्तित्व
रक्षा के लिए सौदा करने को मजबूर हो
गयी थीं। यशवंतराव होल्कर और तुलसा
का चरित्र-चित्रण इसी की ओर इशारा
करता है और उनकी असफलता की छाप
डालते हुए सारे घटना चक्र को रोचक
बताता हुआ स्वाभाविक अंत की ओर ले
जाता है।

इस लघु उपन्यास के प्रकाशित होते ही
हिंदी के बजाय हिंदीतर क्षेत्रों में इसकी
अनुकूल प्रतिक्रिया हुई। मराठी (अनु-
वादक-श्रीपाद जोशी), गुजराती (श्री
विष्णु पंड्या), कन्नड (श्री राव) तथा
तमिल (श्री एस. व्ही. सुब्रह्मण्यम्) में इसे
अनुवादित करने के प्रयत्न यथाशीघ्र
आरंभ हो गये। बंगला के लिए भी पूछ-
परख होने लगी। मराठी के विद्वान प्रखर
लेखक स्व. नरहर कुरंदकर ने इसे न
केवल प्रभावशाली माना वरन् 'संयत भाषा
में लिखित सुंदर रचना' कहा। अनुवादक
श्रीपाद जोशी ने अनुवाद का कार्य लेने के
पहले सुप्रसिद्ध मराठी ग्रंथ प्रकाशक श्री
ह. व. मोटे को इसे 'कसे व गढ़े हुए' होने
के कारण हाथ में लेने के निर्णय की सूचना
दी। गुजराती साहित्यकार श्री गुलाबदास
ब्रोकर ने पुस्तक की 'रोचकता' की सराहना
की। श्री भवानीप्रसाद मिश्र, श्री विमल

हिंदी डाइजेस्ट

मित्र, मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री श्री अर्जुनसिंह ने भी पुस्तक को 'मौलिक' कहते हुए लेखक का लोहा माना। इससे स्पष्ट है कि यह 'एक चिरंतन मूल्य' रखने वाली कृति है।

यों तो जमींदार साहब चितक एवं गंभीर व्यक्तित्व रखनेवाले साहित्यकार हैं, परंतु उन्होंने इसके पहले भी 'नील-कण्ठ' उपन्यास से अपना कथाकार का परिचय दे दिया था। तीसरी उपन्यास कृति 'रोजा डावसन' भी बंगाल में तत्कालीन गोरे लोगों के जीवन पर प्रकाश डालने वाली रचना है, जो प्रकाशन की बाट देख रही है। श्री जमींदार की यह मान्यता है कि 'एक जिंदगी के लिए इतनी सफलताएं पर्याप्त हैं।'।

हमारी तो यही कामना है कि उनके अध्ययन, अनुशीलन, मनन और चिंतन का प्रसाद हमें लगातार मिलता रहे।

—करुणाशंकर पंड्या

०००

१. रोशन सितारा (अब्दुल्ला कमाल);
२. नचिकेता (मकरंद दवे); ३. मां की ममता (स्नेह अग्रवाल); ४. संजाण की कहानी (होरमज दियार दलाल);
५. पहला पत्थर कौन मारेगा ? (राधेश्याम शर्मा); ६. अनमोल तोहफा (मुश्ताक मोमिन); ७. सेठ जिदास (वीणा शाह); ८. गोमाता का वरदान (मूलशंकर भट्ट); ९. ममता का चमत्कार (खालिद शाहीब); १०. प्रेम जहां परमेश वहां (लीलावती भागवत);

नवनीत

११. कृतज्ञ और कृतघ्न (शैलजा);
 १२. भगीरथ (कुन्दनिका कपूर);
 १३. युधिष्ठिर का स्वर्गारोहण (पंचोली 'दर्शक'); १४. ब्रह्मा हरण (डा. गुरुनाथ दिवेकर);
 - शरणागत वत्सलता (प्रमोदशंकर);
 १६. कहानी एक तूफान की (आफन्दी); १७. निजामुद्दीन (सिराज अनवर); १८. अंगूठी (गिरिजाशंकर त्रिवेदी); १९. प्रकाश (मूलशंकर भट्ट); २०. साधु (यूनुस आगास्कर); २१. गोवर्द्धन धारण (रामेश्वरदयाल);
 २२. अचल आख्यान (अनूप गोपाणी); २३. द्रुपद और द्रोण (कुमारी); २४. बलि का बकरा (वर्मा); २५. सेवा की राह (जगन्नाथ);
- उपरोक्त सभी बाल कहानियां प्रकाशक : हिंदुस्तानी प्रचार महात्मा गांधी मेमोरियल बिल्डिंग, ४००००२; विक्रेता : एस. चण्डी कंपनी लि., रामनगर, नयी दिल्ली प्रत्येक का मूल्य : दो रुपये।
- सभी सचित्र कहानियां बाल अच्छे संस्कार और उनके मानसिक विकास के दृष्टिकोण को सामने रखकर हिंदी प्रचार सभा द्वारा विभिन्न भाषा लेखकों द्वारा तैयारी करायी गयी है। हमारे संतों-महंतों द्वारा दी गयी शिक्षाएं आज के बिलगाववादी को सही दिशा दिखाने में बहुत

हो सकती हैं। भाषा, संस्कृति और धर्म के नाम पर किये जा रहे आंदोलन सभी धर्मों के लिए खतरा बनते जा रहे हैं; जबकि सभी धर्म मानवतावादी हैं। मूलतः वे व्यक्ति और समाज को सुखी, शांत और संस्कारी जीवन जीने की राह दिखाते हैं।

बच्चे ही राष्ट्र की नौका के कर्णधार बनते हैं। आज विगड़ते जा रहे संस्कारों के वातावरण में बालकों में सद्बिचार, संस्कार और सभी धर्मों के प्रति आस्था जगाने का महत्तर कार्य ये बालकथाएं निश्चय ही कर सकेंगी।

सभी कहानियों की भाषा बच्चों के बौद्धिक स्तर को ध्यान में रखकर सहज-सरल और बोधगम्य रखी गयी है। छपाई साफ-सुथरी और आकर्षक है।

हिंदुस्तानी प्रचार सभा का बच्चों में अच्छे संस्कार जगाकर उन्हें सत्य और अहिंसा के पथ पर चलाने का प्रयास संस्था के संस्थापक महात्मा गांधी की विचार-धारा के सर्वथा अनुरूप और स्तुत्य है।

० ० ०

‘नैतिक शिक्षा’ विशेषांक; संपादक : विनोद कुमार अग्रवाल; प्रकाशक : विनोद पुस्तक



भाग्य रेखा

उसे अपने जीवन से निराशा होने लगी थी। ज्योतिषी को देखकर भाग्य जानने की उत्कंठा जागी।

ज्योतिषी ने कहा—‘हाथ दिखाइये!’

उसके दोनों हाथ कटे हुए थे!



भंडार, हास्पिटल रोड, आगरा-२; मूल्य १५ रुपये, सजिल्द २० रुपये।

विनोद पुस्तक भंडार (आगरा) की पत्रिका ‘साहित्य परिचय’ के विशेषांकों की परंपरा का यह १७ वां पुष्प है। यों तो इस पत्रिका के सभी विशेषांक एक से एक बढ़कर उपयोगी और संग्रहणीय रहे हैं, पर ‘नैतिक शिक्षा’ विशेषांक उस परंपरा में मील के पत्थर के समान है। इसमें जीवन में नैतिकता के महत्त्व को समझाते हुए उसकी शिक्षा में आवश्यकता का प्रतिपादन करने वाले ६३ लेख हैं।

आज सभी क्षेत्रों में हो रहे नैतिक पतन की चिंता का वातावरण है। जीवन-मूल्यों की गिरावट को देखते हुए हर राष्ट्रप्रेमी व्यक्ति का इस दिशा में चिंतित होना स्वाभाविक है, ऐसे समय यह विशेषांक केवल शिक्षाविदों के लिए ही नहीं उपयोगी है, बल्कि सर्वसाधारण भी इससे लाभान्वित हो सकता है। प्रसन्नता की बात है कि इस विशेषांक को शिक्षा-जगत् के विद्वान मनीषी डा. सरयू प्रसाद चौबे और डा. रामशकल पांडेय जैसे महारथियों का भी सहयोग प्राप्त है।

—गिरिजाशंकर त्रिवेदी

व्यंग्यकार : कितने दमदार, कितने दुमदार



होली के प्रसंग पर हास्य-व्यंग्य परिचर्चा

संयोजक : जगदीश किंजल्क

समूचा हिंदी साहित्य जगत दुमदार लेखकों से भरा पड़ा है। जितने लेखक उतनी ही प्रकार की दुमें ... (छोटी, बड़ी, पतली, मोटी, झबेदार ... आदि ... कई प्रकार की) पायी जाती हैं। दुमें, हिलने और उठने के काम आती हैं। धड़ल्ले से अपना धर्म निभा रही हैं। दुमों का उल्लुओं से भी गहरा संबंध होता है। दुमें हिलती हैं तभी उल्लू सीधा होता है। दुम का दूसरा नज़दीकी संबंध दम से होता है अर्थात् दुम हिलाने के लिए भी दम चाहिये। बिना दम के दुम नहीं हिल सकती। बिना दुम के दम नहीं आ सकता। इसकी व्याख्या की आवश्यकता नहीं, और व्याख्या करके हम उन तमाम हुक्मरानों को नाराज़ नहीं करना चाहते जिनके दम पर हम हिला रहे हैं। बहरहाल, अपने देश में कुछ दमदार लेखक भी पाये जाते हैं। यदि काली, सास, अफसर आदि का मामला छोड़ दें, तो हम उन्हें बेशक दमदार मान सकते हैं। क्योंकि इनके आगे तो अच्छे-अच्छों की दुमें हिलती रहती हैं ...। व्यंग्य हमेशा शेखी बघारते रहे हैं कि वे दमदार लेखक हैं, उनके पास शेर का कलेजा है, हाथी की हिम्मत है। पर हाथी या शेर भी बिना दुम के कितने निकम्मे साबित हो सकते हैं, यह बात आप जानते ही हैं। यही हाल व्यंग्यकारों का भी है। बेशक, वे हिंदी साहित्य जगत के दमदार प्राणी हो सकते हैं, पर कुछ मामलों में उनके भी दुमें उगी हुई हैं। हिलाने के काम आती हैं। इन दुम रस हालात में आइये देखें कि चोटी के व्यंग्य कितने दमदार हैं और कितने दुमदार ?

दुमें सभी फटकारते हैं पतले वक्त पर ...

—के. पी. सक्सेना

भाई जगदीश, परिचर्चा में तुम मेरी जगह भले ही किसी ऐरे गैरे या नत्थू खैरे को ले लो, पर मैं दुम का अपमान नहीं सह सकता ! दमदार या दुमदार ... क्या

नवनीत

मतलब ? फ़ार यौर इंफार्मेशन एंड नेशनल ऐक्शन, दुम का सीधा ताल्लुक होता है ! शेर या हाथी से ज्यादा दम कौन है ? पर फुट भर की दुम अटैचमेंट तो मक्खियां हंकाने को तरस जायेंगी जो जितना ज्यादा दमदार है, उतना

दुमें रखता है जिन्हें वह अलग-अलग ढंग से अलग-अलग समय पर हिला देता है। व्यंग्यकार दमदार होता है। कलम से खाल खींच देता है... नाना प्रकार की खटियाएँ खड़ी करने का हाँसला रखता है। पर आगे नाथ, पीछे पगहा सब साथ में रखते हैं ! बीवी, सास या साली ही क्यों ? औलादें क्या कम हैं ? अपने इन उल्लू के पट्टों के चलते न जाने कहां-कहां कितने गधों को पूज्य पिताजी कहना पड़ता है। हर कोई बर्नार्ड शाँ नहीं होता कि अकेले पैदा हुए, अकेले मर गये। हर इंसान की रीढ़ की आखिरी हड्डी 'काडल बोन' (दुम की हड्डी) कहलाती है। मजबूरियाँ इस हड्डी पर अदृश्य दुमें उगा देती हैं जिन्हें समय-समय पर हिलाना पड़ता है। व्यंग्यकार कोई अल्ला मियाँ नहीं होता ! कलम आग उगलती है, मगर बेटे की शादी पर एक बोरा शक्कर के परमिट के लिए दुम हिल जाती है। हम तीखे-कड़वे लिक्खाड़ों में कौन ऐसा है जिसकी दुम वक्त की घंटी बजते ही नहिल गयी हो ? मुझे मिलवा दो उससे। मैं उसकी दुम का मुआइना करना चाहूंगा। शुरूआत तुम्हीं से करना चाहूंगा। बहू (श्रीमती राजो किंजल्क) तुम्हें न खट-खटाती कि होली सिर पर है, कुछ एडी-शनल रकम का जुगाड़ करो... तो क्या तुम परिचर्चा के लिए लपकते ? बच्चू, बड़े-बड़े दमदार देखे हैं इन उंचास होलियों में ! दुमें सभी फटकारते हैं पतले वक्त



के. पी. सक्सेना

पर...। दुम की साइज में फर्क होता है। चेखुव और बुड्हाऊस की दुमें छोटी रही होंगी... मेरी दुम ज़रा इक्कीस है ! वस इतना ही फर्क है, प्यारे !

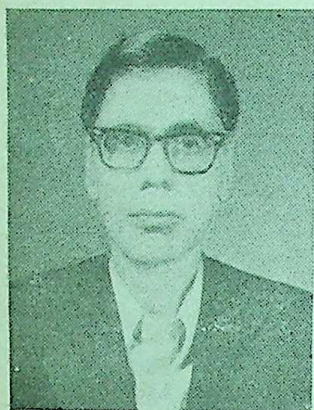
०००

नहीं, वह दम नहीं, दुम दिखाता है...

—शंकर पुणतांबेकर

आदमी खुद अपना जायज़ा ही नहीं लेता, हिम्मत नहीं होती। मैंने कई बार सोचा, अपने को देखू... आईने में परखू ! मेरे लिए तो यह सहज संभव भी था, क्योंकि मेरे और आईने के बीच पद, सत्ता, शराब, शोहरत या औरत की दीवार नहीं थी। मैं आईने के सामने सिर्फ एक वजह से नहीं जा सका, और यह वजह थी रोटी। मुझ जैसे सामान्य आदमी और

हिंदी डाइजेस्ट



शंकर पुणतांबेकर

आईने के बीच रोटी दीवार न बनती हो, पर चश्मा जरूर बन जाती है। सामान्य आदमी का सामान्यत्व इसी में समाया हुआ है कि वह चश्मा उतारता नहीं है। मैं भी उतार न सका और परख न सका कि मैं क्या हूँ? कितना दमदार, कितना दुमदार?

खैर, आज आपके लिए उतारता हूँ यह चश्मा...

और जब मैं आईने में देखता हूँ तो क्या बताऊँ मुझे विश्वास ही नहीं होता कि मैं अपने आपको देख रहा हूँ। मैं और मेरा लेखक दो अलग-अलग व्यक्ति दिखाई देने लगे। मैं के साथ मेरा शरीर है और लेखक के साथ सिद्धांत। मैं देख रहा हूँ कि लेखक रोटी, श्रृंगार और राजनीति का मखौल उड़ा रहा है, बड़ा दमदार बना हुआ है। मेरा लेखक जैसे कीचड़ प्रदेश का संवाद-

नवनीत

दाता हो और उसकी कलम भी सीधी टेढ़ी है। और फिर देखता हूँ, इस लेखक के पास खड़े मैं को। यह मैं लेखक के खड़ा होते हुए भी जैसे कोसों दूर रहा था। रोटी का मखौल उड़ाने लेखक... उसके सिद्धांत के विपरीत मैं... उसके शरीर के साथ मैं, रोटी लिए भिक्षापात्र है। इसने अपनी निधि को जिसमें उसका शरीर भी कुछ समाविष्ट है, दफ्तर के बैंक में कर दिया है और इस पर वह प्रति वेतन के नाम से रेकरिंग व्याज लेता कई बार यहां उसे अविवेक डांटता विवेक दम से मुकाबला करे तो मजाने आगे कभी उसे बेकार की सुननी पड़े नहीं वह दम नहीं, दुम दिखाता है।

लेखकीय नीतिमत्ता श्रृंगार के भी दम तोड़ देती है, जब मैं टाइपिस्ट उंगलियों को नाचते देखता हूँ और चोरी थोड़ी ऊपर भी निगाहें फेंक देता मेरा लेखक प्रतिरूप राजनीति को का ऐसा अस्पताल बतलाता है जहां स्वस्थ लोगों का इलाज होता है। जनता कराहती रह जाती है, वही जिसके नाम पर अस्पताल है। और विपरीत मैं 'मैं' को आईने में देखता हूँ कि डाक्टर के सामने मैं दम भरता हुआ, कराहती जनता आवाज को उस तक नहीं पहुंच रहा उलटे दुम दवाये मैं उसी की आवाज जनता में ले जा रहा हूँ।

भाई, मुझसे अधिक देर तक नहीं जाता। मैं फौरन वही रोटी का मा फिर चढ़ा लेता हूँ और आईने से आग हट जाता हूँ . . ।

०००

कौन होते हैं हमें दुम हिलाने से करने वाले
—लतीफ घोंघी

दिनों साहित्य में आप जिन आसामा-जिक तत्वों से परेशान हैं, उनमें से देश किजल्क एक हैं। यह जानते भी कि व्यंग्यकार और विशेष रूप से जैसे व्यंग्यकार विशुद्ध सामाजिक तत्व करते यह परिचर्चा आयोजित की है।

व्यकार दमदार होते हैं या दुमदार, यह पड़े-गोध का विषय हैं, और डॉ. वरसाने ल या डा. वालेंदुशेखर ही अधिकार

क इस बात को प्रमाणित कर सकते हैं।

तो सीधे सादे वाल बच्चेदार व्यंग्य

क हैं। इसमें भी शक नहीं कि हम

दार हैं। आपातकाल में हमारी दुम

ल आयी थी, यह बात भी सही है। हम

नदार किस्म के लेखक हैं, इसलिये

के सामने यह स्वीकार करने में हमें

बता हो रही है और विश्वास है आपको

होगी। उस काल में दूसरे व्यंग्यकारों

भी दुम निकली थीं लेकिन बड़े शहरों

रहने के कारण और वहां अच्छे 'जेंट्स

रों की सुविधा होने की वजह से

होंने अपनी पैटें और चड्डियां कुछ इस

दिल से सिलवा ली थीं कि लोगों को

ही नहीं चला कि वे दमदार बाद में



लतीफ घोंघी

थे, दुमदार पहले !

मैं इतना जानता हूँ कि बंदर खानदान का हूँ। पहले दुम थी, अब नहीं रही। अब केवल दुम होने का एहसास है। और आपको यह जानकर दुख होगा कि मैं दुम हिलाना भी जानता हूँ। आप यदि मुझे दमदार लेखक होने की गलतफहमी के शिकार हों तो यह विश्वास अपने अंदर से निकाल दीजिये। दुम हिलाना हमारी खानदानी आदत है इसलिये मैं भी हिलाता हूँ, लेकिन हिलाने में भूल कर बैठता हूँ। जहां दुम हिलानी चाहिये वहां नहीं हिलती। यह बात और है। जहां तक अपने दमदार होने का सवाल है मैं ओपनली चैलेंज करता हूँ कि मैं दमदार किस्म का व्यंग्यकार नहीं हूँ। होता, तो किसी बड़ी पत्रिका में कालम

हिंदी डाइजेस्ट

लिखता या फिर आज तक कोई सरकारी पुरस्कार से सम्मानित हो जाता, या राज्य सभा के लिए चुन लिया जाता। बहर-हाल, आप तो यही मानकर चलिये कि मैं दुमदार हूँ। दुम हिलाने का मामला मेरा व्यक्तिगत है। दुम हमारी है, हमारी मरजी आयेगी, उसके सामने हिलायेंगे या कटवा देंगे, इसमें आपका क्या जाता है! हम लेखक हैं और बुद्धिजीवी भी हैं, लेकिन चोर किस्म के बुद्धिजीवी हैं और आप कौन होते हैं हमें दुम हिलाने से रोकने वाले और यह जानने वाले कि हम कितने दमदार हैं या कितने दुमदार हैं!

०००

दम और दुम में विशेष अंतर नहीं होता

—प्रेम जनमेजय

अपन में दमखम बहुत है। इस महंगाई में अपने पिछहत्तर किलो वजन को बनाये रखना कम दम की बात नहीं है। देश की परिस्थितियाँ चुल्लू भर पानी में डूबने की प्रेरणा देती हैं और मैं बेशर्मी से जिये चला जा रहा हूँ। वैसे बेशर्म होना इस देश में सुखकर भी बहुत है। नंगे से तो भगवान डरता है, मैं साहित्य में नंगा हो गया हूँ, और दूसरों को करने के लिए तत्पर रहता हूँ। कुछ सज्जन किस्म के लोग मुझे देखते ही अपना रास्ता बदल लेते हैं। क्योंकि जब वे सबके सामने अपनी छद्म सज्जनता का ढोल पीटते हैं, मैं उनका यथार्थ सबके सामने ला देता हूँ। बेचारे, मुझे मुँह से गालियाँ देते जाते हैं

नवनीत



प्रेम जनमेजय

और हाथों से अपने यौवन को यत्न करते जाते हैं। ऐसे में मैं हो जाता हूँ। मुझ पर उनकी कोई असर नहीं होता है, पर यथार्थ-नग्न यथार्थ 'सर्वहारा' के जाता है।

मुझमें इतना दम है कि दुखती रग पर हाथ रख हरे कर सकता हूँ, आँखों में सकता हूँ, और 'क्रांति क्रांति' साम्यवादी देशों की सद्भावना कर अपनी संतान का भविष्य जत सकता हूँ। दम और दुम में नहीं होता है, बस छोटे 'उ' दम में छोटा 'उ' लगा दो तो आती है। और छोटे 'उ' 'उल्लू'। जहाँ यह छोटा 'उ' कोई कितना दमदार क्यों न

न जाता है। ज्ञानी पुरुष इस छोटे 'उ' को साथ रखते हैं, और समय पड़ने पर उसे लगाकर भौतिक पदार्थों का सुख प्राप्त करते हैं। इसे साथ रखकर ज्ञानी, जनता के सामने शेर की तरह दहाड़ता है और द्वेदार कालीनी कमरों में पहुंच कर लगाता है।

साली के साथ मामला दिल का होता है। वहां दुम नहीं हिलती है दिल हिलता है। जितनी सुंदर साली होती है, उतने ही दिल से दिल हिलता है। पर भाई, अपनी साली ही नहीं है अतः इस मामले पर सुभव की प्रामाणिकता प्रस्तुत नहीं कर सकता हूं। हां, पत्नी की सुंदर सहेलियों को साली मान कर दिल ही हिलाता हूं, और अगर पत्नी देख ले तो दुम हिलाने लगता हूं। वैसे वो वीर और होंगे, पत्नी के सामने जिनकी दुम हिलती है, यहां तो सारा वीर हिलता है। ऐसे में अपने सास-समुर को क्या कहूं, जिन्होंने मेरी पत्नी का विष्कार ही किया है।

०००

काध दुम रखना अपने आप में ऐसी कोई बुरी बात नहीं

— ज्ञान चतुर्वेदी

अपने आप को व्यंग्यकार की दुम समझता हूं और समझता रहता यदि आप अपनी परिचर्चा की दुम उठाये सामने न लाते! दम का दुम से क्या रिश्ता? सिवाय इसके कि एक सुविधाजनक छोटी 'उ' की भाषा सही जगह लग जाये तो अच्छे-अच्छों का 'दम' 'दुम' हिलाने लगता है। फिर



ज्ञान चतुर्वेदी

दुमदार भी दमदार हो सकते हैं और दमदार भी दुम दवाये-छुपाये मिल सकते हैं। शेर की दुम तो देखी ही होगी, आपने? एकाध दुम रखना अपने आप में ऐसी कोई बुरी बात नहीं! प्रश्न उसके सही इस्तेमाल का है। आप उसे दफ्तर में बाँस के सामने हिलाते हैं, अपने टुच्चे स्वार्थों के लिए मौके पर उसे दबा कर 'कू-कू' करते हैं और निरीह बलहीनों के समक्ष ज्ञान से ध्वज की तरह उठाये घूमते हैं। दुम अभिशाप है या वरदान?—प्रश्न दुम उठाता है। दुम सही जगह उठाकर खड़ा हो पाना हर ऐरे-नौरे के बस की बात नहीं। लोग दुम को लेकर बड़े केलकुलेटिव होते हैं। वे उसे वहीं उठाते हैं, जहां उसका उठना शास्त्र-सम्मत है। यूं भी 'रागदरवारी' के छोटे पहलवान ने कहा भी है कि यहां जिसकी भी दुम उठाकर निरीक्षण करो,

मादा नजर आता है ।

व्यंग्यकार आम तौर पर, दमदार होने का दम भर कर गलत लोगों के विरुद्ध विद्रोह की दुम उठाते हैं और भुगतते हैं । शरद जोशी गवाह हैं । साहित्य की रेवड़ में भेड़ चाल चलने वालों को दमदार माना जाता रहा है । परंपरा की कलगी और व्यवस्था की दुम उठाये बहुत से मुर्गे साहित्य में क्रांति की बांग दे रहे हैं और बाकायदा 'प्रगति' कर रहे हैं । व्यंग्यकार कुत्ते की दुम हैं कि इतना भुगतकर भी सीधे नहीं होते ! मैं इसी तरह का दुमदार होना पसंद करूंगा जो हर जगह दुम उठाकर विरोध में खड़ा हो सके । दमदार तो देश में और भी हज़ारों हैं, पर उनका दम फूल रहा है, यही उनका दमदार होना है !

०००

दुम एक यथार्थ है, दम उसके सहारे एक कल्पना —संतोष नारायण नौटियाल

सही प्रश्न तो केवल दुमदार होने का है । दम तो दुम के साथ अपने आप ही जुड़ा है । कुत्ते को देख लीजिये । दुम ऊपर उठी है तो आप कहेंगे कि जानवर दमदार है । दुम टांगों के बीच से होकर पेट से चिपकी है तो किसी को यह कहने की आवश्यकता नहीं कि उसका दम निकल गया या निकला चाहता है । दम का वास्तविक बैरोमीटर या संकेतक दुम ही है । दुम एक यथार्थ है, दम उसके सहारे एक कल्पना ! यदि किजल्क जी, आप जीव विज्ञान पढ़े होते (आपके प्रश्न से तो नहीं

नवनीत



संतोष नारायण नौटियाल

लगता कि पढ़े होंगे) तो आपको लगता कि प्राणी-जीवन का सारा विकास के साथ-साथ हुआ है । जीवन का जल में हुआ तो तैरने के लिए होना आवश्यक था ही । एक कोपी से ले कर कोटि कोपीय मानव की सारी विकास प्रक्रिया नौ महीने में पूरी हो जाती है । महत्वपूर्ण प्रक्रिया दुम के उल्लेख बढ़ने और लगभग गायब होने की मेरुदंड की अंतिम हड्डियां दुम के यदि आप व्यंग्यकार को मनुष्य तो आपको यह भी मानना पड़ेगा दुमदार है ।

दुर्भाग्य से मनुष्य की दुम दिख देती, इसलिये बहुत दिनों तक



उनकी अवकाश प्राप्ति के बाद व्यंग्य लिखे . . . । यहां तक कि मैंने अपने मकान-मालिक, मित्र, शत्रु, पुलिस, डाकू, जज, वकील, डाक्टर रोगी आदि पर भी व्यंग्य लिखे ! बहुत कम लोगों ने अपनी पत्नी पर व्यंग्य लिखे होंगे लेकिन मैं अपनी पत्नी पर भी धड़ल्ले से व्यंग्य लिखता हूँ—जब वह मायके चली जाती है । मैं तो आप पर भी व्यंग्य लिखने से नहीं चूकूंगा यदि यह वक्तव्य न छपा ! अब आप ही फैसला कीजिये कि व्यंग्यकार कितने दमदार हैं, कितने दुमदार . . . ?

०००

दम की बात छोड़ते हो दुमदारों के बीच

—डा. बालेंदुशेखर तिवारी

बहुत दम बांध कर, बहुत दम लगा कर नाकोदम करने की इस कला—व्यंग्य-कारी—के इलाके में हम दम साध रहे थे कि आपने हमारी दमदारी पर सवाल लगा दिया । भाई मेरे, वह व्यंग्यकार क्या जो दमदार न हो और वह आदमी क्या जो दुमदार न हो । चूंकि व्यंग्यकार सौभाग्य-वश आदमी भी होता है चुनांचे उसकी दमदारी के साथ दुमदारी दुम की तरह जुड़ी रहती है । यही अंदरूनी हाल है सबका और मेरा भी । अंतःपुर का समाचार खुलासा करना ही पड़ेगा, क्योंकि व्यंग्य-कार जो कुछ कहता है सच कहता है—सच के सिवा कुछ नहीं कहता । सच के हाइवे से उतर कर झूठ की घुमावदार गलियों में भटकने की जरूरत उसे तभी पड़ती है

हिंदी डाइजेस्ट

भारतीय विद्या भवन

पुस्तक विक्री विभाग

भवन के चुने हुए हिन्दी प्रकाशन

शीर्षक

लेखक

पृष्ठ

१-कृष्ण बन्दे जगद् गुरुम् (कलात्मक सज्जा, सचित्र : प्लास्टिक आवरण के साथ : रियायती मूल्य)	घनश्यामदास बिरला	१२३
२-बापू की प्रेम प्रसादी (चार खंडों में : कड़े कपड़े की जिल्द : रियायती मूल्य)	॥	१-५१५ २-४१८ ३-४०८ ४-४९२
(प्रथम खंड अप्राप्य)		
३-भगवान स्वामिनारायण के वचनामृत	अनुवाद : राम- वल्लभ शास्त्री	६४२
४-श्रीवेणुगीतम्	आर. कलाधर भट्ट	२८७
५-योग और विद्यार्थी	योगाचार्य हंसराज यादव	२०४
६-राष्ट्रनिर्माता सरदार पटेल	आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री	२६०
७-विश्वनागरी	रामेश्वर कन्हैयालाल लोहिया	८२
८-भारतीय विद्या	डा. श्रीधर भास्कर वर्णकर	१२६
९-विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर	इलाचन्द्र जोशी	२८२
१०-प्राचीन भारतीय मनोरंजन	मन्मथ राय	३३९
११-भारतीय संस्कृत और इतिहास	डा. बंजनाथ पुरी	२५२
१२-भारतीय संविधान के सिद्धान्त	चन्द्रभान अग्रवाल	३५७
१३-रवीन्द्र रत्नाकर	रघुवंशलाल गुप्त	१८४
१४-बद्रीनाथ की ओर	क. मा. मुन्शी	६६
१५-गीता का प्रेरक तत्त्व जीवन योग	काका साहेब कालेलकर	३८
१६-महानता के दृष्टान्त	योगाचार्य हंसराज यादव	१३२

प्राप्ति स्थान :

भारतीय विद्या भवन, कुलपति मुन्शी मार्ग, बम्बई-४००

तथा उसके सभी केन्द्रों पर

सारी शेखी दुम में घुस जाती है और
 पुरुष की शैली में दुम दवाने के सिवा
 और चारा नहीं रह जाता ।
 हम कितने दमदार हैं यह हमारी तमाम
 रचनाओं से ही स्वयंसिद्ध है ।
 की के महादमशाली व्यंग्यकारों की
 वन परंपरा के अनुसार कोई गैरदमदार
 रचना हमने आज तक नहीं लिखी है ।
 अपने उन्हें नहीं पढ़ा है तो भाग्यशाली
 रचना इतनी दमदार रचना पढ़ कर
 अपना दम घुट जाता । ऐ मेरे हमदम !
 दोस्त ! हमारे दमदार होने पर शक
 करता, वरना... वरना... हम दम लगा
 रही बात हमारे दुमदार होने की, तो
 में सविनय निवेदन है कि हम स्तरीय
 साधक भी हैं । दम और दुम के उभय
 को का तुलनात्मक अध्ययन किया जाय
 इस जंबूद्वीप के भारत खंड के शेष
 विद्वानों की तरह हमारी दुमदारी
 पलड़ा भारी नज़र आयेगा । कृपया
 अपनी दुम न सरकाइए, आपकी
 दमदारिता से हम सब सुपरिचित
 हे दमदारों के बीच दुमदार शिरोमणि,
 साहस है आपका कि दमदारी की
 छेड़ी है दुमदारों के बीच आज ।
 अपनी दमदारी पर इतराने वाले लोगों
 यह खास आदत होती है कि ऐसे लोग
 अपनी दुमदारी पर भी इतराते हैं । पत्नी
 परमेश्वर और साली को सर्वेश्वर
 मानने वाले पुरुषों की सारी पुरुषाई
 की दुम में घुसी रहती है । सर्कस में जो



डा. बालेंदुशेखर तिवारी

वीर निडरतापूर्वक शेरों को नचाता है, वह
 भी घर में पत्नी के सामने कांपता रहता है,
 सास के सामने हकलाता रहता है और साले-
 सालियों के समूह के सामने झेंपता रहता है।
 मैं तो अपनी अर्धांगिनी के सामने महज
 इसी कारण नतमस्तक रहता हूँ कि वह
 जिस कलाकारी के साथ मेरी कमीज़ में
 बटन टांकती है, उतनी ही लुभावनी कला
 दर्शाती हुई वक्त जरूरत डांटामृत भी
 पिलाती रहती है ।

पत्नी न रहे तो मैं अपनी कमीज़ में
 बटन कैसे टांक सकता हूँ; पत्नी न होती
 तो मैं सृष्टि की बहुत सारी स्त्रीवाचक
 खरीददारियों से साफ वंचित रह जाता ।
 पत्नी न होती तो मैं सास से साफ बच
 जाता, साली के चक्कर में नहीं पड़ता ।
 सालों से सालों तक महलूम रहता, वगैरह-

MUCH-AWAITED BOOK NOW ON SALE !
To BE READ, RE-READ AND PRESERVED !

Srimad Bhagavatam

By

KAMALA SUBRAMANIAM

With A Foreword

By

GHANSHYAMDAS BIRLA

(Printed on Superior Map Litho Paper, Royal Octavo Size,
pp. 672, Full cloth bound with an attractive jacket.)

Price Rs. 110 00

The *Bhagavatam* has been aptly described as the spiritual butter churned out of the ocean of the Veda Milk for the benefit of those "who are pure in heart, free from malice and envy, and are keen to hear it." Dry philosophy seldom appeals to the human mind. But in the *Bhagavatam* even the most abstruse philosophic truths are put across by means of stories and legends. This is the secret of its popularity among all classes of people.

Available from :

Bharatiya Vidya Bhavan

Kulapati K. M. Munshi Marg,

Bombay-400 007

And its Kendras.

बौरह । पत्नी के आ जाने पर एकमात्र गड़बड़ी यह हुई है कि अब मैं पलंग के दोनों ओर नहीं उतर पाता, वरना समाचार संक्षेप में अच्छे हैं ।

आदर्श भारतीय पति होने के नाते हम अपनी गृहस्वामिनी की दुम के पीछे लगे फिरते हैं और शुभ अवसर पा कर एकदम साकार दुम हो जाते हैं । इसकी एक वजह यह भी है कि जब-जब हम अपनी धर्म-पत्नी के मुखड़े पर नज़र डालते हैं, तब-तब हमें अपनी धर्मसालियों की याद सताने लगती है । इसलिए नहीं कि तीनों वहनों की तस्वीरें एक दूसरे से मिलती हैं,

बल्कि इसलिए कि अपनी पत्नी की सूरत से बेज़ार होने पर अपनी दोनों सालियों पर हम क्रमशः अपना दिल डालते रहे हैं । यह और बात है कि उन्होंने हमें घास तक नहीं डाली ।

लिहाज़ा हम अपनी पत्नी के महान भक्त बन गये हैं, उनकी दुम के पीछे लगे फिरते हैं और हमारी दुमदारी की खबर आप तक पहुँच गयी है । अब इस खबर को लोकरुचि का समाचार न बनायें, यही निवेदन है ।

‘बुरे हाल से या भले हाल से,
तुम्हें क्या हमारी बसर हो गयी ।’



व्यावसायिकता और साहित्यकार

‘साहित्यकार व्यावसायिकता पर उतर आता है तो उसका पतन हो जाता है । पैसे के मोल पर लिखा गया साहित्य जन-जीवन का सही चित्र खींचने में असमर्थ होता है ।’ ये शब्द थे प्रख्यात कवि, साहित्य मनीषी आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री के । लगभग पांच वर्ष पूर्व उन्होंने ये शब्द मुझसे एक निजी मुलाकात में कहे थे ।

उस दिन उनका नाम अखबार की सुर्खियों में छपा देखा, तो अनायास ही उनके द्वारा कहे गये शब्द सजीव हो उठे ।

बिहार में गंगा पुल पर महात्मा गांधी सेतु के निर्माण के अवसर पर बिहार के प्रसिद्ध कवियों को दस-दस हजार रुपये नकद और एक-एक शाल पुरस्कार-स्वरूप दिये जाने थे । पुरस्कार प्राप्त करनेवालों में आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री भी थे । परन्तु मुजफ्फरपुर के बुद्धिजीवी यह सुनकर सन्न रह गये कि शास्त्रीजी ने पुरस्कार लेना अस्वीकार कर दिया । उनकी राय में पुल के निर्माण में संलग्न व्यक्तियों को पुरस्कार दिया जाना चाहिए था । शास्त्रीजी की नाराजगी इसी को लेकर है ।

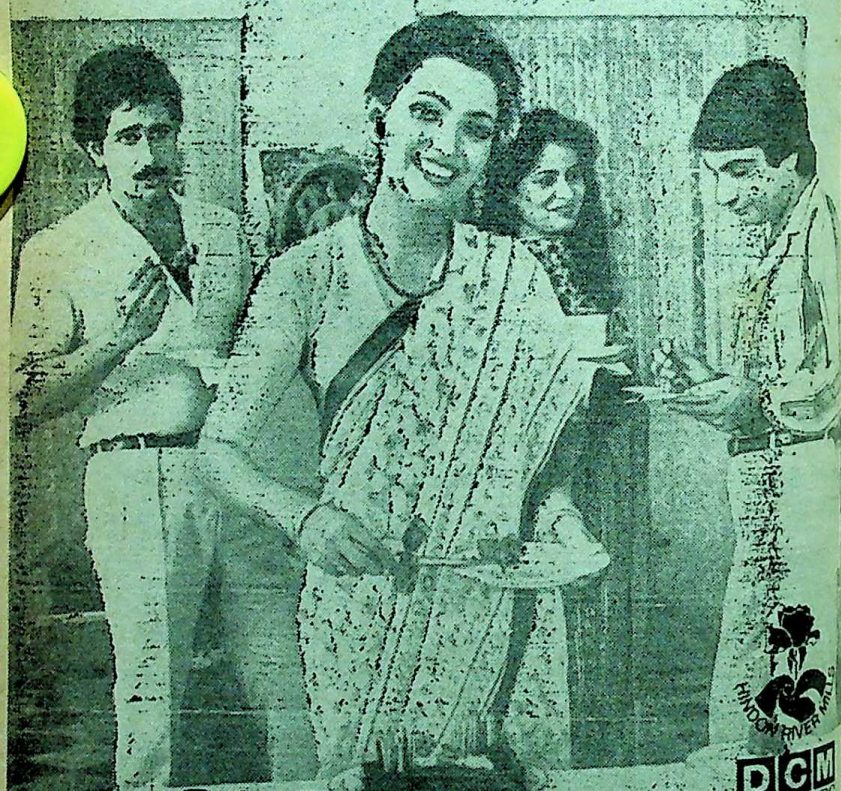
सोचता हूँ कि यदि शास्त्रीजी दस हजार रुपये पुरस्कार-स्वरूप ले लेते तो क्या हज़ं होता । पर उन्होंने सोचा होगा कि आनेवाली पीढ़ी उन्हें कहेगी—‘आचार्य जानकी-वल्लभ शास्त्री ने शासकों के अंगूठे चूसे’ । पुरस्कार को ठुकराकर उन्होंने महानता का वास्तव में परिचय दिया था ।



—शैलेन्द्रकुमार पाण्डेय

HINDON

हिन्दन के कपड़ों में
बात बन जाये कही भी...
कभी भी



साड़ियाँ, कुटिंग्स, शर्टिंग्स, ड्रेस मैटीरियल्स

५०० से भी अधिक डो सी एम रिटेल स्टोर्स तथा अन्य रिटेल स्टोर्स पर उपलब्ध



DCM
TEXTILES

श्रीरामकृष्ण परमहंस के प्रति रवींद्रनाथ ठाकुर की आदरांजलि

श्रीरामकृष्ण परमहंस मेरे लिए परम पूज्य व्यक्ति हैं। धार्मिक नास्तिकवाद के इस युग की चिलचिलाती धूप में हमारी पैतृक आध्यात्मिक संपत्ति का मूल्य उन्होंने भली भाँति पहचाना, और ऋषियों द्वारा उद्घोषित सत्य की स्वयं अनुभूति प्राप्त की। अपने मन की विशालता एवं उदारता के कारण ही वे ऊपरी तौर से प्रतिद्वंद्विनी दीखने वाली साधना-पद्धतियों में सामंजस्य की रेखा खींच सके। उनके सीधे-सादे, आडंबरहीन एवं सरल जीवन ने धर्मगुरुओं और पंडितों की शान को लज्जित किया।



श्रीरामकृष्ण परमहंस

मानव जाति का इतिहास इस खेदपूर्ण तथ्य का साक्षी है कि मानव को बंधनों से मुक्त करने के लिए निर्मित धर्मों ने ही किसी न किसी रूप में अपने चारों ओर नये बंधनों की दीवारें खड़ी कीं और मानव के मानसिक स्वातंत्र्य के साथ-साथ उसके स्वाभाविक अधिकारों को भी पांवों तले कुचल डाला। अनधिकारी व्यक्ति धर्म के क्षेत्र में नेता बने और मूल रूप में मानवों के अभ्युदय के लिए उपयोगी सत्य के नाम पर ही मानसिक विकृतियों के साथ-साथ बौद्धिक अंधता, विवेकहीनता, असहिष्णुता एवं नैतिक मूल्यों की शिथिलता की ही तूती बोलती रही।

जिस महान साधु पुरुष—श्रीरामकृष्ण परमहंस की जन्मशताब्दि मनाने के लिए यह सर्वधर्म परिषद् आयोजित हुई है, उसके प्रति अपनी आदरांजलि में आध्यात्मिक क्षेत्र के एक अन्य पूर्णप्रज्ञ महामानव संत कबीर के इन शब्दों के साथ समाप्त करता हूँ :

तोर हीरा हिराइल बा, किचड़े में
कोई ढूँढ़े पूरब कोई ढूँढ़े पश्चिम,
कोई ढूँढ़े पानी - पथरे में।
दास कबीरा ये हीरा का परावै
बांध लिहलै जीयरा के अंचरे में॥



दो गीत



यश मालवीय

[१]

सुधियों का सम्मोहन
छवियों का वृंदावन
मन के सपनों को आकाश दे रहा है

अलकों में सजी रात
पलकों में है प्रभात
मुझे ज्यों बुलाते हैं
मेंहदी से रचे हाथ
मेरा आवारापन
कितना है मनभावन
जीवन के लमहों को सांस दे रहा है

सिंदूरी तेज प्रखर
बालों के बीच संवर
रात की सियाही पर
सूरज के हस्ताक्षर
मन के सारे बंधन
तोड़ रहा आमंत्रण
मरुथल में मौसम विश्वास दे रहा है

ओठों पर श्लोक लिये
नयनों में जलें दिये
चंदा के दरपन में
चांदनी सिंगार किये
घूंघट का नंदनवन
खोल रहा है लोचन
पथिकों को पथ का आभास दे रहा है

—‘रामेश्वरम’ ए-१११, मेंहदौरी गृह-स्थान, रसूलाबाद, इलाहाबाद-४

[२]

सुबह हुई
कुहरे के पीछे हैं
बादल कुछ रुई-रुई

अनगिन आभार लिये
उजले त्यौहार लिये
दरपन से धूप मिली
सुरधनु साकार लिये
सुबह हुई
एक याद आयी है
आंखों से पीर चुई

पत्रों से नैन लिये
मेरा दिन रैन लिये
छुप गया पखेरू है
दो मीठे बैन लिये
सुबह हुई
फिर से इक आस जगी
खुली मुंदी छुई-मुई

खिल आयी कली-कली
घास छोड़ तुहिन चली
पंछी की बोली में
सूर्योदय गली-गली
सुबह हुई
वनवासिन दृष्टि हुई
सांसों में चुभी सुई



आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः

भवन की पत्रिका 'भारती' से समन्वित

नवनीत

मनुष्य के नवोत्थान का सूचक;
जीवन, साहित्य और संस्कृति का मासिक

प्रार्थना

अयं विश्वा अभिश्रियोऽग्निर्देवेषु पत्यते ।
आ वाजैरूप नो गमत् ॥

यह अग्नि जिस प्रकार सब भूतों के बीच में,
समस्त शोभाओं, क्रांतियों को धारण करता है,
उसी प्रकार यह अग्नि समस्त आश्रयार्थियों का
साक्षात् पालक होता है, और सब दिव्य पदार्थों
और दाताओं में भी सबसे अधिक ऐश्वर्यवान्
होता है। वह बलों, ज्ञानों, अन्तों और ऐश्वर्यों
सहित हमें प्राप्त हो।

कर्म और पुनर्जन्म



एन. ए. पालखीवाला

०००

कर्म के नियम का आधारतत्त्व है यह मान्यता कि इस जगत् में न कोई दंडित होता है, न पुरस्कृत ।

०००

संस्कृत के अनेक शब्दों की भांति, 'कर्म' शब्द का भी एक अकेले अंग्रेजी शब्द वाला पर्याय खोजना कठिन है। मानव की वैचारिक संपदा में कर्म के नियम का, जिसे संक्षेप में 'नैतिक कारणत्व का नियम' कहा जा सकता है, महत्त्वपूर्ण योगदान है। कितनी सुखी हो जायेगी मानव-जाति, यदि हम सब कर्म के नियम को भली भांति समझ लें, और उसे अपने जीवन में समुचित सम्मान दें। कर्म के नियम की पूरी समझ से पृथ्वी पर शांति और न्याय की स्थापना हो सकती है, यह बात मानव-जाति की समझ में कई पीढ़ियों और सदियों के बाद ही आ सकेगी।

कर्म के नियम का आधारतत्त्व है, यह मान्यता कि इस जगत् में न कोई दंडित होता है, न पुरस्कृत। जो होता है, कर्मों के अनिवार्य परिणामों के कारण ही होता है। जो जैसा बोता है, वैसा पाता है। दिक्काल में प्रत्येक स्तर पर, और सर्वत्र

अंतर्संबंध और जोड़ देखने में कोई भी अलग नहीं है, या यह ज्यादा ठीक होगा कि एक दूसरे से होकर रह ही नहीं सकता। अतीत से जुड़ा है, और यह विश्व दूसरे से। आदमी दूसरे आदमियों से जुड़े विचार कर्मों से जुड़े हैं, क्रियाओं से, और जीवित आत्माओं से। कर्म का नियम सब पर रूप से लागू है।

इसके अलावा, जिस प्रकार व्यक्ति को अपने कर्म का फल पड़ता है, उसी प्रकार प्रत्येक वर्ग, राष्ट्र और जाति को भी अपने कर्मों का फल भोगने पड़ते हैं। किसी वर्ग, राष्ट्र के सामूहिक कर्मों की धारणा महत्त्वपूर्ण है। अभी तक उसे सही समझा नहीं गया है। इस विषय में शोध आवश्यक है।

०००

पुनर्जन्म का सिद्धांत भी कर्म के

नवनीत

३४

के साथ ही जुड़ा है। कर्म के नियम के प्रेम के लिए यह जरूरी है कि उत्तरोत्तर जीवन का क्रम अबाध चलता रहे।

कृष्ण अर्जुन से कहते हैं, 'तुम और मैं दोनों अनेक जन्मों के क्रम से गुजरे हैं।

तुम्हें अपने पूर्व-जन्मों की याद नहीं है। मुझे है।' अंतर्दृष्टि और अंतःप्रेरणा के क्षणों में कवियों ने पुनर्जन्म के बारे में लिखा है।

मैली, बर्ड्सवर्थ, टेनीसन, ब्राउनिंग, रोज़ेटी, लांगफैलो और ह्यूटमैन की कुछ कविताओं से पता चलता है कि इन कवियों की पुनर्जन्म में गहरी रुचि और श्रद्धा थी।

सोलह वर्ष की अल्प आयु परलोक सिंघार जाने वाली विलिन होप को समर्पित एक कविता में कवि ब्राउनिंग उसे आने वाले जन्मों की याद इन शब्दों में दिलाते हैं :

'तुम पर मेरा दावा अभी तक शेष है, अपने प्रेम की खातिर !

कई जन्मों के पश्चात् ही शायद पूरा 'इंडियाज प्राइसलेस हैरिटेज' से साभार)

हो यह दावा, इस बीच,
मैं अनेक विश्वों के आरपार गुजर जाऊंगा।

बहुत कुछ जानना शेष है,
और, बहुत कुछ भूलना शेष है।

उस समय के आने तक,
जब मैं और तुम एक होंगे।'

जॉन मेस्फील्ड के विचार भी पुनर्जन्म के बारे में काफ़ी सुस्पष्ट हैं। वे कहते हैं :

'मेरी मान्यता है कि
जब कोई मर जाता है, तो उसकी आत्मा वापस पृथ्वी पर लौटती है;

कोई और मां उसे जन्म देती है,
और वह आत्मा नया शरीर धारण करके आती है।

दृढ़तर अवयवों और तीव्रतर मस्तिष्क के साथ,

पुरानी आत्मा नयी यात्रा आरंभ करती है।'।

(भारतीय विद्या भवन द्वारा प्रकाशित 'इंडियाज प्राइसलेस हैरिटेज' से साभार)



सलाह

लेखक विलियम डीन हौवल्स बहुत मोटा था और अधिकतर मोटे व्यक्तियों की भाँति बहुत ज़िदादिल था। एक बार एक मित्र जो बहुत लंबा और दुबला-पतला था, उससे मिलने आया। 'हौवल्स !' वह बोला, 'यदि मैं तुम्हारे जितना मोटा होता तो खुद को किसी लगा लेता।'।

'यदि मैंने कभी तुम्हारी सलाह पर चलने का विचार किया तो रस्सी की जगह मैं काम में लाऊंगा।' हौवल्स ने मुस्करा कर जवाब दिया। -कल्पना आंचलिया



आनन्दकुमार स्वामी



पश्चिम पर पूर्व का प्रभाव

०००
शोपनहार ने पश्चिम के मानस में पूर्व के दर्शन की जिस व्याप्ति की ओर
इंगित किया था, उसकी उपस्थिति के प्रमाण अब उपलब्ध होने लगे हैं।

०००

उन्नीसवीं सदी के आरंभ से भारत (पूर्व) और पश्चिम के साथ जो संबंध स्थापित हुए, उसमें ऐसी दो पृथक और पूरक प्रवृत्तियाँ दिखायी पड़ती हैं, जिनके महत्त्व को अभी तक नज़र अंदाज किया गया है। ये हैं वे अपने-अपने प्रभाव, जो दोनों की सभ्यता और संस्कृति ने एक दूसरे पर छोड़े। पूर्व का पश्चिमीकरण तो स्पष्ट दिखायी देता है, लेकिन पश्चिम का पूर्वीकरण इतना स्पष्ट नहीं है, और स्पष्ट हो भी जाये तो भी साधारणतया उसकी उपेक्षा की जाती रही है। वस्तुतः, इसका एक कारण यह भी है कि पूर्व का पश्चिमीकरण काफी सतही और सुस्पष्ट है, जबकि पश्चिम का पूर्वीकरण प्रच्छन्न और रहस्यमय है।

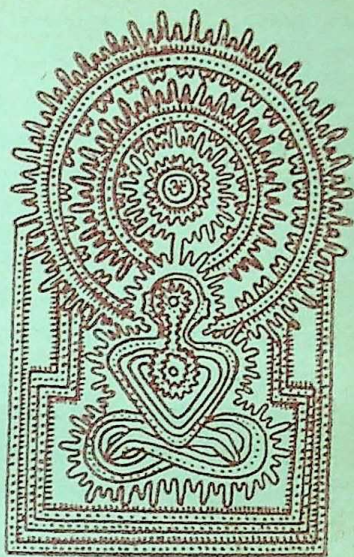
भौतिक, व्यावहारिक और प्रयोगा-श्रित जीवन के क्षेत्र में भारत को यह अहसास होता जा रहा है कि अब आदर्शों

और ध्येयों की खोज में उसने जीवन की उन्नति पर अधिक ध्यान दिया है। इस क्षेत्र में अपनी निष्कृति उत्तेजित होकर, आज वह निर्माणात्मक कार्यक्षमता के क्षेत्रों में अपनी प्रमाणित करने के उद्देश्य से परिश्रम होड़ में उठ खड़ा हुआ है।

इस बात के लिए भारत पश्चिम की चिर-ऋणी रहेगा कि पश्चिम भौतिक क्षेत्र में उन्नति करने की दी, उसे ऐतिहासिक और विवेक से संवेदन प्रदान किया, और विज्ञान के संदर्भ में उसके अंतर्गत नयी दिशा दी।

पश्चिम ने भी पूर्व से काफी कुछ और सीखा है। प्रकृति पर विचार करके, तथा भौतिक जीवन को प्रगति से समृद्धता के एक नये पहुँचाने के बाद, अब वह प्रत्येक

नयी प्रगति को नयी आलोचनात्मक
गाहों से देख रहा है। व्यावसायिकता
तो सर्वतोमुखी उन्नति उनके स्थायित्व
को क्षति पहुंचाने लगी है। ब्रिटेन के दस
तिशत लोग या तो जेल में मरते हैं, या
ग़ारखानों और पागलखानों में। निर्ध-
ता और संपन्नता, रोज़गार और बेकारी
आदि के बीच तेज़ी से बढ़ती हुई खाई
या ऐसे ही अन्य अंतर भी इस रोग के
क्षण हैं। स्वार्थपरता और अभद्रता की
प्रतिक्रिया अनिवार्यतः होती है, वह
रही है। भौतिक क्षेत्र में वैज्ञानिक
संशोधन और शोध का कार्य लगभग
समाप्त हो चुका है, और अब विज्ञानियों को
ऐलौकिक क्षेत्र में नयी-नयी विधियों
का अनुसंधान करने की आवश्यकता का
अनुभव होने लगा है। नये मनोविज्ञान
समस्याओं ने पुराने मनोविज्ञान और
समस्याओं को व्यर्थ बना दिया है।
आओं के क्षेत्र में, आलोचनात्मक और
नैतिक सुविधाओं के विकास के कारण,
कलाओं की सर्जनात्मक शक्ति काफ़ी
बढ़ गई है। विज्ञान ने कला को इस
तक दूषित कर दिया है कि दोनों
के ध्येय गड़बड़ा गये हैं।
एक ओर जहाँ 'वैज्ञानिक भौतिकवाद'
नयी सामयिकता खो बैठा है, वहाँ
दूसरी ओर सारे पुराने धार्मिक सूत्र
बातहीन हो गये हैं। आज के अग्रणी
नैतिक परंपरागत नैतिकता के मान्य
मंदिरों को भी सन्देह की दृष्टि से देखने



चित्र : दिनेश कुमार

लगे हैं। जीवन के प्रत्येक विभाग में विकास
के चरमोत्कर्ष के साथ-साथ किसी नये
संश्लेषण की आवश्यकता भी अनुभव
की जा रही है।

भौतिक दृष्टि से सम्पन्न ब्रिटेन के मन
में यह अंध-धारणा घर कर गयी है कि
भारत को एकता के सूत्र में बांधकर उसे
सभ्य और जागरूक बनाने का उत्तर-
दायित्व उसका है। लेकिन अब धीरे-धीरे
उसे सर थॉमस मुनरो के इस कथन की
सच्चाई का पता चलता जा रहा है कि यदि
दो देश आपस में सभ्यता का आयात-
निर्यात करने लगे, तो उसका निर्यात करने
वाला देश शीघ्र ही अपने को देनदार
पायेगा।

शोपनहार ने पश्चिम के मानस में पूर्व के दर्शन की जिस व्याप्ति की ओर इशारा किया था, उसकी मौजूदगी के प्रमाण मिलने लगे हैं। पूर्व ने पश्चिम को जिस नयी दुनिया के दर्शन कराये हैं, वह उस रिनैसां से कहीं अधिक गहरे और व्यापक रिनैसां की प्रेरणा बनेगा, जिसकी पहचान पश्चिम ने की थी। इसे भाग्य की विडम्बना ही कहा जायेगा कि जहां पूर्व का पश्चिमीकरण खुले आम हुआ, वहां पश्चिम का पूर्वीकरण जैसे अंधेरे में हो गया। लेकिन, यह पूर्वीकरण इतना गहरा हुआ है कि पश्चिम के अनेक चिंतकों के सिद्धांत, आदर्श और उद्देश्य पाश्चात्य रंग में रंगे अधिकांश भारतीयों के सिद्धांतों, आदर्शों और उद्देश्यों से कहीं अधिक भारतीय हैं। संस्कृति के किसी भी विभाग में पूर्व की उपेक्षा करने का साहस आज पश्चिम में नहीं है।

हिंदुत्व : प्रेरणा-स्रोत

पश्चिम में जिस 'नये धर्मविज्ञान' की चर्चा आरंभ हुई है, वह हिंदुत्व के अलावा और क्या है? थियोसोफिकल आंदोलन का प्रेरणा-स्रोत भी हिन्दू धर्म और भारतीय दर्शन ही है। समाजवाद जिस लक्ष्य को पाने के लिए प्रयत्नशील है, वह भारतीय समाज की प्रजातंत्रीय संरचना का सदा से आधार रहा है। लंदन में भारतीय कला की प्रदर्शनियां होती हैं। किसलिये? वहां के लोगों के ज्ञान-भंडार में वृद्धि की खातिर। अब यह धीरे-धीरे

नवनीत

सुस्पष्ट होता जा रहा है कि नई-नई जैसा-जैसा दर्शन पाश्चात्य जीवन और विचारों को गहरे रूप से प्रभावित करता है, और आगे भी करेगा। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में भारतीय विज्ञान ने पश्चिम की कुछ विधाओं के विकास में योगदान दिया था। प्राचीन भारत के वैज्ञानिक लेखकों ने अपने अंतर्ज्ञान के माध्यम से कुछ जाना था, उसका अनुमोदन पश्चिम ने ही किया। विज्ञान के अनेकानेक सिद्धांत में पश्चिम के विचारों का मिल रहा है। (तमिल में शिव के चित्रों का नृत्य का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है कि जिस प्रकार लकड़ी में अग्नि की भाँति देवी ऊर्जा विराजमान है।) और जीता

पश्चिम के कलाकारों और लेखकों ने पश्चिम के छोटे-छोटे दल प्रेरणा के लिए पूर्व की ओर देख रहे हैं। एक अंग्रेज लेखक ने हाल ही में लिखा था कि पश्चिम की कला में अब जब कभी नयी प्रेरणा आती है तो वह पूर्व से ही आयेगी।

अपनी वर्तमान लेखमाला में मैंने के इसी संदेश के बारे में कुछ लिखा चाहूंगा।

०००

यूरोपियन कला अधिकांश प्रदर्शनियों और रॉयल अकादमी की कला-अनुकरणमूलक प्रवृत्तियों से ग्रस्त हुई है। वार्षिक प्रदर्शनियों में मानव और जड़ पदार्थों के जो चित्र मिलते हैं, वे इन्हीं प्रवृत्तियों

जैसे-जैसे आदमी प्रकृति से दूर होता गया, वैसे-वैसे अनुपूरक प्रवृत्ति के अनुसार उसके मन में प्रकृति और उसके विभिन्न भावों के प्रति झुकाव अधिकाधिक बढ़ता गया। वास्तव में, प्राकृतिक दृश्यों की आवश्यकता हमें नज़र में इसलिये अधिक अनुभव होती है कि वहाँ हम इन दृश्यों के माध्यम से उस सौंदर्य और शांति को पाना चाहते हैं, जो प्रकृति के अंग हैं। जो प्रकृति के बीच जी ही रहा है, उसे प्रकृति के चित्रों की भला क्या आवश्यकता ? प्रेमिका के पास बैठे प्रेमी को प्रेमिका के अति की भला क्या आवश्यकता ? प्राचीन मूल में जब आदमी प्रकृति के बीच रहता और जीता था, और सदा चारों ओर से और वस्तुओं से घिरा रहता था, उसे प्रकृति के धर की दीवारों पर चित्र लगाने की जरूरत नहीं होती थी।

यथार्थवादी कला

यह यथार्थवादी कला जो सत्य और प्रकृति का सही चुनाव करके उसके मूल भावों को उभारती है, कलाकार और प्रकृति दोनों के लिए शिक्षाप्रद है, क्योंकि वह उन वस्तुओं को अधिक प्रेम करने के लिए है, जिन्हें हम पहले चित्रित रूप में देखते हैं। यह भी 'प्रकृति की ओर वापस आने' का अभियान का ही एक अंग है। इसी प्रकार एक अंग्रेज कलाकार-मित्र ने मुझे लिखा है: 'आपने डिज़ाइन और वास्तविक जीवन के अध्ययन के स्थान पर उसके

निदर्शन पर जो बल दिया है, वह डिज़ाइन संबंधी मेरे सिद्धांत से बहुत ज्यादा मिलती है। तो भी, मैं यह कभी नहीं चाहूंगा कि कोई कला के तरुण छात्रों से प्राकृतिक रूप-विज्ञान के प्रति उनका सच्चा और उत्कट लगाव और स्नेह छीन ले, जो उन्हें आनंद देने के अलावा काफ़ी कुछ सिखाता भी है। यदि हम ऐसा करेंगे तो हम भावी कलात्मक उपलब्धियों के द्वार ही बंद कर देंगे। ऐसी यथार्थवादी कला दर्शक को कृत्रिमता से सत्य की ओर ले जाने में सहायक होगी।'

लेकिन इस प्रकार की यथार्थवादी कला में आवश्यकता से अधिक लिप्त होकर हम आदर्श और अमूर्त कला को विलकुल भूल सकते हैं। इसलिए यथार्थवादी कला को कला का अंतिम लक्ष्य मान लेना एक अक्षम्य भूल है।

और इससे भी बड़ी भूल है यह समझ बैठना कि कला का मुख्य या एकमात्र उद्देश्य, विषय को गौण मानकर, उसकी तकनीक में सुधार करना है। विषय को गौण मानने की इस प्रवृत्ति के कारण ही, आधुनिक कला और साहित्य में 'यथार्थ' का पर्याय असुंदर और कुरूप हो गया है।

कलाकार को अनुकरण मूलक प्रवृत्तियों से भी बचना होगा, नहीं तो उसकी कला की सृजनशीलता समाप्त हो जायेगी, और वह ह्रासोन्मुख होने लगेगी।

(शेषांश पृष्ठ ५१ पर)

विश्व और व्यक्ति



प्रयाग

घटनाओं की निरंतरता ही विश्व है। विश्व का अनुभव हम अविच्छिन्न घटना-क्रम द्वारा ही कर पाते हैं। प्रत्येक घटना में अनिवार्यतः चार आधारभूत तत्व अंतर्निहित रहते हैं: (१) आकाश अथवा स्थान, (२) काल अथवा समय, (३) द्रव्य अथवा ऊर्जा, एवं (४) चेतना। इन चारों तत्वों की विलक्षणता इसमें है कि वे सभी साथ-साथ ही रहते हैं, उनमें से किसी भी एक के अभाव में शेष तीन भी लुप्त हो जाते हैं। वे वस्तुतः अलग-अलग हैं ही नहीं, एक ही अस्तित्व के चार भिन्न-भिन्न पहलू हैं। हमारी इंद्रियां उस अस्तित्व का समग्र एवं एकात्मक दर्शन करने में असमर्थ हैं, वे केवल उसके अलग-अलग पहलुओं का ही अनुभव कर पाती हैं। भौतिक विज्ञान की शोधों ने भी यह सिद्ध पाया है कि आकाश एवं काल 'दिक्-काल' नामक एक ही मूलभूत तत्व के दो भिन्न-भिन्न रूप हैं। यह दूसरी बात है कि हमें आकाश एवं काल की अलग-अलग अनुभूति ही संभव है; 'दिक्-काल' का सीधा भान हमें नहीं होता-हो ही नहीं सकता। इसे हमें अपनी इंद्रियों की स्वाभाविक सीमा ही समझना चाहिये। इतना ही नहीं

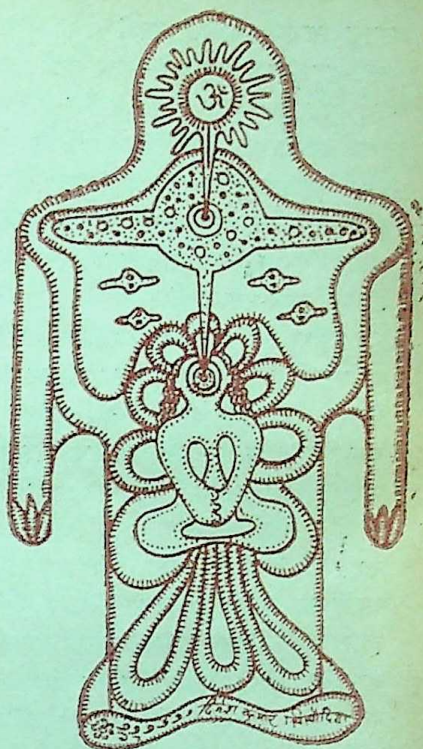
वैज्ञानिक खोज-बीन से यह तथ्य प्रकट हुआ है कि सभी प्रकार के एवं सभी संभव प्रकार की ऊर्जाएं तुल्य हैं, वे सिद्धांततः अंतर्परिवर्तनीय स्थूल वैज्ञानिक अध्ययनों के द्वारा सृष्टि की एकात्मता, अविभक्तता, आदि का स्पष्ट पूर्वाभास देते हैं।

आकाश असीम है। यह कहना है कि अमुक बिंदु पर आकाश होता है और अमुक बिंदु पर नहीं। इसी प्रकार समय अथवा काल भी अनंत है। उसका प्रारंभ अथवा अंत सर्वथा अकल्पनीय हैं। यही वास्तविकता अथवा ऊर्जा के लिए भी पूर्णतः सत्य है। वे न तो अनायास ही शून्य में हो सकते हैं और न ही शून्य में उत्पन्न हो सकते हैं। ऊर्जा संरक्षण का सिद्धांत इस सर्वतः सिद्ध एवं निरपवाद नियम का ही चतुर्थ अतिव्यापक प्रतिपादन है।

अब सृष्टि के चतुर्थ अतिव्यापक प्रतिपादन चेतना-पर आये। इसमें संकल्प करने वाला मन, चिंतन-मनन करने वाला बुद्धि, स्मृतियों को संचित करने वाला चित्त तथा सीमित अहं अथवा अहंकार चारों ही सम्मिलित हैं। चेतना आकाश एवं काल के अंतर्हीन

में द्रव्य अथवा ऊर्जा को लेकर होने वाली घटनाओं द्वारा उत्पन्न अनुभवों का अनंत भंडार है। प्रायः स्मृतियों के इस अथाह महासागर का एक नगण्य अंश ही सक्रिय बना रह कर जीवन का नियमन-निर्धारण करता रहता है; चेतना की शेष, लगभग संपूर्ण ज्ञान-राशि हमारे अंतर्मन में दबी-छिपी एवं उपेक्षित-सी पड़ी रहती है। यह विशाल निष्क्रिय निधि कभी-कभी हमारे सक्रिय मन के लिए स्वप्न आदि के द्वारा कुछ संकेत भी प्रक्षेपित करती है परंतु तात्कालिक व्यस्तताओं के दाव के कारण सक्रिय मन उन्हें ग्रहण ही नहीं कर पाता। जीवन की सर्वाधिक सूक्ष्म, दुःसाध्य परंतु स्वभावतः वांछित मांग ऐसी स्थिति को साकार करना है जिसमें हमारी चेतना बिना किसी अंतर्द्वंद्व के समग्रतः, एकात्मतः, पूर्णतः क्रियाशील रह सके।

हमारा मन व्यक्त सृष्टि का अभिन्न एवं अविभाज्य अंग है। द्रव्य-पिंडों के साथ दिक्-काल में होने वाली घटनाओं का अवलोकन, अध्ययन एवं उपयोग करते रहना ही उसके लिए संभव है। कहां, कब, कैसे और क्या आदि प्रश्नों की सहायता से मन सृष्टि के भीतर घटती रहने वाली बातों को देखता, समझता, प्रभावित करता रहता है। चेतना के प्रश्न स्वभावतः सृष्टि-वद्ध अर्थात् स्थान-वद्ध, समय-वद्ध एवं द्रव्य-वद्ध हैं; उनकी गति निस्सीम जैसे लगने वाले संसार की सीमाओं के भीतर-भीतर ही



संभव है। मन के ये प्रश्न सृष्टि के घटक हैं, अवयव हैं, अंग हैं। उनकी गति सृष्टि के उस पार कैसे हो सकती है? अतः विश्व का सृजन कहां-कब-कैसे हुआ अथवा यह सृजन किसने किया आदि प्रश्न चेतना के लिए प्रत्यक्षतः असंभव हैं; ऐसे प्रश्नों में मन को उलझाना उसकी शक्तियों की मूढ़तापूर्ण एवं अक्षम्य बर्बादी है। मन यदि सृष्टि से पूर्णतः भिन्न तत्व होता तथा सृष्टि की उत्पत्ति के पूर्व भी उसका अस्तित्व रहा होता, तब तो ऐसे प्रश्न

उसके सामर्थ्य के हो सकते थे। सृष्टि कहां-कब-कैसे प्रारंभ हुई—यह पूछने का अर्थ होता है स्थान कहां-कब-कैसे प्रारंभ हुआ, समय कहां-कब-कैसे प्रारंभ हुआ, द्रव्य कहां-कब-कैसे प्रारंभ हुआ और बुद्धि कहां-कब-कैसे जन्मी? ऐसे सभी प्रश्न मन के लिए सिद्धांततः अनुत्तरेय हैं, वे बुद्धि-अगम्य हैं।

संसार में चेतना का अनुभव द्रव्य के माध्यम से ही हो पाता है। पदार्थ निरपेक्ष चेतना जैसा कुछ हो ही नहीं सकता। चेतना और पदार्थ में कोई मौलिक भिन्नता नहीं है; वे वस्तुतः एकात्मक, अभिन्न ही हैं। जैसा जल-अन्न आदि हम ग्रहण करते हैं वैसा ही हमारे चित्त-मन-बुद्धि आदि का गठन हो जाता है और जैसी हमारी बुद्धि होती है सामर्थ्य एवं पदार्थों का वैसा ही विनियोग-उपयोग हम कर पाते हैं। पदार्थों में चेतना की अभिव्यक्ति के अनेक स्तर देखने को मिलते हैं। निर्जीव तथा सजीव पदार्थों में चेतना प्रत्यक्षतः भिन्न-भिन्न स्तरों पर व्यक्त हुई दिखाई देती है, तो भी निर्जीव पदार्थों को अचेत नहीं कहा जा सकता। निर्जीव पदार्थ-जगत में जिस निरपवाद प्रामाणिकता के साथ प्राकृतिक नियमों का पालन होता है वह उनके अपने स्तर की सहज, जागृत एवं सुव्यवस्थित चेतना का ही द्योतक है। ग्रहों-उपग्रहों-सूर्यों-नक्षत्रों नीहारिकाओं आदि अंतरिक्षीय पिंडों का गुरुत्व-बल के प्रभाव में सुसंगत नित्य-

नर्तन, विद्युत-चुंबकीय बलों के प्रभाव, पदार्थों की ठोस-द्रव-गैस आदि अवस्था तथा उनके अन्यान्य सामान्य एवं विचित्र गुणधर्मों की उत्पत्ति, प्रबल बलों के प्रभाव में परमाणुओं के विघटन, नगण्य आकार के न्यूक्लियसों के विघटन का घनीभूत हो जाना आदि सन्निगम अत्यधिक नियमबद्धता के साथ हो रहे हैं। इसी कारण तो विभिन्न तत्कारिक वैज्ञानिक आविष्कार संभव हो सके हैं। क्या ये सब तथ्य जड़ कारण वाले पदार्थों में भी प्राकृतिक चेतना के विद्यमान होने के पक्ष में निर्विवाद प्रमाण जैसे ही नहीं हैं?

सजीव पदार्थों की चेतना पदार्थों की तुलना में स्पष्टतः भिन्न की है। वे न्यूनाधिक स्वेच्छ गति की क्षमता रखते हैं, जड़ पदार्थ आत्मसात् कर अपने शरीरों की वृद्धि आदि करते रहते हैं, श्वासोच्छ्वास विधि से अपनी देहों को शुद्ध करते हैं एवं अपने जैसे शरीरों के पुनरुत्पत्ति की प्राकृतिक क्षमता भी रखते हैं। स्पतियों में स्वेच्छ गतिशीलता होती है, उनकी श्रवण, घ्राण, दंष्ट्रा आदि की संवेदनाएं—यदि होती हैं तो नगण्य जैसी ही हैं, उनकी वाक्पशु-पक्षी जगत में इच्छानुसार पशु-पक्षी जगत में इच्छानुसार फिरने की क्षमता पेड़-पौधों की अत्यधिक विकसित है, उनकी

संघ-स्पर्श आदि की ज्ञानेंद्रियां यथेष्ट
 हैं, उनके मस्तिष्क शारीरिक
 कर्तव्यों के संदर्भ में स्वाधीन बौद्धिक
 शक्ति का सामर्थ्य तो रखते हैं
 परंतु तर्क-वितर्क-चिंतन-मनन-संवाद आदि
 योग्यता नहीं रखते। मानव देह
 प्राणि-जगत की सर्वाधिक सामर्थ्य-संपन्न
 एवं सृजनशील कृति है। मनुष्य की दो
 शक्तियाँ द्वारा चलने-दौड़ने आदि की सुविधापूर्ण
 शक्ति, हाथ के पंजों की विशेष बनावट के
 कारण भारी बोझ उठा पाने एवं तरह-
 तरह का सृजन करने का उसका विशेष
 सामर्थ्य तथा सुव्यवस्थित तर्क-वितर्क
 चिंतन-मनन-संवाद-संभाषण आदि की
 निमित्ताकारिक संभावनाओं से युक्त उसकी
 शक्ति ने उसे प्रत्यक्षतः संसार का सर्वाधिक
 सामर्थ्य, सृजनशील तथा विकट परिस्थितियों
 भी निर्वाह हेतु आश्चर्यजनक अनुकूल-
 मत्ता से युक्त प्राणी बना दिया है।
 क्या इसे विडम्बना ही नहीं कहेंगे कि
 मानव देह जैसे कल्पतरु समान साधन
 वायजुद मनुष्य जलालत, मायूसी,
 प्रता, रोग, शोक, अशांति आदि में
 भग्न है? अथाह सामर्थ्ययुक्त मनुष्य
 का समृद्धियुक्त विश्व का वरदान
 भी अतृप्त, संतृप्त क्यों है? मनुष्य
 को निर्वाह के सभी साधन सर्वांश में
 मनुष्यों, पशु-पक्षियों एवं प्रकृति
 ही प्राप्त कर पाता है। सभी शरीर
 पर पूर्णतः अवलंबित हैं, उससे
 भग्न हैं। परस्परावलंबन ही सृष्टि का

धर्मविवाद नियम है। यदि सभी मनुष्य
 अपने-अपने सामर्थ्य एवं प्राकृतिक साधनों
 का परस्पर स्नेह, सहयोग, एवं सेवा के
 भाव से उपयोग करें तो क्या किसी के
 लिए भी अभाव, अशांति, संघर्ष, दुःख
 आदि भुगतना आवश्यक रह जायेगा?
 अनंत शांति, आनंद, ऐश्वर्य, सौंदर्य,
 माधुर्य आदि का सहज अधिकारी मनुष्य
 आखिर द्वंद्वात्मक व्यथाओं में निरीह-सा
 बना कैसे जकड़ गया है?

मानव जीवन की वर्तमान असह्य
 दुर्दशा एवं विषादमयता के मूल में उसकी
 अपनी भूल या भ्रांति ही है। हम मान
 लेते हैं कि भिन्न-भिन्न शरीरों के स्वामी
 भिन्न-भिन्न व्यक्ति हैं। यह मान्यता ही
 मनुष्य की आत्मक्षयी भ्रांति है; इसी के
 कारण विश्व की पूर्णता एकात्मता,
 समग्रता खंड-खंड हो जाती है। विश्व
 पूर्ण, सुसंगत, अविभाज्य एवं अविभक्त
 अस्तित्व बने रहने के बजाय परस्पर संघ-
 र्षरत असंख्य टुकड़ों का ढेर जैसा बन
 जाता है। इसी विभाजन में विश्व के
 बिखराव, विघटन तथा विनाश के सभी
 बीज छिपे हैं। संसार में देह के स्तर
 पर तो भिन्नता विद्यमान है ही, परंतु
 इस भिन्नता में ही उसका सौंदर्य, उसकी
 सार्थकता है। शरीरों की भिन्नता और
 उनके परस्परावलंबन में उनके मध्य
 स्नेहशीलता, सहयोग, सेवाशीलता आदि
 का अपरिहार्य प्राकृतिक विधान निहित
 (शेषांश पृष्ठ ५१ पर)

डा. मणिशंकर आचार्य



स्वतंत्रता, शिक्षा और संस्कृति

स्वातंत्र्योत्तर भारत विकास की ओर अग्रसर है। एक विकासशील देश को अनेक आंतरिक और बाह्य समस्याओं से जूझना पड़ता है। भारत भी इसका अपवाद नहीं। प्रगति के बावजूद वह आज अनेक समस्याओं से ग्रस्त है। ये समस्याएं जितनी अधिक हैं, भविष्य के प्रति चिंता भी उतनी ही स्वाभाविक है। जयदेव सेठी कह रहे हैं कि आने वाले दशक खतरनाक है। महंगाई, हिंसा, लूटपाट, अत्याचार और भ्रष्टाचार की बाढ़ आयी हुई है। हमारे विचार और व्यवहार में भयंकर द्वैत है। नैतिक मूल्यों के निरंतर ह्रास के कारण समाज का चेहरा कुरूप होता जा रहा है। आज शिक्षा केवल प्रमाणपत्र बांट रही है, राजनीति सत्ता-लोलुपता का पर्याय बन गयी है, धर्म अपनी पुरानी खोल में ऊंध रहा है और तथाकथित योगियों ने योग की दूकानें खोल ली हैं। शिक्षा के ऊंचे सजीले बंदन-वारों के नीचे राष्ट्रीय चरित्र की कुरूपता देखकर मस्तक लज्जा से झुक जाता है। इस प्रकार भारत को दो मोर्चों पर लड़ना पड़ रहा है। एक ओर भारत के द्वार-पार

युद्ध का कोलाहल है और दूसरी ओर भीतर समस्याओं की धधकती हुई अतएव प्रश्न उठता स्वाभाविक देश इन संकटों से कैसे उबरेगा जो भी व्यक्ति भारतीय चिंतन तनिक भी जुड़ा हुआ है, वह कह सकता है कि चिंता की ऐसी आग नहीं। क्योंकि श्रीअरविंद के 'अवनति एवं पतन के निरुद्धतम' भी भारत की आत्मा मर नहीं बल्कि वह केवल सोई हुई, ढकी पाशों से जकड़ी हुई थी। स्वतंत्रता बाद अपनी समस्याओं से जूझते भारत ने चीन और पाकिस्तान के मणों को झेला है और अपने और अस्मिता की रक्षा के लिए संकल्पवान बना है।

इस अस्मिता की रक्षा से क्या है। इसका तात्पर्य है भारत अतीत से जुड़ना, उसकी आत्मा को देखना और उसकी महान् संस्कृति से प्रेरणा ग्रहण करना। संस्कृति भारत की जीवन-रेखा प्राण है। पाश्चात्य सभ्यता की

नवनीत

४४

में अतीत अन्य देशों में मर गया है, किंतु भारत में उसकी धड़कनें आज भी सुनाई पड़ती हैं। अपने महान् अतीत की यह प्राणवान धारा आज कुछ क्षीण भले ही हो गयी हो, किंतु वह सर्वथा सूखी नहीं है। देश का नव निर्माण अतीत की सुदृढ़ नींव पर ही हो सकता है। अपने अतीत की उपेक्षा करके कोई भी देश महान नहीं बन सकता। भारत अतीत में महान् था किंतु भविष्य में वह और भी महान्

को अपूर्ण मानते हैं। उनके अनुसार आध्यात्मिक स्वातंत्र्य में एक उच्चतर जीवन जीना ही हमारा लक्ष्य है। भारत भौतिक दृष्टि से समृद्ध और संपन्न होना चाहिए, किंतु यही उसका अंतिम लक्ष्य नहीं है। आज हमारा जीवन भौतिक धरातल पर तो ऊपरी टीमटाम और वाह्याडंबरों से भरता जा रहा है, किंतु हमारा अंतस् जैसे खंड-खंड हो बिखर गया है। अंतर्निर्माण की सुदृढ़ नींव के



हो सकता है। आवश्यकता है सही दिशा में चिंतन करते हुए नये संकल्पों से भरी हुई और कर्म में ढली हुई युवा पीढ़ी के सशक्त हाथों की। अब उसे केवल स्वप्न-जीवी ही नहीं, कर्मजीवी भी बनना है। उसे यह समझना है कि भारत की स्वतंत्रता केवल स्वच्छंदतापूर्वक मनमाने उपभोग के लिए नहीं है।

भारत की स्वतंत्रता जीवन के उच्चतर लक्ष्यों की परिपूर्ति के लिए है। इसीलिए श्रीअरविंद हमारी वर्तमान स्वतंत्रता

बिना जीवन रूपी भवन की दीवारें खोखली होती जा रही हैं। इस अंतर्निर्माण का कार्य करती है संस्कृति किंतु इसे आत्मसात न करने के कारण आज हमारे जीवन में एक गतिहीनता सी आ गयी है। इस जड़ता और गतिहीनता को समाप्त करने के लिए हमें सर्वप्रथम शिक्षा से आरंभ करना होगा। शिक्षा के चरमराते ढांचे में नयी प्राण प्रतिष्ठा आवश्यक है। आज के नये संदर्भों में शिक्षा के निर्देशक सिद्धांत सत्य, सामंजस्य और स्वाधीनता होने

चाहिए। जब हम ये लक्ष्य निर्धारित कर आगे बढ़ेंगे तो यह शिक्षा केवल भारत के लिए ही नहीं बरन आगे चलकर सारी मानव जाति के लिए भी होगी। पूर्ण शिक्षा शरीर, प्राण और मन का विकास करती हुई अंतरात्मा की शिक्षा होगी जिसकी परिणति सामंजस्य और समरसता से पूर्ण उच्च आशय के जीवन में होगी।

आज शिक्षक और छात्र के बीच बढ़ती हुई दूरी शिक्षा की सार्थकता पर प्रश्नचिन्ह लगाती है। उनमें परस्पर ऐसे संबंध होने चाहिए जहां मुक्तता हो, किंतु साथ ही नैकट्य, आदर और मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा भी। आज के छात्रों में नचिकेता की वह दृढ़ जिज्ञासा नदारद है जिससे वे ज्ञान के क्षेत्र में आगे बढ़ सकें। यद्यपि गुरु यम ने उसे आत्मविज्ञान के स्थान पर कोई अन्य वरदान मांगने को कहा, किंतु दृढ़संकल्पी नचिकेता ने साफ इंकार कर दिया। उसकी जिज्ञासा से प्रसन्न होकर यम ने नचिकेता द्वारा मांगे गये तीन वरदानों के अतिरिक्त एक और वरदान अपनी ओर से दिया तथा उसे आत्मरहस्य भी बताया। आज के छात्रों में नचिकेता की यह जिज्ञासा कहां? आज के छात्र तो बेहूदा चटक रंगों की अजीबोगरीब वेशभूषा में लंबे झबरीले बाल और चमचमाते जूतों में अटपटी चाल चलने में ही अपनी शान समझते हैं और डिस्को की धुन पर थिरकने पे ही जिंदगी का अस्तित्व मानते हैं। इन बहिर्मुखी प्रवृत्तियों में

नवनीत

अतिशय लिप्तता हमारी अंतः के विकास का द्वार बंद कर देती है। व्यक्तित्व का ह्रास कर विकास को नाओं को समाप्त कर देती है। भौतिक आकांक्षाओं से परहेज बात नहीं कही जा रही है। इतना ही है कि भौतिकता के अंधी चकाचौंध कहीं हमें भटका आज बाह्य निर्माण तो खूब हो किंतु अंतर्निर्माण के बिना सारी एक भुलावा है, छलावा है। देश का बाह्य निर्माण करती है रूप-रंग बनाती है तो संस्कृति अंतर्निर्माण करती है अर्थात् पवित्रता और उदात्तता प्रदान

राष्ट्र और समाज की प्रगति मूलाधार है शिक्षा। समाज शिक्षा बीज है और संस्कृति उसका शिक्षा आरम्भ है और संस्कृति शिक्षा साधन है और संस्कृति शिक्षा सीढ़ी है तो संस्कृति इस मंजिल पर पहुंचने के लिए आमूल परिवर्तन अपरिहार्य है के संपूर्ण विकास के लिए कि पहले हमारे समाज की गंदगी को शिक्षा का निर्मल करे। शिक्षा व्यक्तिगत और उन्नति का साधन है तो संस्कृति गौरव का आधार। देश उध्वता रहता है, विहीन होकर तो वह गड़ब

है। गौरवशाली संस्कृति के निर्माण लिए उपयुक्त वैचारिक पृष्ठभूमि तैयार करने का काम शिक्षा का ही है। आज हम अपनी अतीत की स्वर्णिम संस्कृति का राग अलापते नहीं थकते, किन्तु आचरण के स्तर पर हम कितने गिरे हुए हैं, यह कहने की आवश्यकता नहीं। यह भारतीय संस्कृति कोई एक अमूर्त विचार और धारणा नहीं है, बल्कि वह एक वास्तविक और ठोस सचाई है। पर आज भी वह युद्धोन्माद से त्रस्त, और आतंक में जी रहे विश्व को अपने श्रेष्ठ विचारों का आलोक प्रदान कर रही है। आरंभ से ही इस संस्कृति में गोद में मानवता के सपने पलते आ रहे हैं। रोम्यों रोला ने ठीक ही कहा है 'अगर इस धरती पर कोई ऐसी जगह जहाँ सभ्यता के आरंभिक दिनों से ही मनुष्यों के सारे सपने आश्रय और पनाह मिल रहे हैं, तो वह जगह हिंदुस्तान है।' किन्तु मि. आर्चर नामक एक विदेशी विचारक ने भारतीय संस्कृति को बिना किसी भी उस पर कई आरोप लगाये हैं। इन बूढ़े आरोपों का दृढ़तापूर्वक प्रामाणिक उत्तर महायोगी श्रीअरविंद ने अपनी पुस्तक 'भारती संस्कृति के आधार' में दिया है। उनके मत में आर्चर की पुस्तक केवल 'अखबारी हौआ' है। किन्तु: आर्चर के आरोपों का उत्तर देने के बहाने ही श्रीअरविंद ने भारतीय संस्कृति, साहित्य और कला का जैसा

गंभीर और विशद विवेचन किया है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। भारतीय संस्कृति की महत्ता प्रतिपादित करते हुए उन्होंने यह महत्वपूर्ण घोषणा की है कि 'उससे महान् संस्कृति और क्या हो सकती है जो जीवन को काल में कालातीत की, व्यक्ति में विराट की, ससीम में अनंत की एवं मनुष्य में भगवान की क्रिया समझती है, अथवा जो यह मानती है कि मनुष्य सनातन और अनंत को केवल जान ही नहीं सकता, बल्कि उसकी शक्ति में निवास भी कर सकता है और आत्मज्ञान के द्वारा अपने आपको विश्वमय, आध्यात्मिक और दिव्य भी बना सकता है।'।

धर्म और आध्यात्मिकता हमारी संस्कृति के महत्वपूर्ण अंग हैं धर्म जीवन से पलायन नहीं और न उसकी ओर पीठ रखना ही हमारी संस्कृति सिखाती है। धर्म हमारे जीवन के विकास का एक महत्वपूर्ण सोपान है, किन्तु वह भी हमारी सीमा नहीं है। श्रीअरविंद के अनुसार 'धर्म और उसका पालन करना न तो मनुष्य का आदि है न अंत; धर्म के क्षेत्र से परे चेतना का एक बृहत्तर स्तर है जिसमें आरोहण करता हुआ वह एक महान् आध्यात्मिक स्वातंत्र्य को प्राप्त हो जाता है। उदात्त, पर सदा मरणशील मनुष्यत्व ही मानव पूर्णता की पराकाष्ठा नहीं है; अमरता, स्वतंत्रता और दिव्यता भी उसकी पहुंच के भीतर है।' इससे स्पष्ट है कि जीवन के प्रति भारतीय

हिंदी डाइजेस्ट

संस्कृति का दृष्टिकोण निषेधात्मक नहीं है, वरन् विधेयात्मक है। उसकी दृष्टि सदैव ऊर्ध्वमुखी रही है। उसकी यह दृष्टि भारतीय कला और साहित्य में भी देखी जा सकती है। भारतीय संस्कृति धर्म, जाति और तमाम सामाजिक बंधनों को तोड़कर आत्मा के उत्थान और जीवन के चरम विकास का महामंत्र देती हुई विश्वात्मा से मिलन कराती है। वह मानती है कि सारा विश्व एक विराट् चेतना से स्पंदित है। मनुष्य केवल एक देहबद्ध प्राणी ही नहीं है। इसीलिए वह व्यक्ति को जीवन की परिधि पर भटकने के लिए असहाय नहीं छोड़ देती, वरन् उसके केंद्र की ओर ले चलती है। वह ससीम से असीम की ओर प्रयाण कराती है, रूप के आरपार देखना सिखाती है, दृश्य के परे अदृश्य के सूत्र दिखाती है, प्रेय से श्रेय की ओर ले चलती है और सामान्य जीवन को दिव्य बनाती है।

तात्पर्य यह है कि भारतीय संस्कृति हमें सतही बाह्य धरातल पर नहीं, वरन् आंतरिक धरातल पर जीने की प्रेरणा देती है। यहां से वहां तक विश्व का कण-कण चेतना के एक तार में पिरोया हुआ है। इस तार से संबंध-विच्छेद हो जाने के कारण ही आज हमारे जीवन का छंद टूट गया है। इसी आंतरिक चेतना से जुड़ाकर

नवनीत



ही जीवन-यात्रा को अर्थपूर्ण और बनाया जा सकता है। इस प्रकार संस्कृति जीवन को उसकी संपूर्ण जीने की प्रेरणा देती है, सनातन आरोहण करती है और उस परम की केवल चर्चा ही नहीं करती बल्कि साक्षात्कार का मार्ग भी प्रशस्त करता है। आधुनिक युग में श्रीरामकृष्ण का जीवन इसका ज्वलंत उदाहरण है। श्री रामधारीसिंह दिनकर ने उन्हें पर भटकती हुई स्वर्ग की किरण के

निरूपित किया है। अनेक ऋषि-मनीषि महान् संतों के और तपस्या की गाथाएं आज भी में गूँज रही हैं। संस्कृति के सत्य और विश्वबंधुत्वं खुशबू आज भी देशांतरों में फैली हुई है। वह अभय और धन के प्रति सिखाती हुई निरंतर कर्म देती है। हमारा प्रत्येक कर्म पूजा है और हमारी प्रत्येक को समर्पित है। माध्यम कुछ इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। वह महान् संदेश बरबस ही आता है जहां श्रीकृष्ण अर्जुन से कि तू मुझे स्मरण भी कर और कर — 'तस्मात्सर्वेषु कालेषु

बुध्य च ।'

हमारे वेद, उपनिषद् और पुराण भारतीय संस्कृति के आलोक-ग्रंथ हैं। उपनिषद् तो जैसे ज्ञान के लहराते हुए सरोवर हैं जिनकी प्रत्येक लहर जीवन के चरमोत्कर्ष का संदेश सुना जाती है। वे ऋषियों के आत्मज्ञान और अनुभूत सत्य के काव्यात्मक अभिलेख हैं। हमारी संस्कृति 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' की प्रार्थना ही नहीं करती बरन् 'आत्मदीपो भव' का महान् मंत्र भी देती है। अर्थात् वह हमारे भीतर की अंतर्निहित शक्ति से हमारी पहचान कराती है। केवल शरीर, प्राण, मन या बुद्धि ही हमारी सत्ता का सत्य नहीं है। हमारी सत्ता का सत्य अंतरात्मा है, जिसके आलोक में जीना ही जीवन की सार्थकता है। भारत के पास आत्मा का ज्ञान है किंतु उसने भौतिक तत्व की उपेक्षा की, इसलिये वांछित प्रगति नहीं हो पायी। पश्चिम के पास भौतिकता का ज्ञान है किंतु उसने आत्मा की उपेक्षा की। इसलिये सारी समृद्धि के बावजूद वहां का जीवन अशांत है। भटकते हुए और थके हुए पश्चिम को आत्मा के धरातल पर जीने की प्रेरणा देना भारतीय संस्कृति का श्रेष्ठ अवदान है।

हमारी संस्कृति आध्यात्मिकता के साथ ही स्वतंत्रता और एकता को भी



समान महत्त्व देती है। दिनकरजी के शब्दों में 'भारत की एकता और भारत की स्वतंत्रता एक ही तस्वीर के दो पहलू हैं।' स्वतंत्रता हमारा सबसे बड़ा जीवन-मूल्य है और इसके अभाव में जीवन की कोई भी सुखद कल्पना नहीं की जा सकती। स्वतंत्रता के मुक्त वातावरण में ही संस्कृति, साहित्य और कला के फूल खिलते हैं। हमारी कला आध्यात्मिक रंगों से रंगी हुई है और हमारा साहित्य उसी विराट् चेतना की वैविध्यपूर्ण अभिव्यक्ति का

अद्भुत समारोह है। समूचा भारतीय साहित्य आध्यात्मिक सत्य की ज्योतिर्मयी किरणों से आलोकित है। भारतीय साहित्य के अमर पात्र राम और कृष्ण आज भी प्रेरणा के अजस्र स्रोत बने हुए हैं। आधुनिकता की झोंक में जरा ज्यादा बहने वाले साहित्यकारों को सोचना

चाहिए कि यदि हमारे साहित्य में से इनकी गाथाएं निकाल दी जायें तो उसमें बचेगा ही क्या? हमारे साहित्य के ये पात्र किसी भी प्रकार पश्चिमी साहित्य के चर्चित पात्रों से कम नहीं हैं। इनकी तुलनात्मक विवेचना करते हुए श्रीअरविंद कहते हैं कि 'कम से कम पूर्वीय मन के लिए राम और रावण वैसे ही सजीव, महान् और वास्तविक पात्र हैं जैसे कि होमर और शेक्सपियर के पात्र। सीता और द्रौपदी निश्चय ही हेलेन और क्लियोपेट्रा से कम

जीवंत नहीं हैं, दमयंती और शकुंतला तथा स्त्री जाति की आदर्शभूत अन्य देवियां ऐलसेस्टिस या डेसडेमोना से ज़रा भी कम कमनीय एवं सजीव नहीं हैं।

ऐसे महान साहित्य और संस्कृति वाले देश में आज राजनीति के क्षेत्र में जो उठापटक चल रही है, वह चिंतनीय है। देश में कुर्सी-केंद्रित राजनीति चल रही है जो उसकी आर्थिक समृद्धि, सांस्कृतिक और सामाजिक पुनर्निर्माण के लक्ष्य से भटककर सत्ता-प्राप्ति के अंधियारे गलियारों में खो गयी है। जब कि राजनैतिक सत्ता और प्रभुता प्राप्त करना कभी भी भारत का लक्ष्य नहीं रहा। कुर्सी के प्रति यह अंधा मोह, समाज को गंदला करती हुई व्यावसायिक प्रवृत्तियों और बे-लगाम भागती हुई और पागलपन की हद तक बढ़ती हुई भौतिक आकांक्षाओं का हमारी सांस्कृतिक विरासत से दूर का भी रिश्ता नहीं है। ये सब हमारी संस्कृति की उज्ज्वलता पर कालिख पोतने वाली चीजे हैं। उसका विरूपीकरण है। श्रीअरविंद ने एक महत्वपूर्ण स्थापना यह भी की है कि भारतीय जीवन की प्रेरणा कुछ दूसरी ही है, उपर्युक्त बातें नहीं। उन्होंने कहा है कि 'भारत स्वभावतः ऊर्ध्व से आने वाले आध्यात्मिक प्रवाह के सहारे जीता है।'

किंतु जीवन के द्वार पर कामनाओं के अविराम कोलाहल के कारण हम ऊर्ध्व से आने वाली पुकार को सुन पाते। सत्ताप्राप्ति की इसी मोह-लालश के कारण ही हमने शिक्षा के कभी गंभीर दृष्टिकोण नहीं अपनाए। हमारे विश्वविद्यालयों के आंगन में हुई भीड़ और शोर-शरावा इसी लालश की हीनता के दुष्परिणाम हैं। यदि हमने भी इस ओर गंभीरतापूर्वक ध्यान नहीं दिया तो यह भीड़ बढ़ती ही जाएगी और जीवन से कटी हुई शिक्षा के अव्यवस्था, आंदोलनों और जुलूसों का ही जन्म देगी। अतएव जब शिक्षा के हजारों युवकों के नये मानस का निर्माण करेगी, राजनीति भौतिक समृद्धि के लक्ष्य को लक्ष्य को लक्ष्य और संस्कृति दिव्य-जीवन की ओर आकर्षित करेगी तभी उसका वास्तविक चेहरा सामने आयेगा। आज हम समाज में विभिन्न त्यौहारों पर और विद्यालयों में सांस्कृतिक कार्यक्रमों नाम पर जो अश्लील, फूहड़ और प्रदर्शन हो रहे हैं, वह संस्कृति नहीं है। आइए, स्वतंत्रता के मंदिर में संकल्पों के साथ हम सांस्कृतिक पुनर्निर्माण का नया दीप जलाएं और उसके प्रकाश में अपने कदम बंधाएं।



जॉन मिल्टन से टोनी ने पूछा, 'क्या आप अपनी लड़की को कोई विदेशी सिखाना चाहते हैं?' 'नहीं,' उन्होंने उत्तर दिया, 'स्त्री के लिए एक जगह काफी है।'

—कल्पना आंबे

(पृष्ठ ३९ का शेषांश)

हं कला पर हावी न हो
जिस एक और खतरे से मैं कलाकार
को सावधान करना चाहूंगा, वह यह है
कि कलाकार की इच्छाएं और उसका
अहं उसकी कला की सौन्दर्य-भावना को
कलुषित कर सकने की क्षमता रखते हैं।
किसी सुंदर वस्तु या व्यक्ति या प्राणी
को देख कर सच्चे कलाकार के मन में
सबसे पहले जो पापरहित भाव उठते हैं,
धीरे-धीरे कलाकार की अपनी इच्छाओं,
और भावनाओं के कारण दूषित होने
लगे हैं, और काफ़ी हद तक कलाकार
द्वारा उस वस्तु या व्यक्ति या प्राणी के
चित्रण को प्रभावित करते हैं। इसलिए,
कलाकार का अपने आनंदातिरेक में तटस्थ
होना बहुत जरूरी है।

तटस्थता की इस भावना के अनुसार
मन स्त्री का चित्रण करते समय कलाकार

का पूर्णतया अवैयक्तिक और तटस्थ
होना अनिवार्य है। यदि वह नग्न माँडल
की देह से स्वयं उत्तेजित हो जाता है, तो
उसकी सौंदर्य संवेदना समाप्त हो जायेगी,
और उसके दर्शक उस सौंदर्यबोध से वंचित
रह जायेंगे, जो कलाकार अपने चित्रण
द्वारा उसे देना चाहता है।

यही बात किसी सुरम्य प्राकृतिक
दृश्य के चित्रण के बारे में भी सच है।
कलाकार यदि उस दृश्य के प्रति तटस्थ
नहीं रहता, तो वह दर्शक उस स्थल के
प्रति विशुद्ध सौंदर्य-बोध न जगाकर,
उसकी स्थूल चाह ही उसके मन में जगाने
में सफल हो सकेगा।

लेकिन कला का यह ध्येय नहीं है।
वास्तव में, उसका ध्येय क्या होना चाहिये,
इसकी चर्चा हम अगले लेख में करेंगे।
प्रस्तुति : हरि



प्रार्थना

प्रथम विश्व युद्ध से पहले की घटना है। हिरोशिमा (जापान) में निरंतर वर्षा
योवरयामा नामक एक निर्धन मजदूर की झोंपड़ी की छत चारों ओर से बुरी तरह
पकने लगी। झोंपड़ी के भीतर तिल रखने को भी सूखी जगह न बची।

दुःखी होकर, दोन योवरयामा ने अपने इष्ट-देवता से प्रार्थना की 'प्रभु! या
इस वर्षा को उठा लो, या मेरे झोंपड़े की छत को उठा लो; या फिर मुझे ही उठा लो!'
प्रार्थना पूरी होते ही, योवरयामा का शरीर अतोखे ढंग से लहराया। उसने
कराकर तुरंत आंखें खोल दीं।

छत टपकना बंद हो गयी थी।

प्रार्थना के दौरान ही भयंकर आंधी से उसके कमरे की छत उड़ गयी थी, और
उसकी जगह एक नयी छत वहां उड़कर आ गयी थी!

-शिव रंन



मोहनलाल गुप्ता



किशनगढ़ की चित्र-कला

खूब लंबे, उठे हुए खञ्जनाकृति नेत्र, तीखी लंबी नाक उसमें से लटकता बेसर या नथ, त्रिकोणाकार पतले ऊपर को खिंचे हुए होंठ, आगे निकली हुई ठुड्डी, चौड़ी कनपटी, माथे पर शीशफूल, कान के बगल में लहराई हुई जुल्फ, कंधों से नीचे लटकती हुई केश राशि, लंबी ग्रीवा में अनेक मोतियों की

नृत्य-मुद्रा : किशनगढ़ शैली

रेखांकन : रामगोपाल विजयवर्गीय



मालाएं, एक हाथ में पारदर्शक नीले के अवगुंठन का पल्ला लिये, दूसरे में पकड़े हुए किशनगढ़ के राजा सावंत या नागरीदास की प्रेमिका का एक चित्र है जो संसार विख्यात हो चला है। यहाँ में मोनोलिसा का चित्र मशहूर है। भारत में 'बनी-ठनी' का चित्र भी इसी ही प्रसिद्ध हो चुका है। उसकी तस्वीर डाक टिकिट पर, पानदान पर, बंगले के बंडल पर, पर्दों पर, कपड़ों पर हर जगह अपना स्थान ले चुकी है। आखिर कौन है 'बनी-ठनी' और उसकी आंखें किस लिए विदेश से आने वाला हर आदमी पूछता है 'व्हेयर आई कैन फाइंड पेंटिंग आफ ए लेडी आफ फैशन विग आइज़'। बहुत लंबे समय तक पता ही नहीं कि, 'लेडी आफ फैशन' क्या बला है ! यह भी तब पता चला है मशहूर कला मर्मज्ञ एरिक डिकिन्स अपनी एक किताब में 'बनी-ठनी' अंग्रेजी तर्जुमा 'लेडी आफ दि फैशन' किया है और पढ़ने में आया है। यह चित्र नेत्रों का कमाल है जिसके कारण उस चित्र सारे जगत में विख्यात हो चला

ऐसे नेत्रों का वर्णन राजा एवं कवि नागरीदास ने अपनी रचना 'इश्क चमन' में 'मुख चश्म महबूब ने खंजर दिये संवार। निकले लोहू से रंगे आसिक पंजर पार।' किया है।

नागरीदास किशनगढ़ के राजा ही नहीं उच्च कोटि के कवि भी थे। नैनों के प्रति इतनी आसक्ति ने उन्हें अभूत-पूर्व काव्य शक्ति प्रदान की। उनके 'रूपा-रस ग्रंथ' में राधाकृष्ण के रात्रि जागरण-जनित अलस रूप का इस भावना से वर्णन हुआ है 'क्यों सुरझे आरस भरे नैन उरझे नैन। नागरिया हिय में वसों यह रूपा रस नैन।' अवश्य जिन नैनों के अनेकानेक वर्णन नागरीदास ने किये उनका साक्षात्कार उन्होंने अपनी नागरी नवेली 'बनी-ठनी' में किया होगा। उसके नेत्र साहित्य और कला दोनों के माध्यम बन गये होंगे। उस समय नागरीदास चालीस वर्ष के थे और बनी-ठनी केवल बीस वर्ष की, जो उनकी पासवान थी और उप पत्नी भी कही जाती थी।

चाहे नागरीदास अपने जीवन के अंतिम भाग में एक भक्त के रूप में रहे हों पर प्रारंभावस्था में बनी-ठनी के खंजर जैसे नेत्रों ने उन्हें अवश्य घायल किया होगा। इस बात से कोई गर्ज नहीं कि चित्र, जिस की विशेषताओं का वर्णन ऊपर किया गया, है वह असलियत में बनी-ठनी ही का है या सिर्फ राधा का। सांवतसिंह का



किशनगढ़ की स्त्री-आकृति
अनुकृति : मोहनलाल गुप्ता

उपनाम नागरीदास भी इस ही कारण था कि वे नागरी राधा के उपासक थे। किशनगढ़ के प्रसिद्ध साहित्यकार डा. फैयाज अली का कहना है कि यह चित्र जो प्रसिद्ध है बनी-ठनी का नहीं सिर्फ काल्पनिक राधा का है। डा. फैयाज अली की भक्ति जनित भावना है कि नागरीदास बनी-ठनी से प्रेम नहीं करते थे, परंतु ऐसे दो चित्र प्राप्त हो चुके हैं जिसमें से एक कैलिफोर्निया के प्रसिद्ध कलामर्मज्ञ स्टुअर्ट वेल्व के संग्रह में है जिसमें बनी-ठनी झरोखे में पर्दे के पीछे खड़ी प्रतीक्षा कर रही है और नागरीदास नाव में बैठकर उसे माल्यापर्ण करने हेतु नीचे खड़े होकर उसे विमुग्ध देख रहे हैं।

हिंदी डाइजैस्ट

दूसरा एक चित्र, केंद्रीय ललित कला अकादमी द्वारा प्रकाशित एरिक डिकिसन की पुस्तक में छपा है जिसमें नागरीदास पीतांबर ओढ़े पूजा कर रहे हैं और बनी-ठनी भी पीले परिवेष में उनका पुष्प अभिषेक करने आयी है। नागरीदास बनी-ठनी में राधा का रूप देखते थे और स्वयं कृष्ण बनकर किशनगढ़ के महलों में गोकुल और वृंदावन की अनुहार मानकर लीलाएं करते थे। नागरीदास बनी-ठनी से प्रेम करते थे, उन्होंने स्वयं अपनी कविता में स्पष्ट किया है।

नागरीदास एक प्रेमी, कवि, संगीतज्ञ चित्रकार और एक संवेदनशील मानव थे इस ही लिए उन्होंने साहित्य और कला का समान रूप से पोषण किया। उनके समय में किशनगढ़ की कला में विशिष्ट प्रतिमान आधारित किये गये जिनके कारण यह शैली राजस्थान की अन्य उप शैलियों में अपना विशिष्ट स्थान रखती है।

सावंतसिंह महाराजा राजसिंह के पुत्र थे और राजसिंह स्वयं एक चित्रकार, कवि, कलारसिक और परम वीर थे। उनके हाथ का बनाया एक हाथियों का चित्र मिलता है जिस पर लिखा है—'राजसिंह ने बनाया।' सावंतसिंह के पूर्वज किशनसिंह और रूपसिंह, जिन्होंने किशनगढ़ और रूपनगर बसाया, जोधपुर के राजा उदयसिंह की संतानें थीं। वे वल्लभ संप्रदाय के अनुयायी भी थे। सावंतसिंह की उप-

नवनीत

माता बांकावती भी कवयित्री नागरीदास महाकवि घनानन्द के थे उनके दरबार में वृंद, हरिचरण हीरालाल, विजयचंद आदि कवि बनी-ठनी स्वयं रसिक विहारी के नाम रचनाएं करती थी। जो राजा स्वयं हो उसके पूर्वज और वंशज भी कवि हों निःसंदेह वहां कला का उत्थान अवश्य मेव है। वल्लभ संप्रदाय और संबंधित साहित्य में नेत्रों के अनेक वर्णन मिलते हैं जिनका चित्रण कलाकार ने उन्हें आधार मान कर साहित्यिक विषयों के चित्रों में बहुलता से किया कोटा एवं नाथद्वारा के चित्रों में भी लंबे होने का यही कारण है वहां के राव गुंसाई वल्लभ कुलीय संप्रदाय के होते थे।

सावंतसिंह १७४८ में रूपनगर गद्दी पर बैठे परंतु एक वर्ष बाद ही छोटे भाई बहादुर सिंह ने रूपनगर अधिकार कर लिया। मराठों की सहायता से पुनः उन्होंने रूपनगर का आधा हिस्सा हस्तगत कर लिया और कुछ समय ही वे वृंदावन चले गये। अहमद दुर्रानी के आक्रमण के समय नागरीदास के कुटुंबवालों ने इन्हें रूपनगर बुला लिया था। कुछ अर्से रह कर वे वृंदावन चले गये। वहीं उनका देहावसान हुआ। अपने पुत्र सरदारसिंह को कृष्णगढ़ का युवराज बनाया था। तब तक कि इनकी एक बहन सुंदर कुंवर जयपुर के राजा माधोसिंह को

स्वयं कवयित्री थी और निम्बार्क संप्रदाय में दीक्षित थी। नागरीदास का उपासना भाव शृंगारी है यही कारण है उनके चित्रों में शृंगार प्रधान राधाकृष्ण की लीलाओं के चित्र विशेष रूप से मिलते हैं। वल्लभ संप्रदाय के अनुसार श्रीकृष्ण ही पूर्णानंद स्वरूप पुरुषोत्तम परब्रह्म है। उनके माधुर्य पक्ष को प्रचारित और प्रसारित करने का श्रेय वल्लभाचार्य को ही है। वल्लभाचार्य के प्रभाव से काव्य एवं कलाओं में भक्ति द्वारा नवीन आंदोलन प्रस्फुटित हुआ था। अष्टछाप की स्थापना हुई और ब्रजभाषा में सूरदास, मदनदास, परमानंददास आदि अष्ट भक्त कवियों ने कृष्ण को चरित्र नायक मानकर उनके माधुर्य का गुणगान किया और शृंगारमयी भक्तिधारा को उत्तर भारत में बड़े वेग से प्रवाहित किया। उस ही धारा में निष्णात हुए किशनगढ़ के सांवत-सिंह नागरीदास उनके पूर्वज और वंशज। नागरीदास के विभिन्न छोटे-बड़े ६९ चित्रों की संपादित रचनाएं नागर समुच्चय नाम से प्रकाशित हैं जिसका वर्णन विषय प्रमुखतया राधाकृष्ण की विभिन्न लीलाएं हैं। मनोरथ मंजरी, युगल रस माधुरी, राग विलास, ग्रीष्म विहार, पावस पचीसी, रास रसलता विषयों को आधार बना कर स्व सौंदर्य को चित्रित करने का श्रेय श्रेष्ठ दरबारी चित्रकार निहालचंद को है।

निहालचंद के प्रपिता मूलराज सूरध्वज दिल्ली से आकर राजा मानसिंह (सांवत-

सिंह के प्रपिता) के दीवान हुए। वे कश्मीर से पहाड़ी शैली की छाप अपने साथ लाये जिसका प्रभाव किशनगढ़ शैली में भी पड़ा। निहालचंद के पिता भीखचंद भी चित्रकार थे। सांवतसिंह के भाई बहादुर-सिंह के समय में नानगराम चित्तरे ने अनेक चित्र बनाये। छोटू, भैरू, अमरचंद और धन्ना भी किशनगढ़ के उत्कृष्ट चित्रकार हुए हैं, पर निहालचंद के बनाये महाराज किशनगढ़ के संग्रह के चित्र बेमिसाल हैं। किशनगढ़ के चित्रों के विषय भागवत, गीत गोविंद, रामायण, वैभव विलास और अनेक शृंगारी भाव हैं। शिकार, उत्सव, होली, दीपावलि, दरबार आदि के दृश्य भी अंकित हुए हैं, जिनमें राधाकृष्ण को प्रतीक मानकर सांसारिक सामान्य कोमल भावनाओं से संबंधित किया गया है। राग-रागिनियों के चित्र किशनगढ़ शैली में देखने को प्राप्त नहीं हुए। तांबूल सेवा, रति, मान, मिलन, शय्या विहार, अलस, गमन, सद्यः स्नाता, विषयक चित्र किशनगढ़ शैली में प्राप्त हो चुके हैं। नौका विहार नागरीदास का प्रिय विषय रहा है। रूपनगर और किशनगढ़ में फूलमहल ऐसी झील है और सरोवर है जो नौका विहार हेतु उपयोगी रहा है। 'विहरत नवका बैठिविहारी। जमुना जगमग जोन्ह जामिनी कमल फूल सुखकारी।' निहालचंद ने रंगों का चयन वास्तव में प्रकृति, वस्त्राभूषण, मानव शरीर, स्थापत्य उपकरणों से किया है। प्रातः-

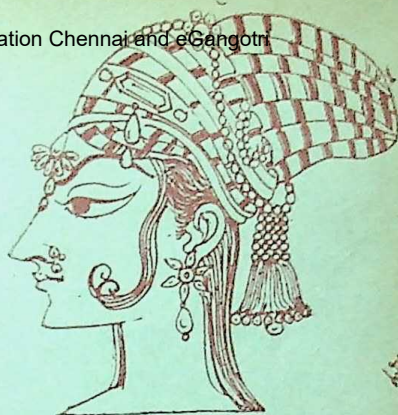
हिंदी डाइजेस्ट

सन्ध्या, चांदनी, कुंज, सरोवर, कमल, पक्षियों सहित घने वृक्ष, पादप पल्लव, कदली, वृक्ष, पुष्प शय्या, भ्रमर गुंजन, गायन-वादन उद्दीपन के उपकरण हैं। 'दुति ज्यों तन मोती, सांवल गौर शरीर' शारीरिक रंग योजना के अनुकूल वर्णन है। चंद्र कांति, आभूषणों की झलमलाहट, सुकुमारता, लावण्य, पारदर्शक परिधान, प्रलंब देह, मोतियों की लड़ें व झुमके, छज्जे, छतरियां, जलाशय, पीठिकाएं व अन्य आमोद-प्रमोद उपकरणों का प्रयोग कर निहालचंद ने चित्रों को काव्यात्मक बना दिया है। श्वेत, गुलाबी व मरकत रंग का अधिक प्रयोग जलाशय में भवन और हाशियों में गंडे किशनगढ़ शैली की विशेषता है।

एरिक डिकिसन कला मर्मज्ञ ने प्रसिद्ध

नृत्य-मुद्राएं : किशनगढ़ शैली : रामगोपाल विजयवर्गीय





किशनगढ़ की पुरुषाकृति

अनुकृति : मोहनलाल गुप्ता

गुलाबी परिधान मन को मोह लेते हैं। राधा कृष्ण की मुखाकृतियों के खाके बहुत सामान्य रूप से देखने को मिलते हैं इससे पता चलता है कलाकारों ने अभ्यासवश ऐसा किया होगा।

किशनगढ़ के चित्र मानव कल्पना को दूर ऊंचा उड़ा कर सांसारिक विभीषिकाओं से दूर किसी ऐसे लोक में ले जाते हैं जहां सारा संसार, वृज, मानव मात्र कृष्ण तथा नारी मात्र राधा हैं। सारे संसार में मिलन का आनंद ही आराध्य और वियोग की घड़ियां ही जीवन है। बैकुंठ का वैभव और राधा का रूप ही सर्वस्व है। इतने बड़े संसार में किशनगढ़ जैसे छोटे से स्थान की कोई गणना नहीं होनी चाहिए परंतु किशनगढ़ शैली की चित्रकला के कारण उसकी खूब ख्याति हुई है यह कम आश्चर्य की बात नहीं है।

—विजयवर्गीय कटला, चौड़ा रास्ता,

जयपुर-३०२००३ (राजस्थान)

दो बोधकथाएं

सच्चा सौंदर्य

शक्तिशाली नंद साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह और संघर्ष की घोषणा के दौरान, एक बार अमर अर्थशास्त्री तथा कूटनीतिज्ञ कौटिल्य (चाणक्य) को, एक निर्धन ब्राह्मण के यहां शरण लेनी पड़ी।

भरपेट भोजन करने के बाद, चाणक्य भूमि पर आसन बिछाकर सोने लगे, परंतु नींद न आयी। तभी मेज़वान ब्राह्मण तथा उसकी पत्नी का शोक-संतप्त वार्तालाप चाणक्य ने सुना।

पति कह रहा था :

‘अपनी गायत्री बेटी के लिए सुयोग्य वर अब शायद नहीं मिलेगा। सभी यही कहते हैं कि कन्या सांवली, डिगनी और चेचक के दागों वाली है।’

चाणक्य ने अभी-अभी उसी कन्या के हाथों का बना सुस्वादु भोजन ग्रहण किया था और उसके शील-स्वभाव से वे प्रभावित हुए थे।

अगले रोज़ चाणक्य ने चुपचाप, स्वामीवर्धन नामक एक सुशिक्षित ब्राह्मण कुमार से, उस सुघड़ कन्या का रिश्ता पक्का करके कहा : ‘जिस युवती के हाथों में पाक-विद्या है और जो शीलता, सरलता पूर्वक अतिथि सत्कार करना जानती हो, उससे बढ़कर सुंदर कौन है ? सच्चा सौंदर्य स्थायी गुणों में होता है, न कि क्षणिक चकाचौंध में !’

—शिव रैना

संकेत-विद्या

एल हश्मा संकेतों द्वारा शिक्षा के लिए विख्यात थे। एक बार इस विचार मात्र से ही इतना प्रभावित हुआ कि वह बरसों लंबी यात्रा तय कर मनीषी की कुटिया में पहुंचा।

उसे देखते ही हश्मा ने कहा :

‘तुम्हें ज्ञान के पहले चरणों को संकेतों के लिए शब्दों का ही सहारा लेना होगा।’

उस व्यक्ति ने प्रतिवाद किया :

‘शब्द तो मुझे कहीं भी मिल सकते हैं मैं संकेतों से सीखने आया हूं।’

हश्मा बोले :

‘हर कोई संकेतों-मुद्राओं से सीखना चाहता है, चूंकि उसने सुन रखा है कि ऐसा संभव है। नतीजा यह हुआ है कि हर कोई इस बात से ही उत्तेजित हो उठता है कि वह भी संकेत-भाषा सीख लेगा। उनकी उत्तेजना ऐसी है कि वे इसे नहीं पाते और चीख पड़ते हैं, ‘हम उत्तेजित नहीं हैं।’

‘इसलिए जब तक वे तैयार नहीं होते, तब तक हमें किसी विकल्प का सहारा ही लेना होगा—शब्दों का और पाठन का।’

हश्मा से यह प्रवचन सुनकर जिस व्यक्ति इतना प्रभावित हुआ कि उसने सारे संदेहों का निवारण हो गया उसे परम ज्ञान की प्राप्ति हुई।

(रूपांतर : सुदीप)

(पृष्ठ ४३ का शेजांश)

है। विभिन्न शरीर परस्पर पूरक एवं शोषक हैं। उनके अस्तित्वों की सार्थकता एक-दूसरे के कल्याण के लिए सहज समापित होने में है, परस्पर दोहन, शोषण उत्पीड़न में नहीं। वस्तुतः भिन्न-भिन्न देहों के भिन्न-भिन्न मालिकों—जैसे भिन्न-भिन्न व्यक्ति हैं ही नहीं। देहत्व की भिन्नता प्रत्यक्ष होते हुए भी व्यक्तित्व की भिन्नता पूर्णतः कल्पित, असत्य एवं मिथ्या है। देह की तरह व्यक्ति इस विश्व का नगण्य अंश जैसा नहीं है। व्यक्ति तो वह अनुत्पन्न हुआ तत्व है जो संपूर्ण विश्व के रूप में व्यक्त हुआ है, जो सर्वव्याप्त है, अविभक्त है, अविभाज्य है, दिक्-

कालातीत है, अजर-अमर है, अनादि-अनंत है, अपरिभाष्य है, अमापनीय है, अगोचर है। व्यक्तित्व को देहत्व में आवद्ध मान लेना ही वह भ्रांति है जिसने जीवन को नीरस, अशांत, व्यथामय बना डाला है। यह भ्रांति ही विश्व की विभिन्न देहों को एक-दूसरे के विरोध-विनाश का कारण और जीवन को विषादमय बना डालती है। इस भूल के दर्शन और उसकी निवृत्ति में ही नित्य-योग, नित्य-जीवन एवं शाश्वत मांगल्य मूर्तिमंत होते हैं।

—भौतिकी विभाग, आगरा कालेज,
आगरा (उ. प्र.)



आचार्य की छात्र को शिक्षा

शांतिनिकेतन के कलाविद्यालय में एक धनी परिवार का लड़का था। उसे अपने हाथ से काम करने की आदत नहीं थी। कुछ दिनों में उसके कमरे में धूल जम गयी और दीवारों पर जाले लग गये।

एक दिन वह भोजन से लौटा तो देखकर दंग रह गया कि कमरा बिल्कुल साफ है, सभी चीजें सही जगहों पर रखी हैं और धूपवत्ती जल रही है। यह क्रम कई दिन तक चलता रहा।

एक दिन वह भोजन करके जल्दी ही लौट आया तो देखता क्या है कि कला विभाग के आचार्य नंदलाल बसु स्वयं उसका कमरा साफ़ कर रहे हैं। उसे स्तब्धित देख नंदलाल बसु बोले—‘अपने छात्रों के कल्याण की जिम्मेदारी मुझ पर है। तुम बचपन से सफाई के लिए नौकरों के सहारे रहते थे। स्वाभाविक है कि गंदी जगह तुम्हारा मन खराब रहता होगा और तुम वांछित काम नहीं कर पाते होगे। मैंने सोचा, क्यों न तुम्हारी मदद करूं।’

छात्र पर इसका बड़ा असर पड़ा। जब तक वह शांतिनिकेतन में रहा सदा उसने अपना कमरा साफ़ और व्यवस्थित रखा।



—डॉ. भेरूलाल गर्ग

विचित्र विज्ञान

उसे विलक्षण शक्तियां प्राप्त थीं



संजय खाती

स्वामी विवेकानंद का साक्षात्कार एक ऐसे अलौकिक शक्ति संपन्न व्यक्ति से हुआ जो दूसरों के विचारों को पढ़ लेता था। स्वामीजी कई बार उसके इस दावे की कड़ी परीक्षा लेने के उद्देश्य से गये लेकिन प्रत्येक बार उनको चमत्कृत हो जाना पड़ा। स्वामीजी और उनके मित्र अपने विचारों को अलग-अलग कागज़ों पर लिख लेते थे। इस परीक्षण के दौरान स्वामीजी ने संस्कृत का एक श्लोक लिखा और उनके मित्रों ने इटालियन, फ्रेंच के वाक्य तथा डाक्टरों के नुस्खे लिखे। इन भाषाओं से वह व्यक्ति अनभिज्ञ था लेकिन कुछ ही देर में उन्हें चकित हो जाना पड़ा जब उसने उनकी बातों को ज्यों का त्यों दोहरा दिया।

एक अमेरिकी टेड सेरियल का किस्सा भी कम विचित्र नहीं है। मनोविज्ञानी डा. जूले आइसेनलेड की कमेटी ने उसके दावों की गहन छानबीन की और उपलब्ध प्रमाणों को 'दि वर्ल्ड आफ टेड सेरियल' नाम से सन १९६७ में प्रकाशित किया। टेड कैमरे के लेंस पर आंख

टिका मनोवांछित किसी भी घटना दृश्य को फिल्म पर उकेर सकता था। उसने अपने परीक्षणों में नेपोलियन युद्धकालीन दृश्यों और लाल किले अमेरिका में ही अपनी अलौकिक शक्ति से तैयार कर दिखाया था। इस प्रक्रिया में टेड एकाग्र होकर गहन चिंतन करता था और तब उसकी आंख पर कैमरा लगा क्लिक कर दिया जाता था। इस तरह खिंचे चित्रों को 'लाइफ' पत्रिका भी सम्मानित किया। विज्ञानियों कैमरे के चारों ओर रेडियो तरंगों के अवरोध खड़े कर के भी टेड के दावों परखा। अमेरिका ही नहीं कई देशों में भी उसे टेलीविजन पर दिखाया गया।

'कार्क का आदमी' नाम से पुकारा जाने वाला एंजेलो फेटी भी विज्ञानियों लिए चुनौती बन गया। फेटी इटली का एक मोची का लड़का था। बचपन में उसे पानी में तैरने का पागलपन था। शौक देख उसके पिता ने एक दिन उसे पिटाई कर दी। क्षुब्ध होकर वह

नवनीत

ना और एक जहाज में काम करने लगा । उसके रहस्यमय जीवन की शुरुआत उस दिन से हुई जब वह पानी में डूबते दो सौ पाँच वजनी आदमी को आसानी से निकाल कर मिनटों में बाहर आ गया । उसके बाद तो उसने कई प्रदर्शन किये और वह व्यापक चर्चा का विषय बना । उसे वजनी धार बांध कर पानी में डाल दिया जाता और वह घंटों वैसे ही तैरता रहता ।

उसके दावे की जांच के लिए सीलबंद पोलरायड कैमरा प्रयोग किया गया । यह कैमरा तुरंत फोटो तैयार कर देता है । इससे उसके मस्तिष्क के सामने चित्र खींचे गये और पाया कि वह जो सोचता है ठोस और सजीव चित्रों की तरह होता है । उसकी इस विलक्षण क्षमता के परीक्षण के लिए कोलरैडो विश्वविद्यालय ने एक पृथक विभाग ही खोल लिया था, लेकिन



जानी इस अलौकिक शक्ति के कारण वह 'कार्क का आदमी' नाम से जाना जाने लगा था ।

अमेरिका के एक टेलीविजन केंद्र से एक व्यक्ति का प्रदर्शन होता था । १९ वर्षीय टुक ड्राइवर थियोडोर का दावा था कि वह इतने मूर्तिमान ठोस चित्रों का सृजन कर सकता है कि उन्हें कैमरे में भी कैद किया जा सकता है ।

उसकी इस शक्ति के रहस्य को कभी विज्ञानी नहीं समझ पाये ।

ऐसी ही विलक्षण मानसिक शक्तियों से संपन्न था—यूरी गैलर । उसके प्रदर्शनों ने यूरोप में तहलका मचा दिया । एक प्रदर्शन में उसने दूर रखी अंगूठी के दो टुकड़े कर दिये । बिना छुए उसने लंदन में दीवार पर लगी घड़ी की सुइयों को आधा घंटा पीछे कर दिया । एक और प्रदर्शन

में दूर रखे चस्मच को मोड़ कर दुहरा कर दिया। और म्यूनिख ओलंपिक के समय तो उसने सड़कों पर दौड़ती हज़ारों गाड़ियों को अपनी इच्छा शक्ति से कई मिनटों तक स्थिर कर दिया।

प्रख्यात भविष्यवक्ता पीटर हरकौस मामूली पेंटर था। एक दिन जब वह सीढ़ी पर चढ़ कर एक बहुमंजिली इमारत को रंग रहा था, गिरा और जब होश में आया तो उसकी विलक्षण शक्तियां जाग्रत हो चुकी थीं। उसके बाद तो उसने कई भविष्यवाणियां कीं जो खरी उतरीं। आगे की सदियों के लिए भी हरकौस बहुत कुछ कह गये हैं।

भविष्यवक्ता पीटर हरकौस ही नहीं सैकड़ों अन्य व्यक्ति भी ऐसी ही दिव्य शक्तियों के स्वामी अनायास ही बन गये। एडिनबरा का बेंजामिन भी विलक्षण गणितज्ञ था। एक बार उसने अपने पिता से पूछा कि वह किस दिन, किस साल और किस समय पैदा हुआ। पिता के उत्तर के दो सैकंड बाद ही बेंजामिन ने बता दिया कि उसे जन्म लिये कितने सैकंड हो गये हैं। भौचक्के पिता तुरंत वहीखाता ले हिसाब लगाने बैठे तो घंटों की माथा पच्ची के बाद पाया कि बेटे के गणित में १,७२,२०० सेकंड का अंतर आता है। बेंजामिन ने हंस कर समाधान किया कि उन्होंने १९२० और २४ के लीप ईयर के दो दिन छोड़ दिये हैं।

यह तो शेष विश्व की बात हुई। समाज-

वादी रूस में भी ऐसी घटनाएं कम नहीं। वहां की मिखाइलोवना नाम की बालिका अपनी इच्छा शक्ति से मनु रखी वस्तुओं को हिला सकती थी। लोगों के सामने उसने अपना प्राण प्रदर्शन किया। तश्तरी में रखा डक का टुकड़ा हिला, खड़ा हुआ और कर उसके मुंह में घुस गया। यह उसे अपनी मां से प्राप्त हुई थी।

इन प्रसंगों के अलावा विद्युत में भी समय-समय पर विश्व को हैरत डाला है। मेडालिका अमेरिका की मोरेन ऐसी ही लड़की थी। उसे बिजली का सा झटका लगता था। उसमें उसका शरीर प्रकाशवान हो जाता। एक लड़के ने जब उसे छूना चाहा तो उसे मुंह गिरा। उससे प्यार जताने की कोशिश में एक बिल्ली को अपने प्राणों में धोना पड़ा। वह किसी वस्तु को छू सकती थी। कमरे में उसके जाते ही अपने आप जलने लगतीं। इस स्थिति के कारण उसे अपने तीस वर्ष अंधेरे एकांत कमरे में पड़े। कनाडा की सत्रह वर्षीय बोवेल शरीर में भी ऐसी ही विद्युत धारा प्रवाहित होती थी। उसे सभी वस्तुएं लकड़ी की कांच की बनी इस्तेमाल करनी पड़तीं। उसके कमरे में घुसते ही आदमी को दिमागी तौर पर कमज़ोर और दुर्बल हुआ अनुभव करता। ऐसा ही एक लड़का पैदा हुआ था। उसे बहुत कठिना

गया था । लेकिन वह बहुत जिया नहीं ।
 जब वह मरा तो उसके शरीर से बहुत
 तेज तक नीले रंग का प्रकाश फूटता रहा ।
 मनुष्य की इन विलक्षण शक्तियों ने
 विज्ञान को बहुत चकराया है । आमतौर
 पर ऐसे मानव संदेहों, विवादों के कटघरे में
 घड़े कर दिये जाते हैं । विभिन्न जिज्ञासाओं
 से उनके निरंतर परीक्षण होते रहते हैं ।
 ऐसे विलक्षण मानव कभी बहुत अभागे
 सिद्ध होते हैं ।

यह उनके जीवन का सबसे दुखद
 तत्ववीथ पहलू है कि वे आम समाज से
 दूर कर विचित्र प्राणी बन जाते हैं । अपने
 समाज से कटने की भावना उनको नैराश्य
 के गर्त में धकेल देती है ।

मानव की इन अलौकिक शक्तियों के
 प्रयोग में अमेरिकी मनोविज्ञानी डा. नेल्सन

वांट ने बड़े मार्के की बात कही है जो
 आशा है इस रहस्य को व्यक्त कर सकेगी ।
 वे कहते हैं, 'मनुष्य के अंदर एक बलवती
 आत्मचेतना बहती है जिसे जिजीविषा या
 प्राणशक्ति कहा जा सकता है । यही शक्ति
 रोग और अन्य आघातों से भी लड़ती है ।
 यही नहीं यह आगे होने वाली घटनाओं
 का पूर्वाभास भी करा देती है ।'

और जब कभी किसी मानव की यह
 शक्ति प्रबल हो उठती है तो वह अलौकिक
 हो उठता है ।

देखना यह है कि यह शक्ति जाग्रत
 होती कैसे है ? संभवतः भारतीय योग
 और शास्त्र जिस प्रक्रिया का वर्णन करते
 हैं वही इन मामलों के तहत भी काम
 करती हो ।

—वसंत जनरल स्टोर,
 द्वाराहाट, जिला—अल्मोड़ा (उ. प्र.)



मोटर के लिए जिद

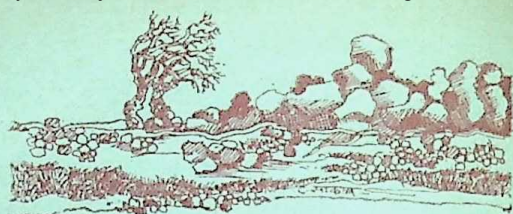
लालबहादुर शास्त्री के एक सुपुत्र अनिल विद्यार्थी थे । लालबहादुरजी उन दिनों
 मंत्री थे । अनिल अपने भाइयों सहित पाठशाला तांगे से जाया करते थे । पर मजे
 की बात यह थी कि शास्त्रीजी के गृहमंत्रालय के अफसरों के लड़के मोटर से पाठशाला
 जाया-जाया करते थे ।

पुत्रों ने शास्त्रीजी के पास जाकर कहा, 'हम भी मोटर से पाठशाला जायेंगे !'
 तब शास्त्रीजी ने कहा, 'मैं तुम्हारे लिए पाठशाला आने-जाने के लिए मोटर
 खरीदता हूँ; पर प्रश्न यह है कि आज मैं मंत्री हूँ; कल मंत्री रहूँ या न रहूँ ! इस पद का क्या
 भरोसा ! फिर तुम लोग पुनः तांगे से ही पाठशाला जाया करोगे । फिर, बच्चो ! क्या
 तुम्हें पसंद आयेगा कि मोटर से जानेवाले पुनः तांगे से ही आया-जाया करें ? और
 मैं भी क्या कहूँगे ?'

लालबहादुर शास्त्री का यह उत्तर सुनकर फिर बच्चों ने कभी मोटर के लिए
 नहीं की ।



—गणेश त्र्यंबक कुलकर्णी



मेरी कविता

□ डॉ. ओम प्रभाकर

कहां से आती है कविता मुझमें
जानता हूं मैं भली भांति ।
लेकिन
पूरी तरह खंगालती हुई
चीरती हुई मुझे
मुझमें होकर
वह कहां चली जाती है . . . ?
. . . शायद भूमि-गर्भ में
समुद्र-तल में या
डिब को लपेटे
डैनों की विस्फोटक ऊष्मा में !

मुझे लगता है
मुझसे निकलकर
मेरी कविता
पेड़ों की जड़ों में जा लेटती है ।

कामगारों के रग-पुट्टों में पैवस्त
मेरी कविता
खेतों-खदानों-कारखानों और मंडियों में
आदमी की ऊर्जा को खाती
सांसों को पीती और

पसीने में नहाती
दिन-दिन और-और तंदुरुस्त होती है
सकुशल रहती है ।

मेरा अनुमान है कि
कुदाल और मुट्ठी के बीच
मुझसे निस्सृत
मेरी कविता ही कसमसा रही है
धरती के नये-नये पृष्ठ खुलते जाने
आनंदतिरेक में

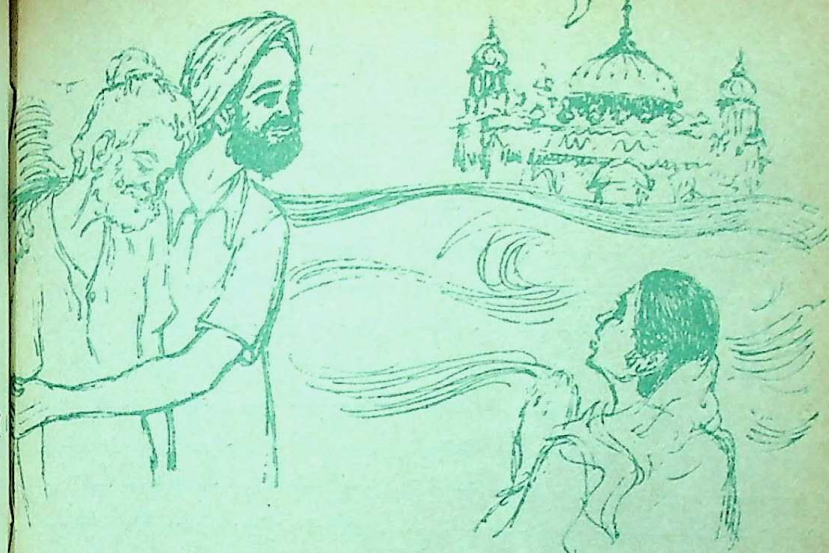
रो-रो कर थकी हुई
भूखी बच्ची निरुपाय
जिसे पकड़ने को दौड़ती है
वह तितलो
मेरा ब्रह्मरंध्र फोड़कर निकली
मेरी कविता ही है
मुझे निश्शेष करती हुई
दिशा-दिशा
प्रांतर-प्रांतर जाती हुई !

—७, किला रोड, मिण्ड (म.)



कर

होती है



कहानी

हैं
ते जाने
तिरेक

आखिरी पड़ाव



जोगेन्द्रसिंह छाबड़ा

ई गुरुचरण सिंह का दिल गुरुद्वारे का कमरा खाली करते समय बैठ था। उनके हाथ सामान बटोरने में हुए थे लेकिन मन पीड़ा से कराह रहा था। जिस एक कमरे के गुरुद्वारे को खिल का रूप देने में उन्होंने दिन रात कर दिये थे, जिसकी उन्होंने पंद्रह तक तन-मन से भरपूर सेवा की थी, गुरुद्वारे से उन्हें हटाया जा रहा था।

दो दिन पूर्व हुए गुरुद्वारा प्रबंध कमिटी के चुनाव में नये प्रधान चुनकर आये थे। वे अपने रिश्तेदार को भाई (गुरुद्वारे के पुजारी) की नौकरी पर रखना चाह रहे थे। सुबह ही प्रधान ने कड़क आवाज में कहा था—

‘भाईजी ! आज से आपकी नौकरी समाप्त की जाती है। आप अपनी व्यवस्था कहीं और कर लें। गुरुद्वारे का

कमरा भी खाली कर दें।'

भाईजी को संगत पर बहुत ही विश्वास था। उन्होंने याचना भरी दृष्टि से संगत की ओर देखा। प्रधान के आदेश के आगे संगत मूकदर्शक-सी बनी बैठी थी। पंद्रह वर्षों तक गुरुद्वारे और संगत की प्राणपन से सेवा करने के फलस्वरूप उन्हें यह पुरुस्कार प्राप्त हुआ था। वह भी ऐसे समय जब एक माह पश्चात् उनकी इकलौती लड़की सुमित्रा की शादी होने वाली थी। एक सप्ताह पहले उनके पैर पर कुत्ते ने काट खाया था। वे इसी चिंता में डूबे हुए थे कि ऐसी विकट स्थिति में वे कहां जायेंगे। उन्हें अपने आप पर क्रोध आने लगा। यदि आज वे अपने शहर अमृतसर में होते तो उन्हें आज ये दुर्दिन नहीं देखने पड़ते। अमृतसर की याद आते ही वे अतीत की स्मृतियों में खोने लगे। दिल के ज़ख्म जो वक्त के अंतराल से भर चुके थे समय पाकर फिर हरे हो गये थे।

उनका यह खानदानी काम नहीं था। अमृतसर में अच्छी खासी कपड़े की दुकान थी। छोटा-सा परिवार था उनका। वे, उनकी पत्नी और एक लड़की बड़े आराम से जीवन बीत रहा था। गुरुबाणी और गुरुद्वारे से उन्हें पहले से ही बड़ा लगाव था। वे प्रातः स्नान से निवृत्त होकर गुरुबाणी का पाठ कर गुरुद्वारे जाते। वहां पाठ-कीर्तन सुनकर अरदास के बाद कड़ाह-प्रसाद लेकर लौटते। उसके बाद घर चाय-नाश्ता करके दुकान खोलने चले

जाते।

उनके सुखी जीवन में तब तक बीमारी अभिशाप बनकर प्रकट हुई। उन्होंने खटिया पकड़ ली थी। चलने लगा था लेकिन कोई विशेष दिखलाई नहीं दिया। वे बीमारी से निपट कर रहे थे कि उसी बीच उन्हें एक सदमा झेलना पड़ा था। उनकी दो वर्षीय लड़की सुमित्रा को उनके छोड़कर ट्रक ड्रायवर के साथ भाग थी। वे इससे टूट कर रह गये थे। वर्ष तक निरंतर इलाज करने से बीमारी ठीक हो गयी थी लेकिन मन संसार से विरक्त हो गया था।

अब वे दुकान नहीं खोलते। घर पर बैठे रहते थे। एक दिन अपना ट्रंक तथा बिस्तर बांध लिया सुमित्रा को साथ लेकर अनजाने सफर और बढ़ गये थे। दो दिन और ट्रेन में सतत सफर कर जब उकता गया तो वे थोड़े दिन करने के विचार से ट्रेन से उतर स्टेशन पर उन्होंने गुरुद्वारे का कुली के सिर पर ट्रंक और बिस्तर के गुरुद्वारे आ गये।

उन दिनों गुरुद्वारा टीन की के एकमात्र कमरे में था। जिस साहबजी का प्रकाश होता था उस से ही लगा हुआ एक कुठरनुमा और था, जिसमें मुसाफिर आकर करते थे। वे उसी कमरे में आकर

नित-नेम के पहले से ही बड़े पक्के थे ।
 गुहारे के वातावरण में आकर उनका मन
 खर की सेवा, पाठ-कीर्तन में और
 थी । अधिक जुड़ गया था । वे बड़े प्रेम से गुरुघर
 की सेवा करने लगे थे । उन दिनों गुरुद्वारे
 मारी से कोई भाई नहीं था । संगत उन्हें ही
 उन्हें एक भाईजी समझने लगी थी । उनका मन भी
 उनकी सामरिक प्रपंचों से ऊब चुका था । जब
 ने उनके प्रमुख लोगों ने उनके सामने
 थ भाईजी की जगह काम करने का अनुरोध
 गये थे । अतः वे सहर्ष ही राजी हो गये थे ।
 रने से ज्ञान प्रातः चार बजे सोकर उठ जाते ।
 लेकिन गुरुद्वारे की तथा सारे आंगन की सफाई
 मा था । स्नान करके ग्रंथ साहबजी का
 । गुरुकाश करते । आठ बजे तक पाठ-कीर्तन
 दिन जाता । उसके बाद अरदास होती । कड़ाह-
 घ लिया । बाद बितरित होता । उसके बाद समाप्ति
 जाने सजा जाती । वे शाम को गुरुद्वारे में रहिरास
 और दो बजे का पाठ करते । गुरुपर्व पर प्रभात
 व उनकी निकालने के लिए वे संगत को सुबह
 दिन गुरुद्वारे से ही उठा देते । बड़े उत्साह से
 उतर लाने फेरी के कार्य में जुटे रहते ।
 ता पता । उन्हें वे दिन याद आने लगे जब गुरु-
 वस्तर लाने की इमारत बन रही थी । वे दिन-रात
 को काम में और उसी के ख्यालों में डूबे
 न की रहते । गुरुद्वारे की इमारत बनाने के लिए
 जिनमें संगत से अनेक बार कहना पड़ा था ।
 या उस मजिल की इमारत वाले गुरुद्वारे पर
 रनुमा निशान साहिब पर झंडा फहराया था
 आकर उनका सीता गर्व से फूल गया था । वे
 आकर रने में कई बार बड़ी शान से लहराते

निशान साहिब के झंडे की ओर देखते
 पंद्रह वर्षों तक गुरुद्वारे में रहने और
 उसकी तन-मन सेवा करने से गुरुद्वारा
 उनके जीवन में बस गया था । वे गुरुद्वारे
 से अलग होने की कल्पना मात्र से ही कांप
 उठते थे ।

वे अतीत की स्मृतियों में डूब उतर रहे
 थे कि उनका ध्यान 'सतश्री अकाल' की
 आवाज से भंग हुआ । उन्होंने सिर उठा
 कर देखा । उनके सामने सरदार प्रीतम
 सिंह खड़े थे । भाईजी हड़बड़ा कर खड़े
 हो गये । हाथ जोड़ते हुए प्रीतमसिंह से
 सतश्री अकाल करने लगे । प्रीतमसिंह ने
 कौतूहलवश पूछा -

‘भाईजी ! अब आगे क्या विचार
 किया है ?’

भाईजी की आंखों में आंसू आ गये ।
 उनकी दुखती रग पर हाथ रख दिया गया
 था । बड़े ही करुण स्वर में बोल उठे-

‘प्रीतमसिंह जी मुझे अपनी कोई चिंता
 नहीं है । सुमित्रा की शादी को एक माह
 बचा है, ऐसी हालत में लड़की को लेकर
 कहां जाऊंगा ।’

प्रीतमसिंह ने उन्हें हिम्मत बंधाते हुए
 कहा-

‘भाईजी ! चिंता की कोई बात नहीं
 है । आप मेरे घर चलिए । कल ही हमारे
 किरायेदार ने मकान खाली किया है ।
 आप वहीं चलकर रहिये और आराम से
 सुमित्रा की शादी करिये ।’

(शेषांश पृष्ठ ७१ पर)

अनंतकुमार पाषाण की तीन कविताएँ

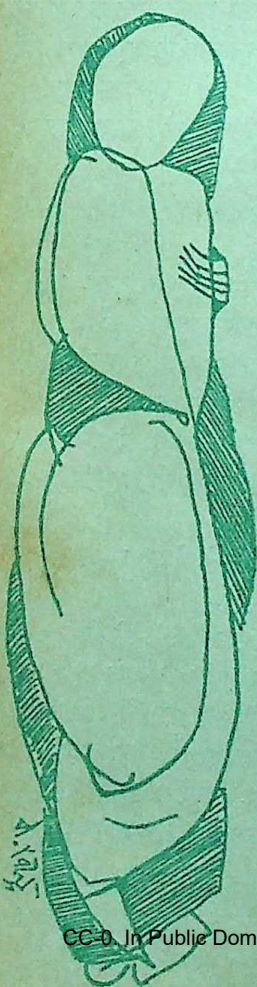
[१]

तुम्हें नाराज पा जिस दिन से लौटा हूँ
घर के हर आँख में शकल
लंबी-लंबी दिखती है।
दीवारें बहुत दूर-दूर हो गयी हैं,
छतें फर्श पर आकर सो गयी हैं,
धूप वैसी ही उजली है,
हवा नहीं चली है,
किसी भी फूल की डंडी नहीं हिली है।
मैं हर काम ठीक वक्त पर करने लगा हूँ—
आने-जाने वालों का हमेशा से ज्यादा
स्वागत करने लगा हूँ,
किसी भी मामूली छोटे-से मजाक पर
बहुत ज्यादा देर तक हँसने लगा हूँ

मगर अब किसी की दुखभरी कहानी
सुनकर नहीं आता है आँखों में पानी।
प्रेम का गीत कहीं रेडियो पर बजता है
हृदय नहीं पिघलता है।
हर शाम मन शांत होता है,
हर सुबह उठते ही होती विह्वलता है...

चोट कभी लग जाये, खून बहे, कोई कहे—
'अरे कहां लगा यह ! खून कैसे निकला
यह ?'

इस पर कहता हूँ—
'ठीक है, चलता है।'





[२]

कल शाम

तुमने मुझसे यह पूछा था—

बैठे हो ऐसे क्यों खिड़की पर अकेले ?

आज भी वहीं हूँ और वैसा ही हूँ

कभी के उठ चुके हैं मित्रों के मेले ।

द्वार पर शाम के झुटपुटे में

तुरा लगाये हुए

सुर्खरू गुड़हल खड़ा है,

खिरखिदा अकेली पत्तों में छिप भोली

तरह-तरह की बोली

से मुझे बहला रही है,

इधर से, उधर से, कभी-कभी बच्चों की

आवाज़ आ रही है ।

अंदर के कमरों में धूप देती हुई

दब-दबे पांवों से घूम रही खामोशी ।

कॉलेज के दिनों का जाना-पहचाना गीत

खामोशी गा रही है,

और बैठे-बैठे ज्यों नींद आ रही है

बालों को सहला कर रोज़ की तरह

रोशनी जा रही है ।



[३]

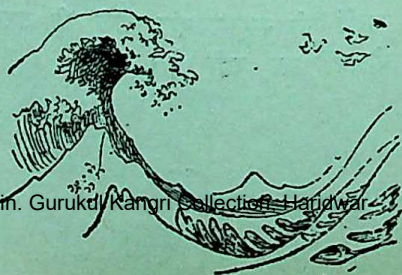
कहां हैं वे रौशन-रौशन कमरे !
वह ठहरी-ठहरी हंसी ! वेथमी-थमी नज़रें !
कहां हैं वे गुलाबी होठों के बीच
कुंद-कलियों से लिखी दूधिया
प्यार की सतरें !

मिस्कीनियत से मुस्काते कहां हैं वे बूजुर्ग !
कहां हैं वे हमजोली कहकहे लगाते हुए !
कहां हैं वे लड़कियां बिखरे हुए वालों की !
कहां हैं वे दुपट्टे खुशबू बिखराते हुए !

वक्त की धुंधलाती सड़क पर सब चले गये—
लोग, जवानी, कमरे, खुशबुएं, कहकहे !
याद के आईने में उनके अक्स बाकी हैं,
खाली-खाली कमरों में खयालात अनकहे !

लोग वह चले गये, मुझे गालियां जिनकी
और सब लोगों के प्यार से ज्यादा थीं !
बैठा हूं अकेला— कभी-कभी लगता है
द्वार पर खड़ा है आकर कोई साथी !—

खामोश मुस्काता, एकटक देखता
आंखों ही आंखों में जैसे यह पूछता—
बीते हुए काल के बीहड़ बयावानों में
तुझको मिलेगा कारवां कौन-सा ?



(पृष्ठ ६७ का शेषांश)

माईजी को महसूस हुआ जैसे डूबते
को किनारा मिल गया हो। उनकी
आँखों में आँसुओं की झड़ी उमड़ पड़ी।
निशान साहिब की ओर हाथ जोड़ते हुए
उठे।

हे सच्चे पातशाह! तू धन्य है!
मेरी लाज रख ली है।

प्रीतमसिंह की आँखें भी नम हो गयी।
उन्होंने कहा—

‘माईजी! मैं अभी नौकर को हाथ-
लेकर भेजता हूँ। वह आपका
मान ले आयेगा। आप सुमित्रा को लेकर
आयें।’

नौकर ने आकर सारा सामान हाथ-
पर रख लिया। गुरुद्वारे से जाते हुए
माईजी विलखकर रो उठे। उन्होंने गुरु-
की धूल अपने माथे से लगा ली थी।

माईजी ने लड़की की शादी में किसी
पर की कोई कमी नहीं आने दी थी।
की विदा की वेला आ गयी थी।

का दिल बहुत ही उदास हो गया था।

उन्होंने बेटी को अभी तक भरपूर स्नेह

था। कभी माँ की कमी महसूस

होने दी थी। उन्होंने दिल को बहुत

झड़ा करके बेटी को विदा किया।

लड़की की जिम्मेदारी और गुरुघर की

यही उनका जीवन था। आज वे

से मुक्त हो गये थे। उन्हें अपना

निरर्थक-सा लगने लगा। उसी

उनका सिर चकराने लगा। उन्होंने

घबराहट महसूस होने लगी। उनके पास
खड़े लोगों ने उन्हें सहारा दिया। वे
खटिया पर अचेत हो गये। प्रीतमसिंह
दौड़कर डॉक्टर को बुला लाये।

लगभग दो घंटे बाद उन्होंने आँखें
खोलीं। उन्हें अपना अंतिम समय निकट
आता दिखलाई देने लगा। उन्होंने प्रीतम
सिंह को हाथ के इशारे से अपने पास
बुलाया। वे बड़े ही विनीत भरे स्वर से कह
उठे :

‘प्रीतमसिंह जी! मुझे सहारा देकर
बाहर दरवाजे तक ले चलो।’

प्रीतमसिंह ने उन्हें अपने कंधे का
सहारा दिया। वे धीरे-धीरे चलकर दर-
वाजे के बाहर आ गये। उन्होंने सामने
गुरुद्वारे की ओर देखा। निशान साहिब
पर झंडा बड़ी शान से लहरा रहा था। वे
अपलक गुरुद्वारे और निशान साहिब की
ओर देखते रहे। उनकी आँखों से अविरल
अश्रु की धारा बहने लगी। उन्होंने हाथ
जोड़ लिये। उनके होठों से धीरे-धीरे गु-
बाणी की पंक्ति निकल उठी—

‘संग सखा सब तज गये

कोई न निबहिओ साथ।

कह नानक इह विपत में

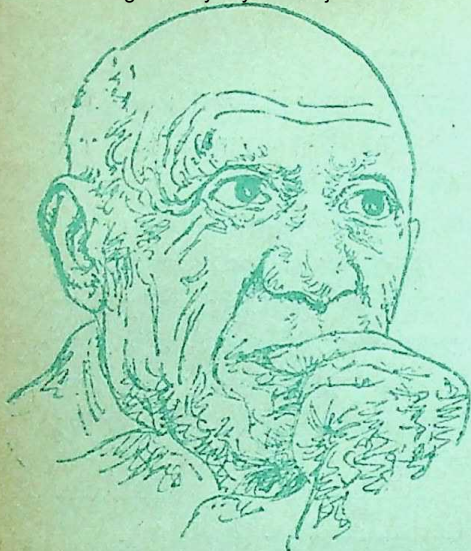
टेक एक रघुनाथ ॥’

अगले ही क्षण उनका सिर प्रीतमसिंह
के कंधे पर झूल गया।

—जैन मन्दिर रोड,

शुजालपुर मंडी, जि. शाजापुर, म. प्र.





पिकासो

पिकासो की प्रेमिकाएँ

०००

‘पिकासो जितने बूढ़े थे, उतने ही कामुक भी थे। उन्होंने मुझे देखते ही प्रेम-प्रस्ताव रख दिया। मेरे लिए उन जैसे मेधावी और प्रख्यात व्यक्ति से बहस करना नामुमकिन थी। उन्होंने पहले मेरा चित्र बनाया, और फिर मुझसे प्रेम किया।’
या पिकासो की एक प्रेमिका सिनेट फेरियर का अनुभव। अन्य प्रेमिकाओं का अनुभव भी कम रोचक नहीं हैं।

०००

विख्यात कलाकार, लुई अरागों से पिकासो ने एक बार कहा, ‘मेरे लेख एक आकर्षक और मोहक महिला एक मेढक से भिन्न नहीं है।’

नवनीत

और उनकी कामुकता ९१ वर्ष की तक, मृत्युपर्यंत, अक्षुण्ण रही। इन्होंने नहीं, वे यह भी जानते थे कि पिकासो ने अनेक सुंदरियाँ उनकी प्रेमिका थीं।

कई की आयु तो उनकी आयु से आधी भी कम थी ।

सिलसिला शुरू पिकासो की प्रेमिकाओं का सिलसिला चित्र-विख्यात अभिनेत्री गरट्रूड स्टीन अपने काल की (इस सदी के प्रारंभिक वर्षों की) सर्वश्रेष्ठ सुंदरी मानी जाने लगी फर्नांदे ओलिवियर से आरंभ हुआ और जैकवलीन राँक तक, जिसके साथ उन्होंने ७९ वर्ष की आयु में विवाह किया चला । इस बीच में जो अनगिनत हटाएँ उनके प्रेम-जीवन में आयीं, उनका विवरण प्राप्त करना किसी शोध-कर्ता का ही काम हो सकता है ।

इस सदी की चित्रकला को अपनी निष्ठ अमूर्त कला से एक नया मोड़ देने में पिकासो अपनी प्रेमिकाओं के मामले काफ़ी रुढ़िवादी और कब्जेदार किस्म आदमी थे । यहां उन्होंने कोई नयी तकनीक तोड़ने की हिम्मत नहीं दिखायी । वे एक वफ़ादार प्रेमी थे, ऐसा भी कहा जा सकता । ऐसे अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं, जिनसे पता चलता है कि जितनी जल्दी किसी महिला से प्रेम का आरंभ करते थे, उतनी जल्दी ही उससे प्रेम करना छोड़ कर, उससे आ-हमेशा के लिए विलग भी हो जाते । 'मोज़ की, और छोड़ दिया' यह वाक्य था उनके प्रेम-जीवन का ।

पिकासो के साथ दस वर्ष तक रहने के बाद उनकी तीसरी पत्नी फ्रैंको जिलो ने



सिनेट फेरियर

‘लाइफ विद पिकासो’ नामक अपनी पुस्तक में स्वीकार किया है कि ‘उनकी एकाकी और अशांत आत्मा सदा आत्मा-भिव्यक्ति के नये-नये माध्यमों की तलाश में रहा करती थी । और सुंदरियों से प्रेम करना भी उनके लिए आत्माभिव्यक्ति का एक प्रभावशाली माध्यम था ।’

पहली प्रेमिका, जो परामर्शदात्री भी थी
प्रख्यात अभिनेत्री गरट्रूड स्टीन न केवल पिकासो की सबसे पहली प्रेमिका थीं, वे उनकी परामर्शदात्री भी थीं । १९०६ में पिकासो ने स्टीन का एक चित्र ९० बैठकों के बाद बनाया था; जिसे लेकर

काफ़ी वावेली मचा क्योंकि पिकासो के कलाकार-मित्रों का कहना था कि वास्तविक स्टीन चित्र की स्टीन से बहुत भिन्न है। यह सुन कर पिकासो ने कहा, 'चिन्ता मत करो, यारो ! वह आगे चल कर वैसी ही दिखायी देने लगेगी, जैसी इस चित्र में दिखायी देती है।' स्टीन भी अपने चित्र से बहुत संतुष्ट थीं और बड़े गर्व के साथ उसे अपने परिचितों को दिखाया करती थीं।

सन १९२० और १९३० के बीच, जब पिकासो एक अमूर्त कलाकार और मूर्तिकार के रूप में विश्व-ख्याति अर्जित कर चुके थे तब ऊंची सोसायटी की अनेक रमणीय युवतियां उनकी प्रेमिका बनीं। इनमें से कुछ थीं : ओल्गा खोखलोवा, मेरी वाल्टर, इने सिल्वेट, मादाम द लेज़रमे और डोरा मार। इनमें से ओल्गा खोखलोवा को पिकासो की प्रथम पत्नी बनने का श्रेय प्राप्त हुआ। ओल्गा ने पिकासो के पुत्र पाब्लो को जन्म दिया।

बाद में, मेरी वाल्टर पिकासो की 'अविवाहित पत्नी' बनीं, और इस संबंध के परिणामस्वरूप पिकासो की पुत्री माया का जन्म हुआ।

१९२७ में जब पिकासो ने अपना सुप्रसिद्ध, ऐतिहासिक ग्यूरनिका भित्ति-चित्र पूरा किया, तो विशेषज्ञों ने कहा कि उसमें पिकासो ने अपनी दो प्रेमिकाओं डोरा मार और मेरी वाल्टर की प्रतिकृतियां भी अपनी विशिष्ट शैली में अंकित की हैं। मेरी से उनका विवाह १९२७ में

हुआ था, मगर अगले ही वर्ष संबंध-विच्छेद भी हो गया था।

प्रसंगवश, डोरा मार और मेरी के स्वभाव में ज़मीन-आसमान का अंतर था। मेरी एक प्रसन्नचित्त युवती थी, जो डोरा सदा खिन्न और उदास रहती थी, जिस काल में ये दोनों पिकासो काएं थीं, उस काल में पिकासो ने कलाकृतियों का सृजन किया, इन विभिन्न स्वभावों के प्रतिप्रकाश-छाया चित्रण बहुलता से देता है।

तीसरा प्रेम-विवाह

६३ वर्ष की अवस्था में पिकासो स्वयं को २३ वर्षीया फ़ेंको जिलो से लिप्त पाया। जिलो दस वर्ष तक पिकासो की प्रेमिका-पत्नी रहीं, और उन्होंने नामक पुत्र और पेलमा नामक पुत्री जन्म दिया। जैसा कि हम पीछे कहेंगे, 'पिकासो के साथ जीवन' नामक पुस्तक में जिलो ने पिकासो की प्रेम करने और सृजन करने की शैलियों का अत्यंत रोचक वर्णन किया एक स्थान पर उन्होंने जिस वर्णन किया है, वह पिकासो की मानसिकता की परिचायक है। वे कहेंगे : 'पिकासो की आयु तब ६४ वर्ष और मैं तब मात्र उनकी प्रेमिका बनी नहीं। एक दिन वे मुझे, मेरी विरुद्ध अपनी एक गत प्रेमिका से ले गये। इस ४३-वर्षीया प्रेमिका

वर्षों तक पिकासो से कहा, 'क्या यह छोकरी
 थी। मेरी प्रेम की प्यास को बुझा सकेगी ?
 और मेरी प्रेम इसके हाथ में एक खिलौना बन कर
 मान का रह जाओगे।'

पिकासो की इस कभी-न-बुझ-सकने-
 वाली प्रेम की प्यास का उल्लेख सिनेट
 कासो की रीवर नामक हालैंड-वासिनी सुंदरी ने
 किया, जो २० वर्ष की आयु में अल्बर्ट आइं-
 स्टाइन की प्रेमिका भी रह चुकी थी, किया
 अपने संस्मरणों में एक स्थान पर वह
 कहती है : 'दक्षिण फ्रांस में एक सुरम्य गांव

जहाँ विश्व भर के नामी और धनी
 व्यक्ति छुट्टियां मनाने आते हैं। मैं कुछ

समय के लिए अपने कुछ मित्रों के साथ
 जिलो के गांव में आयी हुई थी कि किसी ने

परिचय वहाँ छुट्टियां मना रहे पिकासो
 करा दिया। पिकासो तब काफ़ी बूढ़े

चुके थे, इसलिए मुझे तब बड़ा आश्चर्य
 लगा, जब उन्होंने मुझे देखते ही प्रेम-प्रस्ताव

दे दिया। और शीघ्र ही मुझे पता चल
 गया कि वे जितने बूढ़े थे, उतने ही कामुक

थे। हम दोनों जब भी मिलते, वे
 मुझे निर्वस्त्र होने को कहते। इसके बाद

पहले मेरा चित्र बनाते और बाद में
 मुझसे प्रेम करते। एक बार तो लगा-
 वर पांच घंटों तक उन्होंने मुझसे प्रेम किया

। उनकी दलील हमेशा यह रहती थी
 कि वे लगातार और डट कर प्रेम न करें,
 उनकी सृजन-शक्ति समाप्त हो जाये।
 और मैं चूँकि उन जैसे जीनियस की सृजन-
 शक्ति समाप्त करने का पाप अपने सिर

नहीं लेना चाहती थी, इसलिए फौरन उनके
 प्रेम-प्रस्ताव को मान लेती थी। मैं एक
 सप्ताह तक उनकी प्रेमिका रही।'

कामुकता से लाचार

अपनी इस सशक्त कामुकता से पिकासो
 वाकई में बहुत लाचार थे।

जहाँ तक पिकासो की कला का सवाल
 है, इसमें कोई संदेह नहीं कि वे इस सदी
 के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण, प्रभावशाली और
 क्रांतिकारी कलाकार हैं। लेकिन, इस
 बात में भी कोई संदेह नहीं कि उनका प्रेम-
 जीवन उनकी कला के विकास में बहुत
 अधिक सहायक हुआ। जब उन्होंने पेरिस
 में अपने कला-जीवन की शुरुआत की थी,
 तो वे अत्यंत खिन्न रहा करते थे, और
 उनकी उस काल की कलाकृतियां उनकी
 आंतरिक खिन्नता को दर्शाती हैं। लेकिन
 जब से उनके जीवन में सुंदरी प्रेमिकाओं
 का आगमन हुआ, तब से न केवल उनकी
 कलाकृतियां अपेक्षाकृत अधिक उल्लास-
 मय, स्पष्ट और गूढ़ता-रहित होती
 चली गयीं, उनकी शैली भी अधिक सहज,
 भेदक और सर्वसमावेशी हो गयी।

अपनी प्रेमिकाओं के कारण ही, पिकासो
 की कला-शैली भाव-प्रवण, कल्पनाशील,
 आश्वासित और सैद्धांतिक बनी। घनवाद
 से कृत्रिम घनवाद, और अतिथथार्थवाद
 तक की उनकी सफल कला-यात्रा पूरी न
 हो पाती, यदि उनके जीवन में उनकी प्रेम
 की प्यास बुझाने के लिए निरंतर प्रेमिकाएं
 न आती रहतीं।



जिनलोक की यात्रा

ब्रह्मानंद स्वामी

आज विज्ञान भी यह मानता है कि इस पृथ्वी के अतिरिक्त करोड़ों अन्य पृथ्वियां हैं, जहां जीवन की संभावना है। किंतु इनमें से किसी भी लोक के सम्बन्ध में अभी तक स्पष्ट रूप से कोई निश्चित जानकारी नहीं मिल सकी है। वास्तव में ये विभिन्न लोक पृथ्वी से इतनी अधिक दूरी पर हैं कि विभिन्न अंतरिक्ष यानों की सहायता से भी मनुष्य अभी तक इन लोकों के बारे में कोई जानकारी नहीं दे सका है। इस प्रकार इस क्षेत्र में विज्ञान की सीमित क्षमता का पता चलता है। किन्तु हर व्यक्ति में वह क्षमता मौजूद है कि वह अपने सूक्ष्म शरीर से अन्य लोकों की यात्रा कर सकता है और वहां की जानकारी प्राप्त कर सकता है।

१० नवम्बर, १९८१ की बात है। रात के दस बजे थे। मैं अपने बिस्तर पर लेटा हुआ था। नींद नहीं आ रही थी। थोड़ी ही देर बाद मैं देखता हूं कि मेरा सूक्ष्म शरीर मेरे स्थूल शरीर से निकल कर मेरे सामने खड़ा हो गया है और देखते ही देखते एक अन्य लोक में जाकर घूमने लगा। मुझे वहां का हर दृश्य अपनी

नवनीत

बंद आंखों के बीच से स्पष्ट दिखता रहा था। इस समय मैं दो शरीरों में आपको देख रहा था। एक शरीर पृथ्वी पर लेटा हुआ था और दूसरा अन्य लोक में टहल रहा था। मेरी इंद्रियां ठहर गयी थीं। बाहर कोई कोई आवाज सुनाई नहीं पड़ रही थी। फिर भी मैं जागा हुआ था और दोनों शरीरों को देख रहा था। लगातार अपने सूक्ष्म शरीर को प्रारम्भ किया जो इस समय एक लोक में टहल रहा था। यह सूक्ष्म उस दूसरे लोक में ठीक वैसे ही रहा था जैसे पृथ्वी पर स्थूल शरीर है। मेरा सूक्ष्म शरीर इस समय भौतिक शरीर जैसा ही था।

थोड़ी ही देर बाद मैंने काले पत्थर की बनी ऊंची-सी मीनार इसकी ऊंचाई पृथ्वी पर बने मीनार ज़्यादा मालूम पड़ती थी। सड़क के किनारे टहलते-टहलते मस्जिद के पास पहुंचकर मैंने देखा उस मस्जिद के ऊपरी पर कोई फकीर जैसा व्यक्ति

मैं उसे देखकर रुक गया। मैंने उनसे
 पूछा कि आप कौन हैं ?

मेरा नाम बन्दा करीम है, — उन्होंने
 उत्तर दिया।

‘यह कौन-सी जगह है ?’ — मैंने पूछा।

‘यह जिनलोक है।’ — उन्होंने बताया।

उन्होंने पूछा — ‘आप कौन हैं ?’

मैं पृथ्वी से आया हूँ, मेरा नाम

जानन्द स्वामी है।’ — मैंने उत्तर दिया।

फिर मैंने पूछा — ‘आप यहां क्या कर
 रहे हैं ?’

‘मैं खुदा से दुआ मांग रहा हूँ।’ — उन्होंने
 जवाब दिया।

‘जिनलोक पृथ्वी से कितनी दूर है ?’

‘आप पूछा।

‘असंख्य वर्ष।’ — उन्होंने उत्तर दिया।

‘आपको इसी प्रकार मेरे बहुत से प्रश्नों के

जवाब मैंने बताये हैं।’ उन्होंने बताया कि जिनलोक

हृस्वम शरीरों में बंटा हुआ है। कुछ लोग

वैसे ही शरीर जिन होते हैं और कुछ पृथ्वी से

शरीरों के वाद भी इस लोक में आते हैं।

समय जिनलोक में निवास करने वाले व्यक्तियों

शरीर सूक्ष्म शरीर जैसा ही होता है

काले रंग के इनके शरीरों में अग्नि तत्व की

गंधा रहती है। ये लोग पृथ्वी की

गंधा वहां रहते हैं। इनका अपना

शरीर भी होता है। यहां के अधिकांश

इस पृथ्वी पर तथा कुछ अन्य लोकों

में आ-जा सकते हैं।

‘बन्दा करीम काफी स्वस्थ और पृथ्वी

निवासियों जैसे ही हैं। उनकी लम्बाई



साढ़े पांच फीट के लगभग है। वे उस
 समय काले रंग का चोगा पहने हुए थे।
 उनके गले में फकीरों जैसी माला भी
 लटक रही थी।

मैंने उनसे उस लोक को घूमकर देखने
 की इच्छा व्यक्त की। इस पर वे नीचे
 उतर आये और मुझे जिनलोक को
 दिखाने लगे। मैंने देखा वहां पृथ्वी की ही

हिंदी डाइजेस्ट

तरह सड़कें औ गलियां हैं। मकान छोटे-छोटे हैं। इन लोगों का अपना परिवार है। परिवार में बच्चे भी हैं। कुछ बच्चे गलियों में खेल रहे हैं। मैं जिधर से भी जाता था लोग मुझे कौतूहलवश देख रहे थे। मैं उन लोगों के लिए एक अजनबी था। थोड़ी ही देर बाद मुझे किसी की आवाज सुनाई पड़ी—‘यह यहां कैसे आ गया?’ मैंने मुड़कर उसकी ओर देखा। यह एक महिला की आवाज थी जो मृत्यु से पूर्व मेरे मोहल्ले में ही रहती थी। मेरे मित्र बन्दा करीम ने उसे बताया, ‘यह सरकार यहां नहीं आया है। यह केवल इसकी रूह यहां आयी है। इसका शरीर पृथ्वी पर है। यह जिनलोक में घूमने आया है।’

मैं सब कुछ देख और सुन रहा था। फिर मैंने देखा कि वह औरत अपने उसी पति के साथ वहां रह रही है, जो इस पृथ्वी पर भी उसका पति था और जिसकी मृत्यु इस पृथ्वी पर लगभग १५ वर्ष पूर्व हुई थी।

बन्दा करीम ने मुझसे कहा कि वह औरत मुझसे कुछ पूछना चाहती है। मैंने पूछने की अनुमति दे दी। वह बन्दा करीम के माध्यम से पृथ्वी के अपने लड़कों और रिश्तेदारों के बारे में प्रश्न पूछती रही और मैं बताता रहा।

लगभग आधा घंटे तक घूमने के बाद मुझे एक भवन में ठहरा दिया गया। थोड़ी देर बाद दो औरतें उस कमरे में आ गयीं,

जिनकी आयु ५० और २० वर्ष की नवयुवती मेरे लिए एक छोटे से कमरे में कुछ मेवे, अंगूर और एक पात्र में पेय ले आयी और मेरे पास ही रखे छोटे टेबुल पर रख दिया। बन्दा करीम और बेटी से मेरा परिचय कराया। लोग बन्दा करीम के रिश्तेदार थे। थोड़ी देर तक उन लोगों से भी बात की। लड़की ने अपना नाम बानो बताया। मैं जिस कमरे में था उसके दरवाजे पारदर्शी मोतियों का एक खुशनुमा लगा हुआ था।

बानो ने बताया कि इस पर्व में बाहर का दृश्य देख सकते हैं किन्तु बाहर का कोई व्यक्ति अन्दर के दृश्यों को देख सकता। इन लोगों का व्यवहार बहुत ही शांत और सद्भावपूर्ण था। इसके बाद मैंने वापस लौटने की इच्छा व्यक्त की। सलाम दुआ के बाद उन लोगों ने मुझे जिनलोक के मुहल तक पहुंचा दिया। वहां से मेरा शरीर शून्य से होते हुए सीधे मेरे शरीर में प्रवेश कर गया।

फिर थोड़ी ही देर बाद मुझे गहरी नींद लग गयी थी।

आज भी जब मैं बन्दा करीम को करता हूं तो वे थोड़ी देर के लिए मेरे आ जाते हैं और मेरे उनके सम्बन्ध अभी भी कायम हैं।

—एल. आई. सी. कर्मा

मऊनाथ भंजन, आजमगढ़



अनामिका सार्थवती बभ्रुव

7

कुछ दिन चुप रह ले
इस कोलाहल में
अर्थवती होगी कल तू अनामिका ।

रह-रह कर गरज रहा जो यह बादल
सूखा है यह इसके पास नहीं जल
सागर, सरिता, झीलों, तालों में
कहां-कहां फैलाया इसने आंचल
यह तो है वंशधर धुएं का
आत्मज है विष भरे कुएं का
कब इसने सींची है पर्ण ग्रामिका ।

यह जो तेरी आंखों में पानी है
प्यासा होकर भी यह अभिमानी है
जीवन भर कैद रहा है सोयी में
फिर भी मोती बनने की ठानी है
छाती में छेद एक ले कर
झूलेगा किसकी छाती पर
कंबुकंठ में बन कर चंद्रहारिका ।

व्यर्थ नहीं जायेंगे पूजा के क्षण
पर्वत के मस्तक पर होगा रजकण
शंखध्वनि कानों में गूंज रही है
होगा फिर निश्चय ही देवासुर-रण
कल जब होगा समुद्रमंथन
अमृत और गरल का विभाजन
तू ही मुकुलित होगी पद्मनाभिका ।

—देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र'

-१/१६७२ पश्चिमी गोरखपार्क, शाहदरा, दिल्ली ११००३२

□

काकड़ी घाट

किसी से कहते, 'क्यों सीधे सादे भोले जानवरों और परिन्दों को बे-हिसाब मारते और खाते हो—वे भी जीव हैं और तुम भी । अपने ही जीव को पहचानते तो समझते।' किसी से कहते, 'अरे बाबा की क्या परीक्षा करते हो अपनी जवान व मन को ठिकाने में रखते तो अच्छा होता वजाय इसके कि बहाना करके मिठाई रास्ते में ही जूठी लगा कहते आ रहे हो कि बाबा अगर असली हुए तो पहचान जायेंगे असली बात, वरना फिर क्या डर । अपने ही मन के वशीभूत होकर जूठा कर प्रसाद फिर अनेकानेक घड़न्त रचते आ रहे हो।' किसी से कहते, 'अरे चार विद्यार्थी भूखे चले आ रहे हैं खिचड़ी चढ़ा दो।' तीनों पेड़ों के बीच बरगद के पेड़ के नीचे ही बाबा रहते—यही उनका आश्रम था । घटना बीते जमाना हो गया और बाबा भी परदा कर गये, पर जब याद उमड़ती है तो ऐसा लगने लगता कि कुछ ही देर पहले की बातें हैं ।

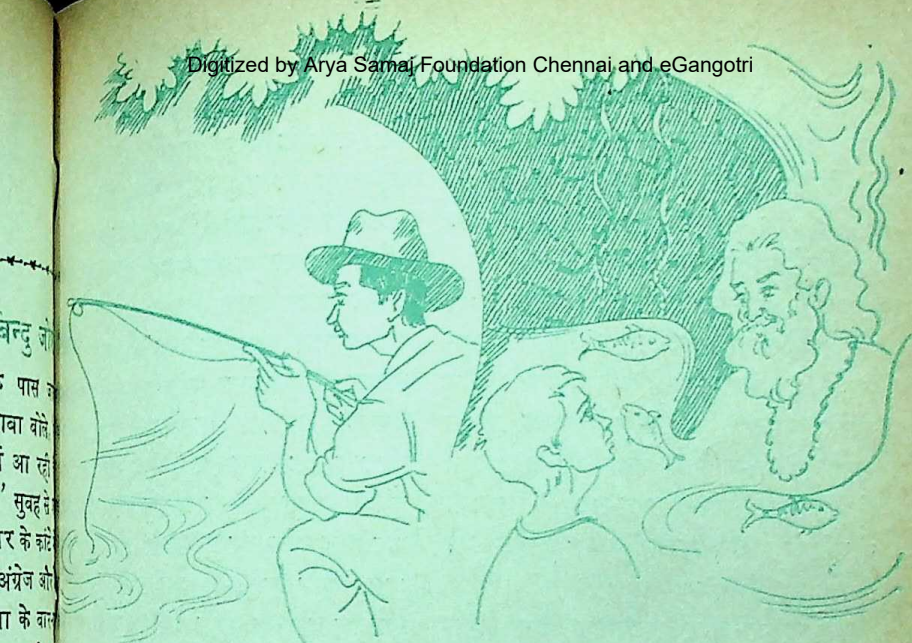
पल्टन का एक गोरा अंग्रेज मेजर बाबा के आश्रम के सामने बहती हुई नदी में मछली मारने को बैठ गया । कई भक्तों व अनेक सज्जनों के समझाने पर भी वह न

नवनीत

□ बिन्दु जो
माना और जब बाबा के पास शिकायत करने लगे तो बाबा बोलने करने दो जो उसके मन में आ रही हुकूमत भी तो इन्हीं की है।' सुबह हो गयी एक भी मछली मेजर के फंसी । ऊँचे अफसर एक अंग्रेज और धर्मके और अपने खानसामा के बानस मना करने पर भी उसी आश्रम के बहती हुई नदी में डंके के काटे में फंसा अपनी चुरकुट को सुलगा गये ।

एक बड़ी मछली फंस गयी और खुशी उसे खानसामा को दे रात्रि के में पकाकर देने का आदेश देते हुए गये । पीछे-पीछे बलछी व मछली खानसामा भी चला । पर बीच में मुड़कर बाबा को व उनके स्थान में अदब से अपना सलाम अर्ज करते जब तक कि नज़र में आता रहा ।

रात्रि के भोजन में वही मछली प्रमुख भोजन रहा । पर सोने से कुछ दर्द पेट में शुरू हो गया और गया कि बरदाश्त के बाहर हो समय के सुविख्यात सर्जन व



बन्धु जो पास वा बों आ लं सुवह र के अंग्रेज और ता के बा आश्रम के कोटे में मुलगा बनाया गया, पर ज्यों-ज्यों दवा की, मर्ज बढ़ता ही गया, यहां तक कि जीने के लाले हुए गये। खानसामा की नमकहलाली ने और मारा और वह बेधड़क साहब के कोठे के कमरे में घुस कहने लगा, 'हुजूर, बाबा से माफी मांगिये और मिन्नत कीजिये की, वरना आपकी सेहत में कोई सुधार की भी नहीं होगा।' मरता क्या न करता—हुजूर होकर अपनी सब अक्ल व हुकूमत छोड़ उसने तोबा-तिल्ला की और मिन्नतें करने लगा। उसकी आंखों के सामने नदी व बरगद के पीछे बाबा बैठे गुजरने लगे। कुछ ही मिनटों में दर्द गायब हो गया और नींद आ गयी साहब को। तड़के ही उठ नहा-धोकर व खानसामा को ले आश्रम पहुंचा और टूटी-फूटी हिन्दुस्तानी में बाबा से माफी मांगने

लगा। इर्द-गिर्द जमा हुए लोगों से बाबा कहने लगे, 'अरे इसे समझा दो कि लंगोटे वाले बाबा से क्या माफी मांगना है! मांगे उन मासूम मछलियों से जिनके बड़े-बूढ़े को पकड़ कर यह खा गया और उन्हें बिलखते छोड़ गया।' तब से वह बराबर हर महीने पूरे महीने का चारा मछलियों को भेजता रहा और जब भी अवकाश मिलता वहां जाता। पेन्शन के बाद भी सात समुद्र पार से भी अपने मुल्क विलायत से जब तक ज़िन्दा रहा, बराबर मछलियों के लिए चारे के वास्ते रुपये भेजता रहा—मांस खाना उसी दिन से उसने छोड़ दिया था।

उन्नीस-बीस वर्ष का एक युवक भी बाबा का नाम सुन कर वहां पहुंच लोगों के साथ बैठ गया और उनकी तरह-तरह की

बातें सुनने में मस्त हो गया कि अचानक बाबा बोल उठे, 'अरे, इस युवक से कह दो कि बेकार में बैठे-बैठे अपना समय बर्बाद न करे और मछली पकड़ बाजार में बेच अपने बूढ़े मा-बाप की सेवा करे ।'

युवक को सुन बुरा लगा और मन ही मन कहने लगा कि औरों से कहते हैं मछ-लियां 'जानवर मासूमों' को न मारो और मुझसे मछली मारने व बेचकर रोज़ी कमा बूढ़े मां-बाप की सेवा करूं कहते हैं । हो सकता है और भी तरह-तरह के विचारों ने उसे घेरा हो जो उसने कभी जाहिर नहीं किये ।

भड़ककर और तड़ककर चल दिया वह, और रास्ते भर सोचते-सोचते रास्ता अपना तय करते गया कि मछली न पकड़ूंगा और न बेचूंगा—खानसामागिरी करूंगा—बड़े से बड़े उस्तादों की चिलमें भर-भर कर व खिदमत कर खानसामागिरी के फनों में भी उस्ताद हो गया हूं और कई हफ्ते खानसामागिरी पाकर अच्छे-अच्छे इनाम व सार्टीफिकेट पाये हैं, सो खानसामागिरी करूंगा ।

यकायक इसी बीच एक गोरा पल्टन और आ पहुंची और सिटौलीराम की छावनी में कयाम करने लगी । सबसे बड़े साहब को खानसामा की जरूरत सख्त थी । यह सुन अपनी खानसामागिरी की पोशाक निकाल कमर में पेंटी लगा सार्टीफिकेट ले वे बड़े साहब से मिले और खानसामा बनने में सफल हो गये ।

नवनीत

नदी छूटी, मोहल्ला छूटा, गांव छूटे, नदी के मछुए साथी छूटे और का खड़ा ही रह गया डंका और कमरे के एक कोने में, पर धीरे-धीरे लोगों को मालूम हो गया कि कुल्हाड़े उसके ऊपर साफा चढ़ा, अचकन पेंटी लगा, बूट कस अव छावनी के साहब की खानसामागिरी करने लगे यह होते हुए भी डंका कांटा हमेशा छावनी के क्वार्टर में एक कोने में हमेशा रहता, जिसे वे सुबह-शाम कपड़े से पोंछ लिया करते थे । कुछ अर्से पहले बूढ़े मां-बाप इस दुनिया से खसत पाने से पहले अपने लड़के, नाने साहब की शादी कर गये थे, जिसे जमाने की विदाई से कभी यादों की दुखित यादों की भी उनकी अहलिया हाथ बटाती रहती थी ।

एक बार पल्टन को क्वेटा में हुकम मिला और खानसामा, उनकी लिया और डंका कांटा भी चल पल्टन के साथ-साथ ।

पिश्ते, बादाम, अंगूर, हुम्बे व जल और मुल्क में रहने वाले सींकिया पहचाने खानसामा के गालों में सुर्खी जल गयी और बड़े ही सुकून के साथ वीवी के दिन गुजरने लगे, पर इन दिनों में हिलोरें लेने वाली ज़िन्दगी न चल पायी ।

एक रात को भयानक जलजमा और सैकड़ों ज़मीनदोज़ हो गये । सामा का क्वार्टर गिर गया, पर

दीवार ऐसी गिरी कि दोनों मियां-बीबी पिजरे की तरह बन्द रह गये। बार-बार बीबी कोसती पर खानसामा सलाह देते अल्लाह या परमात्मा को याद करने की। इस पर उनकी बीबी और भी खिजिया जाती।

खैर, तीन रोज़ के बाद सही सलामत वे निकाल लिये गये और एक तम्बू में बैठे-बैठे हुक्का पी रहे थे कि एक सिपाही ने आकर हुक्म सुनाया कि ठीक दो बजे उन्हें बड़े साहब ने बुलाया है। सुनकर कुछ सोचते-सोचते वे अपने डंके कांटे को साफ करने लगे जो क्वेटा लड़के भी उनके साथ पहुंचा था और पिजरे से जब बाहर निकाले गये तो डंका-कांटा भी मय डोर के सही सलामत उनके साथ आकर तम्बू के एक कोने पर खड़ा चौकी-दारी उनकी यहां भी कर रहा था।

दो बजे अपने बड़े साहब के सामने वे जब हाज़िर हुए तो उन्हें मालूम हुआ कि उनकी मेम साहब की टांग टूट गयी है और वे उसे लेकर विलायत जा रहे हैं आज रात मिलिटरी स्पेशल से, जिसमें और भी थानेवाले लोग होंगे—खानसामा को भी वारंट के तख्ताह देकर उन्होंने दो सौ रुपये बख्शीश के दिये।

दूसरी पलटन पहले ही आ पहुंची थी, इसलिये खानसामा, उनकी बेगम मय छावनी और बड़े साहब के स्पेशल से मेरठ को रवाना हो गये। लम्बे सफर के बाद मेरठ आया और वे उनकी बीबी तथा

डंका उतार बहनोई के वहां पहुंच कम्बू दरवाजे पहुंच रहने लगे। मालूम न हो पाया डंके-कांटे व उसकी डोर को क्यों वे हमेशा अपने साथ ही रखते थे ?

मेरठ के सैर-सपाटे व मज़ारों की ज़िया-रत और उम्दा किस्म-किस्म की चीजें खाते-खाते उनकी जेब खाली होती गयी। कहीं हज़ारों मेहनतों व भाग-दौड़ करने के बाद भी उन्हें नौकरी न मिल पायी और गर्मी के मौसम की बहार आ पहुंची। जेब में सिर्फ भाड़े भर के पैसे या रकम रह गयी थी। बहुत ही सोच-विचार के बाद वे तीनों—खानसामा, उनकी बेगम और डंका मय उसी डोर-कांटे के अपने वतन पहाड़ को रवाना हो गये। उस ज़माने के लोगों में आपस में मुहब्बत थी चाहे किसी भी मज़हब या जात का हो।

अब वे अपने पहाड़ के छोटे शहर के मोहल्ले में पहुंचे तो मोहल्लेवाले खुशी के मारे बाग-बाग हो गये जैसा खोया हुआ प्यारा रिश्तेदार मिल गया हो।

बड़ी आदरभंगत हुई और खाना-दाना बारी-बारी से मोहल्लेवाले पहुंचाते रहे। संकोचवश कुछ ही दिनों बाद मोहल्ले-वालों और मालिक मकान से कह बैठे जेब खाली वाले बिना किसी रोज़गार के खानसामा, कि उन्होंने घर-गृहस्थी और खाने-पीने का सब सामान मोहल्लेवाले कर लिया है, इसलिये बराये मेहरबानी अब मेहमान नवाजी से उन्हें बख़्श दिया जाय।

(शेषांश पृष्ठ १०६ पर)

हिंदी डाइजैस्ट

रोमांचक रहस्य

मनीला का वह अद्भुत अतीन्द्रिय शल्य-चिकित्सक

□ हरिमोहन

०००

अविश्वसनीय-सी लगने वाली यह सच्ची कहानी है, फिलिपाइंस के एक युवक 'चिकित्सक' की, जो अपनी अद्भुत अतीन्द्रिय शल्य-चिकित्सा विधि के सैकड़ों निर्धन मनीला-वासियों को स्वस्थ कर चुके हैं। अमरीका के वैज्ञानिकों और चिकित्सकों ने उनकी इस विधि की वैज्ञानिक जांच कर उसे पूर्णतया 'वैज्ञानिक निरापद' पाया है। फिर भी, इस युवक को न धन की परवाह है, न विश्व-ख्याति

वे अपने निर्धन रोगियों को छोड़कर कहीं नहीं जाना चाहते, कुछ नहीं चाहते

०००

मनीला (फिलिपाइंस) के अतीन्द्रिय शल्य-चिकित्सक डॉक्टर टोनी एक अर्धेड़ महिला का हाथ पकड़कर, अपने छोटे से चिकित्सालय में लाये, और फिर कुल १५ वर्ग फुट क्षेत्रफल वाले इस चिकित्सालय में पड़ी खाट पर लिटा दिया। इस तथाकथित चिकित्सालय में इस खाट के अलावा, एक छोटी-सी मेज ही थी, जिस पर शरीर पर मले जाने वाले अल्कोहल की एक बोतल के अलावा, एक कैंची ही थी।

महिला के खाट पर लेटते ही, डॉक्टर टोनी ने अपने हाथों से हल्के-हल्के उसके पेट को गूँथना आरंभ कर दिया। इस प्रक्रिया के दौरान, सहसा उस महिला का

पेट एक स्थान पर ऐसे चिर गया, किसी शल्य-चिकित्सक की छुरी से नहीं प गया हो।

इस चिरे हुए स्थान में अपनी उंगलियां डाल कर, २६-वर्षीय टोनी ने एक सूजा हुआ अंतर्गत निकाला। इस प्रक्रिया में उल्लेखनीय क्षण ही लगे।

फिर डॉक्टर टोनी ने कैंची से को काटा, और चिरे हुए स्थान पर लियों से अल्कोहल मला। दो-तीन दिनों बाद, वह चिरा हुआ स्थान ऐसे भर मानो वह कभी चिरा ही न था।

‘आपको कोई कष्ट तो नहीं हुआ’

नवनीत

८४

डॉक्टर टोनी ने मुस्कराते हुए, महिला से पूछा।

‘बिलकुल नहीं,’ महिला ने उत्तर दिया, और खाट से उठ कर बाहर जाने लगी।

०००

२१ मार्च, १९६५ को घटी इस चमत्कारिक घटना के साक्षी थे एक अमरीकी व्यवसायी—मेयर क्रोनेनबर्ग, जिन्होंने खुद अपनी आंखों से देखा था कि अपनी अतीन्द्रिय शल्य-चिकित्सा के दौरान डॉक्टर टोनी ने महिला पर किसी संज्ञाकारी औषध का प्रयोग नहीं किया था।

यह भी जानते थे कि डॉक्टर टोनी ने कभी शल्य-चिकित्सा का विधिवत प्रशिक्षण प्राप्त नहीं किया था। वास्तव में, डॉक्टर टोनी का कहना था कि अतीन्द्रिय शल्य-चिकित्सा के लिए परंपरागत चिकित्सीय प्रशिक्षण की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती।

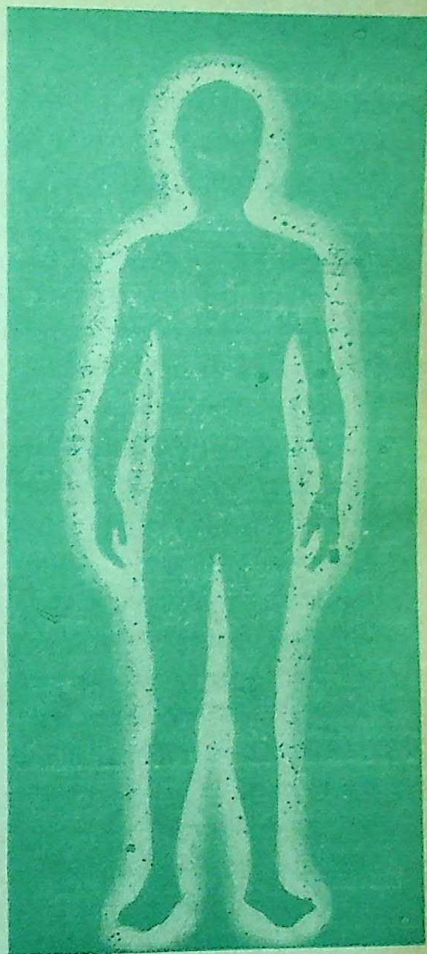
मेयर क्रोनेनबर्ग मनीला में डॉक्टर टोनी की चमत्कारिक अतीन्द्रिय शल्य-चिकित्सा को देखने नहीं आये थे।

तो डॉक्टर टोनी को जानते तक न थे।

आये थे, एक अन्य अतीन्द्रिय चिकित्सक एल्यूतेरियो टर्टे की आस्था-चिकित्सा को देखने के लिए। लेकिन, मनीला पहुंचने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि अपनी पुत्री के आकस्मिक निधन के कारण टर्टे शोक में रह रहे हैं, और कई हफ्तों तक किसी भी शल्य-चिकित्सा नहीं करेंगे।

तभी, उन्हें नेल्सन डेकर नामक एक अन्य अमरीकी से डॉक्टर टोनी के, जो आस्था-चिकित्सक न होकर सीधे सादे अतीन्द्रिय-चिकित्सक थे, बारे में ज्ञात हुआ, और वे डॉक्टर टोनी से मिलने के लिए उनके चिकित्सालय पहुंचे थे।

जब वे चिकित्सालय पहुंचे थे, तो



उसके बाहर रोगियों की भारी भीड़ जमा थी। सभी रोगी डॉक्टर टोनी से अतीव्रिय शल्य-चिकित्सा कराने आये थे। जब उन्होंने डॉक्टर टोनी को बताया कि वे किस उद्देश्य से उनके पास आये हैं, तो डॉक्टर टोनी ने कहा, 'इस बार नंबर एक अघेड़ महिला का है, जो अपने पेट के सूजे हुए ऊतक के कारण परेशान है। आप स्वयं चिकित्सालय में उपस्थित रह कर देख लीजिये कि मैं कैसे ऊतक को उसके पेट के बाहर निकालता हूँ।'।

इस शल्य-चिकित्सा को, जिसे पूरा होने में पांच मिनट भी नहीं लगे, देखकर ६० वर्षीय मेयर क्रोनेनबर्ग ने, जो एक सफल व्यवसायी होने के अलावा, व्यक्तिगत जीवन में एक सुलझे हुए इंसान भी हैं, एक पत्रकार को बताया: 'इस चमत्कार को देखकर मैं स्तब्ध रह गया, और सारी रात इस करिश्मे के बारे में ही सोचता रहा। मैं न खुद समझ पाया हूँ, और न किसी को समझा ही सकता हूँ कि कैसे डॉक्टर टोनी ने अपनी उंगलियों से उस महिला के पेट को चीरा, और सूजे हुए ऊतक को बाहर निकाला।'।

०००

लेकिन, डॉक्टर टोनी अपनी चमत्कारिक अतीव्रिय शल्य-चिकित्सा-विधि को इन शब्दों में समझाते हैं: 'जिस अलौकिक शक्ति के सहारे मैं अतीव्रिय शल्य-चिकित्सा करता हूँ, वह मेरे अंदर नौ वर्ष को आयु से ही मौजूद है। मैं खुद कुछ नहीं करता,

नवनीत

वही करता हूँ, जो यह रहस्यमयी मुझसे कराना चाहती है। मैं इसका माध्यम भर हूँ।'।

मेयर क्रोनेनबर्ग का कहना है: 'टोनी की अतीव्रिय शल्य-चिकित्सा को धार्मिक या आस्था पर आधारित शल्य-चिकित्सा-विधि मानना गलत है। मैं उनकी इस विधि को पूर्णतया ईमान मानता हूँ।'।

०००

डॉक्टर टोनी अपने रोगियों में फ्रीस नहीं लेते, लेकिन कृतज्ञ स्वेच्छा से उन्हें कोई उपहार या धन देना चाहे, तो वह उसे इंकार कर निराश भी नहीं करते।

यद्यपि कुछ डॉक्टर और अन्य आस्था-चिकित्सक घोषित करते हैं कि डॉक्टर टोनी का विरोध करते हैं, तथापि, डॉक्टर टोनी इस विरोध चिंतित या शंकाित नहीं हैं। ऐसे डॉक्टर और जज हैं, जो शल्य-चिकित्सा के लिए डॉक्टरों या अस्पतालों को नहीं में न जाकर, उन्हीं के पास आते हैं।

मेयर क्रोनेनबर्ग ने डॉक्टर टोनी अन्य कई रोगियों की शल्य-चिकित्सा करते भी देखा।

पंद्रह वर्ष की एक नवयुवती को शल्य चिकित्सा के लिए चिकित्सालय में खटा पर लिटाया गया, तो डॉक्टर के साथ-साथ, मेयर क्रोनेनबर्ग ने देखा कि उसका कंधा बहुत सूज

फूला हुआ है। डॉक्टर टोनी ने कंधे पर अपनी उंगलियाँ फिराते-फिराते, उस फूले हुए स्थान में एक दरार करके उस विजातीय पदार्थ को बाहर निकाल दिया, जिसके कारण कंधा सूजा और फूला हुआ था। दरार से रक्त की एक बूंद भी बाहर निकली। यदि उसे चाकू से चीरा जाता, तो रक्त अवश्य निकलता।

उस विजातीय पदार्थ को चाकू से काटकर कूड़े की टोकरी में फेंक देने के बाद, डॉक्टर टोनी ने अपना बायाँ हाथ दरार पर फेर कर उसे हमवार कर दिया। अब कोई नहीं कह सकता था कि वहाँ पहले कोई दरार थी।

अधेड़ महिला की भांति इस नवयुवती को भी 'शल्य-चिकित्सा' के दौरान कोई कष्ट नहीं हुआ।

जब तक 'शल्य-चिकित्सा' चलती रही, वह बराबर सचेत रही। और डॉक्टर टोनी और मेयर क्रोनेनबर्ग से हंस कर बातें करती रही।

इस अनुभव के बारे में बातें करते हुए, क्रोनेनबर्ग ने पत्रकार को बताया : 'एक क्षण को तो मुझे लगा कि कहीं डॉक्टर टोनी ने मुझे सम्मोहित तो नहीं कर दिया है। और यह निश्चय करने के लिए मैंने खुद अपने शरीर में चिकोटी काट कर देखा। मैंने पाया कि मैं सचमुच होश में था, और वही देख रहा था, जो सचमुच मेरे सामने घट रहा था। भ्रम की कहीं कोई गुंजाइश न थी।'।

जीर्ण बवासीर की एक रोगिणी की सफल 'शल्य-चिकित्सा' को देखने के बाद, मेयर क्रोनेनबर्ग ने डॉक्टर टोनी से अपनी सूजी हुई नाक की 'शल्य-चिकित्सा' करने का अनुरोध किया। इस 'शल्य-चिकित्सा' का वर्णन स्वयं उन्हीं के शब्दों में : 'सबसे पहले, डॉक्टर टोनी ने जोर-जोर से मेरी नाक को रगड़ना शुरू किया। फलस्वरूप, मेरी नाक से खून बहने लगा। फिर, डॉक्टर ने मुझे कहा कि मैं अब अपने हाथ से नाक के सूजे हुए भाग को, जो नाक से अलग हो गया था, लेकर कूड़े की टोकरी में डाल दूँ। मैंने ऐसा ही किया। इसके बाद, डॉक्टर टोनी ने नाक को फिर रगड़ा। इससे रक्त-स्राव बंद हो गया। मुझे अंत में बिल्कुल न लगा कि मेरी नाक पर किसी ने कोई शल्य-चिकित्सा की है।'।

डॉक्टर टोनी आँखों और मस्तिष्क की सूक्ष्म 'शल्य-चिकित्सा' भी करते हैं। उन्होंने फिलिपाईंस के एक नामी जज को, जो वर्षों से कैंसर से ग्रस्त थे, कैंसर-मुक्त कर, स्वस्थ किया था।

उनकी अतींद्रिय शल्य-चिकित्सा की एक उल्लेखनीय बात यह है कि 'शल्य-चिकित्सा' के बाद उनका रोगी एक मिनट के लिए भी खाट पर विश्राम नहीं करता, और फ़ौरन उठकर हंसा-खेलता चिकित्सालय से बाहर चला जाता है।

डॉक्टर टोनी रात में अपने रोगियों का इलाज नहीं करते। क्यों? कारण सीधा-सादा है। उनके चिकित्सालय में बिजली

नहीं है, कारण-उनके पास बिजली लगवाने लायक पैसा नहीं है।

०००

मेयर क्रोनेनबर्ग डॉक्टर टोनी को अपने साथ अमरीका भी लाये, वहां के प्रमुख शल्य-चिकित्सकों को यह विश्वास दिलाने के लिए कि डॉक्टर टोनी नीम-हकीम नहीं हैं, बल्कि सीधे सच्चे अतींद्रिय शल्य-चिकित्सक हैं। फिलडेलफिया और अन्य अमरीकी स्थानों के अग्रणी शल्य-चिकित्सकों ने उन पर वैज्ञानिक प्रयोग करके तथा उन्हें शल्य-चिकित्सा करते देखकर यह विश्वास व्यक्त किया है कि उनकी अतींद्रिय शल्य-चिकित्सा-विधि पूर्णतया वैज्ञानिक और निरापद है। उनकी राय में डॉक्टर टोनी नीम हकीम नहीं हैं।

डॉक्टर टोनी चाहते तो अमरीका में स्थायी रूप से रहकर, यश और धन दोनों

अर्जित कर सकते थे। लेकिन, अमरीकी वैज्ञानिकों और शल्य-चिकित्सकों द्वारा उनका वैज्ञानिक परीक्षण हुआ, वे पुनः अपने देश में अपने रोगियों के बीच लौट आये। वे कहते हैं 'मुझे न धन की चाह है, न यश की। रोगियों का सुख-संतोष मेरा सबसे बड़ा पुरस्कार है। मुझे कुछ और नहीं चाहिए।'

मेयर क्रोनेनबर्ग, जिन्हें इस विश्व-प्रसिद्ध शल्य-चिकित्सक का परिचय प्राप्त करने से कराने का श्रेय प्राप्त है, डॉक्टर टोनी का जिक्र आते ही, विस्मयाभिरुक्त होते हैं। वे कहते हैं: 'मैं उन्हें पृथ्वीवासी नहीं मानता। वे पृथ्वी पर आये 'देवता' हैं।'

और करीब-करीब यही मत उनके असंख्य रोगियों का भी है, जो उनके हाथों स्वास्थ्य-लाभ कर चुके हैं।

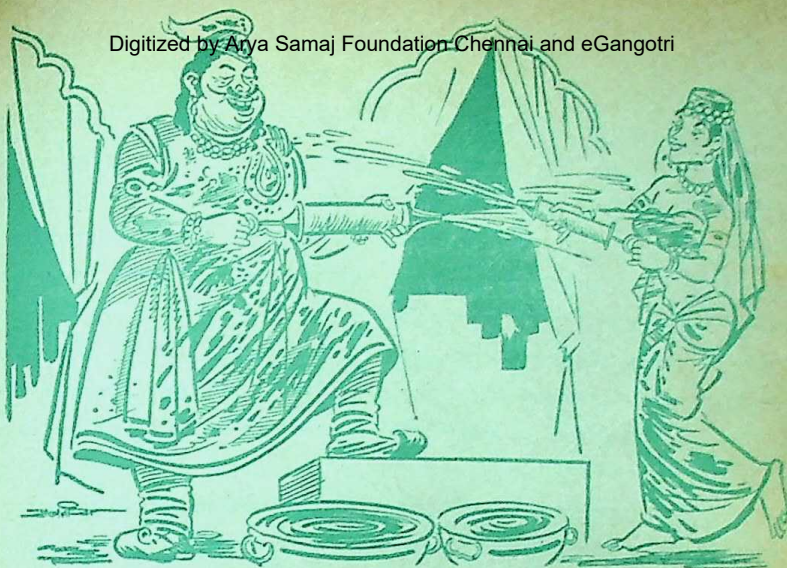
ईश्वर-दर्शन

धर्मज्ञान से गर्वित कुछ पादरी एक दिन महर्षि रमण के पास आकर बोले- 'है, आपको ईश्वर का साक्षात्कार हो गया है और आप हर सुबह तीन घंटे उससे बातें बिताते हैं। या तो आप अपने ईश्वर से हमें मिलवाइए वरना हम आपको पाखंडी समझेंगे।'

महर्षि मुस्कराते हुए बोले- 'भगवान आपको शांति दे। आप सुबह से आ जाइएगा, मैं आपको अपने भगवान से मिला दूंगा।'

पादरी सुबह होते आश्रम में आ गये। कुछ देर बाद महर्षि उन्हें अपने साथ ले गये। कई मील चलने पर नदी किनारे वे एक झोंपड़ी के सामने रुके। अंदर महर्षि चटाई पर लेटे एक कोढ़ी की तेल से मालिश करने लगे। फिर उन्होंने उसे खींचा और खिचड़ी पकाकर खिलाई। पादरी यह दृश्य देख सन्न रह गये। उन्होंने कहा 'महर्षि ! हमें क्षमा करें। आज आपने हमें वह ज्ञान दिया है जो पुण्यात्माओं के दुर्लभ है।'

-डॉ. भक्त



होली व्यंग्य

होली वाजिद अली शाह की ... मेरी !

□ के. पी. सक्सेना

तब का इतिहास और अब का इतिहास गवाह है कि हमारे इस अवध होलियां दो ही लोगों ने मनायीं ढंग ! वाजिद अली शाह ने और ... मैंने ! बाकी सब यों ही हैं। ... सिर्फ बनियान का रंग में भीग जाने को ही होली नहीं कहते हैं ! ... बनियान तले जो दिल होता है, जो रूह होती है, जो एहसास होता है ... उस सबको रंगना पड़ता है ... आत्मा गीली करनी पड़ती है। तब होली होती है। यह मौलिक होली सिर्फ

दो ही लोगों में पायी गयी ... मुझमें और वाजिद अली शाह में। ... बल्कि, पहले उनमें, फिर मुझमें। बीच का सारा लखनऊ बस यों ही नगाड़े बजा कर रह गया ! ...

वाजिद अली शाह, जैसा कि आपने फोटोओं में देखा होगा, तन से बेहद लहीम-शहीम और मन से बेहद महीन बादशाह गुजरे हैं। ... पोलिटिक्स में उन्होंने अंग्रेजों के साथ जो कुछ भी किया हो मैं यहां होलियों की बात कर रहा हूं ! होली

हेडिंग के साथ के चित्र के चित्रकार : विकास सबनीस

और राजनीति में रंगों का अंतर है !... होली में रंग से ऊपर रंग छिटकते चले जाते हैं । राजनीति में रातों-रात तड़ से एक रंग धो कर अगली सुबह दूसरा रंग चढ़ा लेते हैं ! ... मैंने आज तक सियार नहीं देखा ... भला रंगा सियार कहां से देखूंगा ? अलबत्ता अंदाजा लगा लेता हूं कि कुछ-कुछ 'रहनुमाओं' जैसा होता होगा । खैर ... मन पापी भटक कर कहां से कहां जा पहुंचा !...

तो साहिबो, अपने वाजिद अली शाह साहब जो थे (अल्ला उन्हें करवट-करवट जन्नत बख्शे ...) सो बेहद सेक्यूलर किस्म के राजा थे । ... बड़ी तरबतर होलियां खेला करे थे ! ... ताज्जुब है कि उन दिनों न सुलहे कुल बगैरा होती थी न कौमी एकता हफ्ता बगैरा मनाया जाता था—रेडियो टी. वी. पर ... फिर भी वाजिद अली शाह से इतना धर्मनिरपेक्ष होने को किसने कह दिया ? उनके एक मुंह लगे थे ख्वाजा नवाजू । पता नहीं उन दिनों मुंह लगे लोगों को हिंदी में क्या कहते थे ?

खैर ... यह जो ख्वाजा नवाजू थे वह महीना पहले से हौजें बनवाते थे ... टेसू के फूल और अबरक-गुलाल बगैरह इकट्ठा करते थे । सूंघ-सूंघ कर खुशबुएं इकट्ठी करते थे, जिन्हें रंग में घोला जा सके । ... फिर एक हफ्ता पहले कम महत्वपूर्ण कन्याओं पर रंग बगैरा फेंकने और नाच-रंग की रिहर्सल होती थी, जैसी कि अब छब्बीस जनवरी से पहले होती है ।...

नवनीत

पिचकारियों के गट्टे-वाशर बगैरा चेंद्रे लिये जाते थे कि कहीं ऐसा न हो कि भीगनेवाला तय्यार खड़ा है और कारी जाम हो गयी ! बारादरी दीगर जगहों पर मेला लगता था गुलाल के बादल उड़ते थे ... बाँछा हाथ को हाथ नहीं सुझाई देता था । माहौल अवीर से धुआं-धुआं, जैसा कि पुलिस फायरिंग के दौरान कभी-कभी होता जाता है ! ... अंगरखे इस क्रूर उदे हो जाते थे कि मुसाहिबों को पहचान कठिन हो जाता था कि शाह कौन हैं और ब्रेगम नंबर ग्यारह कौन सी । एक जैसे नजर आते थे ! ... नर-मात फर्क मिट जाता था ! गनीमत अवध की यह महीन परंपरा आज भी हजरतगंज में कायम है । ... पहले में आप नहीं पहचान पायेंगे कि 'डिस्को दीवाने' सुन रहा है, रही है ? ...

झांझ, डफ और मजीरों का नाजुक कमरें और भारी भरकम संगीत की लय पर थिरक उठते । बसे टेसुओं की बाँछार शाह और हिबों एवं मुसाहिबनियों को बौरा भूल जाते कि वे कौन हैं । बची-खुची मस्त बौराहट न पुलिस-थानों में शेष रह गयी । आसपास हरिजन बस्तियां हैं । 'पिया' वाजिद अली शाह थे और क्षण भर को होली के

जाते थे कि अंग्रेज सिर पर हैं।... ठीक
 जैसे ही जैसे अब हम यह भूल जाते हैं कि
 कठोरे में विदेशी कर्ज का पैसा पड़ा है,
 और विकास प्रदर्शनियां सजा कर रेकार्ड
 लगा देते हैं—'मेरे देश की धरती सोना
 ... बोझ उगले...'

खैर... यह त्योहार ही मस्ती का
 है... बकौल एक सिपाही जो होली
 की छुट्टियों में गांव आया और मस्ती में
 बौरा कर गाने लगा—'भाड़ में गयी
 ... कौकरी... बंदूक बेचकर खाओ! ...'
 होली की शाम वारादरी में 'रहस' सजता
 था।... घुंघरुओं के नगमे तैरते थे। शाह
 कभी कृष्ण बनते, कभी गोपी! यह
 वीर बात है कि अब उसी वारादरी में
 नृत्यों, लौकियों और कद्दुओं की सरकारी
 मायश होती है और बरातों की दावत
 में कि कुल्हड़ बिखरे रहते हैं!

मैं अपने इसी लखनऊ में होली भर
 'खुश पिया' वाजिद अली शाह को अपने
 अंदर समेटे रहता हूं।... मन चंगा तो
 छोटों में गंगा!... राजधानी में 'जो
 से टकरायेगा...' के नारे गूंजते हैं...
 मेरे मन में घुंघरू बजते हैं और लगता
 है जैसे शाह की कनीजें एक आवाज
 निकर 'पनघट पे नंद लाल...' ऊंचे स्वर
 गा रही हों।

...मिनिस्ट्रियां डगमगाने लगती
 पर फागुन रचा मन यही सोचता
 कि शाह कि मिनिस्ट्री भी डगमगाई
 तो क्या नाचना छोड़ दिया?

उम्र की आखिरी सांस तक कबूतरों के पर
 गिनते रहे!

... खुशबुओं पर किसी पार्टी, किसी
 हुकूमत का हक नहीं होता।... टेसू
 के फूलों का रंग एम. एल. ए. लोगों के
 समर्थन की तरह रंग नहीं बदलता!...
 मन की उमंगों पर बढ़ती कीमतों के ग्राफ
 हावी नहीं हो सकते। वारादरी वीरान
 सही पर उसकी इंटों में अंदर कहीं आज
 भी उन रंगों की महक कैंद है जो शाह के
 दौर में बौछार बन कर उड़े थे!... सरवर,
 अल्ला रखी और दिलनशीन जान की
 गायी गयी होलियों का तरनुम कैसरबाग
 में अब भी कहीं प्रतिध्वनित होता होगा
 फागुन भर! बाबा के देवर लगने वाले
 इस मौसम में हिना और चमेली की यादें
 कराह उठती हैं!... होली कोई सरकारी
 बजट नहीं है कि हर मुहकमा मार्च में
 अलग-अलग हिसाब दे।

... मुस्कराहटों का कोई बैलेंस-शीट
 नहीं होता! मेरे मन में अपने शाह-ए-
 अवध की होलियां यों ही मजबूती से कैंद
 हैं जैसे आजकल पार्टी वालों के दिल में
 हाई कमांड का डर समाया रहता है!...
 वह गुजरी कुलकारियां और आज का
 लुटापिटा लखनऊ!... एक शेर याद
 आता है, साहिबो...

'खुशी का इतना भरोसा,
 कुछ अच्छी बात नहीं,
 हंसी जरूर कभी इन्तकाम लेती है! ...'

—१७१/११, ग्वीन रोड, लखनऊ-१



हास्य-व्यंग्य

पद बिनु जीवन लागत फीको

7

डा. बरसानेलाल चतुर्वेदी

आधुनिक युग में सर्वाधिक महत्वपूर्ण शब्द 'पद' है। पद-प्राप्ति गद्गद कर देती है। 'सकल पदार्थ या जग मांही-करमहीन नर पावत नांही'। 'पदार्थ' में भी 'पद' जुड़ा हुआ है। जिनको पद मिल गया है अथवा जो पदासीन हैं वे पद को छोड़कर संसार की सब समस्याओं से उदासीन हैं। बंदरिया जिस प्रकार अपने बच्चे को चिपटायें फिरती है उसी प्रकार पदासीन व्यक्ति पद को अपने कलेजे से चिपटायें फिरता है।

कुर्सी पद का ही प्रतीक है। कुर्सी-प्रेम ही पद-प्रेम है। पद-प्राप्ति पर पद के अनुपात से ही छोटी-बड़ी कुर्सी मिलती है अतः 'कुर्सी' शब्द का प्रयोग ही अधिक होने लगा है। पद को लपकने के लिए चूहा-दौड़ चलती रहती है। योग्य, अयोग्य, बुद्धिमान, मूर्ख, धनवान, किसान सभी कुर्सी-लपक-प्रतियोगिता में भाग ले रहे हैं।

पद प्राप्त नहीं किया जाता, लपका जाता है। क्रिकेट के खेल में जिसे 'कैच' कहते हैं उसी का पर्यायवाची 'लपक' है। ब्रजक्षेत्र में 'लपका' शब्द चालू व्यक्ति के

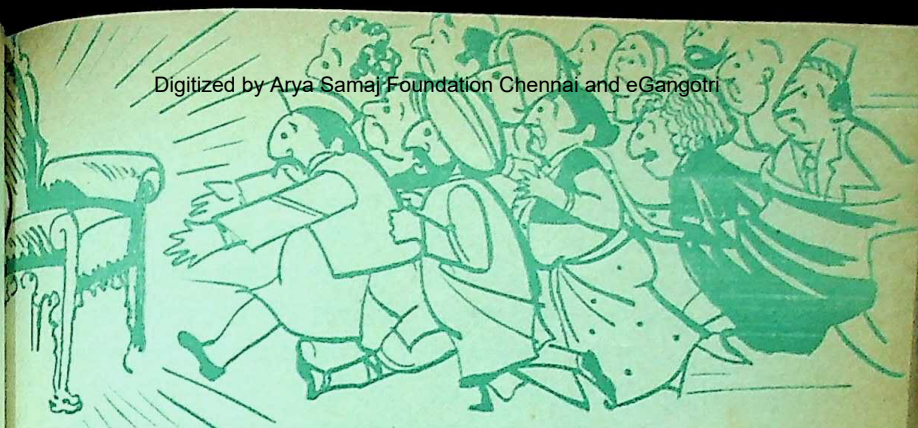
नवनीत

लिए उपयोग में लाया जाता है।
बीसी करके, दूसरों को मूर्ख बनाती है।
कुर्सी तथा धन प्राप्त करता है उसे
विशेषण से संबोधित किया जाता है।

पद-प्रेमी कभी यह स्वीकार नहीं करता कि वह पद के लिए लालाशित है। वह जन सेवा का कवच धारण करने के लिए रूपी कल्पवृक्ष को प्राप्त करता है। कुछ अपवादों को छोड़कर चुनाव अखाड़े में विजयी होने के लिए वह 'लपकापन' अतिव्यापन है। वह अध्यक्ष-पद तथा अन्य प्रकार के पद करके अपने जीवन को सार्थक करता करता है। मजनु जैसे लैला-प्रेमी, न निक मनुष्य भी पद-प्रेमी बन गया है।

वर्षा ऋतु में जैसे कुकुरमुत उग
हैं उसी प्रकार प्रतिदिन कोई न कोई
नीतिक पार्टी बनती है। वर्षा
लगभग पचास प्रतिशत अक्षरों का
तो विभिन्न दलों के नामकरण संस्कार
समय हो चुका है, आशा की जाती
निकट भविष्य में बचे हुए अक्षरों
काम में ले लिया जायगा। सब

को



ता है। का उद्देश्य कुर्सी रुपी प्रेयसि प्राप्त करना
ही है। 'दिन नहीं चैन, रात नहीं निदिया'
सचमुच चैन की नींद पद-प्राप्ति के बाद ही
आती है।

पद-प्राप्ति के उद्देश्य में लगा हुआ
साधक धर्म, जाति, संप्रदाय और सिद्धांत के
संकुचित दायरे से निकल कर भावनात्मक
एकता का प्रतीक बन जाता है। 'हिन्दू
मुसलमान ईसाई, कुर्सी हेतु' 'सब भाई-भाई'।
महाकवि विहारी ने एक दोहे में यह दिख-
साया है कि भीषण ग्रीष्म सर्प, मयूर, हिरण
या बाघ को एक पेड़ के नीचे इकट्ठा
कर देती है, सब मिल कर गर्मी से अपनी
रक्षा करते हैं।

कहलाने एकत रहत,

अहि मयूर मृग बाघ।

जगत तपोवन सो कियो,

दोरघ बाघ निदाघ ॥

इसी प्रकार कुर्सी-प्राप्ति के लिए भी
गोर-मोर-छोर सब अपने मतभेद भुलाकर
एकजुट होकर कुर्सी-दौड़ को जीतने की
कوشिश करते हैं। पद-प्राप्ति पर संयोग-
बल मिलता है।

शृंगाररस के दो पक्ष होते हैं—संयोग
शृंगार तथा विरह शृंगार। पद-च्युत
होकर व्यक्ति पद के विरह की अग्नि में
दहकता है। पदासीन व्यक्ति यदि हवा से
भरा हुआ टायर है तो पद से हट जाने के
पश्चात् उसकी हालत उस फटीचर टायर
जैसी हो जाती है जिसमें 'पंचर' हो जाय
तथा हवा निकल जाय। जिस तरह नीर
बिना मछली तड़पती है उसी प्रकार पद
छिन जाने पर व्यक्ति तड़पता है।

किसी-किसी का पद तो इस तीव्रता से
चला जाता है कि वह व्यक्ति 'गिरा अनयन
नयन बिनु बानी' हो जाता है। 'हार्ट-फेल'
की बीमारी और पद से अलग कर देने की
बीमारी एक-सी हैं। हां, 'हार्ट-फेल' होने
पर व्यक्ति तुरंत इस असार संसार को
छोड़ देता है किंतु पद छिन जाने के बाद
आदमी जिंदा तो रहता है किंतु—

‘जीने को जी रहा हूं मैं तेरे बगैर भी
मगर जिंदगी जिसको कह सकूं
ऐसी तो जिंदगी नहीं’

पद-त्याग तथा पद-च्युत दो शब्द अलग-
अलग अर्थ देते हैं। अपने देश में पद-त्याग

हिंदी डाइजेस्ट

करनेवाले बहुत कम मिलते हैं पद-च्युत किये जाने वालों की संख्या ही अधिक है। शरीर शिथिल हो जाय, एक छोड़ दोनों ही पैर कन्न में लटकने लगें किन्तु पद को त्याग करना तो दूर की बात है, उसका विचार करनेवाले भी कहीं नहीं मिलेंगे।

आजकल आपको 'असंतुष्टों' के दल ज्ञापन लिये घूमते हुए बड़ी और छोटी राजधानियों में मिलेंगे। असंतुष्ट वही व्यक्ति होता है जो पदविहीन होता है। जब तक पदासीन रहता है पूर्ण संतुष्ट रहता है, पदच्युत होते ही असंतुष्ट हो जाता है। इन दलों में केवल पदच्युत ही नहीं मिलते पदों को येन केन प्रकारेण लपकने वाले भी होते हैं। और ये 'पद-प्राप्ति-कवट्टी-प्रतियोगिता' अनवरत चलती रहती है।

चुनाव-लीला में जो पौरुष दिखलाये जाते हैं उसके पीछे भी कुर्सी-प्राप्ति का ही लक्ष्य रहता है। पुनः पद के इच्छुक टिकटार्थी पर एक सवैया लिखा था :

बीस सचिव और चार सौ क्लर्क,
अर्हनिश जा के अरी गुन गावें।
'कोटा' 'परमिट' के इच्छुक,
घर जाके नित्य ही चक्कर लगावें।
गोरी-गोरी फिल्म-स्टार हूँ
जाहि रिझाई के हूँ सुख पावें।
नैक सौ 'वोटर' एरी अली,
एक वोट पे वाको नाच नचावें।
'मैंने कितनों के बोल सहे कुर्सी तेरे
लिए'। पदासीन व्यक्ति तथाकथित श्रद्धा

नवनीत

का पात्र होता है, पदच्युत व्यक्ति रस का आलंबन होता है तथा बहुत तक पदविहीन रहने पर वह दया हो जाता है। एक पदच्युत व्यक्ति मैं मिलने गया था तो वह एकांत में रहा था, उसकी मनोदशा का वर्णन गया है :

उद्धाटन करिबौ नित्य फोटुन को
टेलीफोनन की घंटी हृदय में खरक
प्रातः सो कोठी में लगत दरबार
उनकी सुधि आवत ही करैजो धरक
पुष्पहार वारे जाने कहां आज खो
मंत्रीगोरी की याद में सुनै फरक
'अभिनंदन ग्रंथ' भेंट करिवैं कौं भवत
बैठो हों अकेलो मन नैकु ना लगत

हाल ही में श्री कृष्णदास जी जीवनी पढ़ रहा था। वे गांधी जी के योगी रहे। उन्हें अनेक बार मंत्री बना कहा गया किन्तु उन्होंने सदैव अनप्रकट की। सच्ची सेवा ही उनके का लक्ष्य रहा। महात्मा गांधी जी का सा पद दुर्लभ था? वे जीवन भर मंत्री की सेवा में ही लगे रहे तथा आ लिए ही उनका बलिदान हो गया।

भारतवर्ष में स्थायी कीर्ति मिली है जिसका जीवन त्यागमय जिसने दिया है, जो दूसरों के लिए है। किन्तु आज उल्टी गंगा बह कंबल बरस रहा है और पानी भीग ईमानदार भूखों मर रहा है, बेईमान फूल रहा है। भगवान बुद्ध त्याग के

ब्यक्ति को भी अमर हो गये। आज तो चतुर्दिक 'हाय' की सी 'हाय पद' का ही अखंड कीर्तन सुनाई पड़ रहा है। पदों की ये चूहा-दौड़ कहां समाप्त होगी भविष्य ही बतायेगा !
 पुछल्ला : एक विधायक अपने क्षेत्र का निरीक्षण करने आये। उस गांव में बहुत अधिक गंदगी देखकर पूछने लगे—'क्यों'

भाई, यहां क्या सफाई करने वाला नहीं आता ?'

एक भोलेभाले ग्रामीण ने विनम्रता से उत्तर दिया—'जी आता तो है किंतु पांच वर्ष बाद आता है।' और विधायकजी अपना सा मुंह लेकर चले गये।

—१३।७, शक्तिनगर, दिल्ली-७



उपाध्याय पं. बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने एक बार पं. श्रीधर पाठक के पास पद्य में एक पत्र लिख भेजा :

'परम-प्रिय पाठक ! तुमहि प्रणाम !

प्राचीनन मंह बचे एक ही अहौ मीत अभिराम;
 श्रीधर-कृपा पाय चिर-दिन लौं करहु देश-हित काम,
 ऐसी ही निज भाषा जननी सेवहु चरण मुदाम;
 पठई पांच पुस्तकनि जिन इन मोहिं अमोल इनाम,
 तिन कहं लै लाख लह्यौ हर्ष अति अवलोकत गुन ग्राम;
 करहु उछाहित देश-निवासिन निज बच आठौं याम,
 उन्नत भारत करै 'प्रेमघन' सह बनाय सुखधाम !

परम प्रिय पाठक तुमहि प्रणाम !'

पं. श्रीधर पाठक को भी पद्यात्मक पत्र लिखने में सुख मिलता था। 'प्रेमघन' का पत्र पाकर श्रीधर पाठक भला अपने को कैसे रोक सकते थे ? पत्र का उत्तर भेजते :

'प्रेमघन कविवर परम सुजान !

पत्री मिली कृपा सों पूरित, कोमल कलानिधान।
 भारतेन्दु मीतन मंह तुम सम या छिन कोउ न आन,
 पुराचीन रतनन बिच राजत कोहनूर प्रमान।
 जदपि वृद्ध तद्यपि तुम्हरे हिय जागति जोति जवान,
 पूरन-रसिक-सुहृद, सहृदयवर, जानत जिनिहि जहान।
 अभिनंदन मम करिय ग्रहण प्रिय अहो अमित गुनखान,
 द्विजवर श्री बदरीनारायण मिरजा-नगर-प्रधान।

'प्रेमघन' कविवर तुमहि प्रणाम !' —डा. गोपाल प्रसाद 'वंशी'



दृश्यों से बाहर



मालती शर्मा

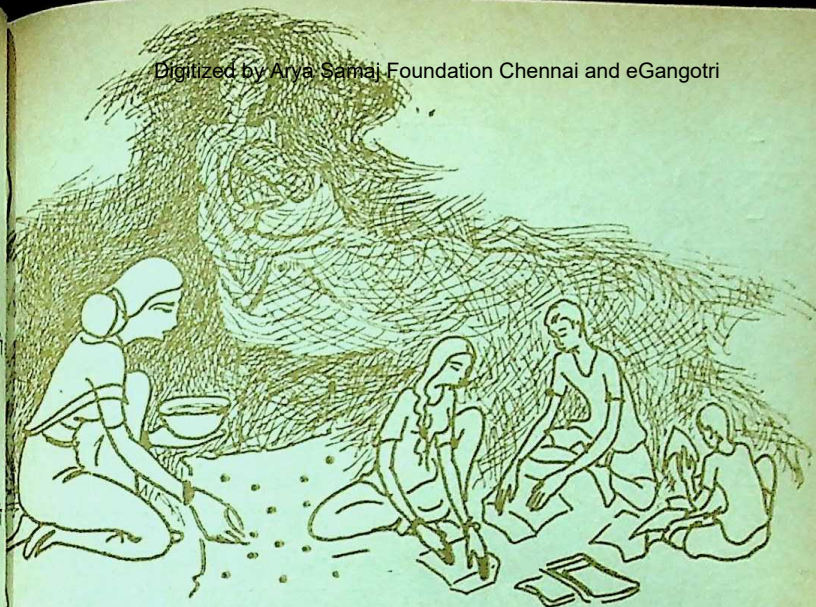
चित्र : आर. डी. पुरोहित



अपने आप से अलग होने के लिए
अभी तक हमने बनाये थे जो घरों के,
बिना द्वारों के निकले
अकेलेपन के कार्वन में घुटकर
बुझ गयी हैं सारी खुशियां मर गयी हैं
अति परिचय की चट्टान के नीचे दब गयी हैं
कहकहों के जंगल में
अब नहीं खिलता
महकती हंसी का पारिजात
जेठ में फूले गुलमोहर की आंखों से झलते
रस्मी उत्सवों की उकताहट
कुछ नहीं रिसता भीतर
नहीं पड़ता आंखों में कोई अक्स
ऋतु-मौसम की गुलजार राहें
देखते ही देखते
ऊब के वर्तुलों में सिमट गयी हैं
विस्तरों की गरमाई बन गयी है
रोटी सेंकने का तवा
जिंदगी, दर्शक विहीन नाटक का शो
किसी थियेटर कंपनी का खरीदा हुआ
मैं और तुम, वह और वे
तमाम बुझी तीलियों से मुट्ठी भरे हैं
सपाट दृश्यों पर से गुजरती हैं भावहीन
इन काली-सफेद छायाओं में
नहीं है आदमी का मन
खिले मन की रोशनी

— २५/२ 'पाखर'





हन्दी कहानी

छत

□ शीतांशु भारद्वाज

—‘विल्ले !’ राम बाबू ने कराहते हुए आवाज दी ।

विल्ला पूर्ववत् कटे हुए कागजों पर लेई लगाता हुआ उन्हें डबू की ओर खिसकाता रहा । कांति ने वहीं से बच्चों पर एक सरसरी-सी नज़र डाली । वह भी चुपचाप बड़ियों को धूप में डालती रही । हां, पुष्पा अवश्य भर आयी थी । सबसे छिपकर उसने अपनी गीली हो आयी आंखें पोंछ लीं । हाथ में कैंची लिये हुए वह फिर से पत्रिकाएं काटने लगी ।

—‘बिल्लू बेटे !’ राम बाबू ने फिर से आवाज़ दी ।

—‘ए बिल्लू !’ पुष्पा ने अपनी सारी मानसिक झुंझलाहट भाई पर उतार दी, ‘सुनता नहीं ? बाबूजी बुला रहे हैं ।’

बिल्लू ने लेई लगे हुए लिफाफे एक ओर खिसका दिये । वहीँ से उसने मां की ओर देखा । जैसे कि वह उनकी अनुमति ले रहा हो ।

—‘जाके कांटे की सुन क्यों नहीं आता !’ कांति ने भी अपनी झुंझलाहट उसी पर उतारी ।

बिल्लू ने नेकर पर हाथ पोंछे और अंदर चल दिया ।

कांति पति के प्रति कहने को तो अप-शब्द कह गयी किंतु उसकी अंतर्निहित उसे बुरी तरह से धिक्कारने लगी । जब से राम बाबू ने खाट पकड़ी है वह उन्हें ‘कांटा’ कहती आ रही है । बच्चों के सामने ही जब-तब वह उन्हें ‘रास्ते का कांटा’ कहकर अपने मन का गुवार निकाल लिया करती है ।

राम बाबू महानगर के नगर निगम में अकाउंट्स क्लर्क हैं । स्वभाव के बड़े भोले-भाले और सीधे-सच्चे । निगम की इस बस्ती में ही नहीं, सभी निगम कार्यालयों में उन्हें ‘गऊ’ कहा जाता है । निगम के कमाईवाले महकमे में रहते हुए भी कभी उन्होंने किसी से एक पैसे की रिश्कत नहीं ली । कहीं किसी प्रकार की कोई बेईमानी नहीं की ।

नवनीत

कांति अकसर ही उन्हें रिश्कत के लिए उकसाती रहती । वे स्पष्ट मन मना कर देते । उनका एक ही होता, ‘नहीं’, कांति, यह मुझसे नहीं सकेगा । हराम की कमाई हराम जाती है ।’

—‘आटे में नमक भर ही सही ।’ कहती ।

—‘नहीं, वह भी नहीं ।’ राम बाबू कान पकड़ने लगते ।

कांति की आंखों के आगे ही बसे छोटे-छोटे बाबू साइकिलें छोड़कर पर जाने लगे । उनके घरों में पाने मटकों का स्थान फ्रिज लेने लगे । ही-देखते लोगों की छतों पर टी. वी. राँड लग गये । किंतु राम बाबू को देखकर खरबूजी रंग बदलना आया ।

पुष्पा और डब्यू के आ जाने से राम बाबू का हाथ तंग होने लगे पारिवारिक बजट में कटौतियाँ की लगीं । स्कूल जानेवाले बच्चों के घर-गृहस्थी के खर्च में बराबर ही होता गया । पारिवारिक पिस्त-पिस्त वे अस्वस्थ भी रहते कभी दमा-खांसी तो कभी कमर डिस्पेंसरी जाते । डॉक्टर लाल थमाकर उनकी पर्ची पर कीमती लिख दिया करते । वह लाल दवा रहती । टॉनक्स वे खरीद न पाते वे मन मसोसकर ही रह जाते ।

—‘आप कहें तो मैं भी नौकरी करने
 चाहूँ।’ एक दिन कांति ने पति के आगे
 प्रस्ताव रख दिया था।

—‘नौकरी!’ राम बाबू के माथे पर
 नखवटें उभर आयी थीं।

—‘हां।’ कांति बोली थी, ‘हर्ज भी क्या
 है! इन दिनों मियां-बीबी दोनों कमायें
 तो भी पूरा नहीं पड़ता।’

राम बाबू गहरे सोच-विचारों में पड़
 गये थे।

—‘क्यों?’ कांति उन्हें फिर से कुरेदने
 लगी थी। वह मुस्करा दी थी, ‘कहीं किसी
 जगह में टाइपिस्ट की नौकरी तो मिल ही
 जायेगी।’

मुस्कराकर राम बाबू ने बात टाल दी
 थी, ‘छोड़ो भी, कांति, नौकरी इतनी
 आसानी से कहाँ मिलती है?’

कांति चुप्पी लगा गयी थी। धीरे-धीरे
 चिन्तों की पढ़ाई के कारण उनके लिए घर-
 में चलाना कठिन होने लगा। वह
 कलाई-कड़ाई का काम करने लगी। वस्ती
 के छोटे-मोटे कपड़ों को सीकर वह
 थोड़ा बहुत कमाने लगी थी। जब उसके
 काम करने को और कोई काम न होता तो
 कड़ियाँ डालकर वह उन्हें बाज़ार में बेच
 देती।

—‘कांति दी।’ एच. ब्लॉक की मिसेज़
 ने उसे कमाई का एक अतिरिक्त
 स्रोत बताया था, ‘तुम लोग लिफाफे क्यों
 नहीं बनाया करते!’

—‘लिफाफे?’ वह उनकी बात नहीं

समझ पायी थी।

—‘हां!’ मिसेज़ पुरी मुस्करा दी थी—
 ‘रही पत्रिकाओं के लिफाफे। उनमें खर्च ही
 कितना आता है? वच्चे घर में बैठे-बैठे
 क्या करते रहते हैं?’

कांति को वह बात जंच गयी थी। एक
 रहीवाले से पुरानी पत्रिकाएं खरीदकर
 उसने यह काम भी हाथ में ले लिया था।
 किंतु इतना कुछ करने पर भी गाड़ी पठरी
 पर नहीं बैठ पाती।

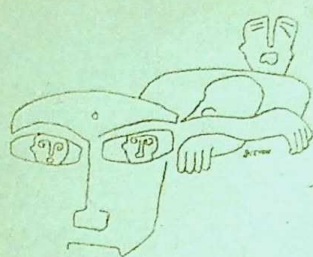
पुष्पा पिछले वर्ष से हायर सैकेंडरी
 करके घर पर ही बैठी हुई है। डब्लू ग्यार-
 हवीं में पढ़ा करता है। बिल्ला इस वर्ष
 छठवीं में ही रह गया है। राम बाबू ने
 पिछले वर्ष से बीमारी में खाट पकड़ रखी
 है। पहले-पहल उन्हें मेडिकल छुट्टियाँ
 मिलती रहीं। उसके बाद आधा वेतन।
 इन दिनों तो वे बिना वेतन की छुट्टियों
 पर चल रहे हैं। बीमारियाँ भी तो उन
 पर एक साथ ही कई आ लगी हैं। डाय-
 बटीज़ की बीमारी ने उन्हें एकदम कांटा
 बनाकर रख छोड़ा है। दवाइयाँ लाती-
 लाती कांति अपने एक-आध जेवर भी बेच
 चुकी है।

—‘मां!’ बिल्ले ने बाहर आकर कांति
 की तंद्रा भंग की।

कांति बेटे को सवालिया निगाहों से
 देखने लगी।

—‘बाऊजी को जोर की भूख लगी है।’

बिल्ला बोला, ‘कहते हैं कि इस बार मीठी
 दलिया लूंगा।’



—‘जा, तू अपना काम कर।’ कांति चटाई पर फैली वड़ियों को उलटने-पुलटने लगी। वहीं से उसने बेटी से कहा, ‘पुष्पी, तू चूल्हे पर नमकीन दलिया चढ़ा।’

दोपहर हो आयी थी। कांति राम बाबू को दलिया खिला चुकी थी। दो-दो रोटियां खाकर डब्बू और बिल्ला स्कूल चल दिये। पुष्पा ने जूठे बर्तन मले और पापा के पायताने बैठकर उनके पांव दबाने लगी। कांति चौके से निबटकर नहान-घर में जा घुसी।

कांति नहान-घर से बाहर निकली तो राम बाबू की आंख लग चुकी थी। वह तौलिये से सिर के वालों को फटकारने-पोंछने लगी। उसके बाद हाथ में दर्पण लेकर वह बाहर आंगन में चल दी। न जाने कितने दिनों के बाद देख रही थी वह उस दर्पण को! आज भी कितनी सुंदर लगती है वह! गेहुंए रंग के चेहरे पर लंबोतरी नाक और उसके मुहाने पर बड़ी-बड़ी आंखें। पुष्पा भी तो हू-ब-हू उसी पर गयी है। बेटी के साथ जब कभी उसे बाज़ार जाना होता है तो कोई भी उन्हें मां-बेटी नहीं कह सकता।

नवनीत

कांति को लगा जैसे पति की वह बंसी बीमारी उसे घुन की तरह से अंदर-अंदर चाटकर क्षयग्रस्त कर देगी। उनका सेवा-शुश्रूषा करती हुई वह वेहद तन आ गयी है। आखिर यह सब कब तक चलेगा? यह भी क्या जीवन हुआ कि आदमी विवशताओं में ही घुट-घुटकर जाये!

—‘मां!’ द्वार पर बिल्ला आ खड़ा हुआ। उसका चेहरा उतरा था। कांति की आंखों में बेटे के लिए प्रश्न-चिह्न उभर आया।

—‘मास’जी फीस मंगा रहे हैं।’ बिल्ला सिसकने लगा, ‘आज मेरी फिर से पिछड़ी हुई है।’

—‘किसने पीटा, बिल्ले?’ अंदर राम बाबू ने पूछा।

—‘पीटेंगे नहीं तो चूमेंगे?’ कांति पड़ी, ‘दसक दिन हो गये हैं बिना फीस के।’ राम बाबू कुछ नहीं बोले। कांति बिल्ले को आज भी यों ही टरका दिया।

—‘जा, कह दे कि कल जरूर दे देंगे।’

—‘नाम कट जायेगा, मां।’ बिल्ला खुजलाने लगा।

—‘कट जाने दे।’ कांति उस पर पड़ी, जा, ‘दफा हो यहां से।’

बिल्ला बैरंग ही स्कूल चल कांति ने हाथ का दर्पण सामने की दीवार पर दे मारा। उसका खुद का दिल भी तो टूटकर चूर-चूर हो चला वच्चे के लिए वह फीस के चार रुपये नहीं जुटा पा रही थी। उधर से

र कमरे में चल दी ।
 - 'हूँ, इसी को कहते हैं कंगाली में आटा
 ला ।' राम बाबू के होठों पर विवशता-
 की मुस्कान उभर आयी ।
 काँति कुछ नहीं बोली । चुपचाप वह
 के मूत्र के वर्तन को लेकर बाहर चल
 पुष्पा अब भी पापा के पांव दबा रही
 । बाहर दरवाजे पर किसी ने दस्तक
 काँति ने अंदर से ही पूछा, 'कौन ?'
 - 'मैं कमेटी से आया हूँ ।' आगंतुक ने
 पाया ।

राम बाबू उसे स्वर से ही पहचान गये ।
 तो भगवाना चपरासी
 जायद डी. ए. की कोई
 क्या किशत आयी हुई हो ।
 तब वे मन-ही-मन उन
 ते सख्तों सौ रूप्यों का बजट
 स के लगे । उन्होंने बेटी की
 तित देखा, 'लगता है ऑफिस
 दिगी. ए. की कोई किस्त आयी है ।'

पुष्पा ने बाहर जाकर द्वार खोला ।
 काँति आना ही था । अभिवादन के बाद वह
 बाबू की कुशल-क्षेम पूछने लगा, 'अब
 क्या है, बाबूजी ?'

- 'बस भय्या, लगता है यह खाट
 दया को नहीं ।' फिर राम बाबू ने पूछा,
 दीक्षा कैसे आना हुआ ?'

- 'आपके नाम एक जी. एट. बुक थी ।'
 काँति ने उनके हाथ में एक लिफाफा
 दे दिया ।

राम बाबू ने लिफाफा खोल लिया ।

ऑफिस ने उनके नाम एक ज्ञापन भजा
 था । उन पर आरोप लगाया गया था कि
 चार्ज देते समय उन्होंने तीन सौ बत्तीस
 नंबर की जी. एट. बुक नहीं सौंपी । गहरी
 सांस छोड़कर उन्होंने पिउन-बुक पर अपने
 हस्ताक्षर कर दिये ।

- 'अच्छा, बाबूजी ।' चपरासी जाने को
 हुआ ।

- 'चाय-चाय तो पी लेता, भगवाने ।'
 राम बाबू बोले ।

- 'बस, बाबूजी, अब चलूंगा ।' चपरासी
 आंगन की ओर मुड़ गया ।

- 'भगवाना, डी. ए. की
 आखिरी किस्त का क्या
 रहा ?' राम बाबू ने जाते
 हुए चपरासी से पूछा ।

- 'अजी, राम का नाम
 भजो, बाबूजी ।' पीली बत्तीसी
 दिखाकर चपरासी आंगन से

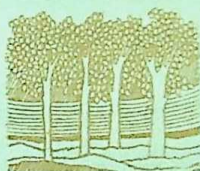
चल दिया ।

- 'क्या था, पापा ? पुष्पा ने पूछा ।'

- 'कुछ नहीं ।' राम बाबू ने करवट
 बदली, 'ऑफिसवालों को कोई रसीद-बुक
 नहीं मिल रही है ।'

संध्या समय डब्लू स्कूल से लौटा तो
 वह आवश्यकता से अधिक प्रसन्न दीख रहा
 था । उसी समय बिल्ला भी आ गया ।
 वह उदास था । आते ही उसने मां से कहा,
 'मां, आज से मेरा नाम कट गया है ।'

- 'कोई नहीं कटा ।' डब्लू बीच में ही
 बोल पड़ा, 'मैंने तेरे मास'जी को फीस दे



दी है ।'

— 'तैने !' कांति डब्लू को देखने लगी ।

— 'हां, मां ।' डब्लू ने कांति की हथेली पर दस रुपये के चार-पांच नोट रख दिये, 'इन्हें रख लो ।'

— 'अरे !' कांति की आंखों में आश्चर्य उमड़ आया, 'तू इन्हें कहां से ले आया ?'

— 'पाये थे ।'

— 'पाये ?'

— 'हां, एक ओर सड़क के फुटपाथ पर पड़े मिले ।' डब्लू ने बताया ।

— 'कि कहीं चुराकर तो नहीं लाया ?'

राम बाबू की नैतिकता उबाल खाने लगी ।

— 'नहीं, बाऊजी, ये तो मुझे पड़े मिले ।'

कांति गहरा उच्छ्वास भरकर ही रह गयी, 'आज पाये हैं, कल . . . ।'

— 'नहीं, मां ।' डब्लू मां का आशय समझ गया, 'मैं मेहनत-मजदूरी कर लूंगा, पर चोरी नहीं करूंगा ।'

— 'बेटा किसका है !' उस रुग्ण अवस्था में भी राम बाबू को मसखरी सूझ गयी । ऐसे लोग टूट भले ही जायें पर झुकते नहीं ।

राम बाबू को दवाई देने का समय हो चुका था । पुष्पा ने उन्हें पानी के साथ दो कैप्सूल दे दिये ।

रात को राम बाबू के यहां डॉक्टर दुआ आ गये । इन दिनों उन्हें वही देख रहे हैं । आते ही उन्होंने राम बाबू को एक इंजेक्शन चुभो दिया । उसके बाद उन्होंने कांति को गोलियों की एक शीशी थमा दी,

नवनीत

जब कभी बेचैनी बढ़ने लगे तो एक गोले दे दीजियेगा ।'

— 'वैसे ये किस मर्ज की हैं, डॉक्टर मां ?' कांति ने जानना चाहा ।

— 'स्लीपिंग पिल्स हैं ।' कहकर डॉक्टर दुआ घर से चल दिये ।

रात का भोजन करने के बाद सोने के लिए अपने बिस्तरों पर लेट कर दिन भर थके-मांदे बच्चे जल्द ही नींद में डूब गये । एक कांति ही थोड़ी नींद नहीं आ पा रही थी । उधर बाबू भी कुछ बेचैनी महसूस करने लगे थे । जाने कैसे कांति के मन में कुचिपलने लगा । यह भी क्या बात हुई आदमी अपने पीछे सारे परिवार को धरती पर फेरता रहे ! या तो वह इधर हो जावे फिर उधर । किंतु उसका पति तो अंधर में ही लटका हुआ है । क्यों सदा-सदा के लिए सुला दिया जावे हमेशा के लिए छुट्टी मिल जायेगी ! कहीं पढ़ रखा था कि अधिक स्लीपिल्स लेने से आदमी की मृत्यु जाती है ।

कांति के मन में पलता कुचिचार उफान खाने लगा । उठकर वह चौके में चल दी । कांपते से वह उन नींद की गोलियों को लगी । ऐसे में उसका मन इधर-उधर लगा । उसकी आंखों के आगे दीदी चेहरा घूमने लगा । जब से जीजा मृत्यु हुई है उसे कहीं भी तो आदर

मनता । एक बार वे दोनों बहिनें मायके मिली थीं । राम बाबू तब भी बीमार रहते थे । दीदी ने ऐसे ही उसके हाल-चाल पूछ लिये थे, 'कैसी है, कांति ?'

— 'ठीक हूं, जीजी ।' कांति के चेहरे पर उदासी घिरने लगी थी, 'न जाने वह बीन-सी घड़ी रही होगी जब उनके साथ मिलोग हुआ था ।'

— 'जीऽ!' दीदी ने उसके मुंह पर हथेली रख दी थी, 'पति के लिए ऐसा नहीं कहा करते । तू तो सुहागवती है ।'

कांति से छिपकर दीदी ने अपनी गीली आंखें पोंछ ली थीं । उसका हाथ अपने गले पर जा लगा था । बहिन की आँखें मूनी मांग और खाली गले को देखकर भी भर आयी थी । अगले ही क्षण उसने दीदी के गले में अपनी बांहें डाल दी थीं, 'मरफ करना, दीदी, मुझे ऐसा नहीं कहना चाहिये था ।'

कांति को अपनी ही बस्ती की गोमती याद आ गयी । जब से प्रभात भाई हवा की मृत्यु हुई है उस बेचारी की आँखें पलीद हो रही हैं । कम्प्युनिटी घर में बैठी हुई बस्ती भर की औरतें काम दिन उसी के चरित्र को हवा देती हैं । बड़ी-बूढ़ी उसे कुलटा कहती हैं । अगले ही क्षण उसकी आंखों के आगे भविष्य का एक कतरा तैरने लगा ।

राम बाबू नहीं रहे । बच्चे विलख-विलख कर रो रहे हैं । पुष्पा पछाड़ खाती

हुई पागल हुई जा रही है । घर पर शोक प्रकट करनेवालों का जमघट लग आया है ।

— 'हाय ! बेचारा छोरी के हाथ भी पीले न कर पाया ।' बस्ती की कोई औरत कहती है ।

— 'संसार में गऊ आदमी रहते ही कहाँ हैं, बहिन ?' कोई दूसरी गहरी सांस लेकर कहती है, 'उनके लिए तो वहाँ भी जगह होती है ।'

कांति अपने-आप में गुमसुम-सी बैठी हुई है । तभी उसकी दृष्टि बाहर आंगन में खड़े मर्दों पर जा लगती है । उनमें से एक जोड़ी आंखें उसके बंधे हुए जिस्म को टटोल रही होती हैं । जिस्म पर फिसलती हुई उन निगाहों को देखकर वह होंठ चवाने लगती है ।

— 'नहीं-नहीं ।' चौके में कांति पागलों की भांति अपने-आप से ही बतियाने लगती है, 'यह पाप होगा । मैं उन्हें धोखा नहीं दे सकती ।'

— 'कांति !' कमरे से राम बाबू का स्वर आया । वे जागे हुए थे ।

कांति के हाथ की अंगुलियां गले के मंगलसूत्र पर फिरने लगीं । उसी क्षण उसने पिसी हुई गोलियों का चूर्ण नल के नीचे बहा दिया ।

— 'सुनती हो !' राम बाबू ने फिर से आवाज़ दी ।

— 'आयी ।' आंचल से हाथ पोंछती हुई कांति अंदर कमरे में चल दी ।

— 'चौके में कुछ कह रही थी ।' राम

बाबू के होंठों पर मुस्कान उभर आयी ।

— 'नहीं तो ।' कांति पति के सिरहाने बैठकर उनका माथा दबाने लगी ।

— 'मुझे लगता है कि डॉक्टर दुआ की दवाइयाँ असर करने लगी हैं ।' राम बाबू ने पत्नी के हाथ थाम लिये, 'रात की बेचैनी भागने लगी है ।'

कांति ने पलकें मूंद लीं । मन-ही-मन वह ईश्वर से पति की दीर्घायु की कामना करने लगा । राम बाबू धीरे-से बिछौने पर उठ कर बैठ गये । इस पर कांति को आश्चर्य हुआ । उसकी आंखों में फैलाव आ गया ।

— 'जरा बाथरूम तक हो आता हूं ।' राम बाबू बोले ।

— 'यहीं कर लीजिये न !'

— 'नहीं, वहां तक जाने की शक्ति लौट आयी है ।' राम बाबू ने दोनों हाथ पत्नी के कंधों पर रख दिये ।

पत्नी के कंधों का सहारा लेकर राम बाबू बाथरूम से पुनः अपने बिछौने पर आ लेटे । कांति फिर से उनका माथा दबाने लगी । ऐसा करती हुई वह निरंतर छत को ही ताकती जा रही थी । उसके कानों में मां के शब्द गूँजने लगे ।

— 'बिना छत का मकान खंडहर बन जाता है, कांति ।' मां कहा करती थी 'और बिना मद की औरत ...'

कांति का तन-बदन सिहर उठा । जैसे अब तक वह स्वयं के लिए ही बड़ा कुचक्र रचती रही हो ।

— 'क्यों ?' राम बाबू ने कांति के पंखों पर हाथ रखकर उसकी तंद्रा भंग की ।

कांति उस तंद्रिल मन-स्थिति से जागृत आयी । वह पूरी तरह से भर आयी । उसने अपना सिर पति की छाती में दबा लिया । वह बुरी तरह से फफकने लगी ।

— 'अरी !' राम बाबू का दायाँ हाथ धीरे-धीरे कांति की पीठ सहलाने लगा ।

कांति और भी निहाल हो आयी । न जाने कब तक वह उसी स्थिति में पड़ी रही । दूर कहीं थाने के घंटे की रात के बारह टंकारे दिये । सुनकर कांति नींद उचट गयी । उस समय समूची रात की बांछों में घिरी हुई थी ।

अपने कंधों से उसके जंघा तक घेर कर क्षण वह पति की बांछों से निकलकर बेटे की बगल में लेट गयी ।

— १५, विद्याविहार, पिलानी-३३३

'बहुत भूख लगी है, खाना दो मां !' बच्चे ने रोते हुए कहा ।

'कहां से दूँ रे, कल से चूल्हा भी तो नहीं जला है !' मां का स्वर कातर हो गया ।

'बंगले वाली मालकिन से मांग लो न ! कल तो दी थीं ढेर सारी बासी रोटीयाँ !'

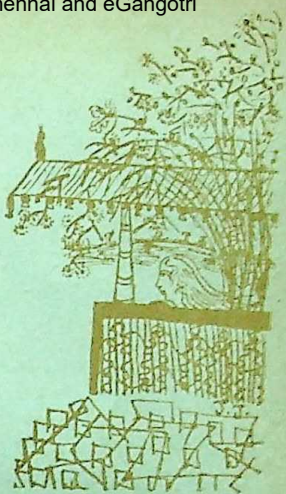
'आज नहीं देगी, बेटा । कल तेरा बापू मर गया था न, इसीलिए दया दिवाली में छुट्टी है !'

'तो आज तुम मर जाओ न, मां ! मालकिन मुझे फिर से रोटीयाँ देगी !'

मासूमियत से कहा ।

— लक्ष्मीनारायण

एक अधूरे सपने को
 झालने की विफल कोशिश में
 देर तक सोया रहा...
 बूढ़ के धुंधलके में
 सबसे पहले देखा
 मुहारे माथे पर उगता हुआ
 बूढ़ का सूर्य
 वहीं पुरानी दीवारों से
 केंद्र उतारते हुए सोचता रहा—
 क्या इसी तरह उतारी जा सकती हैं स्मृतियां
 छले दिनों की
 छले समय, पिछली वारिश को
 या इसी तरह भुलाया जा सकता है ?
 दायां हाथ आज अपने किसी आत्मीय
 ने लपेटा परिचित का दरवाजा
 आगे खटाया जा सकता है
 सी लिफाफे दी जा सकती है उसकी निर्भेद नींद में
 त गली के उस आखिरी मकान के
 जाने की क्या उम्मीद की जा सकती है आज
 ताउम्र बंद रहा
 उसके जंग लगे दरवाजों पर
 तक देते हुए भी डरते हैं लोग
 तनी बेमानी हो गयी हैं बीसवीं सदी में
 वर्ष की शुभकामनाएं
 कि साल भर तक कोई किसी की
 र हो कि लक्ष्म नहीं पूछता
 रोकि कि दोस्तों की आस्तीनों में सांप हैं
 दिखाने में छुरी...
 डॉ. शरत बनर्जी रोड, कलकत्ता-७०००२९



राजेन्द्र उपाध्याय
 की कविता



नये साल का
 पहला दिन

(पृष्ठ ८३ का शेषांश)

हकीकत कुछ और थी कि नमक की कंकड़ी तक उनके घर में न थी। फाके-कशी से तंग आकर उनकी निगाह कोने में खड़े डंके-कांटे और लिपटी हुई डोर पर पड़ी। जैसे-तैसे चारा जुटा वे नदी को रवाना हो गये अपने डंके और पिठ्ठू को ले।

चारा लगा कांटे में नदी के किनारे बैठे जेब से लालटेन सिगरेट की बत्ती निकाल चुपचाप कश खींच ही रहे थे कि डोर हिली। इस तरह घन्टे भर के अन्दर चार मछलियां जब फंस गयीं तो पिठ्ठू में रख वे घर लौटे।

बाज़ार पहुंचते-पहुंचते ये चारों मछलियों को बेचने पर रोज़ाना खर्च से कुछ ज़्यादा ही पैसे जुड़ गये। सस्तीवाड़ी का ज़माना था, और हर चीज़ आसानी से मुहैया हो जाती थी। दिन बड़ी आसानी से गुज़रने लगे डंके-कांटे और नदी के खज़ाने से।

सभी परवाज़ों की एक हद है पर इंसानी मन के परवाज़ों की कोई भी नहीं। ज़िन्दगी का सारा मरहला और पेशकश इसी परवाज़ के मारे हैं। बुजुर्गों ने और कामिलों ने सरल व सच्चा तरीका मौला से मोहब्बत करने का बताया है, पर हम लोगों की हरकतें लालची और नकलची सौदागर की तरह हैं या हो जाती हैं।

फिर खानसामागिरी की टीप-टापों में मन जकड़ने लगा और डंके को कोने पर

खड़ा कर बिल्ला-अचकन-पेटी कम जौनसन साहब के खानसामा बन बैठे।

मुश्किल से दो महीने भी नहीं बीते कि विलायत से जौनसन साहब की बीबी का केबुल आया—कि उनका संगीन ऑपरेशन होने वाला है। साहब रवाना हो गये और उन्हीं की रवानगी के साथ खानसामा की खानसामागिरी।

पेट में जब लाले पड़ने लगे तो फिर डंका-कांटा लिये नदी को रवाना हो गये।

घर का दाना व सौदा सुलफ आसान से जुट जाता था।

एक लमहे में झुंझलाहट आये कि को जाऊं? और दूसरे मिनट फिर अन्दर कशिश। काकड़ी घाट के पास बहती नदी के किनारे खड़े बरगद के पेड़ के नीचे का बाबा की याद बार-बार कोंचती कुछ दिनों के पहले खानासामा को। आखिर एक सुबह तड़के ही नहा-धोकर ये कुछ दिनों पहले के खानसामा काकड़ी घाट का रास्ता नापने लगे।

बाबा के हाथ में वही चिलम धूम रही थी और भीड़ भी लोगों की लगी थी। मुद्दत हो गयी थी जब दुबारा बाबा के दीदारों के वास्ते गये हुए इस अर्धे भूत-पूर्व खानसामा को, पर फकीरों के यह इसकी कोई अहमियत नहीं होती। और धुन का ही मरकज़ होता है।

कुछ तखलिया होते ही बाबा बोले 'अरे मैंने बुरे लगने की तो कोई बात नहीं'

थी, तेरी किस्मत में डंके-कांटे और
मेरी ही गुजारा लिखा है, तो मेरे मुकद्दर
लिखी है यह फकीरी। ऐसे ही किसी के
और, किसी के कुछ और। तो बता,
ठीक ही तो कहा था कि जा मछली
व बेच, गुजारा कर और अपने बूढ़े
काप की टहल कर। इसलिये जैसा
मुकद्दर में लिखा होता है वैसा तब
इशारा करता था और आज भी।'

करीब-करीब उन्नीस साल से ज्यादा
तो झुंझलाहट जो अभी भी सीने
की कभी-कभी धधक उठती थी कि
रखालात या जात की वजह से बाबा
गिवा ताना कसा कि 'जा मछली मार
बेच' आज वह ठंडी पड़ गयी हमेशा
साते और आंखें खुल गयीं। मालूम हुई
की रोशन जमीरी। दिन आराम से
देखे थे, पर क्या किया जाय, शैतान मन
पर खानसामागिरी की तरफ खींचा।

मशहूर खानदान के यहां खानसामा-
करने लगे।



सत्य ने मां नीति के पास आकर कहा, 'आज मैं बहुत ही बड़ा प्राणी देखा।

... 'कितना बड़ा इतना?' नीति ने पेट फुलाकर दिखाया।

... 'नहीं, इससे बड़ा।' सत्य ने कहा।

नीति ने फिर पेट फुलाया।

... 'नहीं इससे भी बड़ा मां!' सत्य ने कहा।

नीति पेट फुलाती गयी और सत्य कहता गया, 'इससे भी बड़ा।'

नीति ने जिस प्राणी को देखा था वह भ्रष्टाचार था। वह उसके दसवें हिस्से

भी पेट नहीं फुला पायी कि वह फूट गया। और नीति बेचारी मर गयी।

— शंकर पुणतांबेकर

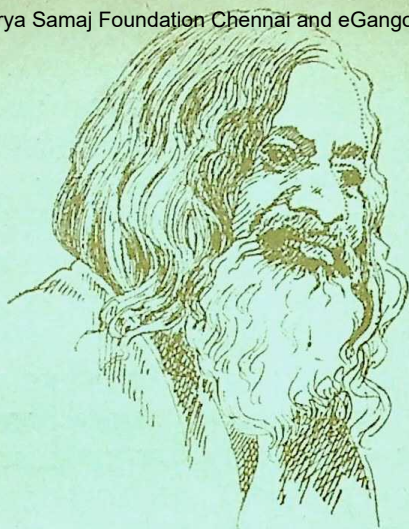
मुश्किल से छः महीने भी नहीं बीते
कि खानसामागिरी फिर छूट गयी। वस,
उस वक्त से जो खानसामागिरी का
लबादा था, आखिरी वक्त तक उनके सन्दूक
में ही बन्द रहा। घूम-फिर कर वही डंका,
वही कांटा और वही डंके की डोर
और नदी-आखिरी सांस तक उनका
जरिया मात्र बना रहा।

नदियों के किनारों में गुजरी हुई जिन्दगी
मुज्जरब और अल मुज्जरब उनका राज
उन्हें दे गयी और बहुत-सी ऐसी थीं जिन्हें
उन्होंने सीने का राज ही रखना वाजिव
समझा।

बाबा तो पहले ही परदा कर गये थे।
पर दुनिया की नज़रों में गरीब, पर अल्लाह
के सच्चे प्यारे बन्दों में चोले अजीज नाम
से जो जाने जाते हैं, उनकी ही जवानी
से उनकी सवान उभरी है, और बाबा को
बराबर याद करते रहते हैं।

—आनन्द भवन, तिलकपुर,

अलमोड़ा-२६३६०१



नानक त्यागी का आत्म-वैज्ञानिक लेख



धर्म और विज्ञान का अद्भुत समन्वय भावातीत ध्यान की अपूर्व साधना

भावातीत ध्यान कार्यक्रम को हम बीसवीं सदी की महानतम उपलब्धियों में सम्मिलित कर सकते हैं। महर्षि महेश योगी प्रदत्त यह वरदान अखिल विश्व से दुख, अभाव और अशान्ति को किस प्रकार हटाने चला है— इस पर सरसरी तौर से दृष्टिपात करना समुचित होगा।

धार्मिक उद्भव

बालक महेश बचपन से ही ज्ञान जिज्ञासु थे। पाठशाला से लेकर विश्व-

नवनीत

विद्यालय तक अध्ययन करते हुए वे साधु-संन्यासियों से मिला करते। साधु-संन्यासियों ने उन्हें अपने चमत्कार्य दिखा कर प्रभावित करना किंतु उन पर प्रभाव नहीं पड़ा। जब उन्होंने उत्तराखंड के प्रसिद्ध बालब्रह्मचारी, दंडी संन्यासी, ब्रह्मानंद सरस्वती महाराज के किये तो वे जैसे अभिभूत हो गये। स्वामीजी से निवेदन किया कि वे

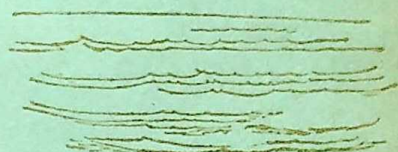
स्वामी शिष्य बना लें। किंतु स्वामीजी
 आसानी से किसी को शिष्य बनाते नहीं
 थे। उन्होंने टालने के लिए कह दिया—
 'कदी क्या है, अभी अध्ययन पूरा करो।' १९४१ में इलाहाबाद विश्वविद्यालय
 ने युवक महेश ने भौतिकी, गणित और
 तर्क में स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण की।
 उसी वर्ष स्वामी ब्रह्मानंद प्रयाग में कुंभ
 अवसर पर ज्योतिष्पीठ की गद्दी पर
 किराचार्य के रूप में अभिषिक्त हुए।
 महेशजी ने उनसे दीक्षा ली और ब्रह्मचारी
 के रूप में १३ वर्ष तक उनके सान्निध्य
 में रहकर योग के गूढ़ रहस्यों का अध्ययन
 किया। १९५३ में स्वामीजी के पार्थिव
 शरीर छोड़ने पर वे उत्तरकाशी में जाकर
 एक वर्ष तपस्यारत रहे।

इन दिनों वे गहराई से सोचते रहे कि
 कोई ऐसी योग विधि विकसित की जाये
 जो सब तरफ शांति और व्यवस्था ला
 सके और विश्व भर के लोगों का दुख हर
 सके। यह विधि सहज हो और सरलता
 से सीखी जा सके जिससे हर कोई इसे
 अपना अधिक प्रयत्न के अभ्यास में ला
 सके। इसमें न ज्यादा पैसा खर्च हो, न
 ज्यादा समय लगे और न अधिक शारीरिक
 शक्ति ही हो जिससे आधुनिक युग का
 मनुष्य आदमी इसे अपने सीमित साधनों
 में अंतर्गत ही अभ्यास में ला सके। दूसरी
 बात यह सरल विधि साधक को उपलब्धि
 के उच्चतम अवस्थाओं तक ले जाने में
 पूर्ण समर्थ हो।

कुछ समय बाद उन्हें अनुभूति हुई कि
 भावातीत ध्यान ही ऐसी विधि है।

सामाजिक परीक्षण और प्रसार

कुछ वर्ष हिमालय के उत्तरकाशी
 क्षेत्र में चिंतन और तपस्या करने के उपरांत
 ब्रह्मचारी महेश मैदानी क्षेत्र में उतर
 आये जिससे कि इस नयी योग विधि को
 लोगों पर व्यावहारिक रूप से प्रयोग कर
 इसके परिणामों की जांच कर सकें। उन्होंने
 भारत में कुछ लोगों को यह नयी योग
 विधि सिखाई और हर बार चमत्कारिक



परिणाम पाये। उत्साहित होकर उन्होंने
 भारत में भ्रमण किया। दिसंबर १९५७ में
 मद्रास में उन्होंने आध्यात्मिक पुनरुद्धार
 आंदोलन का उद्घाटन किया। तदनंतर
 वे विश्व भ्रमण के लिए निकले। विश्व
 भर में वे जहां गये वहीं उनके भावातीत
 ध्यान को लोगों ने तत्काल प्रभावशाली
 पाया।

फरवरी १९६१ में तीन वर्ष विदेश-
 भ्रमण कर जब वे भारत लौटे तो विभिन्न

देशों के उनके ५० शिष्य उनके साथ आये। वे सब भावातीत ध्यान के शिक्षक होना चाहते थे।

बंगलौर में एक विश्व सम्मेलन में ब्रह्मचारी महेशजी को 'महर्षि' की पदवी से विभूषित किया गया।

ऋषिकेश में महर्षि ने अपने इन ५० विदेशी और अनेक भारतीय शिष्यों को भावातीत ध्यान के शिक्षक बनने का प्रशिक्षण दिया। देश-विदेश में ये प्रशिक्षित शिक्षक भावातीत ध्यान का प्रचार करने भेज दिये गये। तदनंतर महर्षि कभी विदेशों में तो कभी भारत आते-जाते रहे। देश-विदेश में अनेक स्थानों पर ध्यान विद्यापीठों की स्थापना की गयी। शंकराचार्य नगर, ऋषिकेश में आध्यात्मिक पुनरुद्धार आंदोलन का केंद्र निर्मित होने लगा।

वैज्ञानिक शोध का आरंभ

१९६३ में महर्षि ने एक ऐसा अभूतपूर्व कदम उठाया जिसकी इतिहास में मिसाल नहीं मिलती। अपने वैज्ञानिक ज्ञान के आधार पर उन्होंने स्पष्ट अनुभव किया कि लोग आज के युग में किसी चीज को ग्रहण करने तभी आगे आयेंगे जब वे उसके वैज्ञानिक रूप से सत्य सिद्ध होने से संतुष्ट हो जायेंगे। बिना वैज्ञानिक प्रमाण के उनका तात्त्विक मन आसानी से शंका का शिकार हो जायेगा। महर्षि ने अनेक प्रसिद्ध वैज्ञानिकों को आमंत्रित किया और इस प्रकार १९६३ में इंग्लैंड में भावातीत ध्यान पर महत्वपूर्ण वैज्ञानिक

अनुसंधान कार्य आरंभ हुआ।

बाद में १९७० में अमेरिका में ड. राबर्ट कीथ वालेस ने भावातीत ध्यान के मन और शरीर पर होने वाले प्रभावों का अध्ययन करने के लिए वैज्ञानिक शोध कार्य आरंभ किया। अपने आरंभिक प्रयोगों में उन्होंने पाया कि भावातीत ध्यान किये जाने के दौरान शरीर की चयापचयी गति कुछ ही मिनट में प्रतिशत तक घट गयी। नींद के दौरा कई घंटे बाद शरीर की चयापचयी गति केवल १२ प्रतिशत घटती है। इससे सिद्ध हुआ कि भावातीत ध्यान से बहुत जल्द नींद से भी कहीं गहरा विश्राम मिलता है। ये तथ्य इस जानकारी से तो और भी महत्वपूर्ण साबित हुए कि इस विद्या के दौरान मस्तिष्क सजग और जागरूक बना रहता है और चेतना लुप्त नहीं होती जैसे कि नींद में लुप्त हो जाती है। ड. वालेस ने मस्तिष्क और शरीर की इन अवस्थाओं को 'विश्राममयी सजगता' कहा।

दुनिया भर के वैज्ञानिकों ने इसके बाद भावातीत ध्यान के प्रभावों का तेजी से अध्ययन करना शुरू किया। ऐसी अनेक वैज्ञानिक शोधों के समाचार पत्र-पत्रिकाओं और वैज्ञानिक रिसालों में प्रकाशित होने से भावातीत ध्यान में लोगों की रुचि तेजी से बढ़ी।

इन वैज्ञानिक अनुसंधानों द्वारा मनुष्य का ऐसा नक्शा उभर कर सामने आया

मस्तिष्क की स्पष्टता, सुधरा
स्य तथा तनाव, चिंता और उदासी
गुक्ति संभव दिखाई देती थी। इस
भावातीत ध्यान निर्धनता, अभाव
तुष से संपन्नता, पूर्णता और आनंद
होने जाने का साधन सिद्ध होने लगा।

विज्ञान और विश्व योजना

भावातीत ध्यान पर हुए विशद वैज्ञा-
निक शोध कार्यों के आधार पर महर्षि
भावातीत ध्यान कार्यक्रम को पूर्ण
नैतिक स्वरूप देने का निश्चय किया।

विज्ञान की किसी भी शाखा
तक सिद्धांत के रूप में उन्होंने चेतना
का विकास किया और भावातीत
ध्यान को इसका प्रयोगात्मक पहलू बनाया।
चेतना विज्ञान का प्रथम व्यवस्थित
ध्यान स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय, अमे-
रिका के छात्रों ने १९७० में पढ़ा।

भावातीत ध्यान कार्यक्रम इस समय
सारे संसार में फैल गया था। अतः
वर्ष १९७१ में विश्व योजना का
गठन किया। इस योजना के अंतर्गत
प्रत्येक १० लाख की जनसंख्या
के लिए विश्व योजना केंद्र स्थापित होना
ऐसे विश्व योजना केंद्रों की संख्या
१० निर्धारित की गयी थी। प्रत्येक
विश्व योजना केंद्र को १००० ध्यान शिक्षक
करने थे। प्रत्येक ध्यान शिक्षक को
१० व्यक्तियों को ध्यान सिखाना
इस तरह विश्व के हर व्यक्ति तक
भावातीत ध्यान पहुंचाने की व्यवस्था

करनी थी।

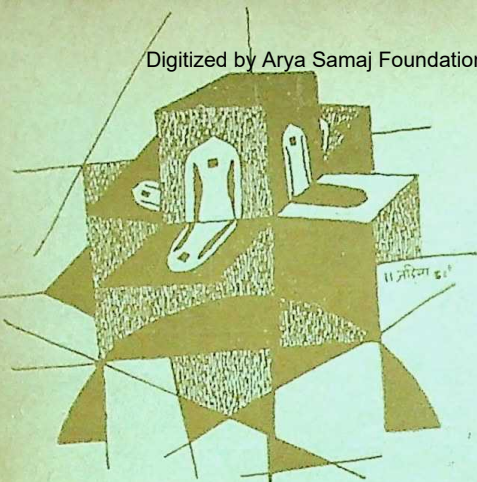
विभिन्न आयु वर्ग और अन्य समूहों
की मांग पर चेतना विज्ञान पाठ्यक्रम
के विभिन्न प्रारूप तैयार करने और विश्व
भर में लोगों तक उन्हें पहुंचाने के लिए
१९७१ में ही महर्षि इंटरनेशनल यूनै-
वर्सिटी की स्थापना अमेरिका के मेसाचु-
सेट्स राज्य में की गयी। १९७४ में इसके
लिए फेयरफील्ड, आयोवा (अमेरिका)
में स्थायी परिसर प्राप्त किया गया।

वैज्ञानिक शोध संकलन

अमेरिका, कनाडा, ब्रिटेन, डेनमार्क,
फ्रांस, स्विट्जरलैंड, आस्ट्रेलिया, भारत,
नीदरलैंड, जर्मनी और स्वीडन के विश्व-
विद्यालयों और शोध संस्थानों द्वारा
भावातीत ध्यान पर स्वतंत्र रूप से किये
गये १०० से अधिक वैज्ञानिक शोध अध्य-
यनों को एम० ई० यू० प्रेस, लास एंजेलस,
यू० एस० ए० द्वारा १९७४ में साइंटिफिक
रिसर्च आन दि ट्रांसिडेंटल मेडिटेशन
प्रोग्राम : कलकटेड पेपर्स, खंड १-नामक
ग्रंथ में संकलित किया गया।

ज्ञान युग का प्रभाव

दिसंबर १९७४ में वैज्ञानिकों ने
'महर्षि प्रभाव' की खोज की। उन्होंने
क्रमबद्ध और सावधानी युक्त तरीकों से
अनुसंधान किया कि जिन शहरों में एक
प्रतिशत व्यक्ति ध्यान कर रहे थे उनमें
अपराधों की संख्या में महत्वपूर्ण कमी हुई,
विनाशक प्रवृत्तियां घटीं, जबकि उसी
अनुपात की जनसंख्या वाले अन्य शहरों में



अपराधों और अन्य विनाशक प्रवृत्तियों में वृद्धि हुई। यह खोज मानवता के सुखमय भविष्य की संभावना के रूप में एक क्रांतिकारी ऐतिहासिक घटना थी।

महर्षि तो अपने गहन अनुभव और विचार से 'महर्षि प्रभाव' जैसी चीज़ की कल्पना बहुत पहले कर चुके थे किंतु आधुनिक विज्ञान की इस पर मुहर लगनी शेष थी।

'महर्षि प्रभाव' की ऐतिहासिक वैज्ञानिक खोज के बाद धरती पर भावातीत ध्यान कार्यक्रम द्वारा ज्ञान युग आ जाने के आसार स्पष्ट दिखने लगे। अतः १२ जनवरी १९७५ को महर्षि ने ज्ञानयुग के प्रभात का उद्घाटन किया। इस दिन मानो ज्ञानयुग आरंभ हुआ। आज हम ज्ञानयुग के सातवें वर्ष में हैं।

उच्चस्तरीय वैज्ञानिक शोध

१९७५ में स्विट्जरलैंड के सीलिस-बर्ग स्थान पर महर्षि यूरोपियन रिसर्च यूनिवर्सिटी की स्थापना की गयी। इस

यूनिवर्सिटी ने भावातीत ध्यान से प्राप्त उच्च चेतनावस्थाओं और उन अवस्थाओं में उचित मार्गदर्शन से घटित होने वाली सिद्धियों पर वैज्ञानिक शोधकार्य को प्रमुख लक्ष्य बनाया।

भूत और भविष्यत् जान लेने, मनुष्य के मन को पढ़ने, सबसे मैत्रीपूर्ण पाने, अंतर्धान होने, नींद में साक्षी बनाने और हवा में थोड़ा उठ जाने आदि कुछ सिद्धियों पर महत्वपूर्ण शोधकार्य किया गया है।

खास तौर से इन सिद्धियों के होते समय कंप्यूटर युक्त ई० ई० नामक यंत्र द्वारा मस्तिष्कीय तरंगों का अध्ययन एक महत्वपूर्ण कदम हुआ है।

पाया गया है कि सिद्धियों की से अंतिम पूर्णत्व शीघ्र प्राप्त हो जाता शोधों से प्रमाणित कुछ निष्कर्ष

भावातीत ध्यान के संबंध में वैज्ञानिकों ने सैकड़ों निष्कर्ष निकाले हैं। उनमें से कुछ ये हैं :

मानसिक तनाव तथा मनोकांक्षायुगी रोगों में कमी। आक्रामक प्रवृत्तियों में कमी, अधिक सामंजस्य और प्रभावोत्पादकता। आत्मभ्रम में अधिक आत्मबल तथा संतोष। अशुभ परिस्थितियों में सहनशीलता। सामाजिकता प्रफुल्लता एवं मैत्री में वृद्धि, अधिक

और अधिक प्रसन्नता । प्रत्येक पर हावी
 होने की प्रवृत्ति में कमी, अधिक आदरभाव
 सहृदयता । आत्मदमन में कमी,
 अनुकूलता में वृद्धि । आत्म-आलोचन और
 आत्म-संदेह का अभाव । बहुमुखी वृत्तियों
 का विकास । भावात्मक अस्थिरता में
 कमी । स्थिरता और कार्यक्षमता में वृद्धि ।
 सिद्धियों के सहज प्रकटीकरण से
 चेतना के त्वरित पूर्ण विकास की संभाव-
 नाएं बढ़ गयी हैं । सहज प्रयत्न से अब जो
 गृहे शास्त्रों में वर्णित सनातन सत्यों को
 अपने जीवन में अनुभव कर सकता है ।

वैश्व योजना की उपलब्धियां

विविध सूचनाओं के अनुसार कुछ समय
 तक विश्व के ३०० से अधिक विश्व-
 विद्यालयों व शोध संस्थानों में भावातीत
 ध्यान पर शोध कार्य संपन्न हुआ । विश्व
 में लगभग ६००० शिक्षा संस्थाओं ने
 भावातीत ध्यान कार्यक्रम को अपने पाठ्य-
 क्रमों में सम्मिलित कर लिया था । विश्व
 के १५० से अधिक देशों में २० लाख से
 अधिक व्यक्ति भावातीत ध्यान के नियमित
 अभ्यासी थे और लगभग एक लाख
 व्यक्ति प्रतिमास इसे सीख रहे थे ।
 विश्व के १००० से अधिक नगरों में एक
 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या के भावातीत
 ध्यान करने से 'महर्षि प्रभाव' चरितार्थ
 हो रहा था । विश्वभर में २०,०००
 ध्यान शिक्षक और १८०० से अधिक
 भावातीत ध्यान सिखाने के केन्द्र थे ।
 भारत में भावातीत ध्यान शिक्षकों की

संख्या १२०० से अधिक और भावातीत
 ध्यान सिखाने के केंद्रों की संख्या १६० से
 अधिक थी, जिनमें से लगभग एक चौथाई
 केंद्र केवल महिलाओं के लिए थे ।

भावातीत ध्यान क्या है ?

उपरोक्त विवरण को पढ़कर स्वाभा-
 विक प्रश्न उठेगा कि आखिर यह भावातीत
 ध्यान है क्या ?

भावातीत ध्यान एक मानसिक युक्ति
 है जो व्यक्ति के जीवन के शारीरिक,
 मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, भावात्मक और
 बौद्धिक सभी पहलुओं को तीव्र और
 प्रभावशाली ढंग से परिपूर्णता की ओर
 ले जाती है ।

भावातीत ध्यान प्रातः सायं दिन में दो
 बार केवल २०-२० मिनट किया जाता
 है । इसे कुर्सी पर बैठ कर भी आराम से
 किया जा सकता है । आहार-विहार और
 जीवन पद्धति में कोई हेरफेर किये बिना
 इसका अभ्यास किया जा सकता है ।

केवल चार दिन तक एक डेढ़ घंटा
 प्रतिदिन देकर किसी भी भावातीत ध्यान
 सिखाने के केंद्र पर प्रशिक्षित ध्यान
 शिक्षक से इसे सीखा जा सकता है ।

भारत के अनेक प्रमुख नगरों में भावा-
 तीत ध्यान सिखाने के केंद्र हैं । महर्षि
 चेतना विज्ञान संस्थान, शंकराचार्य नगर,
 ऋषिकेश-२४१३०५ से अधिक जानकारी
 प्राप्य है ।

—२२, देवी नगर, सूरज कुंड रोड,

मेरठ - २५०००२, (उ. प्र.)



दो अरबी लघु कथाएं

□ शशीकान्त जरदोस

[१]

एक राजा था। वह खूब सुखी और उदार था। वह स्वभाव से प्रसन्न-चित्त और विनोदी था। उसका वैभव और दबदबा खूब था। वह अपनी प्रजा को प्यार करता था। प्रजा की सुख-दुःख की बातों को धीरज के साथ सुनता था। अमीर-गरीब, भिखारी, बीमार, छोटे-बड़े सभी के ऊपर उसकी दया-दृष्टि रहती थी।

शहर के किनारे एक खंडहर में एक पागल रहता था। राजा ने उसे देखा। पागल आदमी में जो लक्षण नहीं होते, वे सभी उसमें थे—बाहोशी, समझदारी, निर्दोषपन, कुलीनता और जवान उम्र। यह देखकर राजा को कुतूहल हुआ और उस पागल के साथ दो घड़ी के लिए आनंद लेने का मन हुआ।

राजा ने पूछा, 'तुम्हें लोग पागल क्यों कहते हैं?'

पागल ने कहा, 'मैं आप-जैसा नहीं हूँ, इसलिए।'

राजा ने पूछा, 'पागल होना तुम्हें कैसा लगता है?'

पागल ने उत्तर दिया, 'आप मेरे साथ खंडहर में रहने के लिए आ जायें। एक से दो भले। खूब जमेगी, जब मिल बैठेंगे दो दीवाने!'

नवनीत

राजा चुप हो गया। फिर पागल ने पूछा, 'मैं आपसे प्रश्न कर सकता हूँ? राजा ने अनुमति दी।

पागल ने पूछा, 'सोने का सच्चा आनंद कब मिलता है?'

राजा ने बताया, 'सो जायें तब।'

पागल बोला, 'जब हम सो रहे हों तब हमें भान कहां रहता है? फिर उस समय आनंद की अनुभूति कैसे हो सकती है?'

राजा ने कहा, 'सोने से पहले।'

पागल ने प्रश्न किया, 'सोने के आनंद का जन्म होना तो तब तक बाकी रहता है, फिर उसके पहले आनंद कैसे मिल सकेगा?'

राजा ने समझाया, 'सोचुकने के बाद।'

पागल बोला, 'तब तो नींद पूरी होगी होती है और आनंद भी पूरी तरह समाप्त हो जाता है। क्या उसकी उत्तर क्रिया में आनंद मिलता है?'

राजा को यह बात पसंद आयी और उसने उसे गुरु का पद देने का निर्णय किया। राजा उसे दरबार में ले गया और अपने सिंहासन पर बैठाया। राजा ने बहुमूल्य शराब स्वयं पी, फिर पागल से पीने का आग्रह किया। पागल ने कहा, 'हे राजा! आपने शराब पी और मेरे जैसे पागल बन गये। मैं शराब पीऊं तो किसकी तरह पागल बन जाऊं? यह मुझे बतलाइये।'

[२]

पदाद में लगभग बारह सौ वर्ष पहले खलीफा मामून का राज था। लोग सुख-ति और समृद्धि का जीवन बिता रहे थे। बगदाद का कोतवाल काजी याहिया सुख था। चोर, लुटेरे और अप-धियों के लिए वह यमदूत की तरह था।

एक बार उसने खलीफा के दरबार में एक कटे-फकीर को पेश किया और कोफा को सलाम करके बोला, 'इसे नीपर चढ़वा दीजिये; क्योंकि यह दावा है कि मैं पैगम्बर इब्राहीम हूँ !' खलीफा को इस बात से आश्चर्य हुआ। ने सामने खड़े हुए फकीर से पूछा, 'क्या पैगम्बर हो ?'

फकीर ने उत्तर दिया, 'इसमें क्या है !' तब उसने फकीर से कहा कि कोई चमत्कार करके दिखाइये। फकीर ने पूछा, 'किस तरह का चमत्कार है की आपकी इच्छा है ?'

फकीर ने कहा, 'पैगम्बर इब्राहीम जैसे हुए चमत्कार।'

फकीर ने पूछा, 'मुझे साफ-साफ सम-झिये। कोतवाल ने बताया, 'तू पैगम्बर भी तुझे अपने चमत्कारों का पता है ? पैगम्बर इब्राहीम ने आग की भट्ठी लोगों को फूलों के ढेर में बदल डाला। उन्होंने भट्ठी को बगीचे में बदल दिया, उसी प्रकार की आग जलाकर जिनमें तुम्हें फेंकवा दूंगा और तुम उसमें जिया सही-सलामत बाहर निकल

आना।'

फकीर बोला, 'मैं अभी नया पैगम्बर हूँ। कोई सरल चमत्कार करने की आज्ञा दीजिये।'

खलीफा ने कहा, 'तो फिर तुम मूसा पैगम्बर की तरह का कोई चमत्कार करके दिखाओ।'

फकीर ने पूछा, 'कैसा चमत्कार ?'

खलीफा बोला, 'मूसा पैगम्बर के पास एक छड़ी थी। जब वे उसे ज़मीन पर रखते थे तो वह अजगर की शकल में बदल जाती थी।'

फकीर बोला, 'यह तो पहले वाले चमत्कार से भी ज्यादा मुश्किल है। कोई आसान चमत्कार कहो तो मैं ज़रूर करके दिखाऊंगा।'

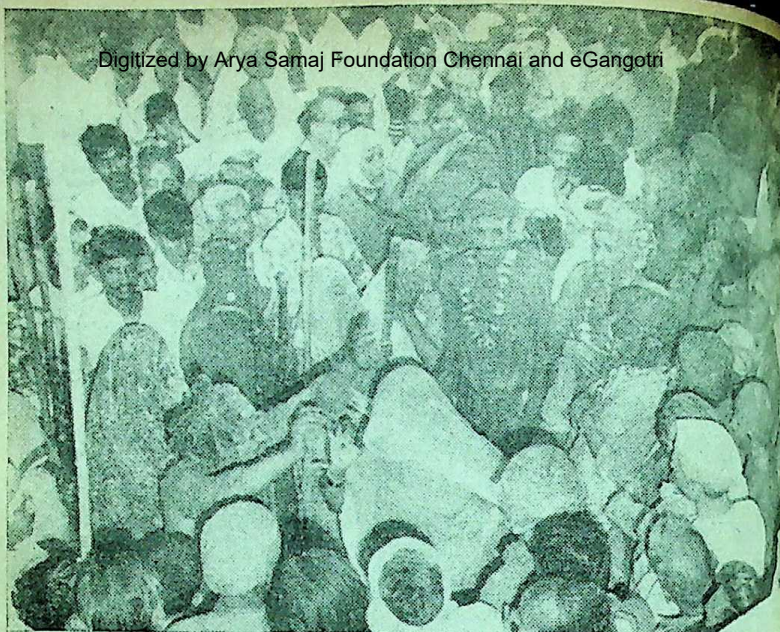
खलीफा को लगा, कि यह फकीर तो अच्छा गले पड़ गया है और उलटा मुझे ही कसौटी पर कसने लग गया है। फिर भी उकताये बिना उसने फकीर को एक और अवसर देने का निर्णय किया।

विचार करके उसने कहा, 'तू ईसा मसीह के चमत्कार को कर सकेगा न ?'

फकीर बोला, 'ईसा मसीह ने तो बहुत से चमत्कार किये हैं। उनमें से कौन-सा चमत्कार करने के लिए आप मुझे कहते हैं ?'

काजी ने कहा, 'मरे हुए को जिंदा करने वाला चमत्कार।'

फकीर के चेहरे पर तेज चमक उठा। वह नाच उठा और बोला, 'हां, मालिक, (शेषांश पृष्ठ १४२ पर)



लठामार होली के मध्य नृत्य और होली गीत गायन हो रहा है। नंदगांव के गुसाईं गले में फूलों के हार डाले हुए उत्सव में सक्रिय भाग ले रहे हैं। अवगुंठनवती गोपियां लाठियां लिए उत्सव के लिये तैयार हैं।

ब्रज की होली



सरोजिनी कुलश्रेष्ठ

ब्रज में होली का त्योहार विशेष उत्साह एवं भक्तिभाव से मनाया जाता है। कोसी के पास ब्रज की सीमा में स्थित फालेन गांव में प्रह्लाद की होली का दृश्य प्रतिवर्ष उपस्थित होता है। होली दहन के पश्चात् ऊंची लपटें ज्योंही कुछ शांत होती हैं, मंदिर का पंडा प्रह्लाद कुंड में स्नान करने के बाद उस अग्नि को नंगे

पांव चलकर पार करता है। अंगारों चलने का यह दृश्य रोमांचित करने वाला होता है। चारों ओर ढप-ढोल और गीत गायक घूमघूम कर गीत गाय रहे हैं।

फागुन शुक्ला अष्टमी को बरसाने लठामार होली होती है। सर्वप्रथम रानी के मंदिर में समाज गायन होता

नवनीत

११६

तया गुलाल और विविध रंगों से राधा-
रानी से होली खेली जाती है। जैसे ही
नवामंडली नीचे रंगीली गली में उतरती है,
बरसाने की सजी-धजी अवगुंठनवती
गोपियां भी सर्पाकार सीढ़ियों से उतर-
कर लाठियों की मार आरंभ कर देती हैं।
हाथ में कछुए की खोपड़ी की ढाल लिये
हुए कूद-कूद कर पुरुष अपने को बचाता है
और मार खाकर प्रसन्न होता है। दर्शक
इस दृश्य को देखकर रस-मग्न हो जाते हैं।

लाखों लोग इस होली को देखने के
लिए प्रतिवर्ष एकत्रित होते हैं। रंगीली

नंदगांव की लठामार होली में स्त्रियां पुरुषों को पीटती हुई।

कछुए की खाल की ढाल लेकर पुरुष अपनी रक्षा कर रहे हैं।

गली के दोनों ओर की अटारियां और
छज्जे नर-नारियों से भर जाते हैं। ऊपर
से गुलाल उड़ाया जाता है और नीचे सूर्य
अस्त होने तक लठामार होली का दृश्य
दिखायी देता है। विशाल नगाड़ों को बजा-
कर लोकगीत गाते हुए हुरिहार होली की
मस्ती का समां बांध देते हैं। जन-मन
राधाकृष्ण के प्रेम में पगला जाता है।

नवमी को इसी प्रकार का उत्सव
नंदगांव की पावन भूमि पर नाटकीय
ढंग से होता है। अंतर केवल इतना
है कि बरसाने में बरसाने की गोपियां



नंदगांव के गोपों से मार करती हैं तो नंदगांव में नंदगांव की गोपियां बरसाने के गोपों पर लाठी प्रहार करती हैं। इस होली के लिए नंदगांव और बरसाने में परस्पर प्रेमपूर्वक निमंत्रण दिया जाता है। राधा-कृष्ण के परस्पर होली खेलने की यह लीला ब्रज की विशाल पृष्ठभूमि में खेली जाती है। रंगभरनी एकादशी से ब्रज में सब जगह होली शुरू हो जाती है।

फाल्गुनी पूर्णिमा के दिन वृंदावन की होली सर्वाधिक आकर्षक होती है। सभी मंदिरों में गुलाल रंग के साथ पूजा पर्व मनाया जाता है। वृंदावन विहारी इस अवसर पर चांदी की पिचकारियों से केसर और गुलाबजल से मिश्रित रंग से होली खेलते हैं। भक्तगण इस रंग के कुछ छीटे पाकर अपने-आप को धन्य मानते हैं। मंदिर में जानेवालों के वस्त्र ही रंग में नहीं रंगते, वरन उनके हृदय भी पूर्णतः होली के साथ-साथ भक्ति के रंग में रंग जाते हैं।

चैत्र कृष्ण द्वितीया को दाऊजी का प्रसिद्ध हुंरंगा मंदिर के प्रांगण में मध्याह्न से आरंभ होता है। उसमें टेसू के फूलों से बना रंग प्रयोग में लाया जाता है।

ठाकुरजी की दाहिनी ओर पुरुष और बायीं ओर स्त्रियां परस्पर होली खेलते, नाचते और गाते हैं। पिचकारियां चलती हैं। बाल्टियों और मटकों से पुरुष स्त्रियों पर रंग उड़ेलते हैं। स्त्रियां पुरुषों के वस्त्र फाड़कर उसी का कोड़ा बनाकर भीगे

वस्त्रों से मार करती हैं। ऊपर से अबीर और गुलाल मुट्ठियों में भरकर उड़ाने जाते हैं। भक्तों को यह दृश्य बड़ा ही आकर्षक एवं भक्तिभाव में डवानेवाला जान पड़ता है। चरकुला ब्रज का विशेष लोकनृत्य है। भुखराई आदि गांवों में इसका प्रदर्शन किया जाता है। ब्रज के प्रसिद्ध लोकगीत जो इन अवसरों पर गाए जाते हैं, उनमें से अधिकांश राग काँची और झिझोटी में आवद्ध होते हैं तथा सारे रंग में भी पाये जाते हैं। ये इस प्रकार हैं:—

आज बिरज में होरी रे रसिया ।
अपने-अपने भवन तें निकसीं,
कोई सांवरि गोरी रे रसिया ।
कौन गाम के कुंवर कन्हैया,
कौन गाम की गोरी रे रसिया ।
नंदगाम के कान्हा कहिये,
बरसाने की राधा रे रसिया ।
उड़त गुलाल लाल भये बादर,
मारत भरि-भरि झोरी रे रसिया ।
चोआ-चंदन, अबीर, अरगजा,
केसर रंग में घोरी रे रसिया ।
कृष्ण के हाथ कनक पिचकारी,
राधा के हाथ कमोरी रे रसिया ।

०

रंग रसिया खेलें फाग,
सखी री मेरे आंगन में
मोपै तो कान्हा रंग हंसि-हंसि डारै,
आपु तो जाय छेला भाजि सखी री ।
मोरी तौ सब चूनरि भिजोई,

बचावें छैला पाग सखी री ।

री कौ खिलार, मोरी चूनर डारी फारि
रितियनमाल गरे सों तोरी,
रंगा चोली रंग में बोरी
रकुम मूठ मारें मार... होली कौ खिलार

में हरि होरी मचाई ।

धजू सैन दियो सखियन कों वरवर
पकरि लै आई

लजू कौ नाच नचाई ।

हैं छीनि पितांबर मुरली,
पर चूनरी उड़ाई ।

भाल, नैन बिच काजर

नकबेसर पहराई
मनों नई नारि बनाई ।

भिया कूं नारि बनाओ री, रसिया कूं

हं लहंगा, गलमार्हि कंचुकी,

सर सीस उड़ाओ री, रसिया कूं

ल गुलाल दृगन में अंजन,

भाल लगाओ री, रसिया कूं

खेलन वरसाने में आये हैं नटवर

नंदकिसोर

लई सब गली रंगीली, छाय रही

सब छटा छबीली

दोल मृदंग बजाये हैं,

की घनघोर . . . फाग

र मिलके सब सखियां आई,

छाई घटा अंबर में छाई

हरियल बांस गढ़ाये, हैं गीतन को है
सोर . . . फाग

लै रहे चोट ग्वाल ढालन पै,

केसर कीच मलें गालन पै

अबीर गुलाल उड़ाये हैं, मारत भरि-

भरि झोर

फाग खेलन वरसाने में आये हैं, नटवर

नंदकिसोर

मोपै जवरन रंग दियो डारि जसोदा

तेरे लाला ने

गुलाबी पिस्तई अरु गुलनार, हरयो

रंग मोपै दीन्हों डारि

बिसाखा की दई चूनरि फारि

चूनरी दीन्हों फारिकें नटवर नंद किसोर

में जो पकरन कों गयी मेरी दीन्हों बांह मरोर

अरी मेरी टूटचो गरे कौ हार ॥

चंपा के नौ दस पात अनार की एक कली

को भैया खेलें होरी फाग तौ को भैया

ठाड़े ई डोलें

कान्हा भैया खेलें होरी फाग तौ बलराम

ठाड़े ई डोलें

खेलत-खेलत पहुंचे वृंदावन

वृंदावन की कुंज गलिन में

राधा के छूटे हैं केस कृष्णजी की छूटी

पिचकारी

राधा गयी हैं रिसाय ढीठ तोसें को खेलें होरी

रंग में रंगि दई बांह पकरि लई लाजन

(शेषांश पृष्ठ १३४ पर)

सुन्दरी डाकिन

थियोफिले गोतियर

कृत विख्यात उपन्यास 'द व्यूटीफुल वैम्पायर'
का हरिमोहन शर्मा द्वारा प्रस्तुत सार-संक्षेप



मृत्यु पर प्रेम की विजय को रेखांकित करने वाला एक अमर उपन्यास, जो वीर-विश्व भर के पाठकों का मन मोहता चला आ रहा है। एक अजीबोगरीब प्रेम-कथा



यदि आप मुझसे यह न पूछते कि मैंने कभी प्रेम किया है, तो इस अजीबोगरीब प्रेम-कथा को लिखने का विचार मेरे मन में कभी नहीं आता। लेकिन आपने प्रेम की बात छेड़कर, मुझे पुरानी यादों की राख को कुरेदने को बाध्य कर दिया है।

६३ वर्ष की आयु में अपने जीवन में घटी इस भीषण कथा को सुनाते समय मुझे ऐसा लग रहा है, जैसे मैं आपको अपनी नहीं, किसी और के जीवन में घटी कहानी सुना रहा हूँ। इतनी अविश्वसनीय और अकल्पनीय है यह कहानी।

मैं एक गांव के चर्च का निर्धन पादरी हूँ। तीन वर्षों तक मैं आसुरी घात-प्रत्या-

घातों का शिकार रहा, और जिस सुन्दरी डाकिन के प्रेम-जाल में फंसा रहा, वास्तव में एक मायाविनी थी। उसी के साथ बने अपने प्रेम-संबंधों की यादें हैं, तो लगता है किसी सपने की यादें देना रहा हूँ।

क्या किसी मायावी और आसुरी की डाकिन से प्रथम दृष्टि में प्रेम संभव है? अपने अनुभवों के आधार पर मैं कह सकता हूँ कि हो सकता है। प्रेम की अनुभूति सहसा इतनी तेज हो उठी कि मैं जब तक उसमें रूढ़ रहा, तब तक मुझे अपनी कोई सुषुप्ति नहीं रही। और जब मैं इस मोह-निद्रा जागा, तब मैंने अपने प्रिय संत की



वर्षों से
समने नत होकर, उनका आभार
ना कि उन्होंने मुझे सुन्दरी डाकिन के
प्रेम-पाश से मुक्ति दिलायी।

०००

यदि आपको मेरे उपरोक्त कथन से
सा लगा हो कि मैं उस सुन्दरी डाकिन
से प्रेम नहीं करता था, तो मैं यह स्पष्ट
कर देना चाहता हूँ कि जितनी उत्कटता
मैंने उसे प्रेम किया, किसी और 'व्यक्ति'
को कभी नहीं किया। उसके साथ 'बितायी'
'संवेगशील और वासनामय रातों'
को याद आते ही, आज भी मैं सिहर
उठता हूँ।

जब तक वह सुन्दरी डाकिन मेरे जीवन
में रही, तब तक मैं दूसरा जीवन जीता
रहा। दिन भर मैं एक पादरी के रूप में
धार्मिक कृत्यों और अनुष्ठानों में व्यस्त
रहता, लेकिन रात होते ही मैं एक आखेट

प्रिय, स्त्रियों के साथ रमण करनेवाला,
और डटकर पीने वाला कुलीन व्यक्ति
बन जाता। तब मुझे लगता कि मेरा
वास्तविक जीवन यही है, और पादरी
के रूप में मैं जो जीवन बिताता हूँ, वह
मेरा स्वप्न-जीवन है।

बाह्य जगत से मेरा सीधा संबंध कभी
नहीं रहा। बाल्यावस्था और किशोरा-
वस्था पढ़ाई और पादरी बनने का प्रशिक्षण
प्राप्त करने में बीती। पादरी बन जाने
के बाद तो यह संबंध पूरी तरह टूट गया।
वर्ष में जब दो बार अपनी बूढ़ी और
अशक्त माँ से मिलने जाता था, तभी
मैं बाहरी दुनिया में प्रवेश करता था, और
मुझे लगता था कि मेरा भी वहाँ कोई है।

जिस सुन्दरी डाकिन ने मुझे इतने वर्षों
तक अपने प्रेम-जाल में बांधे रखा, उससे
मेरी सर्वप्रथम 'भेंट' तब हुई थी, जब मैं

पादरी बनकर बड़े पादरी से आशीर्वचन प्राप्त कर रहा था। जब तक वे मुझे आशीर्वाद देते रहे, मैं उनके सामने नत रहा। किंतु, जैसे ही उनका आशीर्वचन पूरा हुआ, और मैंने अपना सर ऊपर उठाया तो देखता क्या हूँ कि मेरे ठीक सामने, रेलिंग के उस पार, एक अनिन्द्य सुन्दरी युवती खड़ी अपलक नेत्रों से मुझे निहार रही है। धीरे-धीरे, मुझे आसपास खड़े सब व्यक्ति दिखायी देने बंद हो गये, सारे दृश्य न जाने कहां विलीन हो गये, और मुझे सिर्फ वही—एकमात्र वही—दिखायी देने लगी।

०००

मैं उसका वर्णन करने में असमर्थ हूँ। कवि या लेखक होता, तो भी उसके अप्रतिम सौन्दर्य का वर्णन न कर पाता। कलाकार होता, तो भी उसके स्वर्गीय रूप की झलक को चित्रकला या मूर्तिकला के माध्यम से क़ैद करने में अपने को असमर्थ पाता। वस, यही कह सकता हूँ कि वह एक आदर्श सुन्दरी थी, और उसका अंग-प्रत्यंग जैसे सांचे में ढाल कर गढ़ा गया था। वह मानवी न थी, और उसमें देवियों और डाकनियों दोनों की विशेषताएं मौजूद थीं।

जैसे ही मैंने उसे देखा, मुझे लगा, जैसे मेरे भीतर के बंद द्वार खुल गये हों। अनजाने-अपरिचित दृश्य दिखायी देने लगे।

तभी, एक विचित्र अनुभूति हुई। मुझे लगा, कविता के समान अभिव्यंजक

उसके नेत्र मुझसे कह रहे हैं, 'मेरे जीवन की शरण में जाने के स्थान पर यदि तुम मेरी शरण में आओगे, तो मैं तुम्हें अधिक प्रेम और सुख दूंगी, जिसको तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। पादरी को चोगा छोड़कर, मेरे पास आओ, और मेरे सदावहार जवानी, और महामते से मेरे का जी भर कर उपभोग करो। पादरी बनकर क्या तुम प्रेम की वह नशीली मति पी सकोगे, जो मैं तुम्हें पिलाने वाली हूँ? आओ, मेरे पास आओ, और मैं तुम्हें सपनों के पंखों पर बैठकर एक ऐसे देश में ले चलूंगी जहां यौवन है, सौन्दर्य है और है कभी न मरने वाला प्रेम।'

अजीब हालत थी मेरी! मुझे इन मधुर शब्दों के अलावा कुछ और सुनायी दे रहा था, उसके अलावा आंखें और किसी पात्र या पदार्थ को देख पा रही थीं।

०००

पादरी तो मैं बन गया, लेकिन पादरी की भूमिका निभाते समय मुझे लगता रहता था, जैसे मैं कोई ऐसा कर रहा हूँ, जो मुझे नहीं करना चाहिए। 'जैसे कोई गुनाह किये जा रहा हूँ' मैं चर्च में सारे दिन मेरा दम घुटता रहता था। बार-बार, मन यही करता कि सब कुछ छोड़-छाड़कर, जाकर प्रियतमा की बांहों में खो जाऊँ।

लेकिन, प्रियतमा तो मुझसे अप्रसन्न उसकी अप्रसन्नता का कारण यह था

तुम्हें उसकी बात न मानकर पादरी बनना स्वीकार किया। कभी-कभी, एकान्त में मुझे स्पष्ट अनुभूति होती, उसने आकर मेरा हाथ पकड़ लिया है, और मेरे कानों में फुसफुसा कर कह रही है, 'तुम दुखी हो न! संपूर्ण मन से मुझे नहीं अपनाओगे तो इसी प्रकार दुखी रहोगे, और नरकाग्नि में झुलसते रहोगे। स्वर्ग का सा मुख जाना चाहते हो, तो सब कुछ छोड़कर मेरी शरण में आ जाओ।'।

मेरे मन में उसके प्रेम का बीज पड़ चुका था, और वह धीरे-धीरे, एक सुगंध बरसाने वाले पौधे के रूप में विकसित होता जा रहा था। और, अब यह पौधा इतना बड़ा और सशक्त हो चुका था कि मैं चाह कर भी उसे नष्ट नहीं कर सकता था।

मेरा जीवन अब मेरा नहीं रहा था, उस पर मेरी प्रेयसी का अधिकार निरंतर बढ़ता जा रहा था। रात में तो, खैर, वह मेरे साथ होती ही थी, लेकिन दिन में भी उसका साक्षात्कार करने के लिए मुझे अपनी आंखें बंद कर लेनी पड़ती थीं, और वह मेरे सामने 'प्रकट' हो जाती थी। उसके प्रेमल हाथ मुझे दुलारने लगते। आंखें खुल जाने पर भी उन कमनीय हाथों के स्पर्श की मधुर अनुभूति मेरे मन में व्याप्त रहती, और मैं अपने हाथों से उन लोगों को सहलाता रहता, जिन्हें उसके स्पर्श का सुख मिला था।

मैं पादरी बन चुका था, और इस

कारण प्रेम और सौन्दर्य का मेरे जीवन में कोई स्थान नहीं रहा था। पादरी को प्रेम और सौन्दर्य से क्या लेना-देना? इसके बावजूद, मेरा पूरा जीवन उसके प्रेम और सौन्दर्य से आप्लावित होता जा रहा था, और मैं इस प्रक्रिया को रोकने में असमर्थ था।

०००

एक दिन, जब बड़े पादरी मेरे चर्च का निरीक्षण करने आये थे, एक विचित्र घटना घटी। एक नीग्रो नौकर बड़े पादरी के सामने ही मुझे एक कागज का पुर्जा देकर चला गया। इस पुर्जे पर सिर्फ इतना लिखा था : 'क्लेरिमोन्द कॉनसिनी महल।' मुझे मालूम नहीं था कि यह महल कहाँ था, और किसका था।

नीग्रो नौकर जब चला गया तो बड़े पादरी ने घूर कर जिन तिगाहों से मुझे देखा, उससे स्पष्ट था कि वे मेरी भर्त्सना कर रहे हैं। मेरा चेहरा पीला पड़ गया, और जब तक वे वहाँ रहे, मैं उनसे आंखें मिलाने का साहस नहीं कर सका। एक गहरा अवसाद मेरे मन पर छा गया। मुझे लगा, जैसे कोई शक्ति मुझे मेरी रहस्यमयी प्रेमिका से जुदा करने का प्रयास कर रही है। मेरी हालत एक निर्जीव कठपुतली जैसी होती जा रही थी।

बड़े पादरी के जाने के बाद, मैं अपने कमरे की खिड़की के पास खड़ा होकर बाहर देखने लगा। बाहर व्यस्तता थी, तेज रफ्तार से आगे बढ़ती हुई जिन्दगी

थी— प्रकाश, खुशियों और चहलपहल से भरी हुई। और, मेरे भीतर, अंधेरा था, खोखलापन था, और था कष्टों का एक ऐसा कंटकाकीर्ण घेरा, जिसे लांघना मुझे असंभव लग रहा था।

अंत में, मैं जगमगाती जिन्दगी के इस नजारे को और अधिक नहीं देख सका, और आकर चुपचाप अपने बिस्तर पर लेट गया। मैं महसूस कर रहा था कि मैं एक ऐसे अंधेरे और अंतहीन गड्ढे में गिरता जा रहा हूँ, जिसमें न जाने कितने जहरीले सांप फन-फना रहे हैं।

सहसा, किसी के स्पर्श से मेरी आँखें खुलीं, और मैंने अपने सामने बड़े पादरी को खड़े पाया। वे कह रहे थे, 'तुम्हें क्या हो गया है, मेरे मित्र? क्या तुम्हारी तबियत ठीक नहीं है? तुम जैसे शांत और सज्जन की ऐसी हालत देखकर मुझे बड़ा कष्ट हो रहा है। मुझे लगता है तुम शैतान के चंगुल में फँस गये हो, और तुम्हारी वर्तमान मनोदशा के मूल में शैतान ही है। भगवान की शरण में आकर ही तुम्हें शैतान से मुक्ति मिल सकती है, और भगवान की शरण में आने का एकमात्र उपाय है—प्रार्थना। भगवान की प्रार्थना में मन लगाओ—

मेरे मित्र ! शैतान की काली छाया तुम्हारे ऊपर से चली जायेगी।'

बड़े पादरी की बातों से मैं कुछ स्वस्थ चित्त हुआ। लेकिन, उन्होंने आगे जो कुछ कहा, उससे मैं पुनः अशांत हो गया।

उन्होंने जाने से पूर्व, मुझे सूचित किया कि क्लेरिमोन्द के पादरी का दुःख निश्चय हो गया है, और मुझे शीघ्रातिशीघ्र वहाँ पहुँच उसका स्थान लेना होगा।



यह सूचना पाकर मेरा दिल जोर-जोर से धड़कने लगा। न जाने क्यों मुझे लग रहा था कि क्लेरिमोन्द और उसके कान्सिनी महल का संबंध मेरी तरह रहस्यमयी प्रमिका से है जिसे मैं जानता भी था और नहीं भी जानता था।

०००

अगले दिन मैं बड़े पादरी के साथ क्लेरिमोन्द के लिए रवाना हो गया।

सामान से लदे दो खच्चर हमारे पीछे-पीछे चल रहे थे।

जैसे ही मुझे एक महल दिखायी पड़ा मैंने बड़े पादरी से पूछा, 'यह भव्य महल किसका है?'

'यह महल राजकुमार कान्सिनी का है, लेकिन जब से उसने इसे अपनी प्रेमिका क्लेरिमोन्द को भेंट में दे दिया है, तब से यह महला 'क्लेरिमोन्द कान्सिनी' कहल

और यह स्थान क्लेरिमोन्द कहलाने लगा
लेकिन यह भी सुनने में आया है कि
तब से इस महल का, नाम-परिवर्तन
आ है, तब से यहां अजीबोगरीब और
घटनाएं घटने लगी हैं।
मेरे कान बड़े पादरी की बातें सुन रहे
लेकिन आंखें बराबर महल पर ही
ली थीं।

महसा मैंने छज्जे पर एक सुन्दरी
की को देखा। बड़े पादरी ने बताया कि
वह क्लेरिमोन्द थी।

क्लेरिमोन्द या मेरी प्रेमिका, मेरे
कोनों की रानी !

एक क्षण के लिए अपनी झलक दिखाकर
जाने कहां विलीन हो गयी थी ?

क्या उसने मुझे देख लिया था ?

क्या एक झलक दिखाकर अन्तर्धान

जाना उसकी एक अदा थी ?

क्या मेरे उसे क्लेरिमोन्द में आने का
ज्ञान था ?

क्या कागज के पुर्जों के साथ नीग्रो

को उसी ने भेजा था, मुझे यह

जाने के लिए कि मुझे जल्दी ही उसके

आना होगा ?

उसकी क्षणिक झलक पाकर बहुत से

महल मेरे मन में उठ रहे थे, लेकिन मेरे

को किसी भी सवाल का कोई जवाब

नी था।

०००

और तभी, अचानक, मुझे मेरे सभी

को के उत्तर मिल गये : शायद इसलिए

वहाँ



कि मेरी और उसकी आत्मा अभिन्न थी,
वहुत पहले ही एक हो चुकी थी। और
इस कारण जो वह सोचती थी, वह मुझे
पता चल जाता था, और जो मैं सोचता
था, उसका पता दूरानुभूति द्वारा उसे हो
जाता था।

अब मुझे इस बारे में कोई संदेह नहीं
रहा था कि क्लेरिमोन्द आने का पूर्वाभास
उसी ने कराया था, और मेरे वहाँ जाने के
पीछे भी उसी का हाथ था। उसी की
प्रेरणा मुझे यहाँ खींच लायी थी।

उसके सान्निध्य में घटने वाली उत्तेजक
घटनाओं की कल्पना से ही मेरे सारे
शरीर में सिहरन होने लगी।

लेकिन बड़े पादरी महोदय ने मुझे
कल्पना-जगत में अधिक समय तक बिचरने
का अवसर नहीं दिया। वे मुझे क्लेरिमोन्द

के चर्च की ओर ले जाते समय, उसी के बारे में बातें करते जा रहे थे, और इस प्रकार मुझे अपनी प्रेमिका के बारे में सोचने का अधिक समय नहीं दे रहे थे।

चर्च काफ़ी पुराना था, और काफ़ी जीर्णशीर्ण अवस्था में भी था। वहां एक मरियल से कुत्ते ने मरी और बुझी हुई आंखों से मेरा स्वागत किया। कुछ मुर्गियों ने भी अपनी मौजूदगी का अहसास कराया।

गांव के निवासियों से मेरा परिचय कराने और मुझे चर्च में विधिवत् प्रतिष्ठित करने के बाद, बड़े पादरी चले गये।

उनके जाते ही मेरा मन अपनी प्रेयसी के चारों ओर मंडराने लगा। यद्यपि मैं बिलकुल अकेला था, तथापि मुझे ऐसा लग रहा था कि वह भी मेरे निकट ही है, और चुपचाप मुस्कराती हुई, मेरी सब हरकतों को बड़े ध्यान से देख रही थी। कभी-कभी, बिजली की तरह उसकी चमकीली आंखें मेरे सामने काँध जाती थीं।

शाम को मैं जब चर्च के सामने स्थित छोटे से उद्यान में चुपचाप बैठा उसी के बारे में सोच रहा था, तब मुझे सामने मिट्टी में किसी युवती के पद-चिह्न स्पष्ट दिखायी दिये। यह आश्चर्य का विषय था, क्योंकि चर्च और उसका उद्यान आदमी के क्रद से ऊंची दीवारों से घिरा था, और उन्हें लांघ कर उद्यान में आना किसी भी युवती के लिए संभव नहीं था। और बड़े पादरी के जाते ही मैंने चर्च के द्वार को बंद कर उस पर अंदर से एक

मोटा ताला लगा दिया था, ताकि रात को कोई चोर चर्च में प्रवेश न कर सके।

यह निश्चय करने के लिए कि चर्च के अंदर कहीं छिपकर तो नहीं है, मैंने चर्च का कोना-कोना छाना मगर वह कहीं दिखायी नहीं दी।

तो क्या वह पद-चिह्न मात्र मेरा भ्रम था?

नहीं, क्योंकि पद-चिह्न मिट्टी पर साफ़ और नया-नया मौजूद था! वह तब नहीं था, जब मैं बड़े पादरी साथ पहली बार उद्यान में आया था।

जो हो, यह एक चमत्कारिक घटना थी, लेकिन मुझे क्या पता था कि मैं भी अधिक चमत्कारिक घटनाएँ देखने वाली हूँ।

०००

एक रात, जब मैं सोने की तैयारी रहा था, दरवाजे की घंटी इतने जोर वजी, जैसे चीख-चिल्ला रही हो।

चर्च की बूढ़ी नौकरानी दौड़ी-दौड़ी दरवाजा खोलने के लिए गयी। उसके पीछे-पीछे मैं गया।

दरवाजे के खुलते ही मैंने बड़े वस्त्र पहने सांवले रंग के एक पुरुष सामने खड़े पाया। उसकी कमर से तलवार म्यान वाली एक तलवार झूल रही थी।

बारबरा उसे देखकर, डर के कांपने लगी। लेकिन, उस पुरुष ने आश्वस्त करते हुए कहा, 'डरने की बात नहीं है, बुढ़िया! मुझे पादरी

एक जरूरी काम है।'

जब मैं उसे साथ लेकर अपने कमरे आया, तो एक कुर्सी पर बैठकर उसने मुझे बताया, 'मेरी प्रेमिका, जिसे मैं एक महान महिला मानता हूँ, की अंतिम घड़ी आ पहुँची है। वे तुरन्त एक पादरी से भेंट करने की इच्छुक हैं। क्या आप कृपा करके इसी समय मेरे साथ चलकर उसकी यह अंतिम इच्छा पूरी करने का कष्ट करेंगे?'

मैं फौरन उसके साथ जाने को तैयार हो गया।

बाहर दो घोड़े हम दोनों को गन्तव्य स्थान पर ले जाने के लिए तैयार खड़े थे।

अंधेरा इतना घना था कि मुझे अपना रास्ता भी दिखायी नहीं देता था। लेकिन, घोड़े शायद मार्ग से भलीभाँति परिचित थे, इसलिए सरपट दौड़े चले जा रहे थे।

कुछ देर बाद, दोनों घोड़े एक महल के सामने खड़े थे। हम दोनों को देखते ही, महल के कुछ नौकर हाथ में मशाल लिये

सारी ओर दौड़े। मैं यह देखकर चकित हो गया कि इन नौकरों में वह नीग्रो

नौकर भी था, जो पतेवाला कागज का पत्र लेकर मेरे पास आया था। उसी ने मुझे से उतरने में मेरी सहायता की।

घोड़े से उतरते ही, काली पोशाक में एक पुरुष ने, जो कुलीन वंश का मानता था, रुंधे कंठ से मेरा अभिवादन किया। उसकी आंखों से आंसू बह रहे थे और वह काफ़ी विचलित और दुखी

दिखायी देता था।

उसने सर हिलाते हुए कहा, 'भाग्य का लिखा तो हो कर ही रहता है। उसके आगे किसी की नहीं चलती। आप थोड़ा देर से पहुँचे, पादरी महोदय! भले ही आप मरहूमा की आत्मा को न बचा पाये हैं, फिर भी उनके शव के पास जाकर उनकी आत्मा के लिए प्रार्थना तो कर ही सकते हैं।'

शव को देखकर, मैं बिलख-बिलख कर रोने लगा, क्योंकि यह शव और किसी का नहीं, स्वयं मेरी प्रियसी क्लेरि-मोन्द का था। चूँकि सभी शव को देखकर रो रहे थे, इसलिये किसी को मेरे बिलख-बिलख कर रोने पर आश्चर्य नहीं हुआ।

०००

मेरी प्रियतमा की मृत्यु, जैसा कि मुझे बताया गया, बड़ी अप्रत्याशित थी। वस्तुतः मौत ने क्लेरिमोन्द को तब आकर दबोचा, जब वह बड़े हर्ष और उल्लास के साथ एक नृत्य-समारोह में भाग ले रही थी।

जिस पलंग पर शव पड़ा था, उसके पास बैठकर, और गर्दन झुकाकर, मैंने उन प्रार्थनाओं का पाठ आरंभ कर दिया, जो मृत व्यक्ति की आत्मा को शांति पहुँचाने के उद्देश्य से की जाती हैं।

मन ही मन, मैं भगवान का कृतज्ञ भी था कि उसने मुझे इस मर्मन्तिक घटना के माध्यम से एक ऐसा अनमोल अवसर प्रदान किया, जब मैं उसकी आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना कर उसे चिरस्थायी



चित्र : नीता वैद्य

शांति मिलाने का माध्यम बन सका।

प्रार्थना करते-करते मुझे काफी समय बीत गया, और वहां अकेले प्रार्थना करते हुए, मुझे एक विचित्र अनुभूति होने लगी।

शव को सुरक्षित रखने के लिए कोई उपाय काम में नहीं लाया गया था, और उसमें से अब तक सड़ांध उठनी आरंभ हो जानी चाहिये थी। लेकिन, मुझे यह देखकर आश्चर्य हो रहा था कि सड़ांध के स्थान पर कमरे में एक मीठी और प्रेम-वर्धक सुगंध व्याप्त थी। एक और विचित्र तथा अज्ञेय अनुभूति यह थी कि मेरी प्रेयसी मृत नहीं जीवित है, और उसने मरने का अभिनय इस उद्देश्य से किया है ताकि मैं उसे एक बार खोकर पुनः प्राप्त कर सकूँ। यह अनुभूति तब और अधिक प्रगाढ़ हो गयी, जब जैसे ही मैंने एक लम्बी सांस ली, मुझे तत्क्षण प्रतिनिधि

स्वरूप उसकी लम्बी सांस की ध्वनि सुनायी दी।

मैंने कई बार अपनी आंखों को मससा ताकि यह निश्चय हो जाये कि मैं न कोई सपना देख रहा हूँ, और न कि दृष्टि भ्रम का शिकार हूँ, फिर उन्हें धीरे धीरे खोला। वही दृश्य था, जो मुझे कमरे में प्रवेश करते समय दिखायी दिया था अपने वक्षों पर दोनों हाथ रखे, मृत महिला उसी प्रकार निश्चल पड़ी थी, जैसे आधा घंटा पहले पड़ी थी, जब मैं इस कमरे पहली बार आया था। हंस की गर्दन उसकी लंबी ग्रीवा अभी भी उसी प्रकार लहरियादार थी, जैसे आधा घंटा पूर्व मौत का कोई आसार उसकी सुगंध देह पर नहीं दिखायी पड़ रहा था। यही लगता था, जैसे वह गहरी नींद सोयी है।

कमरे में अब मैं बिलकुल अकेला प्रार्थना करना छोड़कर अब मैं कमरे चहल कदमी कर रहा था, और वक्षों की भांति अनेक विचित्र प्रश्न फिर मन में तेजी से घूमने आरंभ हो गये।

क्या मेरे सामने पड़ी युवती सच मेरी प्रेयसी है ?

क्या उसी रूप-आकार की यह कोई युवती है ?

क्या यह संभव नहीं कि नीता ने मेरी प्रेमिका की नौकरी छोड़कर युवती की नौकरी कर ली हो ?

यदि यह युवती सचमुच मेरी प्रेयसी

तो क्या यह संभव नहीं कि वह अभी
जीवित है, और उसने मरने का यह
मुझे अपने पास बुलाने के लिए ही
किया है ?

जैसे-जैसे ये ऊल-जलूल और बेहूदा
न बड़ी तेजी से मेरे मन में उठ रहे थे,
तैसे मुझे लगता था कि मैं पागल हो
जाऊँ, और अपने होशो-हवास पूरी तरह
सा बैठा हूँ ।

सहसा, मैं पूरी तरह अपने होशो-हवास
सा बैठा, और उस कमनीय देह के ऊपर
झुक, धीरे-धीरे उसे सहलाने लगा ।

उसका खूबसूरत जिस्म अभी तक काफ़ी
थी । नब्ज भी चल रही थी, जो इस
तक सा संकेत था कि वह अभी तक जीवित
और मरी नहीं है, जैसा कि महल के
लोगों को विश्वास हो गया है । उसकी
आँखों में रक्त-प्रवाह की आवाज़ साफ़
सुनी जा सकती थी ।

मेरा दिल तेजी से धड़कने लगा ।

उसके प्रति मेरा निष्काम प्रेम अब
शाम होता जा रहा था । . . . मैं अपने
रोक न पाया, और मैंने आगे बढ़कर
उसके सुमधुर होठों का चुंबन ले लिया।
मना सारा प्रेम उडेल दिया था मैंने उस
लन में ।

चुंबन लेते ही एक चमत्कार हुआ ।

जैसे ही मेरे होठ उसके होठ से मिले,
उसने धीरे-धीरे अपनी आँखें खोल दीं ।
उस मुझे भरपूर देखकर, बोली, 'अरे,
तू तो जीवित हो, रोमू !'

'हां . . . मैं ही हूँ तुम्हारा रोमू !'

'मगर तुम यहाँ क्या कर रहे हो ?

ओह रोमू, तुम नहीं जानते, तुम्हारी
प्रतीक्षा करते-करते मेरे प्राण ही निकल
गये थे । लेकिन अब जबकि हम दोनों की
सगाई हो चुकी है, मैं पूरी आज़ादी के साथ
तुम्हारे पास आ-जा सकूंगी । अल्विदा
रोमू, अल्विदा ! मैं पुनः मृतक-लोक में
जाने से पूर्व, तुमसे यह कहना चाहती हूँ
कि मैं तुमसे प्रेम करती हूँ । यह तुम्हारे
प्रेमपूर्ण चुंबन का ही चमत्कार था कि
मेरे मृत शरीर में एक बार फिर-कुछ
क्षणों के लिए ही सही-जीवन वापस लौट
आया । अल्विदा !'

इतना कहकर वह पुनः अचेत और
निढाल हो गयी, लेकिन अभी भी उसने
मुझे अपनी बांहों में क़ैद कर रखा था,
शायद यह जताने के लिए कि मुझसे
विछोह उसके लिए असह्य है ।

०००

उसके अचेत होते ही, मैं भी अचेत हो
गया था ।

जब मुझे कुछ होश आया, तो मैंने
अपने आपको चर्च के कमरे की खाट पर
पड़े पाया । मेरा एक हाथ, शरीर पर पड़े
कंबल से बाहर निकला हुआ था, और
चर्च का मरियल कुत्ता उसे बड़े प्यार से
चाट रहा था । बारबरा कमरे की सफ़ाई
में लगी थी ।

जैसे ही उसने मुझे आंख खोलते हुए
पाया, वह खुशी के मारे चिल्ला पड़ी ।

हिंदी डाइजेस्ट

मरियल कुत्ता भी हर्षातिरेक में दुम हिलाने लगा। मैंने खाट से उठने का प्रयास किया, लेकिन कमजोरी की वजह से उठ नहीं पाया। कमजोरी इतनी अधिक थी कि मेरे मुंह से कोई शब्द भी नहीं निकल रहा था।

बाद में मुझे पता चला कि मैं तीन दिन से कमजोरी की हालत में खाट पर पड़ा था। इन तीन दिनों में मेरी सांस लंगभग बंद हो गयी थी, और लोगों ने मुझे मरा हुआ समझ लिया था।

जहां तक मेरा संबंध था, मुझे इन तीन दिनों की कोई स्मृति नहीं थी। इन दिनों मेरी आत्मा मेरे शरीर में थी या नहीं, यह भी मैं निश्चय से नहीं कह सकता। और यह भी नहीं कह सकता कि यदि मेरी आत्मा मेरे शरीर में नहीं थी, तो कहां विचरण कर रही थी ?

बारवरा से मुझे ज्ञात हुआ कि जो सांवला आदमी मुझे थोड़े पर बैठाकर ले गया था, वही मुझे यहां अचेतावस्था में छोड़ गया था। मगर आश्चर्यजनक बात तो यह थी कि उस गांव के किसी व्यक्ति ने न तो उस सांवले आदमी को कभी देखा था, न उस महल को जहां वह मुझे बुला कर ले गया था।

तो, क्या इन दिनों मैं लगातार स्वप्न ही देख रहा था ? या मतिभ्रम का शिकार हो गया था ?

बहुत सोचने पर भी मैं किसी ठोस नतीजे पर नहीं पहुंच पाया, और दुविधा

के झूले में ही झूलता रहा।

तभी, एक दिन बड़े पादरी ने मेरी सुप्त चेतना को झंझोड़ा और मेरी रहस्यमयी प्रेयसी के बारे में एक जानकारी प्रदान की।

०००

काफ़ी देर तक घुमा-फिरा कर स्वास्थ्य और कुशल-क्षेम के बारे में विचार करती वटी संहानुभूति से पूर्ण प्रश्न पूछने के बाद मुझ पर आकस्मिक वजाघात-सा हुआ, वे बोले, 'जानते हो, कुख्यात क्लेरिमुन्ड गना क्लेरिमुन्ड अब नहीं रही। लेकिन, दिन तक लगातार एक मदनोत्सव में मगाने को लेने के बाद, अंत में वह चल बसी। गनाओं की वारांगना थी वह। अनिच्छा, मैं प्रेमी थे उसके। लोग तो यहां तक कहते हैं कि वह मानवी नहीं, डाकिन थी।'

क्लेरिमुन्ड के बारे में बोलते हुए क्लेरिमुन्ड पादरी की आंखें बराबर मेरी आंखों की ओर ही गड़ी हुई थीं। शायद वे आंखें जानती हों कि मेरा क्लेरिमुन्ड से क्या संबंध था ? मगर, मैंने अपनी मुद्रा को कायर रखी और उन्हें अपने और क्लेरिमुन्ड के संबंध के बारे में कुछ नहीं बताया। फिर भी, शायद उन्हें कुछ पता था।

जाते-जाते, वे मुझे यह उपदेश देते हुए झूले : 'मेरे मित्र ! तुम्हें यह चेतावनी देनी चाहिए कि तुम कगार पर खड़े हो, और किसी भी चीज में नीचे खड़ु में गिर सकते हो। और मत भूलो कि शैतान के पंजे बहुत लंबे हैं।'

ता बस चले, तो मैं क्लेरिमोन्द की कब्र
तीन बार 'सील' कर दूँ। जहाँ तक
तुम्हारा सवाल है, मैं भगवान से तुम्हारे
एक प्रार्थना करता रहूँगा।'

उनके जाने के बाद भी कई दिनों तक
उनके शब्द मेरे कानों में गूँजते रहे। मुझे
कर मेरा, वे मेरे शुभचिन्तक और हितैषी हैं।

मैंने क्लेरिमोन्द को भुलाने का प्रयास करने
के बाद, विशेष रूप से इसलिए भी कि वह
सा बुरा मर चुकी थी, और उसकी याद में
तुम्हारे गहरे रहने से कोई लाभ न था।

लेकिन, लगता था, क्लेरिमोन्द मुझे
मेरे माँझों को तैयार न थी। एक रात

तुम्हारे मेरे स्वप्न में प्रकट होकर मुझसे
अनारिक्त, मैं बहुत दिनों के बाद तुमसे मिल
कर कहती हूँ, मेरे प्यारे रोमू! मगर इससे यह
थी। तब समझ लेना कि मैं तुम्हें भूल गयी थी।

हूँ, मैं ऐसे लोक से लौट कर तुम्हारे पास
आँखें मीची हूँ, जहाँ मे साधारणतया कोई वापस
जाने की राह नहीं आता। उस लोक में न सूर्य
से न चन्द्र, सिर्फ आकाश और छाया है।

न पथ हैं, न मार्ग, न भूमि है, न वायु।

रों भी, मैं ऐसे लोक से तुम्हारे पास आ
जाती हूँ, इसका एक मात्र कारण यह है कि
तुम मृत्यु से अधिक शक्तिशाली है, और
तुम मेरी मौत पर विजय पाकर रहता है।

तुम्हें कैसे बताऊँ कि उस लोक से
तुम आने के लिए मुझे कैसी-कैसी यात-
नाओं का सामना करना पड़ा, और यहाँ
तुम्हारे भी मेरी यातनाओं का अंत नहीं

है। देखो मेरे हाथ ! कितने घायल

हैं ये।' कहकर उसने अपने घायल हाथ
मेरे हाथों में दे दिये, और मैं भावविह्वल
होकर उन्हें चूमने लगा। मुझे न बड़े पादरी
का उपदेश याद रहा, न अपना यह निश्चय
कि मैं कभी क्लेरिमोन्द को याद नहीं
करूँगा।

०००

क्लेरिमोन्द से प्रेम करना मुझे अत्यन्त
सहज और स्वाभाविक लग रहा था। और
वह भी बिना किसी अंतर्वाधा के मुझसे
प्रेम करती-करती कह रही थी, 'मैं तुमसे
तब से प्यार करती चली आ रही हूँ, जब
मैंने तुम्हें देखा भी नहीं था। और तभी से
मैं तुम्हारी खोज कर रही थी, क्योंकि
मैंने तुम्हें अपने आदर्श प्रेमी के रूप में
स्वीकार किया था। जब मैंने तुम्हें पादरी-
पद की शपथ लेते देखा, तो मुझे बड़ी
निराशा हुई थी। मैंने तुम्हें पादरी बनने के
तुम्हारे निश्चय से बहुत डिगाना चाहा,
किन्तु असफल रही। तुम मुझसे अधिक
भगवान से प्रेम करते रहे।'।

'अब मैं तुम्हें और भगवान को समान
रूप से चाहता हूँ,' मैं बहक कर कह
गया। मेरी यह बात सुनकर उसका चेहरा
दमक उठा, और उसने पूछा, 'सचमुच?'
यदि तुम वाकई सच बोल रहे हो, तो चलो
मेरे साथ क्योंकि अब मैं तुम्हें यहाँ अकेला
नहीं रहने दूँगी।'।

अगले दिन, मुझे साथ लेकर वह प्रेमियों
की नगरी वेनिस पहुँची, जहाँ हम दोनों
एक भव्य महल में ठहरे। वहाँ मैं राजकुमार

हिंदी डाइजेस्ट

था, और वह मेरी राजकुमारी। हमारा सारा समय केलि-क्रीड़ाओं में ही बीतता।

शीघ्र ही मुझे पता चल गया कि क्लेरिमोन्द से प्रेम करना, एक साथ बीस प्रेमिकाओं से प्रेम करने के बराबर था। इतने विभिन्न रूप थे उसके कि यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि उसका प्रेमी बनना विश्व भर की प्रेमिकाओं का प्रेमी बनने के समान ही था। अथाह थी उसकी प्यार की प्यास। और जितना प्रेम वह स्वीकार करती थी, उसका सौ गुना वापस करती थी। उसके पास न धन की कमी थी, न अधिकार, स्वास्थ्य और यौवन की। वह बस, जैसे प्रेम के लिए ही जीती थी। ऐसे प्रेम के लिए, जो कभी तृप्त होता दिखायी नहीं पड़ता था।

०००

एक दिन उसने बताया कि उसका स्वास्थ्य बड़ी तेजी से गिर रहा है। मैंने कई डाक्टरों को बुलाया, मगर उनमें से कोई भी उसके रोग का सही निदान नहीं कर पाया। वह दिनोंदिन क्षीण और कृशकाय होती चली गयी, और मुझे डर लगने लगा कि वह शायद ज्यादा दिनों तक जीवित नहीं रहेगी। उसे भी यह अहसास होने लगा था कि वह अब ज्यादा दिनों की मेहमान नहीं है।

तभी, एक ऐसी घटना घटी, जिसके कारण उसकी सेहत में बड़ी तेजी से सुधार होने लगा, और जीने की उसकी अभीप्सा पुनः जागृत हो उठी।

नवनीत

हुआ यह कि हम दोनों एक मुकदमा लड़ते देख बैठे नाश्ता कर रहे थे। अचानक, फल काटते-काटते, चाकू से मेरी उंगली काट गयी, और उसमें से खून बहने लगा। खून को देखते ही क्लेरिमोन्द की आंखों में एक ऐसी चमक आ गयी, जो मैंने कभी उसकी आंखों में नहीं देखी थी। क्लेरिमोन्द चूँचूँ की सी फुर्ती के साथ लपकी और मेरी उंगली से बहते खून को बड़े चार पीने लगी। जब खून चूक गया, तब मैंने काफ़ी देर तक वह कटे हुए स्थान को देखने से चूसती रही। बाद में, उसने मुझसे कहा, 'अब मैं नहीं मरूंगी। अब मैं हर्गिज नहीं मरूंगी। अब मुझे काफ़ी समय तक प्रेम करने का अवसर मिल सकेगा। ओह ! मैं कितनी किस्मत हूं। तुम्हारे खून की थोड़ी सी ने मुझे नया जीवन प्रदान किया है।' उस रात, मैंने सपने में बड़े पदारी डांटते सुना : 'तुम्हें क्या हो गया है मित्र ! पहले तुमने अपनी आत्मा चुड़ैल को बेची, और अब शरीर को बेचने पर भी तुले हो ! आखिर तुम्हें क्या हुआ है ?'

लेकिन, मुझे खुद नहीं मालूम था मुझे क्या हो गया है ? बस, इतना था कि मैं पूरी तरह उसके हाथों में रहा था।

लेकिन, उस दिन मेरी आंखें खुलीं, जब मैंने दर्पण में क्लेरिमोन्द की छवि देखी, तो मैंने मेरी शराब के जाम में थोड़ा पानी डाला, अन्त

तले देखा । मैं समझ गया कि वह मुझे
होश करके मेरा खून निकाल कर उसे
पना चाहती थी । कारण, वह मानवी
हीं, डाकिन और उत्पीड़िका थी ।
मैंने उसकी यह चाल सफल नहीं होने
दी, और पाउडर मिली शराब मौक़ा
कर फेंक दी । और, उसे इस बारे में
ही बताया ।

एक रात जब मैं सोने वाला था, उसने
मैंने के एक पिन से मेरी बांह का थोड़ा
खून निकालकर उसे चाटते हुए, अस्फुट
में कहा,

‘ओ मेरे प्रियतम ! तुम्हारे रक्त की
मुझे बूंदों के कारण मुझे नया जीवन
मिलता । जब मुझे ऐसा सशक्त रक्त
ही मिलता, तब मैं मर जाती हूं ।
इस प्रकार मैं बार-बार मरी हूं, और
तुम्हारे रक्त जैसा सशक्त रक्त पाकर
मैंने नवजीवन प्राप्त हुआ है । और, एक
और सुनो, प्रियतम ! मैं सिर्फ़ उन्हीं
को अपना प्रेमी बनाती हूं, जिनका
रक्त मेरे अनुकूल पड़ता है ।’

और यह कहकर वह रोने लगी ।
मुझे अब पूरा विश्वास हो गया कि वह
मानवी नहीं, एक डाकिन ही थी, जो
मानवों का ताज़ा गर्म रक्त पीकर जीवित
में रहती थी ।

०००

लेकिन इस विश्वास के बावजूद, मुझे
उसे छुटकारा नहीं मिल रहा था । उससे
अन्ततः छुटकारा दिलवाया बड़े

पादरी ने, जिन्हें मेरी हालत और सेहत के
बारे में पता चलता रहता था ।

एक दिन ये आकर मुझसे बोले, ‘मित्र !
उस डाकिन के प्रति तुम्हारी मोहग्रस्तता
के निवारण का सिर्फ़ एक ही उपाय है ।
और वह यह कि तुम मेरे साथ चलकर
क्लेरिमोन्द की कब्र देखो । उसे देखकर
तुम्हें विश्वास हो जायेगा कि वह मर चुकी
है, और जिस क्लेरिमोन्द से तुम प्यार
करते हो, वह महज़ एक कल्पना है, एक
सपना है, उसका कोई अस्तित्व नहीं है ।’

वह मुझे कश्गिस्तान में लाये । वहां
उन्होंने मुझे एक कब्र दिखायी, जिसका
शिलालेख इस प्रकार था :

‘यहां चिरनिद्रा में सोयी है,
सुन्दरी क्लेरिमोन्द !’

‘अभी भी विश्वास नहीं होता, तो इस
कब्र को खोद कर देख लो,’ बड़े पादरी
ने कहा । और मेरी चुप्पी को स्वीकृति
का चिह्न मानकर कब्र पर कुदाल चलानी
आरंभ कर दी ।

खुदाई पूरी होने पर मैंने कब्र के अंदर
सोयी क्लेरिमोन्द को देखा । उसे देखकर
बड़े पादरी ने चिल्लाकर कहा, ‘यह है
तुम्हारी डाकिन प्रेमिका, जिसकी मिट्टी
कभी की ठंडी हो चुकी है, और जो मिट्टी
में मिलकर मिट्टी हो जायेगी । हकीकत
यह है, और जिसे तुम प्यार करते हो, वह
महज़ एक ख्वाब है ।’

उनके ये शब्द सुनकर, मैं जैसे मोह-
निद्रा से जागा ।

उस रात, सपने में अंतिम बार क्लेरि-
मोन्द से मेरी भेंट हुई। वह रोती हुई मुझसे
कह रही थी, 'यह तुमने क्या किया, मेरे
प्रियतम ! तुमने उस मूर्ख पादरी की
बेकार बातों पर कैसे विश्वास कर लिया ?
क्या तुम मेरे साथ सुखी नहीं थे ? और
मैंने क्या कसूर किया था कि तुमने मेरी
कमर पर कुदाल चलवायी, और मेरे शव
को कण्ट पहुंचाया ? जो हो, आज से
मेरी आत्मा तुम्हारी आत्मा के साथ कभी
संपर्क नहीं करेगी। न हम दोनों का
भविष्य में कभी शारीरिक मिलन ही
होगा। अतिवदा ! लेकिन, जाने से पहले,
यह अवश्य कहूंगी कि मुझे खोकर तुम

हमेशा ही बहुत पछताओगे।'

उसकी यह चेतावनी सच निकली।
उसे खोकर, मैं आज तक पछता रहा हूँ।
वह जब तक मेरे जीवन में थी, मेरा जीवन
सुख की रोशनी से जगमग था, आज उसे
निपट अंधेरा छाया है।

तो यह है मेरी युवास्था की
कहानी, जिसे न जाने कब से मैं मीट
यादों के रूप में अपने मन में चुपचाप
संजोये हुए था।

जो कुछ घटा था, मैंने उसका सब
ईमानदारी और सच्चाई से वर्णन कर
दिया। अब उस पर विश्वास करना या
न करना आपका काम है।

(पृष्ठ ११९ का शेषांश)

मरि गयी होरी में

इकली भाजि चली होरी में,
हुरमत लाज गयी होरी में
कैसी आज भई होरी में,
चटकदार तन-भन में चटकन परि गयी
होरी में

कोन्हीं बरजोरी होरी में,
मोतिन लर तोरी होरी में
लै चूनर बोरी होरी में,
ह्वै कै स्याम निसंक अंक में भरि लई होरी में
अटपट चाल चलै होरी में,
गाल गुलाल मलै होरी में
हाल बेहाल कियौ होरी में
लोकलाज कुल की मरजादा तजि दई
होरी में

उपरोक्त होली-संबंधी लोकगीतों में
जिस समय लय और स्वर के साथ होली
मंजीरों, झांझ, ढप की ताल के स्वरों
स्वर मिलाकर होरिहार मगन हो
गाते हैं, सारा वातावरण रससिक्त
उठता है और आनंद का ऐसा प्रवाह
तरंगित हो उठता है कि जन-मानस उसमें
झूम-झूम उठता है।

ब्रज की होली के उस माहौल को देख
कर दर्शक एक बार बरबस कह उठते
हैं कि धन्य है ब्रज की होली और
सौभाग्यशाली हैं वे दर्शक, जो इसका बड़ा
लोकन कर कृतार्थ होते हैं।

—किशोरीरमण महिला महाविद्यालय
मथुरा (उ.प्र.)

प्रधान मंत्री का बैंक बैलेंस



लालबहादुर शास्त्री जब प्रधानमंत्री बने तब उनके बेटों ने आग्रह किया कि वे मोटर खरीदें ही !

एक दिन संध्या के समय लालबहादुर कुटुंबीय गणगण में व्यस्त थे। बातचीत चल रही थी। उसी दौरान उन्होंने कहा, 'हमने मोटर खरीदने का निर्णय ले लिया है।' और उन्होंने अपने सचिव को बुलाकर पूछा कि बैंक में अपने खाते कितनी रकम पड़ी है ?

सचिव ने कहा, 'केवल चार हजार रुपये !'

लालबहादुरजी ने सचिव से पूछा, 'फिर मोटर खरीदने में कितने लगेंगे ?'

उत्तर मिला, 'कुछ बारह हजार रुपये !'

अंततः शास्त्रीजी ने शासकीय ऋण के आधार

पर मोटर खरीदी किंतु खरीद के बाद एक वर्ष के भीतर ही वे दि. २१ पौष शक संवत् १८७ : ११ जनवरी १९६६ के दिन काल कवलित हुए।

शासन ने ये ऋण माफ करने का निर्णय लिया था परंतु उनकी धर्मपत्नी श्रीमती ललितादेवी ने, स्वाभिमानी व आदर्श मूल्यों के रक्षार्थ जीवन को ही समर्पित करने वाले शास्त्रीजी के आदर्श ध्यान में रख शासन के निर्णय को अस्वीकार कर दिया और उसके भुगतान के लिए उन्हें (श्रीमती शास्त्री) प्राप्त मासिक निवृत्ति वेतन में चार वर्षों तक यह कर्जा पूर्णतः वापिस दे दिया।

शास्त्री-व्रत

भारत-पाकिस्तान के बीच छिड़े १९६५ के युद्ध के समय की बात है। भारतीय सैनिकों को उपलब्ध कराये जाने वाले खाद्यान्नों में किसी भी प्रकार की कमी न हो उसी उद्देश्य से शास्त्रीजी ने देशवासियों को आवाहन किया था—'प्रत्येक को प्रत्येक सोमवार के दिन एक समय ही भोजन करना चाहिए।'

'जैसी कथनी वैसी करनी' के आदर्श का निर्वाह लालबहादुर जी ने अपने ही घर में शुरू किया — उनके घर में सोमवार के दिन शाम का भोजन नहीं बनता था। आज भी शास्त्री परिवार में प्रत्येक सोमवार की संध्या को भोजन नहीं बनाया जाता।

—गणेश त्र्यंबक कुलकर्णी



महेशचन्द्र जोशी की हिंदी कहानी



भूख

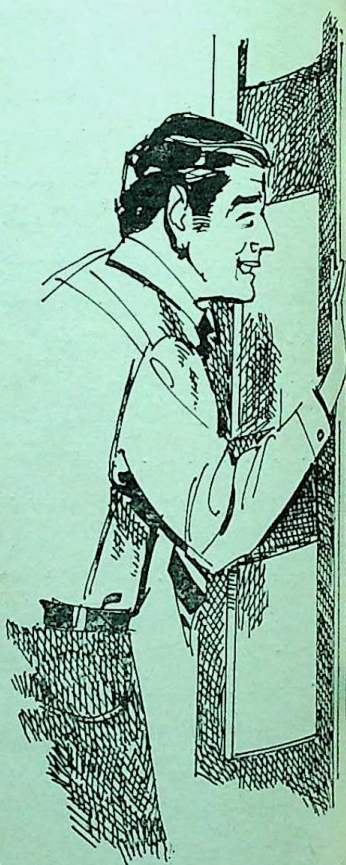
बंद दरवाजे की एक दरार पर एक आंख सटाकर मैंने भीतर झांका तो मैं चौंक उठा। गौरा मुन्ने के लिए, एक शीशी में भरे दूध को गले के नीचे उतार रही थी। मन में आया कि दरवाजा खुलवाकर भीतर जाऊं। गौरा की गोद से मुन्ने को उठा लूं। फिर गौरा को धक्के देकर मकान के बाहर कर दूं। लेकिन दूसरे ही पल, सदा की तरह, एक वज्रनदार प्रश्न कि मुन्ना किसके पास रहेगा ? उठ खड़ा हुआ।

मैं खून की सी घूट पीकर खामोश रहा।

छह माह पूर्व मुन्ना डेढ़ माह का होने को था। उस दौरान ही (मेरे व पत्नी के नौकरी करने के कारण) न जाने कितनी बार मुन्ने को संभालने वाले के लिए प्रश्न तेजी से हम दोनों के बीच उठा। फिर भी शीघ्र हल न निकल सका। घरवालों को बुलाया तो उत्तर आया—यहां सब अपने अपने धंधों में फंसे हुए हैं। कोई नौकरानी ढूंढ़ लेना उचित होगा।

नौकरानी ढूंढ़नी शुरू की तो दूर-दूर तक मंजिल का पता न चला। हां, विश्वास-पात्रों के सामने गिड़गिड़ाने पर उत्तर

अवश्य मिले—पत्नी को नौकरी दो। प्यास लगने पर कुआं खोदने



नवनीत

ऐसा करो कि आप दोनों नौकरी छोड़
उसके बाद बच्चों का एक इंग्लिश स्कूल
जात लो। आजकल घर बैठे-बैठे फैशन-
स्त लोगों को लूटने का यह अच्छा
का चल पड़ा है।

लगा जैसे इंसान दिन प्रतिदिन इंसा-
नियत की ओर न बढ़कर हैवानियत की
ओर तेजी से बढ़ता जा रहा है। जैसे ऐसा
काल में ही उसकी शान है। उसकी



महानता है।

आखिर हमारे कुछ दिन और (पत्नी
के छुट्टियों में रहने के बाद) बेचैनी व
चिंता में कटे। किसी हद तक चैन तक
मिला, जब किसी व्यक्ति की खोज के
परिणामस्वरूप एक दिन, एक लड़की-सी,
दिन ढले, एक बूढ़ी के साथ, हमारे घर
आयी। आने का कारण बताने के कुछ देर
बाद ही मुझे को प्यार से देखने लगी।
तभी बूढ़ी ने दबे स्वर में कहा था-‘गौरा
को छोटे बच्चों से बहुत लाड़ है। बहुत..।’

वह आगे न बोल सकी थी। फटी व
मैली-सी ओढ़नी के एक सिरे से अपनी
आंखें पोंछने लगी। हमें उसका ऐसा करना
अजीब-सा लगा। फिर भी हमने कुछ
पल खामोश रहने के बाद अपने मतलब
की बातें बूढ़ी व गौरा से कहीं। आखिर
अपनी इच्छानुसार सब कुछ तय हो जाने
पर मैंने चैन की सांस ली।

अगले दिन से गौरा हमारे घर समय
पर आयी। समझौते से अधिक अच्छी
तरह मुझे को संभालने के साथ-साथ घर
के कार्यों को करने लगी। लगा जैसे वह
ईमानदारी का अभिनय कर रही है। इस
कारण हमने, उसके घर लौटने पर अपने
पूरे सामान पर एक सरसरी नजर
दौड़ाई।

कुछ सप्ताह यही ढर्रा चला।

लेकिन उस शाम हमारे, गौरा के
प्रति शक में एकाएक बढ़ोत्तरी हो गयी।...
मैं आफिस से रोज की भांति घर लौटा

हिंदी डाइजेस्ट

धा । कमरे में घुसते ही पत्नी का एकदम सुस्त चेहरा देखकर ठिठक गया । घबराकर पूछा—‘क्यों, क्या बात है?’

पत्नी बोली—‘बात क्या होती ।’

—‘फिर भी?’

—‘लगता है, गौरा मुझे को नहीं संभाल सकती ।’

—‘क्यों?’

—‘जब मैं कुछ देर पहले स्कूल से आयी तो मुन्ना चिल्ला रहा था ।’

—‘क्या हुआ मुन्ने को?’

—‘भगवान जाने ।’

मैं फुर्ती से मुन्ने के समीप गया । उसे नींद में डूबा देखकर मुझे लगा जैसे वास्तव में वह अस्वस्थ है । गौरा की लापरवाही के कारण अस्वस्थ है । मैंने उसे छुआ दो-तीन बार छुआ । वास्तव में उसका शरीर आवश्यकता से अधिक गर्म था । उखड़े स्वर में बोला—‘कहीं ऐसा तो नहीं कि गौरा, मुन्ने के प्रति लापरवाही बरतती हो?’

—‘हो सकता है ।’ पत्नी का गंभीर स्वर में उत्तर था ।

मैं खामोश हो गया । उस स्थिति में ही पलंग पर बैठ गया । विचारों की आंधी से घिर गया । पत्नी के चाय लाने पर शंकित स्वर में बोला—‘खाना तो आता ही होगा उसका?’

—‘क्या खाऊ खाना आता है उसका ।’ पत्नी तुनककर व्यंग भरे स्वर में बोली, ‘वाजरे की डेढ़ रोटी और थोड़ा-सा मिर्च

नवनीत

का आचार ।’

—‘बस !’

—‘और क्या । यदि मैं एक-दो न दूँ तो वह मुन्ने को भूखा ही रख देगा ।’

—‘अच्छा ।’ कहकर मैं उठा । बाहर ओर चल दिया ।

०००

उसके बाद हमारे कुछ सप्ताह गये पर और ज्यादा शक में कटे । विशेष से लोगों की उसके विषय में रोमांच चर्चाएं सुनकर—‘गौरा एक चरित्र युवती है ।’

—‘गौरा एक नाजायज बच्चे की भी रही है ।’

—‘गौरा एक पुरुष की तलाश में है, ही किसी का घर उजड़ जाये ।’

ऐसी बातें सुन-सुन कर हमने नौकरानी की तलाश शुरू कर दी । मन-मुताबिक चैन से सांस लेने का न निकल सका । उल्टे एक दिन आफिस एक पड़ौसी का फोन आया—‘मुन्ना अचानक बीमार हो गया है ।’ के कहने से उसे बड़े अस्पताल पहुंचा है । फौरन इमरजेंसी वार्ड में पहुंचा है ।

यह सुनते ही मुझे लगा कि हालत गंभीर है । पल दो पल को तहां खड़ा रह गया । फिर जब हृद तक साहस बटोरा तो मैं पहुंचने में समर्थ हो गया । लेकिन वार्ड में पहुंचते ही फिर बुरी तरह गया । जब देखा मुन्ना आख मुँदे

हमसे ले रहा है। गौरा एक टक मुन्ने को
हारती-निहारती अश्रुधाराएं बहा रही
थी। और एक पड़ोसी गंभीर परंतु धीमे
तर में, मुन्ने से कुछ दूरी पर, एक डाक्टरनी
बातें कर रहा है।

—'क्या . . . क्या हुआ मुन्ने को ?' मैं
एक चिल्ला उठा।

वह सुनते ही आसपास के लगभग
सभी लोगों की दृष्टि मुझ पर उठ गयी।
डाक्टरनी ने दूर से ही हाथों पर एक अंगुली
खर मुझे चुप रहने का संकेत किया।

मुन्नी मेरी ओर लपके। गौरा ने धबराहट
में एक उड़ती दृष्टि मुझ पर डाली।
और दूसरे ही पल दोनों हाथों से मुंह को
मैंने, मुन्ने हुए तेजी से बाहर की ओर चल दी।

जैसे वह अपनी लापरवाही व बेई-
मानी के कारण मुन्ने को इस स्थिति तक
ले पहुंचाने के गुनाह को ढकने का अभिनय
का हाथ रही है। इस कारण पत्नी के वहां

आगमन मुन्ने के स्वास्थ्य में कुछ सुधार
—'आने के बाद हमने गौरा के विषय में विचार
। डाक्टरनी किया। उसके बाद तय किया कि

मुन्ने गौरा का पूरा हिसाब कर उसको
मुन्ने घर से, हमेशा-हमेशा के लिए छुट्टी
मुन्ने देंगे। पर जब अपने निर्णय की सूचना

एकदम अनजान बनकर हमने, गौरा
मुचित किया तो लगा जैसे उसे सांप
हमसे गया हो। वह मूर्तिवत् खड़ी रह गयी।
इसलिए नहीं कब किस स्थिति में वह वहां से

अगले दिन से गौरा हमारे घर नहीं

आयी। पैसे लेने तक नहीं आयी। हमने
भी उस पर ज्यादा गौर किये बगैर नयी
नौकरानी की खोज शुरू कर दी। आखिर
काफी कोशिशों के उपरांत एक नयी
नौकरानी आयी। लेकिन पहले दिन के
बाद नहीं आयी। हमने हिम्मत नहीं हारी।
और शान से कहने लगे—जिसकी नाक पर
पैसा मारेंगे, वह आयेगा। वास्तव में
हमारा कथन सही निकला। जल्दबाजी
करने से एक के बाद दूसरी नौकरानी
आयी। पर एक दो तो कठिनाई से महीना
ही गुजार पायीं। जो एक-दो टिकीं वे हमें
उजाड़ गयीं। आखिर हमने इस विषय
पर और गंभीरता से विचार किया।
निष्कर्ष यही निकला कि शीघ्र, अति शीघ्र
गौरा को ही फिर से रख लिया जाये।

तय करने की देर थी। गौरा बुलवाने
ही आ गयी। आते ही मुन्ने को छाती से
चिपकाकर भीगे स्वर में हंसने का प्रयत्न
करती हुई बोली—'माफ कर देना, मुन्ने,
देर से आयी। . . . बहुत देर से . . . अब
तुझे छोड़कर नहीं जाऊंगी। . . . कभी
नहीं। . . . कभी नहीं।' कहते-कहते वह
सिसक पड़ी। लगा जैसे वह मुन्ने से नहीं,
हमसे अपने अपराधों की क्षमा याचना
कर रही है। लेकिन हमने उसे दिल से
क्षमा नहीं किया। हां, ऊपरी तौर से
उस पर ज्यादा हमदर्दी दिखलानी शुरू
कर दी। इस कारण वह और खुश नज़र
आने लगी।

अब कुछ सप्ताह हमारे काफी शांति

हिंदी डाइजैस्ट

से कटे । लेकिन उस दिन फिर वेचैनी ने हमें आ दबोचा, जब पत्नी ने मुझे आफिस से आते ही सूचित किया—‘कल से मेरी फर्स्ट शिफ्ट है ।’

मैं बोला—‘यानि कि तुम सुबह ही रवाना हो जाओगी ।’

—‘हां, पौने सात बजे तक मुझे हर हालत में यहां से रवाना होना पड़ेगा । इस कारण मैंने आज गौरा को जल्दी छुट्टी दे दी ।’ कह कर पत्नी, मुझे के पास से उठ खड़ी हुई ।

—‘ठीक किया ।’ कहकर मैं वहीं चहल-कदमी करने लगा ।

उसके बाद न जाने कितनी रात तक हम दोनों रुक-रुक कर, मन में उपजी कठिनाइयों व शंकाओं का समाधान खोजते रहे ।

प्रातः उठे तो स्कूल व आफिस समय पर जाने व गौरा के समय पर न आने की चिंताओं से घिर गये ।

इस कारण स्कूल के लिए रवाना होने की पूरी तैयारी हो जाने पर पत्नी का आश्चर्य भरा स्वर फूटा—‘गौरा नहीं आयी न ?’

—‘नहीं ।’ मैं निराशा भरे स्वर में बोला ।

—‘क्या हुआ होगा उसे ?’

—‘भगवान ही जाने ।’ फिर कुछ पल रुककर मैं उसके समीप जाकर बोला—‘आयी अवश्य थी, पर . . .’

—‘कहां ? . . . कब ?’

—‘सपने में ।’ मैं गंभीरता से बोला ।

—‘आज सुबह-सुबह क्यों मजाक मचा रहा है आपको ।’ पत्नी तुनक कर बोली—

—‘मजाक नहीं, सच कह रहा हूँ ।’

—‘अच्छा ।’ पत्नी व्यंग्य से बोली—रानीजी ने कौन सा प्रेमालाप छेड़ा आपके

—‘प्रेमालाप नहीं ।’ मैं और गंभीरता से बोला ।

—‘तो फिर ?’

—‘कह रही थी कि इस महंगाई के सत्तर रुपयों में एक परिवार का पेट भरा जा सकता । . . . वह भी बड़े पिकन

का । . . . घर में कुल मिलाकर आठ रुपये हैं । पिताजी के हाथ-पैरों में लकवा

जाने के कारण दो वर्षों से चारपाई पर पड़ा हुआ है । मां दमे से पीड़ित है । एक बहन-

—‘वस । वस ।’ पत्नी कलाई की घड़ियां को देखकर बाहर की ओर तेजी से

हुई झुंझलाकर बोली—‘बेकार की चिंता न करो । मेरा स्कूल का समय हो गया

गौरा के आने तक मुझे का पूरा-पूरा ध्यान रखना । . . . सोना मत ।’

—‘चिंता न करो ।’ तनिक ऊंचे स्वर में बोला । फिर पत्नी के मकान से दूर जाते ही मुझे के पास, चारपाई

धीरे से आ लेटा । फिर भी मेरे लेटने का मुन्ना जग गया । जगते ही रोने लगा ।

कोशिशों के उपरांत भी चुप न हो सका । समझ न पड़ा कि क्या कहूँ ? क्या कहूँ

तभी अचानक गौरा आ गयी । लपक कर मुझे को उठा कर दबे स्वर में मीठी

हूई बोली—'क्यों रे मुन्ना, क्या तू फिर
घर से निकलवायेगा ?'

दूधरे ही पल पुचकारती हुई आगे
ती—'देख, आज माफ कर दे, कल से
लोदी आऊंगी। . . . बहुत जल्दी।'

मुन्ना लगभग खामोश हो गया, जैसे
गौरा को क्षमा कर दिया हो।

किन्तु मेरी खामोशी भरी दृष्टि रह-रह
कर गौरा पर उठती रही। स्वर तो तब

जब मुन्ने को चारपाई पर लेटाते ही
फिर रोने लगा। मैं बोला—'अब

हुआ इसे ?'

—'भूख लग रही होगी।' गौरा बोली।

—'आधा दूध व आधा पानी गर्म कर
ला दो इसे।'

—'बीबीजी कब तक आयेंगी ?'

—'क्यों ?'

—'इतने छोटे बच्चे को मां का दूध ही
मिलता है।'

मैं व्यंग्य भरे स्वर में हंसा।

गौरा उदास हो गयी।

मेरी खुशी में और बढ़ोत्तरी हो गयी।

उसने उसी उदासी से मुन्ने को उठाया।

थमाया। उसके लिए पानी मिला कर

गर्म किया। ठंडा कर उसे पिलाने बैठ

गयी। मैं प्रातःकाल के कार्यों से निवृत्त

होने में लग गया। फिर खा-पी कर समय

मुलाव का फूल कमल के फूल से बोला—'कांटों की चुभन क्या होती है, तुम्हें क्या पता ?'

कमल ने उत्तर दिया—'कीचड़ से असंपृक्त होकर कैसे जिया जाता है, तुम्हें

इसका ज्ञान कहाँ ?'

पर आफिस के लिए रवाना हो गया।

लेकिन घर से बाहर कुछ कदम चला ही

था कि मुन्ने के रोने का स्वर सुनकर ठिठक

गया। कुछ क्षण कहीं खड़ा रह कर लौट

पड़ा। दरवाजे तक आया। एक दरार

पर एक आंख सटा कर भीतर झांकने लगा।

चौंक पड़ा, जब देखते-देखते गौरा, मुन्ने

के लिए शीशी में रखा दूध पी गयी। लगा

जैसे हमारा अनुमान सही था कि गौरा

कुछ न कुछ बेईमानी करती होगी। इस

वजह से ही उस दिन मुन्ना मौत के मुंह

में जाते-जाते बचा। आज पकड़ में आ

गयी। . . . बेईमान दुष्ट . . . ! सोचते-

सोचते मेरी मुट्ठियां भिच गयीं। पर अभी

मैं उसको, उसकी आज तक की बेईमानी

का पूरा-पूरा मजा चखाने का तय ही

कर पाया था कि उसने अपनी कमीज़

ऊपर की।

शर्म से मेरी गर्दन झुक गयी।

'ले अब तो पी।' गौरा का ममता

भरा स्वर मेरे कानों से टकराया—'मैंने

तेरा दूध पी लिया है, तू मेरा पी।'

आश्चर्य से मेरा पूरा शरीर सिहर

उठा। मैं मंत्रमुग्ध-सा जहां का तहां खड़ा

रह गया।

—अनुसंधानकर्ता, राजस्थान राज्य अभि-

लेखागार, बीकानेर ३३४००१ (राज.)



कृपालु पाठकों से नम्र निवेदन

कागज़ की निरंतर बढ़ती महंगाई और छपाई के खर्चों में होती जा रही वृद्धि कारण हमें जनवरी-१९८२ से नवनीत के चंदे की दरों में वृद्धि करने के लिए बाध्य पड़ा है। आशा है कि नवनीत के कृपालु पाठक नवनीत को अपना पूर्ववत् स्नेह प्रकट करते रहेंगे और उसे अपने बहुमूल्य सुझावों से लाभान्वित करते रहेंगे।

जनवरी १९८२ से नवनीत के चंदे की नयी दरें :

भारत में : १ वर्ष : २८ रु.; दो वर्ष : ५४ रु.; ३ वर्ष : ८० रु.।

विदेशों में (समुद्री डाक से) : १ वर्ष : ८० रु.; २ वर्ष : १५० रु.; ३ वर्ष : २२० रु.

सीलोन, पाकिस्तान, बांग्लादेश :

१ वर्ष : ४० रु.; २ वर्ष : ७८ रु.; ३ वर्ष : ११५ रु.।

विदेशों में हवाई डाक से : (पाकिस्तान, श्रीलंका, अफगानिस्तान और वर्मा)

१ वर्ष : १२५ रुपये। अन्य सभी देशों के लिए २०० रुपये।

एक प्रति : २०७५ रुपये।

- व्यवस्थापक निदेशक

(पृष्ठ ११५ का शेषांश)

आपकी उमर दराज़ करे। मैं आपके कहना।'

सामने आपकी तलवार लेकर मेरे खिलाफ

शिकायत करने वाले इस काजी याहिया

का सिर उड़ा दूं और फिर एक ही क्षण

में अपने मंत्र-बल द्वारा इसे जीवित

न कर सकूं तो मुझे नकली पैगंबर

काजी याहिया ने दोनों हाथ जोड़े

आगे बढ़कर बोला, 'मैं अपनी शक्ति

वापस लेता हूं। यह फकीर सचमुच

हीम पैगंबर ही है, यह मानने के लिए

तैयार हूं।'



समय दो—हंसने में, यह प्राण का संगीत है।

समय दो—सोचने में, यह शक्ति का स्रोत है।

समय दो—खेलने में, यह यौवन का रहस्य है।

समय दो—पढ़ने में, यह ज्ञान का फव्वारा है।

समय दो—कार्य में, यह सफलता की कुर्जी है।

समय दो—मित्रता में, यह आनंद की राह है।

समय दो—प्रेम में, यह देवताओं का विशेषाधिकार है।

—अज्ञात



आपका स्वास्थ्य

गैस

□ वैद्य सुरेश चतुर्वेदी

पेट में गैस बनने, वायु बनने संबंधी शिकायत उन व्यक्तियों को अधिक होती है जिनकी पाचन-शक्ति विकृत होती है। कब्ज की शिकायत अधिक होने, अधिक जागरण, धातुओं की दुर्बलता, अधिक उपवास, आराम-मय जीवन, वायु चूसनेवाले पदार्थों का अधिक मात्रा में खाने करने, भूख, प्यास, छाँक, मलमूत्र यदि वेगों को रोकता, भय, चिंता, शोक यदि मानसिक कारण भी इस रोग को उत्पन्न करने में सहायक होते हैं।

इस रोग में पेट फूल जाता है, पेट में उड़ड़, बेचैनी, दर्द, घबड़ाहट, प्यास अधिक लगता, छाती में भारीपन, सांस लेने में तकलीफ, बार-बार खट्टी डकारें आती, पेट में भारीपन बना रहता है। गैस भी वायु एक स्थान से दूसरे स्थान प्रवेश कर जाती है तो उस जगह व्यक्ति बहुत बेचैनी अनुभव होती है।

उपाय : जिन कारणों से यह रोग उत्पन्न

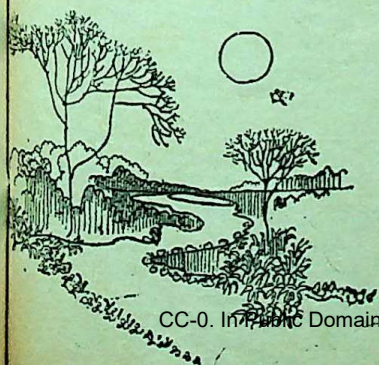
हुआ है, उन्हें त्याग देना चाहिए तथा वायु पैदा करनेवाले पदार्थ अर्थात् भारी एवं तली हुई चीजें, चना, बेसन, आलू, मावा और चावल के विभिन्न पदार्थ, उड़द की दाल, मटर, मसूर व अरहर की दाल त्याग देनी चाहिए।

औषधियों में सोंठ और अजवायन का चूर्ण बनाकर थोड़ा-सा काला नमक मिला कर गरम पानी के साथ दिन में दो बार सेवन करें। भोजन के साथ लहसुन का सेवन करना चाहिए। अदरक में नमक तथा नींबू मिला कर भोजन के साथ सेवन करें। हिंवाष्टिक चूर्ण का प्रयोग दो ग्राम की मात्रा से भोजन के बीच में या बाद में पानी के साथ सेवन करना चाहिए। तथा पेट में गैस होने पर लहसुनादि वटी की दो गोली दिन में तीन-चार बार मुंह में रखकर चूसने से भी लाभ होता है।

यदि पेट फूल गया हो तो खाने का सोडा आधा चम्मच एक कप साधारण गरम पानी में मिलाकर पीने से तुरंत लाभ होता है।

गैस के कारण यदि डकार अधिक आती हो तो काला नमक का छोटा-सा टुकड़ा मुंह में रखकर चूसने से लाभ होता है।

□



हंसना : कितना लाभदायक ?



मनुष्य को इसका बड़ा खयाल रखना चाहिये कि वह इतना अधिक बुद्धिमान हो जाये कि हंसने जैसी महान खुशी से दूर रहने लगे ।

० ० ०

हास्य वह यंत्रांश है, जिसके अभाव में जीवनरूपी यंत्र बिगड़ जाता है ।

—स्वामी राम

० ० ०

जब भी संभव हो हमेशा हंसो, यह एक सस्ती औषध है । खुशी ऐसा दर्शन है, जो ठीक से समझा नहीं गया । वह मनुष्य, जीवन का उज्ज्वल भाग है ।

० ० ०

सबसे सुंदर हास्य उसी का है, जो अंत तक हंसता रहे ।

—अंग्रेजी लोगों

० ० ०

मैं हर वस्तु पर हंसने की शीघ्रता इसीलिए करता हूँ कि कहीं मुझे रोना न पड़े ।

—व्यूमान

० ० ०

ठट्टा मारकर हंसने से मानव की पाचन-क्रिया तीव्र होकर उसका स्वस्थ बढाती है ।

० ० ०

केवल मनुष्य ही ऐसा जीव है, जो हास्य की शक्ति से संपन्न है ।

० ० ०

मनुष्य को संतापों की दाहक अग्नि में इतना झुलसना पड़ा है कि उसे बाध्य होकर हास्य का निर्माण करना पड़ा ।

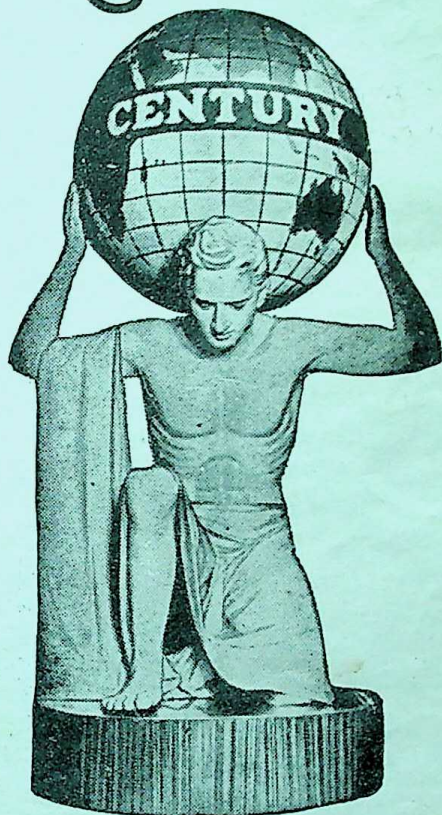
० ० ०

हंसी मन की गांठें बड़ी आसानी से खोल देती है—मेरे मन की ही नहीं, तुम्हारे मन की भी ।

—संग्रहकर्ता : नरेश कुमार बंका, अपर बाजार, लखनऊ

सु. रामकृष्णन् द्वारा भारतीय विद्याभवन, क. मा. मुन्शी मार्ग, बंबई-४००००३ के लिए प्रकाशित तथा श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, ३६/४८ खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, बंबई-४००००४ में मुद्रित ।

सेन्चुरी के अनुपम वस्त्र



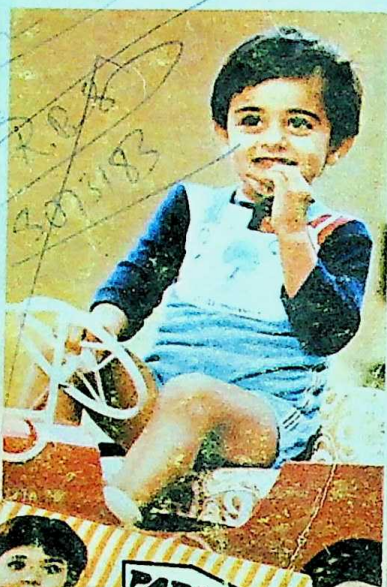
१००% सूती कपड़ों के लिये

दि सेन्चुरी स्पिनिंग एण्ड मैनुफेक्चरिंग कंपनी लिमिटेड, बम्बई

30/3/83
S.No 1191

जब मैं बड़ा होऊँगा
कार से बैंक जाऊँगा
ढेरों पैसे लूँगा, दुकानों के
सारे बिस्किट ले आऊँगा.

4 8 MAY 1983



बच्चों को भाये पाले
स्वाद में निराले, शक्ति से

पारले
ग्लुको

भारत के सबसे ज्यादा बिकने वाले



ब. ई. विनोद
पारिपोषिक विज्ञान



BYR
पार
198
लेय
लि
ली
को
पप

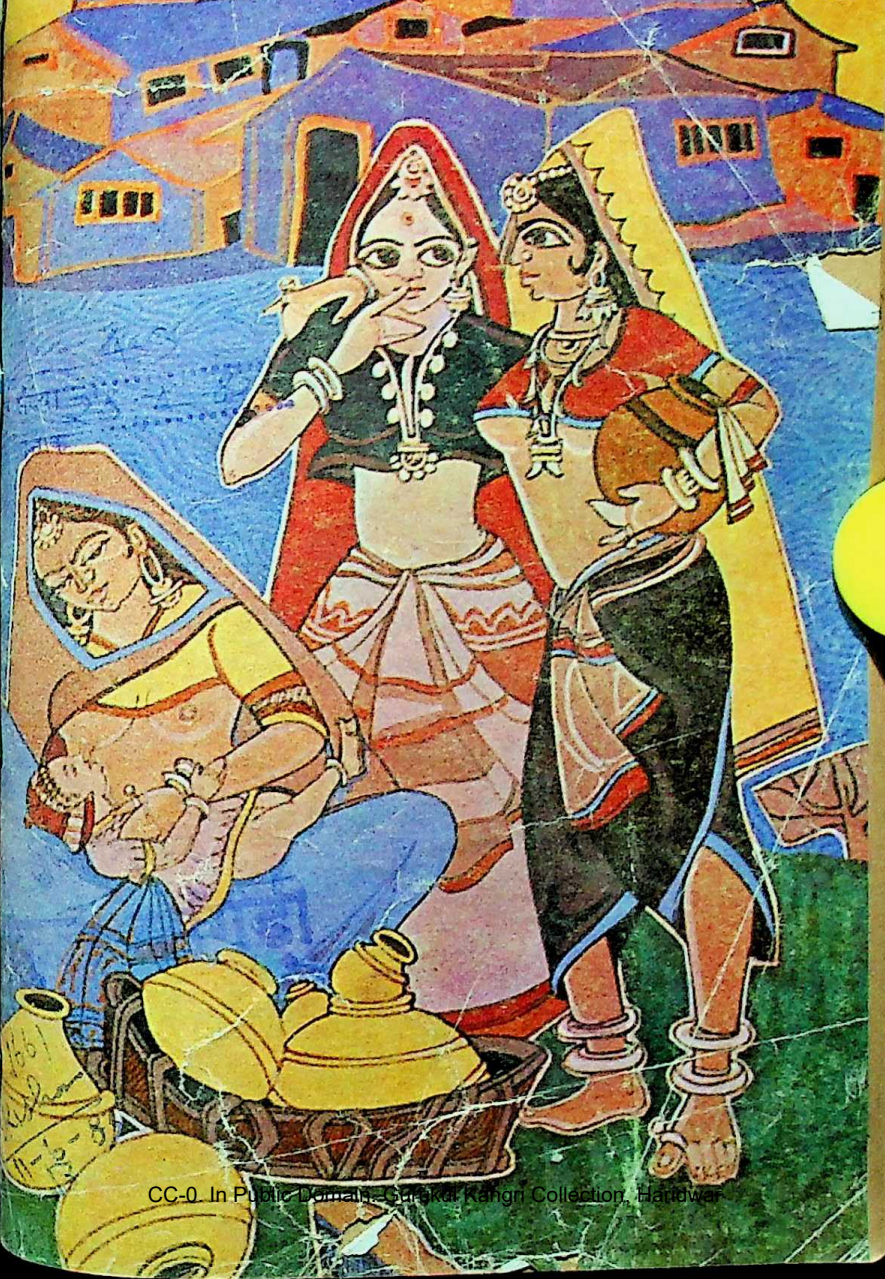
एप्रिल १९८३
मूल्य रु. २.१९

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

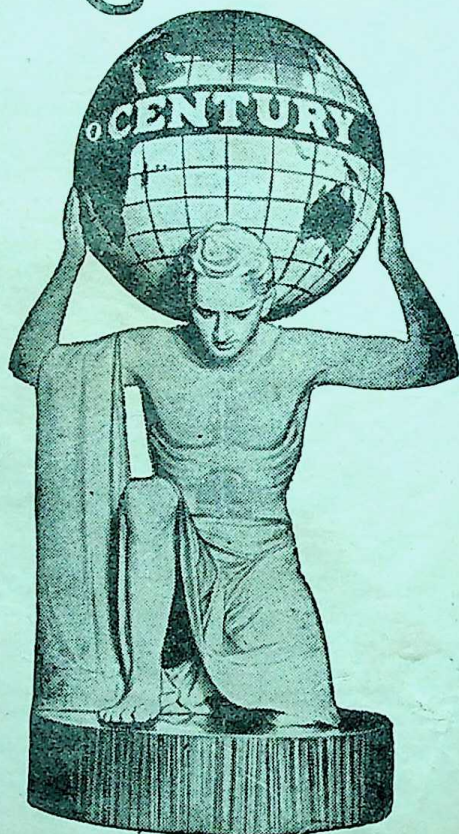
भारती' से सम्बन्धित

बल्लभ

हिन्दी मासिक



सेन्चुरी के अनुपम वस्त्र



१००% सूती कपड़ों के लिये
दि सेन्चुरी स्पिनिंग एण्ड मैनुफेक्चरिंग कंपनी लिमिटेड, बम्बई

प्राप्ति दिनांक 28-4-83

भारतीय विद्या भवन

पुस्तक बिक्री विभाग

भवन के चुने हुए हिन्दी प्रकाशन

शीर्षक	लेखक	पृष्ठ	मूल्य
१-कृष्ण बन्दे जगद् गुरुम् (कलात्मक सज्जा, सचित्र : प्लास्टिक आवरण के साथ : रियायती मूल्य)	धनश्यामदास बिरला	१२३	रु. १०-००
२-बापू की प्रेम प्रसादी (चार खंडों में : कड़े कपड़े की जिल्द : रियायती मूल्य)	"	१-५१५ २-४१८ ३-४०८ ४-४९२	रु. १०-०० प्रत्येक खंड
३-भगवान स्वामिनारायण के वचनानामृत	अनुवाद : राम- वल्लभ शास्त्री	६४२	६०-००
४-श्रीवेणुगीतम्	आर. कलाधर भट्ट	२८७	३५-००
५-योग और विद्यार्थी	योगाचार्य हंसराज यादव	२०४	१२-५०
६-राष्ट्रनिर्माता सरदार पटेल	आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री	२६०	१०-००
७-विश्वनागरी	रामेश्वर कन्हैयालाल लोहिया	८२	१५-००
८-भारतीय विद्या	डा. श्रीधर भास्कर वर्णेकर	१२६	६-००
९-विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर	इलाचन्द्र जोशी	२८२	४-००
१०-प्राचीन भारतीय मनोरंजन	मन्मथ राय	३३९	५-२५
११-भारतीय संस्कृत और इतिहास	डा. बंजनार्थ पुरी	२५२	५-००
१२-भारतीय संविधान के सिद्धान्त	चन्द्रभान अग्रवाल	३५७	१०-००
१३-रवीन्द्र रत्नाकर	रघुवंशलाल गुप्त	१८४	५-००
१४-रवीन्द्रनाथ की ओर	क. मा. मुन्शी	६६	१-००
१५-गीता का प्रेरक तत्त्व जीवन योग	काका साहेब कालेलकर	३८	१-००
१६-महानता के दृष्टान्त	योगाचार्य हंसराज यादव	१३२	३-००

प्राप्ति स्थान :

भारतीय विद्या भवन, कुलपति मुन्शी मार्ग, बम्बई-४०० ००७

तथा उसके सभी केन्द्रों पर

नवनीत

संस्थापक

कन्हैयालाल मुंशी श्रीगोपाल नेहटिया
भारती : स्था. १९५६ नवनीत : स्था. १९५२

*

संपादक

धीरेन्द्रकुमार जैन

सह-संपादक

गिरिजाशंकर त्रिवेदी

उप-संपादक

रामलाल शुक्ल

*

संयोजक

शान्तिलाल तोलाट

*

प्रकाशक

सु. रामकृष्णन्

*

आवरण-चित्र

ग्राम्य-वार्ता

चित्रकार : डा. विष्णु भटनागर

कार्यालय : भारतीय विद्या भवन

वर्ष : ३२; अंक : १

नवनीत : आपकी निगाह में
अतीन्द्रिय शक्ति से हत्यारे की पकड़

सुरेन्द्र श्रीवास्तव
समीक्षावाद डॉ. रामचन्द्र शुक्ल
'वचन' : निकट से

डॉ. देशराज पाण्डेय
आदिवासियों में दुर्गापूजा
डॉ. अर्जुनदास केसरी

दो फागुनी कविताएं
रामचन्द्र 'चन्द्रभूषण'

विश्व के दर्शनों और सिद्धान्तों का...
जयकिशनदास सादानी

पुस्तक समीक्षा :
चौरसिया, शुक्ल, त्रिपाठी

जीवन-प्रबोध
रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

प्रार्थना
दो कविताएं देवेन्द्र शर्मा 'इंद्र'

रस और लोकोत्तर रस
कुबेरनाथ राय

आंखों देखी अपनी मौत
डॉ. सूर्यनारायण व्यास

प्राचीन भारत में नौका-निर्माणकला
डॉ. शिवनन्दन कपूर

आत्मा से बढ़कर कोई तत्त्व नहीं
स्वामी मुक्तानन्द परमहंस

वफादार (हिन्दी कहानी)
राजेन्द्रकुमार शर्मा

अपति मुन्शी मार्ग, बम्बई-४०० ००७



१९८३

गिष्प की विचित्र जय-पराजय

डॉ. विजयेन्द्र स्नातक ७३

क्या और सच है क्या? (कहानी)

अभिलाष कुमार ७७.

नासाहब परलेकर

जशवन्तलाल मटभाई ८०

अनिकता बोध और सहावीर

वीरेन्द्र कुमार जैन ८४

परीक्री समाज में संव्रस्त . . .

गीतेश शर्मा ९७

लो आकृति (हिन्दी कहानी)

सिद्धेश १०५

इतिहास की आंखें नम हो

सुधारानी श्रीवास्तव ११२

गतेर का त्रैलोक्यदीपक प्रासाद

अगरचन्द नाहटा ११६

के प्राचीन मन्दिरों के रहस्य

डॉ. पॉल ब्रंटन १२०

द्वेन के हास्य-विनोद

सूरजीत १३७

गार की रक्षा (बाल-कथा)

ज्ञानदेव तिर्यग्धार १३८

100

सिम्हजा : ओके, शेणै, रामचन्द्र शक्ल,

राश गुप्त, दिनेश शाह, जडिया, राणा.

डॉ. विष्णु भटनागर ।

अमृतं तु विद्या

भारतीय विद्या मण्डल

१९१८ में संस्थापित पूर्णतया निःशुल्क, कला और संस्कृति के प्रति समर्पित, जनसेवी धर्मोदाय मठ, संस्थापक : कुतर्गत ए. भा. मुन्शी, अध्यक्ष : श्री धरमदी म. छटाक, उपाध्यक्ष : श्री निरधारिमाता देवकुमार

सद्योगी प्रतिष्ठान

[illegible]

छेन्द्र और फायोलाय

[illegible]

साम्प्रतीय विद्या यवन

जे.एम.मुन्शी मार्ग, चौपाटी, बम्बई-४००००३

फोन : ३५१४६१

HINDON

हिन्दन के कपड़ों में
जात बन जाये कहीं भी...
कभी भी



साड़ियाँ-सूटिंग-शार्टिंग-ड्रेस मटेरियल्स



नवन
प्रेरणा
इस व्या
अध्यात्म
डा. विज
अनुत्तर
विचार
ना पत्र
तेजक है
सामग्री

जनव
उसके मु
अक्षरपंक
एवं अक्षर
काश
समाज',
सुमिका',
सवेचन',
पिया 'परि
हत्वपूर्ण
कि आ
काशित
नवान,

नवनीति
१८३

नवनीत : आपकी निगाह में



नवनीत निस्संदेह विचारों की नयी प्रेरणा जगाने का महत्कार्य कर रहा है। इस व्यावसायिक युग में धर्म, संस्कृति और अध्यात्म के दीप को जलाये हुए है। डॉ. विजयेन्द्र स्नातक ने अपने पत्र के द्वारा 'अनुत्तर योगी' के विषय में अपने महत्वपूर्ण विचार व्यक्त किये हैं। पं. देवदत्त शास्त्री का पत्र भी बहुत महत्वपूर्ण और विचारोत्तेजक है। जनवरी '८३ के अंक की दूसरी सामग्री भी पढ़ रहा हूँ।

—मणिशंकर आचार्य, रतलाम

०००

जनवरी '८३ का अंक प्राप्त हुआ। उसके मुखपृष्ठ की कलाकृति बहुत ही शोकर्पक थी। इस अंक में धर्म, संस्कृति एवं अध्यात्म के अनेक गूढ़ विषयों पर प्रकाश डाला गया है। 'विज्ञान और समाज', 'समाज परिवर्तन में लेखक की भूमिका', 'तंत्र-मंत्र-यंत्रों का शास्त्रीय विवेचन', 'ज्योतिष और कर्म-सिद्धांत' तथा 'परिव्राजक' आदि सामग्रियां विशेष महत्वपूर्ण थीं। आज के समय की मांग है कि आप चरित्र-निर्माण संबंधी सामग्री प्रकाशित कर प्राणियों को प्रज्ञावान, सज्जन, ओजस्वी और देवपुत्र बनायें।

—राजन कुमार सिंह, भागलपुर

०००

नवनीत का जनवरी '८३ का अंक

१८३

पढ़ा। निश्चय ही नवनीत युवकों तथा ध्येय-च्युत पीढ़ी को जागृत तथा सांस्कृतिक पुनरुत्थान हेतु विशिष्ट लेख प्रकाशित करती है। विद्यानिवास मिश्र, विष्णु प्रभाकर, पं. गोपीनाथ कविराज तथा कैलाशनाथ ओझा आदि की रचनाओं के साथ अन्य सभी लेख भी अच्छे लगे। छोटी-छोटी बोध-कथाएं निश्चय ही गूढ़ अर्थ लिये होती हैं। नवनीत निरंतर इसी प्रकार अपनी सार्थकता बनाये रखे, हमारी यही शुभकामनाएं हैं।

—संध्या वात्स्यायन, चंदौसी

०००

मेरा एक मित्र कहा करता था कि नवनीत व्यर्थ-सी धार्मिक पत्रिका हो गयी है। मुक्तानंद के प्रचारार्थ ही है अब। तथापि मैं कहता था कि ऐसा नहीं है। नवनीत में अज्ञेय, वचन आदि को महा-कवि लिखा जाता है, जबकि प्रतिभाशाली लोग जब तक मरें नहीं, वे महान नहीं बनते। अज्ञेय या वचन जब नहीं होंगे, तब कौन उन्हें महान नहीं लिखेगा? अतः यह दृष्टि शुभ है। अक्तूबर-नवंबर '८२ में 'अध्यात्म, संगीत और साम्यवाद' लेख के लिए निरुपमा सेवती को धन्यवाद।

—स्वामी आनंद संगीत, कोटा

०००

नवनीत भावात्मक अतिक्रांति लाने

हिंदी डाइजेस्ट

वाली अपन ढंग की अकेली प्रेरणापरक पत्रिका है। नवनीत में दृश्य-श्रव्य संपादकीय प्रतिभा-मंडित क्षमता को शतशः नमन करता हूँ।

—वागेश्वर प्रसाद सिंह, फतहपुर

०००

नवनीत के दिसम्बर अंक में सावित्री परमार द्वारा लिखित ऐतिहासिक प्रणय कथा पढ़ने को मिली। लेकिन जहां इतिहास के तथ्यों का उल्लेख किया जाना हो, वहां संबंधित व्यक्ति या घटनाओं के संबंध में पूरी खोज-बीन और अच्छी तरह इतिहास का अध्ययन करने के उपरांत ही कुछ लिखना उचित और उपयोगी होता है, अन्यथा बेचारे पाठक 'नीम हकीम खतरे जान' वाली स्थिति में आ जाते हैं।

सावित्रीजी ने मुस्तानी के प्रारंभिक जीवन के संबंध में जो कुछ लिखा है वह इतिहास प्रमाणित नहीं, बल्कि कही-सुनी बातों पर आधारित है। यदि उन्होंने केवल मेरा उपन्यास 'पेशवा की कंचनी' ही पढ़ लिया होता, तो इतनी बड़ी गलती न हो पाती।

मुस्तानी का राजा छत्रसाल से किसी प्रकार का कोई संबंध नहीं था। तारीख-ए-मुहम्मदशाही में जो जिक्र आया है, उसके अनुसार—'वह एक कंचनी थी। तलवार और बर्छा चलाने में हुनरमंद और घुड़सवारी में होशियार थी। वह हमेशा एंड से एंड मिलाये बाजीराव के साथ लड़ाइयों में रहा करती थी...।'

नवनीत

इसी प्रकार राजा छत्रसाल और बंगश के बीच होने वाले युद्ध में छत्रसाल मूर्च्छित होकर बच नहीं निकले थे वरन् बंगश द्वारा बंदी बना लिये गये थे, लेकिन शिवाजी की भांति कुछ ही दिनों में वे कारागार से भाग निकले थे और बाजीराव से मिले थे। सावित्रीजी का यह कथन भी गलत है कि बंगश, 'बुरी तरह पराजित होकर स्त्री-वेश में अपने को छुपाकर मैदान छोड़ भागा था'; अपितु जब पेशवा ने बंगश की सेना को घेरकर रसद-पाना दूभर कर दिया तो बंगश ने संधि के लिए प्रार्थना की।

इस विजय के उपरांत छत्रसाल ने जो सबसे महत्वपूर्ण और दूरदर्शिता का कार्य किया था, जिसका सावित्रीजी ने उल्लेख नहीं किया है, वह है अपने राज्य का तंतु भागों में बांटना। एक-एक भाग अपने पुत्र जगतराज और हृदयराज को तथा तीसरा भाग जिसमें कालपी, हाथसागर, झांसी, सिरोंज, कुच, गढ़ाकर और हृदय नगर थे, पेशवा को दिये और साथ ही पेशवा से वचन लिया कि वह बड़े भाई के रूप में ही नहीं बल्कि सरसकट के रूप में उनके पुत्रों और वंशजों की सदैव रक्षा करते रहेंगे।

—उमाशंकर, लखनऊ

०००

अगस्त '८२ के अंक में प्रकाशित श्यामसुंदर घोष का 'श्रीकृष्ण मेरी बुद्धि में' नव उद्भावात्मक लेख के आलोचनात्मक

वाराणस के बाद मेरे मन में जानने की
 वसासा हुई कि 'श्रीमद्भगवद्गीता' की
 रचना किसने की? श्रीकृष्ण नाम के
 ई ऐतिहासिक पुरुष थे, यथाक्रम विश्व
 के आदिग्रन्थ ऋग्वेद में 'कृष्ण' नाम के एक
 वैदिक ऋषि हैं, जो अष्टम् और दशम्
 मन्त्र के कुछ सूक्तों के द्रष्टा हैं। ऐतरेय
 ब्राह्मण (३।२।६) में कृष्ण हारित नाम के
 साध्याय की चर्चा है। कौशीतकी ब्राह्मण
 कृष्णो ह तदागिरसो ब्राह्मणान् छन्दसीय
 तीर्थं सवनं ददर्श। (३०, १, ७)।
 छान्दोग्यपनिषद् (३, १७, ६) में कहा
 गया है 'तद्वैतद् घोरआगिरसः कृष्णाय
 त्वकी पुत्राय।' इनमें देवकी पुत्र कृष्ण का
 नाम आया है जिन्होंने घोर आगिरस
 नामक महान् योगी से आध्यात्मिक शिक्षा
 प्राप्त की थी। महाभारत में श्रीकृष्ण
 धर्मकावीर हैं। यहां यह भी ध्यातव्य
 है कि डा. भंडारकर तथा लोकमान्य
 तिलक प्रभृति अन्य विद्वान् छान्दोग्यपनिषद्
 वर्णित इस कृष्ण को महाभारतोक्त
 कृष्ण से भिन्न मानते हैं।
 ईसा की प्रारंभिक शती में विरचित
 भगवद्भागवत पुराण में वर्णन है कि कंस-
 य के पश्चात् कृष्ण का वसुदेव के पुरो-
 हित गार्गाचार्य द्वारा यज्ञोपवीत संस्कार
 करा और वे नियमपूर्वक गायत्री द्वारा
 आराधना में प्रवृत्त हुए। विद्याध्ययन
 लिए उन्हें उज्जैन (अवन्तीनगर)
 कासी काश्यप गोत्री संदीपनी नामक
 ऋषि के पास भेजा गया। वहां उन्होंने

विधिपूर्वक वेदादि शास्त्रों का अध्ययन
 किया। पुनः गोकुल, मथुरा और व्रज के
 करील-कुंजों में उन्मुक्त जीवन जीने
 तथा वृन्दावन के सघन निकुंजों में उनकी
 रास और महारास लीला का विशद वर्णन
 है। इसके अतिरिक्त सामान्यतया
 श्रीकृष्ण चरित का उल्लेख ब्रह्म, पद्म,
 वायु, ब्रह्मवैवर्त, स्कन्द, वामन, कूर्म और
 अग्नि पुराणों में भी मिलता है। इस
 प्रकार कृष्ण नाम के कई ऐतिहासिक
 पुरुष हुए। उनमें श्रीमद्भगवद्गीता के
 असली रचनाकार कौन थे?

चूँकि, महाभारत के भीष्म पर्व के
 प्रारंभ में २४ वें अध्याय से भगवद्गीता
 प्रारंभ होती है जो १८ अध्याय और
 ७०० श्लोकों में समाप्त हुई है। इनमें
 सब मिलाकर ९४५६ (नौ हजार चार
 सौ छप्पन) शब्द हैं। इन सात सौ श्लोकों
 में से १ श्लोक धृतराष्ट्र का है, ४० संजय
 के, ८४ अर्जुन के और ५७५ भगवान्
 श्रीकृष्ण के हैं। इन प्रमाणों से यह स्पष्ट
 हो जाता है कि गीता महाभारत का एक
 अंश है। और महाभारत के रचयिता
 महर्षि वादरायण-कृष्णद्वैपायन वेदव्यास
 हैं। अतः गीता कृष्णोक्त कहने की
 अपेक्षा व्यासोक्त कहना अधिक उपयुक्त
 होगा।

नवनीत के अनुसार महायोगेश्वर
 श्रीकृष्ण ने अर्जुन तथा अन्य योद्धाओं को
 कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में जो उपदेश किया,
 (शेषांश पृष्ठ १३ पर)

हिंदी डाइजैस्ट

अतीन्द्रिय शक्ति से हत्यारे की पकड़



सुरेन्द्र श्रीवास्तव

नींद में लोगों को चलते हुए तो आपने अक्सर सुना होगा। नींद में चलने के रोगी निद्रावस्था में अक्सर ऐसे-ऐसे साहस भरे, विलक्षण व असंभव कार्य कर जाते हैं, जिन्हें करने की वे जाग्रतावस्था में कल्पना भी नहीं कर सकते। ऐसे कुछ रोगियों को सोते हुए नदी में सफलतापूर्वक तैरते भी देखा गया है, जबकि वास्तविकता यह थी कि अपने असली जीवन में वे कतई तैरना नहीं जानते थे और यहां तक कि पानी में धुसते हुए भी घबराते थे।

नींद के ऐसे रोगियों के समान ही कुछ व्यक्तियों को विचित्र प्रकार के दौरे भी पड़ते हैं, जिनमें वे एक से एक घृणास्पद क्रूरतापूर्ण कार्य कर जाते हैं। हालांकि तथ्य वही रहता है कि दौरे के समय वे क्या कर रहे हैं, स्वयं उन्हें भी नहीं पता होता। ऐसी ही एक हैरत अंगेज सत्यकथा यहां प्रस्तुत है।

वात आज से कोई ९४ वर्ष पूर्व की है। सन १८८८ की सर्दियों में पूरे लंदन शहर पर भय का एक काला साया मंडरा रहा था। शाम होते ही लोग अपने दरवाजे बंद करके घरों में जा छिपते। पूरे शहर में सन्नाटा छा जाता, गलियां सूनी हो जातीं, लोग घर से बाहर निकलने में

घबराते। इन सबका कारण था एक जघन्य हत्यारा—‘जैक द रिपर’ यानी गर्दन चीरनेवाला जैक। जैक की इनके दहशत थी कि माएं अपने बच्चों को उसके नाम से डराती थीं।

वहां उन सर्दियों में एक के बाद एक हत्याएं हो रही थीं। सभी हत्याएं अमूर्त एक ही ढंग से की जातीं—कसाई की तल्वारों को चीर-फाड़कर सड़क के किनारे फेंक दिया जाता। उसका पेट फाड़कर आंतें बाहर निकाल दी जातीं और रक्त भी चीर दी जाती। हां, मृतकों की हत्या की जाती थी—उसके शरीर को सामान कभी गायब न होता। उन महिला मृतकों के साथ बलात्कार की भी सूचना कभी नहीं मिली। हत्याएं सिर्फ महिलाओं की ही होती थीं।

उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए यह तो सहज ही मान लिया गया कि हत्याएं धन के लालच में नहीं की जा रही थीं। लेकिन, हत्याएं कौन करता है? रहस्य ही बना हुआ था। पुलिस रात-दिन हत्यारे की खोज में लगी हुई थी किन्तु उसे सफलता ही नहीं मिल रही थी। पुलिस ने हारकर हत्यारे का नाम ‘जैक द रिपर’ रख दिया, यानी

नवनीत

८

बोलनेवाला जैक ।

हत्याएं अब भी हो रही थीं, लेकिन पुलिस कुछ नहीं कर पा रही थी। खोजों के दौरान पुलिस ने पाया कि जैक का क्या करने का ढंग भी विशेष था। वह बंद कमरे या सुनसान जगहों पर कदापि हत्याएं नहीं करता था, बल्कि सार्वजनिक स्थानों को ही इस कार्य के लिए चुनता था। लंदन का 'ईस्ट एण्ड' एरिया उसकी

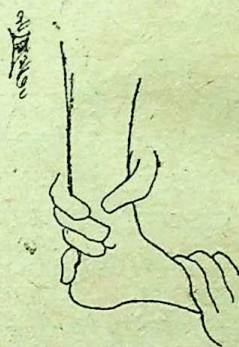
हत्याओं का केन्द्र था। यह लंदन का सबसे घनी वस्ती का इलाका था। उसकी एक विशेषता और थी और वह यह कि अमूमन वहां जैक हत्या करता था, उसके सौ-दो सौ गज के गये में कोई पुलिस चौकी या थाना होता था। इस रीति से वह निर्दयतापूर्वक हत्या करके फरार हो जाता और पुलिस हाथ मलती रह जाती।

पुलिस जी-जान से हत्यारे को ढूंढने लगी थी। कई गिरफ्तारियां भी की गईं। लंदन पुलिस व विश्व प्रसिद्ध सेंट्रल यार्ड के जासूस भी जैक को पकड़ने के लिए जुट गये, किंतु फिर भी 'जैक द रिपर' न पकड़ा जा सका। पुलिस निराश-सी हो गयी।

जनता, पुलिस व जासूसों की नाकों में खल कर देने वाला हत्यारा 'जैक द रिपर'

आखिर एक दिन पकड़ा ही गया— पुलिस द्वारा नहीं, बल्कि राबर्ट जेम्स लीज की अतींद्रिय शक्ति के द्वारा।

१८८८ की ही सर्दियों की बात है। राबर्ट जेम्स लीज नामक एक व्यक्ति लंदन में अपने कमरे में बैठा कुछ काम कर रहा था। सहसा एक अतींद्रिय दृश्य ने उसका ध्यान अपनी ओर खींचा। उस अतींद्रिय दृश्य में लीज ने देखा कि एक औरत सड़क पर जा रही है। उसके पीछे-पीछे एक पुरुष भी चल रहा है। दोनों एक गली में पहुंचे। अचानक वह पुरुष उस स्त्री की ओर बढ़ा। उसने स्त्री का मुंह अपने हाथ से बंद कर दिया और चाकू निकाल कर उसका गला चीर दिया। स्त्री चीख भीन सकी। रक्त की तेज धार व्यक्ति की कमीज



चित्र : जगदीश गुप्त

पर पड़ी, लेकिन वह इसकी परवाह किये बिना औरत को जमीन पर गिराकर निर्दयतापूर्वक उसे चीरने-फाड़ने लगा।

अपना काम पूरा कर लेने के बाद उसने चाकू को औरत के कपड़ों पर रगड़कर साफ किया और वहीं फेंक दिया। इसके पश्चात् उसने अपना कोट पहन लिया, जो उसने पहले ही थोड़ी दूर पर रख दिया था। ऊपर तक बटन लगा लेने से उसकी खून से लथपथ कमीज ढक गयी। वह

हिंदी डाइजेस्ट

शांति से गली से निकला और चलता बना ।

लीज यह देखकर भौंचक्का रह गया । वह जानता था कि यह हत्या अभी तो नहीं हुई है, मात्र पूर्वाभास है, हां निकट भविष्य में होगी जरूर । वह तुरंत पुलिस स्टेशन गया और वहां सारी बातें बतायीं । पुलिस ने उसकी बात पर कोई ध्यान नहीं दिया और यह समझा गया कि वह सनकी हं । किंतु, लीज का कहना गलत नहीं हुआ । अगले दिन ही उसके बताये समय, स्थान व ढंग से एक हत्या हुई । पुलिस असहाय-सी कुछ न कर पायी ।

कुछ दिन बाद की बात है । एक दिन लीज अपनी पत्नी के साथ शाम को टहलने गया । घूम-फिर कर जब वह लौट रहा था तो लौटते समय शेफर्ड्स के पास से वह एक ट्राम में बैठा । जगह-जगह ट्राम रुकती और आदमी उतरते-चढ़ते । ऐसे ही ट्राम जब नाटिंग हाल के स्टेशन पर रुकी तो, अन्य आदमियों के साथ एक ऐसा व्यक्ति भी उसमें चढ़ा, जिसके चढ़ते ही लीज को विचित्र अनुभूति हुई । उसने महसूस किया कि वह किसी हत्यारे के सम्पर्क में है । लीज ने अपनी पत्नी को कहा कि वह घर चली जाये । इसके बाद वह उस आदमी के पीछे हो लिया ।

आदमी मार्बल आर्च के पास उतरा । लीज भी वहीं उतर गया और उसका पीछा करने लगा । रास्ते में एक जगह उसे एक पुलिसमैन खड़ा दीखा । उसने

पुलिसमैन से कहा—‘देखो, वह ‘जैक द रिपर’ जा रहा है । मैं उसे अच्छी तरह जानता हूं । तुम उसे पकड़कर पुलिस स्टेशन ले चलो ।’ लेकिन, पुलिसमैन ने उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया । उसने लीज को सनकी समझा । उधर एक आदमी घोड़ा-गाड़ी में बैठकर न जाने किधर चला गया । लीज ‘जैक द रिपर’ को पकड़वाने में फिर असफल हो रहा ।

उसी शाम जब लीज अपने कमरे में बैठा हुआ था तो उसे एक विचित्र दृश्य अतीव्रिय शक्ति के द्वारा दीखा । वह हुआ पुलिस स्टेशन पहुंचा और चीफ इंस्पेक्टर से मिलकर सारी बात बतायी । चीफ इंस्पेक्टर ने भी उसकी बात को गंभीर समझा और उसकी बातों पर ध्यान न दिया ।

किंतु, जब लीज ने मृतक महिला के कटे कानों के बारे में बतलाया तो चीफ इंस्पेक्टर चौंक पड़ा । उसे लीज की बातों पर यकीन होने लगा । इस कारण यह था कि उसे कुछ ही देर में एक न्यूज एजेंसी द्वारा एक पत्र मिला । पत्र लिखनेवाले ने दावा किया था कि वह ‘जैक द रिपर’ है । वही हत्याएं करता है और इसके सबूत के रूप में वह अपनी नयी शिकार औरत के कान काटता है । पुलिस के पास भेजेगा । चीफ इंस्पेक्टर लीज को अपने केबिन में ले गया । उससे विस्तार से बातें कीं ।

पुलिस ने लीज की सूचना पर जैक

नवनीत

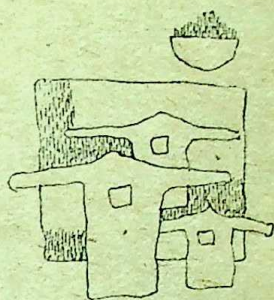
जैक शुरु कर दी, किंतु जैक का भाग्य
 भिन्न था। सवेरा होने से पहले ही वह
 जैक की आंखों में धूल झोंकता हुआ दो
 निर्दोष स्त्रियों की हत्याएं कर साफ
 निकल गया। पुलिस फिर कुछ न कर सकी।
 इसके कुछ दिन बाद की बात है।
 एक रात लीज अपने कुछ मित्रों के साथ
 एक होटल में खाना खा रहा था। खाना
 खाते-खाते सहसा वह चीख पड़ा—‘जैक
 ने एक खून और कर दिया।’

वह तुरंत खाना छोड़कर होटल से
 निकल गया और तेजी से दौड़ता हुआ
 पुलिस स्टेशन पहुंचा। वहां पहुंचकर उसने
 जैक की हत्या की बात बतायी। पुलिसवाले
 उस वार उसकी बात पर अविश्वास न कर
 सके, क्योंकि उसी समय पुलिस को भी उस
 हत्या के सम्बन्ध में सूचना मिली थी।

अब चीफ इंस्पेक्टर सोच में डूब गया।
 काफी देर विचार करने के बाद एक युक्ति
 उसके दिमाग में आयी। उसने लीज की
 अतीव्र शक्ति के बल पर ‘जैक द रिपर’
 को पकड़ने का निश्चय किया। उसने
 यह प्रस्ताव लीज के सामने रखा। लीज
 अर्द्ध सहायता के लिए तैयार हो गया।

अगले दिन चीफ इंस्पेक्टर कुछ सिपा-
 दियों को साथ ले लीज के साथ जैक की
 तलाश में चल दिया। आगे-आगे लीज
 चल रहा था और उसके पीछे-पीछे
 इंस्पेक्टर तथा अन्य पुलिसवाले।

लीज अपनी अद्भुत शक्ति के बल पर
 चल रहा था, जैसे पुलिस के कुत्ते अपराधी



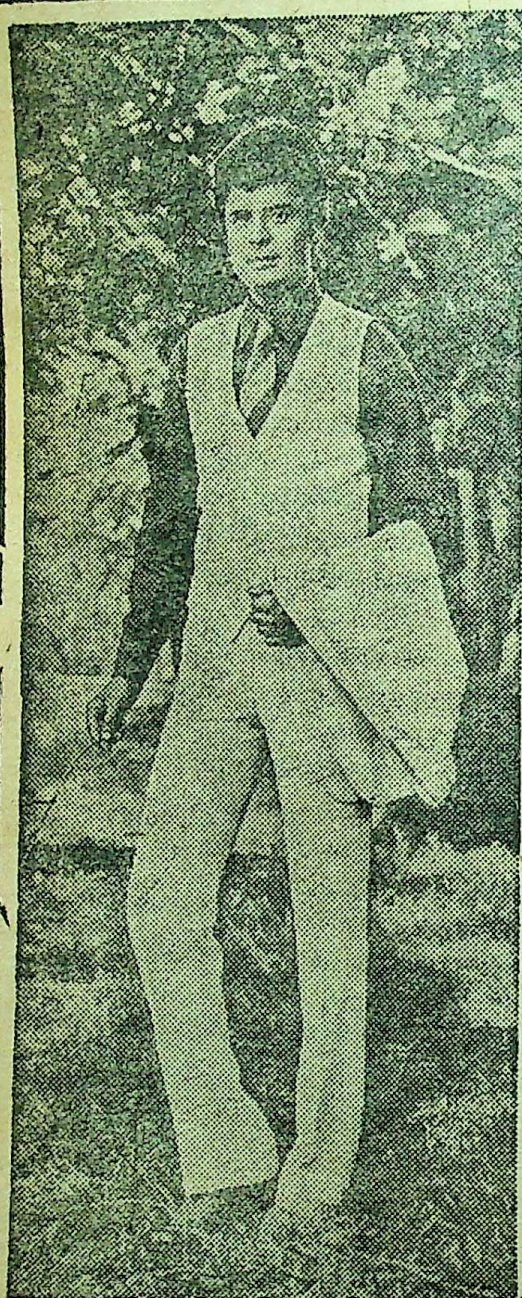
की गंध पाकर निश्चित दिशा की ओर
 चलते हैं। कई रास्ते मोड़ व गलियां पार
 करने के बाद लीज एक आलीशान कोठी
 के सामने जाकर खड़ा हो गया और बोला—
 ‘जैक द रिपर यहीं रहता है। हत्यारा अंदर
 है। आपको जिसकी तलाश है, वह घर के
 अंदर है।’

‘असंभव!’— चीफ इंस्पेक्टर चीखा—
 ‘ऐसा हो ही नहीं सकता। तुम गलत
 कहते हो।’

वस्तुतः जिस कोठी के सामने वे खड़े
 थे, वहां एक नामी व इज्जतदार डाक्टर की
 कोठी थी। डाक्टर पूरे शहर में प्रतिष्ठित
 था। उस पर शक करना संभव नहीं था।
 चीफ बड़े सकते में पड़ा। लीज ने पुनः
 अपनी बातों पर जोर दिया और जैक के
 भीतर होने की बात कही।

लीज के आत्म विश्वास को देखकर
 चीफ ने जांच-पड़ताल शुरु कर दी। पहले
 डाक्टर से पूछा गया। उसने अपने जैक
 होने की बात से साफ इंकार कर दिया।
 डाक्टर का कहना था कि वह स्वयं जैक

हिंदी डाइजेस्ट



ताज़गी की एक लहर

जियाजी सूटिंग, शर्टिंग और
कॉटन प्रिंट्स आजकल मिलने का
आम कपड़ों से बिल्कुल भिन्न है।
जियाजी यानी सही सूटिंग, शर्टिंग
और कॉटन प्रिंट्स की तलाश में
देर तक भटकने के बाद एक ताज़गी की
लहर! आप अपने आपको कुछ और
ज्यादा पसंद करने लगेंगे।
क्योंकि जियाजी सूटिंग, शर्टिंग
और कॉटन प्रिंट्स विशेष आपके
लिए ही तो बनाए गये हैं। जियाजी
आस पास बिल्लरे सुनेपन में
ताज़गी भर देते हैं।



जियाजी
सूटिंग-शर्टिंग
कॉटन प्रिंट्स

जियाजीराव कॉटन सिल्स लिमिटेड
बिलास नगर, काठियावर (म.प्र.)



कार्यवाहियों से दुखी है।

अब डाक्टर की पत्नी से पूछताछ की गयी। उसने बताया— 'उन्हें कभी-कभी दोरे पड़ते हैं कि वे दूसरों के साथ अतृप्तपूर्वक पेश आने लगते हैं। एक दिन दोरे में अपने बच्चे को ही इस क्रूरतापूर्वक ढंग व निर्दयता से मारने लगे, जैसे वह उनका बच्चा ही न हो।' डाक्टर की पत्नी ने एक अन्य महत्वपूर्ण बात बतायी— 'घर जिस रात वह घर से गायब रहते, उसी रात 'ईस्ट एंड' में हत्याएं होती थीं।' पुलिस को तो जैसे बहुत बड़ा प्रमाण मिल गया। डाक्टर से पुनः पूछा गया। उसने फिर ऐसे जवाब दिये, जैसे उसे कुछ गलत ही न हो। हां, उसकी बातों से एक तथ्य अवश्य ज्ञात हुआ कि उसे कभी-कभी ऐसे दोरे पड़ते थे, जब वह अपने आप को भूल जाता था। चीफ को कुछ सुझाव मिलने की आशा हुई। उसने घर की तलाशी लेने का हुक्म दिया।

जब डाक्टर के कपड़ों की अल्मारी खोली गयी तो उसमें खून से सने उसके

अनेक कपड़े मिले। डाक्टर स्वयं यह सब देखकर भौंचक्का हो रहा था। काफी देर बाद डाक्टर को विश्वास हो गया कि वह ही 'जैक द रिपर' है। उसने स्वेच्छापूर्वक अपने आपको पुलिस के हवाले कर दिया और कहा— 'मेरा खात्मा कर दीजिये। मैं ऐसा नर-पिशाच हूं, यह सब जान लेने के बाद मैं जी नहीं सकता।'।

पुलिस डाक्टर को अपने साथ ले गयी। तुरंत सारे शहर में यह बात आग की तरह फैल गयी कि 'जैक द रिपर' पकड़ा गया, यानी स्त्रियों का हत्यारा, गर्दन चीरने-वाला जैक पकड़ा गया। लोग उसे फांसी देने की मांग करने लगे।

राबर्ट जेम्स लीज को जैक को पकड़वाने में सहायता करने के लिए पुरस्कृत किया गया। बाद में विशेष आयोग ने अपनी बैठक में डाक्टर को पागल घोषित किया और स्त्रियों के उस हत्यारे को पागलखाने भेज दिया।

—१६२शुगर मिल कालोनी,
शामली—२४७७७६, उ. प्र.

(पृष्ठ ७ का शेषांश)

वर्तमान गीता है तो यह शंका होती है कि युद्धभूमि में जहां विशाल सेना लड़ने के लिए तत्पर हो तब वहां ज्ञान, कर्म, धर्म और योग के विषय में इतनी अधिक बातें कैसे हो सकती थी? और क्या रणक्षेत्र में श्रीकृष्ण और अर्जुन के संवाद के प्रत्येक शब्द को अक्षरशः लिपिवद्ध करने

के लिए वहां कोई आशुलिपिक उपस्थित था? इस संबंध में साहित्यिक, पुरातात्विक तथा ऐतिहासिक प्रमाण क्या हैं? मुझे विश्वास है कि लेखक महोदय मेरी शंका का समाधान नवनीत के माध्यम से या अंतरंग रूप से करने का कष्ट करेंगे।

—परीक्षित मंडल 'प्रेमी', अमरपुर

भारत में स्वदेशी कला का आन्दोलन :

समीक्षावाद



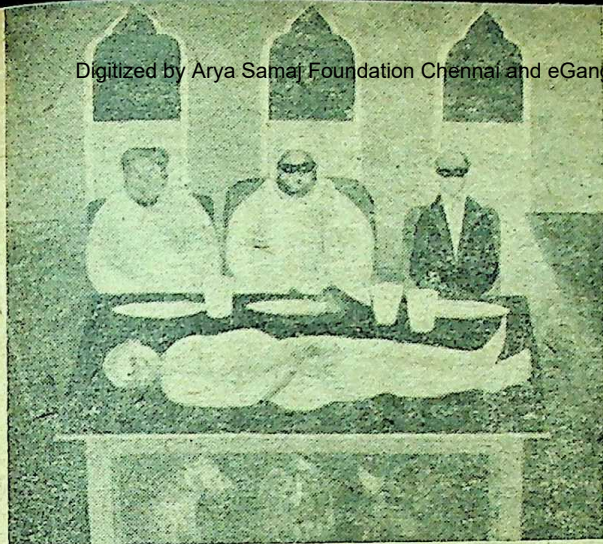
डा. रामचन्द्र शुक्ल

उत्तर प्रदेश के चित्रकारों के एक वर्ग ने दिल्ली में समीक्षावाद के नाम से एक चित्र-प्रदर्शनी का आयोजन 'आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्रैफ्ट सोसाइटी' की गैलरी में किया था। वैसे तो दिल्ली, बंबई, कलकत्ता, ऐसी महानगरियों में आधुनिक कला की अनेक प्रदर्शनियां होती रहती हैं, किंतु अब तक शायद ही कभी भारतीय कलाकारों के किसी वर्ग ने मौलिक चित्रन के आधार पर भारतीय आधुनिक कला के किसी नये आंदोलन की घोषणा की हो, जैसा समीक्षावादी चित्रकारों ने किया। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इन कलाकारों ने पूरी तरह पाश्चात्य आधुनिक कला को नकार दिया है और उससे अलग हटकर नयी तथा मौलिक भारतीय आधुनिक कला प्रस्तुत करने की घोषणा की है। जहां एक ओर यह देखा गया है कि भारतीय कलाकार पाश्चात्य आधुनिक कला शैलियों से दिनों दिन अतिशय प्रभावित होते चले गये हैं, वहीं इन कलाकारों ने पाश्चात्य कला से अलग हटकर नव-

सृजन करने की घोषणा की है। इसमें ही नहीं ये मौलिक भारतीय आधुनिक कला आंदोलन के आरंभ की भी घोषणा करते हैं और उसे 'समीक्षावाद' कहकर संबोधित करते हैं।

इन कलाकारों ने प्रचलित पाश्चात्य आधुनिक कला शैलियों के रास्ते वाहर हटकर कला-कृतियां निर्मित करने का प्रयास किया है, क्योंकि न तो इन चित्र अमूर्तवादी हैं, न घनवादी, न अतिथार्थवादी जैसा कि अन्य भारतीय आधुनिक कलाकारों की कृतियों में देखा गया है। वैसे कई भारतीय आधुनिक कलाकारों ने ऐसी आधुनिक भारतीय कला का निर्माण करने की अवश्य कोशिश की है कि उनके चित्र भारतीय लगे और भारतीय कलाकार के। एस. पनीकर तथा आर. संतोष आदि ने। किंतु इन कलाकारों ने कला की कोई मौलिक विचारधारा प्रस्तुत नहीं की। चित्रों में भारतीय लाना एक बात है, किंतु आधुनिक कला के क्षेत्र में भारतीय आधुनिक कला मौलिक विचारधारा के आधार पर नहीं

नवनीत



‘अंतिम भोज’ : चित्रकार : रामचन्द्र शुक्ल

प्रस्तुत करना दूसरी बात। जामिनी, श्रीनिवासुलु आदि कतिपय भारतीय कलाकारों ने लोक-कला के सहारे नयी भारतीय कला प्रस्तुत करने की कोशिश की थी पर उसके पीछे कोई आधुनिक विचारधारा नहीं थी।

आधुनिक कला वही हो सकती है जो वर्तमान जीवन, समाज, विचारधारा या समस्याओं से जुड़ी हुई हो। कला का अर्थ भारतीय बनाने के लिए कई एक कलाकारों ने पाश्चात्य आधुनिक शैली के चित्रों में कुछ भारतीय प्रतीकों को जोड़कर प्रस्तुत कर कला का भारतीयकरण प्रस्तुत करने का प्रयास किया। यह प्रयास प्रतीकों का अर्थ समझ-बूझकर किसी विचारधारा के आधार पर नहीं किया गया बल्कि भारतीय लगने के लिए किया गया

और इनका वर्तमान जीवन तथा समाज से कोई संबंध नहीं था। समीक्षावादी कलाकारों ने भारतीयकरण का प्रयास नहीं किया है, बल्कि भारत की वर्तमान समस्याओं से जुड़कर, मौलिक चिंतन के आधार पर अपनी कला को समाजिक रूप प्रदान करने का एक प्रयास किया है। उन्होंने पाश्चात्य आधुनिक कला की अनुवृत्तता को तिलांजलि दे दी है और ऐसी कलाकृतियाँ निर्मित करने का प्रयास किया है, जो भारतीय जनमानस को सरलता से ग्राह्य हो सके, उन्हें प्रेरित तथा प्रभावित कर सके। वे चित्रों में आकार संयोजन अथवा रंग संयोजन को लक्ष्य नहीं समझते, बल्कि सामाजिक तथ्यों को महत्व देने का ही प्रयास करते हैं। वे पाश्चात्य आकारवादी कला को त्यागकर विचार-

हिंदी डाइजेस्ट

वादी, विषय-वस्तु प्रधान चित्रों की रचना करना चाहते हैं। वे कला को मात्र रंगों, आकारों, रेखाओं अथवा टेक्सचर का सूक्ष्म संयोजन नहीं मानते, बल्कि सामाजिक विचारों तथा भावनाओं का वाहक मानते हैं।

यह कदम वर्तमान आधुनिक कला के संदर्भ में एक क्रांतिकारी कदम है और भारतीय सामाजिक परिस्थितियों के अनुकूल है, क्योंकि पाश्चात्य आधारों पर निर्मित भारतीय कला-कृतियां भारतीय जनमानस को ज़रा भी प्रभावित नहीं कर सकी हैं। ऐसी कलाकृतियां बहुत कुछ कलाबाज़ी जैसी बनकर रह गयी हैं। समीक्षावादी कलाकारों ने खुलकर इसका विरोध किया है।

इन कलाकारों ने समीक्षावाद को एक स्वदेशी कला आंदोलन घोषित किया है। उनका विचार इस तरह की कला का देश भर में प्रचार करना है। वे इन्हें नगरों में ही नहीं, गांवों में भी प्रदर्शित करना चाहते हैं। वे ऐसी आधुनिक कला का निर्माण करने का प्रयास कर रहे हैं जो भारतीय जन-जीवन में व्याप्त हो सके और उनके लिए सार्थक हो। इसी-लिये वे पाश्चात्य आधुनिक कला के अनबूझ आकारवादी तर्ज को छोड़कर लोकवादी शैली निर्मित करने का प्रयास कर रहे हैं।

समीक्षावादी कलाकार समीक्षा को ही कला मानते हैं। वे न तो यथार्थवादी नवनीत

हैं न आदर्शवादी और नहीं कलावादी जो 'कला कला के लिए है' के सिद्धांत में विश्वास रखते हों। वे परंपरावादी को नहीं हैं यद्यपि वे भारतीय जीवन, समाज तथा संस्कृति में पूरी आस्था रखते हैं। किंतु वे प्राचीन कला के अंधे अनुकरण के भी विरोधी हैं। इसी प्रकार वे पाश्चात्य आधुनिक कला के अंधानुकरण के भी कट्टर विरोधी हैं। वे किसी भी प्रकार के अनुकरण को प्रगति तथा विकास का विरोधी मानते हैं। वे वर्तमान में विश्वास करते हैं और अपनी कला द्वारा एक स्वस्थ तथा सार्थक भविष्य का निर्माण करना चाहते हैं। वे वर्तमान भारत की आशा, आकांक्षाओं तथा समस्याओं के अनुरूप अपनी नयी कला प्रस्तुत करना चाहते हैं। वे उधार लिये हुए अथवा आरोपित कला-स्वरूपों का विरोध करते हैं। वे चाहते हैं भारत का वर्तमान कलाकार भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप नयी कला का निर्माण करे और इस आधार पर भारतीय कला को विकसित करने का प्रयास करे। समीक्षकों ने कलाकारों ने बहुत कुछ इन्हीं आधारों पर अपनी कलाकृतियां निर्मित की हैं।

उनकी कला का मुख्य ध्येय समाज की ज्वलंत समस्याओं को दृष्टि में रखकर समाज में व्याप्त प्रचलित कुरीतियों, वैईमानियों, दुराचारों, भेदभाव, भेतीजावाद, जातिवाद, संप्रदायवाद, लालफीताशाही, चोरबाजारी, शोषण



राजनैतिक यथार्थ : चित्र : रामचन्द्र शुक्ल

खड़ी, तस्करी, जमाखोरी, नौकरशाही, खबीरावाजी, राजनैतिक गुटवाजी तथा गोबपेंच, तथा अनेक अन्य प्रकार की बुदगर्जियों और गलत तौर-तरीकों का विरोध करना तथा अपने चित्रों के द्वारा उनके खिलाफ साधारण जन-मानस को संतुष्ट तथा संघर्षशील बनाना। ये कलाकार सौंदर्य को महत्व नहीं देना चाहते, बल्कि यथार्थ अथवा सत्य को प्रकट करना चाहते हैं। सत्य अक्सर दुर्बल होता है, पर समाज की प्रगति के लिए नितांत आवश्यक होता है। वास्तविक समीक्षा ही वास्तविक सत्य अथवा यथार्थ है, और उसे ही इन कलाकारों ने कला का उद्देश्य माना है। वे समाज में प्रचलित प्रतीकों के द्वारा व्यंग्यात्मक शैली में समाज की आवाज मुखरित

करने का प्रयास करते हैं।

इन चित्रकारों ने इसकी भी घोषणा की है कि वे तकनीक को द्वितीय स्थान देते हैं और कथ्य को प्रथम। यह बात भी पाश्चात्य आधुनिक कला से मेल नहीं खाती, जो कथ्य से ज्यादा महत्व तकनीक और आकार-निरूपण को देते हैं। यही कारण है कि अधिकांश पाश्चात्य आधुनिक कला मात्र आकारों तथा रंगों का संयोजन बनकर रह गयी है और सजावट से अधिक उसका कोई उपयोग नहीं दीखता। समीक्षावादी कलाकारों ने तकनीक को मात्र साधन माना है, अपनी बात को शक्तिशाली ढंग से कहने के लिए। वे सीधी सादी तथा पैनी शैली में प्रतीकवादी ढंग से अपने विचार तथा भाव प्रस्तुत करने (शेषांश पृष्ठ ३१ पर)

‘बच्चन’ निकट से

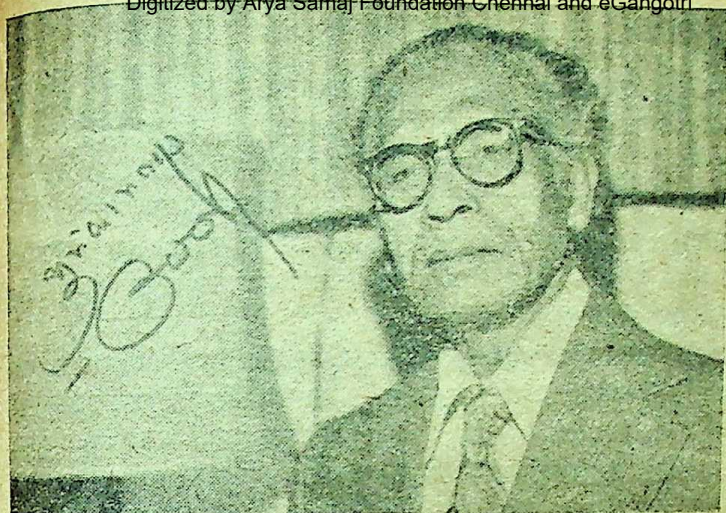


डा. देशराज पाण्डेय

कविवर डॉ. हरिवंश राय ‘बच्चन’ हिन्दी के गिने-चुने कवियों के बीच अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। किंतु कवि होने के साथ-साथ वे एक प्रौढ़ शैलीकार भी हैं। आत्मकथाकार के रूप में तो वे बेजोड़ हैं। उनकी आत्मकथा, जो तीन भागों में है ‘क्या भूलूं, क्या याद करूं’, ‘नीड़ का निर्माण फिर फिर’ और ‘बसेरे से दूर’ को विद्वानों ने प्रसिद्ध फेंच दार्शनिक रूसो की आत्मकथा के समकक्ष ठहराया है। परंतु कवि पहले और लेखक बाद में होने के कारण बच्चनजी अधिक प्रसिद्ध कवि के रूप में ही हैं। वास्तव में कवि के रूप में जितना यश उन्हें मिला है उतना यश हिंदी के बहुत कम आधुनिक कवियों को मिला होगा। कवि सम्मेलनों के तो वे दशाब्दियों तक एकछत्र सम्राट रहे हैं। कुछ स्थूल दृष्टि वाले आदर्शवादी आलोचकों ने, जिन्होंने उनकी ‘मधुशाला’ के कारण उनको सही रूप में समझने में भारी भूल की है, भले ही उनकी उपेक्षा की हो, किंतु अधिकांश आलोचकों ने उन्हें हिंदी के प्रथम पंक्ति के कवियों में रखा है।

वास्तव में जितने अधिक पाठक और नवनीत

श्रोता बच्चनजी की कविता के हैं, उनके शायद आधुनिक हिंदी कवियों में किसी के भी नहीं हैं। यह उनकी श्रेष्ठता का सब से बड़ा प्रमाण है। सचमुच बच्चनजी एक क्रांतिकारी एवं युग प्रवर्तक कवि हैं। उनकी प्रारंभिक और बाद की, दोनों रचनाएं बड़े महत्व की हैं। अपने प्रारंभिक रचनाओं में बच्चनजी हमारे समाने एक क्रांतिकारी और युग प्रवर्तक कवि के रूप में तथा अपनी बाद की रचनाओं में एक प्रकृतिवादी (जिस अर्थ में शेक्सपियर को ‘प्रकृतिवादी’ कहा जाता है) कवि के रूप में आते हैं। डॉ. नगेंद्र और आचार्य नंददुलारे वाजपेयी प्रभृति मूर्धन्य आलोचकों ने बच्चनजी की गणना हिंदी के श्रेष्ठतम कवियों में की है। आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने तो नयी कविता की चर्चा करते हुए यहां तक लिख जाता है कि ‘यह तो कहना ही होगा कि नवीन काव्य-शैली का प्रतिनिधि कवि अनेक क्षेत्र में नहीं आया। नवीन संस्कारों को लेकर वह आयेगा। किंतु वह पंत के ‘प्रगतिवादी’ काव्य अथवा तिराला के ‘कुकुरमुत्ता’ की हिंदुस्तानी की बच्चन के चित्रण और भाषा-शैली के



महान कवि डा. हरिवंशराय वच्चन

अधिक प्रेरणा ग्रहण करेगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वच्चनजी हिंदी के महान कवियों में से हैं। परंतु उनके अंदर बैठे कवि से भी बड़ा है उनका व्यक्तित्व। वास्तव में वच्चनजी का व्यक्तित्व बहुत ही महान है। उनकी कविता की भांति उनका व्यक्तित्व भी चंचकीय है। जो भी उनके संपर्क आता है, वह उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। और इसका कारण है उनका निश्छल, निष्कपट और सहज नेहयुक्त आत्मीय व्यवहार। पहली ही पंक्ति में वे चिर परिचित और आत्मीय प्रतीत होते हैं। वच्चनजी जैसा अकृत्रिम तथा आडंबरहीन व्यक्ति मुश्किल से मिलेगा। वे स्वाभिमानी अवश्य हैं किंतु महानता से कोसों दूर हैं। वे अत्यंत उदार और मृदु हैं। देश-विदेश तथा अनेक

उच्च पदों में रहने के बावजूद उनमें कृत्रिमता और आडंबर छू नहीं गये। और कृत्रिमता तथा आडंबर की भांति वे दोहरेपन से भी बहुत दूर हैं। वास्तव में वच्चनजी दोहरेपन जानते ही नहीं। वे वही कहते हैं जो उनके मन में होता है और वही करते हैं जो वे कहते हैं। यदि कथनी और करनी की एकरूपता महानता की सबसे बड़ी कसौटी है तो वच्चनजी इस कसौटी पर पूर्ण रूप से खरे उतरते हैं। उनका जीवन और साहित्य दोनों दोहरेपन से मुक्त हैं। साहित्य सिद्धांत उन्होंने अपने जीने के ढंग से प्राप्त किया है। वे उन गिने-चुने साहित्य-कारों में हैं जिन्होंने अपना जिया हुआ ही संसार को दिया है। कहीं भी दोहरापन नहीं है। उनके निजी जीवन में जो रूप, रस और गंध है, वही उनके संपूर्ण साहित्य

हिंदी डाइजैस्ट

में है।

वच्चनजी बड़े सुलझे विचारों वाले व्यक्ति हैं। वे राजनीतिक और साहित्यिक दोनों प्रकार के गुटों तथा वादों से सदैव दूर रहते हैं। राष्ट्र के शीर्षस्थ कर्णधारों के निकटतम संपर्क में रहने के बावजूद राजनीति का इंद्रजाल उन्हें मोहित नहीं कर पाया। वच्चनजी संसद सदस्य मनोनीत हुए थे, किंतु वहां वे वैसे ही रहे जैसे जल में कमल का पत्ता।

राजनीति और सामाजिक विचारों की भांति वच्चनजी के दार्शनिक विचार भी बड़े स्पष्ट और सुलझे हुए हैं। वे धरती के प्राणी हैं, धरती में जीते हैं, धरती के जीवन का चिंतन करते हैं और धरती के जीवन के ही गीत गाते हैं। किंतु उनकी दृष्टि धरती से अन्यत्र भी रही है। आध्यात्मिकता के क्षेत्र में वे उस मीनार के सदृश हैं जिसका आधार तो धरती में रहता है किंतु दृष्टि आकाश की ओर रहती है।

वच्चनजी का जीवन अत्यंत नियमित और संयत है। अव्यवस्था नाम की चीज उनके जीवन में है ही नहीं। आज ७५ वर्ष की वय में भी उनका प्रत्येक कार्य बड़ी तत्परता, कलात्मकता और सुचारुता से संपादित होता है। साहित्य की भांति अपने व्यावहारिक जीवन में भी वच्चन जी सत्यं, शिवं और सुंदरम् के उपासक हैं।

कवि स्वभाव से ही भावुक होते हैं।

नवनीत

वच्चनजी भी कवि हैं और कवि भी वैसे नहीं हैं बल्कि हिंदी के सबसे बड़े रूमानी कवि। किंतु उनके व्यावहारिक जीवन में भावुकता छू नहीं गयी, यह वही आश्चर्य की बात है। वच्चनजी आत्मनियंत्रित और साहसी व्यक्ति मुझ से ही मिलेगा। जीवन में बड़े से बड़े तूफानों से घिर जाने पर भी वच्चनजी अपना मानसिक संतुलन और साहस खोते, यह उनकी बहुत बड़ी विशेषता है। वास्तव में साहित्य-देवता की साधन करते-करते वे स्थितप्रज्ञ हो चुके हैं।

परंतु इन सभी से बढ़कर वच्चनजी की विशेषता है उनकी महान संवेदनशीलता। वास्तव में वच्चनजी जैसा संवेदनशील व्यक्ति मैंने नहीं देखा। कहा जाता है कि महाप्राण 'निराला' लोगों को दुख देखकर विह्वल हो उठते थे, परंतु वच्चनजी सुनकर विह्वल हो जाते हैं। यह उनकी संवेदनशीलता का बहुत बड़ा प्रमाण है। नीचे की दो घटनाएं इस महान संवेदनशीलता पर पर्याप्त रूप से प्रकाश डालती हैं।

पहली घटना अप्रैल सन १९७१ की है। मैं वर्षों से बीमार चल रहा था। वच्चनजी के पास बंबई भेजे गये पत्रों में (उस समय तक वच्चनजी दिल्ली छोड़कर अपने बेटे अमिताभ के पास रहने लगे थे) प्रसंगवश मेरी बीमारी का उल्लेख हो जाता था। मेरी बीमारी सुनकर वच्चनजी का संवेदन

हृदय करुणा से भर जाता था ।
 करी के महीने में एक दिन अचानक मेरे
 बच्चनजी का पत्र आया कि मार्च
 अंतिम अथवा अप्रैल के प्रथम सप्ताह
 तुम्हारी मांजी (पारिवारिक संबंध
 के कारण श्रीमती तेजी बच्चन को हम
 भी मांजी कह कर पुकारते हैं)
 में तुमको देखने आयेंगे । किंतु पत्र
 मुझे विश्वास न हुआ कि श्रीमती
 बच्चन जैसी महान महिला और
 बच्चनजी जैसी महान विभूति बंबई
 करवी जैसी असुविधाजनक जगह
 मुझे देखने आ सकती हैं । किंतु ७
 अप्रैल के मध्याह्न में उस समय मेरे
 आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब श्रीमती
 बच्चन अपने भाई श्री जगदीश
 बच्चन और भाभी श्रीमती इंद्रा राजन
 साथ मुझको देखने मेरे घर आ पहुंचीं ।

बच्चनजी कुछ विशेष कारणों से नहीं
 आ पाये थे ।

दूसरी घटना भी सन १९७९ की है,
 किंतु महीना नवंबर का था । बच्चनजी
 एक कवि सम्मेलन में भाग लेने के लिए
 बांदा पधारे थे और मुझे एक दिन सूचना
 मिली कि वे मुझे देखने करवी आ
 रहे हैं । पुनः मेरे आश्चर्य का ठिकाना न
 रहा । परंतु उस समय तक मैं कुछ स्वस्थ
 हो चुका था, अतः करवी जैसी जगह में
 बच्चनजी की असुविधाओं का ख्याल
 करके मैं खुद ही उनके दर्शनार्थ बांदा
 चला गया था ।

बच्चनजी शतायु हों तथा अविच्छिन्न
 रूप में अपनी लेखनी द्वारा मां भारती का
 भंडार भरते रहें, यही हार्दिक कामना है ।

—विभा कुटीर, रेलवे माल गोदाम रोड,
 करवी, बांदा (उ. प्र.)



सपनों में पूर्वाभास

अक्सर ऐसे स्वप्नों के बारे में भी सुना गया है जिनके कारण लोगों की
 जान बची है । एक परिवार अगली संध्या पास के एक शहर में जाने
 वाला था, लेकिन रात को परिवार के एक सदस्य को स्वप्न आया कि वह
 ट्रेन दुर्घटना का शिकार हो गया । फलस्वरूप परिवार के सभी सदस्यों ने
 प्रस्तावित ट्रेन यात्रा स्थगित कर दी । बाद में उन लोगों को यह जानकर
 बड़ा आश्चर्य हुआ कि जिस ट्रेन से वे सभी जाने वाले थे वह एक
 दुर्घटना में फंसकर चकनाचूर हो गयी और अनेक को गंभीर चोटें आयीं ।

सपनों में केवल दुर्घटनाओं का पूर्वाभास ही होता हो ऐसा नहीं । अनेक
 व्यक्तियों को सपनों के माध्यम से ऐसे पूर्वाभास भी हुए हैं जिनसे उन्हें
 बाद में बड़ा लाभ हुआ । एक डच व्यक्ति ने तो लाटरी में प्रथम पुरस्कार
 प्राप्त करने वाले टिकट की पूर्ण संख्या स्वप्न में पहले ही देख ली थी ।



आदिवासियों में दुर्गापूजा



डा. अर्जुनदास केसरी

नवरात्र का समय । दुर्गाष्टमी का दिन । मैं परासी गांव में जा डटा । परासी मिर्जापुर जिले के दुद्धी तहसील का वह गांव है जहां पनिका, वैसवार, खुबार आदि आदिवासी जातियां न जाने कब से रहती हैं । रामसुमेर वहां के अच्छे खाते-कमाते व्यक्ति हैं जिनके द्वार पर पेड़ के नीचे पड़ी एक टूटी खाट पर हम बैठ जाते हैं । धीरे-धीरे गांव के लोग भी जुटने लगते हैं । तब तक गांव के एक छोर से आवाज आने लगती है—

‘माई सारधा की जै । सुरसती माई की जै । फूलमती महरानी की जै । वनसती मइया की जै ।’

आवाज धीरे-धीरे तेज होती जाती है । ढोल-मजीरा के संग गीत की ये पंक्तियां भी गायी जाती हैं—

वन केदली से सजइ हंथिनियां
अल्हा भयल असवार हो माऽऽऽइ ।

एक पर लादै झण्डा—
एक पर लादै निसान हो माऽऽऽइ ।

देखते-देखते एक जुलूस सामने आ जाता है । आगे-आगे गांव का पुजारी बैगा—एकदम काला-कलूटा भूत की तरह । कमर में एक बिहटी, हाथ में पूजा का सामान, और कुछ नहीं । उसके पीछे

गांव का गोडइत लोहे की सीकड़ के वे गुरदह कहते हैं, भांजता हुआ चला रहा है । उसके भांजने से उसकी पीठ रक्त स्रवित हो रहा है । उसके पीछे आदमी और है जिसने तेज धारका नुकीली छूड़ी अपनी जीभ में गोद ली है । रक्त भी बूंद-बूंद चू रहा है । पूछने पर लोगों ने बताया कि यह बाल है । सच्चा देवी भक्त ही इसे जीभ में गोद सकता है । देवी इससे प्रसन्न होती है । और देवी को प्रसन्न करने का मनचाहा वरदान भक्तों को देता है । एक प्रकार से अपनी बलि चढ़ाकर देवी प्रसन्न करना कहा जा सकता है ।

उसके पीछे कुमारी लड़कियां अपने-अपने सिर पर मिट्टी का बेल रचे हुए हैं । कलश में जई (जो पौध) है । इसीलिए कुछ लोग इसे ‘जई पूजा’ भी कहते हैं । कुछ लोगों का कहना है कि वह कलश नहीं देवी का खपरूत है । उसमें आग सुलग रही है । कुछ चुनरी, नारियल, धूप-दीप और अक्षत भी लिये हुए हैं । दो-तीन मोरपंख हाथ में लेकर नाच रहे हैं । लड़के-बच्चे पीछे-पीछे चल रहे हैं । लोग भाव विभोर होकर नाच रहे हैं ।

नवनीत

जुलूस आगे बढ़ता है और उनके संग-
 मैं भी आगे बढ़ता हूँ। आगे एक
 पड़ता है। मंदिर में चारों ओर
 धूमकर लोग नाचने-गाने लगते हैं।
 शायरी निकाल कर गीत की पंक्तियाँ
 करने लगता हूँ कि तभी रामधनी
 ला खिलाने लगता है। 'अरे ई कहां
 शायल बा रे? देवी क अपमान करत
 रे। हाको! हाको!! हाको!!'
 उनकी लाल-लाल आंखें देखकर मैं
 जाता हूँ। लोग मुझे अलग कर देते
 कुछ लोग रामधनी को समझाने लगते
 मैं हाथ जोड़कर क्षमा याचना
 लेता हूँ और गीत लिखने का उद्देश्य
 कर देता हूँ। थोड़ी देर में सब
 हो जाता है, पर वाद में लोग मुझसे
 हो लगते हैं—'जाइये आप वच गये,
 हो तो ...।' मैं समझ जाता हूँ कि
 होटना या भूत का शिकार होना पड़ता।
 हो अप्रसन्न हो जाती। खैर, मेरे ऊपर
 हो का कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ।
 मैंने जुलूस का साथ नहीं छोड़ा और
 होके संग-संग अंतपरा गांव तक गया।
 हो में जिन-जिन घरों में या देवस्थानों
 हो सब गये मैं भी गया। हर घर के
 हो मान में पूजा की जाती थी। पुजारी को
 हो के बदले में कुछ अनाज या पैसा मिलता
 हो। वीसों घर जाने के बाद लगभग पचास
 हो नकद तथा बीस-पच्चीस किलो अनाज
 हो ला होगा। एक वजे के बाद जुलूस
 हो कार-वितर हो गया और सभी लोग



अपने-अपने घर चले गये।

रात के नौ बजे फिर एक देवस्थान
 पर सब लोग एकत्र होने लगे। वहां भी
 होम-शाकला किया गया। स्त्रियों ने
 देवी के गीत गाये—

नीचे से उतरय कुतरइया

एंगुर पारल बा।

सेज ओरी बइठई राजा दसरय
 पंगिया संवारत भोर परि गयल
 गड़ि गइल अंगुरिया में फांस।

गीत की पंक्तियों के साथ बैगा पर
 देवी आ गयीं और उसका सिर हिलने
 लगा। फिर उसने आंखें बंद कर लीं।
 देखते-देखते हबुवाने-ओझाई करने लगा।
 लोग हाथ जोड़कर अपने-अपने दुख-ददं
 सुनाने लगे। सबको भभूत दी और कहा—
 'गांव का संकट दूर हो जायेगा, लेकिन देवी
 को वकरा चढ़ाना पड़ेगा।' सबने एक

हिंदी डाइजेस्ट

स्वर से बकरा चढ़ाना स्वीकार कर लिया तो देवी बैगा के सिर से उतर गयीं।

दूसरे दिन नौमी थी। सब लोग अपने-अपने घर से पूजा की सामग्री लेकर एक स्थान पर एकत्र हुए। पहले दिन की तरह पुनः जुलूस निकाला गया। घूम-घूमकर देवी की पूजा की गयी। एक स्थान पर बकरे की बलि चढ़ाई गयी जिसका थोड़ा-थोड़ा प्रसाद लोगों को बांटा गया। शेष बैगा अपने घर ले गया। दारू और मांस इस दिन का प्रसाद भी था और भोजन भी।

यहां दुर्गा-पूजा की अलग-अलग विधियां और परंपराएं प्रचलित हैं। मुझे लगा कि आदिवासियों में कुछ अंध-भक्ति भी है।

व भूत-प्रेत, औझाई-देवाई तथा बलि के साथ इस प्रकार जुड़े हैं कि उससे वे मुक्त नहीं हो पा रहे हैं। बैगा उनका बोझ धारण करते हैं और अपनी रोजी-रोटी के लिए उन्हें अंध-विश्वास से मुक्त होने नहीं देने देवी की सत्ता-महत्ता को अस्वीकार करने किया जा सकता, किंतु यह विश्वास आधारहीन प्रतीत होता है कि देवी एक नर जीवहत्या (बलि) से ही प्रसन्न होती हैं। मैं समझता हूं कि सात्विक, अहिंसक पूजा से देवी और जल्दी प्रसन्न हो सकती हैं पर आदिवासियों के बीच से यह धारा दूर कौन करे?

—लोकवार्ता शोध संस्थान, राबर्ट्स पुर
मिरजापुर (उ.प्र.)



लेखकों से निवेदन

नवनीत के लिए आपके उच्चस्तरीय लेख, संस्मरण और कहानियां प्राथमिकता के साथ विशेष अनुरोध यह है कि शिल्प, स्थापत्य, इतिहास, पुरातत्व सम्बन्धी लेख भेजें। तस्वीरें स्पष्ट होना जरूरी है, ताकि ब्लाक अच्छे बन सकें। घुंघली तस्वीरें स्वीकार्य न हो सकेंगी। विचित्र विज्ञान, रोमांचक आख्यान, नव-नवीन खोज सम्बन्धी सचित्र लेख, विविध ललित कलाओं, लोककलाओं पर सचित्र लेख भी वांछनीय हैं। प्राचीन तथा अर्वाचीन ज्ञान-विज्ञान सम्बन्धी लेख भी सचित्र भेजें।

हम आपकी सामग्री की प्रतीक्षा करेंगे। नवनीत का स्तर और अस्तित्व आपका श्रेष्ठ योगदान पर ही निर्भर करता है। अच्छे लेखों तथा रचनाओं पर विशेष मानदेय भी दिया जा सकता है।

—सम्पादक, नवनीत

रामचंद्र 'चंद्रभूषण' की दो फागुनी कविताएं

[१]

लिखिये तो सोना
पढ़िये तो फागुन
सुनिये तो धड़कन
गुनिये तो पाहुन

मचिये पर पियरी
खटिये पर धानी
चूल्हे पर खौला
अदहन का पानी

उड़िये तो हारिल
जुड़िये तो हल्दी
झुकिये तो अंबुआ
रुकिये तो जामुन

नजरों में केसर
गजरों में बेला
जमने को जोरन
रमने को मेला

सजिये तो झालर
बजिये तो झांझर
तलिये तो मछली
मलिये तो साबुन

- पो. सीतामढ़ी कोर्ट, जिला : सीतामढ़ी (बिहार)

[२]

तिलक - छंद विछ गयी
गलीचे - सी फागुनी
सजे गावतकिये
अधविकसे फूलों के
सजे गावतकिये

धारदार मुद्राएं
रेखांकित हो गयीं ।
बढ़ीं गर्मजोशियां
चंपई दुकूलों की
सरकती हवाएं
संदीपित गाथा कहतीं
लहरीले घाटों से
चकमक मस्तूलों की

नाच रही बनजारिन
जिला रोहतक की । फुनगी-फुनगी
पगड़ी बांधे ढोलकिये

एक गुलाबी छुवन
सिरहाने बैठ कर
खोल रही आहिस्ते
पनडब्बी पान की
माथे पर आशीषों के
चुवन भर गयी
रूपायित स्वरलिपियां
ढेंकी के धान की

नयी नामपट्टिका
टांगिये झरोखे पर
आज फिर बधाई का
पत्र उन्हें लिखिये



विश्व के दर्शनों और सिद्धान्तों का एक मूल्यवान दस्तावेज़ी विवेचन



कलकत्ता की सांस्कृतिक संस्था मित्र-
परिषद् का एक महत्त्वपूर्ण योगदान

समाज के सर्वांगीण विकास के साथ-साथ नैतिक मूल्यों को संस्कृति के विशाल धरातल पर प्रतिष्ठित करने के महत् उद्देश्य को लेकर सन १९५८ में मित्र परिषद् की स्थापना हुई। तब से विविध समाजोपयोगी सेवाओं के साथ-साथ प्रति वर्ष नीति और संस्कृति के संबंध में सुरुचिपूर्ण लेख नियमित रूप से अपनी स्मारिका में परिषद् प्रकाशित करता रहा है।

सन १९७६ में संस्था के कार्यकर्ताओं ने एक स्थायी महत्व का प्रकाशन प्रतिवर्ष करने का संकल्प किया। प्रथम पुस्तक 'श्रमण महावीर' (लेखक : आ. मुनि नथमल) का अंग्रेजी अनुवाद (अनुवाद दिनेशचंद्र शर्मा) प्रकाशित किया जिसका देश-विदेश सभी स्थानों में स्वागत हुआ। इसी शृंखला में लोकतंत्र अंक, दिनकर अंक, महाप्रज्ञ अंक, अनुशासन अंक प्रतिवर्ष एक-एक करके प्रकाशित हुए।

सन १९८२ में प्रकाशित हुआ 'वाद और सिद्धांत अंक'।

ज्ञान के निरंतर विकास के साथ-साथ
नवनीत

अनेक वाद और सिद्धांत हमारे सामने उभर कर आये।

वादों में भिन्नता होते हुए भी उनके मूल लक्ष्य एक ही हैं—मानव को सुखी समृद्धि और उन्नति प्रदान करना।

मनुष्य अपनी सीमित बुद्धि से महत् को समझने का प्रयत्न करता है और देश और काल के अनुरूप मानव कल्याण का चिंतन करता है। सीमित मन की चाह नहीं ले पाता फिर भी वह निष्ठा से प्रयत्न करता है। ज्ञान का अंश वह ग्रहण कर पाता है उसे वह रूप में प्रस्तुत करता है। मतिभ्रम कारण अनेक वादों का जन्म होता है इसीलिए 'वादे वादे जायते तत्त्व बोध' मानव हृदय में मानो ज्ञान का वैश्व प्रज्वलित है। उससे उद्भूत विचार आलोक के स्फुलिंग ही 'वाद' और सिद्धांत के रूप में अभिव्यक्त होते हैं : दर्शन, अध्यात्म, विज्ञान एवं मनोविज्ञान, साहित्य एवं कला, राजनीति एवं समाजशास्त्र, धर्म और नीति इत्यादि। सभी वादों का स्रोत एक होने के कारण ये संश्लिष्ट होते

विकास में सहायक हुए हैं। लेकिन
 'वाद' मानवता की सेवा न कर व्यक्ति
 मरुता की परिधि में बंध जाता है तब
 का आलोक तमाच्छादित हो जाता है,
 हो जाता है। 'वाद' विवाद में
 हो जाता है और सारे उज्ज्वल
 अंत दूषित। इसका दुष्परिणाम है
 ईर्ष्या और युद्ध। अतः मांगलिक वाद
 मानव विकास का सही सिद्धांत है।
 मन्मथ और समग्रता की भावना से
 और सिद्धांत अंक' ओत-प्रोत है। सभी
 लेखकों ने इस आदर्श को सामने
 कर अपने सुचिंतित निबंध लिखे हैं।
 प्रभाकर माचवे ने महत्वपूर्ण भूमिका
 कर अंक की गरिमा बढ़ायी है
 नये आयाम इंगित किये हैं जिनके
 पर मित्र परिषद् अपनी प्रकाशन
 ता को और गतिशील बना सके।
 भी आकार विराट के प्रांगण में क्रीड़ा
 हुए—जैसा कि मुखपृष्ठ का चित्र
 करता है—विराट में विलीन हो
 हैं, वैसे ही सभी वाद-विवाद से
 उठकर—मानव उन्नयन के समवाय
 विलीन हो जाते हैं। अध्यात्मवाद एवं
 लोकवाद, शून्यवाद एवं अनेकांतवाद,
 नायकवाद एवं प्रजातंत्रवाद, समाज-
 एवं गांधीवाद, स्वतंत्र अर्थवाद एवं
 वाद, अभिजात्यवाद और रहस्यवाद,
 सिद्धांत और ध्वनि-सिद्धांत, प्रतीकवाद
 विवाद, मूर्त कला एवं अमूर्त कला;
 वाद एवं जुगवाद, अनुभूति एवं

अभिव्यक्ति—सभी द्वैत-अद्वैत में समाहित
 हो जाते हैं। ऐसा लगता है मानो वादों
 के सभी सुरभित प्रसूनों को एक सूत्र में
 पिरोकर संपादक श्री रतनलाल मुराणा ने
 वादेवी को माला अर्पित की है।

देश के प्रसिद्ध विद्वानों एवं उदीयमान
 लेखकों ने सरल एवं बोधगम्य शैली
 में विभिन्न वादों के मूल सिद्धांत एवं उनकी
 सूक्ष्मताओं को अत्यंत संक्षेप में सुधी
 पाठक के समक्ष इस अंक में प्रस्तुत
 किया है। सभी प्रमुख वादों पर निबंध
 एक साथ होने के कारण यह अंक
 संदर्भ ग्रंथ की तरह उपादेय है।

प्रस्तुत हैं कुछ उल्लेखनीय विद्वान
 जिनकी लेखनी से पुस्तक मंडित हुई है :
 डॉ. भदंत आनंद कौसल्यायन, दादा धर्मा-
 धिकारी, युवाचार्य महाप्रज्ञ, डॉ. नगेंद्र,
 डॉ. वाररलिंगे, डॉ. नारायण विष्णु जोशी,
 मन्मथनाथ गुप्त, वियोगी हरि, डॉ.
 निजामुद्दीन, डॉ. इंद्रनाथ मदान, डॉ.
 रमेशकुंतल मेघ, डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी,
 साध्वी कनकप्रभा, श्रीमती कमला रत्नम्,
 डॉ. कृष्ण विहारी मिश्र, श्री वासुदेव
 पोद्दार, श्री छविनाथ मिश्र इत्यादि।

वादों की निर्झरणी सदा प्रवाहित रहेगी।
 इसके निरंतर प्रवाह में ही मानस रूपी
 धरती की शस्य श्यामल हरीतिमा निहित
 है। मित्र परिषद् इस ज्ञानगंगा को सतत
 प्रवहमान रखे यही शुभकामना है।

—जयकिशनदास सादानी

११३ बी, मनोहरदास कटरा; कलकत्ता-७

पुस्तक - समीक्षा



‘कुमारिकाएं’; उपन्यासकार डा. कृष्णा अग्निहोत्री; श्री इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, के-७१, कृष्ण नगर, दिल्ली; पंद्रह रुपये ।

उपन्यासकार श्रीमती कृष्णा अग्निहोत्री की छठवीं पुस्तक उपन्यास के रूप में विगत दिनों ‘कुमारिकाएं’ के नाम से प्रकाशित हुई । समाज के भ्रष्टाचार, अनाचार को बेखौफ उजागर करनेवाली कृष्णाजी का ‘कुमारिकाएं’ भी समाज के सामने अनेकों प्रश्न लिये प्रस्तुत हुआ है ।

समीक्षित उपन्यास के साथ यह स्पष्ट कर देना भी प्रासंगिक होगा कि कृष्णाजी ने अपने सभी उपन्यासों में, कहानियों में उपेक्षित, असहाय, अधीनस्थों की जिंदगी को विश्लेषित किया है ।

‘बौनी परछाईयां’, तथा ‘वात एक औरत की’ में कृष्णाजी ने मध्यमवर्गीय जिंदगी की विषमताओं में जीती औरत/पत्नी, उस पर होने वाले अत्याचारों से सहज संवेदन कराया था । तीसरे उपन्यास ‘टपरेवाले’ में बसोड़, बलई, मेहतर आदि अभिशप्तों की जीवन-कथा को पूरी-पूरी कलात्मकता, ईमानदारी, सहानुभूति के साथ प्रस्तुत किया है ।

उपन्यास ‘कुमारिकाएं’ कुंआरे मन की व्यथा तथा उसके आसपास घूमती हवाओं का दो टूक वयान है । प्रेमचंद की कहानियों के बाद कृष्णा अग्निहोत्री के उपन्यासों में

नवनीत

ही उपेक्षितों, असहायों, अधीनस्थों की वास्तविक जिंदगी अनुभूति सहज ही की जा सकती है ।

आज के प्रगतिशील कहलाने वाले समाज में भी लड़के-लड़की का अंतर बना है । वही सदियों पुरानी बात, जैसे भी गुंजने लगती है ।

इसीलिए लड़की से प्रत्येक समाज की अपेक्षा की जाती है । पत्नी सुशील हो, पढ़ी-लिखी भी हो और के साथ हर स्थिति में एडजस्ट कर हो । इसके अतिरिक्त अपने साथ जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी ला सकती हो । झूठी मर्यादाओं, अपेक्षाओं से मुलह न कर यदि कुंआरी रहना चाहती है तो अधिकांश तत्व उसे तोड़ने उसके शील की तो सुरक्षा होती नहीं मनगढ़ंत परिभाषाएं और विवाद हो जाते हैं ।

समाजिक तानाशाही के बीच कुंआरी लड़की संन्यासी नहीं होती । अपनी शारीरिक व मानसिक आवश्यकताओं हैं, जिन्हें स्वस्थ ढंग से पूरा करती की उसकी लड़ाई है । कहीं और कहीं असफलता, जिंदगी के विरोधाभास में जीती भारतीय की समस्यात्मक जिंदगी को

अपने इस नवीन उपन्यास में सशक्त प्रखर एवं विद्रोही होती जा रही है।

प्रदान किया है।

कृष्णाजी आदतन समाज के स्वनाम-यथाकथित ठेकेदारों के मुंह पर हर तमाचा जड़ती आयी हैं और इसी कारण कई बार समीक्षक उनकी व्यक्तिगत चलोचन पर उतर आये हैं। पर निश्चित उनके उपन्यास व कहानियाँ भारतीय समाज के लिए मील के पथर सिद्ध हुए हैं। धर्मशील, नैतिकता की परिभाषाएं

जना सरल हैं, उनका सच्चाई के साथ बर्ताव करना कठिन है। यदि वर्तमान समाज में भी शील की परिभाषा परंपरावादी है और वही व्यक्तित्व की मजबूती है तो उसकी सुरक्षा का दायित्व समाज क्यों नहीं ओढ़ सकता।

यदि परिवार, इतने सक्षम नहीं कि वे अपनी वेटियों को सुरक्षा दे सकें तो उन्हें समाज का अधिकार है कि वे परिस्थितियों से निपटती हुई इन अविवाहित लड़कियों का आश्रय बना उन्हें कुंठित करें। समय, परिस्थितियों के साथ अब धर्म, शील और नैतिकता की परंपरावादी मान्यताएं खिली और बेबुनियाद होती जा रही हैं।

जहाँ बेबुनियाद तथ्यों के लिए व्यक्तित्व का नाश होना घोटना अन्याय है। यदि विवाह कठोर जिंदगी है तो प्रत्येक सामान्य आम लड़की को यह जिंदगी जीने का सुभीता प्रदान करना सामाजिक कर्तव्य होना चाहिए।

इन असामाजिक तत्वों से छटपटाती समाज की कुमारिकाओं की आवाज अब

प्रखर एवं विद्रोही होती जा रही है। कृष्णाजी ने ऐसी ही स्थितियों के लिए संघर्ष का नया मार्ग दिया है, जिससे जिंदगी को झूठी मान्यताओं, विचार-धाराओं के लिए त्याग्य न समझा जाये। कुंवारी नयी पीढ़ी के अपने प्रश्न हैं और समस्याएं हैं जिन्हें इस उपन्यास में पूजा, गुड़ी, वंदना आदि के विभिन्न रूपों में प्रस्तुत किया गया है।

—रामकिशन चौरसिया

०००

‘एक टुकड़ा धूप’; लेखक : जहीर कुरेशी; श्री इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन; के-७१, कृष्ण नगर, दिल्ली; बीस रुपये।

जहीर कुरेशी की ४० गज़लों और ३० नवगीतों का यह संग्रह है। गज़ल लिखने की परंपरा नयी नहीं है, पर जिस तर्ज में ये गज़लें पेश की गयी हैं, सचमुच मन को छूती हैं। उसी प्रकार ‘नवगीत’ भी गीत की एक विशेष प्रकार की शैली है। घिसे-पिटे शब्दों और पुराने पड़ते जा रहे जीवन-मूल्यों के स्थान पर नवगीत नये शब्द-बोध और नये जीवन-मूल्यों की एक ललक भरी तलाश है। व्यवहार के खोखलेपन की बात को जहीर अपनी एक गज़ल में बड़े मन से कह जाते हैं।

‘बहुत बौने लगे हैं व्यवहार सड़कों पर पुस्तकों में तो कुतुबमीनार हैं रिश्ते।’

‘एक टुकड़ा धूप’ नाम की गज़ल में आज की वैज्ञानिक उपलब्धियों की ओर एक

हिंदी डाइजेस्ट

इशारा है, पर उससे आदमी कभी-कभी कितनी घुटन और खालीपन भी महसूस करता है :

‘जिंदगी को लिफ्ट ने उस शून्य तक पहुंचा दिया,

जिस जगह हर आदमी की सांस बोझिल हो गयी।’

‘नवगीत’ के प्रारंभ में ही कवि उसकी कतिपय विशेषताओं की ओर संकेत करता है :

‘गीत ने अपना पुराना वेश बदला है; क्योंकि-जीवन का नया परिवेश बदला है।’

गीत के क्षेत्र में नवगीत वास्तव में एक महत्तर उपलब्धि है, जहीर के नवगीतों में लोकचेतनान्विति और सौंदर्य-बोध गरिमा लिये हुए मिलते हैं। कला की अनेक बारीकियों के साथ रागात्मक संबंध वैयक्तिक चेतना के धरातल को गहराई से स्पर्श करते हैं।

चिंतन वाले गीत में सत्यानुभूति की पहिचान वे इस प्रकार कराते हैं :

‘अवसर हाथ लगे

तो सारे चिन्तन बदल गये।’

मूल्य-संक्रमण की स्थिति में आतंकीत और असंतुलित जीवन का सीधी और सहज भाषा में एक सटीक चित्रण यहां प्रस्तुत है—

‘जितने सभ्य हुए

उतना असहज हुआ जीवन

पास बैठ कर भी

कब किसने दिल की बात कही

पागल नदी

करोड़ों निर्देशों के साथ बही
काया के संग परछाईं-सी
साथ रही उलझन !’

इस उभरती हुई प्रतिभा से हिंदी नवगीत के क्षेत्र में और भी बेहतर आशाएं हैं। उम्मीद है कि हिंदी जगत में ‘एक टुकड़ा धूप’ का तहे दिल से स्वागत होगा।

—रामलाल शुक्ल

०००

रामलीला नाटक; प्रो. चन्द्रशेखर पांडेय; विशाल रतन प्रकाशन, खतराना टोला, इटावा (उ. प्र.); पृष्ठ ४१८; साठ रुपये।

प्रो. पांडेय हिंदी साहित्य के सुप्रसिद्ध चित रससिद्ध लेखक और बहुमुखी प्रतिभा संपन्न कलाकार हैं। कहानी, गीत, नाटक, हास्य-व्यंग्य, आलोचना आदि साहित्य के विविध अंगों पर अनेकानेक रचनाओं द्वारा उन्होंने हिंदी साहित्य के भंडार की वृद्धि की है। लेखन पांडेयों का व्यसन है और नाटकीयता उनके रचनाओं का सामान्य गुण।

प्रस्तुत ग्रंथ ‘रामलीला नाटक’ महात्मा तुलसीदास कृत ‘रामचरित मानस’ की कथा का नाट्य रूपांतरण है। हिंदू समाज के लिए अजस्र प्रेरणास्रोत और हिंदी साहित्य के मेरुदंड मानस में वर्णित राम कथा पर आधृत रामलीला अभिनय भारतीय कला के साथ ही दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों के सांस्कृतिक जीवन का एक अभिन्न अंग है। तथापि कथा के किसी व्यवस्थित और प्रामाणिक रूपांतरण के अभाव में

मानस की चौपाइयों के आधार पर अभिनीत रामलीला अपेक्षित भावोद्रेक कराने में समर्थ रहती थी। वस्तुतः मानस साहित्य है न कि दृश्य साहित्य। दृश्य साहित्य में उसके रूपांतरण के बिना उसके अभिनय से उक्त साहित्य से उत्पन्न भावों की आशा करना व्यर्थ था। इस दृष्टि से 'रामलीला नाटक' एक भारी अभाव पूर्ण प्रतीत करता है। तथापि यह कहना कि मानस का मात्र नाट्य रूपांतरण है, इसके साथ अन्याय होगा और उसकी मौलिकता की उपेक्षा होगी। ग्रंथ की आधारभूमि मानस होने पर भी कथा-साहस का नवीनीकरण, संगीत, संवाद और समुचित हास्य, व्यंग्य का लेखक द्वारा आवेश मौलिक रूप में किया गया है। इसे आधुनिक परिप्रेक्ष्य में और सरल साधारण भाषा में होने के कारण कथा का अधिकाधिक रसबोध कराने में समर्थ है।

इस प्रकार मानस की साधारण जन

के लिए कतिपय सीमातर अबोधगम्य भाषा को सरल तथा बोधगम्य भाषा में नाटक रूप में प्रस्तुत करके लेखक ने वस्तुतः मानस के रचयिता के उद्देश्य की पूर्ति में योगदान किया है। स्थान-स्थान पर व्यास वचन के रूप में मानस की चौपाइयों का उद्धरण कथा की कड़ी को जोड़ते रहने के साथ ही पाठक के मन में कथा की धार्मिक भावभूमि को स्थित रखते हुए, कथा के रस का पूर्ण परिष्पाक संभव बनाता है।

राम-कथा को सरल, सहज, सरस और नाटक रूप में प्रस्तुत करने से इसका अधिकाधिक व्यक्तियों द्वारा रसास्वादन किया जा सकेगा।

ग्रंथ की इन विशेषताओं के कारण हिंदी साहित्य-जगत में इसके समुचित स्वागत के साथ ही साधारण जन में भी लोकप्रियता प्राप्त करने में यह सक्षम है।

—डा. विजयनारायण मणि त्रिपाठी



(पृष्ठ १७ का शेषांश)

प्रयास करते हैं।

इस स्वदेशी भारतीय आधुनिक कला प्रदर्शन की प्रथम प्रदर्शनी में भाग लेने वाले चित्रकार हैं काशी हिंदू विश्व-विद्यालय के चित्रकला विभाग के अध्यक्ष चित्रकार रामचंद्र शुक्ल, अलीगढ़ के चित्रकार डा. गोपाल मधुकर तिल्ली, इलाहाबाद के जानेमाने चित्र-

कार बालादत्त पांडे, काशी हिंदू विश्व-विद्यालय चित्रकला विभाग के प्रवक्ता रघुवीर सेन धीर, काशी के युवा चित्रकार संतोषकुमार सिंह तथा वेद प्रकाश मिश्र। इन सभी चित्रकारों ने अपने चित्रों में वर्तमान भारतीय समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार पर तीखे व्यंग्य प्रस्तुत किये हैं।



जीवन-प्रबोध

—रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'—

जहाँ विश्वास अंधे हों विगत की स्याह राखों से
पड़ी अभिव्यक्ति छूँछी वर्जना के वृत्त में धंसकर
जहाँ घेरे दमन की एक अपलक कौंध नागिन-सी
भुतैली धुंध से घुटता जहाँ हर धूप का पोखर
कटे निस्पंदता में हों पड़े हर स्वप्न के डैने
पखेरू विद्र प्राणों का जहाँ पानी न पाता हो
भरे हों अपशकुन ही अपशकुन आकाश से भू तक
दिशाओं पर विभा का शव जहाँ खामोश जाता हो ।

रही जो बांझ गर्भों की तमिस्रा में घुटी अब तक
तनिक उस प्रेरणा को जन्मगंधी पीर पाने दो
कभी चुकते नहीं बीजाणु उर्वर काल-कोषों के
यही आभास टूटी आस्थाओं को जगाने दो
गगन के खोखलों से फूटने दो खून की सुर्खी
टपकते सूरजों का रस पिये भय से तृषित धरती
खड़े हैं हर अंधेरे मोड़ पर जो भूत खंभों के
उन्हीं को चेतना की गर्म राहें ढूँढती फिरती ।

मरण की गूँजती पदचाप से सौ बार घिर कर भी
जिजीषा ने कभी अविनाश का दामन नहीं छोड़ा
भले संत्रास दोहराता रहे अपनी अवाई को
अभय ने आतसी परिवेश से मुखड़ा नहीं मोड़ा
सदा ऊँचे रहे परछाइयों पर बिब पर्वत के
गढ़ों के गुंबदों के स्पर्श जूठा तक न कर पाते
न छू पाते उन्हें पीले विजित वैभव कंगूरों के
तड़ित के वज्र उनकी दृढ़ शिलाओं में समा जाते ।

— पचपेढी, साउथ सिविल लाइन, जबलपुर



आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः

भवन की पत्रिका 'भारती' से समन्वित

नवनीत

मनुष्य के नवोत्थान का सूचक;
जीवन, साहित्य और संस्कृति का मासिक

प्रार्थना

ओम् य आत्मदा वलदा यस्य
विश्व उपासते प्रशिष्यस्य देवा ।
यस्यच्छाया यस्य मृत्युः
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

जो भगवान् आर्थिक और शारीरिक बल को
देनेवाला है, जिसकी सब देव प्रार्थना करते हैं,
जिसकी शिक्षा सब स्वीकार करते हैं, जिसका
आश्रय अमृत है और जिसे न मानता मृत्यु है,
हम उसी सुख-स्वरूप प्रभु की पूजा करें।

— ऋग्वेद

दवेन्द्र शर्मा 'इंद्र' की दो कविताएं

[१]

उत्तर कनुप्रिया

बादल तो जा बरसे विष वृक्षों पर
बे-मौसम मुरझाया यह चंदन-वन।
पथ से गुजरे रथ के पहियों की
सांवली लकीरों-सा सूनापन
कनुप्रिया संध्या की पुतली में
आंज गया टूटता इकहरापन
फूलों की घाटी में सन्नाटा
पर्वत पर बजती है बांगुरी
आंधी के पैरों से बंधी हुई
यह उदास पाटल की पांखुरी
मथुरा के नभ पर घन श्याम कि
जीवन को तरस रहा मन-बंदाव
हंसों के दूत कहीं जा विलमे
खिलते अब कमल नहीं झीलों में
मंडराते टोल गिद्ध-कागों के
दोपहरी ऊंघती करीलों में
कोई संदेश नहीं आता है
धूल भरी पगडंडी मौन है
फूलते कदंबों की वेणी में
गूथ गया मोरपंख कौन है ?
आंखों में वैशाखी दृश्य उगे हैं
उद्धव ! कब लौटेगा भूला सावन ?
रेती में डूबी है कालिंदी—
कब से ये रीते हैं मंगलघट
गुमसुम है माथे की यह बिंदी
सोया हर धड़कन में छायाण्ट
रात की कलाई में चूड़ी-सा
खनक रहा निदियाता चंद्रमा
मुंदरी के दरपन में कांप उठी
लजवंती पलकों की परिक्रमा
सांकल पर कस्तूरी दस्तक देता
महक उठा कर्पूरी यादों का तन !

को इस परती को
 म की कुदाली से गोड़ रहे हैं
 मुन क्या भाषा को
 ता के जीवन से जोड़ रहे हैं ?
 ती यह कविता है गुंगी नीहारिका
 रा सीमंतिनी नहीं
 की कव बनकर यह संध्या की तारिका
 तो इसने जमीन ही
 शायद इसमें उग आयें
 री शिलाओं के सीपिया-कमल
 कि अभी पथरीले शब्दों पर
 के अमृतकलश-फोड़ रहे हैं।

[२]

लयवंचित छंदों के मेघदूत

की कहीं भटकी थी मछुए की बांसुरी
 के शिलमिल प्रतीक-सी
 की कहीं चटकी थी महुए की पांखुरी
 कुप की अग्निलीक-सी
 न हुई स्वप्निल अलकाएं
 की कहीं पिघले थे बर्फ के महल
 वृक्ष पर बैठे कालिदास
 के फूलपात-तोड़ रहे हैं।
 धूल, आंधी के धकियाते व्यूह में
 गया आम आदमी
 की व्यवस्था के सिरफिरे समूह में
 की धुन सिर्फ मातमी
 ल, बिजली, धनुष, घटाएं
 में टकराते टोपियां बदल
 चित छंदों के मेघदूत
 पर चरणचिह्न छोड़ रहे हैं।

—१/९६७२ पश्चिमी गोरखपार्क, शाहदरा, दिल्ली-३२



कुबेरनाथ राय की एक विशिष्ट रचना

रस और लोकोत्तर रस



[रामकथा - संदर्भ : तीन सम्वाद]

काक-कोकिल

यह उदुम्बर बहुत पुराना है। लोमश ऋषि का काल-सहोदर। इसकी एक शाखा पर दो पक्षी बैठे हैं। परंतु इस बार दोनों में कोई भी सुपर्ण नहीं। एक है काक, दूसरा है कोकिल। यहां प्रति संध्या यही संवाद होता है।

‘अरे तू कौन?’

‘मैं तो हूँ कोकिल। उपनाम ‘कलकंठ’। कवि जो हूँ। पर तू कौन है?’

‘मैं हूँ काक भुसुण्डि शर्मा। अध्यापक हूँ। अयोध्या की पाठशाला में संस्कृत पढ़ाता हूँ।’

‘अरे तू क्या संस्कृत पढ़ाता होगा? कहां वह देववाणी और कहां तेरी टर्र-टर्र।’

‘अबे, आवारा कहीं का! तू क्या कविता करता होगा? कविता तेरे जैसे कुटिल-कृतघ्न के मन में कैसे अवतरित हो सकती है?’

यह संवाद इसी प्रकार घटित होता रहा। दिन-अनुदिन। दिन और रात आते रहे तथा अपने रास्ते चलते गये।

नवनीत

परंतु संवाद नहीं बदला। ‘तू कौन?’ ‘तो तू कौन?’ ‘मैं हूँ काक पण्डित’ तो ‘मैं हूँ ‘कलकण्ठ’ कवि’। इस नोंक-झोंक के बाद वही रैन बसेरा! सबरे पुनः राते अलग-अलग! संध्या को पुनः मिलन और पुनः वही संवाद।

परंतु एक दिन यह संवाद अपने पुनः ताल को छोड़कर विताल पर चला गया और कोकिल ने ‘तू कौन?’ के उत्तर में ‘मैं हूँ कवि ‘कलकण्ठ’!’ कहने के पश्चात् यह घोषणा भी कर दी, ‘मैंने इधर काव्य सुना है। बहुत दिन से तबीयत रही है कि तुम्हें सुनाऊँ! वाल्मीकि नामक एक मुनि की रचना है जो पक्षियों में बड़ी लोकप्रिय हो रही है। सुबह-शाम गंगा सरजू तट के पक्षी इसे ही गाते हैं आजकल।’

‘परंतु-सरंतु क्या? सुना न! ‘सत वद, धर्म चर’ दिनभर पढ़ाते-पढ़ाते दिमाग ‘दग्ध शैलोपम’ खलवाट गया है। भरत मुनि के अनुसार ऐसे में

काव्य सुनने का असर ऐसा है जैसे तप्त
 जल पर एक बाल्टी शीतल जल का
 'सरोपण'। अचानक उस कौए की भाषा
 लोचकोपम हो उठी और वह लोकभाषा
 मृगपथ, हस्तिपथ, मानुष-पथ को
 छोड़ कर विशुद्ध हिंदी की चिकनी सड़क
 साचार्य रामचन्द्र शुक्ल रोड' पर बिहार
 करने लगी। उधर कवि पक्षी ने भी अपना
 काव्य पढ़ना शुरू किया, नये अनुष्टुप
 श्रृंगार में लिखा हुआ काव्य। पुराने वैदिक
 अनुष्टुप से सर्वथा भिन्न। वैदिक छंद लय
 और लोकायत 'बिरहा-लोरकी' धुन के
 ल से तैयार एक नयी तर्ज और नयी
 शिमा वाला छंद। धनुष-बाण लेकर
 चलते हुए वन्चों की चपल गति जैसा छंद।
 ल में पानी फाड़ कर तैरती गायों की
 हल गति जैसा छंद। हल के जुए को कंधे
 धारण करके सधी गति में चलने वाली
 गायों की जोड़ी जैसा छंद! प्रथम श्लोक
 के पश्चात् गति ही काक पण्डित के पारदर्शक नित्य
 चल चक्षु स्थिर हो गये। आंखें और
 वीर्य हो गयीं।

तपः स्वाध्याय निरतं तपस्वी
 वाग्विदांवरम्।
 'वाग् परिप्रच्छ वाल्मीकि मुनि पुङ्गवम्।' प्रथम सर्ग समाप्त होते-होते कौए के
 लय में अंगुष्ठ-प्रमाण माप का एक हंस
 चित हो चुका था। कौआ आंखें फाड़े-
 चित ही सो गया। भीतर का हंस
 बाट रहा। भीतर का हंस सुनता रहा।
 की इन्द्रियां आनन्द से अवश हो



चुकी थीं। भीतर का हंस चैतन्य हो
 चुका था। कौए का कण्ठ भी बदल
 चुका था। बीच-बीच में हंस जैसी
 'क्रेकार' करके साधुवाद दे रहा था।
 गेम्या काव्य में अवगाहन करके भीतर-
 भीतर उसका हंस रूप में देहान्तर ही
 घटित हो चुका हो। उस द्विजन्मे कौए के
 मुख से प्रसन्न भाषा इस प्रकार प्रवाहित
 होने लगी।

'अहा, क्या ही करुण काव्य है। पक्षी-
 विधोग का विषय भी कितना सुन्दर है!
 पक्षीखोर मानुष-वंश में जन्म लेकर भी
 वाल्मीकि मुनि का हृदय इतना शोकार्त
 हो उठा, यह भी एक आश्चर्य का विषय

हिंदी डाइजेस्ट

है। लगता है कि करुणा सबसे बली है। लोभ से भी, क्रोध से भी, काम से भी बली है करुणा! ... परंतु वाल्मीकि जी को एक श्लोक और जोड़ देना चाहिए था : 'अतः हे मनुष्यो, अपने भोजन के लिए दीन-हीन पक्षियों का वध करना अनुचित है।' अहा, मैं इस काव्य को सुनकर घन्य हो गया !' ऐसा कहते हुए काक पंडित ने अविराम चंचल दृष्टि वाले नेत्रपुटों से निर्मल अश्रुपात किया। निर्मल जल की उपमा ही 'काक चक्षुवत्' होती है, तो फिर कौए के विगलित हृदय से निकला वह अश्रुजल कितना निर्मल रहा होगा, इसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है। काक पंडित ने आगे व्याख्या की 'करुणा तो सर्वव्यापी नियामक 'ऋत' शक्ति का ही एक भाव-प्रधान रूप है। यह प्रत्येक जीव के मनोमय कोष में रहती है। एक जीव के मन को दूसरे जीव के मन से जोड़ती है। एक की व्यथा को दूसरा अनुभव करने लगता है। काम का प्रभाव तो सीमित है। वह तो अपनी जाति में ही होता है और वह भी एक ही जोड़े में। परंतु करुणा तो निर्विशेष और सार्वभौम है। इसी से कहा जाता है कि काम से भी बड़ी है करुणा।'

'यार, अभी तो दो ही सर्ग सुने हो।' कलकण्ठ ने बीच में रोकते हुए कहा, 'यह काव्य तो काफ़ी लम्बा-चौड़ा है। यह पक्षी-वियोग पर ही समाप्त नहीं होता।

नवनीत

पक्षी-वियोग तो 'सूचक' मात्र है। विस्तार है राम-सीता वियोग। यह तो आदि से अन्त तक बड़ी ही सुन्दर, बड़ी ही वियोग-मयी कथा है। पिता-पुत्र वियोग, मां-बेटा वियोग, भाई-भाई वियोग, राजा-प्रजा वियोग, पति-पत्नी वियोग। तरह-तरह के वियोग और तरह-तरह की करुणा! सारा काव्य ही करुणरस का इन्द्रधनुष है। इस महाकाव्य में पक्षी-वियोग का प्रसंग तो एक बूंद मात्र है। इसमें तो वियोग और करुणा का अथाह महासागर लहरता है। ... परंतु समझ में नहीं आता कि इसका शीर्षक क्या है, 'राम-सीता वियोग' या 'राम-भरत वियोग' या... और कुछ!

अध्यापक काक शर्मा की बुद्धि इस प्रसंग से कतरा कर बड़े कौशल से बातचीत की दिशा भिन्न करने में लग गयी। वे पंडिताई हांकते हुए कहने लगे :

'महाकवि ने ठीक ही किया है। पक्षी वध या पक्षी-वियोग तो एक गीत या मुक्तक के लिए ही पर्याप्त विषय है। उन्हें तो लिखना था महाकाव्य। 'महाकाव्य' के लिए 'महाविषय' भी चाहिये और 'महाविषय' या 'महावस्तु' तो धरती के श्रेष्ठतम जीव मनुष्य के जीवन से ही प्राप्त हो सकता है। ... देखो, पाकड़ गूलर-पीपल के गोदे बड़े स्वादिष्ट होते हैं। परंतु उन पर रचा गया काव्य कितना भी श्रुति मधुर क्यों न हो, सूर्य चंद्र पर लिखे गये काव्य की धराकट नहीं कर सकता।' फिर कुछ

एक पंडित ने कहा, 'इसी से भरत मुनि भी मान गये हैं कि शैली की क्षमता से भी बढ़ कर होती है विषय वस्तु की क्षमता।'

कलकण्ठ ने पंडित की बात का समर्थन करते हुए कहा, 'इस काव्य का विषय मनुष्य ही नहीं, महामनुष्य है। वाल्मीकि की पुरुषों के बीच स्थित पुरुषोत्तम शिव हैं। उनके काव्य के नायक हैं, पुरुषोत्तम रामचंद्र। 'सूचक' के पक्षी-विशेष को उन्होंने रूपान्तरित कर डाला है। अरण्यकाण्ड से चलने वाले राम-सीता विशेष में और व्याध की भूमिका में उल्लेख को उतारा है।'

'हां, हां, कहो कहो, भला उस प्रतापी राजा को कौन नहीं जानता! राजा रामचंद्र के रसोईघर के ठीक सामने एक पुराने नीम के पेड़ पर अपनी पाठशाला थी। उन्हीं के अनुदान से वह पाठशाला चलती थी। हां तो मैंने वरसों अध्यापन किया है।'

०००

उस दिन के बाद कवि और अध्यापक की दैनिक तू तू-मैं मैं बन्द हो गयी।

[२]

सिंह - शूकर

वैदिक युग में यों भी बाघ-बकरी एक ही घाट पर पानी पीते थे। बाघ भी पीजवा हो गये थे तब। उस पर भी यह तपोवन की बात है और 'दीर्घ-दाघ-दाघ' काल का प्रसंग है जब कि सारा

जगत ही गर्मी के मारे हांपते हुए तपोवन बन जाता है।

अयोध्या के नागरिकों में ऐसा प्रवाद चलता था कि जब से वाल्मीकिजी ने नये छंद का आविष्कार किया है, आस-पास के बाघ सिंह भी कविताई करने लगे हैं। लोगों की शिकायत थी कि प्रत्येक जानवर ही बड़ा पढ़ा-लिखा और बड़ा शरीफ बनता जा रहा है। ब्रह्माजी बड़े चिंतित रहते थे। मनुष्य की कौन कहे जीव-जीव के कण्ठ में सरस्वती का आना-जाना प्रारंभ हो गया था और सदैव भय रहता था कि वे पुनः ब्रह्मलोक हाथ-पैरों के साथ सही-सलामत लौटेंगी कि नहीं।

तो इसी त्रेतायुग की भरी दुपहरी का एक दृश्य है। एक ओर नदी तट के कीचड़ में बैठे भैंसे के यूथुन को शीतल चट्टान मानकर एक विषधर भुजंग उसे चुपचाप चाट रहा है। दूसरी ओर दो डोम-किशोर डुण्डुम सपों को पकड़कर उनके शीतल स्पर्श के लोभ से उन्हें कभी कण्ठ में धारण कर रहे हैं तो कभी ललाट पर बलयाकार लपेट रहे हैं। उनके कानों में हड्डी के अवतंस हैं और कटि में है मूज की करधनी। ऐसे ही वातावरण में पास के छायादार महुआ-वन में दो बलवान पशु काव्य-चर्चा कर रहे हैं। दोनों ही वीर हैं। दोनों ही पराक्रमी हैं। परंतु आज अपना सहज स्वभाव भूलकर दोनों रामकथा के रस-प्रवाह में लीन हो रहे हैं। मधुर-मनोरम 'लंकाकाण्ड' चालू है। सिंह अपने वीरोपम

हिंदी डाइजेस्ट



कंठ से गर्जन-तर्जन करते हुए, जलद गम्भीर स्वर में लंकाकांड के श्लोकों का गान कर रहा है। मारपीट, धूसे-थप्पड़ के प्रत्येक प्रसंग पर समझदार श्रोता शूकर 'अहा, क्या ही सुमधुर प्रसंग है' कहकर दाद देता जा रहा है। शूकर फिर प्रशंसा में कहता है, 'अहा, सुनता था कि सर्वाधिक शुद्ध संस्कृत-गिरा सिंह के ही कंठ में वास करती है। सो आज प्रत्यक्ष हो गया। क्यों न हो भला, भगवती के खास वाहन ही आप लोग हैं। इसी से 'कंठीरव' नाम आप लोगों का पड़ा है!'

'सो तो है ही है। देखो, कोई भी ब्राह्मण हमारी तरह अँकार का उच्चारण कर दे तो उस पट्टे को मर्द सराहूँ! अरे हम तीन-साढ़े तीन मात्राओं का नहीं, ग्यारह मात्राओं का अँकार धारण करते

नवनीत

हैं।' कहकर सिंह ने पूरा कंठ फाड़कर 'अ...आऽऽओऽऽऽऽ उम्' का उच्चारण कर दिया। सुनते ही शूकर का रोआं-रोआं कांप उठा। और वह अधिक चौकचा होकर बैठ गया। परन्तु इस सावधानी की कोई जरूरत नहीं थी। सिंह अपने वैष्णव 'मूड' में था। वह आगे कहता गया, 'अरे वाल्मीकि मुनि भी तो सिंह ही थे। तभी तो उन्होंने रामकथा का सिंहनाद किया। 'वाल्मीकि मुनि सिंहस्य कविता वन चारिणः।' यह उक्ति को नहीं जानता? यह उक्ति उनके पूर्वजन्म से सम्बन्धित है। प्रत्येक महाकाव्य-कर्ता को इस जन्म में नहीं तो पूर्वजन्म में सिंह होना चाहिये। वीर ही वीरस को समझ सकता है। और इसका पाठ और श्रोता कहीं दोनों ही वीर निकले तो कभी पूछो मत।

स्थायीभाव का साधारणीकरण होने देर नहीं लगती। इसीसे तो आनंद आ जाता है तुम्हारे जैसा श्रोता पाकर। तुम तो किसी से कम वीर नहीं हो। अतिक्रमण होने पर पीछे हटना तुम जानते नहीं। वस, दोनों आंखें मूंदकर सामने झपटते हो। अरे भाई, कई बार आनंद चुका हूँ तुम्हारे बल को।'

शूकर ने समर्थन किया, 'असल तो वीरता का कायदा-कानून तो हम पशु ही जानते हैं। आदमी?... वह बेदा तो धूर्त को ही वीरता कहता है। यहाँ तक कि साक्षात् 'विग्रहवान् धर्मः' विष्णु

मावतार में कोशिश करते-करते थक
पड़े, परन्तु दो जगह ही सही, उनकी
वीरता को भी खंडित होना पड़ा। उनमें
से तो खोटा ही गया।'

सिंह ने भक्तिभाव से दोनों पंजे उठाकर
सूँख मूँदकर प्रणाम किया और कहा,
'तो तो है ही। बालि को छिपकर मारा
और खरदूषण से आमना-सामना होने पर
तब या साढ़े तीन पग पीछे हटे थे, यद्यपि
तब पीठ दिखाये ही। परन्तु जब उन्होंने
आरी या तुम्हारी आकृति को धारण
कर लिया तो उनकी वीरता कहीं भी
घुटती या चूटिपूर्ण नहीं हुई।' यह सुन-
कर शूकर ने प्रफुल्लित होकर मुस्कराने
की चेष्टा की। यों दांतों के कारण बेचारे
को मुस्कराने में पूरी दिक्कत हुई।
व्याप्ता ने उसके चेहरे को चौबीसों घंटे
सरोपम रखने के लिए मुस्कराहट की
शक्तियों के द्वार पर ही दो दांतों को तंजात
कर दिया है। भला वीर पुरुष भी मुस्कराते
और नज़र लड़ाते हैं? वास्तव में जानवरों
के लटके लम्बोतरे मुख हंसते....मुस्कराने
उपयुक्त नहीं हैं। केवल बिल्ली को
छिड़कर जो किसी तरह आंख, कान, नाक
या संहारा लेकर दूध के कटोरे या मोटे
दूध को देखकर मुस्कराती है। मनुष्य के
लिए तो नौ ही क्या असंख्य-असंख्य
साधुभावों का और रसों का भोग बदा
अतः उसका चेहरा हर एक भाव
विवर्तन के लिए लचीला होता है।
पशु पशुओं को तो दो ही रसों में रहना

पड़ता है। वीररस अथवा शान्तरस।
इसी से प्रत्येक पशु का चेहरा या तो वीर
रहता है अथवा शांत।

तत्पश्चात् सिंह ने अपने जीवन की
एक अपूर्व काव्यमयी घटना का वर्णन
किया, वाल्मीकिजी के पुण्य संस्मरण के
साथ-साथ। बात तब की है जब वाल्मीकि
जी 'सुन्दरकाण्ड' बना रहे थे और सिंह
भी पट्टानभरू जवान था। सिंह ने
बताया, 'तब मेरी सिंहनी भी पद्मपलाश
लोचना थी। उसकी कपिश वर्ण देह पर
पीत-चित्र डोरियादार निमोंक था। आंखें
तो सम्मोहन से ऐसी जलती रहती थीं
गोया ललाट में दो जलते दीपक घुसे हों।
भला इस रम्य-दारुण वपु को देखकर
किस पढ़े सिंह का मन नहीं ललचा
जायेगा। तो उस लचकती कमर वाली,



हिंदी डाइजेस्ट

अति भयंकर सुकुमारी प्रिया के प्रेम पाश में बद्ध होकर मैं रात दिन उसी के साथ विचरण करता था।.... तो, उन दिनों की बात बताऊँ। एक कमीने हुंड़ार (भेड़िए) का साहस। मैं बहुत दिनों से देख रहा था कि वह हमारे युगल बिहार को दूर-दूर से देखा करता है। परंतु हम तो हुंड़ार-भेड़िए कुत्ते का मांस नहीं खाते। अतः जंगल के अन्य जीवों की तरह वह भी घूमे, देखे, और जो चाहें सो करे। मैं तो राजा ठहरा। बेपरवाह। मैं अरण्य सम्राट होकर भी ऐसे तुच्छ जीवों की परवाह क्यों करूँ?... परंतु एक दिन की बात सुनकर आश्चर्य करोगे। दुपहरी की बेला थी। मेरी कपिशा प्रिया निद्रा ग्रस्त थी। मैं बाहर-बाहर वाल्मीकिजी के ही एक ताजे श्लोक को गुरीता हुआ विचरण कर रहा था :

तदुन्नसं पाण्डुर दन्तमग्नं
शुचिस्मितं पद्मपलाशलोचनम्
द्रक्ष्ये तदार्याविदनं कदान्वहं
प्रसन्न ताराधिप तुल्य दर्शनम्।

‘अपनी श्रुति-मधुर गुराहिट के साथ-साथ श्लोक के अर्थ की चिन्ता करते हुए मुझे अपनी कपिशा प्रिया का ध्यान आ गया। उसका मुख देखने की इच्छा हुई। मैं लौटा। कुछ वेग से ही लौटा। जार-भाव आ गया था जो। लौटकर देखता हूँ कि वह कमीना हुंड़ार मेरी सोती प्रिया को सूँघ रहा है। बस फिर क्या था, पंजे नवनीत

से माथे तक बिजली दौड़ गयी। मुच के अचानक वज्रकंठ उद्गार वैसे ही निकला, जैसे ‘लंकाकाण्ड’ का कोई श्लोक हो। जानते ही हो कि क्रोध में वाणी लयमान हो उठती है। गाली-गलौज में भी भाषा छन्दात्मक हो जाती है और अपना वृत्त-दुस्त गद्य रूप छोड़ देती है। मुक्त छंद का मूल ही है गाली-गलौज की भाषा में। तो एक ही साथ कण्ठ से वज्रहंकार और पंजे से वज्रप्रहार! उस कमीने की गर्दन ही एक ही प्रहार में टूट गयी। दूसरे प्रहार की जरूरत नहीं पड़ी। ओह, उस दिन मेरी प्रिया ने मेरा अंग चाट-चाटकर बार-बार प्यार जताया था।’ कहते-कहते सिंह भावविभोर हो गया।

इस प्रकार उस दिन सिंह और शुक में काफी देर तक काव्य-चर्चा होती रही। चर्चा तब तक चलती रही, जब तक कि शाम नहीं हो गयी। उस दिन उन दोनों ने परस्पर विचार-विमर्श के बाद तय किया कि रामायण वस्तुतः पराक्रम-गाथा और वीर काव्य है? १- क्योंकि इसकी मूल संज्ञा है ‘पौलत्स्य-वध’। २- क्योंकि नृसिंह तिषाद द्वारा किये गये अपकर्म के विरोध में महाकवि को रोष हुआ था और रोष ही शाप-भाषा में छंद बनकर उतरा जो महाकाव्य के ‘सूचक’ की रचना करता है। ३- क्योंकि यह पुरुषार्थ प्रधान काव्य है और इसकी कथारूढ़ि है ‘अपहरण और उद्धार’ ४- क्योंकि रामकथा वैदिक ‘देवासुरम्’ द्वन्द्व का ही मानुषी संस्कार

स्थित करती है और राम हैं 'प्रच्छन्न' जो वीररस का अधि देवता है। क्योंकि महाकाव्य की मुख्य अभियान-योजना के तोरणद्वार पर मां कौशल्या अपने स्वस्तिवाचन में जिन तीन वैदिक घटनाओं को 'सूचक' या कथा-संकेत रूप में व्यक्त करती हैं, वे हैं दैवासुर-द्वन्द्व, कण्व का त्रिविक्रम-पगथेप, सुपर्ण का समुद्र अभियान और इन तीनों घटनाओं का स्थायीभाव है 'उत्साह'—तो इन पांच धारणों से यह काव्य निश्चय ही वीरकाव्य है और इसका सही नाम है 'पीलित्य-विध'। साथ ही दोनों ने सर्व सम्मति विशेषण की कि अगला रामावतार सिंह-धर्म में ही होगा और इस बार राम की वीरता में राई-रत्ती की भी त्रुटि नहीं होगी। अंत में दोनों ने लंकाकांड के अनेक श्लोकों का विकट उद्गार करते हुए सभा भंग की।

[३]

मानुष-वनमानुष

मसा तट पर एक पुराना अश्वत्थ वृक्ष। उसके नीचे मानुष और वनमानुष बैठे हैं। मानुष कविता पढ़ रहा है और वनमानुष कुतर्क द्वारा रह-रह कर बाधा दे रहा है।

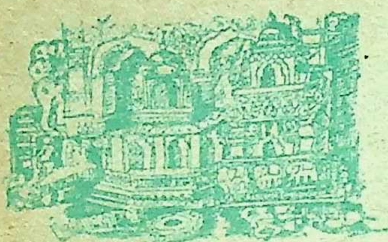
वनमानुष बोला, 'जरा रुको। वाल्मीकि का राम भी तो हमारी ही तरह आहार ग्रहण करता था, भूख-प्यास का दास था, रमण-रूपा से विकल होता था। और मल-मूत्र

भी त्यागता ही रहा होगा। अंत में वह मरा भी नदी में डूबकर। तो भाई, यह ईश्वर या ईश्वर का अवतार कैसे हुआ? कविता लिखनी है तो होश-इवास दुरुस्त करके लिखी जाये। यह सब क्या बकवास लिखा गया है, जिसे तुम इतना मन लगाकर पढ़ रहे हो।'

मानुष जरा रुककर बोला, 'आखिर वनमानुष जो ठहरे। कैसे इस सूक्ष्म बात को समझोगे? ध्यान-धारणाओं की क्षमता का तुम्हारे अन्दर विकास ही नहीं हो पाया है। सतही बातें छूकर यहां से हटो तो उस शाखा पर कूदो, उससे फिर किसी दूसरी पर, दूसरी से तीसरी पर—अरे, आसन मारकर स्थिर भाव से कुछ देर तक बैठना ही तुम्हें नहीं आता, किसी बात पर शान्त चित्त से संतुलित चिंतन करने में ही तुम असमर्थ हो तो यह सब समझोगे कैसे? पशु-पक्षी कोटि में रहते तो 'सहज ज्ञान' के माध्यम से ये बातें जान जाते और मनुष्य रहते तो सूक्ष्म प्रज्ञा के माध्यम से। पर तुम ठहरे दोनों के बीच—वनमानुष। मानुष जैसी तर्क बुद्धि तो मिली, परन्तु उससे भी सूक्ष्मतर मानसिक क्षमताएं यथा प्रतिभा, कल्पना, अन्तर्दृष्टि, ध्यान-धारणा आदि, जिनकी सम्मिलित संज्ञा है 'प्रज्ञा', वह प्रज्ञा तो तुम्हारे पास नहीं। जरा कल्पनाशील बनो, जरा ध्यान में डूबो, जरा प्रज्ञा जागृत करो, तब न समझोगे!'

वनमानुष का मुखमंडल उत्तेजित

हिंदो डाइजेस्ट



होकर अपने पूर्वजों की पूर्ण समनुरूपता में, क्रुद्ध शाखामृग जैसा हो गया। परन्तु रोष को दबाकर वह बोला, 'तब सीधे-सीधे मेरे प्रश्न का उत्तर क्यों नहीं देते हो? जीव की सामान्य सीमाओं को भोगने वाला पुरुष जीवोत्तर 'ईश्वर' कैसे हो गया? कविता द्वारा तिल का ताड़ बनाने से? दिन में ही गूलर के फूल उगा रहे हो!'

वनमानुष के रोष पर वह पुराना पीपल जिस पर आदिम युग में ऋचाएं और मंत्र पत्ते-पत्ते उतरा करते थे, ठठाकर हंस पड़ा। ऊपर के पत्तों में हलचल-सी हो गयी। गोया पत्ता-पत्ता जाग उठा हो और बोलना चाहता हो। परन्तु पेड़ नहीं बोला, बोला मनुष्य ही। मानुष ने पहले की अपेक्षा और अधिक शान्तभाव से उत्तर दिया :

'देखो, अवतारी पुरुष भी देह धारण करता है। पर देह अवतार नहीं। देह तो उस अवतार का आलम्बन भर है। अवतार निहित है, अभिव्यक्त हो रहा है और एक अपनी 'पहचान' बनाता है उस देह के द्वारा खेती 'लीला' में, या और सूक्ष्म ढंग से कहें तो लीला द्वारा व्यक्त

नवनीत

'रस' में क्योंकि अवतार एक रसानुभूति के रूप में ही गृहीत होता है। वह स्वयं 'रस'-रूप है। देह इस सारी प्रक्रिया में योग या माध्यम भर है। देह-सत्ता में अवतार व्यक्त होता है परन्तु देह-सत्ता अवतार नहीं। वह पुरुष जो अवतार कहा जाता है, देह-रूप में ही आकृतिवान होता है और देह की सीमाओं को स्वीकार करने के कारण उसका कहीं-कहीं स्खलन या पतन भी संभव है। वह दुःख-सुख, हास्य-अश्रु-पात, काम-क्रोध का भी शिकार होता है समय-समय पर और एक दिन उसकी मृत्यु होती है। यह सब उस दिव्य सत्ता का केवल मानवीय अंश है। यह मानवीय अंश 'अवतार' का आलम्बन मात्र है। इस आलम्बन से जो स्थायीभाव भी व्यक्त होता है, वही लीला है और 'लीला' जिस रस का उद्रेक करती है, वह है नवों लौकिक रसों से ऊपर 'महारस'-रूप 'रसो वैश'। परमात्मा 'महारस' रूप है। वह देह लीला के मध्य भी और उसके परे भी, अपने को अभिव्यक्त कर रहा है। देह लीला तो निरन्तर परिवर्तनशील 'भवति'-प्रवाह का द्योतक है। अतः इसमें सामान्य जन जैसी क्रियाएं, चेष्टाएं आ जाती हैं। परन्तु दिव्य लीला इसके द्वारा अभिव्यक्त नहीं है जो 'अस्ति' रूप है। जब देह-लीला का 'अनुभव' किसी दिव्यबोध का 'अनुमान' कराने लगता है तो प्रथम 'अनुभव' बन कर अनुभाव बन जाता है। 'अनुभव' और चीज है, 'अनुभाव' और चीज। यही

अनुभाव हमारे मन में रस का उदय कराता है। मन में इस रस का उदय ही ईश्वरीयता का आस्वादन है। तब हम अनुभव करते हैं कि अमुक घटना ईश्वरीयता का स्वाद दे रही है और उस घटना के नायक को ईश्वर या अवतार मान बैठते हैं।

मानुष ने अपने कथन को स्पष्टतर करने के लिए आगे कहा, 'अवतार का भीषा-सादा अर्थ है ईश्वर का धरती पर उतरना। परंतु यह तो स्थूल कथन है लोगों को समझाने के लिए। इसी बात को सही और सूक्ष्म ढंग से इस प्रकार कहेंगे : 'अवतार का अर्थ है 'ईश्वरीयता' या ईश्वरानुभूति का धरती पर प्रत्यक्ष हो जाना, नाम-रूप के आलम्बनों द्वारा इतिहास में अभिव्यक्त हो जाना।' वस्तुतः अवतार 'ईश्वर' का नहीं, 'ईश्वरीयता' का होता है। ईश्वर कहां नहीं है, कि उसे कहीं से कहीं पर अवतरित होने की जरूरत पड़े ? वह तो सदा और सर्वत्र विद्यमान है। वह सदा और सर्वत्र माया के आवरण से ढंका हुआ है। जब आवरण का बल्कल फाड़कर उसकी दिव्य सत्ता या ईश्वरीयता (पुरानी भाषा में 'विभूति') व्यक्त हो जाती है, तो हम कहते हैं 'अवतार' घटित हो गया। और उस 'बल्कल' या 'आकृति' को जो अवतार का धारक या आलम्बन भर है, स्थूल या मोटी दृष्टि से 'अवतार' या ईश्वर घोषित कर देते हैं। परंतु वह बल्कल या आकृति ईश्वर का अवतार नहीं, बल्कि 'विग्रह'

मात्र है। जैसे पत्थर की शिला जब ईश्वरीयता का अनुभव कराने लगे तो वह अचवितार कहलाती है। वैसे ही रामचन्द्र या कृष्ण का मानुष तनु तो मूर्ति या विग्रह मात्र है, हाड़-मांस का विग्रह या अचवितार। पत्थर की मूर्ति पर हथौड़ा मारोगे तो वह टूटेगी ही। क्योंकि वह प्रस्तर के गुण-धर्म के आधीन चलती है। परंतु वह तो आलम्बन मात्र है। उसका टूटना ईश्वर का ही टूट जाना नहीं। वैसे ही अवतार का मानुषी तनु रोग-शोक, काम-क्रोध की देहलीला के अधीन चलेगा।



परंतु इस मानुषी तनु के माध्यम से जो पूरी देहलीला खेती गयी, वह असामान्य थी, दिव्य थी, पुरुषोत्तम थी, अनुत्तर थी। यह इसलिए संभव हो सका कि उस देहलीला में ईश्वरीय विभूति अपने को उद्घाटित कर रही थी। अन्यथा ऐसा संभव नहीं हो पाता। देहलीला उस दिव्य ईश्वरीय विभूति को 'रस' के रूप में व्यक्त कर रही है। परन्तु जैसे 'काल' की अभिव्यक्ति का आलम्बन है सूर्य या चन्द्र परंतु स्वयं सूर्य या चन्द्र 'काल' नहीं, वैसे ही किसी भी अवतार का मानुषी तनु

हिंदी डाइजेस्ट

या देहलीला ईश्वरीयता की अभिव्यक्ति का आलम्बन है, स्वतः ईश्वर नहीं।

‘तब तो रामचन्द्र को अवतार या ईश्वर कहना सार्थक नहीं।’ वनमानुष ने तर्क प्रस्तुत किया।

मानुष ने उत्तर दिया, ‘रामचन्द्र को ईश्वर या अवतार कहना सार्थक है, क्योंकि रामचन्द्र का ‘रामत्व’ मात्र देहसत्ता या अन्नमय-प्राणमय कोष ही नहीं। बल्कि मनोमय प्रज्ञानमय और आनन्दमय कोषों में सक्रिय दिव्य विभूति भी ‘रामत्व’ का ही अंश है। यह ‘रामत्व’ एक ‘दिव्य अनुभाव’ या एक ‘रस-सत्ता’ के रूप में ‘सम्पूर्ण’ अस्तित्व रचता है, जिसमें अस्तित्व के सभी कोष परस्पर समग्रयित और परस्पर अन्तर्भुक्त हैं। देह को मन से, मन को आत्मा से, आत्मा को ईश्वरत्व से विच्छिन्न करके अलग-अलग देखा नहीं जा सकता। अस्तित्व का दिव्य-अदिव्य सम्पूर्ण ‘गुम्फ’ ही कि ‘इकाई’ बनकर उदित-प्रकाशित और अन्तर्धान हो रहा है! अतः रामचन्द्र का ‘रामत्व’ या ईश्वरत्व देह-गुण-विशिष्ट न होते हुए भी देह सत्ता से जुड़ा है। रामचन्द्र ‘रामत्व’ के आलम्बन मात्र होते हुए भी व्यवहार में ‘आलम्बन’ और ‘रस’ में अभेद है। ‘रस’ की अनुभूति आलम्बन से भिन्न निर्गुण-निराकार स्थिति में होना संभव ही नहीं। इसी से आलम्बन और रस में अभेद स्थापित हो जाता है। इसी से रामचन्द्र को ईश्वररूप में अनुभूत करना नवनीत

और मानना सर्वथा सार्थक है। जब हमने ऊपर कहा है व्यक्ति रामचन्द्र ‘विग्रह’ (मूर्ति) हैं या ‘अर्चावतार’ हैं ‘रामत्व’ रूप ‘रस’-सत्ता का, तो हमारा यह कथन उपमा मात्र था। ‘विग्रह’ जड़वस्तु है, देह-सत्ता या व्यक्तित्व ‘अजड़’ है। अतः देह-सत्ता या दैहिक व्यक्तित्व तथा उससे व्यक्त दिव्य रस दोनों के बीच घनिष्ठ-तर सम्बन्ध है।’

मानुष और वनमानुष दोनों कुछ देर तक मौन रहे। फिर मानुष ने ही पुनः मौन भंग करके बात को आगे बढ़ाया, ‘देखो तथ्य तो यह है कि ईश्वर का सम्पूर्ण अनुभव ग्रहण करने की क्षमता मानुषी प्रज्ञा में नहीं। इसी से उसकी एक विभूति या एक पक्ष को, वह भी हूबहू उसी रूप में नहीं, बल्कि उसके अप्रत्यक्ष रूप ‘रस’ रूप में ही उसकी प्रज्ञा ग्रहण करने में समर्थ है। यही मानवीय क्षमता की सीमा में है। इसी से ईश्वर का अनुभव भक्तगण और कविगण ही कर पाते हैं क्योंकि वे उसे ‘रस’ के पथ पर चलकर प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं। और कोई तरीका ही नहीं है। ईश्वर स्थूल कुछ भी नहीं है। वह तो एक ‘आइडिया’ या भावसत्ता है और रस रूप में ही उस भाव सत्ता का अनुभव हमें हो सकता है। इसी अर्थ में श्रुति कहती है ‘रसो वै’।.....

मानुषी कथाओं में जो नव रस हैं शृंगार, वीर, करुण आदि, वे सबके सब

नारायणी कथाओं में 'संचारीभाव' या अल्पम बन जाते हैं और एक अनामा लौकिक दिव्य रस के स्थायीभाव को देते हैं। यह अलौकिक अनामा स्थायी भाव एक अखण्डित अविभक्त पूर्ण 'महारस' को अभिव्यक्त करता है। यह 'महारस' ही रामत्व का 'रस' और यही रामकथा का 'रस' है। इसकी 'रामत्व' छोड़कर अन्य पहचान संज्ञा नहीं हो सकती। नारायणी कथाएं तो वीररस की होती हैं न शृंगाररस की और न करुण या शान्त रस की।

वीर, शृंगार, करुण, शान्त आदि लौकिक रस तो उस कथा के संचारीभाव मात्र रचते हैं, जिन के माध्यम से अलौकिक 'महारस' प्रस्फुटित होता है। इसी अर्थ में नारायणी कथाओं को 'रसों का रस' कहा गया है। रामायण, महाभारत या भागवत इन लौकिक रसों के आश्रय से 'रसों का रस' अर्थात् 'महारस' व्यक्त करते हैं।

इस प्रकार मानुष-वनमानुष की शास्त्र-चर्चा का समापन और रामकथा के रस का निर्णय उस दिन सम्पन्न हुआ।

अभागा कारीगर

एक कारीगर था। वह कांच के इतने मजबूत बरतन बनाता था कि वे नहीं सकते थे। उनकी मजबूती सोने और चांदी के बरतनों से अधिक थी।

एक बार उसने कांच का एक लोटा बनाया, खुले मुंह वाला। उसका खयाल था कि यह सिर्फ सीज़र के लायक ही हो सकता है सो वह अपने उपहार के साथ सीज़र के सामने उपस्थित हुआ। सीज़र ने उसका उपहार स्वीकार किया, उसकी स्तुति की, उसकी कारीगरी को भी स्वीकार किया।

अब दर्शकों को विस्मित करने के खयाल से कारीगर ने लोटा राजा से वापस ले लिया और उसे पक्के फर्श पर इतने जोर से फेंका कि मजबूत से मजबूत धातु भी टूट जाती। सीज़र को भी हैरानी हुई, क्योंकि कारीगर ने जब बरतन को उठाया, तो उसमें लोटा-सा खम ही पड़ा था, मानो किसी धातु के बरतन ने कांच का आकार ले लिया हो।

कारीगर ने अपनी जेब से हथौड़ी निकाली और बरतन के खम को ठोक कर ठीक कर दिया। अब वह सोचने लगा, राजा अब मेरा लोहा मान ही जायेगा। किन जो कुछ हुआ, वह बिलकुल उलटा था। सीज़र ने उससे पूछा कि क्या कोई और भी आदमी है जो इस तरह का कांच बनाना जानता है? कारीगर ने बताया—नहीं। इस पर सीज़र ने उसका सिर काट देने का आदेश दिया और बोला, 'अगर वह फला किसी को प्राप्त हो गयी तो सोने और चांदी की कीमत धूल के बराबर भी रहे रह जायेगी।'।

—पेट्रोनिअस [अनुवाद : सुदीप]

ज्योतिषाचार्य डॉ. सूर्यनारायण व्यास

आंखों देरवी अपनी मौत

०००

पंडित सूर्यनारायण व्यास ने यह लेख अपने जीवनकाल (सन १९६५) में ही लिखा था। जो उनके भविष्यद्विष्टा होने का प्रमाण है। उनके ज्येष्ठ पुत्र डॉ. रश्मिकान्त व्यास द्वारा प्रेषित इस लेख को प्रकाशित कर नवनीत परिवार व्यासजी को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है।

०००

किसी के मर जाने की बात सुनकर ही कण्ट होता है। सहसा मुंह से निकल पड़ता है कि 'बहुत बुरा हुआ'। यदि कोई स्वजन हो, तब तो दिल में चोट ही लगती है। अघटित घटना हो जाने पर अनजान हो, विरोधी या पराया हो, तब भी मुंह से 'राम' 'राम' निकल पड़ता है। बहुत से लोग कई तरीके से शोक समवेदना प्रकट करते हैं, वेदांत की बातें भी करते हैं किंतु जब वे ही ऐसी किसी घटना के शिकार हो जाते हैं तो सारा वेदांत भूल जाते हैं। अवश्य ही कुछ आधुनिक लोग उस शोक के समय भी इतनी सावधानी अवश्य लेते हैं कि शोक प्रदर्शन के पूर्व घटना का पत्रों द्वारा प्रचार पहले अवश्य हो जाये। यदि रुदन रिले (प्रसारित) किये जाने की व्यवस्था होती तो भी उसे भी वे पहले नवनीत

से कलापूर्ण ढंग से व्यवस्थित करने में न चूकें, पर अभी ऐसा वातावरण नहीं पाया है। टेलीविजन के प्रसार हो जाने पर शायद यह भी संभव हो जाये। मैं जिस घटना या दुर्घटना का विवरण प्रस्तुत करना चाहता हूँ, उसे उपरोक्त बातों से सर्वथा भिन्न है। अपने शरीर से आत्मा के पृथक् होने के पूर्व ही, अपनी आत्मा को शरीर से कुछ समय के लिए अलग-थलग रखकर अपने अंत का सारा हाल स्वयं अवलोकन किया है, और पूरा विवरण खुद लिखकर रखा लिया था। इसमें किसी के शोक संवेदन का प्रश्न ही नहीं उठता। यह तो एक प्रकार से अपने अंत का स्वयं निरीक्षण ही है। इसलिये इसमें का भी अवकाश नहीं है। तो नौबत अपनी आंखों या दिल से देखी

इस प्रकार है—

किसी की मर्ग पर ए दिल
न कीजे चश्म तर हर्गिज ।
बहुत-सा रोइये उन पर
जो जीने पर ही मरते हैं !

बेचारा सूर्यनारायण व्यास सहसा चल
सेगा, यह वह खुद भी नहीं जान पाया
था। तब भला औरों को कैसे पता चल
पाता कि इतनी जल्दी वह दुनिया से
ठ जायेगा ? उज्जैन से उसका इतना
अपनत्व था कि उसका वस चलता तो
वह बिना गहराई से सोचे-समझे जल्दी

जाने की बात सोच भी नहीं सकता,
फिर उसे तो अभी कई काम करने बाकी
थे, न जाने कितने सपने संजोये रखे थे।

उज्जैन को ऊपर उठाने की बात उसके
बल-बूते की होती तो पता नहीं वह
था से क्या कर देता। वर्षों से उसकी
कलम चलती आयी थी, शायद प्रद्योत,
शशोक-विक्रम के काल की उज्जयिनी,
उसके दिमाग में घूमती थी। सोचता था
कि फिर से कोई कालिदास यहां आ जाये
और मेघदूत बनाकर दुनिया को अपनी
शोर आकर्षित कर ले। अपनी ताकत
पर प्रयत्न करता ही रहता था। कोई
बाधा हो या नहीं, वह अकेला ही धुन में
रहता था। कुछ लोग इन सबमें
उसका स्वार्थ भी सूँघने लगते थे, पर वह
किस चीज को सही समझ अपना लेता,
ले-बुरे की पर्वाह न कर पीछे पड़ा
रहता था। धुन जो सवार हो जाती थी।



पंडित सूर्यनारायण व्यास

महाकालेश्वर का पड़ोस था। दर्शन
को वह वार-त्योहार को ही भले जाता
हो, पर उसकी आस्था गहरी थी। वह
महाकालेश्वर में धार्मिकता तक ही सीमित
नहीं था। उसमें ऐतिहासिक, वैज्ञानिक
महत्व भी मानता था। इस दृष्टि से
बहुत लिखता भी रहता था। अपने संपन्न
मित्रों को प्रेरित कर यहां हजारों रुपये
लगवा भी दिये थे, दरवाजे बना दिये,
मार्बल लगवा दिये, बड़ा नंदीगण बनवाया,
मूर्ति के लिए बेशकीमती कपड़े बनवाये,
सभा मंडप बनवाने की योजना भी
चल ही रही थी, हाथी की झूल बनवायी,
महाकाल के कुंड के लिए कलेक्टरों से
लड़ पड़ा। सवारी के सुधार के लिए
अधिकारियों को मजबूर किया, पंडे-
पुजारियों में से कुछ ने सदैव अपने स्वभाव-
वश विरोध भी किया, पर वह बड़ा ही
अजीब आदमी था। जिसके पास पहुंच

हिंदी डाइजेस्ट

कर कुछ कर देने को कहा वह सहज तैयार हो जाता। कोई भलाई का काम हो, करने से नहीं हिचकता। पर कहीं उसने नाम नहीं चाहा, न लिखा, न पत्थरों पर खुदवाया ही। वह चाहता तो कौन रोकता ?

मंदिर के कंपाउंड का बड़ा द्वार बनवाया था, बिना किसी अधिकारी से पूछे। उसने पुराने बने हुए दरवाजे, को तुड़वा डाला, कलेक्टर को थोड़ा मन में मिनिस्ट्रों का डर था, पर व्यासजी को नहीं था। मिनिस्टर आये और दरवाजा टूटा हुआ देखा। हैरान हुए। कलेक्टर से पूछा। कह दिया, 'पंडितजी ने तुड़वाया है, नया बनवा रहे हैं।' मिनिस्टर भी चुप। व्यासजी से पूछा। उन्होंने बतला दिया कि ८० हजार रुपये लगाकर नया बनेगा। नक्शा भी बतला दिया। बस दरवाजा बन गया।

अजीब हाल था, साहस भी खूब। कोई बुरा काम तो था नहीं कि चौंके। सभी इज्जत करते थे। पर उसने अपने लिए कोई फायदा नहीं उठाया। यही उसके मार्के की बात थी। राजों-महाराजों से भी उसके गहरे रिश्ते थे, तो लीडरों और क्रांतिकारियों से भी अपनापन था। पता नहीं वह दोनों से कैसे निवाह लेता था। स्वाभिमानी ऐसा कि जरा-सी बात पर बिदक जाता था, रिश्ता रखते हुए भी व्यवहार तोड़ लेता था। महाराजा को इन नाजुक बातों का बहुत ख्याल

नवनीत

रखना पड़ता था। वह चाहता तो सब कि बहुत बड़े-बड़े महाराजों, मिनिस्ट्रों, राष्ट्रपति से धन, मान, पद बटोर लेता, किंतु 'ब्राह्मण' ही बना रहा। संकटों को सहा, आय हुए पैसे को पीछे फेर दिया। महाराज होल्कर से बरसों बड़ी रकम हर महीने मिलती थी। कुछ बात पर स्वाभिमान की ऐंठ में ठुकरा दी। राष्ट्रपति ने कुछ देने का इस्सार किया, तो महाराज ग्वालियर के सामने सिर पर चढ़ाकर सादर अस्वीकार कर दिया। काश्मीर में श्री हक्सर ने भी बड़ी रकम प्रस्तुत की, नहीं ली। और महाराज ग्वालियर ने युवराज के जन्म के समय पांच हजार का 'चेक' उसके संपादित 'विक्रम' मासिक के लिए पुरस्कार के लिए भिजवाया। कुछ घंटों में ही वापस डाक से लौटा दिया। अच्छे भले चले हुए 'विक्रम' को सिर्फ इसी कारण बंद कर दिया। साल भर बाद जब फिर 'विक्रम' शुरू किया तो उसमें यह सारा किस्सा मग्न चेक के नंबर, पत्र-व्यवहार के (प्रथम अंक) में छाप दिया।

चाहे उसने अपने त्याग पर तसल्ली की हो, पर जिसने सुना उसने मूखता ही माना। जमाने को देखते हुए ही मानना होगा। रुपया लौटाने में कौन-सी अक्लमंदी थी ! लेकिन पंडिताऊ-अकल को क्या कहा जाये, उसने रुपये न लेकर ही तसल्ली की सांस ली।

विश्वविद्यालय बनवाने की बात उठाई

जाइयां मोल लीं, मिनिस्टरो से मन-
 दाव हुआ, परवाह नहीं की, सनक जो
 गरी। विक्रम विश्वविद्यालय बन गया।
 विक्रम कीर्ति मंदिर के लिए प्रयत्न किया।
 विक्रम स्मृति ग्रंथों के लिए काम किया।
 त्यों में कई उलझनें आयीं। मित्रों से,
 त्यों से मुकाबला किया, और बनवा के
 जा। जिद्दीपन भी इस तरह का। उसमें
 की लाभ-हानि थी? क्यों टक्कर
 ना था? पर कौन कहे, एक बार तय
 गया, बस किया, पागलों की तरह लगा
 हा।

उसमें बहुत बड़ा दुर्गुण यह रहा
 कि वह अपने घर से बाहर उठकर ही
 जाये। इससे बहुत लोग नाराज रहे।
 किसी ने उसे अहंकारी समझा, ऐंठवाज
 मत्ता, पर कोई असर नहीं। जहां तक
 समझ पाया था उसमें ऐसी कोई ऐंठ
 ही थी। हां, घर में बैठने के आदी हो
 जाने से झेंप जरूर बढ़ गयी थी। लोग
 ने बड़ा समझने लगे थे। वह इस बड़प्पन
 से मुसीबत से भी कम हैरान नहीं रहा।
 रोप भी वह गया था, काफी घूमा भी,
 जाने शायद वहीं से समय की पाबंदी
 खली थी। सुबह पांच बजे से शाम
 तक बराबर काम में लगा ही
 जाता। आज के काम को कल पर न
 छोड़े। जो कहा उसकी पूर्ति करे। पर
 मिजाज इतना कि १० बजे सुबह
 जाने के लिए उठ जाने पर २ बजे तक
 किसी से न मिले। उस समय कोई पहुंच

जाये, नाराजी चाहे ले ले, पर मिलने से
 सफाई के साथ इंकार कर दे। कई लोगों
 को इससे बहुत बुरा लग जाता, पर उसे
 उस समय किसी का आना-जाना कतई
 नापसंद हो जाता। बड़े-छोटे का कोई
 ख्याल नहीं करता। इससे उसे हानि भी
 उठानी पड़ी। कई ने प्रचार भी किया,
 पर वह अपने उसूल पर अडिग बना
 रहा। हां, इस पाबंदी से वह अपना काम
 ठीक समय पर कर लेता था। इसी तरह
 ठीक पांच बजे से वह शाम को खाने पर
 उठ जाता, और किसी कीमत पर कोई
 काम नहीं करता। उसके विपरीत यह
 भी देखा कि वह धंधे को छोड़ अपने मित्रों,
 आत्मजनों का काम चाहे रात को १२
 बजे भी पहुंच जाये, करने को तैयार
 रहता। जहां कुछ बुराइयां थीं, वहां कुछ
 अच्छाइयां भी थीं। जब पैसा जेब
 में हो एक मिनट का संकोच न कर वह
 दे देता था, चाहे दूसरे क्षण उसे कठिनाई
 उठानी पड़े। इसलिये राजों-महाराजों
 के साथ रहकर भी धन जुटा न सका।
 बड़े परिवार की जिम्मेदारी सिर पर
 उठा कर भी वह पैसे के लिए लापरवाह
 रहा। कमाया भी कम नहीं, पर जितनी
 प्रसिद्धि, इज्जत कमाई-पैसा उसके पासंग
 में नहीं। लेकिन कभी किसी से कर्ज नहीं
 लिया, मांगा नहीं, सिर पर किसी का
 देना नहीं रखा। अपने लिए, किसी अपने
 से भी लेने में सदा कतराता रहा। पास

(शेषांश पृष्ठ ५८ पर)

हिंदी डाइजेस्ट

डा. शिवनन्दन कपूर

प्राचीन भारत में नौका-निर्माण कला

अन्य अनेक कलाओं की भांति, नौ-कला भी प्राचीन भारत में चरम उन्नति पर थी। नावों के अनेक प्रकार, रोमांचक जल-यात्राओं के उल्लेख, व्यापार, तथा मनोरंजन में नावों का कलात्मक योग इसकी पुष्टि करता है। मोहेनजोदड़ो में प्राप्त एक आयताकार मुहर में नौका का अंकन है।

वैदिक-युग

‘ऋग्वेद’ में ‘शतारित्रा’ अर्थात् सौ पतवारों वाली नाव का वर्णन प्राप्त है (१।११६।५)। राजर्षि तुष्ट अपने पुत्र भुज्यु को किसी दूर द्वीप पर आक्रमण हेतु भेजते हैं। (ऋ० १।११६।३)। उसकी नाव डूब जाती है। अश्विनियों ने सौ पतवारों वाली नाव लेकर, उन सब की प्राण-रक्षा की। वरुण समुद्री-यात्राओं के ज्ञाता हैं (ऋ० १।२५।७)। विदेशों को भी नौ-यात्राएं की जाती थीं (१।५६।२) वशिष्ठ और वरुण साधन-संपन्न नौका में यात्रा करते हैं (७।८८।३, ४)।

रामायण तथा महाभारत काल

‘रामायण’ में नौ-कला ही नहीं नौ-सेना का भी उल्लेख है। नौकाएं ऊपर से आच्छादित भी होती थीं (१।४५।६)। राम को लौटाने जाते भरत को गुह ने

आक्रमणकारी माना था। उन्होंने तत्काल पांच सौ नावों को उनका मार्ग रोकने का आदेश दिया था। ऐसी प्रत्येक नौका पर १०० जल-सैनिक सवार थे— ‘नावं शतानां पंचानां कैवर्तानां शतं शतं सन्नद्धानां तथा यूनां तिष्ठन्तिवत्यभ्युद्यतः’ (२।८४।८)

उनके उद्देश्य का ज्ञान होते ही, मेरु के पार होने की व्यवस्था भी गुह करते हैं। इस बार सफेद कंवल बिछी, घंटा, फल-फूलों से शोभित विशाल नावों का प्रवेश होता है (२।८९।११)।

‘महाभारत’ में भी नौ-वाहिनी का उल्लेख है। सहदेव ने दूर सागर-द्वीपों के वासी राजाओं को वशीभूत किया था। ‘कर्ण पर्व’ में समुद्रमार्ग द्वारा व्यापार तथा वणिकों के सागर में आपत्ति-मुक्ति होने का भी संकेत है (‘विपन्ननावो वणिक् यथार्णवात्’)। विदुर द्वारा भेजी नौका जिस नौका पर पांडव अपने प्राण बचाते हैं, वह नौका यंत्र से संचालित होती है। वह मन के वेग जैसी गति बख्ती है (मनोमाहृतगमिनी) यांत्रिक नौका होने के कारण ही वह विपरीत वायु-विरोध को भी सह सकती है (सर्ववातान्तरात्)। नाव यंत्रयुक्तां पताकिनीं (आदि पर्व)

नावों का बीमा

प्राचीन भारत में नौका-साधारण अत्यधिक उन्नति पर था, अपितु व्यापारियों के वाणिज्य-संघ भी होते थे। नावों का तथा नौका में निहित सामग्री का भी बीमा होता था। नाविकों को अपराध से सामग्री को हानि पहुंचने से उन्हें अपने अंश से 'भुगतान' करना पड़ता था—

तावि किचिद्वाशानां विशीर्येतापराधतः।

शरीरेव दातव्यं समागम्य स्वतोऽंशतः॥

नौयायिनामुक्तो व्यवहारस्य निर्णयः।

सापराधतस्तोये दैविके नास्ति लिग्रहः॥'

पुराणों में भी नौका-भेदों तथा

जल-सेनाओं का विवरण प्राप्त है।

इतनाबहु वस्तुतः सहस्र जल-पोतों का

सामी था। 'बाहु' शब्द सेना का वाची रहा

। उसकी सेना के साथ समुद्र का योग

स्य-पुराण' में भी है (अ० ४३।६।४०)

। अपनी 'बाहुओं' से समुद्रों को आलो-

कृत कर देता था।

नौकाओं पर विविध आकृतियों के

सादों का निर्माण होता था। 'हरिवंश

पुराण' में कैलाश, पक्षी, मृग, गरुड़, शूक,

आदि की आकृतियों वाले नौका-

सादों का वर्णन है (२८८।५९।६१)।

कार तथा विस्तार से लघु नौका पौरा-

त-युग में 'पोत' कहलाती थी। जल-

त वाहनों में भी नावों का उपयोग होता था।

नौका-क्रीड़ा के लिए उपयोगी सामग्री ले

ने के लिए विशिष्ट नौका 'यान-पात्र'

कहलाती थी। विस्तृत और वेगवती

नाव को ही 'नौका' की संज्ञा मिली थी।

नृत्य-गीत के अनुरूप विशाल प्रासाद

वाली नाव को 'झिल्लिका' कहते थे।

इन विशाल नौकाओं में उपवन, रथ,

ताल आदि भी बने रहते थे। मणिमय

चित्र तथा मरकत, चंद्रकांत, सूर्यकांत

आदि से निर्मित अनेक आकृतियों के

वैडूर्यमय तोरणों से वे नौकायें सजी रहती

थीं। आज भी उसी परंपरा में कश्मीर

में 'हाउस-बोट' दिखाई देते हैं। वैसे

कश्मीर नरेश प्रवरसेन ने ही सर्वप्रथम



वितस्ता पर नौकाओं का विशाल पुल

बनवाया था। उसी समय से नावों से

पुल बनाने की प्रथा चली। (राज-

तरंगिणी : ३।३५४)।

बौद्ध-जातकों में उल्लेख

जातक-कथाओं में सागर-यात्राओं के

अनेक विवरण मिलते हैं। एक बार

बड़इयों के पूरे गांव के ही विशाल नौका

पर भाग निकलने का वर्णन मिलता है।

(जातक-कथा : ४।१५९)। समुद्र-पार से

हिंदी डाइजेस्ट

आने वाले यात्री, सरिता के मार्ग से वाराणसी तक आ जाते थे। ५०० व्यक्तियों के बैठने योग्य, तथा ३० पतवारों वाली बड़ी नौकायें चलती थीं। भरुकच्छ (भड़ौच) से स्वर्ण द्वीप तक नौकायें जाती थीं। मार्ग में जल-परियों के विचित्र उल्लेख भी जातकों में प्राप्त हैं। स्ट्रैबो ने आमू नदी से कैस्पियन सागर तक वाणिज्य के प्रसार का उल्लेख किया है।

जल-मार्ग से वाणिज्य करने वालों के भी संघ थे। यात्रा-प्रारंभ करने से पहले 'सार्थवाह' पोत को 'पुष्पबलि' देता था। नौका पर रक्तचंदन की थापें लगा कर, समुद्र-पूजा होती थी। ध्वजा-रोहण के बाद पालें चढ़ा दी जातीं। बाजे-गाजे के साथ शुभ-शकुन में यात्रा प्रारंभ हो जाती। सार्थवाह के अतिरिक्त संघ में 'निर्यामिक' (पोत-वाहक), कर्णधार (मल्लाह), कुक्षि-धारक (डांड संभालने वाले), 'गर्भिज्जक' (नाविक) आदि होते थे। राज्य से यात्रा के लिए 'राज्यवर शासन' (आज्ञा-पत्र) लेना पड़ता था। भोजन, जल आदि के अतिरिक्त रक्षा हेतु धनुर्धरों की व्यवस्था होती थी। अंधे यात्रा-निर्देशकों का भी उल्लेख है।

'विनय पिटक' में पूर्ण की छः समुद्री यात्राओं का वर्णन है। राजवल्लीय में विजय की सिंहल-यात्रा के समय, उसके साथ सात सौ कुमारी दासियां तथा रत्न, एवं राजकन्या भी थी। सुत्त पिटक, एवं महावंश में भी ऐसी यात्राओं के वर्णन

नवनीत

हैं। 'संवुत्त निकाय' (३।११५; ५।५१), 'अंगुत्तर-निकाय' (४।१२७), 'दिगंज निकाय' (१।२२२) में दिशा-भ्रम, तथा पक्षियों आदि का उल्लेख है। 'वावेरु जातक' में वावेरु या वेवीलोन से मोरों का व्यापार होने का संकेत है। 'सुप्पारज जातक' (४।१३८) भरुकच्छ से व्यापारियों की अद्भुत यात्रा का वर्णन करता है। निर्देशक के दृष्टिहीन होने हुए भी वे कहीं भटके नहीं। कुशलता से घर लौटे। 'महाजनक जातक' चर्म से स्वर्णभूमि (वर्मा) की यात्रा पर निकल राजकुमार की गाथा कहता है। 'शाख जातक' (६।१५-१७) में एक ब्राह्मण की सिंधु-यात्रा वर्णित है। बनारस रहने वाला वह ब्राह्मण प्रतिदिन छः तांबे के दान देता था। उसकी नौका में छिपे हुए थे। उस समय एक जल-परी उसकी प्राण-रक्षा की। 'सुसोन्दि', 'तंबुल नलि', 'सुहनु' आदि जातकों में नाविकों के द्वारा घोड़ों के भी व्यापार का वर्णन है। निश्चय ही इसके लिए न केवल बड़ी बड़ी अपितु विशेष प्रकार की नावें बनाई जाती रहीं होंगी। 'शाख जातक' में ८० हाथ लंबी, ६०० हाथ चौड़ी, २० हाथ ऊंची, तथा ३ मस्तूलों वाली नाव वर्णित है। महाकाव्यों में

कालिदास ने वंश-देश की नौ-सेना का उल्लेख 'रघुवंश' में किया है (४-३६)। उसे रघु ने अपनी सुदृढ़ नौ-सेना से पराजित कर गंगा के मध्य विजय-स्तंभ स्थापित

था। 'शिशुपाल-वध' में कृष्ण व्यापारियों को भारतीय माल ले जाते हैं। वे वणिज द्वापांतर के हैं (३-७६)। राजकुमार चरित' का रत्नोद्भव दूसरे देशों में ही नहीं जाता अपितु, वहां विवाह करता है। 'कथासरित्सागर' में भी देशों से व्यापार के उल्लेख हैं। 'हितोक्त' में विदेशों से व्यापार कर, रत्न कर लौटते वणिजों का वर्णन है। 'वतसरंगिणी' में एक सांघिविग्रहिक के का टूट जाने से, आपत्तियों में पड़ने का घटना उल्लिखित है।

तथा मुद्राओं में उल्लेख

अजंता की गुफा में राजकुमार विजय का अंका-गमन का दृश्य अंकित है 'महावंश' अनुसार उसके साथ १५०० लोग गये। उसके साथ हाथी-घोड़े भी नौकाओं में थे। दूसरी शती ई. पूर्व की सांची शिल्प-कला में पूर्वी द्वार पर खुरदुरे पत्थरों से बनी नाव उत्कीर्ण है। पश्चिमी द्वार पर उत्कीर्ण नाव मकराकृति है। नाव के बोरोबुदुर के मंदिर में भी भारतीय शिल्प की झांकी है। उस अंकन उस युग की स्मृति सजीव हुई है, जब अशोक-युवराज संकट झेलता नौका द्वारा लाया था। जगन्नाथ-मंदिर में भी इस प्रकार के अंकन हैं। कन्हरी की गुफाओं में वासिष्ठी-पुत्र (१३३-१६२) तथा अश्वमेधी-पुत्र सातकर्णी द्वितीय के शिलालेख हैं। उसमें डूबने व्यक्तियों के पद्मपाणि से बचना करने एवं पद्मपाणि द्वारा उनकी

रक्षा के लिए दो व्यक्तियों के भेजे जाने का वर्णन है। अजंता में क्रीडा-नौकायें तथा सांची-स्तूप पर व्याघ्रमुखी नौकायें भी उत्कीर्ण हैं। आंध्र-देश के पुराने सिक्कों पर भी नौ-यात्राओं का अंकन हुआ है।

मनु ने सिंधु-यात्री ब्राह्मणों को श्राद्ध के अयोग्य घोषित कर दिया था (३-१५८)। 'वैधायन धर्म-सूत्र' में भी समुद्र-यात्रा से जाति नष्ट होने का निर्देश दिया गया था। (२-२-३)। फिर भी नौका-निर्माण तथा सिंधु-यात्रा से भारतीय पूर्ण उदासीन नहीं हुए थे। चंद्रगुप्त मौर्य ने नौ-सेना का प्रथम सुदृढ़ संगठन किया था। (वि. ए. स्मिथ, 'अर्ली हिस्ट्री आफ इंडिया', पृ. १३२)। कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' में 'नौ-निर्माण' की विस्तृत चर्चा के साथ, उस पर एकाधिकार का संकेत है (२-२८)। इसका अधिकारी 'नावध्यक्ष' था। नौ-सेना तट पर पहरा देती, तथा जल-मार्ग से सैन्य सामग्री पहुंचाती थी (चंद्रगुप्त मौर्य, राधाकुमुद मुखर्जी, पृ. २३८)।

नौ-निर्माण-कला

'महाभाष्य' में अनेक प्रकार की नौकाओं का उल्लेख है। 'उडुप' छोटी नौका होती थी। इसे आजकल की 'कौआ' नाव कह सकते हैं (४-४-५)। मशक जैसी 'भस्त्रा' होती थी। लकड़ी के बड़े गोले को खोखला कर बनाई नाव 'उत्संग' कहलाती थी। बांस की बनी 'पनसुइया'

हिंदी डाइजेस्ट

को 'पिटक' कहते थे। 'उत्पट' मछुओं की लंबी नाव थी (महा. ४-४-१५)।

'युक्तिकल्पतरु' में नौ-निर्माण पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। अन्य विज्ञानों की भांति उसमें भी चार वर्णों के आधार पर, चार प्रकार की लकड़ियों का वर्णन है। ब्राह्मण काष्ठ कोमल, हल्का, 'सुघट' अर्थात् जौड़ने में सुकर, क्षत्रिय हल्का और दृढ़; वैश्य मृदु एवं भारी, और भारी लकड़ी शूद्र कही गयी। 'द्विजाति' दो गुणों वाली मिश्रित लकड़ी थी। समुद्र-यात्रा वाली नौकाओं में लोहे के अतिरिक्त अन्य धातुओं की कीलों



का निर्देश है। लौह-कीलों से चुंबकीय चट्टानों का भय था। नदियों तथा समुद्र के अनुसार, नौकाओं के सामान्य, और विशेष भेद थे। सामान्य (नदी-गामिनी) नौकाओं के ये भेद थे—

नाम	लंबाई	चौड़ाई	ऊंचाई
क्षुद्रा	१६ हाथ	४ हाथ	४ हाथ
मध्यमा	२४ „	१२ „	८ „
भीमा	४० „	२० „	२० „
चपला	४८ „	२४ „	२४ „
पटला	६४ „	३४ „	३२ „
भया	७२ „	३६ „	३६ „

नवनीत

दीर्घा	८८ „	४४ „	४४ „
पत्रपुटा	९६ „	४८ „	४८ „
गर्भरा	११२ „	५६ „	५६ „
मंथरा	१२० „	६० „	६० „

इनमें भी 'भीमा', 'भया' तथा 'गर्भरा' अशुभप्रदा मानी गयीं। समुद्रयात्रा उपयुक्त 'दीर्घा' तथा 'उन्नता' नौका थीं। दीर्घा के १० भेद ये हैं—

	लंबी	चौड़ी	ऊंची
दीर्घिका	३२ हाथ	४ हाथ	३ हाथ
तरणी	४८ „	६ „	४ „
लोला	६४ „	८ „	६ „
गत्वर	८० „	१० „	८ „
गामिनी	९६ „	१२ „	९ „
तरी	११२ „	१४ „	११ „
जंघाला	१२८ „	१६ „	१२ „
प्लविनी	१४४ „	१८ „	१४ „
धारिणी	१६० „	२० „	१६ „
वेगिनी	१७६ „	२२ „	१७ „

आजकल लोग किसी भी नाव के तारी, तरणी आदि का प्रयोग कर देते हैं। दीर्घा के भेदों में लोला, गामिनी, प्लविनी दुखद मानी गयीं। समुद्र-यात्रा के लिए उपयुक्त 'उन्नता' के ५ भेद ये थे—

	लंबी	चौड़ी	ऊंची
ऊर्ध्वा	३२ हाथ	१६ हाथ	१६ हाथ
अनूर्ध्वा	४८ „	२४ „	२४ „
स्वर्णमुखी	६४ „	३२ „	३२ „
गभिणी	८० „	४० „	४० „
मंथरा	९६ „	४८ „	४८ „

'उन्नता' में 'ऊर्ध्वा' उत्तम,

४४ " वर्षा गभिणी, मंथरा निःकृष्ट है।
 ४८ " मुखकर बनाने के लिए कनक, रजत,
 ५६ " से सजाते थे। ४ मस्तूल वाली नाव
 ६० " ३, ३ वाली लाल, दो वाली पीत और
 १ " मस्तूल को नील से रंगते थे। केशरी,
 १ " नाग, गज, बाघ, पक्षी, मेढ़क,
 १ " ये आठ 'मुख' भेद थे।

३ " कक्ष के अनुसार भी 'सर्वमंदिरा',
 ३ " 'अग्रमंदिरा', 'अग्रमंदिरा' तीन भेद थे।
 ४ " अश्व तथा महिलाओं वाली 'सर्व-
 ६ " मंदिरा' में चारों ओर कमरे रहते थे। राजा
 ८ " विलास-यात्रा तथा वर्षा के लिए
 ९ " य में 'केविन' वाली 'मध्यमंदिरा' थी।

११ " मल-काल
 १२ " हैमिल्टन के अनुसार, मध्य-युग में भी
 १४ " ली बड़ी नावें थीं कि २०० यात्री जा
 १६ " सकते थे। कुछ जहाज कमरेनुमा मिला
 १७ " बनते थे। एक भाग के नष्ट होने पर
 १८ " तरे से यात्रा हो सकती थी। जहाज
 १९ " नाने के केंद्र कश्मीर, लाहौर, मुलतान,
 २० " सिन्हावादा आदि थे। अबुलफजल ने
 २१ " ही नावों पर सजावट, सुंदर कक्ष, डेक
 २२ " का विवरण दिया है। हुमायूँ ने
 २३ " 'चल-पुल' आविष्कृत किया था।
 २४ " ल जड़े तख्तों से सेना तथा घुड़सवार
 २५ " हो जाते थे (कानून-इ-हुमायूँ)।

विजयनगर में वेंत की 'पनसुइया' चलती
 थी। चमड़े मढ़ी इस नाव पर १५ से २०
 आरोही रहते। घोड़े तथा बैल भी इस
 पर ले जाये जाते थे। मनोरंजन के
 लिए पतला, लंबा, चित्रित, ३० डांडों
 का 'मोरपंख' बजड़ा था। यह मंडप-युक्त
 था। बनारसी बजड़े जैसा। कामा नदी
 के तट पर जहांगीर ने बांस और घास से
 बने 'बंडैल' देखे। उन्हें वहाँ 'शाल' या
 'साल' कहते थे। पथरीली तह वाली
 नदियों में यह काम आती थी (जहांगीर-
 नामा)। बंगाल में सोने-चांदी की बैठक
 वाली 'कोशा' प्रयोग में आती थी। (कस्ने-
 रवां) 'चल-पुल' पर सोने का गुंबज ही
 न था बल्कि उसे समेटा तथा फैलाया जा
 सकता था। हुमायूँ ने ४ ऐसे बजरे बन-
 वाये, जिन पर दो-मंजिले कमरे थे। नावों
 को विशेष ढंग से मिलाते ही अठकोणी
 होज बन जाता था। उन नौका-कक्षों की
 सुंदरता पर उवैत अहमद ने शायरी की
 (अकबरनामा)। नौकाओं पर चलते-फिरते
 बाजार लगते। नौका-उद्यान भी बनाये
 जाते थे (अकबरनामा, पृ.-३६०)।

भारतीय नौकाओं की गतिमयता का
 आतंक १७ वीं शती में भी रहा, जब
 कान्होजी आंग्रे ने विदेशियों को आतंकित
 कर रखा था।

विचार वह जो तुम्हारे हैं, श्रद्धा वह जिसके तुम हो।

अन्याय करने वालों की अपेक्षा अन्याय सहने वाले की स्मृति तेज होती है।

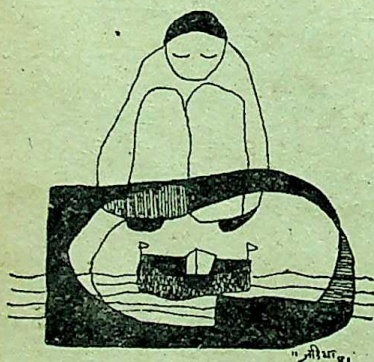
—टालस्टाय

(पृष्ठ ५१ का शेषांश)

में मोटर भी रही, पर पैदल या तांगे से जाने में हिचक नहीं की। दूसरे लोगों ने उसके बारे में चाहे जो भ्रम किया हो, पर नजदीक पहुंचने पर वह उसका बन जाता था।

'विक्रम' मासिक निकाला, ८ साल चलाया, और नाम भी कमाया। पर जरा-सा खटका हुआ, बंद कर दिया। कोई नियमित आमदनी का जरिया नहीं, पर रईसी ठाठ बनाये रखा। अंदर की आह को जवान पर आने नहीं दिया। कहता हूं न कि बड़ा अजीब किस्म का आदमी था।

विक्रम के नाम को उठाया तो देश-भर में चहल-पहल खड़ी कर दी, और कालिदास की धुन सवार हुई तो विदेशों तक ले जाकर चैन ली। देश की जनता का ध्यान आकर्षित करवा छोड़ा। दो हजार साल के बाद कालिदास फिर जीवित हो गया। कितने ही ग्रंथ



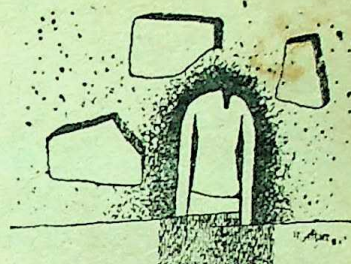
नवनीत

प्रकाश में आये, लेख लिखे गये, संशोधन हो रहे हैं और रूस ने तो शकुंतला पर नृत्य ही तैयार कर डाला। कितनी मर्मांतक व्यासजी स्मारक बनवाने को बड़े बेवकूफ बने रहे।

उसकी लिखने-पढ़ने की आदत बहुत रही। पढ़े बिना चैन नहीं। बात सूझी कि लिख डाली। मुझे है, कि अब तक बहुत से नोट्स लिखे पड़े हुए थे, परिवार प्रपंच में उलझे का कारण लिखने का पूरा प्रसंग न आया, रोटी-रोजी के लिए सतत करते रहना पड़ता था। सहसा वह कहे बिना किसी बीमारी के चला गया।

जहां तक मैं उसके दिल की बात जान पाया था, वह किसी का अहित चाहता था, बुरा करने पर भी मन दुःखी होकर मौन सह लेता था। वह खराब आदमी नहीं था। अफसोस है कि आज वह हमारे बीच में नहीं रहे। लोगों ने, जो आलोचनाएं करते थे, बढ़कर गोपाल मंदिर के मैदान में सभा की, जोश-खरोश के साथ उसकी आत्मा को शांति देने के लिए प्रार्थना की गयी।

एक मित्र ने कहा हमें चंदा उसके साहित्य को संग्रहीत कर प्रकाशित करना चाहिये। दूसरे कहा उसकी प्रमाणित जीवनी प्रकाश की जाये। तीसरे ने बतलाया कि इतिहास



में किस तरह की भावनाएं उठ रही थीं वह बतलाना इसलिये कठिन है कि वह अपने विषय में बहुत कम ही बोलता था।

अंतिम रात्रि को उसके सिरहाने वाले 'पैड' पर निम्न लिखित कविता उसी के हाथों लिखी हुई मिली थी, उसकी अंतर्व्यथा का कुछ आभास उस कविता से मिल सकता है। यह कविता इस प्रकार है—

नाविक, मेरे हृदय-सिंधु में उमड़ रही हैं लहरें,

तू ले जाता कूल—निकट है, मैं जाता हूं गहरे।

पथ में अगणित भंवर पड़े हैं, आंधी है, तूफान,

और निराशा की रजनी है काली कहना मान।

बहने दे, जीवन नौका को

अब मत लगा सहारा।

इस जगती में भार रूप है,

जीवन, सखे हमारा।

—भारती भवन, महाकाल, उज्जैन (म.प्र.)



स्वामी मुक्तानंद परमहंस

आत्मा से बढ़कर कोई तत्त्व नहीं

०००

१४-२-१९८२ को बम्बई के जी. डी. सोमानी हाईस्कूल के विशाल प्रांगण में 'जी. डी. सोमानी मेमोरियल व्याख्यान माला' के अन्तर्गत पूज्य बाबाजी का प्रवचन आयोजित हुआ जिसे हम यहाँ पर प्रस्तुत कर रहे हैं :

०००

सबका बड़े 'सन्मान के साथ प्रेम से स्वागत। यह स्वागत सत्य ही परमात्मा की परमपूजा है। यदि मनुष्य अपना आत्मसंशोधन करके देखे तो वह मनुष्य नहीं, परमात्मा का एक पूर्ण स्वरूप है, वह उसी परमात्मा का एक अभिन्न अंग है। शैविज्म कहता है : 'यथा अत्र तथा अन्यत्र' जो इधर है, वही उधर है, जो उधर है, वही इधर है। महाराष्ट्र में एक बहुत बड़े संत हो गये, जिनका नाम था तुकाराम महाराज। जब उन्हें परमात्मा का साक्षात्कार हुआ तब उनके हृदय से ऐसे उद्गार निकले :

'हेचि तुझी पूजा। आता करीन केशीराजा।
हेचि तुझी पूजा। आता करी केशीराजा।'

हे भगवान्, हे परमात्मा ! मैं तुम्हारी अब ऐसी पूजा करूँगा। कैसी पूजा ?

न वर्जितदिशा। जाय तेथे चि सरिसा।

नवनीत

कौन सी भी दिशा न छोड़ते हुए किसी भी दिशा में जाने पर तू ही है यह समझकर मैं पूजा करूँगा।

न ठेयितां उत्तम-अधम भाव।

उत्तम और अधम भाव इसका ख्याल न रखते हुए तू ही सब कुछ है। इस भाव से सतत नमस्कार करता रहूँगा। इसी परमसत्य के आधार पर मैं आने-लोगों का स्वागत करता हूँ। मनुष्य तक ही मनुष्य है, जब तक वह अपने को नहीं जानता। जिस काल में, जिस समय वह अपने को जान लेता है, वह मनुष्य नहीं, मनुष्य रूप में महेश्वर है। इसीलिये कहा गया है 'आत्मादधिकि किमस्ति तत्त्वम्।' आत्मा से अधिक जगत में है क्या ? यह सब जगत आत्मा के अंदर ही ओतप्रोत है। शैविज्म कहता है—

इतो न किंचित् परतो न किंचित् यतो यतो

६०

यामि ततो न किञ्चित् ।

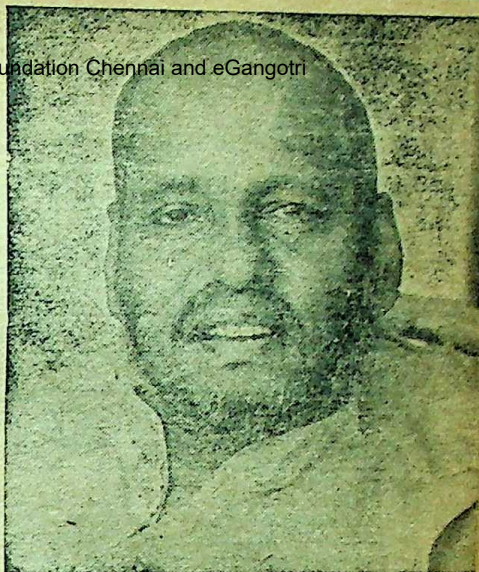
पश्यामि जगन् न किञ्चित्
स्वात्मादधिकम् किमस्ति तत्त्वम् ॥

‘इतो न किञ्चित्’ इधर आत्मा से
कुछ नहीं है, उधर आत्मा से भिन्न
कुछ नहीं । विचार करने से जगत ऐसा
है ही नहीं । इसलिए ‘आत्मादधिकम्
किमस्ति तत्त्वम् ।’ आत्मा से बढ़कर है
जगत में ? कौन सा तत्व है ? आत्मा
ऐसा क्या तत्व है ? गीता में भगवान्
अर्जुन को अनेक प्रकार का बोध दिया
। आखिर उन्हें ऐसा कहना पड़ा,

परतरं नान्यत् किञ्चित् अस्ति
धनंजय ।’

हे अर्जुन ! मेरे से भिन्न इस जगत
और कुछ है ही नहीं । मनुष्य प्रेम
चाहता है, खुशी चाहता है, आनन्द चाहता
है, मस्ती चाहता है और ऐसा भी चाहता
है कि प्रेम की प्राप्ति के बाद उसको छोड़कर
आप कभी चला न जाये ।

यह एक बड़ा संवाद है याज्ञवल्क्य और
मैत्रेयी का । याज्ञवल्क्य की दो पत्नियां
कात्यायनी और मैत्रेयी । याज्ञवल्क्य
महान् ऋषि थे, बड़े-बड़े यज्ञ करते
थे । वे एक दिन अपनी दोनों पत्नियों से
कहे, ‘मैं अपनी पूरी संपत्ति तुम दोनों
को बांटना चाहता हूं ।’ उन्होंने अपनी
संपत्ति का एक हिस्सा कात्यायनी को
कहा और दूसरा अपनी छोटी
मैत्रेयी को । कात्यायनी ने अपना
भाग ले लिया । परन्तु मैत्रेयी ऐसी नहीं



स्वामी मुक्तानन्द परमहंस

थी । वह बहुत समझदार थी । छोटी
उम्र में उसने एक वृद्ध से शादी की थी ।
लोग समझते कि कैसी पागल लड़की है !
मगर पागल जगत था । उसके लिए वह
महान् ज्ञानी पुरुष था । मैत्रेयी ने पूछा,
‘यह तुम क्यों बांट रहे हो जमीन, जाय-
दाद आदि ?’

याज्ञवल्क्य बोले, ‘एकांतवास में
आत्मानुसंधान करके सतत मस्त रहूंगा
और ऐसी मस्ती में रहूंगा कि जो मस्ती
कभी हमको छोड़ न जाय ।’

मानव के अंदर एक महान् मस्ती है ।
एक सुभाषितकार कहते हैं :

ज्ञानामृतं पीत्वा ब्रह्मामृतं पीत्वा ज्ञानो-
न्मत्तयोगिने ।

इन्द्रो सूकरवद् भातिका कथानृपकीटकाम् ॥

परमात्मा के प्रेम का अमृत पीकर जो

हिंदी डाइजैस्ट

उन्मत्त हो जाता है और उसी मस्ती में जो सतत रहता है वह इन्द्र को भी एक सुअर की तरह समझता है, फिर साधारण मनुष्य की क्या बात ?

याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी का संवाद बहुत उत्तम है और पढ़ने लायक भी है। मैत्रेयी के पूछने पर कि 'यह सब छोड़कर तुम क्यों चले जाते हो ?' याज्ञवल्क्य कहता है 'न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः।' द्रव्य से आत्मसंतोष प्राप्त नहीं हो सकता। उस संतोष के लिए और ही कुछ करना पड़ता है। फिर वह परमसुख किसमें है ? मैत्रेयी पूछती है। याज्ञवल्क्य कहते हैं, 'वही आत्मा है।' तदेतत् प्रेयः पुत्रात्, प्रेयो वित्तात्, प्रेयो अन्यस्मात् सर्वस्मात्, अंतरतरं यदयमात्मा।

'हे मैत्रेयी आत्मा द्रव्य से भी प्रिय, शरीर से भी प्रिय, पुत्र से भी प्रिय, पुत्री से भी प्रिय, पति से भी प्रिय, पत्नी से भी प्रिय, वह सबसे बड़ा प्रिय है।' इस विषय में संवाद होते-होते याज्ञवल्क्य मैत्रेयी को एक कथा सुनाते हैं।

हे मैत्रेयी ! मनुष्य जगत में पहले 'द्रव्य' को भारी प्रिय वस्तु समझता है और द्रव्य का संचय करने में अपने सारे आयुष्य को खो देता है। इतना श्रम करता, इतना कष्ट उठाता, न पूरा पेट भर खाता है, न रात भर पूरी निद्रा लेता है, इतने परिश्रम से धन एकत्र करता। क्योंकि 'वित्तः प्रियः।' वित्त बहुत प्रिय

है। पर एक ऐसा प्रसंग आया कि लंबे पर एक बहुत ही खराब आरोप लगाया गया, जिससे उसे देहान्त की सजा हो जाय। तब वह धनवान कहता है, 'बो सरकार, ऐसा मत करो। मैं चाहे जितना आपको धन देता हूं। उस पुत्र को छोड़ दो।' 'वित्तात् पुत्रः प्रियः' वित्त से पुत्र प्रिय है ! वह पुत्र को छोड़ा लेता है। इसी तरह कुछ दिन बीत गये। फिर उसके शरीर में एक असाध्य पीड़ा हो गयी। उसके हाथ में समझो एक नये तरह का रोग हो गया, जिसके कारण उसके हाथ को आधा काटना ही चाहिये। नहीं काटने से उसका वचना मुश्किल था, ऐसा प्रसंग आ गया। वह तैयार हो गया। 'मेरा आधा हाथ जाने पर भी हर्जा नहीं, मगर मैं जिऊं।' शरीर प्रिय होते हुए भी सबसे प्रिय आत्मा ही है। अंत में वे कहते हैं, 'हे मैत्रेयी, सबसे प्रिय आत्मा है। शरीर भी प्रिय नहीं। आत्मा सबसे बड़ी प्रिय वस्तु है।' किसी एक समय बहुत बड़ी बाढ़ आयी थी। एक बंदरी अपने बच्चे को बचाने के लिए उसे लेकर इधर-उधर दौड़के एक नाले के किनारे एक पेड़ पर जाके बैठ गयी। पानी बढ़ते-बढ़ते बंदरी तक पहुंच गया। जैसा-जैसा पानी बढ़ता वैसे-वैसे बंदरी अपने बच्चे को लेकर ऊपर चढ़ती जाती। जब पानी उसके सीने तक पहुंच गया, उसने अपने बच्चे को सिर पर रखा। पानी फिर नाक तक पहुंच

नवनीत

या तो उसने बच्चे को नीचे रखकर उसके
 पर वह खड़ी हो गयी 'आत्मादधिके
 मस्ति तत्वम्।' जगत में आत्मा से
 कर और क्या प्यारा है, अपने बचाव के
 लिए बच्चे को नीचे लेकर बंदरी उसके
 पर खड़ी हो गयी थी।

इसका अर्थ यह है कि सबसे बड़ा
 विषय आत्मा है। इस आत्मा को मनुष्य
 को पाना चाहिये, इसका बारंबार चिंतन
 करना चाहिये। सर्वसाधारण आत्मा
 का वाणी का विषय न होने पर भी उसके
 विहंगम को समझने के लिये श्रुति ऐसा
 बोलती है :

सचिदानन्दलक्षणं ब्रह्म।

जो सत् है, जो चित् है, जो आनंदपूर्ण
 है, उसको आत्मा ऐसा बोलते हैं। 'सत्-
 चित्-आनंद' सत् याने सत्य, चित् याने
 प्रकाश, आनंद याने खुशी। आप संसार
 इसी आनंद को पाने के लिए तड़प
 रहे हैं। मनुष्य संसार के लिए संसार नहीं
 करता, खुशी के लिए संसार करता है।
 व्यापार के लिए व्यापार नहीं करता,
 खुशी के लिए व्यापार करता है और
 कोई भी कला, वह जगत के लिए कला का
 उपयोग नहीं करता, खुशी पाने के लिए
 कला को अपनाता है।

अब सत् किसको कहते हैं यह हमें
 समझना है। सत् सत्य को बोलते हैं। सत्य
 याने सत्यवाणी नहीं। सर्व देश में, सर्व
 काल में, सर्व वस्तु में सतत जो रहता है
 वह सत् है। यदि एक देश में, एक वस्तु

में रहे तो वह सत् नहीं रह सकता, वह
 असत् है। वैसे ही सर्व देश में सर्व काल
 में अंतर-बाहर जो भी कुछ विषय हैं,
 उनको जो समझता, जानता उसका नाम
 चित् है। यदि सूक्ष्म बुद्धि से उसको
 समझने का विचार करें तो रात को हमारे
 सो जाने पर भी जो न सोते हुए जागते
 रहता है और हमारे रात्रि के स्वप्न-प्रपंच
 को निद्रा से उठ जाने के बाद ज्यों का
 त्यों जो बताता है उसका नाम चित् है।
 जो अंतर-बाहर सतत प्रकाशरूप है,
 जिसके बारे में उपनिषद् ऐसा कहती है :
 न तत्र सूर्यो भाति न चंद्रतारकं नेमा विद्युतो

भान्ति कुतो यमग्निः।

जहां सूर्य प्रकाश नहीं कर सकता,
 जहां चंद्र का प्रकाश नहीं पहुंचता, जहां
 विद्युत् के प्रकाश की भी पहुंच नहीं,
 अग्नि क्या प्रकाश कर सकती है? मगर
 जिसके प्रकाश से यह सब वस्तु-जगत
 प्रकाशित होता है उसको चित् बोलते हैं।
 वस्तुतः आत्मा तो सतत प्राप्त है,
 वह अप्राप्त विषय नहीं। वेदान्त का
 कथन है :

**आत्मा तु सततं प्राप्तः अप्राप्तवत् अविद्यया
 तन्नाशे प्राप्तवद् भाति सकंठाभरणं यथा ॥**

आत्मा तो सतत प्राप्त है, वह अप्राप्त
 कभी हुआ नहीं। यदि अप्राप्त हुआ तो
 फिर से उसकी प्राप्ति करने की जरूरत
 नहीं। क्योंकि फिर से वह एक दिन
 अप्राप्य हो जायेगा। उसके पीछे लगने का
 कोई प्रयोजन नहीं। एक ऋषिकुमार ने

हिंदी डाइजेस्ट

एक महाऋषि से पूछा, 'को देवः।' वह परमात्मा कौन है? ऋषि ने उत्तर दिया 'यो मनः साक्षी।' जो तेरे मन का साक्षी है। हमारे मन का साक्षी होने पर भी वह हमारे मन को क्यों नहीं जानता?

याज्ञवल्क्य और जनक राजा के संवाद में याज्ञवल्क्य जनक राजा से कहता है : यो मनसि तिष्ठन् यं मनः न वेद, मनः

यस्य शरीरं

यो अंतरोयमयति अंतर्यामी आत्मा अमृतः।

जो मन में रहकर भी मन जिसको जान नहीं सकता, कारण मन जिसका शरीर है, वह मन में रहनेवाला

अंतरात्मा अमृतरूप याने अमृतमय है। इसीलिये उपनिषद कहती है कि यह आत्मा बड़ा आश्चर्यमय है। 'आश्चर्यवत् पश्यति, आश्चर्यवत् श्रुण्वति।' कोई उसे बड़े आश्चर्य के

साथ देखते हैं, कोई परम आश्चर्य से उसके बारे में सुनते हैं। कथन करनेवाले भी परम आश्चर्य से उसके बारे में कथन करते हैं।

अचरज की बात कछु कही न जात। राम सब ही के साथ अनुभव घट जोर है॥

अरे! क्या आश्चर्य की बात है, राम सबके साथ है। अपने अंदर अनुभवरूप में अपने घट में याने हृदय में वह प्रकाशमान है।

एक अथवा अनेक जो कुछ भी हैं, उनको अंतर से अपने आप में देख लें तो

नवनीन

दिखायी देगा कि तुम्हारे अंदर जो भी कुछ है वह सब कुछ वही है। इसी को ही परमात्मा समझ लो। तेरी देह में ही देव बैठा है। तेरे शरीर में प्रकाशरूप में जो सतंत तुमको समझ देता, तुमको जागृति देता वही परमात्मा जान लो। इसमें कभी संदेह मत करो, जैसे गोद में लड़का और गांव में ढिंढोरी।

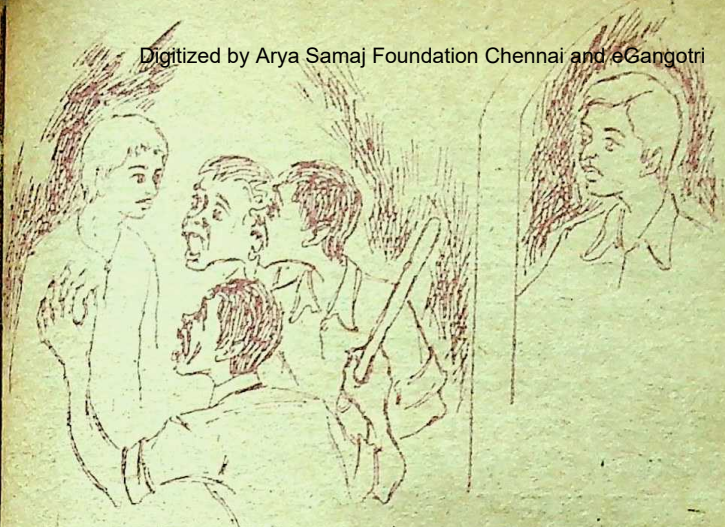
एक बहुत अमीर परिवार में शादी थी। उसकी बहुत बड़ी बारात रास्ते से गुजरती थी। बारात में बहुत सजधज थी, बड़ी रोशनी थी। बँड और दूसरे वाजे भी थे।

बड़ी-बड़ी रंगीन रोशनी भी थी। कारें, घोड़े आदि भी थे। दूल्हा सज-धज करते घोड़े पर सवार था। बारात रास्ते पर से गुजर रही थी। सड़क के किनारे की एक इमारत की पहली मंजिल की किन्नी

कोठी में बच्चेवाली एक अम्मा रसोई बना रही थी। शादी के जुलूस का शोर सुनकर बच्चे को गोद में लेकर जल्दी देखने को दौड़ी। उस औरत के शादियों के कई जुलूस देखे थे। उसकी खुद की भी शादी हुई थी। फिर भी मोह नहीं गया था। वह जुलूस को देखने बच्चे को गोद में लेकर दौड़ी ही। उसको बहुत अच्छा लगा। उस जुलूस को देखते-देखते वह अपने को भी भूल गयी थी। अंदर गयी तो देखा रसोईघर में

(शेषांश पृष्ठ १४३ पर)

तो भी
को ही
ही देव
में जो
नागति
इसमें
लड़का
भी थी।
जराती
, बड़ी
भी थी
भी थी
दि भी
करके
बारात
भी।
इमा
किसे
रसोई
जो
जल्दी
रत के
उसकी
र भी
देखने
उसको
को
गली
र में
अप्रेत



हिंदी कहानी

वफादार



डा. राजेन्द्रकुमार शर्मा

अधर भागदौड़, मंत्रियों-नेताओं के
पर चक्कर-दर-चक्कर और यहां-
रोने-गिड़गिड़ाने आदि का फायदा
जूरर हुआ कि मामला जिले के
बड़े अफसर तक आ पहुंचा था-
ल से ! अगर वो बड़ा अफसर डी.
(डिस्ट्रिक्ट एज्युकेशन ऑफिसर)
अन्य दो-चार छोटे-मोटे अफसरान
न कर दे तो , सोचा मैंने-
म चटपट हो जायेगा और मुझे
मिल सकेगी भागदौड़, चक्कर-दर-

चक्कर, रोने-गिड़गिड़ाने से ।

जिले के उस बड़े अफसर से 'कांटेक्ट'
करने की बहुत कोशिश की, लेकिन काम-
याबी नहीं मिल सकी, और तभी मैंने
उसको अलस्सुबह ही, उसके बंगले पर ही,
पकड़ने का विचार किया ।

अलस्सुबह जिले के इतने बड़े अफसर
को उसके बंगले पर जाकर 'डिस्टर्व'
करना उचित तो नहीं था, लेकिन मजबूरी
थी । मजबूरी-हमारी कालोनी में कोई
स्कूल नहीं था, हमारी कालोनी की एसो-

सिएशन ने जमीन, धन और अन्य सुविधाओं का इंतजाम कर लिया था, केवल स्कूल-भवन निर्माण और स्कूल खुलने में कुछ छोटे-मोटे अड़ंगे थे, जो कई कलमों, नोट-शीट्स, टिप्पणियों की वजह से इतने बड़े बना दिये गये थे कि उनको हटाने के प्रयत्नों में दर-करीब एक वर्ष गुजर गया था और तब कहीं आ पाया था मामला जिले के उस बड़े अफसर तक।

बंगले के गेट पर लंबी-चौड़ी 'नेमप्लेट' देख-पढ़कर दिल खुश हो गया कि जिस अफसर की नेमप्लेट और उस पर लिखा नाम इतना सुंदर है तो मन तो इससे भी कहीं सुंदर होगा? नेमप्लेट के नीचे ही एक प्लेट और लगी थी जिस पर बड़े अफसर से बंगले पर मिलने के 'टॉइमिंग्स' लिखे थे, 'टॉइमिंग्स' देखकर, मेरे मन का अपराध-भावबोध इतने बड़े अफसर को बंगले पर डिस्टर्ब करनेवाला कुछ-कुछ कम होने लगा, क्योंकि मैं वहां समयानुसार ही पहुंचा था।

मैं बेहिचक बंगले में घुसा तो भीतरी तामझाम देखकर मुझे लगा, जैसे मैं किसी राजमहल के सामने खड़ा हूं। पूरे जिस्म में दहशत भरने लगी। इधर-उधर देखता हुआ मैं कुछ ही दूरी पार कर पाया था कि सुनाई दिया—'ए, कहां घुसा जा रहा है?'

आवाज की खनक और आकस्मिता ने गोया मेरे पांव ही जकड़ लिये! मैं जहां का तहां खड़ा रह गया। चौंक कर देखा—

नवनीत

दायीं तरफ ये दो युवा स्वस्थ गाँड़, ने ही तरफ लपकते चले आ रहे थे। की टक्-टक् टक्, कड़क कपड़ों की खस्स-खर्र-खस्स और हाथों में डंडे का का मुझ पर ऐसा प्रभाव हुआ कि बारगी तो मैं वहां आने का उद्देश्य भूल बैठा।

'कहां घुसा जा रहा है, वे?' पास आकर एक गाँड़ ने पूछा तो दोनों को ही स्नेहपूर्वक देखा-क्या 'नैलिटी' है? जेब पर, काली-प्लास्टिक-प्लेट्स पर उनके नाम लिखे रमेशकुमार शर्मा, गोविन्दराव देशमुख

उम्र में अपने से छोटे युवकों का तरह से बोलना, मुझे कुछ विचित्र जरूर लगा, किंतु तभी सोचा भी शायद यहां की ग्रही तहजीब हो, अतः भी लापरवाही से बोला, 'ख़ना साँ मिलना है।' और आगे बढ़ने लगा रमेश एकदम सामने आकर बोला, अभी नहीं मिल सकता।'

मैंने गेट की तरफ इशारा करते कहा, 'लेकिन उनसे मिलने का यही तो लिखा है वहां।' और रिस्टवाँच वाला हाथ उसके सामने दिया।

मेरी इस बात पर दोनों मुस्कराये और गंभीरता से बोला 'जो लिखा है वो होता भी है क्या घड़ी के हिसाब से?'

'और जो होता है वो लिखा जाता

गोंद, मेरे
वे। जूते ?' रमेश ने भी गंभीरता से कहा तो
की वृत्ति झटका-सा लगा कि 'ये' मामूली
डंडे वाली नौकरी करनेवालों के दिलोदिमाग में भी
कि ऐसी इतनी गंभीर बातें घुसी हैं तो... तो
देश का तब ही हमारा देश जागरूक है।
उत्साह से कहा, 'भाई, बातों से तो
'? कदमों खासे पढ़े-लिखे मालूम पड़ते हो
तो देखने में भी खासे तगड़े-स्वस्थ हो,
क्या फिर... फिर ये मामूली नौकरी क्यों
लाली-काली रहे हो ?'

मेरे इस कथन से दोनों के चेहरे फक
गये, तत्क्षण ही आंखों में आद्रता
भाई। पुनः दोनों ने एक दूसरे को देखा,
तब इस बार वे व्यंग्य से मुस्काये नहीं।
बेंच की तरफ इशारा करते हुए
रमेश, 'साव अभी तो
बेंच पर बैठ जाओ और ... !'
बेंच पर बैठ गया तो गोविंद बोला,
काम है साव से, कहीं नौकरी की
गिराई करवाना है, या लिखवाती है
को की शिकायत-विकायत ?'

मैंने हंसते हुए बताया, 'भाई, मुझे न
नौकरी चाहिए, न करना है किसी की
शायत, मैं तो यहां एक नेक काम से
हूँ, समझ लो पुण्य-धर्म का ही
काम है।'

मेरी निष्काम-भावनावाली बात से
भी प्रभावित नहीं हुए वे। बोला
तो ही, 'क्यों पचड़े में पड़ते हो तुम।
और धर्म-कर्म का जमाना तो कभी
न भूल गया यहां !'

'अपना-अपना विचार है, भाई।' मैंने
हंसते हुए ही कहा, 'मुझे आप बड़े साँव से
मिलवा भर दें-बस, वैसे मेरे पास इस
क्षेत्र के विधायक का एक सिफारिशी-पत्र
भी है। मेरा काम हो जाये तो भगवान
का लाख-लाख शुक्रिया।'

वे दोनों झटके से मेरे आजू-बाजू बैठ
गये। रमेश ने आश्चर्य से पूछा, 'क्या
आपको इस क्षेत्र के अमुक विधायकजी
जानते हैं ?'

'मुझे खन्ना साँव के सिवा प्रायः सभी
जानते-पहचानते हैं इस शहर में। क्यों ?'

'तब तो आपकी एंप्लॉयमेंट एक्सचेंज
में भी पहचान होगी ?'

'अच्छी तरह। क्यों ?'

'और स्टील-प्लांट के अफसरों से ?'

'उनसे भी खूब पटती है मेरी। क्यों ?'

दोनों के चेहरों पर मेरे प्रति श्रद्धा
गहराने लगी। झिझकते-झिझकते बोला
गोविंद, 'तब तो आप हमारा भी काम
करवा सकते हैं। हम दोनों बी. ए. पास
हैं। आप एंप्लॉयमेंट एक्सचेंज से हमारा
काँड निकलवा दीजिए और... और स्टील
प्लांट के एकाध अफसर से कहकर कोई
ढंग की नौकरी... नहीं तो सारी उम्र
साँव-मेमसाँव को सैल्यूट करते-करते ही
बीत जायेगी।'

मैं एकदम कोई उत्तर नहीं दे पाया तो
रमेश ने मेरा कंधा पकड़कर, धीरे से
कहा, 'आपको सोच में पड़ने की आवश्य-
कता नहीं है, जानते हैं ऐसे काम फोफट

में नहीं होते, जो भी खर्चा-पानी होगा, हम करेंगे। क्यों, देशमुख ?'

'पांच-पांच सौ देने को तैयार हैं, बाबू साँब।' गोविंद ने कहा, 'क्यों, शर्मा, पोस्ट आफिस में हमारा इतना तो बैलेंस होगा न ?'

मैंने सहानुभूति से कहा, 'देखो भाई, मैं आपका काम करवाने की पूरी कोशिश करूंगा, निश्चित रहें—मेरे प्रयास पैसों की बैसाखियों के सहारे नहीं चलते। लेकिन आप लोग तो खज्जा साब के इतने नज़दीक हैं, कभी कह-कहलवाकर उनसे अपना काम क्यों नहीं करवा लेते ?'

गोविंद ने बंगले की तरफ देखकर धीरे से कहा, 'साँब और हमारा काम करेंगे ! बात करना तक तो मुना है। यहां तो बस संकेतों से काम होता है—संकेतों से।'

'तो कभी मेमसाब से कहकर... !'

'मेमसाब तो साब की भी साब हैं।'

रमेश ने हिकारत से कहा, 'रात-दिन जानवर-सा काम लेती हैं, लेकिन हमारे फायदे की बात सुनना तो उन्होंने सीखा ही नहीं। कभी ये लाओ, कभी वो। कभी बगीचे में पानी दो, कभी धान-गेहूँ-सब्जियों में, और चाय तक के लिए पूछना नहीं—हूँ।'

'तो क्या यहां खेती भी होती है ?'

'देख नहीं रहे—बंगले के आसपास कितनी ज़मीन पड़ी है। यहां फल होते हैं, सब्जी होती है, धान-गेहूँ और अन्य चीज़ें होती हैं और धड़ल्ले से बेचा जाता

है ये सब।'

'बेचा जाता है ?' मैंने आपस में पूछा, 'खाते नहीं ?'

'खाने को तो फोकट का जो बाहर आ जाता है।'

मैंने रिस्टवाँच देखते हुए कहा, 'मैं तो ज़रा मेरी ये—ये पर्ची साब तक पहुँचा दूँगा, नहीं तो 'मिलने का समय' निकल जायेगा और कागज़ के टुकड़े पर पेन खोलकर अपना नाम-काम लिखने लगा।'

गोविंद हंसकर बोला, 'लेकिन साब ने अभी मेमसाब के साथ... शर्म भी तो नहीं आती 'बेड-टी' के वक्त भी एक-दूसरे की ही पलंग पर लेटे रहते हैं दोनों। खानसाब हमारा बता रहा था कि एक दिन तो दोनों मिल जायेंगे।' हालत में सोये थे कि... !'

'अपने मालिक के बारे में ऐसी बातें नहीं करना चाहिए।' मैंने कागज़ की तरफ बढ़ाकर कहा, 'देखो... शायद साब मिलनेवाले कमरे में...'

'भाई साहब,' बात काटकर, मैंने लेते हुए बोला रमेश, 'हम तो महीने देख रहे हैं—साब देर से उठते हैं, नज़र करते हैं, बाँथरूम जाते हैं, फिर नज़र करते हैं और फिर मेमसाब से बात करते हैं और... !'

'और मिलने आने वाले ?'

'दूसरे दिन आते हैं।'

'लेकिन आप तो बता रहे हैं कि रोज़ ऐसा होता है।'

'प्रायः रोज़ ही ऐसा होता है।'

ता गोविंद, 'उम्मीद तो रहती है न ।
हम कितने उम्मीदवार हैं, आप
तो ही हैं ? देखिये न—हम दोनों इसी
सॉव पर रोज सॉव-मेमसॉव को कड़क-
सैल्यूट मारते हैं न कि एक दिन
की कृपा से किसी दफ्तर में बाबू लग
वेंगे, लेकिन.... ! भाई साहब तो
हमारा काम कर देंगे न—वो एंप्लॉयमेंट
बोर्ड से कॉर्ड निकलवा कर, स्टील-
प्लेट में नौकरी लगवाने वाला ?'

न साब ने कहा न, कोशिश करूंगा । मैंने चिंतित-
म भीतर में कहा, 'लेकिन सॉव से मेरा मिलना
एक साल जरूरी है ।'

खानखान हमारा काम करवा देंगे ?' रमेश ने
दोनों ऐसे देवाजी वाली 'टोन' कहा तो मैंने कहा,
कोशिश करूंगा, कहा न, और उम्मीद है
ऐसी जो दोनों का काम हो जायेगा ।'

गज ले तो हम सॉव से आपको मिलवा-
देखो तो ही.... !' उत्साह से बोला रमेश,
मैं... सारी तो खास चलती नहीं, वो ड्राइवर
पटाना पड़ेगा । अभी बुलाता हूं ।

महीनो किन भाई साहब, आपको उसका भी
काम करवाना पड़ेगा ।'

काम ... क्या ?'

उसका लड़का एम. ए. करके बैठा

गोविंद ने बताया, 'उसका भी
निकलवाना है, नौकरी लगवाना
और.... !'

आप लोगों के साथ-साथ उसका भी
कर दूंगा, भाई ।' मैंने ऊबते हुए कहा,
किन सॉव से मिलवाओ तो मुझे ।'

हम

रमेश खट्-खट्-खट करता हुआ एक
तरफ चला गया । कुछ मिलनेवाले और
आ गये थे । गोविंद ने धीरे से कहा,
'भाई साहब, आप चाहे इस रमेश का
और ड्राइवर का काम न करें, लेकिन मेरा
तो.... मेरी मां मेरी शादी के लिए
बहुत जोर दे रही है, लेकिन इस टटपुजिया
नौकरी में शादी क्या दूसरों के लिए करूंगा
मैं—हूं ?'

रमेश एक अघेड़ से आदमी के साथ
आकर बोला, 'ये घनश्याम ड्राइवर है,
सॉव इसको सब समझा दिया है मैंने, ये
आपको सॉव से मिलवा देगा ।'

'कहा न सॉव के पास 'टेम' नहीं है ।'
घनश्याम बोला तो गोविंद उसको एक
तरफ ले जाकर कुछ समझाने लगा । तभी
धीरे से कहा रमेश ने, 'सॉव, बड़ी अक्कड़
है साले इस ड्राइवर को, आप चाहे इसका
और गोविंद का काम न करें, लेकिन मेरा
काम तो आपको करवाना ही पड़ेगा, वो
मेरे पिताजी हैं न, रिटायर्ड होने वाले हैं ।'

गोविंद ने इशारे से मुझे अपने पास
बुलाया । मेरे साथ रमेश भी आ गया ।
घनश्याम ने मुझे शंकास्पद नजरों से घूरते
हुए कहा, 'बाबूजी, हमारा काम हो
जायेगा न ?'

गोविंद ने झिड़कते हुए कहा, 'ये बात
के पक्के हैं, घनश्याम, चेहरा नहीं देख
रहे इनका, क्या शराफत टपक रही है ।'

'आओ मेरे साथ ।' घनश्याम बोला,
'तुम दोनों गेट पर जाओ न ।'

व दोनों चले गये तो धीरे से बोला वह, 'बाबूजी, आपका काम 'ये' नहीं, मैं कर रहा हूँ, इन दोनों का काम आप चाहे करें या न करें, लेकिन मेरे लड़के का एंग्लोयमेंट एक्सचेंज से कार्ड निकलवाकर, स्टील-प्लॉट में नौकरी ! आप वहां बेंच पर बैठिये, मैं देखता हूँ ।'

मैंने स्वीकृति में सिर हिला दिया ।

०००

मैं बेंच पर बैठ गया और बारंवार रिस्टवॉच देखता हुआ, सोचने लगा कि खन्ना साँव से मुलाकात नहीं हुई तो मेरा सारा काम चौपट हो जायेगा । मेरे अपने ऑफिस का समय हो रहा था । गोविंद-रमेश मुझे बराबर श्रद्धा से देख रहे थे ।

मैंने भी समय काटने के उद्देश्य से दोनों को स्नेह से देखा तो वे पुनः मेरे पास चले आये । रमेश ने इस बार रिरियाकर कहा, 'भाई साहब, हमारा काम याद रखियेगा, हमारी ज़िदगी आपकी कृपा से बन जायेगी तो सारी उम्र दुआ देंगे, हम ।'

'हां साँव ।' गोविंद भी बोला, 'सारी उम्र दुआ देंगे हम ।'

गोविंद-रमेश मेरे निमित्त इस तनिक से अंतराल में ही तुम से आप, आप से भाई साहब-साँव, अकड़-हिकारत से रिरियाहट-श्रद्धा तक आ पहुंचे थे, इस तथ्य से मैं ज़रा भी चौंक-चकरा नहीं रहा था, क्योंकि आदमी अपना स्वार्थ सिद्ध करवाने हेतु क्या-क्या नहीं करता है, फिर ये तो..... !

नवनीत

दोनों ने मुझे यह भी बताया कि घनश्याम ड्राइवर का काम तो वैसे भी हो जायेगा, क्योंकि वह साँव-मेमसाँव में मुँह लगा हुआ है, जीप की झूठी 'लाफ' बुक' भरता है और उसको 'अगर कोई कमाई' भी बहुत है । मैंने उनको उन काम करने का पूरा-पूरा आश्वासन दिया तब कहीं जाकर पीछा छोड़ा उन्होंने मेरा

गोविंद-रमेश ने एक कागज़ भी दिया जिस पर उनका सारा विवरण, रजिस्ट्रेशन नंबर और अन्य बातें लिखी थीं । मैंने तभी सोचा कि तभी घनश्याम गया और हंसकर बोला, 'साँव बुरी तरह व्यस्त है, एक ज़रूरी मीटिंग में जाना कहने लगे समय नहीं है, मैंने कहा कि मेरे रिश्तेदार हैं, मिलना ही पड़ेगा चलिये-लेकिन वो मेरे लड़के का निकलवाकर, स्टील-प्लॉट में नौकरी का काम याद रखना-हां ।'

'ये कोई भूलनेवाली बात है ।' मैं उठते हुए कहा, तो बोला रमेश, 'साहब, ये हमारा वाला कागज़ संभाल रखना ज़रा ।'

'हां-हां ।' कागज़ जेब में रखते हुए बोला मैं, तो घनश्याम ने भी कागज़ देते हुए कहा, 'और ये भी, मेरे लड़के की सारी जानकारी है ।' साँव बुला रहे हैं ।'

मैं चलने लगा तो गोविंद-रमेश मेरे साथ चल पड़े । घनश्याम ने तब से कहा, 'तुम अपनी ड्यूटी देखो, साँव

गंगा तो 'सस्पेंड' कर देगा।' ताया कि दोनों ठिठक गये। हम आगे बढ़ गये। वो वैभे भी बोला घनश्याम ही, 'दोनों गधे हैं, भमसांव के, अच्छी भली नौकरी है, फिर भी ठी 'ला... आपको परेशान कर रहे हैं। आप तो 'ऊपर हो लड़के का देखना बस...जाइए को उन...तर, सांव....।'

मैं भीतर घुसा तो हॉल की सजावट
कर दंग रह गया। बड़ी टेबिल के
ऊंची कुर्सी पर बैठे थे खन्ना साँव-
वत्तीस वर्ष का युवक, किंतु आंखें
रहस्यमय कि मुझ पर जादू-सा होने
लगे। मेरे नमस्कार का उन्होंने कोई
जवाब नहीं दिया, तो मैंने कुछ कागजात
के सामने रख दिये।

सरसरी निगाहों से कागजात देखकर
वे, 'कॉलोनी में स्कूल बनवाना
होते हो ?'

‘यस, सर।’ मैंने नम्रता से कहा, ‘कालोनी स्टील-प्लांट एरिया’ में तो बहुत हैं, कालेज भी, लेकिन हमारी कालोनी यहां होने से.... सर, हम भी होते हैं कि हमारी कालोनी में ढंग का खल खल जाये, ताकि वहां के निवा-
सियों के वच्चे भी....’

विधायक ने ये सब लिखा है इस पत्र में।' व्यंग्य से खन्ता साहब बोले, 'तुम लोग समझो कि हम इन विधायकों के आदेशों का काम करते हैं?'

सुर । मैंने बात को गलत तरफ

जाने से रोकने हेतु, नम्रता से कहा, 'विधायक महोदय ने ये-ये आपको आदेश नहीं दिया, बल्कि उस क्षेत्र में स्कूल की आवश्यकता बताते हुए हम लोगों ने चंदा कर लिया है और....'

‘हम सब समझते हैं।’

‘क्या, सर?’

‘बड़े-बड़े लोग टैक्स चुराने, ब्लैक-मनी को व्हाइट-मनी बनाने के लिए मोटा-मोटा चंदा देते हैं।’ वे बोले, ‘और तुम जैसे लोग चंदा खाने के लिए नेतागिरी करते हैं। लिसिन-सरकार ये सब वर्दाश्वत नहीं करेगी अब।’

मैंने नम्रता से ही कहा, 'सर, आपका कथन सही हो सकता है, तो भी स्कूल बनवाने-खुलवाने का पुनीत-कार्य तो हो रहा है न। सरकार को ये सब वर्दाशत नहीं है तो—तो हमारी कालोनी में स्कूल न होना वर्दाशत कैसे-क्यों है ?'

‘सरकार के पास बहुत काम हैं। देश की बढ़ती हुई जनसंख्या को देखते हुए, अगर कोई क्षेत्र स्कूल के अभाव में अशिक्षित भी रह जाता है तो क्या फर्क पड़ता है?’

मैं गंभीरता से बोला, 'ये आप जैसे का नजरिया हो सकता है, सरकार का नहीं ... क्योंकि.....'

‘क्योंकि?’

‘तभी तो आप जैसों के बच्चे हमारे बच्चों पर इस तरह राज करेंगे, जैसे आप

(शेषांश पृष्ठ १३५ पर)



माधुरी शाह

प्रेम की छह मुद्राएं

एक

हाथ तुमने क्या किया !
जलते हुए हिम के शिखर पर
उंगलियों की पोर से क्यों
नाम अपना लिख दिया !

दो

तुम कभी आओ नहीं पर
रात हर करवट
तुम्हारी बांह में मैंने बितायी
हाथ ! कैसी ये सगायी !

तीन

रूप दर्पण में संवारूं
देख ले तू एक पल भी
गुलमोहर का पेड़ हो जाऊं !

चार

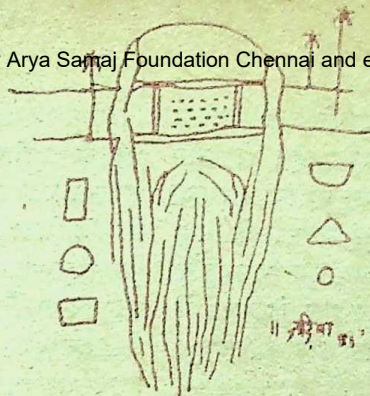
कल कहानी कौन-सी तुमने सुनायी
मैं तो बस एक नाम अपना
इन लवों से सुन रही थी ।

पांच

समुंदर वेचैन है
जाकर उसको समझा दो
कोई हासिल होकर भी कितना
ला-हासिल होता है !

छह

दबे पांव
याद चली आती है,
रात भर
नींद को जगती है ।



आचार्य डा. विजयेन्द्र स्नातक



गुरु-शिष्य की विचित्र जय-पराजय

भारतीय दार्शनिक आचार्यों में श्री कुमारिल भट्ट का नाम मीमांसा-शास्त्र के व्याख्याता के रूप में सुप्रसिद्ध है। उनके शिष्य श्री प्रभाकर भी मीमांसकों के मूर्धन्य कोटि के विद्वान् माने जाते हैं। कुमारिल भट्ट के सिद्धांतों का खंडन करने का श्रेय उनके शिष्य प्रभाकर को ही है। गुरु-शिष्य के विवाद का एक विचित्र प्रसंग श्रुति-परंपरा से अद्यावधि चला आ रहा है। मीमांसकों के संप्रदाय में दो हैं। एक संप्रदाय कुमारिल भट्ट का है जिसे 'तौतातिकमत' कहते हैं; दूसरा संप्रदाय प्रभाकर का है जिसे 'गुरुमत' नाम से अभिहित किया जाता है। गुरुमत संप्रदाय के नामकरण की एक विचित्र कहानी है।

ऐसा कहा जाता है कि प्रभाकर अत्यंत

कुशाग्र बुद्धि और प्रतिभा संपन्न विद्यार्थी थे। अपने गुरु कुमारिल भट्ट की मान्यता को उन्होंने कभी आंख मूंदकर स्वीकार नहीं किया। प्रत्येक विषय पर प्रभाकर स्व-चिंतन को प्रधानता देते और स्व-विवेक के आधार पर उसे ग्रहण करते थे। गुरु से संवाद करना तो उनका स्वभाव था, कभी-कभी विवाद और प्रतिवाद का भी अवसर आ जाता था किंतु प्रतिवाद करते भी मर्यादा का उन्हें हमेशा ध्यान रहता था।

एक बार मरणोपरांत क्रिया कांड के विषय में विद्वानों में मतभेद उपस्थित हुआ। मृत्यु के बाद मृत व्यक्ति की आत्मा की शांति और सद्गति के लिए पिंडदान की विधि का एक पक्ष समर्थन करता था तो दूसरा पक्ष इस विधि को अनावश्यक

मानता था। इस विधि को 'आतिवाहिक पिंड सिद्धांत' कहा जाता है। दो पक्षों में मतभेद होने पर यह समस्या आचार्य कुमारिल भट्ट के समक्ष व्यवस्था के लिए प्रस्तुत की गयी। आचार्य कुमारिल भट्ट ने 'आतिवाहिक पिंड' सिद्धांत के पक्ष में व्यवस्था दे दी। प्रभाकर को अपने गुरु की व्यवस्था से संतोष नहीं हुआ। प्रभाकर ने व्यवस्था का खुलकर प्रतिवाद किया। कुमारिल भट्ट ने अपने शिष्य को तर्क और युक्ति द्वारा व्यवस्था को समझाना चाहा, किंतु प्रभाकर अपने गुरु के तर्कों से संतुष्ट न हो सके और उनका खंडन करते रहे। कुमारिल भट्ट जब प्रभाकर को संतुष्ट न कर सके तो उन्होंने विद्वन्मंडली में कहा कि 'आज यदि प्रभाकर मेरी सिद्धांत-व्यवस्था को स्वीकार नहीं कर रहा है तो भी मुझे विश्वास है एक न एक दिन वह इस सिद्धांत को स्वीकार अवश्य करेगा। और इसका पालन कर इसमें आस्था व्यक्त करेगा।' प्रभाकर अपने गुरु के इस कथन को सुनकर मौन धारण किये रहे, कुछ बोले नहीं।

कुछ दिन पश्चात् नगर में कुमारिल भट्ट की आकस्मिक मृत्यु का समाचार फैला जिसे सुनकर सभी लोग स्तब्ध रह गये क्योंकि उनकी अस्वस्थता के विषय में किसी को कोई जानकारी न थी। चिकित्सकों ने कुमारिल भट्ट के शरीर की परीक्षा कर उन्हें मृत घोषित कर दिया। तब उनके अंतिम संस्कार की तैयारी होने लगी। अंतिम संस्कार के समय

नवनीत

पिंडदान का प्रश्न उपस्थित हुआ। कुमारिल भट्ट के पट्टशिष्य प्रभाकर के समक्ष समस्या रखी गयी और उनसे पूछा गया कि 'आतिवाहिक पिंड' की जो व्यवस्था कुमारिल भट्ट ने स्वीकार की है उसे अंतिम संस्कार के समय अपनाया जाय या नहीं। प्रभाकर एक क्षण मौन खड़े रहे किंतु दूसरे क्षण उन्होंने मुक्तकंठ से 'आतिवाहिक पिंड' व्यवस्था को स्वीकार कर अंतिम संस्कार करने का आदेश दे दिया। सारी क्रिया आतिवाहिक पिंड व्यवस्था के अनुसार पूर्ण की गयी। अब दाह संस्कार के लिए मृतक-यान को कंधों पर उठाने का समय आया तो क्या देखते हैं कि मृतक-यान में चेतना का संचार हो रहा है। कुमारिल भट्ट का मृत शरीर संस्कार से भर गया है और अरथी से उठकर वेदी की मुद्रा में आ गया है। कुमारिल भट्ट का शरीर ऐसी चेतना से उठा जैसे गहरी निद्रा के बाद सोकर मनुष्य उठता है। अरथी के चारों तरफ खड़े सभी लोग विस्मय और हर्ष से विभोर हो उठे। क्या सचमुच कुमारिल भट्ट का देहावसान नहीं हुआ था!

कुमारिल भट्ट ने चारों तरफ खड़े व्यक्तियों की ओर देखा और प्रभाकर से पूछा कि मेरे मर जाने के बाद तुम क्या-क्या क्रियाकर्म किये। प्रभाकर ने अपने गुरुजी को बताया—मरणोपरांत जो विधि-विधान उन्होंने व्यवस्था की स्वीकार किये थे उन्हीं का पालन किया

था। आतिवाहिक पिंड व्यवस्था मर्यादा यथावत् स्वीकार की गयी। कुमारिल भट्ट ने प्रसन्नमुद्रा में प्रभाकर और दृष्टि डालते हुए कहा, 'प्रभाकर ! जीत गये।' (व्यवस्था के विषय में जीत हुई)। प्रभाकर ने बड़े आत्मभाव से उत्तर दिया—'भगवन् ! स्तजितम्।' गुरुदेव आपने मुझे मर कर जीता है। (मुझे जीतने के लिए आपको मरने की प्रपंच करना पड़ा) यह जीत भी जीत है !

कुमारिल भट्ट ने चमूच ही शिष्य को जीतने के लिए मरण का छल किया था। प्रभाकर ने इसे वास्तविक मरण ही समझा। गुरु की जीवित व्यवस्था में तो उन्होंने विरोध करना उचित समझा किंतु मरने के

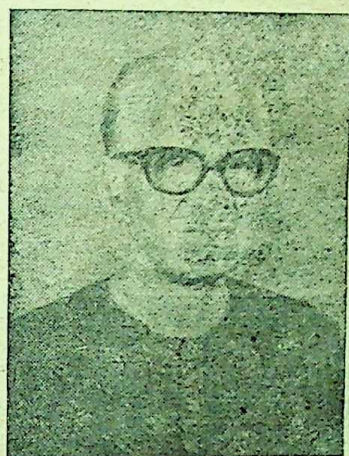
बाद प्रभाकर ने विरोध को समाप्त कर गुरु की प्रतिष्ठा और गुरुमर्यादा को सुगुण रखकर शिष्य के कर्तव्य का निर्वहण किया था।

०००

प्रभाकर ने अपने गुरु कुमारिल भट्ट से जीतने लिए गुरु उपाधि प्राप्त की थी। इसकी बड़ी रोचक कहानी है। गुरु अपने

शिष्य को गुरु की उपाधि देकर गौरवान्वित करे ऐसा दूसरा उदाहरण अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। गुरु-शिष्य के पारस्परिक मतभेद के उदाहरण तो अनेक हैं किंतु शिष्य-महिमा का गान करनेवाले गुरु शायद कुमारिल भट्ट ही हैं।

गुरु-उपाधि प्राप्त करने की घटना इस प्रकार है। कहते हैं कि एक दिन



लेखक

कुमारिल भट्ट अपने शिष्यों को मीमांसा-शास्त्र पढ़ा रहे थे। पढ़ाते समय एक क्लिष्ट पंक्ति पर कुमारिल भट्ट रुक गये। अर्थ स्पष्ट नहीं हुआ तो उन्होंने अपने शिष्यों से कहा कि इस पंक्ति का अर्थ हम कल बतायेंगे। पाठ बंद कर दिया गया। छात्र उठकर चले गये। प्रभाकर वहीं बैठे यह सब

देख-सुन रहे थे। उनके मन में उत्सुकता जगी। आखिर कौन-सी क्लिष्ट पंक्ति है जो गुरुजी को परेशान कर रही है ! प्रभाकर ने चुपचाप पुस्तक उठा ली और क्लिष्ट पंक्ति की संगति विठाने में संलग्न हो गये। पंक्ति में परेशान करनेवाली बात अशुद्ध मुद्रण थी। पंक्ति जिस रूप में लिखी गयी थी वह लेखन या मुद्रण

हिंदी डाइजेस्ट

की अशुद्धि थी। पंक्ति इस प्रकार थी—
 'अत्रापिनोक्तं तत्रापि नोक्तं इति पौन-
 रक्त्यम्।' अर्थात् यहां भी नहीं कहा गया
 है, वहां भी नहीं कहा गया है, इसलिए
 पुनरुक्ति है। जब कहीं नहीं कहा गया
 है तब पुनरुक्ति कैसे हुई! यही समस्या
 थी जो आचार्य कुमारिल भट्ट को परेशान
 कर रही थी। प्रभाकर ने इस पंक्ति को
 कई बार ध्यान से पढ़ा और लेखन की
 अशुद्धि को सहज ही पकड़ लिया। कलम
 उठाई और बिना किसी को बताये पंक्ति को
 शुद्ध रूप से इस प्रकार पुस्तक में लिख
 दिया—

'अत्र तुना उक्तं तत्र अपिना उक्तं
 इति पौनरक्त्यम्' अर्थात् यहां जो बात
 'तुना' अर्थात् तु शब्द से कही गयी है वही
 बात दूसरी जगह 'अपिना' अर्थात् अपि
 शब्द से कही गयी है। इसलिए पुनरुक्ति
 है। प्रभाकर ने 'तुना' और 'अपिना'
 शब्दों का संशोधित रूप देकर क्लिष्ट
 पाठ की कठिन समस्या का सरल हल
 प्रस्तुत कर दिया।

आचार्य कुमारिल भट्ट ने दूसरे दिन
 पाठ पढ़ाने के लिए जब पुस्तक उठाई
 तो उसमें पंक्ति का संशोधित रूप देखकर
 वे विस्मय विमुग्ध हो उठे। उन्हें यह
 समझने में क्षण भर का भी समय नहीं
 लगा कि यह संशोधन प्रभाकर की प्रतिभा
 का प्रसाद है। कुमारिल भट्ट पाठशाला में
 पहुंचे और उन्होंने सब शिष्यों के बीच
 प्रभाकर को 'गुरु प्रभाकर' शब्द से संबो-

धित किया। इस गुरु-उपाधि का ऐसा
 प्रचलन हुआ कि प्रभाकर के मत का
 परवर्ती दार्शनिकों ने जहां कहीं उल्लेख
 किया है 'इति गुरुमतम्' कहकर किया है।
 प्रभाकर अपने गुरु के भी गुरु हो गये।
 विचित्र परंपरा है यह गुरु-शिष्य की।

इसी संदर्भ में कुमारिल भट्ट के 'तौता-
 तिकमत' का उल्लेख करना भी प्रासंगिक
 है। कुमारिल भट्ट के मत का एक नाम
 'तौतातिकमत' है। तौतातिक शब्द का
 अर्थ है—'तु शब्दः तातः शिक्षको यस्य न
 नुतातः तस्येदं मतं तौतातिकम्।' अर्थात्
 'तु शब्द' जिसका शिक्षक है, जिसने तु शब्द
 से शिक्षा प्राप्त की है ऐसे कुमारिल भट्ट
 का मत तौतातिकमत नाम से प्रसिद्ध है।
 ध्यान देने योग्य बात यह है कि तु शब्द
 का प्रयोग क्लिष्ट पंक्ति के संशोधन में
 प्रभाकर ने किया था जिसे कुमारिल भट्ट
 ने स्वीकार कर क्लिष्ट पंक्ति का अर्थ
 लगाया था। इस प्रकार प्रभाकर अपने
 गुरु के भी गुरु बनकर आज दार्शनिकों
 में प्रतिष्ठित हैं। कुमारिल ने मरकर
 प्रभाकर से अपनी व्यवस्था स्वीकार कर ली
 थी, उन्हें मृत्यु का छल करना पड़ा था, उन्होंने
 प्रभाकर ने शब्दों के शुद्ध प्रयोग से गुरुत्व
 विजय प्राप्त कर 'गुरु उपाधि' पायी थी।
 प्रभाकर ने जीवित रहकर अपने गुरु का स्थान
 प्रसाद पाया था। गुरु ने मरकर शिष्य
 पर विजय पायी थी, शिष्य ने जीवित रहकर
 गुरु को प्रसन्न किया था और शिष्यों का
 संसार में गुरु पद का अधिकारी बना था।

का ऐसा
मत का
जल्द
किया है।
हो गये।
की।
के 'तीन-
प्रासंगिक
एक नाम
शब्द का
यस्य न
' अर्थ
ने तु शब्द
रिल भव
सिद्ध है
तु शब्द
गोपन ने
रिल भव
का अर्थ
र अर्थ
गोपन ने
मरक
र कर
डा था।
गुरु
धी धी
गुरु
र जि
जीव
ता और
ना था



अभिलाष कुमार की गुजराती कहानी



झूठ क्या और सच है क्या ?

प्रार्थना शुरू होने में लगभग दस सैंकेंड ही थे। डा. शंकर अपनी आराम सी से उठे, मेडिकल जर्नल बुक शेल्फ में खी और अपने प्रार्थना कक्ष में गये। उन्होंने अपनी प्रार्थना पुस्तक खोली और वे पढ़ने लगे : 'ईश्वर का धन्यवाद करने हमें यह सब आनंद और उल्लास प्रदान किया है, उससे हम प्रार्थना करते कि हमारे हृदयों में अब तक जो भी प्रारं हैं उन्हें वह मिटा दे। वह तुम्हारे हृदयों को दृढ़, निर्मल और पवित्र बनायेगा और तुम उसका सामना निश्शंक रूप से

किसी भी समय, किसी भी क्षण करने में समर्थ रहोगे। पर ध्यान रखो इस सबके लिए ईश्वर चाहता है कि तुम पवित्र, शुद्ध और सत्यवादी हो और उसके लिए तुम्हें यह जानना चाहिये कि सच क्या है और झूठ क्या है ?'

डा. शंकर एक क्षण के लिए मौन रहे। 'क्या सच है, क्या झूठ है' ये शब्द वे बार-बार दोहराते रहे और फिर धीमे और अस्पष्ट स्वर में बड़बड़ाये—'मैं तेरी आज्ञा जानता हूं लेकिन मुझे क्षमा करना, प्रभु ! मैं नहीं जानता कि मैंने जो किया

अनुवाद : सरला त्रिपाठी

वह अच्छा है या बुरा! उन्होंने इच्छा-
देव की प्रतिमा को अंतिम बार देखा और
वे तीव्रता से कमरे से बाहर आ गये।
वे अपने अस्पताल पहुंचे और बिना कुछ
विचार किये सीधे कक्ष नं. ३४ में चले
गये। वे प्रवेश द्वार पर रुके और उन्होंने
रोगिणी पर दृष्टिपात किया। उन्हें उसकी
गंभीर स्थिति आंकने में एक क्षण से अधिक
समय न लगा। अब उन्हें उसके अच्छे
होने की कोई आशा न थी। ऐसी स्थिति
में अन्य कोई रोगी जीवन-संचर्ष में परास्त
हो गया होता किंतु आश्चर्य था कि वह
इतना कष्टप्रद दर्द और मानसिक संताप
लिये अब भी दृढ़ थी। वरना उसकी स्थिति
इतनी दयनीय थी कि उसको देखते ही
मजबूत से मजबूत हृदय भी चूर-चूर
हो जाता।

डा. शंकर ने अपने भावावेश से हुए
कंठावरोध का संवरण किया। रोगी ने
अपने नेत्र खोले, डाक्टर को देखा और
धीमे लेकिन मधुर और स्नेहपूर्ण स्वर में
कहा, 'स्वागत, डाक्टर।'

डाक्टर ने कहा, 'धन्यवाद, शांतिदेवी।'
और शैथ्या के समीप कुर्सी खींच ली।

कमरे में थोड़ी खामोशी के पश्चात् वह
बोली, 'डाक्टर, आपके साथ औपचारिकता
करने की मेरी कोई इच्छा नहीं है परंतु
आपने यहां मेरे लिए इतना किया है कि...'

'बस, बस बहुत हो गया,' डाक्टर ने
उसे वहीं पर रोक दिया। शांतिदेवी के
प्रति उसकी सच्ची भावनाओं से, मृत्यु के

नवनीत

सोमलदेव की उसकी दृढ़ता से जो
उसके अच्छे स्वभाव से वे उतने प्रभावित
हुए थे कि वे ऐसे शब्द और अधिक नहीं
सह सके।

'सॉरी, डाक्टर!' उसने कहा। कुछ क्षण
चुप्पी के बाद, डाक्टर ने सहानुभूतिपूर्वक
दृष्टि से उसे देखा और भावुक स्वर में कहा,
कहा, 'मैं जानता हूं कि आप किस समाचार की
प्रतीक्षा कर रही हैं। ईश्वर आपके मन की
और आपके पुत्र का अच्छा ही करेगा।'

'धन्यवाद, डाक्टर,' उसने भावपूर्ण
स्वर में कहा, 'आप तो जानते हैं कि एक
पुत्र के अतिरिक्त मेरा कोई नहीं है। मैं लगने
इस धरा पर उसके व अपने राष्ट्र के गौरव
के अतिरिक्त कोई कामना नहीं करती हूँ।'

डाक्टर ने स्वीकारात्मक रूप से गंभीर आनंद
हिलाई। शांतिदेवी ने उसी रूप में कहा,
'डाक्टर, मेरे पति ने युद्ध में वीरगति पायी।'
मेरे दामाद को सन १९६२ के युद्ध में
महावीर चक्र से विभूषित किया गया।
मेरा पुत्र अब कश्मीर मोर्चे पर युद्ध
रहा है।'

वह कुछ क्षण मौन रही और फिर बोली,
बोली, 'मैं अब उससे उसकी वहादुरी
साहस के कार्यों और शत्रु-सेना के
विनाश के उत्तेजित समाचार की प्रतीक्षा
कर रही हूँ।' ऐसा कहते-कहते अकस्मात्
उसे खांसी आयी और कफ के साथ कुछ
खून निकल आया। अति आवेश ने उसके
क्षीण शरीर को झिझोड़ दिया और वह
तत्काल निश्चल हो गयी। यह सब एक

में हो गया। डाक्टर ने तुरंत ही इजेक्शन लगाया। धीरे-धीरे दवाई प्रभाव दिखाई देने लगा। रोगी जिदगी लिए संघर्ष कर रहा था। डाक्टर ने आंखों की गहराई तक झांका और कहा, 'अब डर की कोई बात नहीं मेरा विचार है कि आपका पुत्र को गौरवान्वित करेगा। ईश्वर आपको जीर्वाद् दे।'।

०००

जांतिदेवी का निष्प्राण शरीर चिता पर लगे की प्रतीक्षा कर ही रहा था, गौरव मृत्यु भी उसके अंतिम आनंद को न सकी। उसका मुख गौरव, संतोष और आनंद से दमक रहा था। उसकी अंतिम और एकमात्र इच्छा पूर्ण हो गयी। उसका पुत्र परिवारिक परंपरागत वंश वहादुरी और शौर्य को प्रदर्शित करता हुआ शत्रुओं से लड़ते-लड़ते युद्ध क्षेत्र में वीरगति को प्राप्त हुआ था। यह सारा उसे डा. शंकर के अतिरिक्त किसी अन्य ने नहीं दिया था, जिन पर विश्वास करने की बात कोई सोच ही सकता था। ऐसा व्यक्ति जो इतना सच्चा, सनेही और सत्यवादी हो। 'सत्यवादी' (?) डा. शंकर मन ही मन बोले। वे पुनः अपने इष्टदेव की प्रतिमा के सम्मुख खड़े हुए। उनके झुके नेत्र, दोषी अंतरात्मा और निर्वाक्य प्रदर्शित कर रहा था कि संपूर्ण जगत् में कुछ गंभीर गलती हो गयी थी।

संभवतः इष्टदेव की प्रतिमा भी स्वयं आश्चर्यान्वित थी कि डा. शंकर ने क्या गलत किया है।

'भगवन्, मुझे क्षमा करो, मैं दोषी हूँ,' डाक्टर बड़बड़ाये। वहां सन्नाटा छाया हुआ था। 'हां, मैंने शांतिदेवी से झूठ बोला है, मैं झूठा हूँ, मुझे दंड मिलना ही चाहिये।' उन्होंने अपनी जेब से एक पत्र निकाला और प्रतिमा के चरणों में रख दिया तथा कहा, 'यह वह पत्र है जो मुझे उस वहादुर वृद्धा स्त्री के कायर पुत्र से प्राप्त हुआ था। अब तुम्हीं मुझे बताओ कि मैं कैसे उसके सामने यह पढ़कर उसके हृदय को, उसके अरमानों को चूर-चूर कर सकता था और उसकी जीवन-यात्रा के अंतिम चरण को दुःखद बना सकता था?' प्रतिमा के चरणों में रखा हुआ पत्र ऐसा लग रहा था कि जैसे अपने अस्तित्व पर वह स्वयं लज्जित हो। पत्र इस प्रकार था।

'प्यारी अम्मा,

तुम जब यह पत्र पाओगी तब मैं इस पृथ्वी पर अपना लज्जाजनक चेहरा तुम्हें दिखाने के लिए स्वतंत्र नहीं रहूंगा। युद्धक्षेत्र से भाग निकलने के मेरे कायर असफल कृत्य की वजह से मेरा कोर्ट-मार्शल हो गया है। मैं नहीं जानता हूँ कि मैं इतना कायर कैसे बन गया और युद्ध रणक्षेत्र से भागने की इच्छा कैसे हुई।

अब तुमसे केवल एक ही प्रार्थना है कि
(शेषांश पृष्ठ ११५ पर)

हिंदी डाइजेस्ट

जशवन्तलाल नटुभाई



समाचार पत्रों की स्वतंत्रता के सेनापति नानासाहब परुलेकर

‘नानासाहब’ के नाम से प्रसिद्ध डा. नारायण वीकाजी परुलेकर का १९७३ की ८ वीं जनवरी को निधन हुआ था। उनके निधन का आज दसक बीत चुका है, तब समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता के लिए उनका संघर्ष याद आता है। समाचार-पत्रों का मूल्य और पृष्ठ-संख्या की कानूनी मर्यादा के समक्ष उन्होंने संघर्ष छेड़ा था।

नानासाहब का जन्म बेलगाम जिले के गोदीची नामक गांव में हुआ था। उनकी ज्ञान-पिपासा इतनी अधिक तीव्र थी कि वे पैदल ही पूना पढ़ने गये। उनके पिता का अवसान हो गया था और अन्य कोई सहारा नहीं था। ‘पूना विद्यार्थी गृह’ और अन्य संस्थाओं में रहकर उन्होंने फर्ग्युसन कॉलेज से एम. ए. किया और उसके बाद अमरीका जाकर कोलम्बिया यूनिवर्सिटी से पत्रकारिता की उपाधि प्राप्त की। अमरीका में रहकर उन्होंने तमाम कठिनाइयों का सामना किया।

१९३२ में उन्होंने दैनिक ‘सकाल’ का

नवनीत

प्रकाशन शुरू किया। उसकी छपाई कुरुक्षेत्र में थी और वह सामान्य लोगों तक पहुंचता था। १९६० तक दैनिक संस्करण की छपाई ५२,००० तथा रविवारीय संस्करण की ५६,००० थी। मराठी भाषा का जनता अग्रणी अखबार माना जाता था। स्वतंत्र था। किसी राजनीतिक दल के साथ यह जुड़ा हुआ नहीं था। विवादों को भय प्रश्नों के लिए जनता ‘सकाल’ से मार्गदर्शन प्राप्त करती थी। १९८२ में कठिनाइयों से गुजरते हुए इस दैनिक पचास साल पूरे किये।

१९६०-६१ में नानासाहब ने संघर्ष किया वह स्मरणीय रहेगा। यह कहना यदि कानून की पुस्तकों में ही रह जाता, तो समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता खतरे में पड़ जाती। फिर तो दैनिक समाचार-पत्रों का मूल्य निर्धारण करने के अधिकार का उपयोग इस तक करती कि ‘सेन्सरशिप’ की अवस्था तक ही न पड़ती।

१९५६ में सरकार ने ‘न्यूज पेपर्स

प्राइस एंड पेजेज एक्ट १९५६' पास किया। १९६० में दैनिक पत्रों की पृष्ठ-संख्या का अधिनियम संशोधन के बाद प्रकाशित किया। आई. ई. एन. न इसका विरोध किया, परंतु कानून में संशोधन होने के बावजूद उन्होंने उसका आधार बदल दिया था।

नानासाहब ने अकेले ही इस अधिनियम के कानून का विरोध किया। इस अधिनियम के आधार पर पृष्ठ-संख्या और संस्करण की संख्या तथा प्रकाशकों के छापने तथा बिकने पर प्रतिबंध लग जाता था। इस नियम को भंग करने वाला सजा से मुक्त पात्र होता। नानासाहब की देखवास्त अंत में सर्वोच्च न्यायालय के पांच न्यायाधीशों की बैठक के समक्ष पेश हुई।

'सकाल' का दैनिक अंक पांच दिन छह पृष्ठों का और एक दिन चार पृष्ठों का निकलता था। उसकी कीमत ७ पैसे थी। शनिवार का अंक दस पृष्ठ का रहता था और उसकी कीमत १२ पैसे होती थी। इस कानून के लागू होने से नाना साहब को या तो पृष्ठ कम करने पड़ते अथवा कीमत बढ़ानी पड़ती। यदि कीमत बढ़ा जाती तो नाना साहब को वर्ष में

१,४०,००० रुपये मिल सकते थे, परंतु नानासाहब की दृढ़ मान्यता थी कि दैनिक पत्र की कीमत तय करने का अधिकार अन्य किसी को नहीं, स्वयं उन्हें है। यह पत्र कभी पांच पैसे का हो सकता है, तो कभी एक रुपये का भी हो सकता है। इसके अलावा नानासाहब को लगता कि इस नियम से अपनी इच्छा

या आवश्यकता के अनुसार अंक प्रकाशित करने के अधिकार पर भी अंकुश लगेगा। हमें केवल दो ही अंक प्रकाशित करने की अनुमति मिलेगी—एक २६ जनवरी का और दूसरा १५ अगस्त का। इन अंकों के अलावा विशेष अंक निकालने के लिए सरकार से अनुमति लेनी आवश्यक होगी।



नानासाहब परुलेकर

इस अधिनियम की धारा १९(१) अ और १९(१) जी का विरोध किया गया। प्रथम आपत्ति अखबार की स्वतन्त्रता के नाम पर उठायी गयी थी। दूसरी आपत्ति मालिक के व्यवसाय में दखल देने के लिए उठायी गयी। इन दोनों ही मुद्दों पर सरकार ने इस अर्जी का विरोध किया। दुर्भाग्य से छोटे अखबारों ने सरकार का अनुमोदन किया था। नानासाहब ने

सरकार की आपत्ति का उत्तर देते हुए कहा कि १. अखबारी कागज को बेचने, २. मुद्रण-यंत्रों और यंत्रों के पाटों के लिए लाइसेंस देने, ३. पत्रकार और गैरपत्रकार का वेतन निश्चित करने, ४. विविध मामलों में प्रेस रजिस्ट्रार को विवरण नोट कराने में, ५. सरकार की सुविधा के अनुसार विज्ञापन देने के अधिकार सरकार अपने पास रख सकती है। परंतु १. ए. बी. सी. का अखबारों पर नियंत्रण है। २. यदि सरकार कीमत तय करेगी तो समाचार-पत्रों पर मालिकों की कोई सत्ता नहीं रहेगी। उनके मतानुसार यह कानून वाणी-स्वातंत्र्य पर अंकुश लगाता है, जो संविधान की धारा १९(१) अ के विरुद्ध है।

सर्वोच्च अदालत ने १९६१ में ६ अक्टूबर को अपना निर्णय सुनाया और अधिनियम को गैर कानूनी ठहराया। नानासाहब की बातों को न्यायसंगत माना। निर्णय किया कि 'एक नियम के आधार पर मिली हुई छूट दूसरे कानून द्वारा वापस नहीं ली जा सकती।'

दैनिक पत्रों की स्वतंत्रता के लिए यह अनोखी विजय थी। आज भी उन्हें वह अधिकार प्राप्त है।

अपील करने पर यह बात सर्वोच्च न्यायालय के सामने फिर से उपस्थित हुई, तब न्यायमूर्ति रेने विलियम ब्लैकस्टोन का दृष्टांत प्रस्तुत किया।

'राजनीतिक बुद्धिमत्ता और नीतिमत्ता,

नवनीत

विचार-विनिमय की स्वतंत्रता से टिकी रहती है, ऐसा नागरिकों का विश्वास है। यह तभी संभव है, जब विचार-विनिमय के माध्यम स्वतंत्र हों।'

'प्रजा को सत्य जानने और उस पर चर्चा करने की स्वतंत्रता मिलने पर सब कुछ ठीक रहता है।' ऐसी पुरानी उक्ति के आधार पर ही जनता की सरकार के प्रति श्रद्धा बनी रहती है। प्रत्येक गणतंत्र का आधार अखबारी स्वातंत्र्य है। जैसा सोचो वैसा लिखो। प्रजा के विचारों का समाचार-पत्र प्रतिनिधित्व करते हैं। कौन-से विचार उचित हैं, यह कहने का अवसर समाचार-पत्र जनता को देते हैं। इसके लिए अखबारों की स्वतंत्रता कायम रहनी चाहिये। मूल्य अथवा पृष्ठ-संख्या की मर्यादा समाप्त कर उन्हें नयी आवृत्ति अथवा नये समाचार-पत्रों को निकालने देकर अखबारी स्वतंत्रता को मजबूत बनाना चाहिये। समाचार-पत्रों को उनकी संख्या निश्चित करने की छूट होनी चाहिये। उन्हें मिलने वाले अखबारी कागज की सीमा में रहकर उनकी प्रतियाँ छापने की और नये पत्र निकालने की स्वतंत्रता होनी चाहिये।

'सकाल' की मर्यादा को बिगाड़ने का प्रयत्न होने के बावजूद उसकी मर्यादा सुरक्षित रही। यह कानून की पुस्तकों में ही रह गया होता तो १९७५ में लगाई गयी सेंसरशिप की आवश्यकता न पड़ती। सरकार को केवल समाचार-पत्रों की

सिमा ही बढ़ा देनी या कि जिससे अधिकार है, वसा ही अधिकार अखबारी
 सामान्य लोग उन्हें खरीद न सकें। स्वातंत्र्य को होना चाहिये। इसी प्रकार
 अखबारी स्वतंत्रता के झंडाधारियों अखबारों को मूक नहीं बनाया जाना
 चाहिये। यदि ऐसा किया जायेगा तो
 वह लड़ाई जोरदार ढंग से चालू रखें। संविधान द्वारा दिया हुआ मूलभूत अधिकार
 बिहार प्रेस विल' और 'प्रेस कमीशन' की वापस ले लेने जैसा होगा।
 सिफारिश प्रजा के सामने है। इस सिफा- नानासाहब की दसवीं मृत्यु-तिथि
 रण में संविधान में संशोधन करने के पर मैं प्रार्थना करता हूँ कि विचार और
 रण कहा गया है। परंतु वह ऐसा होना वाणी स्वातंत्र्य के अधिकार पर किये गये
 चाहिये कि संविधान और अखबारी आक्रमण को कभी वर्दाश नहीं करेंगे।
 स्वतंत्रता की मूलभूत भावना को धक्का 'सकाल' और 'वेनेट कोलमैन' के
 पहुंचाये। प्रत्येक नागरिक को जिस मुकदमों में स्वीकार किये गये सिद्धांतों
 वह वाणी और विचार-स्वातंत्र्य का के प्रति हमारी सदैव श्रद्धा बनी रहेगी।



गंभीर अंतर का अनुभव

हेलेन केलर को जब वे लगभग ४० वर्ष की आयु की हो चुकी थीं, कांसास शहर
 एक पत्र मिला। जिसमें पत्र के लेखक ने उनसे विवाह करने का प्रस्ताव रखा था।
 केलर ने अपने खास अंदाज में इस प्रस्ताव को दो टूक ठुकराते हुए उक्त प्रेमी को
 खवा था :

'पता नहीं, तुम अंधेपन, वहरेपन और साफ न बोल सकने के तिहरे संताप से
 रिचित भी हो या नहीं। तुमने केवल मेरी पुस्तकें पढ़ी हैं। संभवतः उन्हीं से तुम्हें मेरे
 बारे में गलतफहमी हो गयी है। कोई भी मनुष्य पुस्तकों में शिकायत नहीं लिखता और
 ही विचारहीन और उदासीन लोगों के सामने अपने टूटे हुए पंखों को प्रदर्शित करता
 अपनी खामियों और बेवसी को यथासंभव मुस्कराते हुए चेहरे और ऊंचे विचारों
 ओट में छिपाने की कोशिश करता है। मेरा लेखन मेरे वास्तविक जीवन और आत्मा
 सच्चा दर्पण नहीं है। तुम देख और सुन सकते हो, इसीलिये तुम इसकी कल्पना भी
 कर सकते कि किसी को जब चलने और छोटी-छोटी बातों के लिए भी किसी और
 मोहताज होना पड़ता है, तो जिदगी कितनी दूभर हो जाती है। तुम्हारे पत्र से मैं
 अपनी स्थिति और इसकी कठिनाइयों के बारे में पूर्ण रूप से सचेत हो उठी हूँ। शायद
 अनुमान नहीं लगा पाओगे। लेकिन मैंने तुम्हारे और अपने जीवन के उस गंभीर
 अंतर को अनुभव कर लिया है, जो एक हृद तक सोच से परे है।' -दुर्गाशंकर त्रिवेदी



वीरेन्द्र कुमार जैन



आधुनिकता बोध और महावीर

महावीर कहते हैं कि वस्तु जो इस क्षण है, वही अगले क्षण नहीं है, और फिर भी अपने तात्त्विक रूप में सदा वही है। व्यक्ति जो इस क्षण है, वही अगले क्षण नहीं है, फिर भी तत्त्वतः सदा वही है। आधुनिकता-बोध इसके अतिरिक्त और क्या हो सकता है।

यह जगत दो रूपों में हाथ आता है : कुछ है जो जानता है, कुछ है जो जाना जाता है। कुछ है जो व्यक्ति है, कुछ है, जो वस्तु है। व्यक्ति ज्ञाता है, वस्तु ज्ञेय है। एक व्यक्ति भी जब दूसरे व्यक्ति द्वारा जाना जाता है, तो वह ज्ञेय रूप में घटित होता है; यानी जो कुछ भी ज्ञान का विषय है, ज्ञेय है, वह सब तत्त्वतः वस्तु है। तद्गत रूप से, तात्त्विक अर्थ में, ज्ञाता और ज्ञेय, जड़ और चेतन, सभी अन्ततः वस्तु है, पदार्थ है, प्रमेय है, ज्ञेय है। आधुनिक दार्शनिक भाषा में उसे 'आब्जेक्ट' कहते हैं। यहां तक कि आत्मा जब स्वयं अपने को जानता है, तो वह भी अपने ज्ञान का 'आब्जेक्ट' बनता है।

नवनीत

इस 'आब्जेक्ट' को महावीर ने पदार्थ कहा है। वस्तु भी कहा है। और इसके मौलिक स्वरूप की दृष्टि से अन्ततः इसे द्रव्य कहा है। द्रव्य की परिभाषा करते हुए कहा है कि : 'सल्लक्षणं द्रव्यं' यानी द्रव्य को लक्षण सत् है। सत् की परिभाषा करते हुए कहा है कि : 'उत्पाद-व्यय-ध्रुव्य युक्तं सत्त्वं' अर्थात् यह सत् उत्पाद, व्यय, ध्रुव युक्त है। ये तीनों चीजें जिसमें एक साथ, संयुक्त रूप में पायी जाती हैं, वही सत् है, द्रव्य है। वस्तु है, वही पदार्थ है। द्रव्य का शाब्दिक अर्थ ही यह है कि वह द्रव है, प्रवाही है। परिणामी है। वह स्थिर कूटस्थ नहीं है। वह निरंतर गतिमान है, प्रगतिमान है। वह निरंतर परिणमनशील है। उस सतत नित-नूतन परिणमन होता रहता है : नित-नूतन परिणाम उत्पन्न होता रहते हैं लेकिन मूलतः वह ध्रुव भी है अपने स्वरूप में स्थिर भी है, नित्य भी है। यानी वस्तु अपनी मूल सत्ता में, इयता में अक्षुण्ण है, ध्रुव है, अविनाशी है।

में कुछ ऐसा है, जो शाश्वत अस्तित्व-
मान है। कुछ सतत है, उसी में तो परि-
णाम संभव है। और यह जो शाश्वत,
नित्य, अनिवाशी स्वरूपात्मक तत्व है,
ही वस्तु का ध्रुवत्व है। कुछ ध्रुव है,
जिस स्वरूप में अक्षुण्ण है, कि जिसमें
प्रतिक्षण उत्पाद और व्यय घटित होता
है। कुछ नित्य अस्ति है कि जिसमें
परिणत उत्पत्ति और विनाश का क्रम जारी

इस तरह ध्रुव,
नित्य और विसर्जन
की समष्टि का नाम
ही द्रव्य है। स्थिति
और गति, 'अस्ति'
(बीज) और
'विकर्मिणः' (विकर्मिणः),
दोनों का संयुक्त
ही पदार्थ है।
पदार्थों का समुच्चय
ही जगत् है। सो
जगत् का भी यही
स्वरूप है।

इसी से महावीर

कहते हैं कि वस्तु जो इस क्षण है,
ही अगले क्षण नहीं है, फिर भी
सदा वही है। व्यक्ति जो इस क्षण है,
ही अगले क्षण नहीं है, फिर भी सदा
वही है। जगत् जो इस क्षण है, वही अगले
क्षण नहीं है, फिर भी सदा वही है। इस
जगत् में प्रति क्षण कुछ व्यतीत हो रहा
है, कुछ नया उत्पन्न हो रहा है, और कुछ

है जो नित्य विद्यमान है। जो प्रतिक्षण
व्यय और उत्पन्न हो रहा है, उसे महावीर
पर्याय कहते हैं। पर्याय यानी रूप, जिसे
हम 'फॉर्म' कहते हैं। जो नित्य ध्रुव है
वह तत्व है— 'कंटेंट' है? वह निज स्वरूप
में अवस्थित है। स्थिति है, कि गति
संभव है। ध्रुव है, कि पर्याय संभव है।
कंटेंट है, कि फॉर्म प्रकट हो सकता है।

सार की बात यह कि पदार्थ नित्य-
नूतन है, फिर भी
शाश्वत-सनातन है।
जो द्रव्य है, वह नव्य
ही। नव्यता
उसका स्वभाव है।
जगत् तात्त्विक रूप
से ही नित-नवीन है,
सतत हो रहा है।
और जेय जगत्
प्रतिक्षण नित-नवीन
है, तो इसको जानने
वाले मनुष्य यानी
ज्ञाता चैतन्य तत्व
को भी नित-नवीन



भगवान महावीर

होना ही होगा। ज्ञाता-भोक्ता मनुष्य
स्वभाव से ही नित-नवीन न हो, तो वह
जेय-भोग्य नित-नवीन जगत् को, जान
और भोग ही कैसे सकता है।

इस वस्तु-स्थिति को एक ही शब्द में
कहें तो कहना होगा कि ज्ञाता और जेय
दोनों ही प्रतिक्षण 'अप-टु-डेट' हैं। जगत्
और मनुष्य दोनों ही प्रतिक्षण 'अप-टु-डेट'

हैं। आधुनिकता को इससे अधिक समाधान
परिभाषा और क्या हो सकती है। और
महावीर से अधिक आधुनिकता का द्रष्टा
और कौन हो सकता है? अपने केवल ज्ञान
(पूर्णज्ञान) से ही महावीर वस्तु की इस
अस्तित्वगत (एक्जिस्टेंशियल) स्थिति को
साक्षात् करते हैं। यह आनुमानिक विचार
नहीं, साक्षात्कार है। इसमें विकल्प की
गुंजायण नहीं। सो केवल ज्ञानी महावीर
ही सच्चा 'मॉडर्न' है। वही अविकल्प और
नित्य आधुनिक व्यक्ति है। क्योंकि, वह
अपने निज स्वरूप में निरंतर नित-नवीन
होता हुआ, जगत् को उसके नित-नवीन
स्वरूप में जान रहा है, जी रहा है, भोग
रहा है।

केवली हुए बिना पूर्ण 'मॉडर्न' होना
सम्भव नहीं। केवली होने की साधना ही,
'मॉडर्निटी' को सही माने में जीने की
साधना है। केवलज्ञान यानी पूर्ण ज्ञान
की अवस्था। पूर्ण ज्ञानी होने के लिए
अनिवार्य है कि निरंतर ज्ञानात्मक भाव
से जिया जाये। अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग
में जिया जाये। पूर्ण चैतन्य ही पूर्ण ज्ञान
है : पूर्ण ज्ञान ही पूर्ण चैतन्य है। जो प्रति-
क्षण सचेतनभाव से जीता है, वही प्रतिक्षण
ज्ञान में जीता है। हर क्षण अपने भीतर
उठ रहे भाव, रूप, विचार, क्रिया-प्रतिक्रिया
के प्रति सचेतन रहना है : हर क्षण अन्य
वस्तु, व्यक्ति या जगत् में घटित हो रहे
भाव, विचार, रूप, क्रिया-प्रतिक्रिया के
प्रति सचेतन रहना है। निरन्तर अपने

नवनीत

को और अन्य को देखते-जानते, समझते
रहना है। यही 'अप-टु-डेट' जीवन जीना
है। अपने प्रति और सर्व के प्रति नित्य
संचेतना (अवेअरनेस) के साथ जीना
सही माने में यही 'मॉडर्न' होना है।
यानी निज-स्वरूप और वस्तु-स्वरूप के
प्रति अनुक्षण जागरूक रहना, यही आधु-
निक, अप-टु-डेट जीवन का लक्षण है।
इस अवस्था को प्राप्त करने के लिए
महावीर ने बारंबार अपने प्रमुख अनु-
शास्ता गौतम को यों उद्बोधित किया है,
'इसी से कहता हूँ, गौतम, कि एक क्षण
के लिए भी प्रमाद न कर, प्रतिक्षण अप्रमत्त
भाव से विचरण कर।' मतलब यह कि न
सतत अप्रमत्त रह, जागरूक रह, सावधान
रह : निरन्तर संचेतना के साथ जीव-
यापन कर।

[दो]

आज हम जिसे आधुनिक या आधुनि-
कता-बोध कहते हैं, वह वस्तुतः क्या है?
जो आज का है, जो चलन में है, जो आज
टु-डेट है, वही मॉडर्न है। फिर वह मानव
विचार हो, कि वेश-विन्यास हो, कि केश-
विन्यास हो कि प्रसाधन (टाइलेट) हो
कि भोजन हो कि भाषा हो, कि जगत की
राजनीतिक-आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था
हो, कि मानव-संबंधों की भावनात्मक
स्थिति हो, कि वस्तुओं का नित-नवीन
रूप में आविर्भाव हो, कि नित-नये जीवन-
साधनों का आविष्कार हो, कि नित-नये
ज्ञान-विज्ञान और कला-सर्जन के प्रयोग

समस्त
न जीना
ति नित्य
जीना
जीना है
वस्तु
ही आय
क्षण है
लिए हो
ख अनु
किया है
एक क्षण
अप्रमत्त
यह कि
साधन
जीवन

ये सब जो आज जिस रूप में, सायास, अनायास घटित हो रहे हैं : जिनका रूप में प्राकट्य अनिवार्य है : वही तो अनातन है। यानी वही मॉडर्न है, जो अमान है, अभी हाल है, 'हियर एण्ड थेर' है—अभी, यहां है। यह 'हियर एण्ड थेर' बहुत महत्वपूर्ण है। यानी ता और ज्ञेय की, भोक्ता और भोग्य की, इस क्षण, अभी और यहां जो स्थिति उसमें जीना ही 'मॉडर्निटी' है।

यह आधुनिकता और तात्कालिकता जो आग्रह है, मनुष्य में, यह कोई हज खयाली फितूर या कल्पना की उड़ान ही है। यह कोई अनिष्ट या विभावात्मक (निगेटिव) स्थिति नहीं। जो होना चाहिए, वही यह है। 'है' और 'होना चाहिए' का अन्तर महावीर की दृष्टि में ही है। आदर्श और यथार्थ को अलग-अलग उन्होंने नहीं स्वीकारा। जो यथार्थ वस्तु-स्थिति है, वही आदर्श वस्तु-स्थिति है। उस यथार्थ वस्तु-स्थिति में जीना ही आदर्श जीना है। 'यथार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्' : यानी वस्तु को यथार्थ रूप में अवबोधन (परसेप्शन) करके, उसकी यथार्थ प्रतीति पाकर, उसके दर्शन ही नित्य जानना, जीना, भोगना—सम्यक् दर्शन है, सम्यक् ज्ञान है, सम्यक् चरित्र है। और 'सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चरित्राणि मोक्षमार्गाः'। यानी सम्यक् करने, जानने, जीने की यह सुसंगत स्थिति ही मोक्षमार्ग है, मुक्त जीवन को उपलब्ध

करने का एकमात्र उपाय है। 'उत्पाद-व्यय-ध्रुव युक्त' जो सत् है, पदार्थ, वही यथार्थ, वास्तविक, वस्तु-स्थिति है। वही 'रियालिटी' है—वही 'रियालिज्म' है। इस यथार्थ वस्तु-स्थिति को सम्यक् जानते हुए, जीना ही आदर्श जीना है। इस प्रकार महावीर ने आदर्श और यथार्थ के भेद को ही, वस्तु की मौलिक जमीन पर समाप्त कर दिया है। उन्होंने पाखण्ड के लिए कोई गुंजायश नहीं रहने दी है

महावीर कहते हैं कि वस्तु अपने-आप में ठीक जैसी है, ठीक वैसी ही उसे देखो, जानो : उसके उस स्वभाव की संगति में ही उसके साथ संबंध स्थापित करो। क्या यह नितान्त आज के यथार्थवादी कहे जाने वाले आधुनिक मन की ही भाषा नहीं है ? अन्तर केवल इतना है कि आज का आदमी इन्द्रियों और मन से ग्रहण होने वाली वस्तु की सतही स्थिति को ही समूचा वस्तु-सत्य समझ बैठता है। महावीर का यथार्थवाद इसके आगे जाता है। वह कहता है कि वस्तु के समग्र, मौलिक यथार्थ को जानो : उसके असली स्वभाव को जानो। ऐन्द्रिक-मानसिक अवबोधन (परसेप्शन) उसके लिए पर्याप्त नहीं : एकाग्र, अविकल्प आत्मानुभूति-मूलक ज्ञान से ही यथार्थ वस्तु-स्थिति को साक्षात् करना सम्भव है। वैसा साक्षात्कार हो जाने पर यथार्थ जाना और जीना सहज हो जाता है।

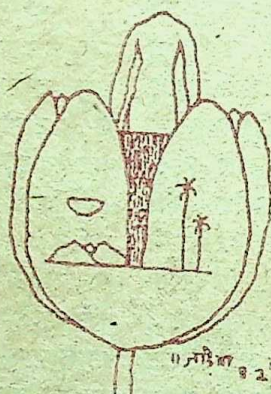
इसी से कहना चाहता हूं, कि आज के मनुष्य का जो यह अत्याधुनिकता, तात्का-

लिकता और यथार्थता का आग्रह है, वह महज कोई बेबुनियाद ख्याल नहीं है, बौद्धिक-काल्पनिक विलास नहीं है। बल्कि यही एकमात्र स्वाभाविक, अभीष्ट, वास्तविक वस्तु-स्थिति है। कोई विचार या कल्पना भी असत् और निर्मूल नहीं हो सकती। कहीं कुछ सत् है, मूल में है, मौजूद है कि उसका ख्याल, भाव या कल्पना हममें उदय होती है। तो यह जो आधुनिकता-बोध है, यह 'टु-डे' और 'अभी हाल' का भाव है, यह जो ठोस वास्तव की तलव है, उसके मूल में क्या है? इस पूछताछ में आगे बढ़ते ही, ऊपर चर्चित वह आधारभूत सत् हाथ आता है, जो स्वभावसे ही 'अप-टु-डे' है, यथार्थ है : जो एक ग्राह्य, अनुभव्य, जीव्य वास्तविक सत्ता है।

इसी से कहना चाहता हूँ कि महावीर ने जिस मौलिक सत्ता को साक्षात् किया है, वह अपने प्रकृत स्वरूप में ही वास्तविक है, जीवन-परक है, गति-प्रगतिशील है। है। इसी से वह 'मॉडर्न' है, 'अभी और यहां' है, रेडिकल है, डायनैमिक है, नित-नूतन है।

[तीन]

युवकचित्त को आधुनिक, नया, क्रान्ति, प्रगति, विकास, विद्रोह आदि शब्द बहुत नवनीत



प्रिय हैं। वह उचित है और स्वाभाविक है। यौवन मात्र देह की अवस्था नहीं, वह वस्तु का यथार्थ स्वभाव है। वह समान रूप से ज्ञाता चैतन्य और ज्ञेय वस्तु का स्वभाव है। युवा, नित-नूतन, ताज्जा, प्रतिक्षण विकासमान-प्रगतिमान, यही सत्ता का स्वरूप है। इसी से सत्ता चिर युवा, चिर सुन्दर, चिरन्तन प्रगतिशील है। और जो मौलिक सत्ता के साक्षात्कार में जीता है, प्रतिक्षण उसको देखता जानता, उसके प्रतिचेतन सचेतन रहता है, उसका सत्त्व संयुक्त रहता है, वक्रांश सदा युवा ही रहता है। है। इसी से ऐसा सकल वसन्त युवा योगी होता ही है। क्योंकि वह निरन्तर अपने मूल स्वरूप के साथ संयुक्त रह कर जीता है।

सच्चा युवा विद्रोही होगा ही। क्योंकि, यौवन वस्तु-स्वभाव का प्रतीक है। प्रकट के जगत वस्तुओं और व्यक्तियों के भाव, तो ज्ञान, रूप, व्यवहार और संबंधों में कालं पा कर रुढ़ता, जड़ता, अवस्था आ ही जाती है। प्रकट है कि वह निरन्तर परिणमनशील मौलिक वस्तु-सत्य विरोधी होती है। वस्तु की स्वभाव नित-नव्यता, विकसनशीलता, और प्रवर्धमानता में वह अवरोधक और बाधक

स्वाभाविक सत्य-संयुक्त युवा चित्त ऐसी हर
तनता, जड़ता, रुढ़ता के खिलाफ
रोह करता है, युद्ध करता है। उसके
तर के सत् का यह स्वाभाविक तकाजा
कि ऐसे हर जड़त्व का भंजन करके वह
और व्यक्ति की स्वगत प्रवाहिता
मुक्त करे। द्रव्य को उसकी वास्तविक
साही और प्रगतिशील स्थिति में ले
साये। संसार के इतिहास में जितनी भी
देखता-कृतियां, उत्क्रांतियां, अतिक्रांतियां हुईं,

प्रतिक्रिया के पीछे वस्तु के इस
उत्क्रांत आत्मक स्वरूप का
तकाजा ही काम करता
रहा है। विद्रोह, क्रांति,
सदा-क्रांति, अतिक्रांति,
क्रांतिकारी, विकास, ये सब
वस्तु के स्वभावगत परि-
णाम के रूप में ही जीवन-
रचना और प्रक्रियात्मक
मिव्यक्तियां हैं। जीवन-
विद्रोह में जब व्यक्ति और
स्वाभाविक वस्तु, अपना स्वाभा-

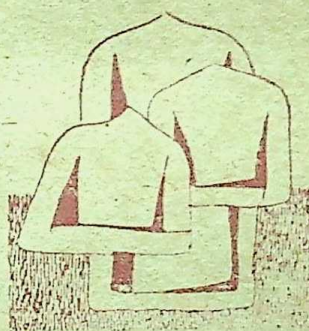
विक अभिव्यंजन, विस्तार, विकास करते
भावा, तो उपरोक्त क्रियाएं, उस प्रक्रिया
धों में अनिवार्य रूप से घटित होती ही हैं।
परलोक में मार्क्स का द्वैतात्मक भौतिकवाद
निरास, एंथी-थीसिस और सिथेसिस
य की रूप में इतिहास के चक्रावर्तन का उनका
रावण-दर्शन, और एक अभीष्ट मांगलिक
प्रवर्धन-रचना में इस वस्तु-सत्य का आच-
रणीय और मूर्तीकरण, इस सबके पीछे

अप्रति १८३

भी महावीर का 'उत्पाद-व्यय' ध्रौव्य युक्त
सत्त्व' वाला सत्ता-साक्षात्कार ही झलक
रहा है। आधुनिकता-सम्बन्धी जितने भी
साम्प्रतिक तत्वज्ञान उपलब्ध हैं, उनके
पीछे आंशिक रूप से इसी तात्त्विक वस्तु-
सत्य का तकाजा काम कर रहा है।

ये सारे तत्वज्ञान जब आग्रही और
रुढ़ हो जाते हैं, मत और मान्यता बन
जाते हैं, जब वे स्लांगन, झंडा और पार्टी
बन जाते हैं, तो अनजाने ही वे अन-

आधुनिक और अप्रग-
तिशील हो उठते हैं।
उनके पीछे विद्यमान
वस्तु-सत्य का स्रोत
रुढ़ हो जाता है। वस्तु
की जो स्वभावगत
परिणमनशीलता है, प्रग-
तिशीलता है, अनेकांतता
है, नाना-धर्मिता है, वह
कुंठित और अवरुद्ध हो
जाती है। तब उनसे मम



चित्र : संतोष जड़िया

चाहा परिणाम उत्पन्न
होना बंद हो जाता है। वस्तु के विशुद्ध,
मुक्त परिणमन के साथ तदाकार जीवन-
धारण से ही, जीवन-जगत् में अभीष्ट
परिणाम पाया और लाया जा सकता है।
इसी राह हर युग में, द्रव्य, क्षेत्र, काल,
भाव के अनुरूप, विश्व-मानवता की
कल्याणी और मांगलिक रचना हो सकती
है। तीर्थंकर चूंकि पूर्ण ज्ञानी होता है,
चूंकि वह अपनी कैवल्य-ज्योति के प्रकाश

हिंदी डाइजैस्ट

में, लोक के समस्त चराचर पदार्थों के स्वभावगत परिणमन के साथ तदाकार जीता है, इसी कारण वह लोक में एक अपूर्व अम्युदयी क्रांति उपस्थित करने में समर्थ होता है। अपने आत्म-स्वरूप में, अपने पूर्णज्ञान और परम चैतन्य में पूर्णतया संस्थित होने पर, जब बिना किसी आयास के आपोआप ही उसकी दिव्य उपदेश-वाणी प्रवाहित होती है, तो मुक्त ज्ञान-चैतन्य की उस धारा में आप्लावित हो कर, समस्त लोक का कण-कण, अपने शुद्ध स्वरूप में मुक्त भाव से परिणमन करता हुआ, व्यक्त होने लगता है। फलतः सत्य, ज्ञान, शक्ति, सौंदर्य, शांति और संवादिता का मानों एक नया ही विश्व एकाएक प्रकट हो उठता है। मृग और मृगेन्द्र उसके चरणों में एक साथ पानी पीते हैं : यह इस बात का प्रतीक है कि सृष्टि की मूलभूत सम्वादिता (हारमनी) उस समय लोक-जीवन में प्रत्यक्ष हो उठती है। दरअसल यह एक मौलिक और अंतर्मुख क्रांति होती है। कैवल्य-ज्योति के एक अंतरित खामोश विस्फोट से, कण-कण के सारे जड़ अवरोध चूर-चूर हो जाते हैं। सर्वत्र वस्तु और व्यक्ति, उनके पारस्परिक संबंध, परम सौंदर्य से प्रभास्वर हो उठते हैं, पूर्ण प्रेम से आप्लावित हो जाते हैं, और सहज ही अपने स्वभाव से उद्बोधित हो उठते हैं। कालांतर में, जब तीर्थंकर के उपदेश की इस भाषाहीन दिव्य ध्वनि को, शब्दों

वदनीत

में बांध कर लिपिवद्ध किया जाता है; जब लोग उनके अनुयायी और आप्रणी बन जाते हैं; तब सत् फिर आवृत्त और अवरुद्ध हो जाता है। फलतः जीवित सत्य के घातक, उसे रूढ़ और जड़भूत करनेवाले मत-संप्रदाय, धर्म, वाद तथा एकांतवादी तत्त्वज्ञान जन्म लेते हैं। सर्व-कल्याण का दावा करके, वे एक सां-लौकिक अकल्याण का सृजन करते हैं।

इसी से कहना होगा कि तथ्याकृत धर्म-दर्शन, ज्ञान-विज्ञान, मतवाद, संप्रदाय और 'कल्ट', चाहे पुराने हों या नये वे सब वस्तु-स्वभावगत आधुनिकता के घातक हैं, उसके विरोधी हैं। परंपरागत धर्म-पंथ हों, कि आधुनिक कहे जाने वाले मार्क्सवाद, साम्यवाद, अस्तित्ववाद, निःसारतावाद (एक्सिडिज्म) और ऐसे ही सैकड़ों नित नये नामों से चलनेवाले स्लांगन और सिद्धांत हों, अथवा मॉडर्न कहलाते फैशन या चलन हों, ये सब आप्रणी और एकांतिक होकर, अनाधुनिक हो ही जाते हैं। ये प्रचलित रहते हुए भी परिणामहीन, मृत, जड़ और रूढ़िग्रस्त पाये जाते हैं। निरंतर प्रगतिशील विज्ञान के दावेदार भी, रूढ़ मान्यताओं से कुंठित दिखायी पड़ते हैं। एक रूढ़िग्रस्त सनातन धर्मी, अंधविश्वासी सर्वसाधारण, और एक रूढ़ हो चले विज्ञानवादी में वस्तुतः कोई अंतर नहीं होता। मूलतः ये समान रूप से अवरुद्ध, अज्ञानी और अप्रगतिशील होते हैं। ऐसे फैशनेबल 'मॉडर्न' महक

आधुनिकता के ताबूत होते हैं। ये आधु-
निकता के घिसे-पिटे सिक्के होते हैं।
देखते-देखते इनका अवमूल्यन हो जाता है।
बीसवीं सदी के पांच दशकों के दौरान
हमने मार्क्सवाद और साम्यवाद का
उत्थान और पतन, दोनों देख लिया।
विन के धरातल पर जब उसे मूर्त रूप
दिया गया, तभी वह हठाग्रही होने के
परण हिंसक हो उठा था। उसके उत्थान
और उपस्थापन में ही पतन के बीज बोये
गये थे। वह वस्तु की निरंतर प्रगति-
शीलता के साथ तदाकार नहीं रह गया
था। उसकी ज्ञानात्मक और क्रियात्मक
दृष्टि आरम्भ में ही कुंठित और अंधी
गयी थी। अमानुषिक रक्तपात के
बाद ही रूस में उसका मंगलाचरण हुआ
था। वस्तु-स्वभाव की बलात्कारपूर्वक
प्रतिमाने मनचाहे ढाँचों में ढालने की चेष्टा
की थी। तब लेनिन जैसा हुतात्मा और
जाज्वल्यमान व्यक्तित्व भी स्वभाव-च्युत
हो गया था। आधुनिकता के भाव से
प्रभावित होकर, नयी और सर्वोदयी
मानव-व्यवस्था की खोज में, संसार के
भी अग्रणी चिंतकों और सर्जकों ने उस
काल में रूस की तीर्थ-यात्रा की थी।
वहाँ जाकर उन्होंने प्रत्यक्ष अनुभव किया,
कि नवीन युग-तीर्थ का प्रवर्तन नहीं हुआ
था, बल्कि वहाँ मानव-चैतन्य की और
वस्तु-स्वभाव की सामूहिक हत्या हुई है।
मानव के शोषित ही, शासनारूढ़ होकर,
मानव स्वयम् शोषक हो उठे हैं।

मार्क्स, वेशक, केवलज्ञानी नहीं थे।
फिर भी वे काफी हद तक एक निरासक्त
द्रष्टा थे। उनके भीतर वस्तु-स्वभाव
की शुद्ध क्रिया आंशिक रूप से झलकी
थी। सर्वकाल की दलित-पीड़ित, शोषित-
सर्वहारा मानवता की वेदना से उनकी
आत्मा संवेदित हुई थी। वे मूलतः स्वभा-
वगत शुद्ध वस्तु-परिणामन से प्रेरित थे।
उन्हें महज प्रतिक्रियावादी नहीं कहा जा
सकता। सर्वकल्याण की परम यज्ञ-ज्वाला
से उनकी आत्मा जाज्वल्यमान थी। फिर
भी उनकी ज्ञान-दृष्टि कहीं मूल में ही
अपूर्ण और एकांगिनी थी। उत्पाद और
व्यय को तो उन्होंने पकड़ा था, पर ध्रुव
उनकी दृष्टि से ओझल रह गया। ज्ञेय तो
उनके हाथ आया था, पर ज्ञाता की सही
और मौलिक पहचान वे नहीं पा सके
थे। ऐन्द्रिक-बौद्धिक ज्ञान की सीमाओं से
उनका दर्शन अवरुद्ध हो गया। इसी
सीमा और अपूर्णता में से प्रतिक्रिया और
हिंसा फूट पड़ी। मार्क्स जीवित होते, तो
वे स्वयं ही अपने दर्शन को अतिक्रान्त कर
जाते। अंतःकरण से वे सर्वमुक्तिकामी
थे, इसमें संदेह नहीं।

प्रकट है कि अधूरा-ज्ञान ही सारे
अनर्थों की जड़ है। पूर्ण और सामग्रिक
ज्ञान की प्राप्ति, मनुष्य की अनिवार्य
अभीप्सा है। आधुनिकता के लिए मनुष्य
की चिरंतन चाह और प्यास, उसकी इसी
स्वभावगत अभीप्सा का परिणाम है।
अपने को और जगत् को सम्पूर्ण जाने

बिना उसे चैन नहीं। इस संपूर्ण ज्ञानो-
पलब्धि की पुकार में से ही, मनुष्य अनंत
कालों में नव-नूतन ज्ञान-विज्ञानों, सभ्यता-
संस्कृतियों, कलाओं-काव्यों की रचना
करता चला गया है। आधुनिकता-बोध की
अभीप्सा, उत्कंठा और जिज्ञासा भी,
उसकी इसी अनिवार ज्ञानात्मक मुक्ति-
यात्रा की एक स्वाभाविक परिणति है।

[चार]

तब जरूरी है कि सही माने में अत्या-

धुनिक होने के लिए, पहले
हर व्यक्ति इकाई को अपने-
आप में, ज्ञानचेता होकर,
आधुनिकता को जीने की
कला सीखनी होगी। वस्तु
और व्यक्ति प्रतिपल नित-
नवीन हो रहे हैं। यही
तद्गत रूप से आधुनिक
वस्तु-स्थिति है। ज्ञाता,
दृष्टा, भोक्ता व्यक्ति में
भी प्रति पल नया परि-

णमन हो रहा है : पुरातन पर्याय व्यय हो
रही है, नूतन पर्याय उदय हो रही है।
ज्ञेय, दृश्य, भोग्य पदार्थ या व्यक्ति में
भी यही घटित हो रहा है। तब अप-टु-
डेट जीने का अर्थ यह होगा, कि ज्ञाता
और ज्ञेय, भोक्ता और भोग्य के नित-नूतन
परिणमन में सम्वादिता (हारमनी),
तरतमता, सुसंगति, सामंजस्य उपलब्ध
किया जाये। हम वस्तु को स्वाभाविक
रूप में अभंग (अनडिस्टर्ब्ड) रहने दें:

नवनीत



चित्र : संतोष जड़िया

स्वयम् भी अपने स्वाभाविक स्वरूप में
अभंग, अस्खलित (अनडिस्टर्ब्ड) रहे।
और इसी स्वाभाविकता के धरातल पर
वस्तुओं और व्यक्तियों के साथ हम एक-
सम्वादी (हारमोनियस) संबंध में जियें।
यही आधुनिकता में जीवन-धारण है।
यही अहिंसा है, अपरिग्रह है, ब्रह्मचर्य है।
यानी जो वस्तु-स्वभावगत शुद्ध आधुनि-
कता में, 'टु-डेटनेस' में जियेगा, वह अपने-
हित में ही, अपने स्वार्थवश ही, अनायास

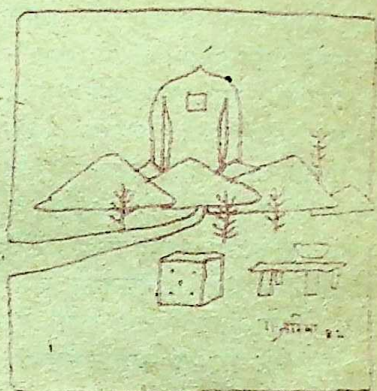
उत्तरोत्तर अहिंसक, अपरिग्रह या
ग्रही, ब्रह्मचारी होता चला, वह रु-
जायेगा।

न आप व्यक्ति या वस्तु का। त-
के स्वभाव पर अपने परिणत
लादें, और न अपने अपनचाहो-
उसके स्वभाव को लदने दें। भंग
भोक्ता और भोग्य, ज्ञाता और ज्ञेय, स्व-
और ज्ञेय, स्वरूपस्थ रहें। इस
कर ही परस्पर उपग्रह कर आधुनिक
आदान-प्रदान करें। स्वयं और वी-

अपने भाव में रहें, अन्य को अपने भाव-
में रहने दें। अपने पल-पल परिवर्तित
होते भाव पर्याय के साथ ही दूसरे के पल-
पल परिवर्तित भाव-पर्याय को जान, देखें
भोगें। ऐसा द्रष्टा और भोक्ता सम्यक्-
दृष्टि होगा ही। और सम्यक्-दृष्टि वी-
रागी होगा ही। वस्तु के सम्यक् दर्शन
का अर्थ है, उसकी निरंतर परिणमन-
शीलता का सम्यक् अवबोधन (परसेप्शन)
करना। और उसका जो सम्यक् अवबोधन हो, दूस-

रूप में धन करेगा, वह पहले अपना भी सम्यक्
 रहे। बोधन करेगा ही। वह अपने स्वरूप
 तल पर निरंतर व्यय-उदय होती नव-नूतन
 रूपों, परिणितियों, भावनाओं को देखेगा :
 नित्य स्वरूप ही अन्य में देखेगा। जहां जाता
 है। और जेय में, भोक्ता और भोग्य में निरंतर
 रूपों में। नूतन भाव, पर्याय, स्थिति का परिणमन
 आधुनिक, वहां एक विशेष रूप, आकार, आस्वाद,
 ह अपेक्षा, सुगंध, स्पर्श, ध्वनि पर रुक जाना,
 नानायासक्त हो रहना, कैसे संभव है। जिस
 अपरिग्रह या भाव पर चित्त आसक्त हो गया
 वला, वह रूप या भाव तो उसी क्षण व्यतीत
 चुका, वहां नया भाव या रूप आ
 वास्तविक। तब व्यक्ति या पदार्थ की
 अपने परिणत स्थिति से, हमारी आसक्ति को
 अपने अपेक्षाही तृप्ति नहीं मिल सकती। स्वभाव
 अपने दोष भंग हुआ, बलात्कार हुआ, अस्वाभा-
 ज्ञातिक मांग हुई, तो दुःख ही हाथ आ सकता
 है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सच्ची
 ह क्रांति आधुनिक चेतना, अनायास सम्यक्-दृष्टि
 स्वयं को वीतराग हो कर ही रहेगी। स्व
 भाव और पर का, व्यक्ति और वस्तु का,
 वीतराग और जगत का सम्यक् बोध ही,
 पल-पल आधुनिकता-बोध है। और वीत-
 देखें हुए बिना ऐसा सम्यक् बोध संभव
 नहीं। और सम्यक् बोध के बिना सम्यक्
 वीतराग संभव नहीं।

सत्य यह है कि, वस्तु को 'टू-डेट',
 भी हाल जैसी है, वैसी जानो। अहिंसा
 है कि, स्वयं अपने स्वभाव में अभंग
 हो, दूसरे को अपने स्वभाव में अभंग



चित्र : संतोष जड़िया

रहने दो। अपरिग्रह यह है कि, वस्तु की
 स्वतंत्र सत्ता पर अपना अधिकार न
 जमाओ। और न उसके मोह से अपने
 स्व-भाव को मूर्च्छित, ग्रस्त, अधिकृत
 होने दो। ब्रह्मचर्य यह है कि अपने और
 सर्व के अखंड भोग में जियो। जो पहले
 अपने स्वरूप में अभंग आत्मा-रमण
 करना सीख जायेगा, वही सर्व में संपूर्ण,
 अभंग, अटूट रमण कर सकेगा। यही
 यथार्थ आधुनिकता-बोध है। यही सम्यक्
 चेतना-स्थिति है। इसमें जीना ही प्रति-
 क्षण 'अप-टु-डेट' रहना है : 'अभी और
 यहां' में जीना है। यह हवाई आदर्शवाद
 नहीं, ठोस और तलगत, शुद्ध वस्तुगत
 यथार्थवाद है।

[पांच]

आज आधुनिक चेतना के जितने लक्षण
 हाथ आते हैं, महावीर उन सबकी प्रति-
 मूर्ति हैं। आधुनिक मनुष्य अस्तित्वगत

हिंदी डाइजेस्ट

मौलिक संत्रासों को साक्षात् कर उनसे जूझ रहा है : मसलन वह अंतिम एकाकीपन, अशरणता, अरक्षितता, अनिश्चयता, अनाथत्व, निर्वासन, निःसारता (एक्स-डिटी), शून्यता, चरम निराशा, मृत्यु-भय आदि से पीड़ित है। महावीर ने अनित्यत्व, अशरण, एकत्व, अन्यत्व आदि बारह अनुप्रेक्षाओं में इसी अस्तित्वगत वेदना का अनुभावन और चिंतन किया है। आधुनिक जन नितान्त स्वतंत्र, स्वच्छंद, विधिनिषेध से परे जीना चाहता है! महावीर ने कहा, व्यक्ति और वस्तु अपने मौलिक स्वरूप में ही स्वतंत्र है : उस वस्तु-स्वरूप का साक्षात्कार करके, उसमें जो जियेगा, वह अनिवार्यतः तंत्र, स्वच्छंद, विधि-निषेध से परे जियेगा ही। दिगम्बर महावीर से अधिक स्वच्छंद और स्वतंत्र और कौन हो सकता है।

आधुनिक जन हर रूढ़ि और परम्परा को तोड़ देने पर तुला है। महावीर द्वारा अनुभूत और कथित वस्तु-स्वरूप में, रूढ़ि और परंपरा तो आपोआप ही टूटती है। परंपरा है केवल अस्ति की, ध्रुव सत्य की, स्वयम् सत्ता की, जो कि स्वयं ही परंपरातीत है। उसे तोड़ कर तो जीना ही शक्य नहीं। आधुनिक मनुष्य विद्रोह और क्रांति से कसमसा रहा है। महावीर के अनुसार वस्तु-स्वरूप का सम्यक् द्रष्टा और आचरेता, विद्रोही और क्रांतिकारी होगा ही। इतिहास साक्षी है, महावीर से बढ़ कर विद्रोही और क्रांति-

नवनीत

कारी दूसरा कौन हुआ? आधुनिक मनुष्य हर प्रतिष्ठा, प्रतिष्ठान, पाबंद और जड़ीभूत व्यवस्था को ध्वस्त करने को निकल पड़ा है। महावीर द्वारा साक्षात्कृत वस्तु-स्वरूप में जीवन-यापन करने पर ये सारे स्थिति-पोषक संस्कार और मूल्य आनिवार्य रूप से ध्वस्त होते ही हैं।

सारी आधुनिक कला-सर्जनाएं उत्तरेत्तर सांकेतिक और अमूर्त होती जा रही हैं। यह इसलिये कि वे सारे पर्यायत जड़ीभूत, मूर्त रूपाकारों को भेद कर शुद्ध और सतत गतिशील वस्तु-स्वरूप का साक्षात्कार किया चाहती हैं : अंततः वे निरंजन, निराकार, विशुद्ध ज्योतिः स्वरूप, निरंतर प्रवाही महावीर की बोधोत्तरा, में हैं। आधुनिक मनुष्य जान-बूझ कर खतरों में, अरक्षा और मौत में जीने का तलबगार है। महावीर आजीवन खतरों में, भयानकताओं में जान-बूझ कर विचरते थे। उन्होंने संकटों और प्रहारों को तोता चुनौता, आमंत्रित किया : क्योंकि अंतिम रूप से अभय, अधात्य, अव्यय हो जाना चाहते थे।

आधुनिक पीढ़ी ने कई नामों से अपने को संज्ञायित किया है : मसलन पीढ़ी, दिगंबर पीढ़ी, स्मशानी पीढ़ी, नाराज नौजवान-पीढ़ी (ऐंथ्री यंगमन), वीटनिक यानी भंजक पीढ़ी, आदि उचित ही है। महावीर इन सबके साथ खड़े हैं। महावीर ने तो राजभोग त्याग

कर भूखे रहना चुना था : भूख का वरण
 किया था। आखिर भूख हारी, वे जीते:
 उन्होंने भोजन का अजस्र अमृत-स्रोत
 भीतर ही पा लिया। महावीर तो भीतर-
 गहर के सारे आवरण फाड़कर, सारी
 गीयों काटकर, दिगंबर विचरे। उनके
 तितिनिधि दिगंबर मुनि का विहार, आज
 का अत्याधुनिक नागरिक, सरकार और
 कानून भी सहने को तैयार नहीं। महावीर
 वैसा गैरकानूनी और नाजायज आदमी
 इतिहास में शायद ही कोई दूसरा मिले।
 कर भी इतिहास के भाल पर आज भी
 महावीर, सारे निषेधों, वर्जनाओं और
 कठोरताओं को अपने नंगे पैरों से चूर-चूर
 करता हुआ दिगंबर विचर रहा है। मृत्यु
 की सीमांत को अतिक्रान्ति कर जाने के
 दौरान, महावीर राजमहल की सुख-शैया
 का भागकर स्मशान में जा खड़े हुए थे।
 महावीर ने अपनी हर समकालीन जड़ीभूत
 व्यवस्था को ऐसी तेजस्विता से ललकारा
 तोड़ा, कि इस नाराज नौजवान (एंंग्री
 यमन) को मारने के लिए, तत्कालीन
 के हर स्थिति-पोषक जनपद के
 सारे पर, लोग पत्थर लेकर खड़े हुए
 थे। और 'वीटनिक' तो वह पैदायशी था :
 समान में बजते नक्काड़ों (देव-
 के यों) के साथ वह जन्मा, और उसका
 एक खामोश विप्लव और
 होकर रहा।

[छ:]

मनुष्य त्याग नहीं, जीवन-जगत्

का संपूर्ण भोग चाहता है। वह लोकोत्तर
 मुक्ति नहीं, अभी और यहां परिपूर्ण
 जीवन जीना चाहता है। स्वाभाविक
 है, और सत्य है यह स्थिति। महावीर
 तो इसीलिये दिगंबर खड़े हो गये, कि
 कण-कण का, क्षण-क्षण, नित्य और
 निरंतर भोग उपलब्ध करें। अपूर्ण,
 खंडित, अनित्य भोग से वे तृप्त नहीं हो
 सकते थे। इसी से नित्य और पूर्ण भोग
 पाने की राह में जो कुछ भी अनित्य
 और अपूर्ण था, वह आपो-आप ही छूटता
 चला गया। अखंड भोग में जो रहना
 चाहेगा, वह खंड भोग से अनिवार्यतः
 उत्तीर्ण होगा ही। महावीर का अभीष्ट
 अनंत भोग था, अनंत सुख था। वैसे सुख-
 भोग की उनकी उत्कंठा और खोज ऐसी
 अनिवार्य थी, कि सीमित सुख पर वे
 अटक ही नहीं सके। यह जो सहज
 छूटा, त्यक्त हुआ, सूखे पत्ते की तरह झर
 पड़ा, लोग उसी से चिपट बैठे, और छद्म
 त्याग को ही लक्ष्य और आदर्श बना बैठे।
 इसमें महावीर का दोष नहीं : साधारण
 अज्ञानी जन की सीमित दृष्टि का ही यह
 दुष्परिणाम है। महावीर ने कहा कि
 निरंतर परिणमनशील वस्तु को पूर्ण
 भोगने के लिए, अपने चैतन्य स्व-भावगत
 निरंतर परिणमन में जीना होगा। इसी
 से उन्होंने पूर्णकाय भोग की कला अपने
 उदाहरण से हमें सिखायी। उन्होंने कहा
 कि: जानो और भोगो। भोगो और जानो।
 वस्तु के स्वभाव को जानकर उसकी

हिंदी डाइजेस्ट

तरतमता में उसे भोगो। तो जो त्याज्य है, अभोग्य है, वह आप ही छूट जायेगा, जो भोग्य है, ग्राह्य है, वह आप ही स्वायत्त भाव से भुक्त होता चला जायेगा। उन्होंने कहा कि : भोगो और भूल जाओ। भूलोगे नहीं, तो भोग खंडित हो जायेगा : निरंतर नहीं हो पायेगा : वह अटक जाएगा, आगे नहीं जा पायेगा। जो तुम भोग चुके, वस्तु की वह पर्याय तो तभी विसर्जित हो गयी। भोग के हर क्षण में वस्तु की पूर्ण पर्याय व्यय हो रही है, नयी पर्याय उदय हो रही है। जो पर्याय विशेष में मोहासक्त हो भटक जायेगा, वह अगली पर्याय को कैसे भोगेगा। और तब भोग समग्र वस्तु का और नित्य कैसे रह सकेगा। स्त्री विशेष की एक खास सूरत, केश, चितवन में मोहित हो रहे कि मरे : भोग की अक्षत धारा टूट गयी।

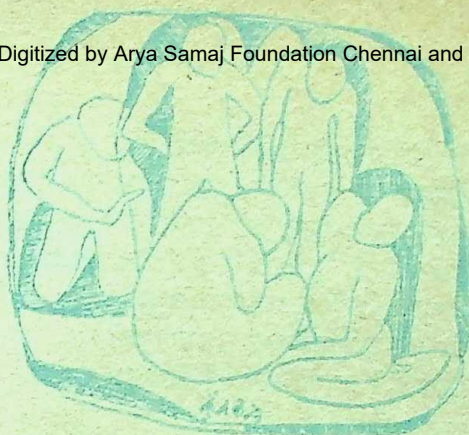
इसी से महावीर ने कहा कि भोगो और भूल जाओ : निरासक्त चित्त से भोग करो, सम्यक् ज्ञान-दर्शन पूर्वक भोग करो। भोग्य में आसक्त होना, उसे याद रखना, नित्य भोग में बाधक है। उस तरह भोग में ग्रंथि पड़ेगी, वियोग, विच्छेद, दुःख का अनुभव होगा। ऐसा भोग रुग्ण, जड़, पीड़क होगा ही। क्योंकि पल-पल विगत हो रही पर्याय को याद रखना, उससे चिपटना, उसमें जीना, अभाव और नकार में जीना है, 'निहिल' में टक्करें खाना है। वह खाली में भटकना है। खाली में से प्रत्युत्तर (रिस्पान्स) आ नहीं सकता।

नवनीत

और प्रत्युत्तर के अभाव में भोग बनता नहीं, संयोग संभव नहीं, सो तृप्ति अशक्य है। हाथ आता है अभाव, वियोग, विषाद, पराजय, जो कि पीड़क है, घातक है, मारक है। भोग आनंद के लिए है, तृप्ति और मुक्ति पाने के लिए है। इसी से महावीर ने कहा कि भोग की एक मात्र शुद्ध कला यह है कि भोग्य पदार्थ के स्वभाव को सम्यक् और संपूर्ण जानो, और उस ज्ञान में अवस्थित हो कर, वस्तु को उसकी प्रतिक्षण परिणमनशील अनंत भाव-पर्यायों की तरतमता में भोगो। ऐसा भोग पूर्ण, नित्य, निरन्तर, अखंड, अनंत और निर्ग्रंथ (कम्प्लेक्सनेस) होगा। वह बंधक नहीं, बोधक होगा, मुक्तिदायक होगा। महावीर ऐसे ही पूर्ण भोगी थे। क्योंकि वे वस्तु-स्वभाव से संयुक्त पूर्ण योगी पुरी की थे। लोकोत्तर मुक्त पुरुष होकर भी लोकोत्तर वे निरंतर त्रिलोक और त्रिकाल में रमण-शील हैं : लोक के सर्वोपरि भोक्ता हैं। अम

नयी पीढ़ी जो आदर्शों की पाखंडी मूर्तियों का भंजन करके, नग्न यथार्थ को जीने के लिए छटपटाती हुई विप्लव मचा रही है, उसके मूल में तलगत सत्य का ही तकाजा है। यह यथार्थ में जीने की पुकार, नग्न आदर्श वस्तु-सत्य में जीने के लिए है। अधुना युग का यह विक्षिप्त यातना-भूषण अपने अज्ञानजन्य सारे अंधकारों की निरकों की निर्द्वंद्व यात्रा करत (गमन) अनिवार रूप से यथार्थ सत्ता की आदि

(शेषांश पृष्ठ १३६ पर)



गीतेश शर्मा का समाज-शास्त्रीय लेख

अमरीकी समाज में संभ्रत नारी और संभ्रत पति

अमरीकी संविधान में नारी जाति को पुरुष के मुकाबले समान दर्जा है। पर वास्तविक स्थिति कुछ और है। अमरीकी नारी आज भी मात्र गृह की वस्तु मानी जाती है। तथा अमरुक्षित स्थिति में रहती है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण है, वहां चल नारी-मुक्ति-आंदोलन। पर नारी आंदोलन भी कागज-कलम में ही रहता है, व्यवहार में नहीं। इसीलिये नारी-मुक्ति आंदोलन के बावजूद नारी की स्थिति में कोई विशेष अंतर नहीं आया है। चाहे कोई भी क्षेत्र हो, नारी पुरुष के मुकाबले बहुत पीछे है। नारी पुरुष के वाद का ही दर्जा प्राप्त है। नौकरी में नारी के साथ न केवल

भेदभाव बरता जाता है, बल्कि नौकरी पाने के लिए अथवा तनख्वाह में वृद्धि के लिए उसे अपने अफसर के दबाव के सामने झुकना पड़ता है। शारीरिक सम्बन्ध के लिए राजी होना पड़ता है। यह सब इतना आम, इतना सामान्य हो गया है कि इस तरह के दबाव की घटनाएं लाखों की संख्या में होती हैं।

‘टाइम पत्रिका’ के ४ मई, १९८१ के अंक में प्रकाशित एक रपट के अनुसार वाशिंगटन स्थित ‘सेंटर फॉर वीमेन पालिसी स्टडीज’ नामक शोध संस्थान ने छान-बीन के बाद बताया कि अमरीका में केवल १९७९ में अठारह लाख महिलाएं इस तरह के दबाव की शिकार हुईं।

नौकरी पाने अथवा पदोन्नति के लिए

या नौकरी बनाये रखने के लिए महिलाओं को अपनी इच्छा के विरुद्ध शारीरिक समर्पण करना पड़ता है। अठारह लाख की संख्या अपने आप में एक चौंकाने वाली संख्या है। पर अमरीका में यह चलन साधारण-सी बात है। आम तौर पर महिलाएं इस तरह की शिकायत नहीं करती और करती भी हैं तो उसका कोई नतीजा नहीं निकलता। फलस्वरूप स्थिति से समझौता करने में ही भलाई है, ऐसी धारणा नौकरी कर रही महिलाओं में घर कर गयी है।

अमरीका जैसे उन्नत और आधुनिक देश में १९८१ में सुप्रीम कोर्ट में पहली बार एक महिला की न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति हुई। यह घटना अमरीकी अखबारों के लिए प्रथम पृष्ठ पर छापने लायक मानी गयी और महीनों इस पर चर्चा हुई।

यूँ कुछ उच्च पदों पर महिलाएं नियुक्त हैं, पर उनका अनुपात पुरुषों की अपेक्षा बहुत ही कम है। बेकारी का प्रतिशत भी पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं में कई गुना ज्यादा है।

लास एंजेलस में तो यह फैशन-सा हो गया है कि धनी लोग तीस वर्ष की उम्र के बाद पत्नी को तलाक देकर अपनी उम्र से आधी उम्र की युवतियों से शादी करते हैं। अतः वहां तीस वर्ष से ज्यादा की तलाक शुदा महिलाओं की संख्या दिन-ब-दिन बढ़ती ही जा रही है। उनके पुनर्विवाह की संभावना नहीं के बराबर

रहती है।

सारे अमरीका में वेश्याओं की संख्या लाखों में है। यह बताने की आवश्यकता नहीं कि वेश्यावृत्ति कोई भी महिला मजबूरी में करती है, शौक से नहीं। अतः लाखों की संख्या यह प्रमाणित करती है कि वहां महिलाएं किसे दयनीय स्थिति की शिकार हैं।

महिलाएं अमरीका में कितनी अनुपेक्षित हैं, इसके लिए शोध की आवश्यकता नहीं। हर तीन मिनट में होने वाली वलात्कार की घटनाएं क्या यह प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त नहीं? अमरीकी राजधानी वाशिंगटन तक में, रात के योग्य कोई महिला अकेली घर से बाहर निकल औरत का साहस नहीं कर सकती। शिकार कर सारी और न्यूयार्क की तो बात ही छोड़िए।

पतियों द्वारा पत्नियों को पीटे जाने के निमित्त घटनाएं वहां कम नहीं होतीं। सन्दर्भ में बम्बई से प्रकाशित फेमिनिस्ट पत्रिका के जून २३, १९८१ के अंक में प्रकाशित श्रीमती लीला भार्गव के पत्र लेख का उद्धरण पाठकों की जानकारी के लिए प्रस्तुत है:

‘रात के सन्नाटे को चीरती एक हलवा विदारक चीख की आवाज सुनायी दी है। आस-पास के फ्लैटों में लोग झींझ रहे हैं। उनमें थोड़ी खुसर-पुसर हलचल है।

‘यह क्या हुआ?’

‘यह रिचार्ड ही होगा। वह फिर अपनी पत्नी को पीट रहा होगा।’

नवनीत

किन्तु हमें इससे क्या ? चलो, सो जायें ।'
 हां, इस चीख से किसी को कोई मतलब
 था, सिवाय रिचार्ड के । दीवारों की
 छाना में कैद यह अमरीकी समाज का
 एक अनकहा मार्मिक कटु सत्य है, जिसे
 उनके सामने रखने की जरूरत है । एक
 औरत अपने स्वामी पालक द्वारा इसलिए
 पीटी और पीटी जा रही है, कि वह
 सुरक्षित है, आर्थिक रूप से आश्रित
 शारीरिक रूप से कमजोर है, समाज
 के लिए उपेक्षित है । वह नारी व्यक्ति और
 समाज के प्रत्येक अपराध के लिए दंडनीय
 अमरीकी भले ही दंड का कारण पुरुष की
 शोचनीयता अथवा आक्रोश ही क्यों न हों ।
 औरतों की यह यंत्रणा व्यक्तिगत न
 शिकायत सार्वजनिक तब हो जाती है जब
 ली और मार खाई महिला अपनी सहा-
 यता के लिए पुलिस या सामाजिक संस्थाओं
 की दरवाजा खटखटाती है । अभी हाल ही में
 औरत का किस्सा अखबारी सुखियों
 का कारण बना । बहुत लम्बे असें से पति
 के उन्माद की अवस्था में अपने पति की
 या कर डाली ।

आज हमारे विचारों, मनोवृत्तियों और
 यों में क्रान्तिकारी परिवर्तन के बावजूद
 औरतों के साथ अगर पशुवत
 व्यवहार न भी हो, तो वे अपने पतियों
 के पहले की तरह अवमानित और
 मानित तो होती ही हैं । यह सब
 अमरीका नाम के उस देश में हो रहा है,

जो बड़ी शान और अभिमान से मानव-
 अधिकार, नारी-स्वतन्त्रता और समानता
 की बात करता है । यह तथ्य चौंकाने वाला
 तो है ही, उस देश के चरित्र पर एक काला
 धब्बा भी है । जो भी हो, अमरीकी इस
 शर्मनाक तथ्य को दवाने अथवा ढकाने के
 स्थान पर प्रकाश में लाकर इसके समाधान
 की कोशिश कर रहे हैं । हालांकि वहां
 हिंसा एक सामाजिक समस्या है, पर
 सार्वजनिक स्थानों में घटने वाली हिंसा
 की वारदातें ही । घर की नहीं । घर को
 अब तक पूर्णतः व्यक्तिगत और हिंसाओं
 से परे माना जाता था । लेकिन अब यह
 धारणा निर्मूल सिद्ध हो चुकी है और
 घरेलू हिंसाओं ने भी सामाजिक समस्या
 का रूप ले लिया है ।

पीटी और सताई जाती औरतों पर
 हुई एक गोष्ठी के दौरान जो आंकड़े प्रकाश
 में आये, वे सचमुच अविश्वसनीय लगते
 हैं । केवल न्यूयार्क शहर में एक वर्ष में
 १४,१६७ औरतों को यातना दी जाने की
 शिकायतें गयीं । अनुमानतः लियाका
 क्षेत्र में (न्यूयार्क उत्तरी हिस्सा जहां
 की आबादी लगभग ४०,००० है ।)
 पिछले वर्ष सहायता के लिए २३० औरतों
 के टेलीफोन प्राप्त किये गये । गोष्ठी
 में यह भी प्रकट किया गया कि लगभग
 बीस लाख पीड़ित औरतों में मात्र दस
 प्रतिशत ही सहायता मांगती हैं । गोष्ठी
 को डिस्ट्रिक्ट एटार्नी के सहायक ने सम्बो-
 धित किया था । उसमें काउन्टी शेरिफ,

जिला न्यायाधीश, वकील, टास्क फोर्स के सदस्य, स्थानीय लाँ कालेज के विद्यार्थी आदि उपस्थित थे। गोष्ठी में कहा गया कि इस समस्या के प्रति सामाजिक चेतना जागृत की जा रही है। अन्याय और हिंसा की शिकार औरतों की रक्षा एवं सहायता के उपाय किये जा रहे हैं।

पत्नियों पर हिंसा की और घटनाओं की जानकारी विभिन्न सूत्रों से मिलीं। श्रीमती जोन ने बताया कि कैसे उसके पति ने उसके छोटे-छोटे बच्चों की उपस्थिति में जोर से उसका झोंटा पकड़ कर पीटा। एक दिन जैसे ही उसने अपने पति के लिए दरवाजा खोला, उसके पति ने उसे इस तरह दबोचा, कुचला और मारपीट की कि उसकी एक आंख सूज कर बन्द हो गयी। विक्टोरिया का पति उसे अक्सर पीटा करता था। एक दिन उसने जब काइसिस सेन्टर (दुःखी महिलाओं की मदद करने वाला) में फोन करने की कोशिश की, तो गुस्से में आग बबूला उसके पति ने उसके हाथ से टेलीफोन रिसीवर छीन कर उसके मुंह पर दे मारा। नारी को शारीरिक कष्ट देने की इस तरह की घटनाएं पुरुष के इस दावे को खोखला साबित करती हैं कि उसमें नैतिक बल और औरत को प्यार, सुरक्षा और सुख देने की सामर्थ्य है।

पति अगर इस तरह का हिंसक व्यवहार करे, तो पत्नी को क्या करना चाहिये? वह चाहे तो पुलिस की मदद ले सकती है।

नवनीत

लेकिन पुलिस भी तो हमेशा सहायता के लिए तत्पर नहीं रहती। वह इस तरह की घटनाओं को घरेलू परेशानियों की संज्ञा देकर टाल देती है। एक औरत को जब उसके पति ने जान से मार डालने की धमकी दी, तो उसने पुलिस को सहायता के लिए बुलाया। लेकिन पुलिस ने बताया कि वह केस तब तक अपने हाथ में नहीं ले सकती, जब तक कि धमकी उस सामने न दी जाये। भला कोई पति पुलिस के सामने अपनी पत्नी को धमका दे सकता है? पुलिस के इस रुखे व्यवहार का कारण सामाजिक कार्यकर्ताओं ने उसे बताया कि पुलिस के लोग स्वयं अपने पत्नियों पर अत्याचार करते हैं। तो अपने अक्यों इन घटनाओं पर गंभीरता से ध्यान देंगे। वह काइसिस सेन्टर की मदद ले सकती है। काइसिस सेन्टर, टास्क फोर्स से उसका सम्पर्क करवाती है। सामाजिक तया टास्क फोर्स की स्वयंसेविका सामाजिक रूप से जागरूक और शक्तिशाली महिला होती है, जो प्रति सप्ताह कुछ घंटे ऐसे कार्यों के लिए देती है। वह दुर्गम औरतों के संतप्त हृदय का हाल सुनती है। लम्बे समय से सताई गयी औरतें चाहेगी हैं कि कोई तो हो जो सहायता दे। उनकी समस्याओं, भय, संदेहों को सुन उनके सामने वे खुलकर अपने मन की गुवार निकाल सकें। टास्क फोर्स के सदस्य उसे दुःख से उबारने के कई उपाय बताते हैं। वे डोमेस्टिक वायलेन्स यूनिट

महारा लेकर फैमिली कोर्ट से अपनी व
वच्चों की सुरक्षा का आदेश ले सकती
है। इस तरह का आदेश पत्नी की सह-
पति बिना पति के गृह-प्रवेश पर रोक
 लगाता है। अगर वह इस आदेश का
अलंघन करता है, तो उसे छः महीने या
उससे अधिक की जेल की सजा हो सकती
है। लेकिन पत्नी के लिए इस तरह का
निर्णय लेना बहुत कठिन होता है।

कभी जब औरत अपने घरेलू असन्तोष
को वजह से गहरे मानसिक तनाव से
ग्रस्त रहती होती है, तो क्राइसिस सेंटर
उसे आश्रय की अस्थायी सुविधा देता है।
क्योंकि वहां के शान्त वातावरण में वह
तुलने और अपने वच्चों के बारे में भली-
भाँति सोच-समझ कर निर्णय ले सके।

१९७० तक इस तरह के आश्रालयों
का खूले रूप में आवश्यकता नहीं महसूस
की गयी थी। १९७१ में लन्दन में श्रीमती
रिन पिंजी ने सतायी महिलाओं के लिए
सुझाव केन्द्र की स्थापना की। बहुत
जल्द ही महिलाओं ने इस केन्द्र की सहायता
ले ली। पिंजी ने ही सबसे पहले इन दुःखी
महिलाओं पर एक विवादास्पद किताब
लिखी। इस किताब ने ही समाज की आंखें
खोल दीं और ब्रिटेन और अमरीका में
क्राइसिस सेंटर जैसे आश्रालयों की स्थापना
की गंभीर आवश्यकता महसूस करायी।

इस तरह की मारपीट की घटनाओं में
छले एक दो दशकों में तीव्र वृद्धि हुई
है तथा यह वहां के समाजशास्त्रियों के

लिए एक महत्वपूर्ण शोध का विषय बना
हुआ है। इस तरह की हिंसात्मक घटनाएं
यह दर्शाती हैं कि पति-पत्नी के संबंध
कटुता की चरम सीमा तक पहुंच गये हैं।
अपने आपको शिक्षित और सम्य कहलाने
वाले समाज में इस तरह की घटनाओं से
यही प्रमाणित होता है कि मानवीय
संबंधों की संवेदनशीलता का वहां कोई
स्थान नहीं रहा।

वहां नारी अत्याचार की खबरें तो
आये दिन समाचार-पत्रों में छपती
रहती हैं। पर एक ऐसा अपराध भी
पनप रहा है, जिसकी ओर लोगों का
ध्यान बहुत कम गया है। पत्नियों द्वारा
पतियों पर अत्याचार की घटनाओं में भी
तीव्र वृद्धि हुई है। अत्याचार से मेरा मतलब
शारीरिक अत्याचार से है। आम तौर
पर पत्नियों द्वारा साधारण रूप से पीटे
जाने पर शर्म से पति इसकी शिकायत
दर्ज नहीं कराते। लेकिन गंभीर रूप से
घायल होने पर शिकायत दर्ज कराने पर
मजबूर होते हैं। इधर हाल के वर्षों में
पत्नियों द्वारा पतियों की हत्या किये जाने
की घटनाएं भी काफी बढ़ी हैं। इस
सन्दर्भ में कुछ उदाहरणों का जिक्र करना
अप्रामाणिक नहीं होगा।

न्याय व्यवस्था से असन्तुष्ट पति
द्वारा पीटी गयी कुछ पत्नियों ने कानून को
अपने हाथ में लेकर पतियों की हत्या कर
दी। कुछेक प्रेस रिपोर्टों का हवाला नीचे
दिया जा रहा है—

अप्रै १८३

दक्षिण डाकोटा की एक गर्भवती अमरीकी इन्डियन महिला मार्लिन रोन इगल ने उस वक्त अपने पति की छाती पर चाकू चलाया, जब वह उसे झाड़ू से मारने जा रहा था। यह ज्ञात हुआ है कि पति ने अनेक बार उसे मारा था। जुलाई १९७७ में वह हत्या के आरोप से इस आधार पर बरी कर दी गयी कि उसने यह सब अपने बचाव के लिए किया था।

नवम्बर १९७७ में शैरोन मैक निअरनी ने अपने पति की हत्या की और वाद में निर्दोष करार कर दी गयी। पति जब मुख्य दरवाजे से गुजर रहा था, तो पत्नी ने उसे गोली मार दी। पुलिस ने बताया कि उस औरत को उसका पति मारता और तंग करता था। यह सिलसिला काफी लम्बे अर्से से चल रहा था। मारक्वेट काउन्टी सर्किट कोर्ट के न्यायाधीश जान इ. मैकडोनाल्ड ने कहा कि कानून यह प्रमाणित करने में असफल रहा कि उसने यह हत्याकाण्ड अपने बचाव के लिए नहीं किया।

इसी माह, आरेन्ज काउन्टी, कलीफोर्निया के सुपीरियर कोर्ट में एवलीन वारे को भी अपने पति की हत्या करने के अपराध में कोई सजा नहीं दी जा सकी, क्योंकि यह सब उसने अपनी रक्षा के लिए किया था। उसने अपने पति को पांच गोलियां मारी थीं। पति द्वारा पीटे जाने पर शरीर पर पड़े निशानों को प्रमाण के रूप में पेश कर उसने साबित कर दिया कि अपनी

रक्षा के लिए उसने पति पर गोली चलायी थी।

१९७७ के वसन्त में वेलिघम (वाशिंगटन) में न्यायपालिका ने जैनिस् होन्सवुकल को हत्या के मामले में निर्दोष करार दे कर छोड़ दिया। एक रात, उसके पति ने उसे पीटा और चाकू दिखा कर मार देने की धमकी दी तो उसने अपने किशोर उम्र के लड़के से बन्दूक छीन कर पति पर गोली चला दी। पहले भी वह कई बार अपनी रक्षा के लिए पुलिस की मदद ले चुकी थी।

शिकागो में जून मालोनाडो को उसकी पत्नी ग्लोरिया ने गोली मार कर हत्या कर दी, क्योंकि मालोनाडो ने अपने आठ वर्षीय बालक को जूते से मारा था। राज्य की अदालत के पास उसे गिरफ्तार करने के लिए पर्याप्त प्रमाण न थे।

मैन्सिंग, मीचागन के फ्रान्सिस हफ ने बताया कि वर्षों से पति द्वारा निष्ठुरता से पीटे जाने की वजह से एक रोज गुस्से में आकर उसने अपने सोते हुए पति को चारों ओर गैस छिड़क कर आग लगा दी। न्यायपालिका ने उसे भी इस आधार पर बरी कर दिया कि आग लगते समय वह विक्षिप्त तथा अस्थायी पागलपन की अवस्था में थी।

इस तरह की तथा इससे मिलती-जुलती अनेक घटनाओं ने राष्ट्र का ध्यान आकषिप्त किया है और कई विरोधभासों को जन्म दिया है।

गोली ('द चेंजिंग अमेरिकन फैमिली' पर
मादकीय रिसर्च रिपोर्ट। कांग्रेसनल
मोटरली इन्स्टीट्यूशन, १४१४, २२वीं
स्ट्रीट, एन. डब्लू. वाशिंगटन डी. सी.
१००३७ से सेन्ट्रा स्टेन्सेल द्वारा प्रका-
शित।)

पति-पत्नी के कटु सम्बन्धों के कारण
तीन वर्ष दस लाख से अधिक बच्चे किसी-
किसी प्रकार के अत्याचार के शिकार
होते हैं। इनमें तीन लाख के करीब शारी-
रिक अत्याचार के शिकार होते हैं। दो से
चार हजार गम्भीर चोट की वजह से मृत्यु
का प्रास बन जाते हैं। बच्चों के प्रति
मानवीय व्यवहार दिन-ब-दिन बढ़ता
जाता रहा है।

दुनिया भर में मानवीय अधिकारों का
वैसे ज्यादा ढिंढोरा पीटने वाली अमरीकी
सरकार ने बड़े पैमाने पर स्वयं उसके देश
हो रहे मानवीय अधिकारों के हनन
को भी कभी सोचा है?

वहां जनमानस कितना संवेदन-शून्य
हो गया है, उसके लिए एक उदाहरण ही
आफी है। वहां हर वर्ष मोटर दुर्घटनाओं
में मरने वालों की संख्या साठ हजार के
पारीव होती है। वियतनाम की पूरी
बाई में मारे गये अमरीकियों से कहीं
अधिक अमरीकी हर वर्ष वहां होने वाली
मोटर-दुर्घटनाओं में मारे जाते हैं। पिछले
तीन वर्षों में जितने अमरीकी मोटर-
दुर्घटना में मरे, उतने ही अमरीकी द्वितीय
विश्व-युद्ध के दौरान मरे थे। मोटर-

दुर्घटनाओं से अपाहिज होने वालों की
संख्या, मरने वालों की संख्या से चार
गुना ज्यादा होती है। लेकिन इसे लेकर
कहीं कोई उद्वेलन नहीं। कहीं कोई
चिन्ता नहीं। यह सब वहां के लिए 'फन'
है। तेज जिन्दगी का यह एक आवश्यक
अंग है।

अमरीकी प्रशासन भी इस दिशा में
सचेष्ट नहीं। मानव-जीवन कितना सस्ता
हो गया है वहां !

जहां सामाजिकता एवं पारिवारिकता
का सर्वथा अभाव हो, तेज जिन्दगी के
नाम पर मानव जीवन ही उपेक्षित हो
गया हो, वहां नारी को उचित स्थान मिले,
यह सोचा भी कैसे जा सकता है? मेरे
विचार से तो अमरीकी नारी-समाज का
जो शोषण आधुनिकता के नाम पर हो रहा
है, वह अपने आप में बेमिसाल है। घर
में पति से कटु सम्बन्ध। दफ्तर में बाँस
के समक्ष इच्छा के विपरीत समर्पण।
प्रौढ़ावस्था में तलाक से उत्पन्न एकाकी,
असुरक्षित जीवन। बचपन में मां-बाप के
प्यार से वंचित। नारी-जिन्दगी की शुरू-
आत ही वेदना और यंत्रणा से होती है
और अंत भी वेदना और यंत्रणा से
होता है।

न्यूयार्क की २८ वीं सड़क पर स्थित
एक साड़ियों की दुकान के एक भारतीय
मालिक से बातचीत होने लगी तो कहने
लगे—'यहां पैसा तो है, पर घरेलू सुख
नहीं। हमारा भारतीय संस्कार यहां की

स्वच्छन्दता का वर्दाशत नहीं कर पाता। लोग स्वच्छन्दता के नाम पर भटके हुए हैं। स्थानीय लोग भी दुःखी हैं। हम तो हैं ही। सबसे बुरी स्थिति तो औरत की है। न घर की, न घाट की। यौवनावस्था में उसकी थोड़ी पूछ होती है। उसके बाद तो उसके भाग्य में दुःख-ही-दुःख बढ़ा है।

नारी-मुक्ति आन्दोलन भी अपने-आप में एक ढकोसला ही है। मुक्त होने के नाम पर नारी स्वच्छन्द अवश्य हो गयी है, पर यही स्वच्छन्दता उसके लिए अभि-शाप प्रमाणित हो रहा है। जैसे-जैसे नारी-

मुक्ति आन्दोलन का शोर बढ़ रहा है, नारी और ज्यादा यंत्रणा और पीड़ा की शिकार हो रही है। बाहर तो वह अपने-आप को अमुरक्षित पाती ही है, घर में भी सुरक्षा नहीं।

इन सबका परिणाम यह हुआ है कि अमरीकी नारी अपनी प्राकृतिक कोमलता को त्याग कर खीझ और कुंठा में हिंसा पर उतारू होती जा रही है और उसकी हिंसा के शिकार हो रहे हैं पतिगण। कहना मुश्किल है, आखिर इन सबका अन्त कहाँ जाकर होगा?

चतुर स्त्री

एक सुंदर नवयुवती को एक दिन ग्लेडस्टन और दूसरे दिन डिजरायली के साथ भोजन करने का अवसर मिला। जब कुछ पत्रकारों को यह खबर मिली तो वे तुरंत उस महिला के पास जा पहुंचे और लगे सवाल करने। एक पत्रकार ने पूछा—'इन दो महान व्यक्तियों के विषय में आपकी क्या राय है?'

महिला ने बड़े धैर्य से उत्तर दिया — 'जब मैं ग्लेडस्टन के साथ भोजन करके बाहर आयी तो मुझे लगा जैसे कि वे इंग्लैंड के सबसे चतुर व्यक्ति हैं। परंतु जब दूसरे दिन डिजरायली के साथ भोजन किया तो लगा कि मैं इंग्लैंड की सबसे चतुर स्त्री हूँ।'

—कल्पना आंचलिया

पत्रकार को करारा जवाब

श्री लालबहादुर शास्त्री प्रधान मंत्री पद स्वीकार कर चुके थे। एक अवसर पर पत्रकार परिषद में वे बोल रहे थे, तब एक अमरीकी पत्रकार ने उनसे पूछा—'आप इतने महान देश के प्रधान मंत्री हैं, फिर भी सादगी से जीवन यापन करते हैं, मगर आपके पुत्र ठाठ-वाट को क्यों पसंद करते हैं?'

शास्त्रीजी ने जवाब दिया, 'देखिए, मैं तो एक गरीब शिक्षक का पुत्र रहा। अतः सादेपन का गुण प्रारंभिक जीवन से ही आत्मसात कर चुका हूँ; पर मेरे जो पुत्र हैं वे एक बड़े मुल्क के प्रधान मंत्री के बेटे हैं। तो यह फर्क होना स्वाभाविक ही है!'

है
की
पने-
र में
कि
लता
हसा
सकी
ण।
वका

साय
उज
हात

के
सरे
य
तिम
ते
रात
ती
प
हों
मंदिर
होने
गटे
सपास

१८३

सिद्धेश की हिंदी कहानी

धुंधली आकृति

ह बेहद ठंडवाली रात थी। शाम से बर्फ पड़ रही थी और आसपास पहाड़ बर्फ से ढंक गये थे। सूर्य की अंतिम किरणों के पीछे तलहटियों में काफी देर हो चुकी थी और जैसे-जैसे रात बढ़ रही थी, बर्फ तह पर तह गती जा रही थी। रात मानो सफेद धुंधों और पथरीली तलहटियों से होती मंदिर की आरती और घंटों की आवाज होने के साथ धीरे-धीरे एक विचित्र गेटे में डूबने लगी थी। मंदिर के आसपास का वातावरण गहरी चुप्पी में

बदल गया था और यात्रियों के विभिन्न पदचिह्नों के काले साये में तन्दील हो गया था। मंदिर का पट अब बंद होने जा रहा था। नंग-धड़ंग साधुओं और पहाड़ी कामगारों ने अपनी-अपनी झुग्गी और दुकानें संभाल ली थीं। साधु तो रात भर धूनी रमाये हुए धुओं और चिनगारी को अपने से लिपटायें पड़े रहेंगे। कामगार छोकरे अपनी बंद दुकानों की छतों के बीच फटे कंवल लपेटे कहीं दूर पर डूबते तारों और सूर्य की पहली किरण की प्रतीक्षा में जगे रहेंगे। दूर पर कहीं तलह-

टियों से भागती हुई हवा की बजती सीटी उन लोगों को स्पष्ट सुनाई पड़ती है और यह सीटी की आवाज जब-जब तेज बजती है, उस रात बर्फ ज्यादा पड़ती है। रात और गहराती है। बंद कमरों, काठ के मकानों के भीतर पड़े-पड़े जगे हुए लोगों को लगता है कि रात के किसी अज्ञात प्रहर में आसपास के सारे पहाड़ और पास-पास सिमट आते हैं और यह सारा प्रदेश चारों तरफ से कटकर एक द्वीप में बदल जाता है।

लोग ठंड के मारे कंपकंपाते हुए ढाबे के अलाव की गर्मी और सीढ़ियों के ऊपर बने दहकते भट्टियों के आसपास जमा हो रहे थे। जगह छोटी और तंग होते हुए भी लोग एक दूसरे को नजदीक से वर्दाश्त कर रहे थे। सभी एक दूसरे के लिए अजनबी किंतु कितने परिचित, कितने आत्मीय लग रहे थे। यहां घंटा, आध घंटा बिताकर लोग अपने-अपने होटलों, आश्रमों और धर्मशालाओं में चले जायेंगे। बाहर की ठंड से पेट की सर्दी ज्यादा असह्य होती है। जब तक वह भर नहीं जाता, शरीर के खून का संचार रुक जाता है। पूरे शरीर में बर्फ की तरह खून जमने लगता है और भीतर हलक पर सांस रुकने लगती है। उस बड़े-से तिकोने ढाबे में दोनों तरफ तीन टेबुलों को घेरकर चार-चार कुर्सियां पड़ी थीं। वे सभी एक किनारे कुर्सियों पर जम गये। पास रसोईघर से अलाव की गर्मी लोगों को लग रही थी। शरीर में

नवनीत

गर्मी लगने पर अच्छा भी लग रहा था शीशे के बाहर बर्फ के कण झड़ रहे थे। दूर-दूर पर होटलों, आश्रमों और बंद दुकानों के बाहर बिजली के लट्ठों से छनकर आती हुई रोशनी यहां तक आते-आते धुंधला जा रही थी। वे लट्ठें टिमटिमाते जुगनुओं की तरह लग रहे थे।

देखते-देखते ढाबे का ऊपर का कमरा उस यात्रियों से भर गया। खाना तैयार होकर टेबुल तक आने में देर थी। सीमाने उत्तुल होकर पास बैठी हुई किरण की तरफ ताक फिर कुछेक मिनट चुप रह कर कहा, 'किरण, जब तक खाना नहीं बन जाता मैं बंद तब तक हम बोर क्यों हों? कोई गीत गाओ। तुम्हारा तो गला अच्छा भी है। हम सबों को अच्छा लगेगा। मेरे तो गले में दम ही नहीं है, नहीं तो इतनी अकलमानीय जगह पर आकर मैं चुप बैठी रहती।'

यह सुनकर सबके कान खड़े हो गये। सीमा किरण ने बिना किसी हिचक के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। किरण चाहती थी कि वह गायें। सारा वातावरण किरण के प्लावित हो उठा था। दूसरे लोग जो दूसरे टेबुल और कुर्सियों को घेरकर बैठे थे, भी चुप सुन रहे थे। बाहर का अंधकार सिमटकर भीतर आ गया था और सीमा चुपचाप बाहर अंधकार की तरफ ताकती हुई अंतर एवं बाहर आंखों की राह प्लावित होती जा रही थी। बाहर बर्फ की तहें छतों-मुंडों पर जम रही थीं। आसपास दोनों तरफ के पहाड़ों पर

की धारा वह चली थी। सीमा अपने में
 हुबकर अपने वर्ष पहले के अतीत में चली
 गयी थी। वह इन्हीं संगीतों पर खचाखच
 भरे हॉल में कई बार नृत्य कर दर्शकों को
 मुग्ध कर चुकी थी। नृत्य का उसे बड़ा
 शौक था। अपने पैरों की थिरक-ताल,
 भाव-भंगिमा तथा विभिन्न मुद्राओं पर
 वह स्वयं मुग्ध तो थी ही और चाहती थी
 कि जीवन में कोई ऐसा मिले, जो साथ ही
 साथ उस पर मुग्ध हो, उसके डोलते-
 तताकाके यौवन पर उसकी दृष्टि अटक जाये
 कहाँ और उसे अपना बनाकर अपने मन पिंजरे
 जातमें बंद कर ले। एक अंतराल के बाद वह
 ई गीतव्यक्ति मिला भी तो उसके यौवन
 की है। पर मुग्ध होकर उसको अपनी अंक-
 गायिनी बना लिया। अपने घर की
 चहारदीवारी में बंदकर हमेशा के लिए
 उसकी थिरकन को समाप्त कर दिया।
 सीमा उसके व्यक्तित्व से प्रभावित ज़रूर
 प्रस्तावी, मगर उसे क्या पता था कि जीवन का
 तीरा मारामा माधुर्य, सारी इच्छाओं की हत्या
 कर उसे मशीन बन जाना पड़ेगा। शुरू-
 से शुरू में नया उत्साह था, यौवन के नशे में
 ठे भी डूबती चली गयी थी उसके साथ।
 फिर धीरे-धीरे सारी इच्छाएं मन के किसी
 सीमापुत तहखाने में दबती चली गयीं। उसके
 ताकाका ही घर की जवाबदेही, बच्चों की देख-
 राह में पिछले बीस वर्ष कैसे-कैसे गुज़र
 गये, उसे पता भी नहीं चला !
 इस लंबी यात्रा में निकलने के पहले
 ही सोचा था—पता नहीं, कब-कितनी

परेशानियों से होकर गुज़रना पड़े, मगर
 यह अपने-आप में सुखद होगा। और
 हुआ यह कि कई बार कई बातों को
 लेकर लड़ते-झगड़ते हुए भी उस शाम
 होटल की छत पर एकांत में दोनों मुँडेरों
 से लगकर जा टिके थे। ऊपर से चांदनी
 बरस रही थी। सीमा का कई बार मन
 हुआ था कि विलास अपने हाथ में उसका
 हाथ लेकर उसी बीस वर्ष पूर्व एकांत में
 किये हुए रिश्ते को दोहराये। मगर ऐसा
 नहीं हुआ। परिवार के दूसरे लोग, उसके
 अपने बच्चे सभी नीचे व्यस्त थे और
 सबसे निश्चित सीमा घंटे भर ऊपर ही
 बैठी रही थी। मगर विलास की तरफ
 से वह आमंत्रण नहीं मिला। अंत में अपनी
 हार से उदास होकर नीचे सीढ़ियां उतर
 आयी थी।

आज फिर सीमा को उसी एकांत में
 होने की इच्छा हो आयी थी। उसने
 मुग्ध दृष्टि से भरकर विलास की तरफ
 ताका था। किरण किसी दूसरे गीत की
 कड़ी गुनगुना रही थी; फिर गाने लगी
 थी। किरण गाती हुई उन दोनों की
 तरफ छिपी नज़रों से ताक लेती थी।
 जब सीमा सब कुछ छोड़कर विलास के
 पास चली आयी थी, तब किरण कितनी
 बड़ी रही होगी? यही दस-बारह साल
 की। आज वह पूर्ण यौवना है, उसके भी
 अपने सपने हैं, अपनी दुनिया है। कहीं
 सीमा की तरह ही उसके सपने भी न
 बिखर जायें। लेकिन नहीं, वह अभी से

अपने पैर पर खड़ी है। सीमा ने अपनी नृत्य-दुनिया को बलि दी, कहीं किरण अपने मोहक गले से निकली हुई सुरीली दुनिया को समाप्त न कर ले। जीवन के कठोर सत्य के पीछे सभी को प्रस्तर हो जाना पड़ता है! वे बड़े भाग्य-शाली लोग हैं जो जीवन के संघर्ष को झेलते हुए भी जीवन से इतर दुनिया के अस्तित्व को भी बचा रखते हैं।

सीमा को कितने कठोर सत्य का सामना करना पड़ा था। विलास के पास जब भागकर आयी थी, सोचा था कि विलास के साथ की दुनिया से मधुर दुनिया और क्या हो सकती है? मगर बित्ते भर ज़मीन-वाले गलीज़ कमरे में रहते हुए सीमा और विलास ने कितने सपने ध्वस्त किये थे। खाना, चौका-बरतन कर लेने के बाद कहीं सीमा सोने भर के लिए विस्तर लगा पाती थी। रात में बाहर से आती दुर्गंधभरी हवा नाक में भर जाती थी। अपनी सुहागरात को भी बैठकर ही काटा था उसने। बाहर से वर्षा की बूंदों की झटास से सारा विस्तर भीग गया था और ठिठुरते हुए दोनों ने रात काटी थी। सुबह उठकर फिर वही चौके-बरतन में लग जाना पड़ा था सीमा को। उसी छोटे-से ओसारे में नहाना-धोना, अरगनी पर कपड़े टांगकर वह किसी प्रकार अपनी देह पर पानी डाल पाती थी। चारों तरफ के कमरों से दसों नज़रें उसकी तरफ लगी रहती थीं। थोड़े ही दिनों में अपने जीवन

से तंग आ गयी। यह भी कोई जीवन है? सीमा के परिवार के एक व्यक्ति ने, जो दूर-रिश्ते के मामा लगते थे, एक दिन मिलने आये तो उसके मुंह पर ही कह गये, 'ऐसी जगह पर भला कोई आदमी रहता है? यहां से जल्दी दूसरी जगह जाने की चेष्टा करो, नहीं तो टी.बी. हो जायेगी!'

हां, रोग तो नहीं लगा, मगर अंदर का सब कुछ स्वाहा हो गया। अंदर ही अंदर सपने धंसते चले गये। इच्छाएं मरती चली गयीं। और आज तक उसी लाश को अपने कंधे पर ढोती चल रही थी सीमा। न चाहते हुए भी अपनी नज़र में अपनी हत्या के जुर्म में विलास को दोषी ठहराती आ रही थी।

सीमा ने अपनी डबडबाई आंखों से किरण की ओर देखा, वह मानो आज सारी थाती लुटाने पर आमादा थी। बाहर तेज़ी से बर्फ पड़ रही थी।

०००

डाबे से खा-पीकर चलते-चलते काफी देर हो गयी थी। रात मानो बर्फ की तरह ही जमकर और स्याह हो गयी थी। हाथ से हाथ नहीं मूझ रहा था। सीमा अपने दोनों बच्चों के साथ दूसरे लोगों से पीछे-पीछे चल रही थी। ठंड से ठिठुरती देह को कसकर गरम चादर से लपेट रखा था। चादर के एक हिस्से से अपने सिर के ऊपर से कान को ढंकते हुए मुंह को लपेट रखा था। फिर भी मानो बर्फ ने झरती ठंड कानों में बिधकर अंदर तक

जादे रही थी। छोटी लड़की को अपने लिपटायी हुई सीमा धीरे-धीरे लॉज तरफ बढ़ रही थी। लड़का सबसे छोटे स्वेटर से पूरी देह और सिर को से ढंके चल रहा था। विलास आगे-अन्य लोगों के साथ निकल गया था। से लॉज के अग्रभाग पर जल रही जलीकेलटू से रोशनी यहां तक आती-ती धुंधली हो गयी थी। आंखों के आगे मने अंधेरा गहरा रहा था। सामने पहाड़ जमतीं बर्फ की उजली रेख किसी जलत बहती नदी की धुंधली आकृति-सी रही थी।

तड़ाक करके कुछ टूटने की ध्वनि आयी और सीमा के आगे इसी तरह का घेरा छा गया था। यह टूटना मानो के अंदर ही अंदर हुआ था ! सीमा हठात् लगा था कि आकाशगंगा से बरती हुई रोशनी से इस अंधकार में पूरा पहाड़ी प्रदेश धुंधला हो आया है। मने आकाश के एक किनारे टिके पहाड़ों धुंधला साफ दिखाई पड़ने लगी थी। मा को तत्क्षण लगा था कि विलास उससे बहुत दूर चला गया है। स काल पुरुष की कल्पना में वह मन भर होम होती रही थी, वह सच निकला। पूजा व्यर्थ गयी। विलास तो दुनिया में व्यस्त है ! वह दूसरी क्या हो सकती है ? यह वह नहीं होती है, मगर विलास अब उसकी या की गिरफ्त में नहीं है।

लॉज की सीढ़ियां चढ़ती हुई सीमा लड़खड़ा गयी थी। पैर ठंड के मारे जम गये थे। अंगुलियों का पोर-पोर पत्थर की तरह भारी हो आया था। आंखों की कपड़ियों पर बर्फ के महीन कण जमा हो गये थे। उसने कमरे के अंदर जाने के पहले पीछे मुड़कर देखा था। आकाश के धुंधलेपन में भी विराट मंदिर का कलश एक बार नज़र के आगे चमककर ओझल हो गया था।

सीमा ने कमरे में आने के बाद भीतर से दरवाज़ा ठोक लिया था। कमरे के अंदर सौ पावर का बल्ब जल रहा था। ज़मीन पर लंबी चौड़ी दरी पूरे कमरे को घेरती हुई बिछी थी। ज़मीन पर बिछी दरी और तोशक पर ही सबके सोने का आयोजन किया गया था। ऊपर से ओढ़ने के लिए दो-दो कंबलों का इंतज़ाम था, फिर भी ठंड इतनी थी कि सभी मानो बर्फ से भीग आये थे। शीशे की खिड़कियों और ऊपर वेंटीलेशन के छिद्रों से छनकर कमरे के अंदर बर्फ के कण आ रहे थे। कमरे की एक-एक चीज़ पर बर्फ की महीन तह पड़ गयी थी। छूते ही अंगुलियां सिकुड़ आती थीं। सीमा अपने दोनों बच्चों को लेकर पड़ी थी। विलास उसके बाद था। जब सभी कंबल के भीतर आ गये, तब कमरे की रोशनी गुल कर दी गयी। बहुत देर तक उसी अंधेरे में पड़ी-पड़ी सीमा आंखें खोले अतीत की तहों को खोदती-खरोचती रही। उसकी आंखों

में नींद नहीं थी। सुबह उठकर ही कल उलटी दिशा की तरफ लौट जाना था। अपने शहर। पूरे दिन भर की थकावट के बावजूद वह सी नहीं पा रही थी। वह मानो कहीं और भटक रही हो— उसकी आंखें खुली हुई थीं और शरीर श्लथ पड़ा था। उसने विलास की तरफ हाथ बढ़ाकर उसे छूना चाहा था। अंधकार में कुछ भी पता नहीं चल रहा था। बच्चे दोनों सो गये थे। दूर पर पड़े दूसरे लोगों का पता नहीं चल रहा था। वह धीरे से उठकर बैठ गयी। कुछ देर तक वैसे ही बैठी रही। फिर उठकर धीरे-धीरे दरवाजे की तरफ बढ़ी। वह दरवाजा खोलकर बाहर आ गयी। ठंड और तेज हो गयी थी। इस बार उसके शरीर पर कोई गरम कपड़े नहीं थे। मगर वह अंदर से मानो दहक रही थी। पूरा शरीर जल रहा था। विलास को सोया छोड़कर अकेली बाहर निकल आयी थी। वह निश्चित थी कि अब वह पूर्णतया मुक्त है। वह कुछ भी कर सकती है, वह नंगे पैर बर्फ पर दौड़ सकती है, पहाड़ पर पथरीले रास्ते से होकर घाटियों में जा सकती है। वह सीढ़ियों से उतरकर अंधकार में दूर-दूर तक जाना चाहती थी। वह सीढ़ियां उतरकर दौड़ पड़ी थी कि पीछे से किसी ने उसका हाथ थाम लिया था।

सीमा चौंक पड़ी, 'कौन है?'

'मैं हूँ।' अंधकार में हाथ से हाथ नहीं

नवनीत

सूझ रहा था।

'मैं कौन?' सीमा मानो चौंकर तो अ

पीछे हट आयी।

'मैं ... पहचान नहीं रही हो?'

'नहीं, तुम कौन हो, मेरे पीछे क्यों

आये हो? मुझे जाने दो।'

'कहां जाओगी?'

'मुझे नहीं पता। मैं लौटना नहीं

चाहती। मुझे मत छुओ।' सीमा ने उसके

हाथ को झटक दिया।

'तुम्हें आज हो क्या गया है, सीमा?'

तुम परेशान लग रही हो, अंदर चलो

इस अंधकार में कहां जाओगी?'

'नहीं, मैं जाऊंगी। तुम मुझे नहीं

रोक सकते।' और सीमा तेजी से भागकर

पहाड़ के रास्ते पर मैदान में आ गयी।

वह भी पीछे-पीछे भागा और थोड़ी दूर पर

खड़ा हो गया। ऊपर से बर्फ के महि

कण पड़ रहे थे। सामने पहाड़ के नीचे

की जमीन पर बर्फ की तह से जमी हुई

सफेदी नज़र आ रही थी। केवल चारों

तरफ बर्फ की सफेदी के अलावा कहीं

कुछ नज़र नहीं आ रहा था।

अंधकार में धीरे से आगे बढ़कर उसने

दूसरी तरफ मुह किये खड़ी सीमा का हाथ

कसकर पकड़ लिया। चिल्लाकर बोला,

'तुम क्या चाहती हो? क्या करने का

इरादा है?'

'मैं नहीं जानती। मगर अब मैं नहीं

लौटूंगी। तुम लौट जाओ।'

'यह क्या पागलपन है! लोग जान

योंगे, फिर मुसीबत खड़ी हो जायेगी।
'किकर' बो अब ।'

'तुम मुझे क्यों लौटाना चाहते हो, जानती हूँ, तुम विलास ही हो, मगर क्यों बहुत दूर चली आयी हूँ। अब मैं ही लौटूंगी ।'

'नहीं, सीमा। बच्चे बड़े हो गये हैं, उन्हें छोड़कर कहां... अब अपनी दुनिया उससे रहकर ही सुख की तलाश तुम्हें करनी होगी ।'

'नहीं, यह झूठ है। बच्चे भी मुझे नहीं चाहते। तुम भी चाहने का नाटक भर करते हो ।'

नहीं पीछे पहाड़ पर से कुछ लुढ़कने की आवाज आयी थी। जमी बर्फ का कोई एक गोला पसीज कर नीचे आ गिरा था। और इस धमाके की आवाज से दोनों झटक गये थे।

धमाके के बाद ही झरने की-सी आवाज कुछ देर तक गूँजती रही, फिर सीमा के ससकने की। वह विलास से लगी हुई ससक रही थी। विलास उसे अपने से लिपटाये हुए धीरे-धीरे होटल की तरफ लौट रहा था।

०००

रात भर बर्फ पड़ती रही थी। आस-पास के घरों की छतें, टीन के मुँडेरों पर बर्फ के कण जमे हुए थे। दूर से पहाड़ के पीछे सूरज का गोला धीरे-धीरे ऊपर की तरफ चढ़ रहा था, फिर भी वातावरण नमी और कुहासे की वजह से मंदिर

१८३

का मस्तूल तक दिखाई नहीं पड़ रहा था। कुछ दूरी पर ढाबे के ऊपर का वह कमरा धुंधला दिखाई पड़ रहा था। उसकी शीशे की खिड़कियों पर पानी की लकीरें जमी हुई थीं, बर्फ अब धीरे-धीरे पिघलनी शुरू हो गयी थी।

लॉज के ऊपर टीन की छत से बर्फ पिघल-पिघल कर पानी की बूंदों में नीचे टपक रही थी। लेकिन पहाड़ों पर अभी भी वैसी ही सफेदी जमी थी। कहीं-कहीं झरने की तरह की ध्वनि भी कानों से टकरा रही थी। बर्फ ने पानी की शक्ल अख्तियार कर तलहटियों में बहना शुरू कर दिया था।

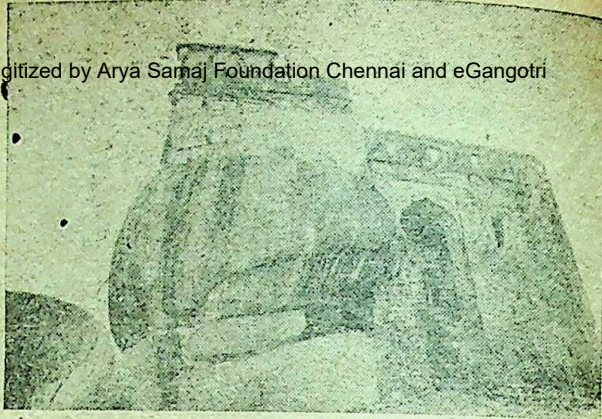
दर्शनार्थियों के लौटने के लिए बसें आठ-नौ बजे तक तैयार हो जाती हैं। ग्यारह बजते-बजते लोग जत्थों में बंटकर अपनी-अपनी सीटों पर आ लगेगे। वे लोग भी चाय-नाश्ते के बाद बस के नजदीक तक पहुंच गये थे। सामान बस के ऊपर चढ़ा दिये गये थे। बस के छूटने में आधे घंटे की देर थी। सीमा आज बेहद सुखर थी। वह अपनी बहन, मां और बच्चों से घिरी पिछली रात की बातों में व्यस्त थी।

'ओह, कल रात कितनी ठंड थी।' किरण बोल रही थी।

'हां, सचमुच। लेकिन थकावट इतनी थी कि रात में जो नींद आयी, तो फिर पता भी नहीं चला कि कब सबेरा हुआ ।' सीमा की लड़की सुनीता ने कहा।

(शेषांश पृष्ठ ११९ पर)

हिंदी डाइजेस्ट



जबलपुर के पास स्थित रानी दुर्गावती का निवास 'मदन महल'

जहां इतिहास की आंखें नम हो जाती हैं
रोमांचक कथा रानी दुर्गावती की



सुधारानी श्रीवास्तव

जब हम इतिहास के पृष्ठ पलटते हैं तो भारत के इतिहास को मोड़ देने वाले कुछ ऐसे युद्ध हैं, जहां बरबस मुख से निकल आता है 'काश ! यदि ऐसा न होता ।'

इनमें हल्दीघाटी, उदवानाला, पलासी का मैदान, पानीपत का युद्ध, सामूगढ़ और तर्रई नाले के युद्ध हैं, जहां इतिहास की आंखें नम हो जाती हैं । भारतीय इतिहास में इनके अतिरिक्त भी कितने ही युद्ध हैं जो जीत की सीमा छूते-छूते हार में परिणत हो गये हैं । हार-जीत की इस आंखमिचौली में इतिहास की एक कंडिका मात्र है तर्रई नाले का युद्ध । एक रणबांकुरी

नवनीत

महारानी के लहू से रंजित तर्रई नाले आज भी उस दिन की गाथा कह रहा है जब उसके जल में शैतान समा गया था और जून के महीने में बाढ़ ने रानी का रास्ता रोक लिया था ।

'काश ! तर्रई नाले में रानी दुर्गावती की दूरदर्शिता कामयाब हुई होती !'

अकबर की 'भेड़िया और मेमना' नीति का शिकार हुई थी, महारानी दुर्गावती भी । साम्राज्य विस्तार की लिसा से अकबर ने महारानी दुर्गावती पर चढ़ाई की थी ।

यद्यपि गढ़ा-मंडला (महारानी दुर्गावती

ती का राज्य) का क्रमवद्ध इतिहास
अलब्ध नहीं है, तथापि महारानी दुर्गावती
समुर महाराजा संग्राम शाह ने बावन
हों में अपना राज्य विस्तार किया।
मि. स्लीमैन ने यहां के इतिहास पर
छठी तरह छानबीन की थी। उनके
नुसार गोंड साम्राज्य उत्तर से दक्षिण
१०० मील और पूर्व से पश्चिम २२५
मील अर्थात् कुल ६७५०० वर्ग मील में
ला था। गढ़ा (जबलपुर) में पहाड़ियों
पर स्थित मदनशाह द्वारा एक चट्टान पर
निर्मित मदन महल महारानी की राजधानी
था। इन्हीं पहाड़ियों की तलहटी में बसा
ग्राम तेवर (त्रिपुरी) भग्नावशेषों से
पूरा-पूरा यह प्रदेश कलचुरियों के वैभव
का प्रतीक है तो यही गोंड राजाओं की
सृष्टि का भी द्योतक रहा है। यहीं
महारानी दुर्गावती का कणबेल नामक
भवन था। यह एक बहुत ऊंचा भवन था।
इसके शिखर पर एक बहुत बड़ा कड़ाह
बांधा रहता था, जिसमें विनौले का तेल
भरा रहता था। कहते हैं कि संध्या होते
कड़ाह की बड़ी-बड़ी बत्तियां जला
जाती थीं, जिससे मीलों दूर तक प्रकाश
पड़ता था।

महारानी दुर्गावती नित्य नर्मदा स्नान
कर कणबेल के महल में रहती थी। और
संध्या की-जैसे ही कड़ाह की बत्तियां जलती
थीं वह मदन महल वापस आ जाती थी।
कहते हैं कि अकबर को महारानी का यह
दृश्य प्रदर्शन नहीं रुचा और उसने महा-



महारानी दुर्गावती की समाधि पर
रखा उनका कबर का शिल्प-चित्र।
जिसमें रानी को मुहरत हाथी पर
सवार दिखाया गया है।

रानी का राज्य हड़पने के लिए चढ़ाई
कर दी।

जनश्रुति है कि रानी ने विधवा होते
ही, संपूर्ण राज्य का प्रबंध अपने हाथों
में लिया और अपने नाबालिग पुत्र वीर
नारायण के अभिभावक की हैसियत से
राज्य का सुचारु संचालन किया। अकबर
ने रानी के कुशल राज्य संचालन की चर्चा
सुनी तो उसने ईर्ष्यावश रानी के पास
एक सोने का चरखा भेजा। जिसका तात्पर्य

था कि स्त्रियों का काय चरखा चलाना है न कि राज्य संचालन करना। इसके उत्तर में रानी ने अकबर के पास रुई धुनकने का सोने का पींजन और मुठिया भेज दिया। जिसका तात्पर्य था कि मदों का काम रुई धुनकने का है। वस इसी से चिढ़कर अकबर ने उसके राज्य पर चढ़ाई कर दी।

और आ गया वह युद्ध जिसके लिए इतिहास तक रो दिया।

पन्ना राज्य (म. प्र.) में विजय का डंका बजाता आसफखां दमोह की ओर बढ़ रहा था। जासूसों से महारानी के वैभव का पता अकबर को लग ही चुका था। अतः उसने आसफखां के पास गढ़ा-मंडला पर चढ़ाई करने का फरमान भेज दिया। शहंशाह अकबर का हुक्मनामा लेकर आसफखां ने बाजाव्ता गढ़ा-मंडला पर चढ़ाई बोल दी। १७००० घुड़सवार सेना एवं अगणित पैदल सेना लेकर आसफखां महारानी दुर्गावती से लड़ाई करने आगे बढ़ा। इतना ही नहीं शाही आज्ञा से आसपास के छोटे-छोटे जागीरदार भी अपनी-अपनी सेना लेकर आसफखां की सेना में सम्मिलित हो गये।

रानी दुर्गावती को अभी तक अंदाज नहीं हो पाया था कि शाही फौज कहां तक बढ़ आयी है। उसकी सेना अपने आप को घिरा हुआ महसूस करते ही अपने-अपने बाल बच्चों की सुरक्षा का प्रबंध करने के लिए बिखर गयी। इतनी विषम नवनीत

स्थिति में भी रानी अकबर की शाही फौज से जूझने के लिए तैयार हो गयी। एक कुशल कूटनीतिज्ञ की तरह रानी के कायस्थ दीवान अद्वारसिंह ने रानी को सुलह की सलाह दी, किंतु रानी ने सुलह करना अपनी तौहीन समझी।

रानी के पास कुल जमा २००० पैदल सेना थी। एक मन से सभी ने युद्ध का निश्चय लिया और तय हुआ कि कूटनीति से काम लिया जाये। महारानी ने सात स्थिति का गहन अवलोकन किया और अपनी सेना के साथ गढ़ा के पश्चिम चली गयी। सेना सहित रानी ने नर्मदा नाले के पास पड़ाव डाला। यह स्थान ढलवान जंगलों में है। इस स्थान के ओर पहाड़ी नदी गौर है और दूसरी ओर गहरी नर्मदा, तथा सामने कोराना जलाशय है। चारों ओर से इस स्थान घुसना और निकलना कठिन है। नर्मदा के उस पार मौजा करीबा है, जहां नर्मदा पार करके जाना खतरनाक है। रानी शाही सेना से मुकाबला करने के लिये यही स्थान उपयुक्त समझा और मोर्चा बांध कर डट गयी। उसी समय सूचना मिली कि शाही फौज ने मौजा करीबा अपने अधिकार में कर लिया है। रानी ने अपनी सेना को समझाया कि तब तक शाही सेना को घेर न लिया जाये तब तक कोई आक्रमण न करे।

रानी ने जैसा सोचा था वही हुआ। मुठभेड़ में शाही सेना के करीब ३०००

निक मारे गये। मुगल सेना के पांव
खड़ गये और वह भाग गयी। भागने वाले
शाम तक पीछा किया गया। पहले दिन
युद्ध में जीत रानी की हुई।

रानी का इरादा था कि रात को ही
मुगल सेना पर अचानक आक्रमण कर
दिया जाये। किंतु रानी की यह सलाह
किसी को अच्छी नहीं लगी। रानी को
बसका डर था वही हुआ। सूरज की
किरण निकलते-निकलते शाही सेना
हाड़ियों में घुस आयी। यह मुठभेड़
रानी को भारी पड़ी। उसने स्थिति की
गंभीरता को देख अपने पुत्र वीरनारायण
को युद्ध-स्थल से दूर भिजवा दिया। राजा
वीरनारायण को युद्ध-स्थल से गया जानकर
रानी में खलबली मच गयी। फौज तितर-
बितर होने लगी। इसके बावजूद रानी
मेरा भी नहीं घबड़ाई। उसने सैन्य-
चालन अपने हाथ में ले सैनिकों को
साहाय्य करना शुरू कर दिया।

इसी समय रानी के बाजू पर एक
तिर आकर लगा। रानी ने खींच कर तीर
निकाला, किंतु उसकी अनी अंदर रह

गयी। अचानक दूसरा तीर सरसराता
हुआ आकर उसकी गर्दन में लगा। रानी
ने धैर्य के साथ उसे भी निकाल दिया।
किंतु पीड़ा से वह लड़खड़ा गयी। जून का
महीना था। अचानक बादल छा गये
और ऊपरी भाग में वर्षा हो जाने से पहाड़ी
नरई नाला बाढ़ से विकराल हो गया।
पीछे हटना कठिन देख रानी ने अपने
दीवान आधारसिंह से कहा कि मेरी इज्जत
खतरे में है तुम मुझे कटार भोंक दो।
किंतु दीवान की हिम्मत न पड़ी तो रानी
ने उसकी कटार छीनकर अपने हाथ से
अपनी जीवन-लीला को समाप्त कर दिया।

नरई नाले का युद्ध २३ व २४ जून
१५६४ को हुआ था। २४ जून को रानी
ने स्वर्गारोहण किया। जहां रानी का
प्राणांत हुआ, वहां एक छोटा-सा स्मारक
बना हुआ है।

वहीं २४ जून सन १९६४ को
रानी की ४०० वीं पुण्यतिथि पर एक
कीर्ति स्तंभ का निर्माण किया गया है।
धन्य सती दुर्गावती, करि गढ़ मंडल राज।
रखी गोंडवाने तुही खड्ग धरम की लाज ॥



(पृष्ठ ७९ का शेषांश)

म इस निकम्मे, तुम्हारे नाम पर बट्टा
गाने वाले लड़के को अपना पुत्र न
मझो और उसे भूल जाओ।

तुम्हारा-चिंतु

इष्टदेव की प्रतिमा निश्चल रही।
किन्तु ऐसा आभास हुआ कि उसके

मुख पर पूर्व की अपेक्षा गंभीरता अधिक
आ गयी है। संभवतः वह यह निर्णय न
कर पायी हो कि जो डाक्टर ने किया वह
अच्छा था या बुरा, झूठ था या सच?

-४/२१०, मनोबीना, सी. डी. बरफीवाला
मार्ग, अंधेरी (प.), बम्बई-४०००५८



बीकानेर का त्रैलोक्य दीपक प्रासाद

अगरचंद नाहटा

बीकानेर राज्य की स्थापना राव बीकाजी ने संवत् १५४५ के लगभग की। जोधपुर से आते समय उनके साथ कई ओसवाल जैन भी थे। अतः बीकानेर राज्य के किले की नींव डालने के साथ-साथ चितामणीजी के जैन मंदिर की भी नींव डाली गयी। इस मंदिर का संवत् १५६१ राव बीकाजी के समय का शिलालेख है। इसके पश्चात् भांडाशाह ने सुमतिनाथ का एक जैन मंदिर बहुत ऊंची भूमि पर बनाया। संवत् १५-७१ में राजाधिराज लूतकरणजी के समय यह मंदिर तैयार हुआ। सूत्रधार गोदा ने इसके निर्माण में मुख्यरूप से भाग लिया। इस मंदिर के शिलालेख में विशिष्ट जिनालय का नाम 'त्रैलोक्य-दीपक' लिखा मिलता है।

बीकानेर का यह भांडाशाह का जिनालय उसी रणकपुर के विशाल जैन मंदिर का

अनुकरण है। इसके निर्माता भांडाशाह के नाम से बीकानेर में यह मंदिर भांडा-शाहजी के नाम से प्रसिद्ध है। राजकीय लक्ष्मीनाथजी के मंदिर के पास ही यह तिमंजिला जिनालय बहुत दूर से ही लोगों

को आकर्षित करता है।

बीकानेर राज्य भर में इतना विशाल कलापूर्ण

और ऊंचा अन्य कोई

प्रासाद नहीं है। मंदिर

के परकोटे की लंबाई

सामने की ओर से १७०

फुट और पीछे की ओर

से १९० फुट है। चौड़ाई

सामने की ओर से १४४

फुट और पीछे की ओर

से १०९११ फुट है।

परकोटे के भीतर मूल

मंदिर के चारों ओर

काफी स्थान खुला छोड़ा

गया है। मूल मंदिर की लंबाई ७२११ फुट

बाह्य मंडप २२११ फुट अर्थात् कुल ९५ फुट

है। और चौड़ाई पीछे की ओर से ५२११

फुट तथा सामने की ओर ३९ फुट है।

समतल भूमि से ११२ फुट मंदिर का



अप्रतिम शोध-विज्ञानी अगरचंद नाहटा, जिनका हाल ही में स्वर्गवास हो गया : श्रद्धांजलि।

गया है। मूल मंदिर की लंबाई ७२११ फुट

बाह्य मंडप २२११ फुट अर्थात् कुल ९५ फुट

है। और चौड़ाई पीछे की ओर से ५२११

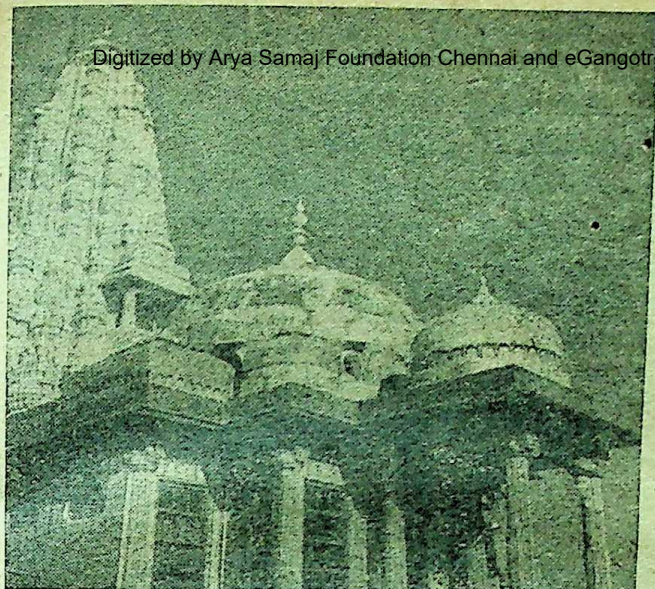
फुट तथा सामने की ओर ३९ फुट है।

समतल भूमि से ११२ फुट मंदिर का

नवनीत

११६

अप्रति ६३



पंचशैल मंदिर, जयपुर

कोई और ऊंचा है। और फर्श से शिखर तक ऊंचाई ८१ फुट है। मंदिर कितना लंबा बना है, यह उसके सामने के कोटे के ओसार से ही पाठक अनुमान कर सकते हैं। इसकी दीवार की चौड़ाई १७ फुट के लगभग व कंगूरों के पास ४४ फुट चौड़ी है। इससे इस मंदिर की चौड़ाई, विशालता और भव्यता का आभास मिल सकता है।

कहा जाता है कि इस मंदिर का निर्माण जैन वसने के साथ-साथ या उससे पहले आरंभ हो गया था। इसको बनाने के लिए पानी 'नाल' नामक स्थान (जो कि वीकानेर से ८ मील दूर है) जाया जाता था और पत्थर जैसलमेर जैसलमेर का पीला टिकाऊ पत्थर और भी कई मंदिरों में प्रयुक्त है।

इस पत्थर में जाली और शिल्प-कार्य बहुत सुंदर होता है।

कहा जाता है कि इसके निर्माता भांडा-शाह घी का व्यापार करते थे। हज़ारों मन घी इनके यहां संग्रहीत रहता था, जिसे ऊंटों द्वारा बाहर भेजा जाता था। एक दिन घी में एक मक्खी गिर पड़ी, भांडाशाह ने उसे तुरंत निकालकर राख पर डाल दिया और अंगुली पर लगे घी को अपनी जूती पर रगड़ लिया। पास खड़े शिल्पी ने सोचा कि यह सेठ कंजूस मालूम होता है। जो व्यक्ति इतने से घी का भी विचार करता है वह मंदिर क्या बनवायेगा। परीक्षार्थ शिल्पी ने जब नींव भरने का समय आया, तब सेठ से कहा कि प्रासाद के मुद्दु होने के लिए नींव में घी और खोपरो का डाला जाना आवश्यक है।

भांडाशाह ने कहा कि जितना चाहो घी घर से मंगवा लो। और तुरंत अपने सेवकों से सैकड़ों मन घी के कुप्पे मंगवाकर नींव में डलवाने लगा। शिल्पी सेठ की इस धार्मिक भावना को देखकर आवाक रह गया और घी डलवाना बंद कर कहा कि मैंने आपकी परीक्षा के लिए ही यह बात कही थी। भांडाशाह ने कहा कि भाई हम लोग फिजूल में थोड़ी भी वस्तु न गंवाकर शुभकार्य में आवश्यकता अनुसार बड़ी से बड़ी संपत्ति को लगाने में नहीं हिचकते। इससे शिल्पी को बहुत उत्साह मिला और उसने अपनी ओर से मंदिर को सुदृढ़ और दर्शनीय बनाने में कोई कसर नहीं रखी।

भग्न्य रंगमंडप, विशाल गुंफन और शिखर की निर्माण-कला देखते ही बनती है। गर्भगृह की प्रदक्षिणा में भरत-मुनि के नाट्यशास्त्र से समर्थित वाद्ययंत्र-धारी और नृत्यरत देव-देवियों को अंकित करने में शिल्पकार ने अपने हृदय और मस्तिष्क की एकाग्र वृत्ति को छेनी और हथौड़ी की सहायता से प्रस्तर खंड को कला का साकार रूप दिया है। मंदिर में ४२ स्तंभ हैं। तीनों मंजिलों में चौमुख जिन-प्रतिमाएं विराजमान हैं। ऊपर की मंजिल से बीकानेर नगर का दृश्य बहुत ही सुंदर दिखायी देता है। मंदिर का शिखर दूर से दिखायी देता है।

शिल्प की दृष्टि से तो यह मंदिर बहुत ही महत्वपूर्ण है। प्रदक्षिणा का

नवनीत

कला और हम

कला के माध्यम से ही हम अपने बाहर जा सकते हैं, और तब हम के बारे में दूसरे के दृष्टिकोण से, जो हमारे दृष्टिकोण से भिन्न हो सकता है, परिचित हो सकते हैं, और उन प्राकृतिक दृश्यों का अवलोकन कर सकते हैं, जो कला के अभाव में हमारे लिए चंद्रमा के प्राकृतिक दृश्यों के समान ही अनजान रहते हैं। हम अपनी एकल दुनिया को देखने के स्थान पर उतनी दुनियाएं देखते हैं, जितनी मौलिक कलाकार हैं। और, अपने जीवन-लीला समाप्त करने के बाद कुशल और प्रख्यात कलाकार अपने विशेष किरणें हम तक पहुंचाते रहते हैं।

— पार्सल प्राउ

स्थापत्य चार भागों में विभक्त होता है। चार दिशाओं में चार मूर्तियां हैं, जिनके सामने द्वार हैं और जालियां हैं। प्रत्येक कक्ष में छः कायोत्सर्ग मुद्रा स्थित विभिन्न मूर्तियां हैं। दो-दो यक्ष प्रतिमाएं, चार चार भाव भंगिमावाली नृत्य करती मूर्तियां—इस प्रकार कुल ४८ मूर्तियां हैं। इनके परिकर, वाहन, वस्त्र और मुद्राएं भिन्न-भिन्न हैं।

विगत अर्ध शताब्दि में इस शिल्पकला के पूर्ण जिनालय को चित्रकला की दृष्टि से

००० खूब समृद्ध किया गया। वीकानेर के
सिद्ध चित्रकार मुरादबख ने संवत्
१६० से ४ वर्ष तक निरंतर जिनालय
सौंदर्य में अभिवृद्धि की। बाह्य सभा-
गृह के गुंबज में सुजानगढ़ का मंदिर
लभद्र-दीक्षा, वेश्या-प्रतिबोध, भरत-
मुनि-युद्ध, ऋषभ देव के १०० पुत्रों
प्रतिबोध, दादाबाड़ी, धन्ना शालिभद्र
चित्र के ३ चित्र, विजय सेठ-सेठानी के
चित्र, इलाचीपुत्र सुदर्शन सेठ के २

चित्र तथा समवसरण—ये कुल १६ विशाल
चित्र हैं। इसके नीचे कार्निश पर वीकानेर
विज्ञप्ति-पत्र का संपूर्ण चित्र और ऊपर
नेमिनाथ की वारात आदि के ८ चित्र
हैं। दादा साहब के चरित्र से संबंधित
१६ चित्र हैं। गुंबज के सबसे ऊंचे भाग
के सोलह चित्र तीर्थंकरों के चरित्र से
संबंधित हैं। अन्य चित्रों में जैन तीर्थों
और जैन स्थानकों के भावों के चित्र विशेष
रूप से उल्लेखनीय हैं।



(पृष्ठ १११ का शेषांश)

‘तुमको पता नहीं चला कि रात में
कौन की बड़ी-बड़ी चट्टानें लुढ़की थीं
आपके के साथ और कभी-कभी झरनों
जैसी आवाज़ भी सुनायी पड़ी थी।’
‘अच्छा!’ सुनीता ने आश्चर्य से पूछा।
सीमा का लड़का सुजीत एक टीले के
छे पुरे दृश्य का मुआयना कर रहा था।
उसके हाथ में खुला कैमरा झूल रहा था।
वह कैमरे को अपनी आंख लगाते हुए मानो
कोई गड़ा खजाना पा गया हो। वह वहीं
चिल्ला पड़ा, ‘मम्मी, इधर आओ।’
‘क्यों, क्या हुआ?’ सीमा ने पूछा।
‘इधर आओ न। वह देखो, जो
सामने चट्टान है और उसके पीछे मंदिर,
टल और पहाड़, नंदादेवी का शिखर
व कुछ दिखाई पड़ रहा है न। वस, इसी
चट्टान पर चलकर बैठो न। और पिताजी
हां हैं? मैं आप दोनों को इसी चट्टान
पर बिठाकर फोटो लेना चाहता हूं।’



‘पागल मत बनो। यह भी कोई फोटो
लेने का वक़्त है, ऐन जाते समय!’

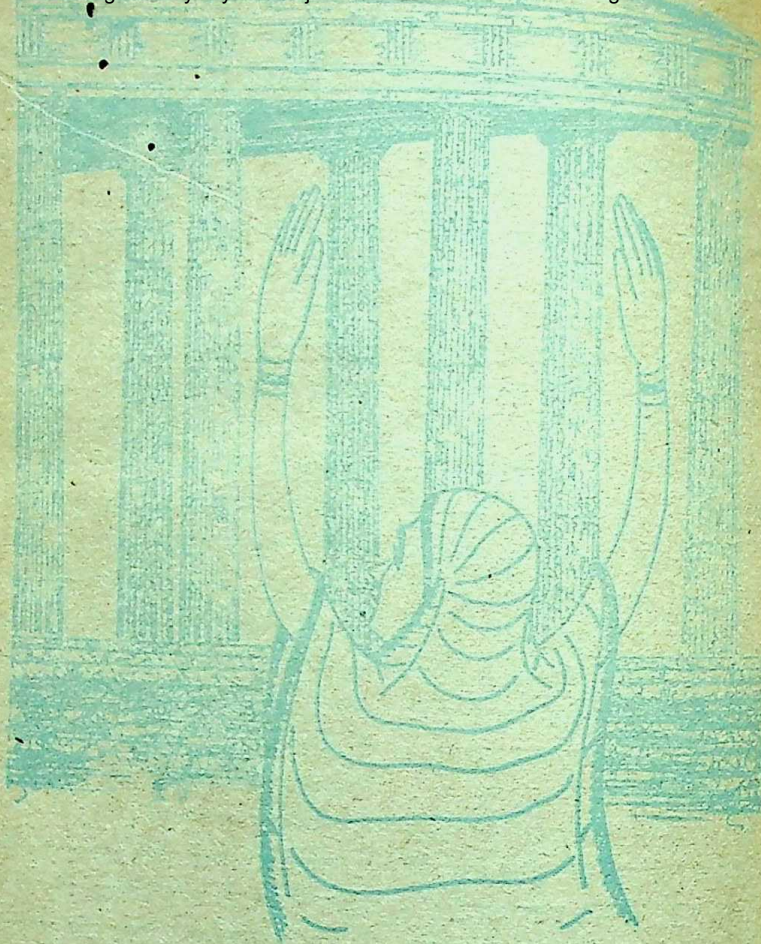
‘हां, यही तो समय है। फिर पता नहीं,
जिंदगी में कभी आपका आना हो या
न हो। मैं तो फिर भी आऊंगा। तब इस
टीले की याद रह जायेगी।’ सुजीत ने
मां को पकड़कर चट्टान पर बिठाया,
फिर नीचे एक पत्थर के पास खड़े पिताजी
को लेने वह चल पड़ा।

लोगों के सामने ऊंची चट्टान पर बैठी
सीमा ने चारों तरफ देखने की ललक
से सिर उठाया था। मगर उसे कुछ भी
दिखाई नहीं पड़ रहा था। वस, उसे
धुंधली-सी एक पुरुष-आकृति दिखाई
पड़ रही थी, जो पुरुष उसकी ओर धीरे-
धीरे बढ़ा आ रहा था!

—आनन्द बाजार पत्रिका लि.,

६ प्रफुल्ल सरकार स्ट्रीट,

कलकत्ता-७००००१



पूर्वीय गुह्य विद्याओं के विख्यात मर्मज्ञ

डा. पॉल ब्रंटन

के 'गुप्त मिस्र की खोज' नामक ग्रंथ के एक लेख का सार-संक्षेप

मिस्र के प्राचीन मंदिरों के रहस्य

प्रस्तोता : हरिमोहन शर्मा

विद्य
तकों
लेख है
क्योंकि
त्मा के
वीन मि
षियों
पॉल

त ह
ऐसा
यी मूर्ति
रे में अ
म जान
तर-मूर्ति
ज भी फि
जर न
स्जद के
स्थित
तष्ठित
अतीत
भुला न
एक अ
बहुत
ता है।
एक वि
इन मं
र गुरुओं
परिवेश
८३

विद्या से संबंधित, मिस्र का एक प्राचीन ग्रंथ है - 'द बुक ऑफ द डेड्स' (मृतकों का ग्रंथ), जिसमें स्वेच्छा से अपने शरीर त्यागने वाली ऐसी मृतात्माओं का लेख है, जिन्होंने शरीर छोड़ने के बाद भी दूसरे किसी शरीर में प्रवेश नहीं किया। क्योंकि उन्हें एक पूर्व-निश्चित अवधि के बाद, पुनः उसी शरीर में लौट आना है। आत्मा कैसे शरीर को छोड़कर मुक्त हो सकती है, इसका प्रशिक्षण साधकों को मिस्र के मंदिरों में दिया जाता था। मोजेज, प्लेटो, होमर, पायथोगोरस आदि विद्वानों ने इन्हीं मंदिरों में रहकर यह गुप्त साधना की थी। प्रस्तुत सार-संक्षेप डॉक्टर पॉल ब्रंटन कृत 'ए सच इन सीक्रेट ईजिप्ट' के कुछ अंशों पर आधारित है।

एक हजार साल पहले, मिस्र में एक ऐसा धर्म प्रचलित था, जिसके अनुयायी मूर्ति-पूजा करते थे। इस धर्म के लोग अतीत में आधुनिक इतिहासकारों को बहुत सारी जानकारी है, लेकिन जिन विशाल प्रस्तर-मूर्तियों की पूजा की जाती थी, वे अब भी मिस्र में मौजूद हैं। उदाहरणार्थ, एल फार नामक स्थान में एक आधुनिक स्जिद के पास ही एक ऐसा प्राचीन मंदिर स्थित है, जहां विशाल प्रस्तर-मूर्तियां प्रतिष्ठित हैं। ये प्रस्तर-मूर्तियां मिस्र के अतीत का प्रतीक हैं, जिसे वह चाह कर भुला नहीं सकता। वे उसके इतिहास का एक अनिवार्य अंग हैं।

वह अतीत से मंदिरों की हालत काफ़ी खराब है। लेकिन, वहां जाने पर भी एक विचित्र अनुभूति हुई। मुझे लगा कि इन मंदिरों में रहने वाले पुजारियों और गुरुओं की आत्माएं अभी भी मंदिर परिवेश में चारों ओर मंडरा रही ह।

प्रेतात्माओं के जमाव की जैसी प्रगाढ़ अनुभूति मिस्र के मंदिरों में आकर होती है, वैसी अन्यत्र नहीं होती।

उस दिन सेती फरोआ के अवीदोस स्थित मंदिर में पालथी मारकर बैठे हुए, मुझे कई आत्माओं की उपस्थिति की अनुभूति हुई, और मैं ध्यान-वस्था में, एक छलांग-सी लगाकर, वर्तमान से अतीत में पहुंच गया। कल्पना की आंखों से मैंने देखा कि फरोआ और उसके दरबारी मंदिर में प्रतिष्ठित देवी-देवताओं की मूर्तियों की पूजा कर रहे हैं, उनके आगे आग और अगर बत्तियां जला रहे हैं, उन पर पवित्र जल छिड़क रहे हैं, और वरदान मांग रहे हैं। इन देवी-देवताओं में प्रमुख हैं-होरस, ओसिरिस, इसिस, ताह और हराख्त आदि। अन्य धर्मों के समान, मिस्र के उस प्राचीन धर्म ने भी सूर्य, चंद्रमा, आकाश, पृथ्वी, सागर आदि को प्रतीक मानकर विभिन्न देवी-देवताओं

की सृष्टि की थी। इन पूजाओं के अनेक भित्ति-चित्र मिस्र में आज भी मौजूद हैं।

• ०००

ओसिरिस के नाम पर इस प्राचीन धर्म का नाम ओसिरियन धर्म रखा गया था। अबीदोस का मंदिर इस धर्म का पहला मंदिर था। दो भाग थे इस मंदिर के। एक वह था, जो सबके लिए खुला था, और जिसमें सार्वजनिक पूजाएं तथा धार्मिक अनुष्ठान आदि होते थे। और दूसरा वह था, जिसमें कुछ चुने हुए साधक ही जा सकते थे, और जहां उन्हें मृत्यु को जानने की शिक्षा दी जाती थी। इस शिक्षा के उपरान्त उन्हें बोध होता था कि जीवन के मंदिर में ही मृत्यु का द्वार है, और मृत्यु को खोजने से ही जीवन मिलता है। मृत्यु और जीवन की संगति का बोध कराने वाले अनेक गूढ़ रहस्य यहां साधक पर उद्घाटित होते थे।

उस काल की सभ्यता भी आज की भांति मृत्यु-भय पर आधारित थी। ओसिरिस के मंदिर के सार्वजनिक भाग में जो लोग घुटने टेक कर प्रार्थना करते दिखायी देते थे, वे ज्यादातर मृत्यु से भयभीत लोग ही थे। किंतु मंदिर के गुप्त कक्ष में चुने हुए साधकों पर जो रहस्य उद्घाटित किया जाता था, वह यह था कि मृत्यु से ज्यादा असत्य और कुछ नहीं है, और मृत्यु को सत्य मानकर जीवन की जो व्यवस्था की जाती है, उससे बढ़कर असत्यपूर्ण व्यवस्था दूसरी नहीं हो सकती। यदि मृत्यु

सत्य है, तो जीवन सिर्फ एक सपना होगा—सिरिस एक झूठ। वह सच नहीं हो सकता। दोनों बातें एक साथ सच होनी असंभव हैं।

यह जानकारी मुझे पुस्तकों से मिल चुकी थी, लेकिन ओसिरिस के बारे में अधिक जानकारी मुझे किसी पुस्तक से प्राप्त नहीं हुई थी। उसे प्राप्त करने के लिए मुझे ध्यान में जाना पड़ा।

गहरे ध्यान में जाने पर, ओसिरिस का रहस्य भी धीरे-धीरे मुझ पर उद्घाटित होने लगा।

०००

प्लेटो द्वारा व्यापक रूप से वर्णित एटलांटिस एक ऐतिहासिक सत्य है। उच्चतर और अर्द्ध-देवताओं की श्रेणी में आने वाले प्रबुद्ध और प्रज्ञावान मानवों की बस्ती थी। उसके अनेक निवासियों को यह अन्तर्ज्ञान हो गया था कि एटलांटिस का नाश सन्निकट है। अतएव उन्होंने पीढ़ी के कुछ विशेष प्रतिभाशाली सदस्यों को एक ऐसे देश में नया जीवन व्यतीत करने के लिए भेज दिया, जहां वे एटलांटिस के पतन के बाद, सुरक्षित रह सकते थे।

मिस्र था, इस देश का नाम। और

और, ओसिरिस था उस तेजस्वी तक्षक का नाम, जिसके नेतृत्व में ये प्रतिभाशाली युवक मिस्र में आये थे।

तीनों पिरामिडों और स्फिंक्स के ध्यान पार करके, ओसिरिस मिस्र के उस भाग में आया, जहां आज अबीदोस स्थित है, वहां के मूल निवासियों को सभ्य

अंश ८३

होना। ओसिरिस ने एक नयी सभ्यता को जन्म
 दिया। अपने जीवन-काल में ही वह अपने
 शिष्याओं द्वारा 'अर्द्ध-देवता' के समान
 माने जाने लगा था। उसकी मृत्यु पर,
 उसके शिष्यों ने उसके नाम पर एक भव्य
 मंदिर का निर्माण किया, जिसके एक भाग
 में उन्होंने हुए साधकों को धर्म के असीम रहस्य-
 काार में डुबकियां दिलाकर, शब्दातीत
 सत्य का बोध कराया
 था। उन्हें सिखाया जाता था कि
 जीवन की उपलब्धि मृत्यु के
 साक्षात्कार से ही होती है।

ओसिरिस के बारे में मिस्र में किंवदंती
 है कि उसकी हत्या हुई थी, उसी
 नाम पर जहां उसके नाम पर बना
 मंदिर खड़ा है। ध्यान में प्रवेश कर, मैंने
 जाना कि ओसिरिस की हत्या नहीं हुई
 थी, अपितु उन्होंने स्वेच्छा से मृत्यु का
 ग्राही किया था।

वास्तव में जो गुह्य उपदेश वे अपने
 शिष्यों को देते थे, वह यह था कि जो मृत्यु
 साक्षात्कार करने जाता है, अंततः
 जाना है कि मृत्यु तो न जाने कहां खो गयी
 और जीवन से मिलन हो गया है।
 सीख को उन्होंने स्वयं मृत्यु का
 साक्षात्कार करके सिद्ध कर दिखाया।

०००

ध्यान के उन क्षणों को, जिनमें मुझे
 ओसिरिस की 'हत्या' का रहस्य-सूत्र ज्ञात
 हुआ, मैं अपने जीवन के सबसे कीमती
 मानता हूँ। यह ध्यान मैंने देहरा स्थित

हाथोर देवी के मंदिर में, उसका पूरा
 निरीक्षण करने के बाद किया था।

हाथोर देवी का मंदिर अत्यंत प्राचीन
 होते हुए भी नया-सा ही लगता है।
 वास्तुकला, निर्माण और रख-रखाव की
 दृष्टि से इसे मिस्र का सर्वश्रेष्ठ मंदिर माना
 जा सकता है। इसकी दीवारों पर ओसिरिस
 की स्वेच्छा-मृत्यु और पुनर्जन्म के दृश्य
 अंकित हैं।

जिस समय, मैं इन भित्ति-चित्रों के
 सामने, आंखें बंद करके ध्यानावस्था में
 लीन था, उस समय मैं गहरी नींद में होते
 हुए भी, होश से भरा हुआ था। नींद में
 होश पूर्वक प्रवेश ही ध्यान है, और एक
 क्षण में जीवन में आध्यात्मिक क्रांति ला
 देता है।

तो, ध्यान के उन क्षणों में, मेरे पास से
 शब्दों की भाषा चली गयी, और चित्रों की
 भाषा आ गयी। और, वर्तमान मेरे लिए
 खो गया, और मैं वहां जाकर खड़ा हो
 गया, जहां स्वेच्छा से मृत्यु का वरण
 करने से पूर्व, ओसिरिस खड़े थे। और
 चित्रों में मैंने वह सब कुछ देखा, जो मृत्यु
 से साक्षात्कार करने के बाद, उनके साथ
 हुआ था। मैंने ध्यानावस्था में देखा कि
 मौत नहीं है, गहरी नींद का ही नाम
 मौत है, यह वातावरण ओसिरिस ने
 अपने भीतर उत्पन्न कर लिया है, और
 उनका आज्ञाकारी शरीर उसी प्रकार
 व्यवहार करने लगा है। उनकी आत्मा ने
 शरीर छोड़ दिया है, किंतु दूसरा शरीर

ग्रहण नहीं किया है। नया शरीर खोजने की कोई उत्सुकता उनकी आत्मा को नहीं है, क्योंकि उसे एक अनिश्चित काल के बाद, पुनः उसी शरीर में वापस लौटना है।

उनके चिर-मूर्च्छित (और मृतप्राय) शरीर को एक अलंकृत और रंगीन शव-पेटी ('ममी'-केस) में बंद कर दिया जाता है। एक पूर्व-निश्चित अवधि के बाद, उनकी यह मूर्च्छा भंग हो जायेगी



उनकी आत्मा पुनः उनके शरीर में प्रवेश करेगी, और वे पुनः जीवित हो उठेंगे।

०००

ओसिरिस के बाद, उनके जितने अनुयायियों ने इस गुह्य विधि से अस्थायी मृत्यु का वरण किया, उन सबको भी शव-पेटियों में बंद करके मंदिरों के गुप्त कक्षों में रख दिया जाता था। जब उनका 'पुनर्जन्म' होता था, तब उन्हें स्वयं यह बोध हो जाता था कि शरीर आत्मा के

नवनीत

लिए एक लवादा मात्र है, जिसे वृत्त की इच्छानुसार त्याग और ओढ़ सकती है। यह भ

यह एक बड़ी अर्थगर्भित बात है। जिन् लोगों के शरीरों में 'मृत'साधकों को बंधी नष्ट किया जाता था, उनके ऊपर 'पक्षी-मानव' माना जाता था।

का, जिसका सिर पक्षी का, और शरीर मानव का होता था, चित्र अंकित किया जाता था। इस प्रतीकात्मक चित्र में एक व्यक्ति की आत्मा की, और धड़ शरीर की ओर प्रवेश करती है। यह प्रेत-जगत और प्रेतात्माओं के अस्तित्व का भी द्योतक है।

प्राचीन मिस्र की गुह्य विद्या से संबंधित एक प्रसिद्ध पुस्तक है—'दुक ऑफ़ द डेड' (मृतकों की पुस्तक)। इसमें जहाँ-जहाँ मृतकों का उल्लेख आया है, वह वास्तव में उन आत्माओं का उल्लेख है, जिन्होंने स्व-च्छा से अपने शरीर तो छोड़ दिये। पुनर्जन्म लेकिन दूसरे शरीरों में प्रवेश नहीं किया है। उन्हें कोई नयी यात्रा शुरू नहीं करनी है, क्योंकि एक पूर्व-निश्चित अवधि के बाद, पुनः वापस पुराने शरीर में, जो वे रह

मृत दिखायी देता है, लौट आना है। यह प्रश्न उठता स्वाभाविक है कि वे ऐसी आत्मा शरीर छोड़कर कहाँ चली जाती है, और क्या उसे देखा जा सकता है? प्रश्न का उत्तर है कि ऐसी आत्मा कहीं नहीं जाती, और ईश्वर में विलीन हो जाती है, तथा 'ईश्वरिक बाँडी' (शरीर) उसे देख सकता है। इस शरीर या आकाश-शरीर को आँखों से नहीं देखा जा सकता, सिर्फ उसकी आभा से प्रयोग

ऐसी आत्मा शरीर छोड़कर कहाँ चली जाती है, और क्या उसे देखा जा सकता है? प्रश्न का उत्तर है कि ऐसी आत्मा कहीं नहीं जाती, और ईश्वर में विलीन हो जाती है, तथा 'ईश्वरिक बाँडी' (शरीर) उसे देख सकता है। इस शरीर या आकाश-शरीर को आँखों से नहीं देखा जा सकता, सिर्फ उसकी आभा से प्रयोग

वैत की जा सकती है।

यह भाव-शरीर वैज्ञानिकों के इस
द्विंद्वान्त की भी पुष्टि करता है कि पदार्थ
की नष्ट नहीं होता, सिर्फ उसका रूपांतरण
जाता है।

० ० ०

‘रहस्य व्याख्याता’ की उपाधि से
भूषित, मिस्र के प्राचीन काल के पुरो-
हित शरीर से आत्मा को पृथक् करने की
विधि का प्रयोग अपने और अपने
साधकों तक ही सीमित रखते थे। साधा-
रण लोगों को वे यही बताते थे कि मृता-
त्माएं परलोक में जाकर, अपने कर्मों
या अपनी वृत्तियों के अनुसार, नये-नये
शरीर धारण कर, अगले जन्म में पूर्व-जन्म
कर्मों के अच्छे या बुरे फलों को भोगती
। पुनर्जन्म, देवों, प्रेतों, पाप-पुण्य, और
आत्मा के आगमन की यह सीधो-सरल
पद्धति मामूली आदमी की समझ में आसानी
से आ जाती थी। जीवन की जटिलताओं
को वे रहस्य-व्याख्याता मामूली आदमी
सामने नहीं लाते थे, क्योंकि वे जानते
थे कि वे उसके गले नहीं उतरेंगे। इस
मामूली आदमी को उन मंदिरों में, जिनमें
वह पूजा-पाठ के लिए जाता था, चलने
वाले रहस्यपूर्ण और गुह्य प्रयोगों के बारे
में हल्की सी जानकारी रहती थी, और
वे उन्हें अज्ञेय मानकर ही संतोष कर
जाता था।

लेकिन, जिन साधकों पर उनकी इच्छा
थी प्रयोग किये जाते थे, उन्हें इन प्रयोगों



के दौरान ही बोध हो जाता था कि ‘मैं’
की खोज में ही ‘मैं’ से मुक्ति मिल जाती
है। जब वह ‘मैं’ रूपी शरीर को भूलकर
उसके भीतर शरीर से भी व्यापक ‘मैं’
की खोज में जाता है, तो पाता है कि वहां
‘मैं’ है ही नहीं, सिर्फ आत्मा है। उन्हें
यह भी पता चल जाता था कि आत्मा
अजर, अमर और अखंड है, और श्रेष्ठ
मृतात्मा अर्थात् देवता, और निकृष्ट
मृतात्मा अर्थात् भूत-प्रेत। उन्हें पता
चलता था कि उसका स्थूल शरीर और
आत्मा सूक्ष्म शरीरों के सेतु से जुड़े हैं।
पहला सूक्ष्म शरीर है, एस्ट्रल-शरीर, और
अंतिम है, निर्वाण-शरीर। सूक्ष्म शरीर
से निर्वाण-शरीर की यात्रा तक उसे
उसकी भी झलक मिल जाती है, जो सदा
अज्ञात और रहस्यमय ही रहेगा, जिसे न
कभी देखा जा सकेगा, और न कभी जाना
जा सकेगा। वह जो अदृश्य ही नहीं,
अछोर भी है।

० ० ०

रहस्य-व्याख्याता यद्यपि सभी साधकों को अपनी रहस्यमयी और गुह्य साधना-पद्धति के बारे में किसी को कुछ न बताने का आदेश दे देते थे, तथापि अनेक साधकों ने इस पद्धति के बारे में कुछ न कुछ अवश्य कहा है।

आइये, देखें कि ये साधक, जिनमें प्लेटो, पायथोगोरस, प्लूटार्क, थैल्स, सोलोन; हेरोदोतस आदि मनीषी, जिन्होंने विदेशों से मिस्र आकर यह गुप्त साधना की थी; शामिल हैं, इस साधना-पद्धति के बारे में क्या कहते हैं?

एपुलियस नामक एक विदेशी साधक ने अपनी आत्मकथा में इस साधना-पद्धति का वर्णन इन शब्दों में किया है :

‘साधक बनकर, इस रहस्यमयी साधना-पद्धति में दीक्षा लेने का विचार मेरे मन में क्राफ़ी दिनों से था, और प्रतिदिन, प्रबलतर होता जाता था। अंत में, एक दिन मैंने रहस्य-व्याख्याता के पास जाकर निवेदन किया कि वे मुझे शिष्य के रूप में स्वीकार करने की कृपा करें। उन्होंने मेरी प्रार्थना को अस्वीकार करते हुए कहा, ‘अभी तुम्हारा दीक्षा लेने का समय नहीं आया है। जब वह समय आयेगा, तब तुम्हें आसानी से यहां, या जहां भी तुम्हारे भाग्य में प्रवेश लेना लिखा होगा, प्रवेश मिल जायेगा। जीवन की हर सीढ़ी पर हर साधना का सुनिश्चित समय है। इसलिए एक बड़ी सुनियोजित व्यवस्था के साथ

नवनीत

आगे बढ़ना है। जब तक इस रहस्यमयी साधना में दीक्षित होने का तुम्हारा समय नहीं आता, तब तक तुम इस व्यवस्था की नींव को मजबूत करो। सदा मातृ-देवी का स्मरण करते रहो। उससे तुम अपने को दीक्षा लेने योग्य बना सकोगे।

मैंने उनके आदेश का अक्षरशः पालन किया, और सदा मातृ-देवी का स्मरण करने लगा। और, एक दिन वह आया कि देवी ने मुझसे कहा, ‘वत्स! मैं तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न हूँ। मुझे तुम्हें यह बताते हुए प्रसन्नता है कि तुम्हारा दीक्षा लेने का समय आ पहुंचा है। तुम जाकर रहस्य-व्याख्याता के पास जाकर अपना निवेदन दोहरा सकते हो।

‘अगले दिन जब मैं वृद्ध रहस्य-व्याख्याता के पास पहुंचा, तो मुझे लगा जैसे वे मेरी प्रतीक्षा ही कर रहे थे। मेरे पहुंचते ही उन्होंने बड़े प्रेम से मेरा हाथ अपने हाथ में ले लिया, और कुछ धार्मिक विधि-संपन्न करने के पश्चात्, मुझे एक कक्ष में ले गये, जिसमें केवल साधक प्रवेश कर सकते थे। वहां पहुंच कर उन्होंने एक विचित्र भाषा में लिखी गयी कुछ पुस्तकें निकालीं, और कुछ देर तक उनका अध्ययन-मनन करते रहे। फिर वे मुझे लेकर देवी की मूर्ति के पास और मुझसे मूर्ति के आगे सर झुकाने को कहा। तत्पश्चात्, उन्होंने मुझे गुप्त रहस्य बताया, यह शपथ दिलाते हुए कि मैं उन्हें किसी भी रूप में किसी

प्रकट नहीं करूंगा। फिर, उन्होंने मुझे एक पथ और दिलायी कि अगले दस दिनों तक मैं निरामिष भोजन करूंगा, और विद्यपान से वंचूंगा।

‘मैंने दस दिनों तक, निष्ठापूर्वक, इन आदेशों का पालन किया। दसवें दिन की रात दृष्टि धंधा को मुझे पुनः देवी की मूर्ति के सामने लाया गया। इस अवसर पर, अन्य साधक भी मेरा अभिनंदन करने के लिए मौजूद थे। उन सबने मुझे अनेक उपहार दिये। मैं, रहस्य-व्याख्याता महोदय ने कंधों पर एक विशेष वस्त्र डाला, और उसे अपने साथ लेकर पुनः गुप्त कक्ष में आया। वहां क्या हुआ, और मुझे किस प्रकार दीक्षा दी गयी, यह बताने में मैं पथ के कारण असमर्थ हूं। लेकिन, इतना वक्ष्य बताने में कि इस दीक्षा के बाद मैंने अपने को मृत्यु के भय से मुक्त पाया। मुझे शांति की आंख मिली जिससे सत्य के दर्शन करने में समर्थ हो सका। तीव्र शांति के कारण मैं दर्पण बन गया, जिसमें परमात्मा का प्रतिबिम्ब स्वयं प्रतिफलित होने लगा।’

०००

हेरोदोटस ने उन प्रयोगों के बारे में, जो दीक्षा के दौरान और उपरांत उन पर किये गये, कुछ भी बताने से इंकार करते हुए कहा, ‘जैसा कि मुझे आदेश दिया गया है, मैं इस बारे में मौन रहना ही चाहूंगा।’ लेकिन, प्लूटार्क अपनी आत्मकथा में इन प्रयोगों के बारे में ज्यादा

मुखर हैं वे कहते हैं :

‘साधक के रूप में दीक्षा के बाद, जो विधियां मुझसे संपन्न करायी गयीं, और जो प्रयोग मुझ पर किये गये, उनके फल-स्वरूप, मैंने पहली बार मृत्यु के वास्तविक स्वरूप को जाना। मृत्यु के अनुभव में प्रवेश करने पर जो घटना घटित होती है, वही इन विधियों और प्रयोगों के बाद घटी। मैंने इस घटना के माध्यम से देखा कि मौत कैसे होती है, और उसके बाद क्या बचता है। मैंने पाया कि मौत की घटना में ‘मैं’ नहीं मरता, मौत ही मरती है। पहले मैं समझता था कि ओसिरिस सचमुच मर गये हैं, और समाप्त हो गये हैं। लेकिन, अब इस साधना के दौर से गुजरने के बाद मुझे लगता है कि वे न मरे हैं, न समाप्त हुए हैं, सिर्फ वाष्पीभूत हुए हैं। जमीन के जिस टुकड़े में उन्हें दफनाया गया था, उसी पर वे अन्न की बालियों के रूप में बार बार प्रकट होते हैं।’

रहस्यमयी साधना-पद्धति के मनो-वैज्ञानिक पहलू पर प्रकाश डालते हुए, वे अपने ग्रंथ में कहते हैं :

‘पृथ्वी पर रहते हुए, परमात्मा से हमारा साक्षात्कार नहीं हो पाता—कभी-कभी, बस, सपने में हमें उसकी क्षणिक झलक मिल पाती है। लेकिन जब इस साधना-पद्धति की बदौलत हमारी आत्मा हमारी देह से पृथक् हो जाती है, तब हमें अनुमान, अदृश्य और असीम परमात्मा की अनुभूति होती है। एक अप्रकट आनंद

अंदर से झरता प्रतीत होता है। सब ढाँचे टूट जाते हैं, जब उस अखंड की झलक मिलती है।

०००

सीरिया के साधक इयामब्लिकस का मित्र की इस गुह्य साधना-पद्धति के बारे में कहना है कि:

‘धन्य हैं वे साधक और रहस्य-व्याख्याता जो पूर्णता के प्रतीक देवताओं के पास खड़े होने में समर्थ हैं। देवताओं के बारे में गहराई से जानना, ‘स्व’ के बारे में जानने जैसा ही है। हम भी दिव्य हैं, क्योंकि तत्त्वतः हम देवताओं से भिन्न नहीं हैं; सिर्फ यह भूल गये हैं कि हम भिन्न नहीं हैं। इस साधना-पद्धति से हमें यही स्मरण होता है। इस स्मरण से परिपूर्णता आती है, और परिपूर्णता में ही व्यक्ति परमात्मा या विश्वसत्ता से संबंधित होता है।’

एक अन्य साधक था—प्रोक्लस। आइये, उसकी भी सुनें: ‘इस गुप्त साधना को करते समय, दिव्यता मेरे सामने अनेक रूपों और आकारों में प्रकट हुई। जब कोई तेजोमय आकृति या प्रकाश-पुंज मेरे सामने प्रकट होता था, तो मुझे विश्वास हो जाता था कि मेरा पुण्य फलित हो रहा है। किंतु, कभी-कभी निकृष्ट मृतात्माओं का आभास भी होता था, जो त्रस्त और आतंकित करता था।’

एक अन्य प्रख्यात साधक थे, कवि होमर। ‘ओडेसी’ नामक अपनी काव्य-कृति में वे इन शब्दों में अपने पाठकों का

आह्वान करते हुए, अपनी साधना-पद्धति से उन्हें परिचित कराते हैं:

‘जल्दी करो, नाव की पाल खोल दो, ताकि हम अपने प्रिय और विस्मृत देश को, मूल केंद्र को, लौट सकें।’

दार्शनिक प्लेटो भी इस साधना-पथ पर चले थे। अपने अनुभवों का वर्णन वे इन शब्दों में करते हैं:

‘इस दिव्य साधना की बदौलत, मैं अनेक दिव्य दृश्यों का साक्षी बना, अलौकिक प्रकाश से नहाये दृश्यों का ऊर्ध्वगमन और अहं-विसर्जन के प्रतीक प्रकाश का। मैंने शरीर के खोल से निकल आत्मा को देखा, और इस मुक्त आत्मा को अपने शरीर के चारों ओर चक्कर लगाते भी देखा।’

प्लेटो ने इस गुप्त साधना-विधि के बारे में यह भी कहा कि उसका उद्देश्य धर्म को मनुष्य-केन्द्रित करना है, धूल का, अशांति का बड़ा पर्दा हटाना है, जो जीवन के सत्य और मनुष्य के बीच पड़ी है।

०००

प्लेटो के ही समान प्रख्यात और आदरणीय साधक थे—मोजेज, आधे ही हैं, क्योंकि उनके माता-पिता में से एक मित्र का था। न्यू टेस्टामेंट में कहा है: ‘मिस्रवासियों ने अपना सब पर ज्ञान मोजेज को उपलब्ध कराया।’ कथन इस बात का प्रमाण है कि मोजेज ने भी मित्र के प्राचीन मंदिरों में गुप्त

नवनीत

१२८

क्षा लेकर ज्ञान प्राप्त किया था।
 'न्यू टेस्टामेंट' में यह भी कहा गया है
 मोजेज ने अपने चेहरे पर घूंघट डाल
 रखा था। इस घूंघट का स्वरूप क्या था,
 हमें बाइबिल (कोरिंथीयंस, दूसरा
 पत्र) के इस कथन से ज्ञात हो सकता
 है: 'आज तक, ओल्ड टेस्टामेंट के पाठ
 दिन तक यह घूंघट पड़ा ही रहा।'।
 कथन से प्रतीत होता है कि यह अव-
 धन कपड़े का नहीं था, अपितु प्रतीक था
 बात का कि जो ज्ञान उन्हें मिस्र के
 पुरोहितों से प्राप्त हुआ था, उसे वे किसी पर
 कट नहीं करेंगे।

मोजेज को मिस्र में जाने का अवसर
 मिला, जब यूनानियों ने मिस्र पर
 जय प्राप्त की थी। तब उन्होंने प्राचीन
 मिस्र के ऑन नगर (जिसका उल्लेख
 बाइबिल में आया है) में जाकर उसके
 व्यात मंदिर में जाकर दीक्षा ली थी।
 हिरा से कुछ मील उत्तर में स्थित इस
 प्राचीन नगर का यूनानी नाम हीलियोपो-
 लिस था। वहां से एक 'पवित्र मार्ग'
 रामिड तक जाता था, और दूसरा
 मफस तक। यह नगर तो नष्ट हो गया,
 अनु उसके जिस मंदिर में मोजेज ने
 रहस्य-व्याख्याता से दीक्षा ली थी, उसके
 सावशेष आज भी मौजूद हैं। वहां
 प्राचीन काल में एक सूच्याकार स्तम्भ
 था, जिसे मोजेज ने अपने साधना-काल
 कई बार अवश्य देखा होगा; वह आज
 वहीं खड़ा है। प्लेटो ने इस सूच्याकार

स्तम्भ के दर्शन किये थे, और उनकी एक
 रचना में उसका उल्लेख भी है।

०००

प्राचीन मिस्र के इतिहास के अनुसार,
 थोथमैस तृतीय ने हीलियोपोलिस नगर
 में ही एक अन्य सूच्याकार स्तम्भ का
 निर्माण करवाया था। आजकल यह स्तम्भ
 लंदन में थेम्स नदी के तटबंधन पर स्थित
 है, और 'क्लियोपैट्रा की मुर्ति' के नाम
 से विख्यात है। आज उस पर अंकित वे
 प्राचीन शिलालेख स्पष्ट नहीं दिखायी
 देते, जो कभी चित्रलिपि में उस पर अंकित
 थे, और उस सूर्य-मंदिर की सारी कहानी
 कहते थे, जिसके सामने यह प्रतिष्ठित था।

तरुण मोजेज इस मंदिर में अक्सर
 जाया करते थे और उसके विशाल पुस्तका-
 लय में संग्रहीत धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन
 किया करते थे। उपलब्ध विवरणों से
 ज्ञात होता है कि पढ़ाई और धर्म में उनकी
 रुचि वचन से ही थी। मंदिरों में रहस्य-
 व्याख्याताओं द्वारा दिये जाने वाले गुप्त
 ज्ञान की जानकारी उन्हें नवयुवावस्था
 में ही हो गयी थी, और तभी से उन्होंने
 विधिवत् दीक्षा लेकर यह ज्ञान प्राप्त
 करने का निश्चय कर लिया था।

ज्ञान प्राप्त करने के बाद, वे सूर्य-मंदिर
 में स्वयं एक रहस्य-व्याख्याता बन गये
 थे। उन्होंने अनेक शिष्यों को दीक्षित
 कर यह गुप्त ज्ञान दिलवाया। उनका
 मूल मिस्री नाम ओसारसिप था। जब
 उनके जीवन में एक क्रांतिकारी परिवर्तन

हुआ, तब उन्होंने अपना नाम बदलकर मोजेज रख लिया था। प्राचीन मिस्र में ऐसा विश्वास था कि व्यक्ति का नाम उसके चरित्र और भाग्य को बहुत अधिक प्रभावित करता है। नियति और देवताओं द्वारा निर्धारित अपने नये जीवन-कार्य को पूरा करने के लिए, ओसारसिप ने अपना नया नाम मोजेज रखना उचित समझा।

मोजेज के काल में जो फरोआ मिस्र पर राज्य करता था, वह अत्यन्त क्रूर था, और इस्रालियों को बहुत अधिक उत्पीड़ित किया करता था। उसने अनेक इस्रालियों को बंदी बना लिया था। मोजेज उन सबको मुक्त करके गोशेन की घाटी में लाये, जो एशिया-अफ्रीका राजमार्ग पर स्थित है। इसी राजमार्ग पर चलकर बाद में नेपोलियन स्वेज तक पहुंचा था।

गोशेन की घाटी में आने के बाद के मोजेज के कार्यकाल बाइबिल में वर्णित है। मिस्र के मंदिरों में मोजेज को जो ज्ञान प्राप्त हुआ, उसका सार उन्होंने 'पैंतातक' नामक अपनी ग्रंथमाला में प्रस्तुत किया। अपनी आश्चर्यजनक मनस-शक्ति के बल पर उन्होंने सृष्टि के जन्म और विकास से संबंधित अनेक अज्ञात, अदृश्य रहस्यों की भी खोज की, और उनका वर्णन अपने ग्रंथों में किया।

०००

मिस्र के प्राचीन मंदिरों में गुप्त ज्ञान प्राप्त करने के इच्छुक साधकों का चुनाव नवनीत

बड़ी सावधानी के साथ किया जाता था, और इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता कि ज्ञान-प्राप्त साधकों की संख्या एक पूर्व-निश्चित संख्या से अधिक न बढ़े पाये।

दुनिया के कोने-कोने से परम ज्ञान को पाने के इच्छुक साधक दीक्षित होने के उद्देश्य से मिस्र आते रहते थे, किंतु उनमें से अधिकांश को निराश ही वापस लौटना पड़ता था। पिथागोरस नामक प्रख्यात दार्शनिक जिन्होंने स्वयं इस गुप्त साधना पद्धति से परमज्ञान प्राप्त किया था, कहते लिखा है कि उन्होंने रहस्य-व्याख्याता को एक अभ्यर्थी से कहते सुना था, 'सैकड़ों प्रकार की लकड़ियां होती हैं, लेकिन देवताओं के लिए श्रेष्ठतम लकड़ी का ही उपयोग होता है।'

दीक्षा के प्रथम चरण में, प्रवेश करने में सफल साधकों को एक डरावने अनुभव में से गुजारा जाता था। कुछ यांत्रिक विधियों की सहायता से उन्हें यह विश्वास दिलाया जाता था कि वे किसी गहरे गड्ढे में गिरने वाले हैं, कोई हिंसक पशु उन पर आक्रमण करने वाला है, या क्रुद्ध लहरों की चपेट में आने वाले हैं, या उन्हें भयभीत करने के लिए उन पर डरावने विचार टेलिपैथी (विचार-सम्प्रेषण-विधि) द्वारा सम्प्रेषित किये जाते थे। यह विचार बहुत सोच-विचार के अनुरूप थे, यह देखते हुए कि उनकी ओर फेंके जाते थे, यह देखते हुए कि उनका मन कितना खुला

ये विचारों को स्वीकार करने के लिए
जारी है।

जब साधक प्रथम चरण के इन डरावने
योगों के दौर से सफलतापूर्वक गुजर
जाता था, तो उसे सहसा एक चमत्कारिक
और शांतिदायक प्रकाश-पुंज के दर्शन
प्राप्त होते थे, जो इस बात का सूचक
होता था कि अब उसकी आनंद की यात्रा
आरंभ होगी।

०००

दूसरे चरण में, साधक को, विभिन्न
विधियों के द्वारा आनंद का बोध कराया
जाता था। वह ऐसी स्थिति या दशा
में अनुभव करता था, जहां न सुख है,
दुख है।

लेकिन मन चूंकि चंचल है, और सुख
और दुख के बीच पेंडुलम की भांति घूमता
होता है, इसलिए साधक को यह बोध भी
होता है कि जब यह चंचल मन स्थिर हो
जाता है, घड़ी के स्थिर पेंडुलम की भांति
भी आनंद का बोध संभव है। मन में
जाने के अर्थ हैं, सपनों में जीना।

तीसरे चरण में साधक यह सीखता था
कि इस सपने से बाहर निकलने पर ही
आनंद और शांति की प्राप्ति संभव है।
और सपने से बाहर निकलते ही, उसे
जागता था कि वह जाग गया। जागने पर
प्रतिवस्था में उसे लगता था कि शरीर
सारा प्राण भीतर वापस आ गया है।
लेकिन, वह यह भी देखता था कि शरीर
और आत्मा की भांति पड़ा रह गया है, और आत्मा

उससे अलग हो गयी है, ठीक उसी प्रकार
जिस प्रकार नारियल के फूटने पर उसकी
गिरी अलग हो जाती है, और ऊपर का
कवच अलग।

अब रहस्य-व्याख्याता गुरु सम्मोहन
द्वारा साधक के मन में अटके उन भावों
को एक-एक करके दूर निकालता था, जो
साधक को साधना-पथ पर अबाध गति से
यात्रा करने से रोक रहे थे। उन ग्रंथियों
को सम्मोहन से तोड़ता था, जो उसे बार-
बार भूलभुलैयाओं की ओर खाना कर देती
थीं, या उन्हीं स्थितियों में उलझा देती हैं,
जिनसे वह बचना चाहता था। रहस्य-
व्याख्याता जिस सम्मोहन-विधि को प्रयोग
में लाता था, वह उस रहस्य-विधि से
पूरी तरह भिन्न और कई गुना अधिक
प्रभावशाली होती थी, जिसका प्रयोग
आज के मानस-रोग-विशेषज्ञ करते हैं। वह
साधक को उसके आत्म-सम्मोहन द्वारा
उत्पन्न किये गये सपनों की भटकन से
मुक्ति दिलाती थी।

०००

गुप्त साधना के अगले चरण में साधक
को धीरे-धीरे उसके ही भीतर प्रवेश कराया
जाता था। इससे उसे बड़ा स्पष्ट बोध
होता था कि धीरे-धीरे एक-एक चीज
छूटती चली जा रही है, और एक-एक
चीज के बीच में एक अंतर, एक फासला
पैदा होता चला जा रहा है।

और फिर एक क्षण वह भी आ जाता
था, जब उसे लगता था कि सब दूर पड़ा

है, और 'मैं' उसे अलग से, दूर से देख रहा हूँ। मेरा शब्द वह पड़ा है, और 'मैं' उसे देख रहा हूँ, अर्थात्, मरने के बाद भी मैं हूँ, अलग और भिन्न बिल्कुल दूसरा।

यह अस्थायी 'मृत्यु' कभी कुछ घंटों तक रहती थी, और कभी कुछ दिनों तक। लेकिन, इस अनुभूति से साधक को यह अहसास कराया जाता था कि मौत शरीर को मिटा सकती है, आत्मा को नहीं। मृत्यु की प्रक्रिया की शिक्षा ही मंदिरों की साधना-पद्धति का विशिष्ट अंग थी।

ऐसी अनुभूति, सजग मृत्यु की, एक अद्भुत घटना होती है, और व्यक्ति के जीवन में एक आमूल क्रांति ला देती है। मैं वायु-सेना के एक भूतपूर्व अधिकारी को जानता हूँ, जिस पर युद्ध के दौरान, संवेदना-नाशक दवा देकर एक शल्य-क्रिया के लिए अचेत किया गया था। उस दवा का अधिकारी पर चमत्कारिक प्रभाव हुआ। वह पूरी तरह संज्ञाशून्य नहीं हुआ, और बड़े सुखी मूड में अपने ऊपर शल्य-क्रिया होते देखता रहा। उसे लग रहा था जैसे यह शल्य-क्रिया उसके शरीर पर नहीं, किसी और के शरीर पर हो रही है। शल्य-क्रिया के बाद यह अधिकारी जो पहले नास्तिक था, शत प्रति शत आस्तिक बन गया, और आत्मा के अस्तित्व में उसकी आस्था इतनी अधिक हो गयी कि जीवन के लक्ष्य के प्रति उसका समूचा दृष्टिकोण ही बदल गया।

वे रहस्य-व्याख्याता कौन थे, जो

मघनीत

साधकों पर शक्तिपात करके, उनके सारे जीवन को नया कर देते थे। वे ऐसे रहस्य-वादी गुरु थे जिनकी ख्याति अपने देश की सीमा को लांघ कर अन्य सभ्य देशों तक भी पहुंची थी। वे अपने शिष्य को जो परम ज्ञान देते थे, उस पर रहस्य और गोपनीयता का ऐसा अभेद्य परदा पड़ा होता था कि मित्र का नाम उन दिनों रहस्य और गुप्तता का पर्यायवाची हो बन गया था।

पेरिस के लोब्रे संग्रहालय के मित्र-विभाग में ऐसे ही एक रहस्य-व्याख्याता गुरु ताह-मेर की समाधि रखी है, जिस पर यह शिला-लेख अंकित है: 'उसकी भेदक आंखें सब कुछ देखने में समर्थ थीं और वह जो कुछ देखता था उस पर परदा भी डाल देता था।'

परदा डालने की वजह यह थी कि गुरुओं का विश्वास था कि सिर्फ कुछ चुने हुए व्यक्ति ही परम और गुप्त ज्ञान को पाने के अधिकारी हो सकते हैं, इसलिए उसे सार्वजनिक नहीं बनाया जा सकता। इन चुने हुए व्यक्तियों को गुप्त लोग यह सीख देते थे कि परम ज्ञान पाने के लिए पहली आवश्यकता, पहली अनिवार्यता यह है कि जो इससे पूर्व जानते थे, उसे भूल जाओ। जो अपने को बदलने के इच्छुक होते हैं, सिर्फ वही अपने पर जमी बाह्य प्रभावों की धूल को साफ करने का प्रयास कर सकते हैं। साधारण व्यक्ति का मन तो बाहरी संस्कारों और

लक्षाएँ लेकर एक ऐसा कारागृह बन जाता।
जिसके सब द्वार और झरोखे बंद हो
जाते हैं। अपनी क्षुद्रता में सीमित वह
ग्राहक से वंचित हो जाता है। सीखे हुए
दोनों से अपने मन को खोलने को तैयार नहीं
होता। तब से बंधे व्यक्ति का ज्ञान-सागर
प्रवेश कैसे संभव हो सकता है ?

‘इस परम ज्ञान को पाकर, साधक
हले से अधिक श्रेष्ठ, सच्चा और आध्या-
त्मिक हो जाता है,’ यह स्वानुभव था
मसली के एक साधक दियोदोरस का।

०००

प्राचीन मिस्र के इतिहास को पढ़ने से
ता चलता है कि मंदिरों में मिस्र के
लावा, ब्रिटेन, ग्रीस, सीरिया, भारत,
गर्स. द. अमरीका (मय जाति के
गि), रोम तथा अन्य देशों से भी साधक
। मुकरात खुशी-खुशी जहर का प्याला
सलिए पी गये थे कि गुप्त साधना-पद्धति
उनके मृत्यु-भय को दूर कर दिया था।
जापान की जु-जुत्सू (जापानी कुश्ती)
जन्म का श्रेय इस गुप्त-साधना के एक
मी साधक पायथोगोरस को दिया जाता
। इस गुप्त-साधना-विधि की भांति
जु-जुत्सू के प्रशिक्षण की विधि को भी काफ़ी
त रखा जाता है, और उसके प्रशिक्षा-
यों की संख्या भी अत्यंत सीमित रहती
। और चूंकि जु-जुत्सू का जन्म एक
ध्यात्मिक साधना-विधि से हुआ है,
लिए जु-जुत्सू में पारंगत पहलवान
मिक वृत्ति के भी होते हैं।

यूरोप में मेसन (गुप्त-संसदी) नाम
का एक रहस्यवादी संप्रदाय है, जिसकी
उत्पत्ति का श्रेय प्राचीन मिस्र की गुप्त
साधना-विधि को ही दिया जाता है।

मैंने पीछे मिस्र के प्राचीनतम हस्त-
लिखित ग्रंथ ‘द बुक ऑफ द डैड्स’ का
उल्लेख किया था। इस ग्रंथ का उपनाम है
‘गुप्त मंदिर के गुरु का ग्रंथ’ (‘द बुक
ऑफ द मास्टर ऑफ द हिडन टेम्पल’)
इसके प्रारंभिक अंश में एक मृतात्मा
अपना परिचय देते हुए कहती है : ‘मैं
ओसिरिस हूँ। ओसिरिस की आत्मा ने
ही मेरी आत्मा में प्रवेश किया है। मैं देव-
ताओं के बीच रहती हूँ। मैंने उनसे बात
की है, और उनके मुंह खुलवाये हैं।’

शरीर से मुक्त होकर, आकाश में
विचरण करने वाली मृतात्माओं को
बाहरी खतरों से बचने के लिए ताबीज
पहनने और निरंतर ‘मैं ओसिरिस हूँ’
मंत्र का जाप करने का परामर्श इस ग्रंथ
में दिया गया है। ऐसी मृतात्मा को संबो-
धित करते हुए यह ग्रंथ कहता है :

‘ओ अंधी मृतात्मा ! ताबीज और ‘मैं
ओसिरिस हूँ’ के मंत्र का जाप करते हुए
तू सुरक्षित ही नहीं रहेगी, तुझे यह भी
पता चलेगा कि ‘स्व’ को जानकर ही तू
‘सर्व’ को जान सकेगी, और यह भी कि
मौत सिर्फ एक कल्पना है, वास्तव में नहीं।’

एक रोमन-दार्शनिक-साधक की इस
उक्ति में इसी कथन की गूंज है : ‘जहां हम
हैं, वहां मौत नहीं है; जहां मौत है, वहां

हम नहीं हैं।

प्राचीन मिस्र के रहस्य-व्याख्याताओं की सीख की सार्थकता को आज के वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक भी स्वीकार करने लगे हैं। उनकी रचनाओं में हमें उनके गुप्त ज्ञान की गूँज सुनायी देती है। इस में विचार सम्प्रेषण (टेलीपैथी) के वैज्ञानिक प्रयोग चल रहे हैं। बिना किसी माध्यम के किया जाने वाला विचार-सम्प्रेषण एक वैज्ञानिक सत्य बन गया है। पहले इसी को एक अंधविश्वास माना जाता था। पश्चिम का मनोविश्लेषण, जिसे वैज्ञानिक माना जाता है, वही काम करता है जो गांव का पुराना ओझा करता था, और उसके झाड़ने के काम को अंध-विश्वास माना जाता था। फ्रांस का विश्व-विख्यात मनोवैज्ञानिक क्यूवको वही काम करता है, जो तावीज बांधने वाला काम करता है। लेकिन क्यूवको वैज्ञानिक माना जाता है, और तावीज बांधने वाले को अंधविश्वासी। आइंस्टीन से एक बार किसी ने पूछा था कि आप वैज्ञानिक और अंधविश्वासियों में क्या अंतर मानते हैं। उन्होंने इस प्रश्न का बड़ा दिलचस्प उत्तर दिया था : 'अंधविश्वासी से सौ सवाल पूछे जायें, तो वह एक सौ एक जवाब देने की तैयारी दिखायेगा, और वैज्ञानिक से अगर सौ सवाल पूछो, तो वह ९८ के लिए कह देगा कि मैं बिलकुल नहीं जानता, और दो के लिए कह देगा कि मैं थोड़ा-सा जानता हूँ। लेकिन वह जानना अंतिम नहीं है

क्या फरोआ तूतनखामन के पूर्वज द्रविड़ थे?

ऐसे प्रमाणों की संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है, जिनसे यह सिद्ध होता है कि मिस्र की संस्कृति और सिंधु घाटी संस्कृति में काफ़ी घनिष्ठ संपर्क था, और विश्व-विख्यात फरोआ तूतनखामन के प्रतिमा में दक्षिण भारत के द्रविड़ थे।

इन प्रमाणों के अनुसार, दक्षिण भारत के द्रविड़ लोगों ने ही मिस्र जाकर, मिस्रवासियों को पत्थरों के प्रयोग तथा गणितीय परिशुद्धता के सूत्रों से परिचित कराया था। प्राचीन मिस्र के अनेक भित्ति-चित्रों में अनेक पुरुषों को धोती पहना हुआ दिखाया गया है।

प्राचीन मिस्र के कुछ भित्ति-चित्रों खेतों की सिंचाई का जो पैटर्न दिखाया गया है, वह दक्षिण भारत में मिस्र-संस्कृति के जन्म के पूर्व से प्रचलित था। दक्षिण भारत के कुछ मंदिरों के ध्वंसावशेषों में मूर्तियाँ और कलाकृतियाँ उपलब्ध हैं, उनमें पुरुषों की कर्णपालियाँ छिदी हुई हैं। मिस्र के लक्जर नामक स्थान एक मंदिर के भित्ति-चित्रों के पुरुषों की कर्णपालियाँ भी उसी प्रकार छिदी हुई हैं।

और वह कल बदल भी सकता है।

जरूरत है, अंधविश्वासी चित्र बदलने की है। मिस्र की प्राचीन साधना-पद्धति यही करती थी, और चमत्कारिक ढंग से करती थी।

हम पर कर रहे हैं।' 'व्हाट डू यू मीन?' 'साजिश।' मैंने तिकतता से कहा। 'गेट ऑउट।' गुस्से से बोले खन्ना साँव तो मैंने भी गुस्से से कहा, 'हम अपने अधिकार जानते हैं।' 'आँइ से यू गेट ऑउट फ्रॉम मॉड ऑउस।' बोले वे गुस्से से तो मैंने भी गुस्से से ही कहा, 'ये आपके बाप का मकान नहीं है, जो आप इस तरह से मुझे.... दिस इज गवर्नमेंट क्वार्टर।' 'खन्ना साँव ने जोर से घनश्याम और गोविंद-रमेश को आवाज दी तो, मैंने मन ही मन खुश होते हुए कागजात उठा लिये कि इन तीनों को तो मुझसे काम करवाना है, मेरे प्रति श्रद्धा-इज्जत...

'इस बदतमीज को धक्के देकर गेट से बाहर कर दो।' तीनों मुझ पर कुत्तों की मानिंद झपटे और मुझे धकियाते-घसीटते हुए, बाहर निकाल कर, गेट की तरफ ले जाने लगे तो मुझे आश्चर्य हुआ कि कुछ देर पूर्व जो ये तीनों.....

गेट से बाहर होते ही घनश्याम ने हाथ जोड़कर रिरियाते हुए कहा, 'माफ कीजिए, बाबूजी, नौकरी का सवाल है...' 'हां, भाई साहब।' बात काट कर गोला रमेश, 'नहीं तो भला हम आपके हाथ ऐसा सलूक करते।' 'आप तो महान हैं, साँव, महान!'

गोविंद ने भी हाथ जोड़कर कहा, 'हम जानते हैं कि आप तो धर्म का काम...., हां, साँव, इस झूमाझटकी में हमारा वो कागज तो इधर-उधर नहीं हो गया, हमारी नौकरी.....'

'और मेरे लड़के वाला कागज भी है न।' घनश्याम बात काट कर बोला, 'हमारा काम जरूर....।' 'क्या बात है?' खन्ना साँव ने वहीं से पूछा, 'पुलिस बुलायें क्या?'

मैंने आंखें तरेर कर देखा खन्ना साँव को, तो गुस्से से बोला रमेश, 'अबे, हमारे साँव की तरफ आंखें निकालकर देखता है, भाग जा, नहीं तो आंखें निकालकर हाथ में दे दूंगा।'

'और ये तेरे हाथ तोड़कर कंधे पर रख दूंगा।' गोविंद ने मेरा हाथ झटककर कहा, 'भाग जा।'

घनश्याम ने मुझे जोर से धक्का देकर कहा, 'भाग यहां से, वरना पुलिस आ गयी तो छह महीने के लिए तड़ीपार हो जायेगा।'

मैंने तीनों के खूबवार चेहरे देखे तो खन्ना साँव के प्रति उनकी वफादारी देखकर मैं खुश हो गया और कपड़े ठीकठाक करता हुआ चलने को उद्यत हुआ तो...तो तीनों, गेट की तरफ देखते हुए, मेरे पांवों को छूकर-कागज, नौकरी, और न जाने क्या-क्या कह रहे थे - गदगदायी वाणी में।

-६/१, परदेसीपुरा, इंदौर-४५२००३

(पृष्ठ ९६ का शेषांश)

ही एक दुर्दान्त अभियान कर रहा है। यह अधःपतित कापालिक (हिप्पी) वर्तमान की झूठी और दांभिक व्यवस्था को असह्य पा कर, लाचारी में उससे निष्कांत हो गया है। ये टूटे, उखड़े, बिछुड़े, खोये मां-बापों की गुमनाम, लावारिस, नाजा-यज संतानें हैं। ये मातृ-पितृहीन, संदर्भहीन, बेमकान, बेमुकाम दिशाहारा मानव-पुत्र हैं। वर्तमान की जड़ीभूत वस्तु-स्थिति से अतृप्त, उपराम, ऊबे हुए ये नाराज नौजवान अंतिम रूप से नयी वस्तु-स्थिति की खोज में निकल पड़े हैं। मौजूदा इतिहास के गत्यावरोध की घुटन से ये चीत्कार कर उठे हैं।

युगांत का यह विप्लवी कापालिक, असत्यों, झूठों, अन्यायों, स्वार्थों पर आधारित सारे प्रतिष्ठानों, व्यवस्थाओं, आदर्शों की छद्म नियम-मर्यादाओं की सांकलें तोड़ कर, सड़कों में तंगा निकल पड़ा है। इस अधःपतित मानव-पुत्र के प्रति मेरे मन में घृणा नहीं, तिरस्कार नहीं, प्यार है, सहानुभूति है। यह अवरुद्ध इतिहास का, कुंठित वस्तु-स्थिति का ज्वालामुखी है। सारे जड़ीभूत नियम-विधान, कानून-आईन, बंधन-मर्यादा, दंभ-पाखंड की परंपरा से अतीत, यह शुद्ध और यथार्थ वस्तु-स्थिति के मुतलाशी आज के आधुनिक मनुष्य की मूर्तिमान आत्मवेदना है।

यह भीतर और बाहर, विचार और आचार, आदर्श और यथार्थ के बीच की सारी दरारों-दीवारों, और पदों-कोतोड़कर, बेनकाब, नग्न, शुद्ध सत्ता को जीने का, तलबगार है। युग के इस उन्मुक्त, विशुद्ध, निर्वासित, एकाकी, अशरण यातना-पुत्र को मैं प्यार करता हूँ, नमस्कार करता हूँ।

महावीर भी मुक्त चेतना और यथार्थ वस्तु-स्थिति की खोज में, सारी सांकलों को तोड़ कर, सारे बंधनों को काट कर, अनागार और अव्यावाध अवधूत हो कर निकल पड़े थे।

भीतर-बाहर आरपार नग्न, निर्ग्रन्थ आकाश-पुरुष महावीर, अभी और यही नित्य वर्तमान, प्रतिपल समक्ष खड़े हैं। वे शुद्ध, यथार्थ, निरावरण सत्ता हैं। आज के उन्मूलित, उत्पाटित, नग्न सत्ता के खोजी, नंगे मनुष्य के सम्मुख वे 'टू-डे' मुक्ति-मार्ग बन कर प्रस्तुत हैं। काश-परम सत्ता के इस दर्पण में आधुनिक मनुष्य अपनी अभीप्सित आधुनिकता का चेहरा किसी दिन देख पाये।

यह सारी पीढ़ी हजारों प्रश्नों के जलते-हली भाले उठाये खड़ी है : और इसके एवमेव और सम्पूर्ण उत्तर के रूप में, विराटों में चले आ रहे हैं दिगंबर महावीर ! —तीर्थंकर महावीर !

अपने मन के अनुसार चलने वाले मनस्वी पुरुष अपने प्रिय प्राण भी स्वेच्छापूर्वक त्याग देते हैं; परंतु पापात्माओं द्वारा बड़े से बड़ा आदर-सत्कार कभी स्वीकार नहीं करते।

मार्क ट्वेन के हास्य-विनोद



सिद्धांत : अपने-अपने

मार्क ट्वेन चीजें उधार ले कर वापस करने के लिए कुख्यात थे। एक दिन उन्होंने अपने पड़ोसी से कोई पुस्तक मांगी तो उसने कहा—‘अवश्य ले लें, पर मैंने सिद्धांत बनाया है कि मेरी पुस्तक केवल मेरे घर के अहाते में बैठ कर पढ़ी जाये।’ कुछ दिनों बाद वही पड़ोसी, मार्क ट्वेन से घास काटने की मशीन मांगने आया। मार्क ट्वेन ने कहा—‘शौक से मशीन ले लो, पर मेरा सिद्धांत है कि केवल मेरे घर के अहाते में उसका उपयोग किया जायेगा।’

०००

भाषण के समय

एक बार मार्क ट्वेन अपनी व्याख्यान-यात्रा के दौरान एक छोटे से शहर में रुक गये। भाषण देने से पूर्व वे हजामत बन-हराने के लिए एक नाई की दुकान में गये।

नाई : ‘शायद आप इस शहर में पहली बार आये हैं?’

मार्क ट्वेन : ‘हां, मैं यहां पहली बार आया हूं।’

नाई : ‘आप अच्छे मौके पर आये।’

राज यहां मार्क ट्वेन का भाषण भी होगा।

या आप सुनने आयेंगे?’

मार्क ट्वेन : ‘हां, उम्मीद तो है।’

नाई : ‘तब आपने टिकट तो खरीद ही लिया होगा।’

मार्क ट्वेन : ‘नहीं! अभी तो नहीं।’

नाई : ‘पर अब तो सब बिक गये।’

आपको अब खड़ा ही रहना पड़ेगा।’

मार्क ट्वेन ने गहरी सांस लेते हुए कहा—‘जब कभी मैं इस व्यक्ति का भाषण सुनने जाता हूं तो मुझे खड़ा ही रहना पड़ता है।’

०००

शेक्सपियर के नाटक

मार्क ट्वेन से एक बार कुछ लोग बहस कर रहे थे कि शेक्सपियर स्वयं ही नाटक-कार रहा था अथवा इसके नाम पर छपे नाटकों का रचयिता कोई और था।

बहस काफी देर तक चलती रही तो मार्क ट्वेन ने उकता कर कहा—‘जब मैं स्वर्ग में जाऊंगा तो शेक्सपियर से पूछूंगा कि उसे नाटक कौन लिख कर देता था?’

‘पर क्या यह जरूरी है कि शेक्सपियर स्वर्ग में ही हो, नरक में भी तो हो सकता है!’ एक व्यक्ति ने बहस को जारी रखते हुए कहा।

‘उस अवस्था में तुम उससे पूछ लेना!’

मार्क ट्वेन ने मुसकराते हुए उत्तर दिया।

(शेर्बांस पृष्ठ १४२ पर)

बालकथा :

दीवार की रक्षा



ज्ञानदेव तिर्यग्धार

गुल्ली-डंडे के खेल में मनोहर की हार हो गयी। वह बौखला उठा। अचानक उसे शैतानी सूझी। झटके से उसने गुल्ली उठायी और भाग निकला। मोहन और सतीश तेजी से उसके पीछे दौड़े। मनोहर को पकड़े जाने का डर हो गया। उसने गुल्ली साथियों की तरफ फेंक दी। पर वह गुल्ली नाली में जा गिरी यह देख, मनोहर और तेज दौड़ा और अपने घर में घुस गया। उसने झट मां की ओट ले ली और बोला, 'देखो मां ! सतीश और मोहन मुझे मारने आ रहे हैं।'।

मां घर का काम छोड़ दरवाजे पर आ खड़ी हुई। तभी सतीश और मोहन आ पहुंचे। वे अंदर घुसने की कोशिश करने लगे, 'कहां है मनोहर ? आज हम उसे किसी कीमत पर नहीं छोड़ेंगे, हड्डी-पसली एक कर देंगे।'।

मां ने उनका रास्ता रोकते हुए पूछा, 'क्या नुकसान किया है उसने ?'

'उसने हमारी गुल्ली नाली में फेंक दी।' सतीश ने शिकायत दर्ज की।

'ठीक है, तुम गुल्ली के पैसे ले लो। मां ने समाधान सुझाया।

'हम उसी से हिसाब चुकता करेंगे। कभी आ जाये हमारे हाथ, फिर देखना।' यह धमकी देकर दोनों भुनभुनाते हुए चले गये।

ऐसा अक्सर होता। मनोहर के खिलाफ कोई-न-कोई शिकायत-उलाहना रोज सुनना पड़ता। कभी वह किसी की बाल्टी कुएं में फेंक देता, तो कभी किसी को ठोकर मारकर गिरा देता। मां उसकी हर गलती नजरंदाज करके उसका बचाव करतीं उग्र पड़ोसियों के सामने दोनों हाथ फैलाकर ढाल की तरह खड़ी हो जातीं और उन्हें मनोहर तक नहीं जाने देतीं। पड़ोसी बहुत बुरा-भला कहते। मां सब कुछ सह लेतीं और मनोहर की तरफ से क्षमा मांग लेतीं।

मां को पूरा यकीन था कि उनका मनोहर एक दिन जरूर बदलेगा। वे स्वयं सभी कष्ट झेल लेतीं, पर मनोहर को कोई तकलीफ न होने देतीं। वे सुबह-शाम बाँगे बनातीं और दिन में माध्यमिक विद्यालय में शिक्षक का कार्य करतीं। उन्होंने मनोहर का नाम अच्छे स्कूल लिखवा दिया था। उसकी सुख-सुविधा

नवनीत

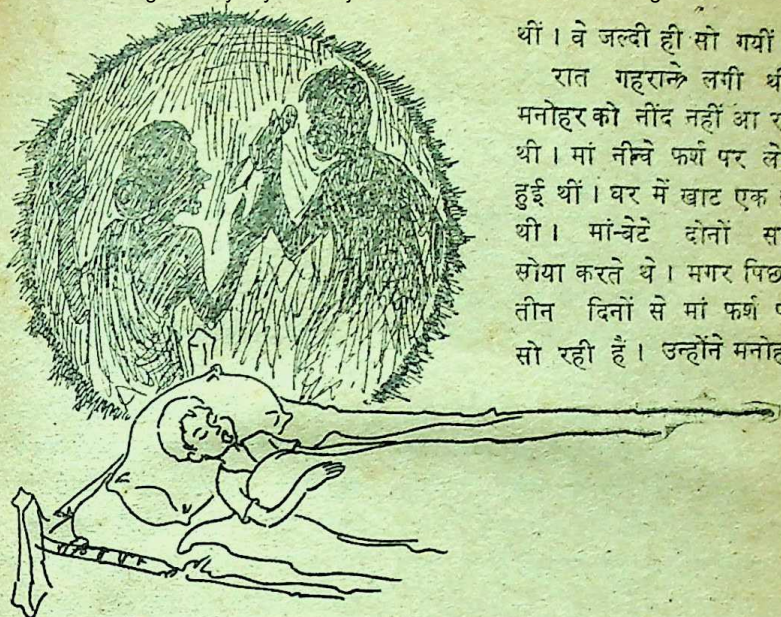
१३८

अग्रंत

१९८३

थीं। वे जल्दी ही सो गयीं।

रात गहराने लगी थी। मनोहर को नींद नहीं आ रही थी। मां नीचे फर्श पर लेटी हुई थीं। वर में खाट एक ही थी। मां-बेटे दोनों साथ सोया करते थे। मगर पिछले तीन दिनों से मां फर्श पर सो रही हैं। उन्होंने मनोहर



कोई कमी न होने देतीं।

उस दिन काले बादल खूब उमड़े-धुमड़े थे। तेज बारिश हुई। मनोहर मां की गर-जानकारी में कपड़े उतारकर जी भर नहाया।

शाम होते-होते उसका बदन तपने लगा। मां को सारी बातें मालूम हो गयीं। लेकिन उन्होंने कुछ नहीं कहा और उसकी सेवा में लग गयीं। तीसरे दिन जाकर उसका ज्वर कम हुआ।

इस बीच उसकी देखभाल में लगे रहने से मां बहुत कमजोर हो गयी थीं। उन्होंने अपनी सेहत का खयाल बिलकुल छोड़ दिया था। उस दिन वे बुरी तरह थककर चूर

से कहा था, 'तू बीमार है, तुझे कोई तकलीफ नहीं होनी चाहिये।'

मनोहर को हल्की झपकी लगी ही थी कि एक आहट से उसकी नींद उचट गयी। उसने देखा, एक काली आकृति खिड़की के पास खड़ी है। उसने खिड़की में हाथ डालकर दरवाजे की सिटकिनी गिरा दी और कमरे में दाखिल हो गया। हाथ में एक चमचमाता छुरा लेकर वह मनोहर की तरफ बढ़ा।

उसने कहा, 'तूने पत्थर चलाकर मेरे बेटे का सिर फोड़ा है। आज तुझे जान से मार डालूंगा।'

मनोहर की घिन्घी बंध गयी। तभी

हिंदी डाइजेस्ट

मां की नींद खुल गयी। वे दौड़कर छुरेबाज के सामने जा खड़ी हुई। वे निडर होकर गरजीं, 'तुम मेरे बेटे का कुछ नहीं बिगाड़ सकते। चले जाओ, यहां से !'

छुरेबाज गुराया, 'ऐ बुढ़िया, हट जा नहीं तो तेरा ही खात्मा कर दूंगा।'

'नहीं ! मैं नहीं हटूंगी।' मां दृढ़ता से बोली। तभी चाकू चला। मनोहर को खून का फव्वारा फूटता नज़र आया। वह चिल्लाया, 'मां ! मां !!'

अगले पल उसने पाया, वह खाट पर लेटा है। समूचा वदन पसीने से तर-बतर हो चुका है। मां उस पर झुकी हुई थीं। पूछ रही थीं, 'क्यों बेटे, क्या हुआ ?'

मनोहर ने कांपते स्वर में पूछा, 'मां, तू तो ठीक है न !'

'मुझे क्या हुआ ? मैं तो ठीक हूं।' मां बोली।

'तो... तो वह चाकू.... खून....?' मनोहर की आवाज कांप रही थी।

'लगता है तूने कोई बुरा सपना देखा है। भूल जा उसे और सोने की कोशिश कर।' और मां तब तक उसका माथा सहलाती रहीं जब तक उसे नींद नहीं आ गयी।

अगली सुबह नींद खुलते ही मां की नज़र मनोहर की खाट पर गयी, वह वहां नहीं

जनवरी १९८३ के नवनीत में फकीर मोहन सेनापति के उपन्यास का कथा-सार 'छह बीघे जमीन' प्रकाशित हुआ है, जिसका संपादन डॉ. ए. सतपथी द्वारा किया गया था। परंतु प्रकाशित अंक में उनका नाम छपने से रह गया था। जिसका हमें खेद है।

था। मां का अंग-अंग टूट रहा था ! किसी तरह उन्होंने नज़र दूसरी तरफ फेरी देखा मनोहर नहा-धोकर पड़ाई करने में जुटा है। मां पर नज़र पड़ते ही वह बोला, 'मां, तेरी तबीयत कैसी है ? तू रातोंरात भर कराहती रही। आज तुझे कोई कामालिका नहीं करना। तुझे आराम की जरूरत है। खाना मैं आज खुद बनाऊंगा। तू ठीक हो जाये तो ढोंगा बनाने में तेरी मदद भी करूंगा।'

मां आंखें फाड़कर देखती रहीं। उन्हें चुप देखकर मनोहर करीब सिमट आया और बोला, 'मां, तू नाराज़ है क्या ? अब मैं कभी पड़ोसियों को तंग नहीं करूंगा। तुझे कोई परेशानी नहीं होने दूंगा। बस, तू ही तो है मेरी देखभाल करनेवाली।'

मां का कलेजा गद्गद हो उठा था।

—द्वारा श्री एम. एन. वर्मा, कोठियां, कुर्जी, पटना - ८०००१०

सूरज ने चंद्रमा से पूछा—'तुम बीमार लगते हो। देखो न, कितने पीले पड़ गये हो ?' चंद्रमा ने उत्तर दिया—'सच है, जो रात की ड्यूटी करनी पड़ती है।'

वन-समाचार :

संस्कृत-बाल-दिवस-समारोह

भारतीय विद्या भवन के संस्थापक डॉ० कन्हैयालाल मुंशीजी का ९५ जन्म-दिवस 'सरल-संस्कृत-परीक्षा-भाग' द्वारा २९ जनवरी १९८३ ई. को मनाया गया।

इस समारोह में बंबई की विभिन्न राठाठशालाओं में लगभग ५०० बालक-कामालिकाएं, और उनके संस्कृत-शिक्षक हैं। शिक्षिकाएं उपस्थित थीं।

अध्यक्ष पद से बोलते हुए भवन के न्यासी श्री चरणदास मेघजी ने कहा कि 'पापाजी (स्व० मुंशीजी) एक महान् शिक्षाशास्त्री, महान् लेखक एवं साहित्य-कार, सफल-राजनीतिज्ञ, भारतीय संस्कृति एवं संस्कृत भाषा के कर्णधार थे। भारतीय संस्कृति एवं संस्कृत भाषा का प्रचार व प्रसार स्व० मुंशीजी का महान् ध्येय था। इस उद्देश्य की पूर्ति



यों से दायाँ सुश्री प्रमिलाबेन पारेख, श्री नर्मदाशंकर शास्त्री, श्री चरणदास मेघजी (स्टी), श्री रामशंकर त्रिपाठी (पीछे बैठे हुए), श्री भाईशंकर पुरोहित (माइक पर)

और परीक्षामंत्री शास्त्री पं. प्रकाशचंद्र त्यागी

हेतु स्व० मुंशीजी ने 'सरल-संस्कृत-परी-क्षाएं', 'गीता-परीक्षाएं' एवं शास्त्रीय परीक्षाओं का भवन के द्वारा संचालन किया।

'इन परीक्षाओं में लगभग ६०,००० परीक्षार्थी प्रति वर्ष सम्मिलित होते हैं। यह उनकी लोकप्रियता का प्रमाण है। मुंशीजी के स्वप्न को साकार करने के लिए भारतीय विद्या भवन कृत संकल्प है।'।

श्री नर्मदाशंकर शास्त्री, प्राचार्य श्री भाईशंकर पुरोहित एवं सुश्री प्रमिला बेन पारेख ने संस्कृत की महत्ता एवं स्व० मुंशीजी के जीवन के विभिन्न पहलुओं पर

प्रकाश डालते हुए कहा कि बच्चों के माध्यम से इस प्राचीन भाषा को हम सरलतापूर्वक जन-जन तक पहुंचा सकते हैं।

श्री एस. के. सोमैया विनय मंदिर, विद्याविहार, श्रीवत्स बाल-मंदिरम्, श्री हंसराज प्रागजी गर्ल्स हाईस्कूल, माडन हाईस्कूल तथा मानव मंदिर के छात्र-छात्राओं द्वारा संस्कृत भाषा में विविध सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये।

सरल-संस्कृत-परीक्षा-विभाग के परीक्षा-मंत्री शास्त्री पं. प्रकाशचन्द्र त्यागी ने प्रारंभ में अतिथियों का स्वागत किया और अंत में आभार प्रदर्शित किया।



(पृष्ठ १३७ का शेषांश)

समानता की बात

मार्क ट्वेन को प्रायः ऐसे व्यक्तियों के पत्र और तसवीरें प्राप्त होती रहती थीं, जिन्हें विश्वास था कि उनकी शकल-सुरत ट्वेन जैसी है। मार्क ने एक पत्र तैयार किया और फिर उसकी बहुत-सी प्रतिलिपियां छपवा लीं। जब भी कोई तसवीर प्राप्त होती, भेजने वाले को इस पत्र की एक प्रतिलिपि भेज दी जाती। इसमें लिखा होता—

'मान्यवर ! आपके पत्र और तसवीर के लिए धन्यवाद ! मेरे विचार में आप अन्य लोगों की अपेक्षा मुझसे अधिक समानता रखते हैं, बल्कि मुझे तो यहां

तक विश्वास है कि आप स्वयं मेरी अपेक्षा मुझसे अधिक समानता रखते हैं। मैं भविष्य में आपकी तसवीर सामने रख कर शेव किया करूंगा।'

अप्रैल-फूल

पहली अप्रैल को प्रायः लोग दूसरों को फूल (बेवकूफ) बनाते हैं और स्वयं भी बनते हैं।

मार्क ट्वेन से किसी व्यक्ति ने अप्रैल फूल मनाने का कारण पूछा तो उन्होंने कहा—'यह दिन इसलिए मनाया जाता है कि हम यह याद रखें कि वर्ष के शेष ३६४ दिन भी हम यही कुछ करते रहते हैं।'

प्रस्तोता : सुरजीत



(पृष्ठ ६४ का शेषांश)

में के
हम
नहुंचा
दिर,
दरम,
साडेन
छात्र-
विधि
गये।
रीक्षा-
प्रारंभ
अंत

नहीं है। वह जोर-जोरसे चिल्लाने
गी, 'मेरा बच्चा खो गया, मेरा बच्चा
गया।' अड़ोस-पड़ोस के लोग जमा
गये। पूछा 'क्यों चिल्ला रही हो?'
बोली, 'मेरा बच्चा कहीं खो गया है।
उन लोगों में एक सज्जन आदमी भी
। उन्होंने इधर-उधर देखा तो उस
रत की गोद में ही बच्चा था। वे सज्जन
ले, 'अरे! यह क्या है तेरी गोद में!'
'हे भगवान्!' वो औरत बोली।
'हे मानपुरी तेरे तन में भगवान

क्यूं ढूँढते हो हैरान।

द में लड़का और गांव में ढिंढोरी ॥'

यह मानपुरी का काव्य है। वह बड़ा
सद्योगी था।

मेरी
ते हैं।
ने रख

मनुष्य को सतत आत्मा का चिंतन
रना चाहिये। आत्मा का मनन करना
हिये, आत्मविचार करना चाहिये,
संग और सतत सत्शास्त्र पढ़ना चाहिये।

भारत में साधु लोगों पर लोगों की
हूज ही श्रद्धा बैठती है। उसमें कुछ
छा भी होता है, कुछ बुरा भी होता
। कुछ श्रद्धा अंधी होती है, कुछ चक्षुमान।

अप्रैल
उन्होंने
ता है।
३६४

छ सच्चे साधु होते हैं, कुछ नकली। कुछ
यं समझ के दूसरों को समझानेवाले,
छ न समझते हुए समझानेवाले। इसी-
ए मनुष्य को चक्षुमान होना चाहिये।

एक बार तुकाराम महाराज के बारे
किसी ने आक्षेप उठाया कि वह महात्मा
यह हम कैसे जानें? उत्तर में तुकाराम

महाराज ने कहा:

पाण्यामध्य मासा ज्ञाप घेतो कंसा?

जावे त्याच्या वंशा तेव्हा कळे।

पानी में मछली निद्रा कैसे लेती है?

अगर मुझसे कोई यह प्रश्न पूछे तो मैं
इतना ही कहूंगा कि तुमको मछली
होना पड़ेगा, तभी वह बात समझ में
आयेगी। इसलिये कुछ अच्छे भी होते
हैं समझानेवाले, कुछ कच्चे भी होते हैं।

मेरा एक मित्र है, जिसका नाम है
शेख नसीरुद्दीन।

शेख नसीरुद्दीन को एक दिन किसी
एक मित्र ने बतख लाकर दे दिया। नसी-
रुद्दीन ने उसका सूप बनाने को अपनी बीवी
को कहा। सूप बहुत बढ़िया बना था।
नसीरुद्दीन ने बड़ी खुशी से पेट भर पी
लिया और बचा हुआ सूप 'या अल्ला
तेरी मेहरबानी' कहकर रख दिया। कुछ
समय के बाद एक आदमी ने बाहर से
दरवाजा खटखटाया। नसीरुद्दीन ने दर
वाजा खोल कर पूछा, 'कौन हो तुम?'

उसने उत्तर दिया, 'जिसने तुमको
बतख लाकर दिया, उसका मैं मित्र हूँ।'

नसीरुद्दीन ने 'कोई हर्जा नहीं' कह-
कर उसे एक ग्लास सूप दिया। वह पीके
चला गया। पांच-दस मिनट के बाद
दूसरे किसी ने दरवाजा खटखटाया।

नसीरुद्दीन ने पूछा - 'कौन है?' उसने
उत्तर दिया - 'जिसने तुमको बतख लाकर
दिया था, उसके मित्र का मित्र हूँ।'

थोड़ा-सा सूप बचा हुआ था, वह भी उसको दे दिया। नसीरुद्दीन बैठा ही था कि फिर से किसी ने दरवाजा खटखटाया। उसने कहा, 'जिस आदमी ने तुमको बतख लाकर दिया था उसके मित्र के मित्र का मित्र हूँ मैं।'

फिर चौथा आदमी आया। सूप तो खत्म हो गया था। सूप के बरतन में थोड़ा पानी डाल कर उसने वह उसे दे दिया। पीते-पीते वह शिकायत करने लगा, 'सूप ठीक नहीं है। यह सूप है या पानी?'

नसीरुद्दीन बोले, 'अरे भाई, काहे को गुस्सा करते हो? जैसे हमको बतख लाकर देनेवाले आदमी के मित्र के मित्र के मित्र के मित्र के मित्र तुम, वैसे ही वह सूप का सूप का सूप का सूप का सूप है। काहे को फिजूल झगड़ा करते हो?'

इसीलिये मनुष्य को चक्षुमान होना चाहिये और जिसने आत्मा को पाया हुआ है, उसकी संगति करके अपनी अंतर शक्ति को विकसित करना चाहिये। मनुष्य में उतनीही शक्ति है, जितनी भगवान में है। साक्षात्कारी पुरुष की संगति करने से मनुष्य आत्मा को पा सकता है।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।

भगवान् अर्जुन से कहते हैं कि परमेश्वर सभी के हृदय में रहता है। वे कहते हैं, **मत्तः परतरं नान्यन् किञ्चित् अस्ति धनंजय।**

हे धनंजय, इस जगत में मेरे से भिन्न और कुछ वस्तु नहीं है। मनुष्य को ध्यान

द्वारा उसी अंतर शक्ति को क्रियाशील बनाना चाहिये। उस शक्ति के हमारे में होने से हम खुशी हैं, हम जिंदा हैं, हम व्यवहार कर रहे हैं। जब वह शक्ति हमको छोड़कर चली जाती है, उस शरीर को श्मशान में इधर-उधर फेंक देते हैं। उस महान शक्तिशाली कुण्डलिनी को जगाकर इसी जगत को स्वर्गमय बनाते हुए मनुष्य इस संसार में सुख से व्यवहार कर सकता है और इस शक्ति के जाग्रत होने पर संसार के सब व्यवहारों को यह शक्ति प्रोत्साहन देती है और पुष्ट करती है। मैंने एक महात्मा को काव्य पढ़ा था—

**पूजिता शिळेची मूर्ति देव होती,
मग तू देव असतां पूजितां कसा न देव होसी,
कसा न देव होसी।**

पत्थर की मूर्ति बनाकर उसमें मंत्र द्वारा प्राण-प्रतिष्ठा करते हुए उसकी हम पूजा करते हैं। इस मूर्ति को देवपन आ जाता है और उसकी पूजा का हमें फल भी मिलता है। फिर तुम स्वयं देव होकर अपने ध्यान, अपनी पूजा द्वारा तुम्हारे देव बनने में कितनी देर लगेगी? इसीलिए मैं सतत कहता रहता हूँ कि आपको ध्याओ, आपको पूजो, आपको बंदो, आपको समझो, आप में आप होके आपके जैसा ही वह परमात्मा आप में रहता है।

[‘आश्रम पत्रिका’, गणेशपुरी से साप्ताहिक]

उपयोग करें

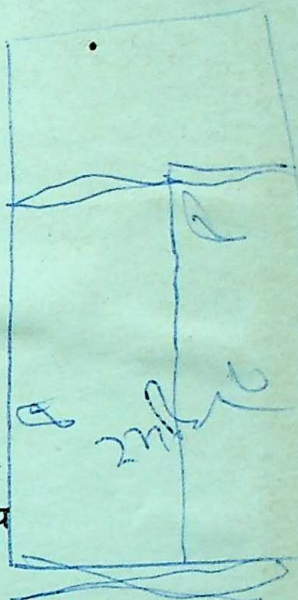
प्रेलिम स्टेपल फाइबर

और

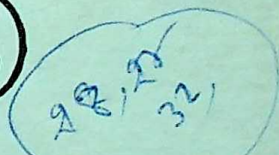
साथ में



मजबूत, टिकाऊ, विश्वसनीय
पूरक धागे



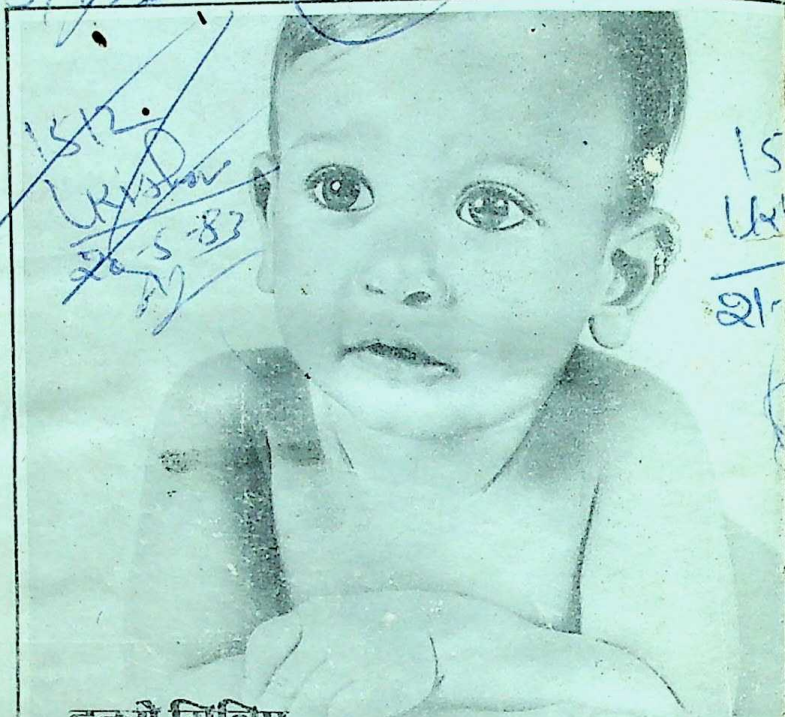
Grasilene



दि ग्वालियर रेयान सिल्क (मन्यू.) विविंग कं. लिमिटेड
(स्टेपल फाइबर विभाग)

तार : GRASIM

टे. नं : ३८८२८८



इनसे मिलिए

वे हैं डॉ. सुरेश आठिया (एम.बी.बी.एस., एम. एस., एफ.आर.सी.एस.)

स्टेट बैंक शिक्षा-योजना द्वारा यह सपना साकार कीजिए।

अपने बच्चों का भविष्य अपने सपने के अनुरूप बनाने के लिए धन की आवश्यकता होती है। इसलिए आपको स्टेट बैंक शिक्षा योजना की आवश्यकता है। यह ऐसी अनोखी योजना है जो आपके बच्चे की शिक्षा के लिए आवश्यक धन संबंधी समस्त आवश्यकताओं को पूरा कर देती है।

यह योजना सरल है और इसे आप अपनी आवश्यकता के अनुरूप ढाल सकते हैं। आप जब भी चाहें, कितनी भी (कम से कम 20 रु. मासिक) जमा करके इस योजना में सम्मिलित हो सकते हैं।

मान लीजिए आपका बच्चा जब दो वर्ष का हो, तब आप केवल दस वर्ष के लिए हर महीने 100 रु. जमा करके इस योजना में सम्मिलित होते हैं। इस तरह आपकी कुल जमा राशि होती है 12,000 रु. पर इसके बदले आपको मिले 47,138 रु. जिसमें से, आपका बच्चा सत्रह वर्ष का होने पर कॉलेज/विश्वविद्यालय में प्रवेश लेता है उस समय, उसकी पुस्तकों, यूरक आदि के लिए 5,188 रु. मिलते हैं। शेष 42,000 रु. आगामी पांच वर्षों तक 700 रु. की मासिक किस्तों में मिलते रहते हैं।

यहाँ सही आवश्यकता होने पर भारत या विदेश में, उच्चतर अध्ययन के लिए बैंक आपको प्रेष भी दे सकता है।

अपने समाप की स्टेट बैंक की किसी भी शाखा में पधारें। वे आपको विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुरूप एक समुचित योजना बना देंगे।



स्टेट बैंक
सुरक्षा: एक सुखद अ

Compiled
1999-2000

